सकता है और इस समय में उसे सहायता एवं शिक्षण की आवश्यकता होती है। इस शिक्षण का प्रबन्ध, जैसा ऊपर कहा गया, समाज करता है।

शिक्षण प्रदान करना शिक्षक का कार्य है। कैसे वह शिक्षण प्रदान करे? क्या सिखाये? बालकों को सिखाने में क्या बातें वह ध्यान में रखे? इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर उसे ज्ञात होना आवश्यक है। इन उत्तरों की खोज में उसे एक विषय—मनोविज्ञान—का ज्ञान जो मानव-व्यवहार के ज्ञान से सम्बन्धित है, बहुत सहायता पहुँचाता है। इस पुस्तक में शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं के रूप में मनोविज्ञान का ज्ञान कैसे सहायक होता है इसी का पूर्णरूपेण वर्णन है। किन्तु इससे पहले कि हम मनोविज्ञान की सहायता की ओर ध्यान दें, हम शिक्षक, शिक्षण एवं मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को और स्पष्ट कर लेना चाहिए।

शिक्षक

शिक्षक का कार्य है शिक्षण देना। शिक्षण किस प्रकार दिया जाये इसके लिए शिक्षक को प्रशिक्षण मिलना आवश्यक है। उसे अपने कार्य सम्बन्धी कला, तकनीक तथा सूचना मिलनी चाहिए। शिक्षक के लिए जिन महत्वपूर्ण क्षमताओं के सीखने की आवश्यकता है और जिन विशेषताओं या उद्विकास उसमें अनिवार्य है वे निम्न हैं :

शिक्षक के लिए जिन वृत्तिक कला[1] एवं ज्ञान की आवश्यकता है, उनको हम चार विस्तृत क्षेत्रों में विभाजित कर सकते हैं, प्रत्येक क्षेत्र में उसे उच्च स्तर की योग्यता प्राप्त करने की आवश्यकता है

(१) शिक्षक को उन बालकों के सम्बन्ध में जानकारी होनी चाहिए जिनके साथ वह कार्य करे—उसको बालक तथा बालिकाओं की प्रकृति एवं आवश्यकताओं की गहरी जानकारी होनी चाहिए। उसको उन खण्डों का पता होना चाहिए जो उनकी अभिवृत्तियों, रुचियों, व्यक्तित्व, बौद्धिक योग्यता तथा शारीरिक वृद्धि पर नियन्त्रण रखते हैं। उसको यह समझ लेना चाहिए कि वह क्यों सीखते हैं तथा उनके सीखने में कौनसी शक्तियों का वह प्रयोग कर सकता है ताकि सीखना अच्छे ढंग से हो सके।

(२) शिक्षक को निदान[2] करने की कला आनी चाहिए—उसको इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि वह निर्धारित कर सके कि विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्येक बालक का विकास किस स्तर पर है। उसमें प्रत्येक बालक की योग्यताओं, रुचियों, शैक्षिक उपार्जन इत्यादि के स्तर के निदान करने की योग्यता होनी चाहिए।

(३) शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से जानकारी होनी चाहिए—उसको इस बात की स्पष्ट रूप से समझ होनी चाहिए कि वह किस उद्देश्य की ओर कार्य कर रहा है। उसमें इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि वह ऐसे उद्देश्य निर्धारित करे जिनसे प्रत्येक बालक को अपनी योग्यताओं का पूर्ण रूप से उपयोग करने की प्रेरणा मिले। शिक्षक को इतने ऊँचे उद्देश्य भी नहीं निर्धारित करने

1. Professional Skill. 2. Diagnosis

चाहिए कि वह बालक की सुरक्षा एवं आत्मगौरव को खतरा बन जायें और उसको अपनी पूर्ण क्षमताओं का प्रयोग करने से रोक दें।

(४) शिक्षक को सबसे अधिक प्रभावशाली विधियों का ज्ञान होना चाहिए जो प्रत्येक बालक को अधिक से अधिक वृद्धि प्राप्त करने में सहायता दें—शिक्षक को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि बालकों की उपलब्धि[1], व्यक्तित्व[2], अभिवृत्ति[3], रुचि[4] तथा संवेगात्मक विकास[5] में किस प्रकार परिवर्तन लाये जा सकते हैं? उसमें इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी शिक्षण विधियों[6] में इस प्रकार के परिवर्तन ला सके जो प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत योग्यताओं और आवश्यकताओं के अनुरूप हों। उसमें सामाजिक वातावरण[7] में निहित शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग करने की क्षमता हो कि कक्षा-शिक्षण के लिए प्रभावशाली स्थितियाँ उत्पन्न की जा सकें और प्रत्येक बालक के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके।

यदि हम एक शिक्षक और चिकित्सक के कार्य की तुलना करें तो हम देखेंगे कि प्रत्येक को ऐसे साधन की आवश्यकता है जो उन मानवों में परिवर्तन ले आयें जिनके साथ वह कार्य करते हैं। एक चिकित्सक के लिए यह साधन दवाएँ तथा यन्त्र होंगे। एक शिक्षक के लिए, यह एक विस्तृत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि[8] तथा गहराई में की गई विशिष्ट विषय सम्बन्धी तैयारी होगी। इन साधनों के अतिरिक्त दोनों को वृत्तिक कला एवं ज्ञान[9] का प्राप्त होना भी आवश्यक है। इस ज्ञान में निदान करने की विधियाँ तथा उन उद्देश्यों की जानकारी भी सम्मिलित है जिनकी ओर वह कार्य कर रहे हैं। उनको मानव पदार्थ[10] का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और इन कलाओं का भी जो साधनों का सबसे अच्छा प्रयोग कर सकते हैं।

मनोविज्ञान, शिक्षक को तथ्यों एवं सिद्धान्तों का खजाना देता है जो इसको अपनी वृत्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में बहुत बड़ी सहायता पहुँचाता है। इसी कारण शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षण

शिक्षक को कक्षा-शिक्षण में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का अध्ययन कई अनुसन्धानों में किया गया है। कोलोराडो[11] के १०७५ जन-विद्यालयों के अध्यापकों से जब उनकी शिक्षण सम्बन्धी समस्याएँ पूछी गईं तो उन्होंने जो समस्या सबसे गम्भीर बताई वह उनकी बालकों को अभिप्रेरण[12]

---

1. Achievement. 2. Personality. 3 Attitude. 4. Interest. 5. Emotional development 6. Teaching Methods. 7. Social Environment. 8. Broad Cultural Background 9. Professional skill and knowledge 10. Human Material 11. Colorado. 12. Motivation

प्रदान करने की असमर्थता थी।[1] उन्होने विषय-शिक्षण के पर्याप्त ज्ञान को कोई भी समस्या न समझा। निम्न तालिका मे उनके द्वारा वर्णित समस्याएँ दी गई हैं :

तालिका १—शैक्षिक स्तर के अनुसार मुख्य समस्याओं का स्थिति अन्तर[2]

समस्या के प्रकार	शैक्षिक स्तर			
	प्रारम्भिक विद्यालय[3]	निम्नस्तरीय माध्यमिक विद्यालय[4]	उच्चस्तरीय माध्यमिक विद्यालय[5]	सब स्तरो को मिलाकर[6]
1. अभिप्रेरण	1	1	1	1
2. परीक्षण एव मूल्याकन[7]	3	2	2	2
3. कठिनाइयो का निदान तथा शोधन[8]	2	4	4	3
4 प्रस्तुत करने की विधियाँ[9]	5	3	3	4
5. व्यष्टिगत भेद[10]	4	5	5	5
6. कैसे अध्ययन किया जाये[11]	9	6	7	6
7. अधिगमांतरण [2]	11	8	6	7
8. प्रशासन से सम्बन्ध[13]	6	10	9	8
9. सामग्री तथा उपकरण का अभाव[14]	10	12·5	8	9
10 पाठ्य-सम्बन्धी एवं सहगामी क्रियाएँ[15]	8	11	12	10
11. पूर्ण ज्ञान एवं पारंगति[16]	7	12·5	13·5	11
12. अनुशासन[17]	14	7	10	12
13. विद्यार्थी का कक्षा-कार्य मे सहयोग[18]	13	9	11	13
14. निर्देशन[19]	15	14	13·5	14
15. जातीय विभिन्नता[20]	12	15	16	15
16. अभिभावक-शिक्षक संबंध	16	16	15	16

1. Robert A. Davis: 'The Teaching Problems of 1075 Public School Teachers', *Journal of Experimental Education*, IX (1940), p. 45.

2. Ranking of Major Problems according to educational level. 3. Elementary Schools. 4. Junior High Schools. 5. Senior High Schools. 6. All levels combined. 7. Testing and evaluating. 8. Diagnosing and correcting difficulties. 9. Modes of Presentation. 10. Individual differences. 11. How to study. 12 Transfer of training. 13. *Relationships* with administration. 14. Lack of materials and equipment. 15. Curricular and extracurricular activities. 16. Thoroughness and mastery. 17. Discipline. 18. *Pupil* participation in class 19. Guidance. 20 Racial differences. 21. Parent-teacher relationships.

परपृष्ठांकित तालिका को देखने पर यह पता चलेगा कि अधिकतर समस्याएँ बालक की प्रकृति को न समझने के कारण, उसकी कठिनाइयो का निदान न कर सकने के कारण तथा ऐसी स्थिति न उत्पन्न कर सकने के कारण जिसमे बालक सीखने की आवश्यकता प्रतीत करे, उठ खडी होती हैं।

अनेक अन्य ऐसे अध्ययन भी किये गये हैं जिनमे शिक्षक की शिक्षण सम्बन्धी समस्याओ का अवलोकन किया गया है। इन सबके परिणाम स्पष्ट रूप से इस ओर संकेत करते हैं कि शिक्षक के सम्मुख मुख्य समस्याएँ विभिन्न बालको को कैसे शिक्षण दिया जाये इस ओर होती हैं, न कि जो विषय पढाया जाये उसके ज्ञान सम्बन्धी।

शिक्षक की समस्याओ का विश्लेषण करने पर तथा इस ओर ध्यान देने पर कि एक शिक्षक से क्या आशा अपने वृत्तिक भूमिका-निर्वाह[1] करने के लिए की जाती है, हम यह कह सकते हैं कि सफल शिक्षक बनने के लिए उसमे निम्न चार प्रकार की योग्यताओ का होना आवश्यक है, जिनका संकेत हमने पहले भी दिया है

१. शिक्षक मे बालक तथा बालिकाओं की प्रकृति समझने की योग्यता होनी चाहिए तथा उसे इस बात की भी समझ होनी चाहिए कि क्या शक्तियाँ उनके व्यवहार मे परिवर्तन लाती हैं।

२. उसमे निदान करने की क्षमता होनी चाहिए ताकि वह प्रत्येक बालक के विकास का वर्तमान स्तर निर्धारित कर सके।

३. उसे शिक्षा के उद्देश्यो की समझ होनी चाहिए ताकि वह बालक के सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक विकास की दिशा निर्धारित कर सके।

४. शिक्षण देने की सबसे अच्छी प्रविधियों पर उसे प्रभुत्व होना चाहिए।

मनोविज्ञान उसे बालक की प्रकृति समझने मे सहायता प्रदान करता है। उसका ज्ञान उसमे इस बात की योग्यता को जन्म देता है कि वह बालको की प्रकृति समझ सके और यह जान सके कि वह किस प्रकार अपनी रुचियों, बौद्धिक योग्यताओ, शारीरिक रूप, व्यक्तित्व इत्यादि मे वृद्धि प्राप्त करता है। यह ज्ञान ही उसके शिक्षण को सफल बनाता है।

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान एक विद्या विशेष[2]

हमने ऊपर शिक्षक को सफल शिक्षण प्रदान करने के लिए मनोविज्ञान के अध्ययन को महत्वपूर्ण बताया है। इससे प्रथम कि हम इस अध्ययन की गहराई मे जायें, हमे यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि मनोविज्ञान है क्या, इसकी प्रकृति

---

1 Profession role-playing. 2. Psychology as a discipline.

क्या है तथा इसका क्षेत्र कहाँ तक फैला हुआ है। नीचे हम इन्हीं प्रश्नों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

'मनोविज्ञान' क्या है ?[1]

'मनोविज्ञान' अभी कतिपय वर्षों से ही स्वतन्त्र विषय के रूप में हमारे सामने आया है। पहले यह दर्शन-शास्त्र की एक शाखा माना जाता था। यह प्रश्न यदि आज से कुछ शताब्दियों पूर्व पूछा गया होता तो इसका उत्तर इस प्रकार होता—"मनोविज्ञान दर्शन-शास्त्र की वह शाखा है, जिसमें मन और मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।" किन्तु कालान्तर में मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा भ्रमात्मक सिद्ध हुई और आज मनोविज्ञान एक 'शुद्ध विज्ञान'[2] माना जाता है तथा विद्यालयों में इसका अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय के रूप में किया जाता है।

ईसा की १६वीं शती तक मनोविज्ञान 'आत्मा का विज्ञान'[3] माना जाता था। आत्मा की खोज और उसके बारे में विचार करना ही मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य था। परन्तु आत्मा का कोई स्थिर 'स्वरूप' और आकार न होने के कारण इस परिभाषा पर विद्वानों में मतभेद था। बिना निश्चित स्वरूप और रूप-रंग के आत्मा का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव न था। अतः विद्वानों ने मनोविज्ञान को 'आत्मा का विज्ञान' न मानकर 'मस्तिष्क का विज्ञान'[4] माना, जिसका उद्देश्य मस्तिष्क का अध्ययन करना था। किन्तु 'मस्तिष्क' के सम्यक् अर्थ के बारे में भी वही कठिनाई उपस्थित हुई, जो आत्मा के विषय में थी। मनोवैज्ञानिक 'मानसिक शक्तियों, मस्तिष्क के स्वरूप और उसकी प्रकृति'[5] को सही-सही निर्धारित न कर सके। मस्तिष्क का सम्बन्ध 'व्यक्तित्व, विवेक और विचारणा-शक्ति' से है, जिसका अभाव पागलों अथवा सुषुप्त मनुष्यों में पाया जाता है। यदा-कदा इस योग्यता का अभाव पशु-जगत् में भी मिलता है। अध्ययन के द्वारा विद्वानों को जब यह मालूम हुआ कि मानसिक शक्तियाँ अलग-अलग कार्य नहीं करतीं, वरन् सम्पूर्ण मस्तिष्क एक साथ कार्य करता है तो विद्वानों ने मनोविज्ञान को 'चेतना का विज्ञान'[6] माना। इस परिभाषा पर भी विद्वानों में गम्भीर मतभेद रहा और इसे भी अपूर्ण ठहराया गया, क्योंकि चेतना भी तीन भागों में विभाजित है—(१) चेतन, (२) अर्द्ध-चेतन, और (३) अचेतन। उपर्युक्त विवेचन में चेतना के केवल एक ही अंश पर विचार किया गया था, इसलिए यह प्रयत्न भी असफल रहा।

मनोविज्ञान क्या है ? वर्तमान शताब्दी में इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से दिया है। सी० वुडवर्थ के अनुसार, "मनोविज्ञान वातावरण के अनुसार व्यक्ति के कार्यों का अध्ययन करने वाला विज्ञान

---

1. What is Psychology ? 2. Pure Science. 3. Science of Soul. 4 Science of Mind. 5. Nature. 6. Science of Consciousness.

है।" ई० वाट्सन के अनुसार, "मनोविज्ञान व्यवहार का शुद्ध विज्ञान है।"[2] उपर्युक्त परिभाषाएँ मनोविज्ञान के ऊपर प्रकाश अवश्य डालती हैं किन्तु पूर्ण नहीं हैं। उदाहरण के लिए, वाट्सन की परिभाषा 'मानव तथा पशु के व्यवहार का अध्ययन' में 'साधारण एवं असाधारण मनुष्यों के व्यवहार का अध्ययन' और सम्मिलित होना चाहिए। एक श्रेष्ठ एवं पूर्ण परिभाषा चार्ल्स ई० स्किनर की है। आपके अनुसार, **"मनोविज्ञान जीवन की विविध परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। प्रतिक्रियाओं अथवा व्यवहार से तात्पर्य प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं, समायोजन, कार्यों तथा अनुभवों से है।"**[3]

एक अन्य परिभाषा के अनुसार मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन है, जो वातावरण से समायोजन प्राप्त करने के परिणामस्वरूप होता है। अपने विस्तृत अर्थों में व्यक्ति संकेत देता है एक जैविक प्राणी के, जो मानव अथवा मानव से निम्न स्तर का हो सकता है, व्यवहार का अध्ययन जो गर्भावस्था में बालक के आने से उसकी मृत्यु तक किया जाता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान सब जैविक प्राणियों का अध्ययन उनके विकास के प्रत्येक स्तर पर करता है।

मनोविज्ञान : एक शुद्ध विज्ञान[4]

मनोविज्ञान अब एक शुद्ध विज्ञान माना जाता है। जेम्स ड्रेवर के अनुसार, **"मनोविज्ञान वह शुद्ध विज्ञान है जो मानव तथा पशु के उस व्यवहार का अध्ययन करता है जो व्यवहार उस अन्तर्जगत् के मनोभावों और विचारों की अभिव्यक्ति करता है, *जिसे हम मानसिक जगत् कहते हैं।"*[5]** ड्रेवर के मतानुसार, *"मनोविज्ञान* का उद्देश्य मानव तथा पशु के व्यवहार के कारणों की खोज करना तथा मानव-स्वभाव का भली-भाँति अध्ययन करना है।" ये सभी उपलब्धियाँ 'शुद्ध विज्ञान' की देन हैं।

---

1 "Psychology is the science of the activities of the individual in relation to the environment" —*C Woodworth.*

2. "Psychology is the positive science of behaviour."
—*E Watson*

3. "Psychology deals with responses to any and every kind of situation that life presents. By responses or behaviour is meant all forms of processes, adjustments, activities and expressions of the organism."—Charles, E. Skinner . *Educational Psychology*, p. 1.

4. Psychology as positive Science.

5. "Psychology is positive science which studies the behaviour of men and animals, so far as that behaviour is regarded as an expression of that inner life of thought and feeling which we call mental life." —James Drever : *The Study of Man's Mind.*

मनोविज्ञान मानव तथा पशु के व्यवहार का विश्लेषण करता है। ऐसा करने में वह सदैव वैज्ञानिक विधि को अपनाता है। मानव तथा पशु का व्यवहार उनके मानसिक जीवन पर निर्भर होता है। वस्तुतः व्यवहार अन्तर्जगत् की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र है। इस प्रकार मनोविज्ञान एक शुद्ध विज्ञान के रूप में मस्तिष्क का अध्ययन करता है और मस्तिष्क का अध्ययन, मानव तथा पशु के व्यवहार को समझने के लिए, किया जाता है।

मनोविज्ञान को जब हम 'व्यवहार का विज्ञान' कहते हैं तो इससे हमारा तात्पर्य यह है कि जिस, विज्ञान की विभिन्न [illegible] तथा [illegible] का प्रयोग करती है और उन सिद्धान्तों की खोज करती है जो व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करते हैं। वैज्ञानिक मनोविज्ञान की पाठ्य-वस्तु व्यक्तियों का निरीक्षण किया जाने वाला व्यवहार है। मनोविज्ञान भी उन सब दूसरे विज्ञानों की भाँति ही वैज्ञानिक विधि अपनाती है, समझने[1], पूर्व-सूचना[2] प्राप्त करने तथा नियंत्रण[3] करने की चेष्टा करता है। वैज्ञानिक सर्वप्रथम यह चाहता है कि वह उस घटना को समझ ले जिसके सम्बन्ध में वह अध्ययन कर रहा है। वह यह भी चाहता है कि घटना के सम्बन्ध में पूर्व-सूचना देने के योग्य हो जाय। वह चाहता है कि वह इस प्रकार की पूर्व-सूचना दे सके कि घटना A आम तौर से उस समय होगी जब B और C घटनाएँ होंगी; किन्तु यह कभी भी C की उपस्थिति में नहीं होगी। वैज्ञानिक की सदैव यह इच्छा रहती है कि वह तथ्य अथवा घटना के ऊपर नियंत्रण रख सके। नियंत्रण समझ और पूर्व-सूचना के अनुसरण के रूप में सोचा जाता है। एक मनोवैज्ञानिक की भी इसी प्रकार की इच्छाएँ होती हैं, किन्तु वैज्ञानिक मनोविज्ञान तथा दूसरे वैज्ञानिक अनुशासनों में एक बड़ा अन्तर है। यह अन्तर पाठ्य-वस्तु के चुनाव में है। मनोवैज्ञानिक की मुख्य रुचि व्यवहार के निरीक्षण करने और समझने में है।

व्यवहार से क्या तात्पर्य है ?[4]

अब प्रश्न यह उठता है कि 'व्यवहार' क्या है और इस शब्द से तात्पर्य क्या है ? जब तक इस प्रश्न का सही उत्तर नहीं मिलता, हम मनोविज्ञान के स्वरूप, विषय-विस्तार एवं उसकी शाखाओं के बारे में भली-भाँति जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते। 'मनोविज्ञान' व्यवहार का अध्ययन करता है, अतएव यह 'शुद्ध विज्ञान' तभी माना जा सकता है जब व्यवहार के सही-सही अर्थ को भली-भाँति प्रकट करे, अन्यथा मनोवैज्ञानिक खोजों, निरीक्षणों और परीक्षणों में वैसी स्पष्टता और वैज्ञानिकता नहीं होगी, जैसी कि एक 'प्राकृतिक विज्ञान'[5] में होना आवश्यक है। जेम्स ड्रेवर के

---

1 Understanding 2. Prediction 3 Control

4. What we mean by Behaviour ?

5 Natural Science

मतानुसार, "जीवन की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रति मानव तथा पशु की सम्पूर्ण प्रतिक्रिया ही व्यवहार है।"[1]

समस्त प्राणियों[2] के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) प्राण-रक्षा सम्बन्धी[3], (२) समायोजन सम्बन्धी[4]। प्राण-रक्षा सम्बन्धी कार्य वे कार्य हैं, जो प्राणी के जीवन की रक्षा करते हैं। समायोजन सम्बन्धी कार्य वे कार्य हैं, जो वातावरण के विभिन्न अङ्गों के साथ प्राणी का सामंजस्य स्थापित करते हैं। प्राण-रक्षा सम्बन्धी कार्यों का सम्बन्ध पाचन-प्रणाली[5], रक्त-संचार-प्रणाली[6], हृदय, फेफड़े आदि से होता है। समायोजन सम्बन्धी कार्यों का सम्बन्ध शरीर के तीन प्रमुख अवयव-समूहों से होता है; *यथा*—

१. ग्रहण करने वाले अंग अथवा ग्राहक—आँख, कान, नाक, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियाँ।

२ प्रतिक्रिया दिखाने वाले अंग—मांसपेशियाँ, ग्रन्थियाँ आदि।

३. जोड़ने वाले अंग—मस्तिष्क, नाड़ी-मण्डल और रीढ़ की हड्डी।

जैसे ही हम किसी उद्दीपक[7] को प्राप्त करते हैं, वैसे ही उसके प्रति प्रतिक्रिया होती है। जोड़ने वाले अवयव उद्दीपक तथा तत्सम्बन्धी प्रतिक्रिया मे एकदम सम्पर्क स्थापित करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक आलपिन हमारे हाथ मे चुभो दिया जाय तो इसकी संवेदना जोड़ने वाले अवयवों द्वारा तुरन्त नाड़ी-केन्द्र[8] तक पहुँचाई जाती है और वहाँ से प्रतिक्रिया दिखाने वाले अवयवों तक पहुँचती है, और हम प्रतिक्रिया का अनुभव करते हैं। यद्यपि हमारे व्यवहार का सम्बन्ध मुख्यत इन समायोजन सम्बन्धी कार्यों से ही है, फिर भी प्राण-रक्षा सम्बन्धी कार्यों की उपेक्षा नही की जा सकती।

मनोविज्ञान की शाखाएँ एवं क्षेत्र[9]

मनोविज्ञान वातावरण के विभिन्न अंगो के प्रति प्राणी के व्यवहार का अध्ययन करता है। जीवन के वातावरण की विविध अवस्थाओं के आधार पर मनोविज्ञान की बहुत-सी शाखाएँ होती हैं, जैसे—औद्योगिक मनोविज्ञान[10]—यह औद्योगिक वातावरण मे स्थित मानव के व्यवहार का अध्ययन करता है, शिक्षा-मनोविज्ञान—शैक्षणिक परिस्थितियों[11] मे स्थित मानव के व्यवहार का अध्ययन करता है, आदि।

---

1 "Behaviour is the total response which men or animals make to the situation in the life with which either is confronted"

—*Drever*

2 Organism (जीव, प्राणी). 3. Vital 4 Adaptive. 5 Digestive System 6 Circulatory System 7. Stimulus 8 Nerve Centre 9. Branches of Psychology and Its Scope. 10. Industrial Psychology. 11. Educational Situations

मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ इस प्रकार हैं :

(१) सामान्य मनोविज्ञान[1], (२) असामान्य मनोविज्ञान[2], (३) युवा मनोविज्ञान[3], (४) बाल-मनोविज्ञान[4], (५) मानव-मनोविज्ञान[5], (६) पशु-मनोविज्ञान[6], (७) व्यष्टि-मनोविज्ञान[7], (८) समूह या समाज-मनोविज्ञान[8], (९) शुद्ध मनोविज्ञान[9], (१०) शिक्षा-मनोविज्ञान[10], (११) औद्योगिक मनोविज्ञान, आदि।

हम इन सब शाखाओं के क्षेत्र का वर्णन करेंगे। एक प्रकार से मनोविज्ञान का क्षेत्र इन सब शाखाओं के क्षेत्र से मिलकर बना हुआ है। मनोविज्ञान का क्षेत्र है मानव-व्यवहार, और मानव-व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन विभिन्न शाखाओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

१ **सामान्य मनोविज्ञान**—मनोविज्ञान की इस शाखा में साधारण परिस्थितियों में साधारण मानव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

२ **असामान्य मनोविज्ञान**—इसमें असाधारण व्यक्तियों के व्यवहार का विवेचन होता है। यह उनके विभिन्न मानसिक रोगों,[11] जैसे—मनस्ताप,[12] मनोविक्षिप्ति[13] आदि, का विशेष रूप में गवेषणात्मक अध्ययन करता है।

३ **युवा मनोविज्ञान**—यह मनोविज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करने तक ही सीमित है। बाल-मनोविज्ञान इसके अन्तर्गत नहीं आता।

४. **बाल-मनोविज्ञान**—यह साधारण तथा असाधारण, सभी परिस्थितियों में, बालक के व्यवहार का विशेष अध्ययन करता है।

५ **मानव-मनोविज्ञान**—मनोविज्ञान की इस शाखा में केवल 'मनुष्य' के 'व्यवहार' का अध्ययन किया जाता है। इसका पशु-जगत् के व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं। विविध परिस्थितियों में मानव कैसे विविध प्रकार के और विचित्र व्यवहार करता है, इसकी विशद व्याख्या की जाती है।

६. **पशु-मनोविज्ञान**—इसमें केवल पशुओं के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। यह तुलना के द्वारा मानव-मनोविज्ञान के अध्ययन में भी सहायक होता है।

---

1. Normal Psychology 2 Abnormal Psychology 3. Adult Psychology 4 Child Psychology. 5 Human Psychology. 6 Animal Psychology 7. Individual Psychology 8. Group of Social Psychology 9 Pure Psychology 10 Educational Psychology. 11 Mental Diseases 12. Neurosis 13 Psychosis

७. व्यष्टि-मनोविज्ञान—एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। स्त्री-पुरुष तथा सभी मनुष्यों में कुछ-न-कुछ अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ अवश्य होती हैं। इन्हीं वैयक्तिक विशेषताओं और विभिन्नताओं का अध्ययन करना व्यष्टि-मनोविज्ञान का विषय है।

८. समूह या समाज-मनोविज्ञान—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक वातावरण में जन्म लेने, पालन-पोषण होने और शिक्षा ग्रहण करने से समाज का व्यक्ति के व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में एक व्यक्ति दूसरे के प्रति कैसा व्यवहार करता है, तथा बहुत-से व्यक्ति मिलकर भीड़ या समूह-मनोवृत्ति के रूप में किस प्रकार व्यवहार करते हैं, इन सबका अध्ययन करना समाज-मनोविज्ञान का कार्य है।

९. शुद्ध मनोविज्ञान—मनोविज्ञान की यह शाखा हमें मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त से अवगत कराती है तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान-वृद्धि में सहायता देती है।

१०. शिक्षा-मनोविज्ञान—'शिक्षा' और 'मनोविज्ञान' का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा का उद्देश्य बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब बालक की क्रियाओं का अध्ययन मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से किया जाय और मनोवैज्ञानिक विधि से बालक को शिक्षा दी जाय। शिक्षा-मनोविज्ञान में इन सभी बातों का अध्ययन किया जाता है।

११. औद्योगिक मनोविज्ञान—आधुनिक औद्योगिक जगत् को औद्योगिक मनोविज्ञान की बहुत अधिक आवश्यकता है। औद्योगिक मनोविज्ञान उत्पादन-वृद्धि की समस्या तथा मजदूर-समस्या का गम्भीर अध्ययन कर, उनके हल की ओर संकेत करता है। उत्पादन की वृद्धि का सीधा सम्बन्ध मजदूर-समस्या से है। यदि मजदूर सन्तुष्ट हैं और मनोयोग से अपने कार्य को करते हैं तो निश्चय ही उत्पादन में वृद्धि होगी, अन्यथा नहीं। इन सभी समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण और समाधान औद्योगिक मनोविज्ञान प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. एक मानव-बालक को शिक्षण प्रदान करने की क्यों आवश्यकता है ?

२. एक अध्यापक की शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में मनोविज्ञान का ज्ञान क्यों सहायक होता है ?

३. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

   (अ) मनोविज्ञान १६वीं शती तक…………का विज्ञान माना जाता था।

   (ब) वाटसन के अनुसार मनोविज्ञान…………विज्ञान है।

   (स) समस्त प्राणियों के कार्य दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं (१)…………(२)…………।

   (द) …… …… ……आदि ग्राहक हैं।

४. सत्य अथवा असत्य कथन की जाँच करें—

   (अ) शिक्षण एक सरल प्रक्रिया है। हाँ/नहीं

   (ब) शिक्षक की मुख्य समस्या विषय-ज्ञान सम्बन्धी है। हाँ/नहीं

   (स) मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। हाँ/नहीं

   (द) मनोविज्ञान पुरातन काल में ही एक विद्या विशेष था। हाँ/नहीं

   (य) मनोविज्ञान की खोजों ने मानव-जीवन के रहस्यों को बहुत कुछ खोल दिया है। हाँ/नहीं

२ | शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रकृति, विस्तार, सीमाएँ तथा विधियाँ

NATURE, SCOPE, LIMITATIONS AND METHODS OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY

शिक्षा-मनोविज्ञान मनोविज्ञान की अनुप्रयुक्त[1] शाखा है। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं प्रविधियों का शैक्षिक समस्याओं का हल करने में अनुप्रयोग करने से सम्बन्धित है। इसका मुख्य कार्य उन व्यक्तियों की सहायता करना है जो शैक्षिक कार्य में लगे हैं ताकि उनमें शैक्षिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में अच्छी समझ आ जाये। शिक्षा-मनोविज्ञान मुख्यतः उन व्यावहारिक परिवर्तनों का अध्ययन करता है जो बालकों में विद्यालय के वातावरण में होते हैं। इस प्रकार यह शिक्षक को अपना कार्य करने में बहुत सहायता पहुँचाता है। यह किस प्रकार अपना कार्य सम्पन्न करता है इसकी समझ प्रस्तुत पुस्तक के विभिन्न अध्याय पढ़ने से आ जायेगी। किन्तु यहाँ हम सर्वप्रथम इस ओर प्रकाश डालना चाहेंगे कि शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रकृति, विस्तार तथा सीमाएँ क्या हैं। इसी अध्याय में हम इसके अध्ययन की विधियों का भी वर्णन करेंगे।

शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रकृति[2]

शिक्षा-मनोविज्ञान का प्रारम्भ हम १८८० ई० से मान सकते हैं, यद्यपि पुरातन ग्रीक दार्शनिकों के समय से किसी-न-किसी रूप में इसके सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिए, डिमोक्राइटस[3] ने जो ईसा से पाँच शताब्दी पहले थे, न केवल शिक्षा के लाभों के सम्बन्ध में लिखा है बल्कि इस बात का भी वर्णन किया है कि परिवार का बालक पर क्या प्रभाव पड़ता है। उन्होंने कहा कि पिता का आत्म-नियन्त्रण बालकों को शिक्षण देने में बहुत सहायता करता है। प्लेटो[4] एवं अरस्तू[5] ने भी शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रतिपादित किया तथा इसका सम्बन्ध मनोविज्ञान से स्पष्ट किया। १७वीं शताब्दी में डेकार्टे[6] एवं लॉक[7] का नाम ऐसे दार्शनिकों में लिया

---

1. Applied. 2. Nature of Educational Psychology. 3. Demo-
4. Plato. 5 Aristotle. 6. Descartes. 7. Locke.

जा सकता है जिन्होने मनोविज्ञान के ज्ञान मे अपने विचारो से वृद्धि की। १९वी शताब्दी के प्रारम्भ मे पेस्तालॉजी[1] ने मनोविज्ञान और शिक्षा का बहुत ही सुन्दर ढङ्ग मे सम्मिश्रण किया। उन्होने शिक्षा को व्यक्ति के अन्दर से निकालने की प्रक्रिया कहा। १९वी शताब्दी के मध्य मे हर्बार्ट[2] के विचारो ने शिक्षाशास्त्र को मनोविज्ञान के आधार पर एक नई रूपरेखा दी। किन्तु हम १८८० को इस कारण शिक्षा-मनोविज्ञान के प्रारम्भ मे सम्बन्धित करते हैं कि इसी में गाल्टन[3] महोदय ने साहचर्यवाद[4] सम्बन्धी अपने पहले प्रयोगों को प्रकाशित किया। हाल ने भी अपने प्रथम अध्ययन प्रकाशित किए जिनमे उन्होंने बालको के मस्तिष्क सम्बन्धी अनुसधान प्रश्नावली विधि[5] से किये थे। १८८५ मे ईबिङ्गहाउस[6] महोदय ने अपने स्मृति पर अध्ययन प्रकाशित किये। जेम्स[7] महोदय ने १८९० मे 'प्रिन्सिपल्स आफ सायकोलॉजी'[8] का प्रकाशन किया। उनके द्वारा प्रतिपादित विचारो ने शिक्षा के क्षेत्र मे एक क्रान्ति सी ला दी। कैटेल[9], बिने[10], थार्नडाइक[11] इत्यादि ने भी अपने अध्ययनो द्वारा शिक्षा-मनोविज्ञान के ज्ञान मे बहुत वृद्धि की और इसे एक निश्चित रूपरेखा प्रदान की। इस ओर डेवी[12] के प्रयास भी उल्लेखनीय हैं। इन सब मनोवैज्ञानिको के, जो शिक्षा-शास्त्री भी थे, अध्ययनो, विचारो एव प्रयासो ने शिक्षा-मनोविज्ञान को एक अपना ही रूप दे दिया। यहाँ हमने बहुत से मनोवैज्ञानिको के नामों का उल्लेख नही किया है। इस पुस्तक मे उन मनोवैज्ञानिको के महत्त्वपूर्ण कार्यो का वर्णन उस अध्याय मे दिया गया है जो उनके कार्य-क्षेत्र से सम्बन्धित है।

हमने पिछले अध्याय मे स्पष्ट किया है कि मनोविज्ञान एक विज्ञान है जो मानव-व्यवहार के सब रूपों का अध्ययन करता है। यह मानव-व्यवहार के कारणों से तथा उन सिद्धान्तो से जिनके द्वारा व्यवहार की पूर्व-सूचना प्राप्त की जा सकती है और उसमे रूपान्तर लाया जा सकता है, लगाव रखता है। शिक्षा मे यद्यपि विज्ञान के कुछ पक्ष होते हैं किन्तु मुख्यत यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य व्यवहार मे रूपान्तर लाना है। इस रूप मे शिक्षा और मनोविज्ञान एक समान ही हैं। शिक्षा और मनोविज्ञान के इस सम्मिश्रण मे ही हमे मनोविज्ञान की वह शाखा प्राप्त होती है जिसे हम शिक्षा-मनोविज्ञान कहते हैं। अतएव शिक्षा-मनोविज्ञान मानव-व्यवहार का, जैसा कि उस पर शिक्षा की सामाजिक प्रक्रिया का प्रभाव पड़ता है, अध्ययन है। शिक्षा-मनोविज्ञान उन प्रक्रियाओ का भी अध्ययन करता है जो इस बात की समझ प्रदान करते हैं कि शिक्षा द्वारा व्यवहार मे किस प्रकार रूपान्तर लाये जाते हैं।

---

1. Pestalozzi 2 Herbart 3. Galton. 4 Associationism 5. Questionnaire. 6 Ebbinghause. 7. James. 8. Principles of Psychology. 9. Cattell 10. Binet. 11 Thorndike. 12 Dewey

शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षा को आधार प्रदान करता है। यह ऐसा कर शैक्षि समस्याओं की ओर एक दृष्टिकोण प्रदान करके तथा ऐसी अध्ययन विधियाँ प्रदा करके जिनके द्वारा बालकों तथा उन समस्याओं का जो उनकी शिक्षा में उठ खड़ी होतं हैं, अध्ययन करता है। शिक्षा-मनोविज्ञान मुख्यतः एक दृष्टिकोण, एक सूचना के संगठ एवं एक प्रविधियों और कार्य-प्रणालियों के समूह से प्राथमिक रूप में सरोकार रखत है। यह एक प्रयोग का क्षेत्र है, न कि एक विशिष्ट पाठ्यवस्तु का वर्ग। इस विष द्वारा मनोविज्ञान की पाठ्यवस्तु, प्रविधियाँ तथा कार्य करने के ढङ्ग का प्रयोग कक्ष की समस्याओं को सुलझाने की ओर किया जाता है।

जैसा स्पष्ट ही है, शिक्षा-मनोविज्ञान दो शब्दों से मिलकर बना है—'शिक्ष और 'मनोविज्ञान'। 'मनोविज्ञान' क्या है, इस प्रश्न पर हम पिछले अध्याय में विचा कर चुके हैं। 'शिक्षा' क्या है, अब इस पर भी हमें विचार कर लेना चाहिए।

'शिक्षा' क्या है ?[1]

'शिक्षा' बालक की सर्वाङ्गीण उन्नति का अन्यतम साधन है, उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का सोपान है। 'शिक्षा' बालक में अन्तर्निहित शक्तियों को उभारक उन्हें पूर्ण विकसित करती है। यह वह ज्ञान है जो बालक रूपी हीरे की कल्मष रू बुराइयों को दूर कर, उसके आन्तरिक गुणों को जगमगा देता है, जिसके प्रकाश बालक स्वयं अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है और समाज को भी लाभ पहुँचात है। 'शिक्षा' बालक के व्यवहार का परिष्कार करती है। यह परिष्कार बालक औ समाज दोनों के लिए उपयोगी होता है।

शिक्षा की प्राचीन धारणा—प्राचीन काल में 'शिक्षा' का अर्थ बालक मस्तिष्क को ज्ञान से भरना था। बालक को कुछ तथ्यों और सिद्धान्तों को कण्ठस्थ करना पड़ता था और यही उसकी शिक्षा की इतिश्री मान ली जाती थी। शिक्ष का उद्देश्य ऐहिक जीवन को उन्नत करना न था, बल्कि परलोक सुधारना औ मुक्ति प्राप्त करना था। शिक्षा देने में बालक की आयु, रुचि, योग्यता और रुझान क किंचित् भी महत्त्व नहीं दिया जाता था। शिक्षक का कर्त्तव्य बालक को सूचना भ देना था। शिक्षा बाल-केन्द्रित न होकर ज्ञान-केन्द्रित थी। वही शिक्षा बालक को जाती थी और वही एक प्रौढ़ व्यक्ति को, फलतः बालक का सर्वाङ्गीण विकास नहीं पाता था। किन्तु आजकल शिक्षा की प्राचीन धारणा बदल गई है। आज हम 'शिक्षा शब्द का प्रयोग नये अर्थ में करते हैं, जो पुराने से सर्वथा भिन्न और वैज्ञानिक है अतः हमें शिक्षा के नये अर्थ को भी भली-भाँति समझ लेना चाहिए, अन्यथा शिक्ष क्या है, इस प्रश्न का उत्तर अधूरा ही रहेगा।

---

1. What is Education ?

'शिक्षा' का नया अर्थ[1]

आधुनिक काल में 'शिक्षा' का तात्पर्य उपदेश या सूचना[2] देना नहीं माना जाता, और न काल्पनिक सुदूर भविष्य को ध्यान मे रखकर ही बालक को शिक्षा दी जाती है। आज शिक्षा का उद्देश्य बालक के वर्तमान का निर्माण करना है, बालक के जीवन की प्रत्येक अवस्था मे उसके अभिवर्द्धन[3] और विकास[4] मे सहायता करना है। "शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया की एक स्थिति है, जिसका उद्देश्य समाज के सदस्यो को आजीवन अपने वर्ग मे रहने के योग्य बनाना है।" आज शिक्षा का अर्थ कठिन परिश्रम करने के रूप मे नही दिया जाता, शिक्षा ग्रहण करना तो एक आनन्दपूर्ण प्रक्रिया समझी जाती है। बालक नई वस्तुओ को सीखने मे आनन्दानुभव करता है। शिक्षा प्राप्त करने मे आनन्द की इस अभिवृत्ति[5] का होना परम आवश्यक है।

शिक्षा की प्रक्रिया[6] मे बालक अब एक सक्रिय कार्यकर्त्ता माना जाता है। पहले इसका स्थान एक निष्क्रिय श्रोता के रूप मे था। किन्तु यह शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण थी। आज विद्यार्थी को बहुत-सी बातें सीखनी होती हैं। अध्यापक तो एक सहायक और पथ-प्रदर्शक के रूप में होता है, वह नियम बनाने वाली मशीन नही होता। अध्यापक का व्यवहार बालकों के प्रति रुक्ष न होकर मित्र की तरह मृदुल और सहानुभूतिपूर्ण होता है। अध्यापक का कर्त्तव्य बालको के सामने ऐसी समस्याओं को प्रस्तुत करना है, जिनके हल करने मे बालक सक्रिय बना रहता है और आनन्द प्राप्त करता है। शिक्षा बालक को नये-नये अनुभवों से अवगत कराती है तथा वातावरण से सामजस्य स्थापित करने मे सहायता देती है। शिक्षा स्वभाव से ही गतिशील है तथा 'सीखने'[7] आदि क्रियाओ मे बालक की ज्ञानाभिवृद्धि करती है।

आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करना है। पाठशाला और अध्यापक का कार्य ऐसे अनुकूल वातावरण को उपस्थित करना है जहाँ बालक व्यक्तित्व का विकास स्वतन्त्र और पूर्ण रूप से हो सके। किसी प्रकार का भी अवदमन[8] न हो, जिससे बालक मे भावना-ग्रन्थियाँ न बन सकें। यह है शिक्षा का नया अर्थ, किन्तु यह नई व्याख्या मनोविज्ञान के ज्ञान पर ही निर्भर है। अत **शिक्षा-मनोविज्ञान वह मनोवैज्ञानिक ज्ञान है जो शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ का विवेचन, विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत करता है।**

शिक्षा की नई व्याख्या मनोविज्ञान के ज्ञान पर कहाँ तक निर्भर है ?[9]

२०वी शताब्दी मे मनोविज्ञान का गहन अध्ययन हुआ। इसी गहन अध्ययन और मनोविज्ञान के विस्तृत ज्ञान के आधार पर शिक्षा की भी नई व्याख्या की गई,

---

1. The new meaning of Education 2 Information. 3. Growth. 4. Development 5. Attitude. 6. Process of Education. 7. Learning. 8. Repression 9. How modern coneption of Education is dependent on the knowledge of Psychology ?

उसका नया अर्थ किया गया। मनोविज्ञान हमें बताता है कि बालक की आवश्यकताएँ युवा और प्रौढ़ व्यक्तियों से भिन्न होती है, इसलिए बालक की शिक्षा उसकी अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए। मनोविज्ञान ने व्यक्ति के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, विविध स्थितियों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है, जिससे आधुनिक काल मे शिक्षा की धारणा मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। उदाहरण के तौर पर, मनोविज्ञान के ज्ञान से ही हमें यह ज्ञान होता है कि बाल्यकाल मे खेल-प्रवृत्ति का प्राधान्य होता है। इसलिए बालक की शिक्षा मे खेल-प्रणाली ही सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति के अन्दर 'व्यावहारिक परिवर्तन'[1] लाये जाते हैं। मनोविज्ञान का सम्बन्ध इन्ही व्यावहारिक परिवर्तनों से है, जो व्यक्ति मे शिक्षा के माध्यम से आते हैं। अतः हम देखते हैं कि शिक्षा और मनोविज्ञान मे घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि दोनों का सम्बन्ध 'व्यवहार' से है। शिक्षा के द्वारा बालक के व्यवहार मे इष्ट परिवर्तन लाने के लिए यह आवश्यक है कि बालक के संवेगात्मक, बौद्धिक और सामाजिक वातावरण का अध्ययन किया जाय। ये सभी बातें मनोविज्ञान की विषय-वस्तु के अन्तर्गत आती हैं। अत. मनोविज्ञान का अध्ययन उन लोगो के लिए अत्यन्त आवश्यक है जो शिक्षण-कार्य से सम्बन्धित हैं। मनोविज्ञान की जानकारी के बिना सफल शिक्षण और सम्यक् शिक्षा सम्भव नही।

मनोविज्ञान का शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग में महत्त्व[2]

शिक्षा के सिद्धान्त के द्वारा हम शिक्षा के उद्देश्य और उसके विषय-विस्तार का ज्ञान प्राप्त करते हैं। मनोविज्ञान इन उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायता पहुँचाता है तथा हमे यह भी बताता है कि बालक की शिक्षा कब, कैसे और किस अवस्था मे प्रारम्भ होनी चाहिए, *तथा किस प्रकार की होनी चाहिए ? मनोविज्ञान ही हमें यह* बताता है कि "सोचने की सर्वश्रेष्ठ विधि कौनसी है ? विषय-वस्तु को शीघ्र और रोचक ढङ्ग से कैसे याद किया जा सकता है ? बालक के चरित्र का सर्वोत्तम विकास कैसे हो सकता है ? रेखागणित की शिक्षा कब सर्वाधिक उपयोगी होती है ? बालक को किस अवस्था मे किस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए ?"

१. मनोविज्ञान शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहायता देता है[3]

मनोविज्ञान के ज्ञान के बिना शिक्षा के उद्देश्यों की बात करना सम्भव नही। स्किनर[4] के अनुसार, "शिक्षा-मनोविज्ञान आजकल शिक्षक के जीवन को ज्ञान से समृद्ध कर तथा उसकी शिक्षण-विधि को उन्नत बनाकर उसे उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता पहुँचाता है।"

---

1 Behaviourial Changes. 2. Importance of Psychology for Educational Theory & Practice 3. Psychology helps in the realization of educational aims. 4 Skinner.

बालक के मनोभावों, विचारों और मनोवृत्तियों के प्रति गहरी सूझ होने से शिक्षक अपने निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बालकों में इच्छित परिवर्तन लाने में सफल होता है। यह सूझ अध्यापक को मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा ही प्राप्त होती है। इसी प्रकार शिक्षा-मनोविज्ञान के ज्ञान के द्वारा वह शिक्षण-विधि की नवीन और उन्नत पद्धतियों को सीखता है।

२. मनोविज्ञान नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है[1]

कभी-कभी हम निर्धारित परिस्थितियों में भी जब बालक का विकास नहीं देखते तो बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि यह कहा जाय कि "रमेश पाठशाला में बहुत अधिक खेलता है, उसने कुछ भी नहीं सीखा है," तो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह कथन अशुद्ध है। मनोविज्ञान हमें यह बताता है कि रमेश ने खेलते समय कुछ न कुछ अवश्य सीखा होगा। यह बात दूसरी है कि उसने जो कुछ सीखा, वह उपयोगी था अथवा हानिकारक। अतः रमेश के सीखने के विषय में हम जो कुछ कहते हैं, उस कथन में थोड़ा-सा संशोधन होना चाहिए कि "रमेश ने अमुक विषय में कुछ भी नहीं सीखा अथवा अमुक विषय में उसका ज्ञान केवल प्रारम्भिक है।" इस प्रकार मनोविज्ञान शिक्षा के बारे में एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। शिक्षा के इस नये सिद्धान्त के फलस्वरूप आजकल बालक की शिक्षा में सहगामी क्रियाओं[2] पर अधिक बल दिया जाता है और उन्हें पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं[3] के समान ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

३. मनोविज्ञान और अनुशासन[4]

हम लोग प्रायः अपने अपूर्ण दृष्टिकोण के कारण दूसरे लोगों के बारे में भ्रान्त धारणा बना लेते हैं। हम यह भी देखते हैं कि विद्यार्थियों के व्यवहार करने का एक विशेष ढङ्ग होता है। उनके व्यवहार का अर्थ हम अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही लगाते हैं। कल्पना कीजिए, 'रमेश' कक्षा में बहुत अधिक बात करता है, जिससे अनुशासन-हीनता पैदा होती है। फलस्वरूप, अध्यापक परेशान होकर झुँझला उठता है। ऐसी परिस्थिति में अध्यापक का यही कथन होगा कि "रमेश एक नीच कुल में पैदा हुआ है, उससे शिष्ट व्यवहार की आशा करना दुराशा मात्र है।" किन्तु मनोविज्ञान हमें यह बताता है कि अध्यापक की यह धारणा अशुद्ध है। वह रमेश के आचरण की व्याख्या अपनी वैयक्तिक धारणा के अनुसार कर रहा है कि "जो व्यक्ति नीच कुल में जन्म लेता है, उसका दृष्टिकोण सदैव संकीर्ण होता है।" किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। यद्यपि वातावरण का प्रभाव बालक के व्यवहार पर बहुत अधिक पड़ता है, फिर भी वह उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण नहीं करता। नीच

---

1. Psychology offers new viewpoints. 2. Co-curricular Activities. 3 Curricular Activities. 4. Psychology and Discipline.

कुल मे उत्पन्न होने वाले बालक का व्यवहार भी भद्र हो सकता है। वास्तव मे रमेश की अनुशासन-हीनता का कारण उसके पारिवारिक वातावरण मे न होकर, उसमे स्वयं में हो सकता है। वह एक प्रतिभावान् छात्र भी हो सकता है, जो अपनी प्रतिभा की स्वीकृति अपने सहपाठियो से चाहता है, किन्तु उसमे बाधा पडने पर वह प्रतिक्रिया-स्वरूप बातचीत करता और अनुचित कार्यों को अपनाता है। कक्षा के निर्धारित नियमो को न मानने का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए, और प्रायः यह कारण विद्यार्थी के व्यक्तित्व मे ही निहित होता है। मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा ही हम इस नवीन तथ्य तक आ सके, और उसी के द्वारा हम रमेश की अनुशासन सम्बन्धी समस्या का हल प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार मनोविज्ञान हमे अपराधी तथा पिछड़े हुए बालको की समस्याओ के उपयुक्त समाधान खोजने मे मदद देता है। मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा हम अनुशासन-हीनता जैसी जटिल समस्याओ को बिना अवदमन के, मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से सुलझाने मे सफल होते है तथा बालक के मन मे मनोग्रन्थियाँ पडने से उसे बचा लेते हैं।

४. मनोविज्ञान और विविध शिक्षा-प्रणालियाँ[1]

बहुत-से अध्यापको का यह विचार है कि अध्यापन एक बहुत ही सरल कार्य है। यदि आपको अपने विषय का पूर्ण ज्ञान है और आप अपने धारावाहिक भाषण के द्वारा प्रवाहपूर्ण और प्रभावोत्पादक भाषा मे उसे अभिव्यक्त करने मे सिद्धहस्त हैं तो उनके दृष्टिकोण से आप अच्छे अध्यापक हैं। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अशुद्ध[2] है। मनोवैज्ञानिक शिक्षण मे बालकों की अभिक्षमता[3], रुचि[4], रुझान[5] तथा योग्यता[6] का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। मनोविज्ञान हमे यह बताता है कि जब तक आप अपने विद्यार्थियो मे 'सीखने' के प्रति रुचि उत्पन्न नही करेंगे, तब तक आप इस पाठ अथवा विषय को पढ़ाने मे सफल नहीं हो सकते। साथ ही अध्यापक को अपने गम्भीर अध्ययन और विशद ज्ञान के आधार पर बालको को नही पढ़ाना है, वरन् उसे बालक के मानसिक स्तर तक आकर, उसकी आवश्यकताओ को समझ कर उसे सिखाना होता है। इस विचारधारा से अनुप्राणित होकर, आज तक बहुत-सी नई शिक्षा-प्रणालियाँ प्रारम्भ हुई हैं। ये सभी प्रणालियाँ थोडे-बहुत अन्तर से शुद्ध मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित हैं, जैसे—मॉन्टेसरी प्रणाली[7], किण्डरगार्टेन[8], प्रोजेक्ट प्रणाली[9], ह्यूरिस्टिक पद्धति[10]—जिनमे बालकों के स्वभाव का पूर्ण अध्ययन कर शिक्षा दी जाती है।

---

1. Psychology and different Methods of Teaching. 2 Wrong 3. Attitude. 4. Interest. 5. Aptitude. 6. Ability. 7. Montessori System. 8. Kindergarten 9. Project Method. 10. *Heuristic* Method.
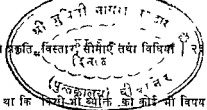
५. मनोविज्ञान और व्यष्टिगत भेद[1]

पहले लोगो का यह विचार था कि किसी भी व्यक्ति को कोई भी विषय पढ़ाया जा सकता है, किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान इस सिद्धान्त का खण्डन करता है और वैयक्तिक भेद पर विशेष बल देता है। मनोविज्ञान बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं का अध्ययन कर विभिन्न प्रकार की रुचि, योग्यता और रुझान वाले बालकों के लिए उपयुक्त शिक्षण की व्यवस्था करता है। मनोविज्ञान हमे यह बताता है कि कक्षा के एक मन्द बालक को किसी विषय के कठिन सिद्धान्तो को नही पढ़ाया जा सकता। एक मन्द बालक शिक्षा के शास्त्रीय ज्ञान मे सदैव पिछड़ा रहेगा, किन्तु यह सम्भव हो सकता है कि वह शारीरिक और सामाजिक कार्यों मे अग्रणी हो। अत इन वैयक्तिक भेदो के आधार पर ही मन्द[2], पिछड़े[3] तथा दोषयुक्त बालकों[4] के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षण-सस्थाएँ खुल रही हैं।

६. मनोविज्ञान और समूह[5]

आधुनिक मनोविज्ञान मे समूह-मन[6] का भी अध्ययन किया जाता है। समाज अथवा वर्ग का व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी भी विशद् व्याख्या की जाती है। बालक की शिक्षा मे सामाजिक और समूह-मनोवृत्ति के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इसी आधार पर मनोविज्ञान 'पाठशाला' को एक स्वस्थ समूह बनाने तथा स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करने मे सहायता देता है।

७. मनोविज्ञान और बालक के विकास की अवस्थाएँ[7]

मनोविज्ञान बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओ का अध्ययन कर शिक्षक को यह बताता है कि 'कब' और 'किस' अवस्था मे बालक को 'क्या' और 'कैसे' सिखाना चाहिए। एक ५ और ६ वर्ष के बालक के लिए सुरक्षा की आवश्यकता होती है। उसकी खेल मे रुचि होती है, वह दूसरे बच्चो का साथ चाहता है। शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि बालक के विकास की इस विशिष्ट अवस्था पर उसकी विशिष्ट आवश्यकताओ की पूर्ति करे। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है, उसकी आवश्यकताएँ भी बदलती जाती हैं। इन्हो बदलती हुई आवश्यकताओ के अनुरूप बालक के शिक्षा-प्रकार मे और विधि मे भी परिवर्तन होना चाहिए। मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा शिक्षक बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओ से भली-भाँति परिचित हो जाता है और उसी के अनुरूप शिक्षा देता है। आधुनिक शिक्षा बालक के विकास की अवस्थाओ के अनुकूल अध्यापन-विधि और सीखने [illegible] वातावरण उपस्थित करती है।

---

1. Psyc[illegible] Dull. 3. Back-
war[illegible] [illegible] and Group.
[illegible] Development of

८. मनोविज्ञान बाल-केन्द्रित शिक्षा पर अधिक बल देता है[1]

मनोविज्ञान हमें यह बताता है कि शिक्षा में बालक का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में विद्यार्थी का स्थान 'गौण' था और ज्ञान तथा अध्यापक व 'प्रधान'। आज विद्यार्थी का स्थान शिक्षा में प्रमुख माना जाता है, अध्यापक तो केव एक पथ-प्रदर्शक के रूप में होता है। उसे बालक की रुचि, संवेग और मनोभावों क अध्ययन करके शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। तभी बालक को सम्यक् शिक्षा मिलन है। आज शिक्षा का विषय 'बालक का अध्ययन करना और उसकी आवश्यकता वे अनुकूल सामग्री जुटाना' है। शिक्षा एक ऐसी दुहरी प्रक्रिया है, जिसमें विद्यार्थी औ अध्यापक का अलग-अलग महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु शिक्षा का साध्य 'बालक' ह होता है और साधन 'अध्यापक'। इसीलिए शिक्षा में बालक को प्रमुख स्थान दिय जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि मनोविज्ञान ने आजकल शिक्षा के क्षे में क्रान्ति ला दी है। शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं के बारे में आज हमें पूर्ण और सम्यक जानकारी प्राप्त है तथा उन समस्याओं के निदान और हल प्रस्तुत करने में भी हम पूर्ण समर्थ हैं।

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार[2]

अभी हमने देखा कि आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का कितन महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे हम शिक्षा-मनोविज्ञान[3] की उपयोगिता का मूल्यांकन क सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में पहले हम शैक्षणिक परिस्थितियों[4] का मनोवैज्ञानि अध्ययन नहीं करते थे। वस्तुतः हम उनसे अनभिज्ञ थे। 'परिस्थितियों' से हमार तात्पर्य सभी कारणों के योगफल[5] से अथवा शक्ति के सभी रूपों[6] अथवा सम्पूर्ण वातावरण के ऐसे अङ्ग[7] से है जो समय-विशेष में व्यक्ति के अन्दर विशेष प्रतिक्रिय लाते हैं।

शैक्षणिक परिस्थितियों से तात्पर्य अध्यापन के सभी उपकरणों और शिक्षा वे साधनों[8] से है। शिक्षा-उपकरणों के अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति और वस्तुएँ आती हैं जो उसके वातावरण के अन्दर मौजूद होती हैं, जैसे—भाषा, चित्र और उदाहरण इत्यादि। शिक्षा के साधनों के अन्तर्गत कुटुम्ब, समाज, समुदाय, धर्म, रेडियो, सिनेमा *टेलीविजन आदि सभी आते हैं। शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार ही उपयुक्त औ* वैज्ञानिक आधार है। शिक्षा के इस सिद्धान्त को आज पूर्ण मान्यता मिल चुकी है

---

1. Psychology emphasizes the Child-centered Education 2. Psychological Basis of Education 3. Educational Psychology 4. Educational Situation. 5. Sum-total of factors. 6. Forms of energy 7. Part of the total environment. 8. Agencies.

शिक्षा के दार्शनिक आधार से हम शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं तथा शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार से हम उन उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों को सीखते हैं।

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक आधार के गृहीत होने से हमारा शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण बिलकुल बदल गया है। पुरातन की अपेक्षा आज शिक्षा एक अत्यन्त आनन्ददायी क्रिया है, यह बालक को उसकी रुचि और आवश्यकताओं के अनुसार ही दी जाती है। पहले शिक्षा का अर्थ बालक को उपदेश और ज्ञान की सूचना मात्र देना था, अब शिक्षा का अर्थ बालक की सहायता करना और उचित मार्ग-प्रदर्शन करना है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में प्रेम, सहानुभूति, खेल और वैयक्तिक भेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि शिक्षा-मनोविज्ञान पर भी आवश्यकता से अधिक बल नहीं दिया जा सकता, फिर भी एक सफल अध्यापक के लिए इसकी जानकारी परम आवश्यक है। आइए, अब शिक्षा-मनोविज्ञान के उद्देश्यों पर भी विचार करें।

शिक्षा-मनोविज्ञान के उद्देश्य[1]

शिक्षा मनोविज्ञान का उद्देश्य बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था में कुशल आत्म-निर्देश की योग्यता-वृद्धि तथा विविध सामाजिक कार्यों में भेद-बुद्धि की वृद्धि के द्वारा व्यक्तित्व का अभिवर्द्धन[2] और उसका सन्तुलित विकास करना तथा मानव-स्वभाव को समझने में अध्यापक की सहायता करना है। मानव-स्वभाव के ज्ञान के द्वारा अध्यापक बालकों को उचित निर्देश देने और उसका पथ-प्रदर्शन करने में सफल होता है। उचित मार्ग-प्रदर्शन मिलने पर बालक सामाजिक परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने और सामाजिक दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह करने में सफल होता है। अत: शिक्षा-मनोविज्ञान का उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व का अभिवर्द्धन और संतुलित विकास करना तथा बालकों में सदाचार की भावना को विकसित करना है।

शिक्षा-मनोविज्ञान का उद्देश्य अध्यापक को तथ्यों[3] और सामान्यीकरण[4] से अवगत कराकर उसके कार्य में सहायता देना है, जिससे वह बालक को उसके सन्तुलित व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता दे सके।

कक्षा-अध्यापक के लिए शिक्षा-मनोविज्ञान का महत्त्व[5]

(१) शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक को शैक्षणिक समस्याओं के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा उपयुक्त अध्यापन-विधि से अवगत कराता है। अध्यापक शिक्षा-मनोविज्ञान के द्वारा यह जानकारी प्राप्त करता है कि बालक किस सीमा तक शिक्षा का अर्जन कर सकता है तथा किस सीमा तक उसका सामाजिक

---

1. Aims of Educational Psychology. 2. Growth 3. Facts. 4. Generalization. 5. Importance of Educational Psychology for the Class-room Teacher.

व्यवहार सुधारा जा सकता है, और कभी तब उसके व्यक्तित्व का समायोजन[1] किया जा सकता है।

(२) यह अध्यापक को बालक के विकास के लिए उपयुक्त शिक्षण-वातावरण उपस्थित करने में सहायता देता है, जिससे शिक्षार्थी की उन्नति के लिए बालक के व्यवहार में इष्ट परिवर्तन लाया जा सके। अध्यापक ऐसी पाठ्यवस्तु और अध्यापन-विधि को चुनता है जिससे बालक के व्यवहार में इष्ट परिवर्तन लाया जा सके और वह कुशलतापूर्वक हो सके।

(३) बालक के व्यवहार का उचित रूप समझने और उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने में शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक की सहायता देता है। जो अध्यापक बालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और निष्पक्ष[2] होता है, वही उसके व्यवहार का समझ और सूक्ष्म विश्लेषण कर सकता है तथा उसे सुधारने के लिए उपयुक्त विधियाँ अपना सकता है।

(४) शिक्षा-मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त अन्तर्दृष्टि[3] से अध्यापक बालक की मानसिक योग्यता, रुचि और स्वभाव के अनुसार उसके लिए विषय-वस्तु चुनता है और उसके शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था करता है।

(५) शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक को यह अनुभव करने में सहायता प्रदान करता है कि शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्त्व है। इसलिए अध्यापक ऐसे उपयुक्त कार्यों का आयोजन करता है, जिससे बालकों में सामाजिक भावना का विकास हो। वह विद्यार्थियों को सामूहिक कार्यों में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित करता है और उन्हें सहयोग देता है।

(६) शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक को अपने कार्य-भार और उत्तरदायित्व को भली-भाँति समझने में सहायता देता है। यह अध्यापक को ऐसी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है जिससे वह अपने कार्य में आने वाली समस्याओं का भली-भाँति सामना कर उनका निदान ढूँढ़ सके। इस अन्तर्दृष्टि से अध्यापक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आता है, जिससे वह शिक्षण-कार्य में आगत समस्याओं को सुलझाता और उनका सही हल ढूँढ़ता है।

(७) शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक को ऐसी पद्धतियों[4] और प्रविधियों[5] से अवगत कराता है, जिनके द्वारा वह अपने और दूसरे के व्यवहार का विश्लेषण[6] कर सके। यह विश्लेषण उसके व्यक्तित्व के समायोजन के लिए परम आवश्यक है। वह दूसरों को भी उनके व्यक्तित्व की अभिवृद्धि और समायोजन में सहायता पहुँचा सकता है।

---

1. Adjustment. 2. Impartial. 3. Insight. 4. Methods. 5. Techniques. 6. Analysis.

(८) व्यष्टिगत भेद का ध्यान रखते हुए बालकों को उचित मार्ग-प्रदर्शन करने और उपयुक्त कार्यक्रमों[1] के लिए सामग्री जुटाने में शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक को सहायता पहुँचाता है।

(९) शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षा-संस्थाओं के प्रबन्धकों को प्रबन्ध और नियोजन के कार्यों में मार्ग-प्रदर्शित करता है तथा शिक्षण की व्यवस्था करने में मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है।

(१०) शिक्षा-मनोविज्ञान अध्यापक को उन उत्कृष्ट विधियों से अवगत कराता है, जिनके द्वारा बालक की उपलब्धियों की माप[2] और उनका मूल्याङ्कन[3] सोद्देश्य किया जाता है, तथा बालक की सहज-प्रज्ञा[4] का भी सही-सही आकलन किया जा सकता है।

(११ यह बालक को शिक्षा देने की उत्तम विधियों से अध्यापक को सुसज्जित करता है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे अपनाने के लिए संकेत करता है।

शिक्षा-मनोविज्ञान की किसी भी पुस्तक में लेखक का प्रायः यही प्रयास रहता है कि वह मनोविज्ञान के तथ्यों और सामान्यीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत करे, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों की योग्यताओं एवं कुशलताओं में वृद्धि हो। प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसका अपवाद नहीं है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का विषय-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है।

शिक्षा-मनोविज्ञान की संभावित सीमाएँ[5]

एक शिक्षक केवल शिक्षा-मनोविज्ञान का ज्ञान पुस्तकों से प्राप्त करके एक व्यवहार-कुशल मनोवैज्ञानिक अथवा योग्य अध्यापक नहीं बन सकता है। योग्य अध्यापक बनने के लिए उसको रुचि, मनोवृत्ति, अभ्यास एवं अनुभव की आवश्यकता है। शिक्षा-मनोविज्ञान तो केवल उसे सूचना एवं ज्ञान प्रदान करेगा, उसकी योग्यता में वृद्धि उसके अपने अनुभव इत्यादि पर निर्भर होगी। अतएव शिक्षा-मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि शिक्षण की प्रकृति ऐसी है कि उसमें ज्ञान, सूचना, तथ्यों के संकलन के अतिरिक्त भी अन्य बातों की आवश्यकता है।

शिक्षा-मनोविज्ञान की दूसरी सीमा इसके वैज्ञानिक रूप के कारण है। विज्ञान से तथ्य तो प्रकाश में आते हैं, किन्तु उसके द्वारा अन्तिम निर्णय नहीं लिये जा सकते। जैसे, विज्ञान द्वारा अणु-शक्ति के उत्पादन इत्यादि का ज्ञान तो प्राप्त हो जाता है; किन्तु इस शक्ति का प्रयोग कैसे हो, इसका निर्णय [illegible] मिलकर सामाजिक शास्त्रों एवं मानव-कल्याण से सम्बन्धित [illegible] है। शिक्षा-मनो-

---

1. [illegible] intelligence [illegible] n. 4. Native Psychology.

मनोवृत्ति इत्यादि एक शिक्षक के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितना कि मनोविज्ञान का ज्ञान। (२) शिक्षा-मनोविज्ञान विज्ञान की इस सीमा से सीमित है कि तथ्यों की सत्यता की जाँच अथवा नये तथ्यों का पता लगाना—निर्णय करने में केवल सहायक होते हैं, न कि निर्णय को अन्तिम रूप से निर्धारित करने में। एवं (३) शिक्षा-मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की सीमा से सीमित है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आधुनिक पद्धतियाँ[1]

आधुनिक युग में अध्ययन के लिए मनोविज्ञान वैज्ञानिक पद्धतियों का सहारा लेता है। वैज्ञानिक अनुसंधान और खोजों का आधार यथार्थ, वस्तुनिष्ठ[2] और सत्याप्य[3] होता है। दक्ष वैज्ञानिक, प्रयोगों तथा परीक्षणों द्वारा सही तथ्यों को प्राप्त करके अनुसंधान करते हैं। वैज्ञानिक एक तटस्थ किन्तु कुशल निरीक्षक के समान प्रयोग द्वारा तथ्यों को संकलित करता और नियम बनाता है। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति द्वारा निकाले गये निष्कर्ष सदैव सही और विश्वसनीय होते हैं। वैज्ञानिक कोई पूर्वधारणा लेकर नहीं चलता, वह तो यथार्थ के निरीक्षण से ही तथ्यों को प्राप्त करता, उनकी व्याख्या करता और नियम बनाता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों के सिद्धान्तों के आधार पर ही मनोविज्ञान की आधार-सामग्री[4] को संकलित किया जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान के ज्ञान-भण्डार को वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा और अधिक समृद्ध बनाया जाता है।

आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ता वैज्ञानिक पद्धतियों को विविध प्रकार से प्रयोग में लाते हैं। इन पद्धतियों का प्रयोग अनुसंधान की ठीक-ठीक विधि, समस्या के स्वरूप, उनके उद्देश्य और अनुसंधानकर्त्ता के साधन-सम्पन्न होने पर अवलम्बित है। आधुनिक युग में अध्ययन की नयी-नयी पद्धतियों का आविष्कार होता जा रहा है। ये अभिनव पद्धतियाँ पुरानी पद्धतियों से कहीं अधिक सही और वैज्ञानिक हैं। आज मनोविज्ञान द्वारा जिन अभिनव पद्धतियों को अपनाया जाता है, वे कई प्रकार की हैं—(१) **निरीक्षण पद्धतियाँ**;[5] (२) **प्रयोगात्मक पद्धतियाँ**,[6] (३) **विवरण पद्धतियाँ**[7]। मनोविज्ञान में निरीक्षण पद्धतियाँ दो प्रकार की हो सकती हैं .

(१) अन्तर्दर्शन पद्धति,[8] और (२) बहिर्दर्शन पद्धति[9]।

जब मनोवैज्ञानिक अपनी स्वयं की मानसिक दशा का निरीक्षण करता है तो यह विधि 'अन्तर्दर्शन पद्धति' कहलाती है, और जब वह दूसरे के व्यवहार तथा उसकी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है तो 'बहिर्दर्शन पद्धति' कहलाती है।

---

1. Modern Methods of Psychological Study. 2 Objective. 3. Verifiable. 4. Data. 5. Methods of Observation 6. Experimental Methods. 7. Methods of Exposition. 8. Introspection or Subjective Observation. 9. Extrospection or Objective Observation.

१. अन्तर्दर्शन पद्धति[1]

अध्ययन की यह पद्धति मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्राचीन काल में बहुत अधिक अपनायी जाती थी, किन्तु आधुनिक काल में यह वैज्ञानिक नहीं मानी जाती। इसलिए इसका प्रयोग अब बहुत कम हो गया है। आधुनिक मनोविज्ञान एक शुद्ध विज्ञान माना जाता है, अतएव उसकी पद्धतियाँ भी पूर्ण वैज्ञानिक होनी चाहिए। इस पद्धति में वास्तविक वैज्ञानिकता का अभाव है, इसी कारण यह उतनी मान्य और प्रामाणिक नहीं समझी जाती।

अन्तर्दर्शन का अर्थ—टिचनर के अनुसार, "अपने भीतर से देखना अन्तर्दर्शन है",[2] जबकि एंजिल के अनुसार, "अन्तः प्रेक्षण ही अन्तर्दर्शन है।"[3] अन्तर्दर्शन में व्यक्ति स्वयं अपनी मानसिक स्थिति का अध्ययन करता है तथा अपनी स्वयं की मानसिक क्रियाओं का निरीक्षण करता है। स्टाउट का कथन है—"अपने मस्तिष्क के कार्य-व्यापारों का एक क्रमबद्ध रीति से अध्ययन करना ही अन्तर्दर्शन है।"[4] अन्तर्दर्शन का अर्थ निरीक्षण है, किन्तु वुडवर्थ के शब्दों में यह "आत्म-निरीक्षण"[5] है। वुडवर्थ की यह व्याख्या अधिक स्पष्ट और समीचीन है।

अन्तर्दर्शन की विशेषताएँ—अन्तर्दर्शन-पद्धति में वस्तुतः आत्म-निरीक्षण ही किया जाता है, इसीलिए उसी के आधार पर अन्तर्दर्शन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

१. विषयी[6] को अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का स्वयं निरीक्षण करना पड़ता है।
२. विषयी अपने मस्तिष्क के बारे में शीघ्र अन्तर्दृष्टि-प्रधान एवं सम्यक् जानकारी प्राप्त करता है।
३. विषयी को स्वयं अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण करना पड़ता है, इसलिए वह उनके सम्बन्ध में कोई धारणा केवल अनुमान के आधार पर नहीं बना सकता है।

अन्तर्दर्शन पद्धति के दोष—अन्तर्दर्शन में विषय[7] और विषयी, दोनों एक ही व्यक्ति होते हैं, इसलिए यह विषयी के मस्तिष्क में एक बाधा उत्पन्न करती है, क्योंकि वही अध्ययन करने वाला होता है। इस पद्धति में मस्तिष्क को स्वयं अपना ही अध्ययन करना पड़ता है, अतः वह दो भागों में विभाजित हो जाता है, प्रथम—वह जो अध्ययन करता है, और दूसरा—वह जिसका अध्ययन किया जाता है। इस समय अन्तर्दर्शन में जो वास्तविक और व्यावहारिक कठिनाई आती है, वह यह है

---

1. Introspection.
2. "Introspection is looking within."—*Tichener*.
3. "Looking inward"—*Angel*.
4. "To introspect is to attend to the working of one's own mind in a systematic way."—*Stout*.
5. Self-observation. 6. Subject. 7. Object.

कि मानसिक अनुभूति, जिसका अध्ययन हो रहा है, कभी-कभी मस्तिष्क के अवधान को इतना आकर्षित कर लेती है कि मस्तिष्क अनुभव करना बन्द कर देता है। जब आप चिन्तन करते हैं और अन्तर्दर्शन द्वारा उस चिन्तन का अध्ययन करना चाहते हैं, उस समय प्रायः ऐसा देखा गया है कि मस्तिष्क चिन्तन करना बन्द कर देता है, क्योंकि आपके मस्तिष्क का अवधान चिन्तन पर केन्द्रित न होकर अध्ययन करने पर केन्द्रित हो जाता है। यह बात भावों और संवेगों के बारे में पूर्णतः सत्य है। मान लीजिए, आप अपने 'भय' के संवेगों का अध्ययन करना चाहते हैं, लेकिन जैसे ही आप 'भय' पर विचार करना प्रारम्भ करेंगे, यह लुप्त हो जायेगा। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इन्हीं कठिनाइयों और दोषों के कारण अन्तर्दर्शन पद्धति को अपूर्ण ठहराया। व्यक्ति अपनी ही मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन सफलतापूर्वक स्वयं नहीं कर सकता। इसीप्रकार के अनेक और कारणों से मनोविज्ञान तथा शिक्षा में इस पद्धति का प्रयोग नहीं होता। यदि कहीं होता भी है तो वह अन्य पद्धतियों के साथ और इसलिए कि अन्य पद्धतियों द्वारा अधिक विश्वसनीय फल प्राप्त हो जायें। अतएव यह पद्धति अन्य पद्धतियों की सहायक के रूप में ही कुछ महत्त्व रखती है।

२. बहिर्दर्शन-पद्धति[1]

मनोविज्ञान का अर्थ जब 'चेतना' का ही अध्ययन करना माना जाता था, तब तक अन्तर्दर्शन पद्धति उपयुक्त थी। किन्तु मनोविज्ञान की परिधि में जब से बालक, किशोर, युवा, प्रौढ़—सभी आ गये और उसमें चेतन, अचेतन मस्तिष्क का अध्ययन होने लगा, तथा विकृत और विक्षिप्त मस्तिष्क का अध्ययन भी मनोविज्ञान का विषय हो गया तो अन्तर्दर्शन पद्धति अपूर्ण सिद्ध हुई। फलतः सुधी मनोवैज्ञानिकों ने नवीन पद्धतियों को खोज निकाला जो अधिक वैज्ञानिक थी। इनमें प्रथम बहिर्दर्शन पद्धति थी। बहिर्दर्शन पद्धति में 'निरीक्षण' और 'परीक्षण', दोनों ही विधियों को अपनाया जाता है।

अन्तर्दर्शन पद्धति में अपनी ही मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, किन्तु बहिर्दर्शन में हम दूसरों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। यह अध्ययन दूसरों के व्यवहार के निरीक्षण के द्वारा किया जाता है। हम यह निरीक्षण करते हैं कि एक व्यक्ति क्रोधित अवस्था में किस प्रकार का व्यवहार करता है, उसके ऊपर क्रोध की कैसी प्रतिक्रिया होती है? उसमें क्या-क्या शारीरिक परिवर्तन आते हैं? इस प्रकार क्रोध-जनित उसके अनुभवों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। वस्तुतः हम उसके शारीरिक परिवर्तन को देखकर अपने पूर्व अनुभव के आधार पर उसके व्यवहार की व्याख्या करते हैं। हमारा अपना अनुभव अन्तर्दर्शन द्वारा किये गए अपने मस्तिष्क के अध्ययन के ऊपर आधारित होता है। हम अपने पूर्व अनुभव के आधार पर यह जानते हैं कि क्रोध के समय आँखें लाल हो जाती हैं, भवें तन जाती हैं, क्रोधित व्यक्ति गुस्से में काँपने लगता है, तथा हाथों को इधर-उधर फेंकता है, अतः

1. Extrospection Method.

जब किसी व्यक्ति को इस प्रकार से व्यवहार करते देखते हैं तो हम समझ,
कि वह क्रोधित है।

बहिर्दर्शन में उसकी मानसिक प्रक्रिया के साथ साथ, उसकी शारीरि
का भी अध्ययन किया जाता है। उद्दीपक[1] के प्रति विषयी के शरीर में किस
की प्रतिक्रिया होती है, नाड़ीमण्डल[2] किस प्रकार कार्य करता है? इन सभी
रिक व्यापारों का अध्ययन किया जाता है। दूसरे लोगों के मस्तिष्क के कृ
भी अध्ययन किया जाता है, जिससे हम उनके मस्तिष्क का ठीक-ठीक आक
सकें। इससे हम किसी राष्ट्र के मानसिक स्तर, उसके नागरिकों की मानसिक
के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि किसी भी राष्ट्र का स
कला और विज्ञान का स्तर उस राष्ट्र के मानसिक स्तर का द्योतक होता है।

बहिर्दर्शन के दोष—(१) इस पद्धति में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि
दर्शक अपने भावों, विचारों और चिन्तन की अनुभूतियों को दूसरों के मस्ति
थोपना चाहते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि परिस्थिति-विशेष में जैसा बा
सोचता है वैसा ही दूसरा भी विचारता हो। हम दूसरों के मस्तिष्क का अध्य
वस्तुनिष्ठ, वैषयिक[3] एवं व्यक्ति-निरपेक्ष नहीं कर सकते वरन् अपने मस्तिष्क
अनुभवों के आधार पर दूसरों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन और
व्याख्या करते हैं। अतः जब हम अपने मानसिक स्तर से भिन्न मानसिक स्त
व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं तो अनुमान के कारण
निरीक्षणों के निष्कर्ष अशुद्ध हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक प्रौढ़ बहिर्दर्श
किसी बालक, किशोर अथवा किसी जंगली आदमी के व्यवहार की व्याख्या क
तो वह व्याख्या गलत हो सकती है क्योंकि बालक, किशोर या जंगली आ
मानसिक स्तर पर अपने आप को लाना बहिर्दर्शक के लिए अत्यन्त कठिन का

(२) बहिर्दर्शन पद्धति में दूसरी कठिनाई यह है कि बहिर्दर्शक प्राय:
के व्यवहार की व्याख्या करते समय अपनी पूर्व-धारणाओं एवं पूर्वाग्रह से प्रभा
जाता है। जैसे, हम लोग अपने किसी मित्र अथवा स्वजन के व्यवहार का
करते समय उसकी बुराइयाँ भूल जाते हैं।

(३) कभी-कभी विषयी[4] ऐसा ढोंगपूर्ण व्यवहार करता है जिससे उसके
विक व्यवहार का सही-सही अध्ययन नहीं किया जा सकता तथा बहिर्दर्शक
व्यवहार की गलत व्याख्या कर सकता है। विषयी अपनी आन्तरिक अनुभूति
बाह्य मुद्रा और शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट न
देता। वह अपनी मूल मानसिक प्रक्रियाओं को छिपाकर इस प्रकार से क
करता है कि बहिर्दर्शक उससे धोखा खा जाता है।

---

1. Stimulus. 2. Nervous System. 3. Objective. 4. Su

शिक्षा में मनोविज्ञान के प्रयोग में बहिर्दर्शन की सहायता—मनोविज्ञान के लिए बहिर्दर्शन उपयोगी पद्धति है। यह बहिर्दर्शन ही है, जिसने शिक्षा मे मनोविज्ञान के अधिकाधिक प्रयोग मे सहायता पहुँचाई है। बहिर्दर्शन बालक के अध्ययन मे एक विशेष एवं उपयोगी पद्धति के रूप मे अपनाया जाता है। बाल-मनोविज्ञान की सही-सही जानकारी इस पद्धति द्वारा प्राप्त की जाती है। यह जानकारी बालको को उचित शिक्षा देने में पूरी-पूरी सहायता पहुँचाती है।

मानसिक प्रकियाओ के अध्ययन के लिए सर्वाधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण पद्धति 'प्रयोगात्मक' है। आज शिक्षा मे इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति बहिर्दर्शन से अधिक विकसित और वैज्ञानिक है। इसमे परीक्षणों द्वारा निरीक्षण किया जाता है और निष्कर्ष निकाला जाता है।

३. प्रयोगात्मक पद्धति[1]

नियन्त्रित वातावरण मे किया गया निरीक्षण ही परीक्षण है—प्रयोगात्मक पद्धति मे वातावरण पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखकर विषय की मानसिक क्रियाओ का अध्ययन किया जाता है। प्रायः बाल-समूह या पाठशाला के विद्यार्थियो को परीक्षण के लिए चुना जाता है। परीक्षण के लिए एक विशिष्ट वस्तु चुन ली जाती है और उन सभी सम्बन्धित वस्तुओ को उससे अलग रखा जाता है जो मानसिक प्रक्रिया पर प्रभाव डाल सकें। यह विशिष्ट वस्तु कोई मानसिक प्रक्रिया ही होती है। इस प्रकार नियन्त्रित और उपयुक्त वातावरण उत्पन्न कर परीक्षण किये जाते हैं, उनके परिणामो को लिख लिया जाता है, फिर उनसे निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

प्रयोगात्मक पद्धति, जैसा ऊपर कहा गया है, वैज्ञानिक पद्धति है। एक वैज्ञानिक के सामने जब कोई समस्या आती है तो प्रारम्भ का पद जो वह लेता है, उसके हल का अनुमान बनाना होता है। इस अनुमान को प्राक्कल्पना[2] कहते हैं। यह प्राक्कल्पना ऐसे तथ्यों की खोज की ओर दिशा प्रदान करती है जो प्राक्कल्पना को या तो स्थापित कर दे या उसको त्याग दे। प्राक्कल्पना एक प्रश्न के से ही रूप मे होती है और बहुत सकीर्ण क्षेत्र मे होती है।

वैज्ञानिक अपने अनुसंधान की इस प्रकार से रूपरेखा बनाता है कि प्राक्कल्पना की सब मुख्य दशाओं का सीधा विश्लेषण कर सके। मुख्यतः यह अनुसंधान प्रयोग का रूप ले लेता है जो नियंत्रित दशाओ मे किया जाता है। इन दशाओ मे से एक मे परिवर्तन लाया जाता है और बाकी सबको कठोर नियन्त्रण मे रखा जाता है। यह विशेषताएँ प्रयोग को दोहराना संभव बना देती हैं। जब प्रयोग असंभव होता है तो अनुसंधानकर्ता दूसरी विधियों का प्रयोग करता है। मनोविज्ञान प्रयोग के ऊपर आधारित तो है परन्तु इसमे सीमित नहीं है।

1. Experimental Method. 2. Hypothesis.

प्रयोगात्मक पद्धति को पूर्ण वैज्ञानिक रूप देने में कठिनाइयाँ[1]

मनोवैज्ञानिक अपने अनुसंधानों को रसायन विज्ञान की विधियों के आधा-
र पर ही बनाता है। एक अनुसंधान की जो आदर्श विशेषताएँ हैं वह निम्न-
लिखित हैं :

(१) दशाओं पर नियन्त्रण[2]—विज्ञान में दशाओं पर नियन्त्रण रखना आ-
होता है। वैज्ञानिक तापक्रम, दबाव, पदार्थ जिसका प्रयोग करता है इत्यादि प-
नियन्त्रण रख सकता है किन्तु मनोविज्ञान के अनुसंधान में नियन्त्रण रखना कठिन हो-
है। मनोविज्ञान मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है और मानव-व्यवहार की इत-
नी शक्तियाँ होती हैं कि प्रयोग द्वारा उन पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं होता।
इस कारण हम मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में इस प्रकार की सुविधा का प्रयोग करते हैं
जैसे नियन्त्रण समूह[3], जिनको अपना स्वयं नियन्त्रण करें[4] तथा सांख्यिकी
सांख्यिकीय नियन्त्रण।[5] फिर भी मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में पर्याप्त नियन्त्रण नहीं
समस्या बनी रहती है।

(२) वस्तुनिष्ठता[6]—यह भी मनोविज्ञान के लिए कठिन समस्या है। मनोवैज्ञा-
निक को वस्तुनिष्ठ रूप से बुद्धि, योग्यता, ध्यान, इत्यादि की परिभाषा देने में कठि-
नाई होती है। जो परिभाषा दी जाती है वह मनोवैज्ञानिक विशेष द्वारा ही दी जाती
है और इस पर सब सहमत नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान जो परीक्षण
इत्यादि का प्रयोग करता है वह भी व्यक्तिगत आधार पर ही होते हैं। वह प्रत्येक
दशा में उपयुक्त नहीं होते, न ही उनके फल सर्वमान्य होते हैं।

(३) परिणामों का सत्यापन[7]—आदर्श अनुसंधान ऐसा होना चाहिए कि वह
दोहराया जा सके और उसके परिणामों का सत्यापन किया जा सके। मनोविज्ञान के
अनुसंधानों में यह भी कठिनाई है। इसमें अनुसंधानों को उन्हीं दशाओं में दोहराना
लगभग असंभव है क्योंकि जब यह दोहराये जाते हैं, विषयी में अनुभव इत्यादि के
कारण परिवर्तन आ जाता है।

किन्तु यह कहना गलत होगा कि इन कठिनाइयों के कारण मनोविज्ञान का
वैज्ञानिक रूप से अध्ययन नहीं होता। मनोविज्ञान का अनुसंधानकर्ता इन कठिनाइयों
को दूर करने में लगा रहता है। वह जानता है कि उसके अनुसंधान का मूल्य उसी
समय है जब वह पूर्ण वैज्ञानिक विधि से अपने परिणाम निकाले।

समानान्तर समूह विधि[8]—कुछ मनोविज्ञान की समस्याएँ प्रयोगशाला में
नहीं अध्ययन की जा सकती। इनको अध्ययन करने के लिए हम समानान्तर समूह

1. Difficulties in making experimental methods purely scientific. 2. Control of conditions. 3 Control of groups 4. Subjects serving as their own controls 5. Statistical control of variables. 6. Objectivity. 7. Verifiability of results 8. Parallel groups method

विधि का प्रयोग करते हैं। हम दो या तीन समूह को उन सब राशियों में समान कर लेते हैं जो महत्त्वपूर्ण होती हैं। फिर एक समूह जिसे हम प्रयोगात्मक समूह कहते हैं, को एक निश्चित अनुभव दिया जाता है या उसके साथ विशेष प्रकार का व्यवहार किया जाता है जबकि अन्य समानान्तर समूह को इसका पता भी नहीं होता। कुछ काल उपरान्त दोनों समूहों का परीक्षण किया जाता है और निष्कर्ष निकाल लिये जाते हैं। हम यहाँ एक प्रयोग के वर्णन द्वारा इस विधि को और स्पष्ट करेंगे।

प्रयोग—विद्यालय के बालकों में यह देखना था कि वह परीक्षा में नकल कब अधिक करते हैं—जब उन पर कठोर अन्तरीक्षण[1] होता है, साधारण अन्तरीक्षण होता है या कोई भी अन्तरीक्षण नहीं होता ?

इस समस्या के लिए अनुसंधान की रूपरेखा यह बनाई गई कि एक कक्षा का चुनाव किया गया। उसके विद्यार्थियों को तीन समूहों में बाँटा गया। तीनों समूहों में बराबर संख्या में विद्यार्थी रखे गये। इन विद्यार्थियों का चुनाव इस प्रकार हुआ कि प्रत्येक समूह में समान संख्या में उच्च बुद्धि वाले, औसत बुद्धि वाले तथा निम्न बुद्धि वाले बालक थे। जैसे, यदि प्रत्येक समूह में दस बालक थे तो इनमें से दो उच्च बुद्धि के, दो निम्न बुद्धि के और छः साधारण बुद्धि के चुने गये। बुद्धि के अनुसार विभाजन बुद्धि परीक्षा देकर किया गया। अब प्रत्येक समूह की परीक्षा अलग-अलग ली गई। एक समूह का कठोर अन्तरीक्षण किया गया, दूसरे का साधारण तथा तीसरे का बिलकुल नहीं। परीक्षा में विभिन्न समूहों में जिन बालकों ने नकल की उनकी संख्या ज्ञात की गई और यह निष्कर्ष निकाला गया कि किस समूह में सबसे अधिक नकल हुई। परीक्षण के फलों से पता चला कि कठोर और साधारण अन्तरीक्षण में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नकल करने वालों की संख्या में न था। इससे यह पता चला कि अन्तरीक्षण का भय भी नकल करने से रोकने में महत्त्वपूर्ण होता है।

इस प्रकार शिक्षा-मनोविज्ञान के प्रयोग अधिकतर प्रयोगशाला के बाहर कक्षा या विद्यालय में किये जाते हैं। चेष्टा यह की जाती है कि प्रयोगशाला के बाहर के प्रयोग भी उतने ही विश्वासी, यथार्थ और वस्तुनिष्ठ हों जितने इसके अन्दर के। इस चेष्टा में सांख्यिकी बहुत सहयोग प्रदान करती है।

प्रयोगात्मक पद्धति की उपयोगिता—उपर्युक्त कुछ दोषों के होते हुए भी मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसी पद्धति को अधिक प्रयोग में लाया जाता है। इसमें परीक्षण के परिणाम अन्य पद्धतियों से कहीं अधिक शुद्ध पाये जाते हैं। इस पद्धति की वैज्ञानिकता के फलस्वरूप ही आज मनोविज्ञान एक शुद्ध विज्ञान माना जाता है। मनोविज्ञान के विकास में सबसे अधिक सहायता प्रयोगात्मक पद्धति से ही पहुँचाई है। परीक्षणों की सफलता और उपयोगिता के कारण कुछ विद्वान् तो आधुनिक मनोविज्ञान को 'परीक्षणशाला मनोविज्ञान' कहने लगे हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रयोगात्मक पद्धति

---

1. Invigilation

का जन्म और उसका प्रयोग अभी थोड़े ही वर्षों पहले हुआ। संसार में सर्वप्रथम 'वुण्ट'[1] महोदय ने सन् १८७९ में 'लिपज़िग' में एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला[2] की स्थापना की। उसके उपरान्त प्रयोगात्मक मनोविज्ञान[3] ने इतनी अधिक और शीघ्र उन्नति की कि सामान्य मनोविज्ञान[4] और शिक्षा-मनोविज्ञान के समान ही वह मनो-विज्ञान का एक आवश्यक अङ्ग बन गया। यह पद्धति इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के निष्कर्षों से ही सामान्य मनोविज्ञान और शिक्षा-मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की पुष्टि सम्यक् मानी जाने लगी। इस प्रकार इस पद्धति का प्रयोग मनोविज्ञान के सभी क्षेत्रों में किया जाने लगा।

वेलेन्टाइन के अनुसार, **"प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की सर्वाधिक महत्ता यह है कि यह हमारे मनोवैज्ञानिक तथ्यों और नियमों की जानकारी में वृद्धि करता है।"** यद्यपि यह विज्ञान अभी अपूर्ण है, फिर भी इसने अपने अन्वेषणों और अनुसन्धानों से अध्ययन की बहुमूल्य सामग्री[5] को एकत्रित किया है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ने बहुत-से ऐसे तथ्यों की खोज की है जो शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त मूल्यवान् और उपयोगी हैं।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान और शिक्षा—आधुनिक युग में शिक्षा की प्राचीन धारणा बदल गई है। अब विद्यार्थियों को सूचना मात्र देना ही शिक्षा नहीं माना जाता। **मॉर्गन के अनुसार, "शिक्षा बालक के जीवन का वह सर्वाङ्गीण विकास है जिससे वह अपने सर्वतोमुखी एवं समायोजित व्यक्तित्व का निर्माण करता है।"**[6] एक शिक्षक बालक के सर्वतोमुखी विकास में तभी सहायक हो सकता है जबकि उसे बालक के मानसिक स्तर, रुचि, योग्यता आदि का पूर्ण ज्ञान हो। यह समस्त जानकारी हम मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। बालक के मस्तिष्क के अध्य-यन के लिए मनोविज्ञान में विविध प्रणालियों को अपनाया जाता है। उसके मस्तिष्क का अध्ययन उसके 'व्यवहार' के निरीक्षण के द्वारा किया जाता है। चूँकि व्यवहार का अध्ययन प्रत्यक्ष रूप में हो सकता है, इसलिए प्रायः उसमें प्रयोगात्मक पद्धति को ही अपनाया जाता है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान उन परिस्थितियों की खोज करता है, जिनमें एक अध्यापक दक्षतापूर्वक अपने विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान कर सके। इसमें अध्यापक के कार्य की मानसिक और भौतिक दशाओं का अध्ययन किया जाता है, और यह बताया जाता है कि अमुक-अमुक मानसिक और शारीरिक दशाओं में ही सम्यक् अध्यापन सम्भव हो सकता है। अतः शिक्षा-मनोविज्ञान हमें यह बताता है कि एक अध्यापक शिक्षण में कैसे दक्षता प्राप्त कर सकता है।

1. Wundt. 2. Psychological Laboratory. 3. Experimental Psyohology. 4. General Psychology. 5. Data.

6. "It is the development of every phase of life so that he becomes an unified and integrated personality." —Morgan

आधुनिक काल में बालकों की बुद्धि मापने के लिए मानसिक परीक्षा[1]-प्रणाली का विकास हुआ है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इस प्रणाली में बहुत सहायता पहुँचाता है। बुद्धि-परीक्षा का प्रयोग बुद्धि मापने और ज्ञान-लब्धि के मापने में बहुत अधिक किया जाता है। बालक की ज्ञान-लब्धि को माप के लिए पुरानी विधियों से यह पद्धति अधिक उपयोगी और वैज्ञानिक है।

प्रयोगात्मक पद्धति की सीमाएँ—प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का विषय-विस्तार अत्यन्त विस्तृत है, परन्तु फिर भी शिक्षा का सम्पूर्ण क्षेत्र इसके विस्तार के अन्तर्गत नहीं आता। शिक्षा की बहुत-सी समस्याओं को हल करने के लिए अध्यापक को प्रयोगात्मक पद्धति पर ही निर्भर रहना पड़ता है, किन्तु यह मनोविज्ञान शिक्षक की समस्त कठिनाइयों के लिए समाधान प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में मानव के 'व्यवहार' का अध्ययन उसी प्रकार किया जाता है जैसे भौतिक विज्ञान में किसी भौतिक पदार्थ अथवा द्रव्य के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान में विषयों[2] का व्यवहार सदैव निश्चित परिस्थितियों में निश्चित प्रकार का होता है। अतः उनका अध्ययन करना सरल होता है, किन्तु मानव का 'व्यवहार' अनिश्चित होता है। वह एक ही प्रकार की एवं समान परिस्थितियों में भी विभिन्न प्रकार से व्यवहार करता देखा जाता है। अतः प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में भौतिक विज्ञान के समान निश्चित एवं दृढ़ नियमों को नहीं अपनाया जा सकता। हम ऐसे दृढ़ नियमों को बालकों की शिक्षा में नहीं अपना सकते जहाँ एक ही उद्दीपक के प्रति विभिन्न बालकों में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में दूसरी कमी यह है कि परीक्षण के संचालन के समय विषयी के वातावरण एवं उसकी मानसिक दशाओं पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। जैसे, 'अवधान' पर परीक्षण करते समय हम विषयी का ध्यान कुछ समय के लिए किसी वस्तु-विशेष पर केन्द्रित करना चाहते हैं, किन्तु हम इसके लिए पूर्ण विश्वस्त नहीं हो सकते कि पूरे परीक्षण-काल में विषयी का ध्यान उसी वस्तु पर केन्द्रित बना रहेगा।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में हमारे भावों[3] और संवेगों[4] का वैषयिक अध्ययन[5] नहीं किया जा सकता। परीक्षणशाला में कृत्रिम भावों और संवेगों को उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन है, और यदि ऐसा सम्भव भी हो तो उनकी अनुभूति स्वाभाविक संवेगों से सर्वथा भिन्न होगी तथा उनके निष्कर्ष भी गलत होंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका सम्यक् अध्ययन करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

1. Mental Test. 2. Objects. 3. Feelings 4. Emotions. 5. Objective Study.

४. विवरण पद्धतियाँ[1]

(१) विकासात्मक पद्धति[2]—इस पद्धति में व्यक्ति के मानसिक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन कर उसकी व्याख्या की जाती है। इसके द्वारा मानव के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उसकी विविध मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, जैसे—जन्म के समय, बाल्यावस्था में अथवा किशोरावस्था में। इस अध्ययन के द्वारा शैशव से लेकर वृद्धावस्था तक व्यक्ति के विकास की व्याख्या की जा सकती है। यह अध्ययन हमें यह बताता है कि विकास की विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार की मानसिक क्रियाएँ होती हैं, उनका क्या स्वरूप होता है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें मानव के व्यवहार का अध्ययन उसके स्वाभाविक रूप में किया जाता है। विकास की अवस्थाएँ एक के उपरान्त दूसरी किस प्रकार आती हैं? उनमें किस प्रकार की मानसिक दशाएँ होती हैं? इन सभी का गहन अध्ययन इस पद्धति में किया जाता है।

(२) व्यक्ति-इतिहास पद्धति[3]—इस पद्धति में किसी व्यक्ति-विशेष की विलक्षणताओं को समझने के लिए उसके व्यक्तिगत इतिहास और उसके कुटुम्ब के इतिहास का अध्ययन किया जाता है। जिस व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है, वह महान् प्रतिभाशाली, घोर अपराधी अथवा विक्षिप्त होता है। व्यक्ति का पूर्व-इतिहास स्वयं उसके द्वारा अथवा उसके इष्ट मित्र एवं भाई-बहिनों द्वारा प्राप्त किया जाता है और उसी के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस पद्धति का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। विषयी को अपने में विश्वास रखना चाहिए, ताकि अध्ययन-सामग्री के संकलन में त्रुटि न हो जाय। ऐसा न हो कि वह अपना इतिहास गलत बता दे और सभी अध्ययन सामग्री अशुद्ध हो जाय।

(३) मनोविकृत्यात्मक पद्धति[4]—इस पद्धति का प्रयोग मानसिक बीमारियों एवं मानसिक अवनति के कारणों को समझने के लिए किया जाता है। इसमें सभी प्रकार की असामान्य मानसिक प्रक्रियाओं एवं मानसिक विकृतियों का अध्ययन किया जाता है, जैसे—सभी मानसिक रोग एवं मानसिक दोष इत्यादि। इससे मानव के कुछ व्यवहारों को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। रोगी मनोविज्ञानवेत्ता[5] इस पद्धति का प्रयोग अपने रोगियों और उनकी बीमारियों के अध्ययन के लिए बहुत अधिक करते हैं।

(४) तुलनात्मक पद्धति[6]—इस पद्धति में विभिन्न पशुओं के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। विभिन्न पशुओं में मूल-प्रवृत्तियाँ किस प्रकार का कार्य करती हैं, उनमें बुद्धि का विकास कैसे होता है आदि, इस पद्धति के अध्ययन के

---

1. Methods of Exposition 2 Genetic or Developmental Method 3 The Case-History Method 4 Pathological Method 5. Clinical Psychologist. 6. Comparative Method

विषय होते हैं। कभी-कभी किसी व्यक्ति के व्यवहार को समझने मे बडी कठिनाई पडती है। ऐसी परिस्थिति मे उसके व्यवहार की सही-सही जानकारी के लिए पशुओ के व्यवहार से उसकी तुलना करते हैं और निष्कर्ष निकालते हैं, जिससे व्यक्ति के व्यवहार को समझने मे सहायता मिलती है।

(५) समाजमिति विधि[1]—सोशियोमेट्री (समाजमिति) एक नई प्रविधि है, जिसका सामाजिक अनुसन्धान मे बहुत प्रयोग होता है। **सोशियोमेट्री एक समूह की बनावट का अध्ययन करने, और प्रत्येक समूह के सदस्य की स्थिति नापने की प्रविधि है।**[2] इस प्रविधि के जन्मदाता हैं—मोरेनो[3]। गार्डनर लिण्डजे[4] एवं एडगर एफ० बोरगेट[5] का कहना है "साधारण भाषा मे 'सोशियोमेट्रिक' नाम एक दिये हुए समूह मे आकर्षण अथवा आकर्षण एवं दुराव की नाप करने का साधन है। साधारणतः इसमे समूह का प्रत्येक सदस्य सम्मिलित किया जाता है जो निजी रूप से यह सकेत करता है कि समूह के अन्य सदस्यो मे से किनके साथ वह मिल-जुलकर किन्ही विशिष्ट क्रियाओ मे भाग लेगा एव इसके अतिरिक्त वह यह भी सकेत करता है कि वह किन व्यक्तियों के साथ इन क्रियाओं मे भाग लेगा।"

सोशियोमेट्रिक विधि का सामाजिक अनुसन्धान मे बहुत प्रयोग हो रहा है। इस विधि द्वारा ही पता लगता है कि कौनसे ऐसे बालक हैं जो दूसरों के साथ नही मिलते। इसके अतिरिक्त इस विधि द्वारा समूहो मे अधिक एकत्व लाने की सम्भावना बन जाती है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सामग्री को एकत्रित करने के लिए बहुत-सी प्रविधियो को अपनाया जाता है। ये निम्नलिखित हैं: (१) साक्षात् विधि[6], (२) मान-निरूपण विधि[7], (३) प्रश्नावली विधि[8], (४) प्रामाणिक परीक्षाएँ[9], (५) जाँच-सूची[10] (६) उपाख्यानात्मक अभिलेख[11], (७) जीवन-चरितात्मक एव आत्म-चरितात्मक अभिलेख[12], इत्यादि।

शिक्षा मे मनोविज्ञान के प्रयोग मे उपर्युक्त पद्धतियों की सहायता—अध्ययन की इन पद्धतियो ने मनोविज्ञान के ज्ञान-भण्डार को अत्यन्त समृद्ध बनाया है। इन्ही पद्धतियो की उपयोगिता के कारण आज मनोविज्ञान भौतिक विज्ञानो के समकक्ष माना जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान मे व्यक्ति के सामान्य और असामान्य—दोनो ही

---

1. Sociometric Technique.

2 "Sociometry is the technique of studying structure of a group and measuring the status of each individual"—V. V. Akolkar: *Social Psychology*.

3. Moreno. 4. Gardner Lindzey. 5. Edgar F. Borgata 6 Interview. 7. Rating-Scale Method. 8 Questionnaire. 9. Standard Tests. 10. Check List. 11. Anecdotal Records. 12. Biographical & Autobiographical Records.

प्रकार के व्यवहारों की व्याख्या होती है। इसलिए हम आज बाल-शिक्षा में इसका उपयोग कर उसे एक सुन्दर व्यक्तित्व का रूप दे सकते हैं। मानसिक रोगियों के व्यवहार के अध्ययन और उनकी व्याख्या के आधार पर मनोविज्ञान मानसिक विकृतियों को दूर करने के लिए बहुत-से उपचार प्रस्तुत करता है, तथा शिक्षा उन उपचारों का प्रयोग कर व्यक्ति के दोष-निवारण कर उसे निरोग बनाती है। उदाहरण के लिए यदि किसी बालक में चोरी करने की आदत है तो शायनिक परीक्षा[1] द्वारा हम यह ज्ञात करते हैं कि उसकी किस इच्छा का अवदमन किया गया जिसके फलस्वरूप उसमें यह दोष आ गया, और किस प्रकार उसके इस दोष को दूर किया जा सकता है, तथा इस प्रकार के बालकों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। विद्यालयों में इन उपचारों को प्रयोग में लाना अध्यापक का कर्तव्य है। उसे बालक के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और ऐसा उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना चाहिए जिससे वह बालक की भावना-ग्रन्थियों और मानसिक द्वन्द्वों को दूर करने में सहायता प्राप्त कर सके।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध हो गया है कि इन पद्धतियों ने शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार में कितनी अधिक सहायता पहुँचाई है। इसी कारण शिक्षा में मनोविज्ञान का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ रहा है। यह हमारे मनोवैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि का ही परिणाम है कि आजकल हम अत्यन्त उपयोगी शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन और संचालन में सिद्धहस्त हैं।

शिक्षा-मनोविज्ञान का विषय-विस्तार
तथा
प्रस्तुत पुस्तक की योजना[2]

शिक्षा-मनोविज्ञान का विषय-विस्तार शैक्षणिक परिस्थितियों में मानव के व्यवहार का अध्ययन करने तक सीमित है। इसकी सीमा के अन्तर्गत आने वाली विषय-वस्तु का सम्बन्ध अधिकतर मनुष्य और उसकी सीखने की परिस्थितियों से है। इसके विषय-विस्तार के अन्तर्गत शिशु, बालक, किशोर और युवा—सभी आते हैं। चूँकि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है, इसलिए शिक्षा-मनोविज्ञान का क्षेत्र बाल्यकाल अथवा किशोरावस्था तक ही सीमित नहीं है, वरन् मानव के सम्पूर्ण जीवन की समस्त शैक्षणिक परिस्थितियों तक विस्तृत है।

शिक्षा-मनोविज्ञान की विषय-वस्तु को कई मुख्य खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। इस विभाजन में मनोवैज्ञानिक आधार का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। इस पुस्तक के प्रमुख खण्ड इस प्रकार हैं :

---

1. Clinical Test.
2. Scope of Educational Psychology & Plan of this Book

१. मनोविज्ञान और शिक्षा[1]
२. मानव-अभिवृद्धि और विकास[2]
३. सीखना[3]
४. व्यक्तित्व और समायोजन[4]
५. व्यक्तिगत तथा सामूहिक सीखना[5]
६. माप और मूल्यांकन[6]
७ सांख्यिकीय एवं अनुसंधान पद्धतियाँ[7]

प्रत्येक प्रमुख खण्ड के अन्तर्गत अध्याय दिये गये हैं। इन अध्यायों मे किसी विशिष्ट समस्या या समस्याओं का विवेचन प्रारम्भ से ही दिया गया है। अध्याय के अन्त मे सारांश और कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न दिये गये हैं।

सारांश

शिक्षा-मनोविज्ञान के महत्त्व का मूल्यांकन करने के लिए शिक्षा के आधुनिक सिद्धान्त को समझना आवश्यक है। नवीन सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जो विविध सामाजिक वर्गों के सदस्यों को आजीवन उन वर्गों मे रहने के योग्य बनाने के लिए उत्तरदायी है। शिक्षा एक निर्देशात्मक[8], सप्रयोजन[9] और सृजनात्मक[10] प्रक्रिया है। शिक्षा व्यक्ति को अनुभव प्रदान करती है और उसे वातावरण के विभिन्न अंगों के साथ सामंजस्य स्थापित करने मे सहायता पहुँचाती है। यह एक ऐसी क्रिया है जिसका सम्बन्ध व्यक्ति और समाज—दोनों से है। शिक्षा का अर्थ है—अभिवृद्धि और उचित व्यवहार। शिक्षा के इस नवीन सिद्धान्त से मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यथा—(१) मनोविज्ञान शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायता पहुँचाता है। (२) यह नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। (३) यह अनुशासन की उचित व्यवस्था करता है। (४) यह उपयुक्त अध्यापन-विधियाँ और उन्नत प्रविधियों को प्रस्तुत करता है। (५) यह शिक्षक को वैयक्तिक भिन्नता से अवगत कराता है। (६) यह समूह मनोविज्ञान को समझने मे सहायता देता है। (७) यह अध्यापक को बालक के विकास की अवस्थाओं के अनुकूल शिक्षा देने के महत्त्व को बताता है। (८) यह बाल-केन्द्रित शिक्षा पर अधिक बल देता है। मनोविज्ञान के इन महत् महत्त्वों के कारण यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक हो तथा अध्यापक को शिक्षा-मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान हो।

---

1. Psychology and Education 2. Human Growth and Development. 3. Learning. 4 Personality and 'Adjustment'. 5. Individual and Group Learning 6 Measurement and Evaluation. 7 Statistical and Research Techniques. 8. Directive. 9. Purposeful 10. Creative.

शिक्षा मनोविज्ञान के उद्देश्य इस प्रकार हैं : (१) अध्यापक को सम्यक् दृष्टिकोण प्रदान करना। (२) अध्यापक को उपयुक्त शैक्षणिक वातावरण उत्पन्न करने पर बल देना। (३) अध्यापक को अपने छात्रों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और समदर्शी बनने में सहायता देना। (४) विषय-वस्तु के चयन में मदद करना। (५) सामाजिक सम्बन्धों को समझने में सहायता प्रदान करना। (६) अध्यापक को अपने कार्य-भार के निर्वाह में सहायता करना। (७) अध्यापक को अपने और दूसरों के व्यवहार की विश्लेषण-पद्धतियों और प्रविधियों से अवगत कराना। (८) उचित पथ-प्रदर्शन करने वाले कार्यक्रमों की व्यवस्था करना। (९) शिक्षा-संस्थाओं के प्रबन्धकों का पथ-प्रदर्शन करना। (१०) माप और मूल्यांकन की उत्कृष्ट विधियों से अध्यापक को अवगत कराना। तथा (११) अध्यापक को उत्तम अध्यापन-विधियों की जानकारी प्राप्त कराना।

मनोविज्ञान की सामग्री को एकत्रित करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा आजकल बहुत-सी पद्धतियाँ अपनायी जाती हैं। उनमें से अन्तर्दर्शन पद्धति, बहिर्दर्शन पद्धति, प्रयोगात्मक पद्धति, विकासात्मक पद्धति, व्यक्ति-इतिहास पद्धति, मनोविकृत्यात्मक पद्धति और तुलनात्मक पद्धति प्रमुख हैं। अन्तर्दर्शन में आत्म-निरीक्षण किया जाता है किन्तु आत्म-निरीक्षण करना अत्यन्त कठिन है। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों के समान इस पद्धति में वैज्ञानिकता नहीं है, अतः इसका प्रयोग अब बहुत कम किया जाता है। बहिर्दर्शन में दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन और उसकी व्याख्या की जाती है। यह पद्धति अधिक वैज्ञानिक है, इसी कारण इसका प्रयोग पिछले दिनों में अधिक हुआ है। किन्तु इस पद्धति में सबसे बड़ा दोष यह है कि जब हम किसी व्यक्ति के व्यवहार-विशेष का निरीक्षण उसके स्वाभाविक रूप में करना चाहते हैं तो ऐसी सम्भावना रहती है कि जब उसकी मानसिक प्रक्रिया अपने स्वाभाविक रूप में हो और हम उसका निरीक्षण करने के लिए पूर्ण तैयार न हों तो वह समाप्त भी हो जाये। इस कठिनाई को दूर करने के लिए आधुनिक मनोवैज्ञानिक नियन्त्रित वातावरण में दूसरों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार की विधि को प्रयोगात्मक पद्धति कहा जाता है। ये परीक्षण किसी परीक्षणशाला में किये जाते हैं, जहाँ उन सभी परिस्थितियों पर नियन्त्रण रखा जाता है जो विषयी के व्यवहार पर प्रभाव डालती हैं। वहाँ केवल एक ही वातावरण उत्पन्न किया जाता है जिसका सम्बन्ध उस मानसिक क्रिया से होता है। तात्पर्य यह है कि परीक्षणशाला में ऐसा कृत्रिम वातावरण उत्पन्न किया जाता है जिससे वांछित मानसिक प्रक्रिया उत्पन्न हो सके, फिर विषयी के उस मानसिक क्रियागत व्यवहार का निरीक्षण किया जा सके। आज मनोविज्ञान में इस पद्धति का प्रयोग बहुत अधिक किया जाता है तथा आधुनिक शिक्षा के विकास में इस पद्धति का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सराहनीय रहा है। विवरण पद्धतियों का प्रयोग बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं और तत्कालीन मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए किया जाता है—

इसे **विकासात्मक पद्धति** कहते हैं। विवरणात्मक पद्धति में दूसरी **व्यक्ति-इतिहास पद्धति** है—उसमें बालक के कुसमायोजित व्यक्तित्व के सभी वातावरण और वंशानुक्रम सम्बन्धी प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार से **मनोविकृत्यात्मक और तुलनात्मक पद्धतियों** द्वारा मानसिक रोगों और व्यक्ति की विलक्षणताओं का अध्ययन कर, उनका निदान ढूँढ़ा जाता है और उपचार प्रस्तुत किया जाता है। इन सभी पद्धतियों के विकास ने शिक्षा में मनोविज्ञान के प्रयोगों में बहुत अधिक सहायता पहुँचायी है।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१ आजकल मनोविज्ञान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषय क्यों माना जाता है? अपने दैनिक कार्यों की एक ऐसी सूची तैयार कीजिए, जिनमें मनोवैज्ञानिक आधार की आवश्यकता हो। इस सूची की मीमांसा अपने सहपाठियों के साथ कीजिए।

२. कुछ बालक कभी-कभी कक्षा में दुर्व्यवहार करते हैं। वे अपने माता-पिता की आज्ञा का भी उल्लंघन करते तथा बहुत-से अनुचित कार्यों में भाग लेते हैं। बालकों के इस व्यवहार के क्या कारण हो सकते हैं? इन बालकों का कक्षा में, घर पर अथवा खेल के मैदान में निरीक्षण कीजिए और उनके दुर्व्यवहार के कारण बताइए।

३. शिक्षा का आधुनिक सिद्धान्त क्या है? शिक्षा के पुराने सिद्धान्त से इसमें क्या अन्तर है?

४ "मनोविज्ञान एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है।" इस कथन से आप क्या समझते हैं? अपने समुदाय की महत्त्वपूर्ण आधुनिक समस्याओं के प्रति विविध दृष्टिकोण का सर्वेक्षण[1] कीजिए तथा विश्लेषण द्वारा उनके औचित्य और अनौचित्य पर प्रकाश डालिए।

५ रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(अ) शिक्षा-मनोविज्ञान को……प्रदान करता है।

(ब) आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य बालक के……विकास करना है।

(स) शिक्षा-मनोविज्ञान की……महत्त्वपूर्ण सीमाएँ हैं।

(द) ……में किया गया निरीक्षण ही परीक्षण है।

(य) संसार में सर्वप्रथम……महोदय ने……ई० में एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की।

६. कोई बालक प्रमादी होने के कारण खेलों में खेलने के लिए दूसरों द्वारा नहीं चुना जाता तथा इस प्रकार के अन्य महत्कार्यों में भी उसकी उपेक्षा की जाती है। वह यदि आपके पास लाया जाय तो आप किस पद्धति

---

1. Survey.

से उसके दोषों का मूल कारण खोज निकालेंगे, और किस प्रकार उसका उपचार करेंगे ?

७ "प्रयोगात्मक पद्धति मनोविज्ञान की सामग्री को एकत्रित करने की सर्वश्रेष्ठ विधि है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? उपर्युक्त कथन के पक्ष या विपक्ष मे अपने मत की पुष्टि के लिए प्रमाण दीजिए।

८ शिक्षा मे मनोविज्ञान के प्रयोग मे 'प्रयोगात्मक पद्धति' ने क्या सहायता पहुँचाई है ? अपने निजी अनुभव के आधार पर प्रत्यक्ष उदाहरण दीजिए।

९ मनोविज्ञान की विविध पद्धतियों का प्रयोग आप प्रारम्भिक पाठशालाओं तथा उच्चतर माध्यमिक पाठशालाओं मे किस प्रकार करेंगे ? अपनी योजना का सविस्तार वर्णन कीजिए।

भाग २

मानव-अभिवृद्धि और विकास

[HUMAN GROWTH & DEVELOPMENT]

३ वंशानुक्रम और वातावरण
HEREDITY & ENVIRONMENT

प्रायः यह देखा जाता है कि जैसे माता-पिता होते हैं, वैसे ही उनकी सन्तान होती है। बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान बुद्धिमान, और मूर्ख माता-पिता की सन्तान मूर्ख होती है। इसलिए जन-सामान्य में यह सिद्धान्त प्रचलित है कि जैसा बीज होगा वैसा ही वृक्ष। विशेष रूप से भारतीय समाज में वंशानुक्रम के आधार पर ही जातियाँ बनती हैं, वंशानुक्रम के आधार पर लोग अस्पृश्य और घृणित समझे जाते हैं, और जहाँ भाग्यवाद का बोलबाला है, वहाँ वंशानुक्रम के सिद्धान्त को "आप्त-वाक्य" मानना, उसे मानव के सम्पूर्ण जीवन का निर्माता मानना असम्भव नहीं। किन्तु यह भी सम्भव हो सकता है कि वकील का लड़का वकील और संगीतज्ञ का पुत्र संगीतज्ञ तथा संस्कृत व्यक्ति का पुत्र सभ्य वंशानुक्रम के कारण न होकर उस सुन्दर और अनुकूल वातावरण के कारण हो, जो उन्हें हर समय अपने कुटुम्ब से मिलता है। कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान मूर्ख, मूर्ख माता-पिता की सन्तान बुद्धिमान तथा एक सन्त का पुत्र अपराधी होता है।

यदि हम केवल वंशानुक्रम के सिद्धान्त को ही मानकर चलें तो इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता क्योंकि वंशानुक्रम के अनुसार मानव "जैसे के तैसे" ही होने चाहिए। अतः ऐसी कोई दूसरी शक्ति अवश्य है जो मानव के व्यक्तित्व-निर्माण में योग देती है। यह शक्ति है—वातावरण। अच्छे वंशानुक्रम की सन्तान दूषित वातावरण में पलने से भी बिगड़ जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि मानव के निर्माण में वंशानुक्रम और वातावरण—दोनों का ही योग [illegible] प्रकार मानव के विकास तथा उसके सीखने में वंशानुक्रम तथा [illegible] है। यही इस अध्याय की मुख्य समस्या है।

'वंशानुक्रम' क्या है ?[1]

इसके पहले कि 'वंशानुक्रम और 'वातावरण' की सापेक्ष महत्ता पर विचार करें, हमें यह समझ लेना चाहिए कि वंशानुक्रम है क्या ? कुछ विद्वानों के अनुसार वंशानुक्रम "जन्मजात वैयक्तिक गुणों का योगफल है।" जीवशास्त्र के अनुसार "निषक्त अण्ड मे सम्भाव्यत उपस्थित विशिष्ट गुणों का योग ही वंशानुक्रम है।"[2] प्राय यह देखा जाता है कि एक बिल्ली 'बिल्ली' को, कुत्ता 'कुत्ते' को और मानव 'मानव' को ही जन्म देता है। इसी तथ्य के आधार पर हम कहते हैं कि एक कुत्ता से कुत्ता ही अथवा "समान से समान"[3] जीव ही उत्पन्न होता है। फिर भी एक ही माता-पिता मे उत्पन्न सन्तानों मे आपस मे बहुत भेद पाया जाता है। इसी वैयक्तिक भिन्नता का अध्ययन गाल्टन, विजमैन, लेमार्क प्रभृत विद्वानो ने किया और उनके कारणो को खोजकर उन पर प्रकाश डाला।

जैविक वंशानुक्रम[4]—प्रत्येक मनुष्य का शरीर कोषो से निर्मित होता है। किन्तु गर्भावस्था की प्राथमिक स्थिति मे भ्रूण की रचना केवल एक ही कोष[5] से होती है, जो युक्ता[6] कहलाती है। युक्ता पुरुष के शुक्र[7] और स्त्री के अण्ड[8] के संयोग होने पर निर्मित होती है। गर्भाधान के समय अण्ड स्रवित होकर गर्भाधान नाल[9] द्वारा गर्भाशय[10] मे आता है, वहाँ शुक्र से उसका संयोग होता है। इस प्रकार दोनों के सायुज्यन[11] से निषेचन क्रिया[12] सम्पन्न होती है और भ्रूण[13] का प्रथम स्वरूप बन जाता है तथा युक्ता भ्रूणकोष मे परिवर्तित हो जाती है। शुक्र और अण्ड—दोनो ही बीज-कोषो[14] के रूप मे कुछ विशेष गुणों और दोषो के वाहक होते हैं। ये समस्त गुण भ्रूण मे आ जाते हैं और जन्म के उपरान्त वंशानुक्रम कहलाते हैं।

जीवशास्त्रियों मे यह मतभेद का विषय रहा है कि पित्रैक[15] किस प्रकार कार्य करते हैं और क्या पित्रैक जैसी किसी पदार्थ की सत्ता भी है ? किन्तु अनन्त निरीक्षणो और परीक्षणो से यह सिद्ध हो चुका है कि जन्म से पहले ही मानव-जीवन के विधायक कुछ उत्पादक तत्त्व होते हैं जिन्हें 'बीजकोष' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के बीजकोष अपने विशिष्ट गुणों से युक्त होते हैं, इन्हीं विशिष्ट गुणो को लेकर बालक जन्म लेता है। फिर भी यह आवश्यक नहीं कि बालक हूबहू अपने माता-पिता के समान हो, क्योंकि यदा-कदा यह भी देखा गया है कि बालक मे उन सभी गुणो[16] का अभाव है जो उसके माता-पिता के मुख्य गुण होते हैं। अतः यह प्रश्न अत्यन्त विचारणीय है। कुछ विद्वानों का मत है कि माता-पिता पित्रैको अथवा गुणों के उत्पादक नहीं होते वरन् प्रकृति ही प्रजनन और वंशानुक्रम के गुणो के संक्रमण का

---

1. *What is Heredity ?* 2 *The sum-total of the traits potentially present in the fertilized ovum* 3. Like begets like 4. Biological Heredity. 5 Cell. 6 Zygote. 7. Sperm. 8. Ovum. 9. Fallopian Tube. 10. Womb 11. Fusion. 12. Fertilization. 13. Embryo 14. Germ Cell 15. Genes. 16. Traits

नियोजन करती है। किसी भी व्यक्ति के गुण उसके जनक—माता और पिता—मात्र दो व्यक्तियों पर आधारित नहीं हैं, वरन् उसके दादा, परदादा और पूर्वजों में भी संक्रमित होकर आते हैं। वंशानुक्रम के बारे में इन विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने के लिए हमें प्रथम वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना को समझ लेना चाहिए, तदुपरान्त हम वंशानुक्रम के परीक्षणात्मक साक्ष्य पर विचार करेंगे।

वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना[1]—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि माता-पिता के बीजकोष एक निश्चित मात्रा में आपस में मिलते हैं और वे ही सन्तान के विशिष्ट गुणों को निर्धारित करते हैं। सन्तान के यही गुण यह निर्धारित करते हैं कि बालक लम्बा, नाटा, गोरा, काला, काली, हरी अथवा नीली आँखों वाला होगा।

बहुत-से परीक्षणों के उपरान्त यह भी सिद्ध हो चुका है कि एक निषिक्त अण्ड[2] में वंशसूत्रों[3] के २३ जोड़े उपस्थित रहते हैं, जिनमें से आधे पिता और आधे माता के होते हैं। वस्तुतः ये ही वंशसूत्र बालक के विशिष्ट गुणों के वालक होते हैं। अण्ड अथवा शुक्र दोनों में केवल २३ वंशसूत्र होते हैं, न कि ४६ जैसे कि शरीर के अन्य कोषों में होते हैं। स्त्री के अण्डाशय[4] में और पुरुष के अण्डकोषों[5] में जहाँ अण्ड और शुक्र बनते हैं, ४६ वंशसूत्र वाले कोष दो कोषों में विभाजित हो जाते हैं जिनमें प्रत्येक २३ वंशसूत्र रखता है। इस प्रकार अण्ड और शुक्र वाले कोषों में केवल २३ वंशसूत्र रह जाते हैं। इस क्रिया को अवकरणीय कोष-विभाजन[6] कहते हैं। इस विभाजन में विभाजित होने वाले कोष के ४६ वंशसूत्र २३ जोड़ों में बँटते हैं। प्रत्येक जोड़े का एक सदस्य एक विभाजित कोष को चला जाता है। यह केवल अवसर पर है कि कौनसा सदस्य किस कोष को जाता है। इस प्रकार लाखों प्रकार के संयोजन सम्भव हैं। प्रत्येक वंशसूत्र क्योंकि विशेष गुण का वाहक होता है अतः लाखों, करोड़ों प्रकार के व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक में वंशसूत्र की मिलावट भिन्न प्रकार से होती है। यही कारण है कि कोई भी दो व्यक्ति बिलकुल एक-दूसरे से नहीं मिलते।

प्रत्येक वंशसूत्र में और भी सूक्ष्म पदार्थ होते हैं, जिन्हें जीन्स या पित्रैक[7] कहते हैं। एक वंशसूत्र में अनेक पित्रैक होते हैं जो एक-रेखीय आकृति में शृङ्खलाबद्ध होते हैं। ये ही पित्रैक जिनकी संख्या वंशसूत्र में ४० से १०० तक होती है, बालक के विभिन्न गुणों के वास्तविक वाहक होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक पित्रैक अपने में एक ऐसा पदार्थ अथवा एक ऐसी रचना लेकर आता है जो बालक के गुण अथवा उसके व्यवहार के निर्धारण का मूल कारण होता है। व्यक्ति के वंशानुक्रम में कुछ ऐसे विशेष गुण होते हैं, जो एक पित्रैक अथवा पित्रैक-समूह द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित हो जाते हैं। गर्भाधान के समय शुक्र और अण्ड के वंशसूत्रों[8] के पित्रैक आपस में जोड़ा बनाते हैं और सन्तान की सम्भाव्य विशेष-

1. Mechanism of Heredity. 2. Fertilized Ovum 3. Chromosomes. 4. Ovaries. 5. Testes. 6. Reductive cell division. 7. Genes. 8. Chromosomes.

ताओं और गुणों को निर्धारित करते हैं। पीछे वर्णित वंशानुक्रम यन्त्र-रचना को *निम्न रेखाचित्र द्वारा भली-भाँति समझा जा सकता है :*

वंशानुक्रम की यंत्र-रचना
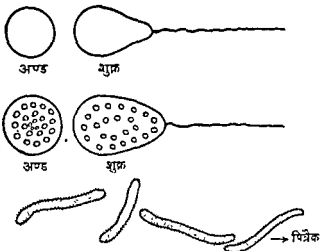
[१. अण्ड और शुक्र के समागम से निषेचन क्रिया सम्पन्न होती है।
२. तेईस-तेईस वंशसूत्र प्रत्येक अण्ड और शुक्र में उपस्थित होते हैं।
३. प्रत्येक वंशसूत्र में छोटे-छोटे बहुत-से पित्रैक होते हैं। ये ही विभिन्न गुणों के वाहक होते हैं।]

माता और पिता के तेईस-तेईस वंशसूत्रों के पित्रैकों का सायुज्जन[1] एक रासायनिक क्रिया के रूप में होता है। यही रासायनिक संयोग सन्तान के वंशानुगत गुणों का विधायक होता है।
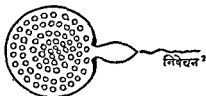
प्रचुर परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि व्यक्ति की शारीरिक विशेषताएँ; जैसे—रङ्ग, रूप, नेत्र, त्वचा, खून का प्रकार, लम्बाई, ठिगनापन, स्वास्थ्य आदि सभी

1. Fusion. 2. Fertilization.

पित्रागत होती है। किन्तु मानसिक गुण भी पित्रागत होते हैं अन्यथा नहीं, इसके बारे मे लोग अभी अनुमान ही लगाते हैं, पूर्ण विश्वास नही है। मानसिक वंशानुक्रम की समस्या पर हम बाद मे विचार करेंगे।

इस स्थान पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना पिता-पुत्र और माता-पुत्री में होने वाली विभिन्नताओं के ऊपर भी प्रकाश डालती है। माता-पिता के पित्रैक उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण सन्तान से भिन्न हो सकते हैं; जैसे—अत्यन्त प्रतिभाशाली पुरुषों और स्त्रियों मे भी मन्दबुद्धि से लेकर प्रकाण्ड प्रतिभा तक के पित्रैक मौजूद होते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि उनमें प्रज्ञा के पित्रैक अधिक शक्तिशाली होते हैं, और मन्दबुद्धिता के हीन। किन्तु यह सम्भव हो सकता है कि गर्भाधान के मन्दबुद्धिता के पित्रैक शक्तिशाली हों और बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान मन्दबुद्धि हो। इसी के आधार पर यह भी आश्चर्य नहीं कि गौरवर्ण के माता-पिता की सन्तान काली हो।

वंशानुक्रम की यंत्र-रचना सम्बन्धी नवीन खोजें[1]

सन् १९५३ से पहले जीवशास्त्री पित्रैक को एक प्रोटीन अणु[2] समझते थे। किन्तु हाल के नवीन परीक्षणों ने पित्रैक सिद्धान्त में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये हैं। अब यह पता लग गया है कि वंशानुक्रम के रासायनिक वाहक प्रोटीन नहीं होते वरन् एक रसायन होता है जिसे डीऑक्सीरिबो न्यूक्लिक एसिड[3] (DNA) कहते हैं। क्रोमोसोम इस रसायन के अणु ही रखते हैं। DNA में अद्भुत शक्ति अपने आप को उत्पन्न करने की होती है जब भी उसके वातावरण में आवश्यक रासायनिक कच्चे पदार्थ पाये जाते हैं। यह कोष के केन्द्र में ही केंद्रित रहता है। एक दूसरा रसायन जिसे रिबोन्यूक्लिक एसिड[4] (RNA) कहते हैं जो DNA का लगभग प्रतिरूप होता है, कोष के केन्द्र से कोष की बाहरी सतह की ओर निकलता है। इस प्रकार यह DNA द्वारा जो वंशानुक्रम सम्बन्धी संकेतावली होती है उसकी सूचना दूसरे तन्तुओं को देता है।

इस ओर अभी अनेक परीक्षण चल रहे हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब DNA और RNA के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी हो जायगी तो वंशानुक्रम के सिद्धान्त में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जायेंगे और शायद यह संभव हो जाये कि मानव मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सके। एक शिक्षक के लिए यह खोजें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। क्या ऐसा हो सकता है कि बालक जन्म से ही सीखा हुआ उत्पन्न हो और उसे बहुत कम शिक्षा देने की आवश्यकता हो? शिक्षकों की आँखें इसी कारण ऐसी खोजों की ओर लगी हुई हैं।

---

1. Recent findings in the mechanism of heredity. 2. Protein molecule. 3. Desoxyribonucleic acid. 4. Ribonucleic acid.

वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना सम्बन्धी सिद्धान्त[1]

आधुनिक काल मे वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना सम्बन्धी अध्ययन तीन दिशाओं मे हुआ है। जैवकीय दृष्टि से वे इस प्रकार हैं : (१) कोशिको[2]- विजमैन, विल्सन और मॉर्गन ने अन्वीक्ष[3] की सहायता से बीजकोषो[4] पर किये। (२) जीव सांख्यिकी[5]—इसके प्रणेता फ्रांसिस गाल्टन ने आँकडो को कर सांख्यकी सामग्री[6] के आधार पर उनका अध्ययन किया। (३) मैं परीक्षणात्मक पशु-प्रजनन पद्धति के द्वारा वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना का किया। क्योंकि विजमैन इत्यादि का सिद्धान्त मान्य नही है, इस कारण हम वर्णन यहाँ नही करेंगे। संक्षेप मे, गाल्टन तथा मैण्डल के सिद्धान्तो का करेंगे।

गाल्टन का जीव-सांख्यिकी का नियम[7]

गाल्टन ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे संक्रमण होने वाले गुणो का सां अध्ययन[8] किया। उसने अपने सिद्धान्त का निरूपण एकत्रित सामग्री के सा करण के आधार पर किया। यह सामग्री उसने मानव की शारीरिक बनाव उसकी सभी विशिष्टताओं एवं जारज[9] शिकारी कुत्तो के बारे में एकत्रित उसका विषय इस प्रकार है—वंशानुगत गुणो मे माता-पिता का दाय प्रत्येक
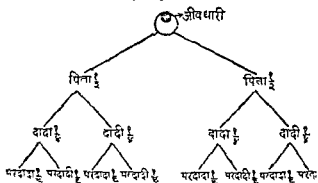
आधा होता है। उसके दादा, दादी मे से प्रत्येक का अंशदान एक-चौथाई तथा उसके परदादा, परदादी मे से प्रत्येक का अंशदान एक का आठवां भा है। इसी अनुपात मे व्यक्ति अपने दादा, परदादा तथा अन्य पूर्वजों से गुणो क करता है। यह शृंखला इस प्रकार चलती है—

$\frac{1}{2}+\frac{1}{4}+\frac{1}{8}+\frac{1}{16}$ ....। अथवा प्राणी की सम्पूर्ण दाय का कुल

---

1. Theories in the Mechanism of Heredity. 2. Cyt 3. Microscope. 4. Germ Cell. 5. Biometry. 6. Statistical 7. Galton's Law of Biometry. 8. Statistical Study. 9. Besset H

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि किसी व्यक्ति को समस्त विशेषताएँ अथवा गुण उसे अपने माँ-बाप द्वारा ही प्राप्त नही होते वरन् वे दादा, परदादा तथा अन्य पूर्वजो से क्रमशः संक्रमित होकर आते है। पूर्वजों की पुरानी-दर-पुरानी पीढ़ी द्वारा दिये हुए गुणों का अंशदान कम हो जाता है।

मैण्डलवाद[1]

'मैण्डलवाद' समानता और विभिन्नता की समस्या के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डालता है और इस समस्या के लिए हल भी प्रस्तुत करता है। मैण्डल महोदय आस्ट्रिया के रहने वाले एक ईसाई मठ के पादरी थे। उन्होने अपने बाग की हरी मटर पर अनेक परीक्षण किये, जिनके निष्कर्ष 'मैण्डलवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्ही परीक्षणो के आधार पर बाद मे चूहो, बिल्लियां तथा खरगोशों पर भी परीक्षण किये गये। अभी कुछ दिन पूर्व फल-मक्षिका[2] पर भी परीक्षण किये गये हैं। इस मक्खी मे बड़ी जल्दी-जल्दी गर्भाधान होता है तथा यह अण्डे भी बहुत-से देती है, जिससे उसकी विभिन्न पीढ़ियों के गुणों का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है।

मैण्डल का यह मत है कि पितृगत गुणो का विवेचन करते समय प्रत्येक गुण का अलग-अलग अध्ययन होना चाहिए, क्योंकि माता-पिता के समस्त गुणो का योग संक्रमित होकर सन्तान मे नहीं जाता, वरन् प्रत्येक गुण और उसकी मात्रा-विशेष संक्रमित होकर जाती है। वह इस सिद्धान्त का खण्डन करता है कि 'क' और 'ख' मिलकर $\frac{\text{क}+\text{ख}}{२}$ को जन्म देते हैं।

तात्पर्य, यदि 'क' और 'ख' के सभी गुणो को जोड लिया जाय तो उनके आधे जो गुण होंगे वही सन्तान के गुणों को निर्धारित करेंगे, ऐसा नही है। वह अपने परीक्षणो के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसी भी बालक मे पाये जाने वाले गुण वे हो सकते हैं जो उसके माता-पिता के व्यक्त[3] अथवा सुप्त[4] गुण रहे हो। जैसे, यदि किसी बालक के माता-पिता मे 'लम्बाई' का गुण प्रधान है तो 'नाटेपन' का सुप्त गुण भी उनमें होना चाहिए। अतः यह हो सकता है कि सन्तान मे 'व्यक्त गुण' के साथ 'सुप्त गुण' भी संक्रमित हो जाय। इस कथन की पुष्टि के लिए आगे हम मैण्डल के उन परीक्षणो के निष्कर्षों को प्रस्तुत करेंगे जो उसने अपने बाग की हरी मटर पर किये।

मैण्डल ने परीक्षण के लिए दो प्रकार की मटर चुनी—एक बड़ी (ब, ब), दूसरी छोटी, (छ, छ)। दोनो को मिलाकर बोया गया। हम इस स्थान पर बड़ी को 'व्यक्त गुण' और छोटी को 'सुप्त गुण' मान लेंगे। व्यक्त गुण वह है ज अपर-निषेचन के समय निर्बल नही पड़ता; तथा सुप्त गुण वह है जो होता तो अवश्य है, किन्तु

---

1. Mendelism. 2. Drosopila. 3. Dominent. 4. Recessive.

व्यक्त अथवा प्रधान गुण की उपस्थिति में छिप जाता है। यदि व्यक्त गुण उपस्थित न हो तो सुप्त गुण जो सुप्तावस्था मे रहता है, शक्तिशाली हो जाता है और व्यक्त हो जाता है। अपर-निषेचन[1] का परिणाम नीचे दिये हुए रेखाचित्र द्वारा आसानी से *समझा जा सकता है।*
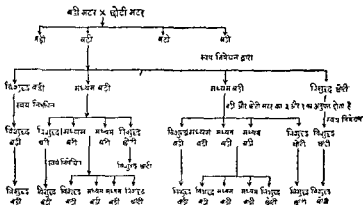
हम यह देखते है कि जब बडी और छोटी मटर मे अपर-निषेचन होता है तो उनमे बडापन 'व्यक्त' और छोटापन 'सुप्त' हो जाता है। फलस्वरूप, उन दोनो के निषेचन से उत्पन्न बडी मटरें भी छोटी का गुण अव्यक्त मे ग्रहण किये हुए होती हैं। जब उनमे स्वयं निषेचन[2] होता है तो वह सुप्त गुण व्यक्त हो जाता है तथा उन स्वयं-निषेचित मटरो में बडी और छोटी का अनुपात ३ : १ का होता है। उनमे एक विशुद्ध बडी, दो मध्यम बडी तथा एक विशुद्ध छोटी होती हैं। पुनः जब विशुद्ध बडी मटर मे स्वयं निषेचन होता है तो उससे विशुद्ध बडी मटर ही उत्पन्न होती है। किन्तु मध्यम बडी मटरो मे जब स्वयं निषेचन होता है तो उनमे से प्रत्येक से एक विशुद्ध बडी, दो मध्यम बडी और एक विशुद्ध छोटी उत्पन्न होती है। इन मटरो मे पुन. ३ : १ का अनुपात होता है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि अव्यक्त या सुप्त गुण सन्तान मे सुप्तावस्था मे रहते हैं और व्यक्त गुण के अभाव मे, जो ४ मे केवल १ होता है, *व्यक्त हो जाते हैं तथा प्रधान गुण का रूप धारण कर लेते हैं।*

मैण्डलवाद को अधिक स्पष्टतः समझने के लिए हम पशुओं का एक उदाहरण भी दे रहे हैं। परीक्षण से यह देखा गया है कि यदि घरेलू भूरे चूहो को सफेद चूहों से शस्करण[3] कराया जाय तो उनसे उत्पन्न सन्तानें सभी भूरी ही होंगी। अतः इससे सिद्ध हुआ कि उनमें भूरेपन का गुण व्यक्त या प्रधान और सफेद का सुप्त है। जब इन जारज भूरे चूहों में आपस के समागम से बच्चे उत्पन्न हुए तो वे भूरे और सफेद—

1. Cross-fertilization. 2. Self-fertilization. 3. Cross.

दोनों रंग के थे, उनका अनुपात ३ : १ का था—एक सफेद और तीन भूरे थे। जब दो सफेद चूहों में अन्तःप्रजनन[1] से बच्चे उत्पन्न हुए तो वे सभी सफेद थे। किन्तु जब भूरे चूहों में अन्तःप्रजनन से दो प्रकार के बच्चे उत्पन्न हुए जिसमें एक-तिहाई ने केवल भूरे बच्चों को जन्म दिया और दो-तिहाई ने भूरे और सफेद—दोनों प्रकार के बच्चे दिये।
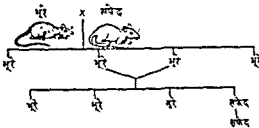
मेण्डल ने अपनी परिकल्पना[2] 'शुद्ध जन्तुओं के पृथक्करण'[3] के द्वारा भिन्नता के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला। उसने कल्पना की कि प्रथम वर्णसंकर पीढ़ी के बीज-कोष दो प्रकार के होते हैं—(१) शुद्ध व्यक्त, (२) शुद्ध अव्यक्त। व दोनों का मिश्रण नहीं होते किन्तु उन दोनों प्रकार के बीज-कोषों की संख्या बराबर होती है। अब यदि एक नर-कोष और एक मादा-कोष के संयोग से नवीन व्यक्ति उत्पन्न होता है तो हम देखते हैं कि एक नर व्यक्त-कोष तथा मादा व्यक्त-कोष के संयोग से विशुद्ध व्यक्त (प्रधान) उत्पन्न होता है तथा एक नर सुप्त-कोष और मादा सुप्त-कोष के संयोग से विशुद्ध सुप्त उत्पन्न होता है। एक नर व्यक्त तथा मादा सुप्त से एक माध्यम व्यक्त, और एक नर सुप्त तथा मादा व्यक्त से मध्यम व्यक्त उत्पन्न होगा। अतः विशुद्ध व्यक्त तो ४ में से केवल १ बार उत्पन्न होगा तथा विशुद्ध सुप्त भी ४ में से केवल १ ही होगा, जबकि मध्यम व्यक्त उनमें से २ होंगे।

संक्षेप में, यही मैण्डलवाद है जो एक ही माता-पिता से उत्पन्न सन्तानों में भिन्नता के कारणों पर प्रकाश डालता है।

वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना के आधार पर विभिन्नता की व्याख्या[4]

हमने ऊपर वर्णन किया है कि वंश-सूत्रों के सिरैवों के विभिन्न प्रकार से सायुज्यन होने से विभिन्नता का निर्धारण होता है। हम इस बात को यहाँ और स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

सिरैक अथवा जीन्स सदैव जोड़ों में सक्रिय होते हैं। इनमें से एक जीन्स माता से प्राप्त होता है और दूसरा पिता से। एक जीन्स का जोडा शरीर या व्यवहार

---

1. Inbreeding 2. Hypotheses. 3. Segregation of pure gametes. 4. Dissimilarities as explained by the mechanism of Heredity.

को कोई विशिष्ट विशेषता निर्धारित करता है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जोड़े के दोनों जीन्स एक से होते हैं, चाहे वह दो जीन्स—माता तथा पिता से अलग-अलग प्राप्त होते हैं। ऐसी दशा में जो गुण वह निर्धारित करते हैं उनके सम्बन्ध में किसी सन्देह को स्थान नहीं है, जैसे दोनों जीन्स भूरी आँख के हैं तो बालक की आँखें भूरी ही होंगी। किन्तु अधिकतर दोनों जीन्स समान न होकर कुछ भिन्न होते हैं।
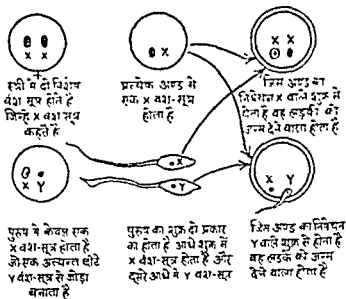
ऐसी दशा में एक जीन्स व्यक्त होता है, दूसरा गुप्त। व्यक्त जीन्स गुण निर्धारित करता है जबकि गुप्त वैसा ही रहता है। जैसे, एक जीन्स भूरी आँख का है और दूसरा काली का। यदि काली आँख का जीन्स व्यक्त है तो बालक की आँखें काली ही होंगी।

यौन-निर्धारण[1]—यौन का निर्धारण वंशसूत्रों[2] पर निर्भर होता है। एक वंशसूत्र का जोड़ा यौन-निर्धारण में ही सक्रिय रहता है। प्रत्येक स्त्री में दो X वंशसूत्र इस कार्य के लिए अलग होते हैं। प्रत्येक पुरुष में एक X वंशसूत्र तथा एक Y वंशसूत्र जो बहुत छोटा होता है, जोड़ा बनाये पाया जाता है। जब निषेचन क्रिया होती है तब यदि अण्ड तथा शुक्र के X वंशसूत्र का जोड़ा बनता है, तो बालिका का जन्म होता है। यदि X एवं Y वंशसूत्र का जोड़ा बनता है तो बालक का जन्म होता है। अतएव यौन-निर्धारण में केवल पुरुष के वंशसूत्र ही महत्त्वपूर्ण हैं। स्त्री के अण्ड

1. Sex-determination. 2. Chromosomes.

मे वंशसूत्र तो केवल X ही मे विभाजित होते हैं, जबकि पुरुष के पुत्र मे वह X एव Y मे विभाजित होते हैं।

गर्भाशय के वातावरण का बालक के विकास पर प्रभाव[1]

जैसा ऊपर कहा गया है, रिबैको के मातृत्यन बालक के गुणो का निर्धारण करते है। किन्तु यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि माता के पेट का वातावरण इन वंशानुक्रम की इकाइयो के कार्य पर प्रभाव डालता है। बालक के विकास का मार्ग मे जो निर्धन मातृत्यन द्वारा गर्भाधान के समय निर्धारित होता है, गर्भाशय के वातावरण के कारण परिवर्तन आ जाता है। यदि माता को अच्छी खुराक न मिले तो बालक के विकास की दिशा बदल जाती है। इसी प्रकार गर्भ धारण करने के दो महीने के अन्दर यदि माता को जरमन खसरा हो जाती है तो बालक की आँखें, कान अथवा हृदय दूषित रूप से विकसित होने की सम्भावना होती है।

किस प्रकार गर्भ मे बालक के विकास पर प्रभाव पड़ता है, यह इस पुस्तक के विस्तार-क्षेत्र से बाहर है। यहाँ तो हम इतना ही स्पष्ट करना चाहते हैं कि बालक के विकास में वातावरण प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण है।

अर्जित गुणों का संक्रमण[2]

अब हमें एक अत्यन्त विवादास्पद किन्तु महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार कर लेना चाहिए, जिसका शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार, दोनो पक्षो पर अत्यधिक प्रभाव है। यह समस्या है—अर्जित गुण भावी सन्तानो मे संक्रमित होते हैं अथवा नहीं? अभी थोड़े ही दिनो से यह सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है कि अर्जित गुण संक्रमित हो सकते है। मैक्डूगल द्वारा किये गये परीक्षण उसके प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये जाते हैं। मैक्डूगल ने विशुद्ध सफेद चूहो पर परीक्षण किया। उसने उन्हें एक तालाब के अन्दर रख छोड़ा जिसमें से निकलने के दो रास्ते थे—एक अन्धकारपूर्ण था, दूसरे मे प्रकाश था। प्रकाश वाले रास्ते मे एक तार लगा दिया था जिससे उस मार्ग से निकलते समय चूहो के पैर मे बिजली का धक्का लगे। अत. धक्का लगने के कारण वे दूसरा अँधेरा मार्ग ढूँढते थे। मैक्डूगल ने देखा कि उस पीढ़ी के चूहो ने सही मार्ग को जो अन्धकारपूर्ण था, खोजने मे लगभग १६५ बार गलती की और तब वे उस ठीक रास्ते से जा सके। मैक्डूगल इन्हीं चूहों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी पर यही परीक्षण करता रहा और उसने देखा कि २३वीं पीढ़ी के चूहो ने केवल २५ बार गलती की तथा अंधेरे मार्ग से निकलने मे सफल हुए। इस परीक्षण से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि कुछ अर्जित गुणों का संक्रमण हो सकता है।

---

1. Influence of environment in uterus on the development of the child 2. Transmission of Acquired Traits.

वंशानुक्रम के नियम[1]

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर वंशानुक्रम के कुछ सामान्य नियम निर्धारित किये जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं :

(क) समान समान को ही जन्म देता है,[2] (ख) भिन्नता का नियम[3], और (ग) प्रत्यागमन[4]।

(क) समान समान को ही जन्म देता है—इस नियम से तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार के माता-पिता होते हैं, उसी प्रकार की सन्तान होती है। बुद्धिमान माता-पिता के बच्चे बुद्धिमान, सामान्य बुद्धि वाले माता-पिता की सन्तान मन्दबुद्धि होती है। इसी प्रकार गौर-वर्ण माता-पिता के बच्चे गौर और श्याम-वर्ण माता-पिता के बालक श्याम-वर्ण के होते हैं।

इस नियम को हम सार्वभौमिक और सर्वग्राही सत्य मानकर नहीं चल सकते, क्योंकि इसके भी अपवाद मिलते हैं। यह देखा गया है कभी-कभी गौर-वर्ण माता-पिता की काली सन्तान होती है और काले माता-पिता की गौर-वर्ण की सन्तान होती है। इस अनियमितता और अपवाद के कारणों की व्याख्या वंशानुक्रम के दूसरे 'भिन्नता के नियम' द्वारा की गई है।

(ख) भिन्नता का नियम—बच्चे अपने माता-पिता की सच्ची प्रतिकृति नहीं हुआ करते। वे अपनी आकृति और बनावट में माता-पिता से कुछ-न-कुछ भिन्न अवश्य होते हैं। इस भिन्नता का कारण माता-पिता के बीज-कोषों की विशिष्टताएँ हुआ करती हैं। बीज-कोषों के अन्दर पित्रैक[5] या जीन्स होते हैं, जो विभिन्न संयोजनों में मिलने तथा आपस में विभिन्न होने के कारण ऐसी संतानों को जन्म देते हैं जो आपस में भिन्न होती हैं।

एक ही माता-पिता के बालकों में भिन्न-भिन्न पित्रैक-संयोजन के कारण उनमें आपस में भिन्नता आ जाती है। यह भी देखा गया है कि एक ही माता-पिता कभी गोरी सन्तान को और कभी काली सन्तान को जन्म देते हैं। गोरेपन और कालेपन का निश्चय पित्रैकों के संयोग से होता है। यह भिन्नता जिस प्रकार से होती है, उसका वर्णन हम ऊपर मेण्डलवाद में कर चुके हैं।

भिन्नता का नियम हमें यह बताता है कि एक ही परिवार के बालकों में शारीरिक, मानसिक और रंग-रूप की भिन्नता क्यों है। किन्तु यह निश्चय है कि वे आपस में भिन्न होते हुए भी अन्य बालकों की अपेक्षा आपस में अधिक समानता रखते हैं।

(ग) प्रत्यागमन—गाल्टन के अनुसार, "प्रतिभाशाली माता-पिता से कम प्रतिभाशाली सन्तान होने की प्रवृत्ति और निम्न कोटि के माता-पिता से कम

1. Laws of Heredity. 2. Like begets Like. 3 The Law of variation. 4. Regression. 5. Genes.

निम्न कोटि की सन्तान होने की प्रवृत्ति ही प्रत्यागमन है।"[1] प्रकृति में कुछ ऐसा नियम है कि वह प्रत्येक गुण[2] को सामान्य रूप में प्रकट करना चाहती है। इसलिए एक प्रतिभाशाली माता-पिता की सन्तान में 'सामान्य बुद्धि' की ओर ही प्रवृत्ति के गुण पाये जायेंगे। इसमें तात्पर्य यह नहीं कि सदैव सब प्राणियों में 'प्रत्यागमन' होता है किन्तु यह प्रवृत्ति पाई अवश्य जाती है।

यह तो प्राय: देखा जाता है कि अत्यन्त मेधावी माता-पिता की सन्तान उतनी मेधावी नहीं होती। प्रत्यागमन के कारण इस प्रकार हैं

(i) माता अथवा पिता जो अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं, उनके अन्दर अपने पितरों के प्रातिभ बीजकोषों का संयोग होता है जो उन्हें प्रतिभा-सम्पन्न बना देता है। पिता के सर्वोत्कृष्ट गुण[3] जब माता के सर्वोत्कृष्ट गुणवाहक पित्रैकों में मिलते हैं तो प्रतिभा-सम्पन्न बालक का जन्म होता है। परन्तु इस प्रकार से उत्पन्न प्रतिभावान माता-पिता में सामान्य अथवा न्यून कोटि के बीजकोष होते हैं जो उस संयोग की अपेक्षा जिससे उनका जन्म हुआ, हीन होते हैं। अत इन माता-पिता के संयोग से जो बालक उत्पन्न होते हैं, उनमें निम्न कोटि के गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

(ii) प्रतिभावान माता अथवा पिता का दूसरे ऐसे व्यक्ति से समागम होता है जिसमें उसी समान प्रतिभा-उत्पादक तत्त्व नहीं है तो इस समागम में उस प्रकार के उत्कृष्ट बीजकोषों का मेल नहीं हो सकता जैसा कि दो प्रतिभावान व्यक्तियों के संयोग से होता है। फलस्वरूप, बालक उतना प्रतिभावान नहीं होता, जितने उसके पितर हैं।

(iii) इसी प्रकार दो मूर्खों के बीजकोष उन बीजकोष के संयोग से अच्छे भी हो सकते हैं जिनमें कि वे स्वतः उत्पन्न हुए, अत इस प्रकार के माता-पिता की सन्तानें उनसे कहीं बुद्धिमान होंगी, क्योंकि वे सामान्य की तरफ विकसित होंगी।

वंशानुक्रम के ये तीन नियम मनुष्य की विशेषताओं और गुणों को समझने में बड़े उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं।

'वातावरण' क्या है ?[4]

अभी हम यह देख चुके हैं कि व्यक्ति के विषय में वंशानुक्रम का कितना महत्त्वपूर्ण योगदान है। डारविन के उद्‌विकास के सिद्धान्तों ने यह बताया कि वातावरण के अनुकूल अपने को व्यवस्थित करने के प्रयास में प्राणियों में कुछ स्वाभाविक शारीरिक परिवर्तन आ जाते हैं। ये परिवर्तन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित होते और दृढ होते हैं। कालान्तर में जीव का स्वरूप अपने मौलिक रूप

1. "The tendency for children of very bright parents to be less bright than their parents and a comparable tendency for the children of very inferior parents to be less inferior is called regression." —*Sorenson.*

2. Trait. 3. Best Trait. 4. What is Environment?

से एकदम भिन्न हो जाता है, लेकिन अभी तक वातावरण की कोई परिभाषा नहीं दी गयी। साधारण बोलचाल की भाषा में हम वातावरण का अर्थ अपने चारों तरफ की परिस्थितियों से लगाते हैं। डगलस[1] और हॉलैण्ड[2] ने अपनी पुस्तक "एजूकेशनल साइकोलॉजी" में 'वातावरण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—"वातावरण वह शब्द है जो समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करता है, जो जीवधारी के जीवन-स्वभाव, व्यवहार और अभिवृद्धि, विकास तथा प्रौढ़ता पर प्रभाव डालता है।"

वास्तव में वातावरण के अन्तर्गत वह सभी कुछ आता है, जिसका बालक के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध है।

मानसिक वातावरण[3]

बालक कुछ सहज योग्यताएँ लेकर जन्म लेता है। यदि उसे अनुकूल वातावरण के द्वारा कोई उपयुक्त उद्दीपन नहीं प्रदान किया जाता तो वे योग्यताएँ अपने प्रकृत स्वरूप में विकसित होती हैं। यद्यपि एक व्यक्ति की शारीरिक रचना, जैसे—लम्बाई, ठिगनापन आदि, उसके वंशानुक्रम से निर्धारित होती है; किन्तु यदि वह गन्दे वातावरण में कार्य करता है, जहाँ उसके मन को स्वस्थ वायु नहीं मिलती तो उसकी जीवन-शक्ति के मर्म पर आघात होता है। इसी प्रकार बालक में किसी भी प्रकार की सम्भावनाएँ और योग्यताएँ क्यों न हों, जब तक उसे उचित मानसिक वातावरण नहीं मिलेगा, वह उनका समुचित विकास नहीं कर सकता।

मानसिक वातावरण से हमारा तात्पर्य उन सम्यक् परिस्थितियों से है, जिनमें बालक का वांछित विकास हो सके, और जो उसके मन पर प्रभाव डालती हों। पाठशाला की वे सभी वस्तुएँ मानसिक वातावरण के अन्तर्गत आती हैं, जिनसे बालक का समुचित मानसिक विकास होता है। इस दृष्टिकोण से पाठशाला के मानसिक वातावरण के अन्तर्गत—परीक्षणशाला, पुस्तकालय, गोष्ठी और संघ आते हैं। इन सभी की उचित व्यवस्था बालक के इस मानसिक विकास में पूर्ण योग देती है।

पाठशाला में उपयुक्त मानसिक वातावरण उत्पन्न करने से बालक की सीखने की क्रिया को भली-भाँति व्यवस्थित किया जा सकता है और बालक अनजाने में ही बहुत-सी बातें सीखता है। इस प्रकार उपयुक्त वातावरण के द्वारा बालक को अनजाने में ही सिखाने के द्वारा शिक्षा देना, एक महान् बौद्धिक योजना मानी जाती है।

प्रत्येक शिक्षण-संस्था को उपयुक्त मानसिक वातावरण उत्पन्न करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसका पुस्तकालय और परीक्षणशालाएँ आवश्यक वस्तुओं से सुसज्जित होनी चाहिए। पाठशालाओं में बच्चों के मनोविनोद के लिए भी पर्याप्त सामग्री होनी चाहिए। वहाँ निर्माणशाला और छोटा-सा अजायबघर भी होना चाहिए। वहाँ कुछ साहित्यिक और सांस्कृतिक समारोह होना चाहिए, जैसे—वाद-

1. Douglas. 2. Holland. 3. Mental Environment.

विवाद प्रतियोगिता, साहित्यिक गोष्ठी एवं बालक की आत्माभिव्यक्ति के लिए नाटक एवं अन्य सहगामी कार्यों की व्यवस्था होनी चाहिए।

सामाजिक दाय[1]

किसी समाज की प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृति ही उस सामाजिक समुदाय का 'दाय' कहलाता है। वही उसकी सामाजिक सम्पत्ति होती है। यह सामाजिक दाय *जाति की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होता रहता है। किन्तु यह माता-*पिता के बीजकोषों द्वारा संक्रमित न होकर रीति-रिवाज, परम्परा, भाषा, साहित्य, शिष्टाचार और जातीय दर्शन के द्वारा होता है।

किसी भी जाति का सामाजिक दाय, उसके लिए गर्व का विषय होता है। जाति की प्रत्येक पीढ़ी इसे आगामी पीढ़ी में संक्रमित करती है और अपने सामाजिक जीवन को उसके अनुरूप बनाने की चेष्टा करती है। किन्तु इस हस्तान्तरण में प्रत्येक पीढ़ी मे उस सामाजिक दाय मे कुछ-न-कुछ और जुड़ जाता है। इस प्रकार संस्कृति का विकास होता रहता है और हर पीढ़ी के योगदान से उस जाति की संस्कृति समृद्धशाली बनती है जो पुन. आगे की पीढ़ियों में संक्रमित हो जाती है।

बालकों को शिक्षा देते समय अध्यापक को सांस्कृतिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उसे जातीय इतिहास की वीरतापूर्ण कहानियाँ, ग्राम कथाएँ, साहित्य और कविताओं के द्वारा शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षक का कार्य निर्धारित पाठ्यक्रम मात्र पढ़ा देना नहीं है, वरन् नयी पीढ़ी में सामाजिक दाय और जातीय गौरव का संक्रमण करना भी है। इस प्रकार का संक्रमण बालक की शिक्षा को उचित ढंग से पूर्ण और सफल बनाने मे सहायता देगा।

वातावरण का शैक्षिक अभिवृद्धि पर प्रभाव[2]

वातावरण की दशाएँ व्यक्ति की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक अभिवृद्धि पर प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के लिए, ऐसे बालकों मे भी जिनकी थायरायड[3] ग्रन्थि बिलकुल ठीक है, गठिया का रोग पैदा हो जाता है, जब उनको आयोडीन[4] का मिलना एक निश्चित मात्रा से कम हो जाता है। इसी प्रकार, यदि एक बालक की माता प्रथम वर्ष के आखिरी छ माह मे उसे छोड़ देती है तो उसमे अत्यधिक उदासी आ जाती है।

जिस समय बालक किण्डरगार्टन मे आता है, उसकी व्यवहार करने की प्रवृत्तियाँ एक ढंग अपना चुकी होती हैं। इस स्तर पर वह दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क मे आता है और वह उस पर प्रभाव डालते हैं। बालक दूसरो के साथ कैसा व्यवहार करे यह सीखने लगता है। वह अपनी प्रवृत्तियो को इस प्रकार व्यक्त करने की चेष्टा करता है जो उसके माता-पिता तथा अन्य व्यक्तियों को जो उसके सम्पर्क मे आते हैं, स्वीकृत है। *इस प्रकार उस पर वातावरण मे स्थित व्यक्तियो का बहुत प्रभाव पड़ता है।*

---

1. Social Heritage. 2. The *Influence of the Environment* on Educational Growth. 3. Thyroid glands. 4. Iodine.

वातावरण के प्रभाव को और अच्छी तरह समझने के लिए हम शिशु-पालन की विधियों[1] का दो अलग-अलग संस्कृतियों में वर्णन करेंगे। यह दो संस्कृतियाँ हैं बाली[2] के टापू की तथा सियोक्स के इण्डियन्स[3] की। बाली जावा के पास एक टापू है[4]। यहाँ के व्यक्ति शान्त, नरम तथा भद्र स्वभाव के हैं। उनके व्यवहार के नमूने हमारी संस्कृति से विभिन्न हैं। न तो वह प्रतिद्वन्द्विता में विश्वास करते हैं, न ही अपने को दूसरे से ऊँचा सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। ऐसा व्यवहार बाली निवासी बाल्यपन से सीखते हैं। बाली के बालकों के माता-पिता बाल्यपन में ही उन्हें खूब तंग करते हैं। उनके परिवार के सदस्य भी ऐसा ही करते हैं। इस प्रकार उन्हें प्रेम अथवा क्रोध प्रदर्शित करने की उत्तेजना देते हैं, किन्तु जैसे ही वह ऐसा करने लगते हैं, उनकी ओर फिर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। न तो माता-पिता प्रेम की वापसी देते हैं, न उनके क्रोध को कम करने की चेष्टा करते हैं। इसका फल यह होता है कि बालक दूसरे व्यक्तियों के प्रति गहरी संवेगात्मक प्रतिक्रिया करना भूल जाते हैं। यदि एक छोटा बालक इधर-उधर हो जाता है तो माता-पिता घोर-परेशान नहीं हो जाते। कोई भी व्यक्ति जिसे वह मिलता है, शान्तिपूर्वक उसे उसके घर पहुँचा देता है।

बाली बालकों के सीखने में कुछ अन्य विशेषताएँ भी होती हैं जो उन्हें आक्रमण रहित व्यवहार करने को प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए, बाली द्वीप में यह अच्छा समझा जाता है कि वस्तुओं को सीधे हाथ से पकड़ा जाये। जब भी वस्तुएँ बालक द्वारा बायें हाथ से पकड़ी जाती हैं, माता बायाँ हाथ पीछे खींच देती है और दाहिने हाथ को धीमे से आगे बढ़ा देती है। ऐसा बड़े शान्तिपूर्ण ढंग से बार-बार किया जाता है और माता क्रोध का कोई भी प्रदर्शन नहीं करती है। इसी प्रकार के सीखने के अनुभव बाली बालक को यह शिक्षा देते हैं कि वह दूसरों की मांगों को निष्क्रिय भाव से ग्रहण करे और परम्पराओं का अनुकरण करे। क्योंकि बिना क्रोध, घूँसेबाज़ी अथवा राग के बालक को सिखाया जाता है, वह शान्तिपूर्ण ढंग से व्यवहार करना सीख लेता है। इस प्रकार बाली संस्कृति शान्ति की संस्कृति का रूप ले लेती है।

---

1. Child rearing techniques. 2. Bali 3. Sioux Indians.

4. यह अध्ययन १९४४, १९३५ तथा १९३६ में प्रकाशित हुए थे। अब सम्भवतः बाहरी प्रभाव से इनमें परिवर्तन आ गये हैं। अध्ययनों का वर्णन जिन पुस्तकों एवं पत्रिकाओं से लिया गया उनका विवरण इस प्रकार है: G. Bateson: 'Cultural determinants of personality' in J. McV. Hunt (Ed.), Personality and Behavior Disorders. N. Y., Ronald Press, 1944 ... "The Basis of Temper," Character & Personality, 1935, 4, 120-126. E. H. Erikson 'Observations on Sioux Education', ... 1939, 7, 101-156 का वर्णन यहाँ किया गया है G. G. ... E. G. ..., J. J. Dresta कृत Educational Psychology, N. Y., Appleton, 1956, 22-35 से लिया गया है।

सियोक्स मे बालकों का पोषण वाली से बिलकुल विपरीत प्रकार से होता है। सियोक्स मे भी बालक को माता अपने स्तन से दूध पिलाती है। ऐसा वह प्रत्येक उस समय करती है जब बालक दूध मांगता है। ऐसा वह जब तक बालक तीन वर्ष से ऊपर का नही हो जाता, करती रहती है। इस प्रकार सियोक्स बालक को रोने-धोने की आवश्यकता नही पडती। उसके माता-पिता यह समझते हैं कि यदि वह रोये तो उसमे भय का संचार हो जायेगा और वह एक खराब शिकारी होगा। किन्तु उसके *क्रोध की प्रक्रिया को दूसरे ढंग से उत्तेजित किया जाता है। जब एक बालक क्रोधित* होता है तो माता प्रसन्न होती है और उसको अधिक गुस्सा होने के लिए कचोटती हैं। सियोक्स इण्डियन्स का विचार है कि इस प्रकार के क्रोध के फट पडने से बालक मजबूत और बहादुर बनता है। इसी प्रकार के शिक्षण के कारण सियोक्स आक्रमणकारी, बाहरी लोगों के प्रतिकूल और आपस मे लड़ाकू होते हैं। सियोक्स की संस्कृति मे आक्रमणकारी प्रवृत्ति उनके वातावरण मे, शिशु-पालन मे और प्रौढ व्यवहार मे आक्रोश एवं लडाकूपन के प्रोत्साहन के कारण ही उभर गई है।

इसी प्रकार के अन्य अध्ययन भी हमे वातावरण के प्रभाव का स्पष्ट संकेत देते हैं। मैककैन्डल्स[1] महोदय के अनुसार एक बालक को यदि घर का-सा वातावरण नही मिलता तो उसका बौद्धिक विकास बहुत पिछड़ जाता है। यह कथन हमे इस ओर ध्यान देने पर बाध्य करता है कि वातावरण किस सीमा तक शैक्षिक अभिवृद्धि पर प्रभाव डालता है। अब हम इस सम्बन्ध मे कुछ अध्ययनों का वर्णन करेंगे, यथा—

(१) जिङ्ग महोदय[2] ३० ऐसे व्यक्तियों का वर्णन करते हैं जिन्होने अपने प्रारम्भिक जीवन के अनेक वर्ष जानवरो अथवा असभ्य जंगलियो के साथ व्यतीत किये थे। इनमे से *अधिकतर ८ वर्ष तक मानव-समाज मे नहीं लाये गये।* इस आयु तक प्रारम्भ के जीवन के वातावरण का स्थायी प्रभाव उन पर अंकित हो चुका था। बहुत से उनमे से जानवरो की भाँति खाते थे, वह जीभ से जमीन पर की चीज चाटते थे। ३० मे से १० बहुत दिनो तक कोई भी वस्त्र धारण करने से मना करते रहे। ६ पर गर्मी-सर्दी का कोई प्रभाव नही पडता था। मानव-समाज के ढग अपनाने मे ऐसे विभिन्न बालको को विभिन्न समय लगा।

दो बालिकाओ का इन ३० मे से विशेष रूप से वर्णन किया जा सकता है। इनको बहुत छोटी आयु मे ही भेड़िये उठा ले गये थे। जब यह क्रमशः २ एवं ८ वर्ष की थीं, तब उन्हे भेड़ियों की माँद मे से बचाया गया। इनमे से छोटी बालिका कुछ समायोजन करने की ओर अग्रसर हुई किन्तु एक वर्ष के भीतर ही उसकी मृत्यु

1. McCandless, B. "Environment and Intelligence."—*Amer J. ment. Defic.* 1952, 56, 674-691.

2. Zingg, R. M. : "Feralman and extreme cases of isolation." —*Amer, J. Psychol.*, 1940, 53, 487-517.

हो गई। इनकी बालिका १८ वर्ष तक जीवित रही। इसके समय में इनके बच्चे
आदर्श तथा इनके बच्चों की आदतें ठीक थीं।

(२) फ्रीमैन,[1] बर्क्स[2] एवं स्कील्स[3] के अध्ययन इस बात का संकेत करते
कि उन बालकों ने जो कुलीन वातावरण से अच्छे वातावरण में लाये गए, I
में उन्नति प्रदर्शित की। जितनी कम आयु में अच्छे वातावरण में परिवर्तन हु
उतनी ही अधिक उन्नति प्रदर्शित की गई।

[यह चित्र एक खोफनाक डाकू का है। गरीब परिवार में पैदा हुआ था
पशु चुराने में विशेषता प्राप्त कर गया। एक ऐसे वातावरण में उत्पन्न होने के का
जहाँ डकैती, खून का ही बोलबाला है, वह एक बड़े डाकुओं के गिरोह का नेता बन ग
और बड़ी कठिनाई से पुलिस द्वारा मारा गया। क्या यह वातावरण ही है जो घं
के बच्चों में डाकू उत्पन्न करता है? यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिसका
मनोवैज्ञानिकों को वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करके निकालना चाहिए।]

1. Freeman, F. N., Holzinger, K. J. and Mitchell, B. C. "The influence of environment on the intelligence, school ach[ieve]ment, and conduct of foster children."—*Yearb. nat. Soc. Stud. Educ*, 27 (I), 1928, 219-316.

2. Burks, Barbaras · "The relative influence of nature an[d] nurture upon mental development."—*Yearb. nat. Soc. Stud. Educ* 27 (I) 1928, 219-316.

3. Skeels, H. M. "Some Iowa studies of the mental grow[th] of children in relation to differentials of the environment: summary."—*Yearb. nat Soc. Stud. Educ*, 39 (II), 1940, 201-308.

4. I Q का वर्णन आठवें अध्याय में दिया गया है।

इन अध्ययनों के अतिरिक्त अन्य अध्ययन जो पोषेय बालकों पर किये गये, उनका वर्णन बुद्धि के अध्याय में किया गया है।

वंशानुक्रम और वातावरण का सापेक्ष महत्त्व[1]

हमारे सामने अब पुनः वही प्रश्न है, जिसे हमने अध्याय के प्रारम्भ में ही उठाया था कि 'वंशानुक्रम और वातावरण में कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है ?' हमें इस प्रश्न का उत्तर शिक्षा के दृष्टिकोण से ढूँढ़ना है कि शिक्षा में कौन अधिक योगदान देता है ? आजकल मनोवैज्ञानिकों के सामने यही प्रश्न है कि बालक की शिक्षा में वंशानुक्रम और वातावरण में किसका महत्त्व अधिक है ? यह प्रश्न शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों के सामने इसी प्रकार का बना रहेगा जब तक कि इसका कोई पूर्ण वैज्ञानिक हल नहीं मिल जायगा। इस बात से कोई भी असहमत नहीं है कि वंशानुक्रम और वातावरण, दोनों ही बालक की शिक्षा पर प्रभाव डालते हैं। किन्तु किस हद तक वंशानुक्रम शिक्षा को प्रभावित करता है और किस सीमा तक वातावरण, इस प्रश्न को लेकर मनोवैज्ञानिकों में आपस में मतभेद है।

'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' दो महान् शक्तियाँ हैं, जो मानव-जीवन को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। वस्तुतः मानव इन दोनों की ही उपज है। वातावरण के अन्तर्गत वे सभी—नैतिक, सामाजिक, शारीरिक और बौद्धिक—परिस्थितियाँ आती हैं जो व्यक्ति के जीवन पर अपना प्रभाव डालती हैं। वंशानुक्रम उन सभी गुणों का योग है जिन्हें बालक जन्म से ही लेकर आता है। ये पितागत गुण व्यक्ति को निश्चित विशेषताएँ प्रदान करते हैं, किन्तु उन्हें परिमार्जित और रूपान्तरित कर एक विशेष एवं उपयुक्त साँचे में ढालना वातावरण का ही कार्य है। अतः वंशानुक्रम और वातावरण एक-दूसरे के पूरक हैं। वे मानव-जीवन के सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक—सभी क्षेत्रों में एक-दूसरे के पूरक बनकर बहुत अधिक सहायता देते हैं। व्यक्ति के जीवन का निर्माण किसी एक के द्वारा सम्भव नहीं, वह तो 'वंशानुक्रम' और 'वातावरण', दोनों के सहयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है।

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति कुछ जन्मजात गुणों को लेकर जन्म लेता है। उसकी शारीरिक आकृति भी कुछ विशिष्ट प्रकार की होती है। कभी-कभी वह प्रकृत अथवा अभद्र व्यवहार भी करता है, जो वंशानुक्रम-जनित होता है। शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि उसके व्यवहार में परिवर्तन लाये तथा उसके व्यवहार करने में सामाजिक एवं बौद्धिक दृष्टिकोण प्रदान करे। इन वांछित परिवर्तनों को लाने के लिए उपयुक्त वातावरण का सहयोग मिलना परम आवश्यक है। अतः एक शिक्षक के लिए वंशानुक्रम की यंत्र-रचना और वातावरण के प्रभाव की सम्यक् जानकारी नितान्त आवश्यक है।

1. Relative Importance of Heredity and Environment.

वह विशेषताएँ जो प्राणी मे केवल वंशानुक्रम के कारण ही पायी जाती हैं, उसकी आँख का तथा बाल का रंग, खून का प्रकार, चेहरे की बनावट तथा अन्य शारीरिक विशिष्टताएँ हैं। स्वास्थ्य, स्फूर्ति, व्यवहार, कुछ बीमारियो से उन्मुक्ति इत्यादि मे विभेदन या तो वातावरण और वंशानुक्रम दोनों के कारण होते हैं, अथवा बहुत कुछ मात्रा मे वातावरण के कारण ही होते हैं। अपराधी व्यवहार वंशानुगत नहीं है। इसका संक्रमण नही होता किन्तु वंशानुक्रम द्वारा जीवन के आधार निर्धारित होते हैं जो इस बात को समझने मे सहायता देते हैं कि व्यवहार सामाजिक अथवा असामाजिक होगा। शिक्षक को यह समझ लेना आवश्यक है कि वह बालक का अच्छा विकास वातावरण पर नियन्त्रण रखकर कर सकता है। कुछ शारीरिक विशेषताओं के सम्बन्ध मे तो उसके प्रयास फलदायक न होंगे, किन्तु विकास के अन्य रूपों मे उसके प्रयासो के सफल होने की बहुत सम्भावना है।

वंशानुक्रम मे 'समानता'[1], भिन्नता'[2] तथा 'प्रत्यागमन'[3] के नियम हमें विभिन्न व्यक्तियों के गुण-दोषो को समझने मे सहायक होते हैं। अतः अध्यापक के लिए इन नियमो की जानकारी परमोपयोगी होनी है। बालको की बहुत-सी समस्याओं के हल करने मे यह जानकारी सहायता पहुँचती है। उदाहरण के लिए, 'प्रत्यागमन' के नियम के द्वारा हम यह समझ लेते हैं कि एक महान् प्रतिभाशाली माता-पिता के सामान्य बुद्धि वाले बालक क्यो पैदा होते हैं। एक अध्यापक जो इस नियम से अवगत नहीं है, बालक की सामान्य बुद्धि का कारण वंशानुक्रम न मानकर, उसका कार्य मे रुचि न लेना मानेगा। प्रायः हम लोगों ने अध्यापक को बालकों से यह कहते सुना है कि—"तुम्हारे पिता तो अत्यन्त बुद्धिमान हैं और तुम बिलकुल मन्द-बुद्धि हो। तुम परिश्रम नही करते; और यही कारण है कि परीक्षा मे अच्छे अङ्को मे उत्तीर्ण नही होते।" यहाँ पर बहुत सम्भव है कि उत्तम परीक्षाफल न पाने का कारण उसका आलसी होना या परिश्रम न करना न होकर, उसका वंशानुक्रम हो। और यदि बालक घोर परिश्रम करता है, तदुपरान्त भी वह असफल हो जाता है तो यह निश्चय है कि उसमें भावना-ग्रन्थियाँ[4] पड जायेंगी। जिस अध्यापक को वंशानुक्रम के नियमों का सम्यक् ज्ञान है, वह बालक को भावना-ग्रन्थियों का शिकार होने से बचा लेगा।

जगत् मे प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न पाया जाता है। यद्यपि यह माना जाता है कि "समान समान को ही जन्म देता है", फिर भी इस समानता मे हमे बहुत-सी विभिन्नताएँ मिलती हैं। अध्यापक को प्रत्येक बालक का अलग-अलग अध्ययन करना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि एक बालक से दूसरे मे क्या भिन्नता है? इस प्रकार से विविध परिस्थितियों मे बालक के व्यवहार को समझने मे वह कृत-कार्य हो सकेगा और तभी शिक्षक बालक के व्यवहार को अपनी इच्छानुकूल मोड़ने तथा उसे इष्ट दिशा मे ले जाने मे फलीभूत होगा। अध्यापक को बालक के प्रकृत व्यवहार[5]

---

1. Similarity. 2. Variation 3. Regression. 4. Complexes
5. Innate Behaviour.

मे परिचित होना चाहिए। उसे बालक की बुद्धि, रुझान, प्रवृत्ति और योग्यता आदि का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए, जो उसे जन्म से ही प्राप्त होते हैं। उसे बालक के व्यवहार का निर्माण उसके जन्मजात गुणों के आधार पर ही करना है। वह बालक को उपयोगी कार्यों में तभी लगा सकता है, जबकि उसे बालक की जन्मजात योग्यता का पता हो।

बालक की शिक्षा के लिए वंशानुक्रम की जानकारी पर्याप्त नहीं है। उसके जन्म के उपरान्त कुछ ऐसे प्रभावशाली तत्त्व हैं जो बालक के मानसिक, नैतिक और सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालते हैं। ये तत्त्व वातावरण के अन्दर पाये जाते हैं, जिसमें कि बालक जन्म लेता है। अतः वातावरण का अध्ययन भी बालक की शिक्षा के लिए परमोपयोगी और अत्यन्तावश्यक है।

किसी भी कुटुम्ब में जन्म लेने वाला बालक उसी परिवार के रीति-रिवाज और परम्पराओं को ग्रहण करता है। उसके सम्पूर्ण दृष्टिकोण का निर्माण उस कुटुम्ब की पूर्व-धारणाओं एवं पूर्व-विचारणा के आधार पर होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी बालक का जन्म ऐसे कबीले में होता है जो छोटी-मोटी चोरी करने में अत्यन्त दक्ष है तो वह बालक भी अपने परिवार के सदस्यों के साहचर्य से उस कला में प्रवीण हो जायगा। यदि घर का वातावरण सुन्दर है तो बालक का विकास भी स्वाभाविक रूप में होता है, और यदि गंदा है तो बालक का व्यक्तित्व भी कुसमायोजित[1] बन जाता है। इसी प्रकार से अन्य सामाजिक समुदायों का बालक के

जीवन का त्रिकोण
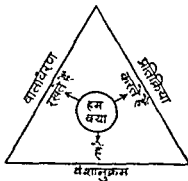
[चित्र में जीवन का त्रिकोण वंशानुक्रम, वातावरण और प्रतिक्रिया से मिलकर बना दिया गया है। हम वंशानुक्रम द्वारा निर्धारित होते हैं और एक वातावरण में उत्पन्न होते हैं। इन दोनों के आधार पर ही हम प्रतिक्रिया करते हैं।]

1. Maladjusted.

जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अपराधी जाति से उत्पन्न होने वाले बालक
अपराध-वृत्ति की तरफ स्वतः झुकाव हो जाता है और वह कुसंस्कार एवं बुरी
कला को बड़ी निपुणता से और सहज रूप से सीख लेता है। चूँकि शिक्षा का
बालक के व्यवहार में इस प्रकार से इष्ट परिवर्तन लाना है जिससे उसमें अच्
आदतें आ जायँ और वह देश का योग्य नागरिक बन सके, अतः वातावरण
भुलाकर शिक्षा नहीं दी जा सकती, क्योंकि यह बालक के जीवन को प्रारम्भ से
बहुत अधिक प्रभावित करता है।

इस पर्यवेक्षण के उपरान्त हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि शिक्षक के लि
'वंशानुक्रम' और 'वातावरण'—दोनों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों ही बालक
शिक्षा पर गहरा प्रभाव डालते हैं और किसी एक के भी बिना बालक की शि
अधूरी रह जायगी। अतः किसी भी सुन्दर शिक्षा-योजना में इनमें से किसी की
उपेक्षा नहीं की जा सकती तथा उपयुक्त शिक्षा के लिए दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं।

अच्छे स्कूलों में बालकों के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए अनु
वातावरण उत्पन्न किया जाता है। उन्हें समृद्ध पुस्तकालय, अध्ययनकक्ष और खेल
मैदान की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। उन विद्यालयों में शिक्षा देने वाले अध्या
बालकों के साथ सौहार्द, सहानुभूति और प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं। वे बालकों
लिए उदाहरणस्वरूप सुन्दर गुणों से युक्त और अच्छे व्यवहार के गुणों रूप होते
ऐसा सुन्दर वातावरण बालक को अच्छा और चरित्रवान् बनने के लिए उत्प्रे
करता है।

अध्यापक को इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि बालकों के घ
का वातावरण भी उनके समुचित विकास के लिए अनुकूल हो। यदि वह घर
वातावरण को दूषित पाता है तो उसे उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करना चाहि
फिर भी यदि बालक के ऊपर घर के दूषित वातावरण के प्रभाव को दूर करने
वह समर्थ नहीं होता तो उसे बालक को और अधिक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहि
जिससे उसके मन पर घर के वातावरण का प्रभाव कम हो जाये।

पाठशाला के कार्यक्रम में वंशानुक्रम और वातावरण—दोनों का ही ध्य
रखना चाहिए। सर्वप्रथम बालक की योग्यता, रुचि, रुझान, प्रवृत्ति, संवेग अ
बुद्धि का अध्ययन होना चाहिए। तदुपरान्त इस प्रकार का उपयुक्त वातावरण उत
करना चाहिए जिससे बालक अपनी निहित सम्भावनाओं को अपने स्वाभावि
रूप में विकसित कर सके।

सारांश

"व्यक्ति के जन्मजात गुणों का कुल योग ही वंशानुक्रम कहलाता है।" जैवि
दृष्टि से निषिक्त अण्ड में सम्भाव्यतः उपस्थित विशिष्ट गुणों का योग ही 'वंशानुक्र
है। पुरुष के शुक्र और स्त्री के अण्ड के संयोग से व्यक्ति के जीवन का प्रारम्भ हो

है। माँ-बाप के बीज-कोषों में कुछ निश्चित विशेषताएँ होती हैं जो मिलकर संतान के गुणों को निर्धारित करती हैं। एक निषिक्त अण्ड में २३ युग्म वंशसूत्र होते हैं, उनमें आधे माँ के और शेष पिता के होते हैं। वस्तुतः ये ही वंशसूत्र वंशानुक्रम के लक्षणों को निर्धारित करते हैं। प्रत्येक वंशसूत्र में छोटे-छोटे तत्व होते हैं जो पित्रैक कहलाते हैं। ये पित्रैक ही वंशानुक्रम के वास्तविक निर्धारक होते हैं। ये ही माँ-बाप और बालक की भिन्नता के कारणों का स्पष्टीकरण करते हैं। आधुनिक काल में वंशानुक्रम की यंत्र-रचना के सम्बन्ध में तीन प्रमुख दिशाओं में अध्ययन किया गया है; जैसे—(१) कौशिकी, (२) जीव सांख्यिकी, और (३) पशु-प्रजनन परीक्षण। जीव सांख्यिकी कोटि में वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना का अध्ययन करने वाले हैं—गाल्टन महोदय। इन्होंने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित होने वाले गुणों का सांख्यिकीय अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि माँ-बाप के ही गुण संतान में संक्रमित नहीं होते वरन् दादा और परदादा एवं अन्य पूर्वजों की पीढ़ियों के गुण भी संतान में संक्रमित हो जाते हैं। पशु-प्रजनन परीक्षण दिशा में जो वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना का अध्ययन हुआ, उसमें मैण्डल महोदय का नाम उल्लेखनीय है। मैण्डल ने अपनी परिकल्पना "शुद्ध जन्तुओं के पृथक्करण" के द्वारा भिन्नता के कारणों की व्याख्या की।

मैक्डूगल ने परीक्षण के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि प्राणियों के अर्जित गुण भी संक्रमित हो जाते हैं। आजकल वंशानुक्रम के तीन मुख्य नियम माने जाते हैं—(१) समान से समान ही उत्पन्न होता है, (२) विभिन्नता, और (३) प्रत्यागमन। समान से समान ही उत्पन्न होना है—इससे तात्पर्य है कि मनुष्य के मनुष्य, और बन्दर के बन्दर ही उत्पन्न होता है। भिन्नता का नियम यह बताता है कि बालक अपने माँ-बाप की प्रतिकृति नहीं होता, उसमें भी अपने पूर्वजों से कुछ भिन्नताएँ होती हैं। प्राणियों में प्रतिभावान माता-पिता के कम बुद्धि वाली सन्तान होने की प्रवृत्ति तथा इसी के समानान्तर कम बुद्धि वाले माता-पिता के परम प्रतिभा-सम्पन्न सन्तान होने की प्रवृत्ति को ही 'प्रत्यागमन' कहते हैं।

चूँकि अर्जित गुण संतानों में संक्रमित हो जाते हैं, इसलिए शिक्षक का कार्य और भी महत्वपूर्ण है। उसे बालक को उसकी सांस्कृतिक दशा से उन्नत कर उसकी मूल-प्रवृत्तियों का शोधन करना पड़ता है। डॉ० हेवार्ड प्रभृत विद्वान् शिक्षा को अत्यंत शक्तिशाली साधन मानते हैं। वस्तुतः शिक्षा एक उपयुक्त वातावरण है। उनका कथन है कि वंशानुक्रम चाहे जैसा हो, यदि उपयुक्त शिक्षा दी जायेगी तो बालक के व्यक्तित्व का निर्माण हम अपनी इच्छानुकूल कर सकते हैं। कुछ विद्वान् ठीक इसके विरुद्ध बालक के निर्माण का सारा श्रेय वंशानुक्रम को ही देते हैं। इन दोनों अतिवादी दृष्टिकोणों के साथ नन महोदय का मध्यममार्गीय दृष्टिकोण भी है जो कहीं अधिक वैज्ञानिक और शुद्ध है। उनका विश्वास है कि बालक का स्थान अपने विकास में स्वयं सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वह अपने वंशानुक्रमीय गुणों का उपयुक्त शिक्षा के माध्यम से सदुपयोग कर सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है।

शिक्षक के लिए वंशानुक्रम और वातावरण—दोनों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों ही बालक की शिक्षा पर गहरा प्रभाव डालते हैं। स्कूलों में बालकों के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना चाहिए।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. एक अध्यापक के लिए वंशानुक्रम की यन्त्र-रचना को समझना कहाँ तक उपयोगी है? यह शिक्षा के कार्य में कहाँ तक सहायता पहुँचाता है?

२. बालक के विकास में वातावरण कहाँ तक सहायक होता है? इसका मूल्याङ्कन करते समय प्रत्यक्ष उदाहरण दीजिए।

३. बालक के मानसिक विकास में 'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' का क्या सापेक्षिक महत्त्व है? इसके ऊपर प्रकाश डालते हुए एक समीक्षात्मक व्याख्या कीजिए।

४. जैविक वंशानुक्रम से आप क्या समझते हैं? मानव के जैविक वंशानुक्रम की प्रक्रिया का क्रमबद्ध वर्णन कीजिए।

५ 'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' का बालक के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस दृष्टि से भारत की जाति-प्रथा की समालोचना कीजिए।

६. "एक ही माता-पिता की सन्तान एक ही वातावरण में पलने पर भी भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करती है।" उदाहरण देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए तथा उसके कारणों पर प्रकाश डालिए।

७. 'जैविक वंशानुक्रम' और 'सामाजिक दाय' के सम्बन्ध को भली-भाँति समझ लेने से शिक्षक को क्या सहायता मिलती है? वर्णन कीजिए।

८. आधुनिक काल के भारत के किन्हीं तीन महान् नेताओं को लीजिए, जिनके जीवन के बारे में आप भली-भाँति परिचित हैं, और यह बताइए कि उनके नेतृत्व के गुणों के विकास में 'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' कहाँ तक सहायक हुआ है?

९. निम्नलिखित कथन के रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

(i) ....वंशानुक्रम के वाहक हैं।

(ii) माता तथा पिता प्रत्येक से.........वंशसूत्र के जोड़े प्राप्त होते हैं।

(iii) प्रत्येक स्त्री अण्ड में ......X वंशसूत्र होते हैं जबकि प्रत्येक पुरुष के ......में एक ......वंशसूत्र होता है और एक ......वंशसूत्र होता है।

(iv) प्रत्येक बालक के विकास में ....तथा............का सापेक्ष महत्त्व है।

(v) एक ही माता-पिता के बालकों में भिन्न-भिन्न ......के कारण आकार में भिन्नता आ जाती है।

४ बालक का शारीरिक और गामक (प्रेरक) विकास
PHYSICAL & MOTOR DEVELOPMENT OF THE CHILD

प्राय. आपने बालकों के बारे में अध्यापकों और अभिभावकों को यह कहते सुना होगा कि ओह ! अमुक कार्य तो अत्यन्त कठिन है और रमेश या नरेश (बच्चों के नाम) की उम्र के बालकों के लिए नहीं है। कभी-कभी आपने यह भी देखा होगा कि कुछ बालक जिनको कोई कार्य करने के लिए सौंपा गया था और आप यह समझते थे कि अमुक अवस्था के बालक अमुक कार्य को अवश्य कर लेंगे, जब वे उस कार्य में असफल होते हैं तो आप कहते हैं कि इन बालकों का विकास अपनी उम्र के अनुरूप नहीं हुआ। उदाहरण के लिए, यदि आप २ वर्ष के बालक को चलने में असमर्थ देखते हैं तो कहते हैं कि बालक का विकास सामान्य से कम हुआ है, क्योंकि सामान्यतः सभी बालक २ वर्ष की उम्र से ही पैरों चलना सीख लेते हैं। किन्तु यदि वह पैरों चल सकता है और उस उम्र में तेज दौड़ नहीं पाता तो आप उसे अल्पविकसित नहीं कहेंगे। इसी प्रकार एक छोटे-से बालक से यह आशा नहीं की जाती है कि वह 'कामायनी' का अर्थ समझ लेगा, क्योंकि अभी उसका इतना विकास नहीं हुआ कि वह गम्भीर विषयों को समझ सके। इसीलिए शिक्षा के कार्यक्रमों को निर्धारित करते समय आप बालक की उम्र और उसके विकास का ध्यान रखते हैं। यह शिक्षा-मनोविज्ञान का कार्य है कि वह आपको अन्तर्दृष्टि प्रदान करे जिससे आप बालक के विकास की अवस्थाओं और उसके द्वारा विविध विषयों को समझने की क्षमता का सही-सही आकलन कर सकें।

प्रस्तुत अध्याय और आगामी कुछ अध्यायों में इन्हीं का विवेचन किया जायगा। बालक के शारीरिक और गामक विकास का वर्णन इसी अध्याय में किया जायगा तथा संवेगात्मक, सामाजिक और मानसिक विकास का वर्णन अगले अध्यायों में होगा।

बालक का शारीरिक विकास[1]

'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' वाले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि स्त्री के अण्ड और पुरुष के शुक्र-संयोग से व्यक्ति के जीवन का प्रारम्भ होता है। मानव-भ्रूण को पूर्ण विकसित होने में लगभग ९ मास लगते हैं। जब यह पूर्ण परिपक्व हो जाता है तो माँ के गर्भ से बाहर आता है, उस समय इसका भार लगभग ७ से ८ पौण्ड तक होता है।

जन्म-पूर्व काल[2]

जैसा हमने पिछले अध्याय में कहा है, जीवन एक निषिक्त अण्ड[3] से प्रारम्भ होता है। यह प्रोटोप्लाज्म[4] का एक सूक्ष्म धब्बा होता है जो केवल ·१३ मिलीमीटर लम्बाई में होता है। एक माह में यह भ्रूण[5] बन जाता है जो ६ मिलीमीटर लम्बा होता है। दूसरे माह में यह गर्भस्थ शिशु[6] का रूप धारण कर लेता है। इसकी लम्बाई छः गुनी बढ़ जाती है और भार ५०० गुना। अब यह मानव-आकृति का सा रूप लेना प्रारम्भ कर देता है। २० वें सप्ताह में माता इसके प्रहार को महसूस करने लगती है। गर्भस्थ शिशु अब १ पौण्ड का होता है और इसकी लम्बाई एक फुट हो जाती है। कोश बराबर विभाजित होते रहते हैं और जन्म के समय बालक का भार ६ से ८ पौण्ड होता है और इसकी लम्बाई २० इंच हो जाती है। इस समय इसके मस्तिष्क की माप प्रौढावस्था से एक चौथाई होती है।

माता के पेट में जैसे-जैसे भ्रूण परिपक्वता की ओर बढ़ता है, उसके प्रतिक्रिया के नमूने स्थापित होते हैं। यह नमूने जो शरीर के सिर वाले सिरे पर होते हैं, पहले स्थापित होते हैं। होठ, आँखें, गरदन, कन्धा, हाथ, धड़, टाँगें, पैर क्रमशः लगभग इसी क्रम में सहज क्रिया के नमूने विकसित होते हैं। इस प्रकार वृद्धि *'सिर से पैर' की ओर* होती है। इसी प्रकार वृद्धि *'केन्द्र से बाहर की ओर' का क्रम अनुसरण* करती है। सम्पूर्ण बाहें पहले हिलने लगती हैं, हाथ की क्रियाएँ बाद में होती हैं।

जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग २० इंच होती है। लड़के लड़कियों से अपेक्षाकृत लम्बे और भार में भी अधिक होते हैं। बालक के जीवन के प्रथम वर्ष में उसकी लम्बाई और भार दोनों में बहुत वृद्धि होती है। लम्बाई और भार-वृद्धि की यह द्रुतता दूसरे वर्ष में भी बनी रहती है, किन्तु प्रथम वर्ष की अपेक्षा कम वृद्धि होती है। बालक का भार ६ मास में ही जन्म से दूना हो जाता है और एक वर्ष में तो तीन गुना हो जाता है।

इसी प्रकार तीसरे वर्ष तक बालक की शारीरिक वृद्धि द्रुतगति से होती रहती है। किन्तु इसके उपरान्त यह तब तक धीमी पड़ती जाती है जब तक किशोरा-

1. *Physical Development of the Child.* 2. *Pre-natal period.* 3. Fertilized ovum. 4. Protoplasm. 5. Embryo. 6. Fetus.
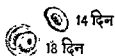
[एक भ्रूण के विकास की अवस्थाएँ]

वस्था नहीं आती। यह किशोरावस्था बालकों में लगभग १३ या १४ वर्ष से प्रारम्भ होती है और बालिकाओं में १२ या १३ वर्ष से। किशोरावस्था में शारीरिक विकास अत्यन्त द्रुत गति से होता है, उसकी शारीरिक वृद्धि भी अत्यन्त शीघ्रता से होती है। जब तक बालक और बालिकाओं में किशोरावस्था नहीं आती, तब तक बालक बालिकाओं से भार और लम्बाई दोनों में कहीं अधिक होते हैं। किन्तु बालिकाओं में कौमार्य का आगमन पहले होता है, इसलिए इस अवस्था में बालिकाओं का भार और लम्बाई बालकों के भार और लम्बाई से अधिक हो जाती है। किन्तु बालक ज्यों ही १४ या १५ वर्ष का होता है, उसकी शारीरिक वृद्धि अत्यन्त शीघ्रता से प्रारम्भ होती है और वह बालिकाओं से अधिक शारीरिक समृद्धि प्राप्त करता है। प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने पर औसतन बालक लम्बाई में बालिकाओं से ४ इंच लम्बे और भार में २० पौण्ड तक अधिक भारी होते हैं।

यहाँ पर सामान्य बालक और बालिकाओं को ध्यान में रखकर वर्णन किया गया है। किन्तु यदि कोई लम्बी बालिका है तो वह औसत बालक से अधिक लम्बी हो सकती है, और इसी प्रकार से एक मोटी बालिका सामान्य बालक से अधिक भारी होगी। विभिन्न व्यक्तियों में भी ऊँचाई और भार की दृष्टि से बहुत अन्तर हो सकता है, जैसे ८½ फीट लम्बे भीमकाय व्यक्ति भी मिल सकते हैं और २ फीट के छोटे बौने भी।

व्यक्ति में उसकी उम्र के साथ-साथ उसकी ऊँचाई और भार भी बढ़ता जाता है। किन्तु विभिन्न व्यक्तियों में यह शारीरिक वृद्धि विभिन्न मात्रा में होती है। कुछ बालक बहुत शीघ्र बढ़ते हैं और एक ही उम्र में अन्य बालकों से बहुत अधिक लम्बे और भारी हो जाते हैं। बालक का भार उसकी उम्र की अपेक्षा उसकी लम्बाई पर आधारित रहता है। जो बालक अधिक लम्बे होते हैं, उनका भार भी निश्चित रूप से अधिक होता है।

लम्बाई के अनुसार प्रमाणित भार की तालिकाएँ होती हैं। यदि कोई बालक अपनी लम्बाई के अनुपात में भार में कम या अधिक है तो शिक्षक को उसकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे डाक्टर के पास स्वास्थ्य-परीक्षा के लिए भेज देना चाहिए तथा उसकी त्रुटियों को दूर करने के लिए बालक के अभिभावकों को सूचना भेजनी चाहिए। सामने एक तालिका[1] दी जा रही है जो लम्बाई और भार के क्षेत्र पर प्रकाश डालती है जो विभिन्न आयु-स्तर पर होते हैं :

---

1. यह तालिका ली गई है : Krogman, W H : *A handbook of the measurement and interpretation of height and weight in the growing child*, Monographs of the Society for Research in Child Development, 48 : 41, Table XIII.

लम्बाई और भार का क्षेत्र जो सैंगिक आधार पर केलीफोर्निया के विद्यालयों के ५ से १५ वर्ष की आयु के विद्यार्थियों के अध्ययन द्वारा प्राप्त हुआ

आयु	लम्बाई का क्षेत्र (इंचो मे)		भार का क्षेत्र (पौण्ड मे)	
	बालक	बालिकाएँ	बालक	बालिकाएँ
5	39–47	39–47	34– 53	33– 53
6	39–50	39–50	34– 63	33– 63
7	41–53	41–53	37– 73	36– 73
8	42–55	41–55	39– 78	38– 81
9	44–58	45–57	42– 91	43– 89
10	47–60	46–60	48–101	45–105
11	48–63	48–62	50–117	49–120
12	50–65	50–65	55–128	56–137
13	52–67	53–67	60–142	62–151
14	54–67	55–67	66–146	70–152
15	56–67	57–67	74–148	82–153

बालक की अभिवृद्धि के समय शारीरिक परिवर्तन[1]

वालक जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, उसमे वृद्धि होती जाती है, वैसे ही वैसे उसमे बहुत-से शारीरिक परिवर्तन भी होते जाते हैं। इन्ही परिवर्तनों के कारण एक बालक प्रौढ़ व्यक्ति से बिलकुल भिन्न दिखाई पडता है। अभिवृद्धि का स्वरूप एक बालक मे दूसरे से भिन्न होता है। किन्तु कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जो अधिकतर बालकों मे एक ही समय पर प्रकट होती हैं।

वालक के शारीरिक परिवर्तन उसकी रुचि और कार्यों को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, बालक छोटी उम्र से ही अपने और दूसरों मे छोटे और बडे का अन्तर करने लगता है। यह वह भली-भाँति जानता है कि अपने से बडो के समक्ष वह छोटा है और अपने से छोटे बालको से वह बडा। बालक की छुटाई और बडाई की यह सतर्कता उसके व्यवहार पर बहुत प्रभाव डालती है। यदि बालक यह अनुभव करता है कि वह दूसरे से बडा है तो उसका व्यवहार उस व्यवहार से भिन्न होगा, जब वह यह समझता है कि वह दूसरो से छोटा है। आपने प्राय वयस्क बालको को दूसरे बालकों से यह कहते सुना होगा कि—"तुम तो बडे हो गये, छोटे बच्चों जैसा कार्य मत करो, तुम्हे यह शोभा नही देता।" अथवा यह कहते सुना होगा कि—"रमेश ! तुम तो सुरेश से बडे हो, अपना खिलौना उसे दे दो।" ये कथन बालक मे बडप्पन या छुटपन की भावना को जन्म देते हैं।

उम्र के बढ़ने के साथ-साथ, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन मस्तिष्क और सम्पूर्ण नाडी-मंडल की परिपक्वता होती है। माँसपेशियों मे भी आयु

1. Physical Change during Growth of Children.

के साथ-साथ वृद्धि होती है और यह भी यौवन तक पूर्ण समृद्ध हो जाती है। शारीरिक अस्थि-ढाँचे में परिवर्तन होता है। हड्डियाँ अपेक्षाकृत अधिक लम्बी और मोटी हो जाती हैं तथा प्रत्येक जोड़ प्रौढ़ तथा परिपक्व हो जाता है। शरीर की ग्रन्थियों में भी एक सीमा तक काफी परिवर्तन आ जाता है; जैसे—गल-ग्रन्थि, यौवन-लुप्त ग्रन्थि, लिङ्ग-ग्रन्थि आदि में। ये समस्त शारीरिक परिवर्तन बालक के व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं। अतः एक चतुर शिक्षक को इन सभी परिवर्तनों को ध्यान में रखकर बालक को शिक्षा देनी चाहिए।

बालक को किसी भी विषय को पढ़ाते समय उसकी मानसिक परिपक्वता का ध्यान रखना चाहिए। यदि उसका मस्तिष्क पूर्ण विकसित और परिपक्व नहीं है तो आप उसे गणित के कठिन प्रश्नों को नहीं पढ़ा सकते। फिर भी यदि आप बालक को कठिन परिश्रम करने के लिए मजबूर करते हैं तो बालक के स्वास्थ्य पर उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा।

बालकों को शारीरिक शिक्षा देते समय भी उनकी शारीरिक अभिवृद्धि और *विकास को ध्यान में रखना चाहिए। बालकों के जीवन में प्रथम १० वर्षों के लिए* शारीरिक शिक्षा परम आवश्यक एवं उपयोगी है। किशोरावस्था तथा बाल्यकाल के प्रारम्भ में बालक के स्वास्थ्य की पूरी देख-भाल करनी चाहिए; तथा उसके आहार[1], पोषण, खेल और व्यायाम का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। 'किशोरावस्था' बालक के जीवन का वह समय है जब हड्डियाँ बड़ी शीघ्रता से बढ़ती और विकसित होती हैं, अतः बालक को उसके अनुकूल उपयुक्त शारीरिक शिक्षा देने की आवश्यकता है।

अभिवृद्धि और शारीरिक अनुपात[2]

एक शिशु, बालक और किशोर में शारीरिक अनुपात की दृष्टि से बहुत अन्तर होता है। *बाल्यावस्था में एक बालक का सिर उसके शरीर की लम्बाई से अनुपाततः* किशोरावस्था की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है। जन्म के समय बालक के सिर का अनुपात उसके शरीर की लम्बाई का एक-चौथाई होता है। किन्तु किशोर की परिपक्वावस्था के समय इसका अनुपात एक का आठवाँ भाग होता है। बाल्यावस्था में टाँगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं, शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ उनका तीन-आठ (३ : ८) का अनुपात होता है। किन्तु किशोर की प्रौढ़ता पर उनका अनुपात $\frac{१}{२}$ (१:२) हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति किशोर को अपने चारों तरफ के वातावरण में व्यवस्थित करने के उपयुक्त बनाती जाती है। उसकी टाँगें उसकी महान् सम्पत्ति होती हैं। उनकी अभिवृद्धि इसलिए होती है कि किशोर अपने शरीर का अधिक से अधिक सन्तुलन प्राप्त कर सके। उसके हाथ और पैरों की अभिवृद्धि का अनुपात उम्र की दृष्टि से सिर के बढ़ने की अपेक्षा अधिक होता है।

---

1 Nutrition 2. Growth & Bodily Proportion.

बालक और बालिकाओं की शारीरिक वृद्धि में अन्तर—बाल्यावस्था मे शारीरिक दृष्टि से बालिकाएँ बालको से अधिक विकसित होती हैं। एक सामान्य बालक के तुलनात्मक एक बालिका मे एक या डेढ वर्ष पहले ही लैङ्गिक अंग विकसित हो जाते हैं और उसे ऋतुस्राव होने लगता है। अनुपातत- बालिकाएँ बाल्यावस्था की एक ही उम्र मे बालको से अधिक भारी और लम्बी होती हैं। इसका पूरा वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

बालिकाओ की यह पूर्व-प्रौढता बहुत-सी मनोवैज्ञानिक समस्याओ को जन्म देती है। एक ही उम्र की लडकी दूसरे बालको को छोटा समझती और उनके नटखट व्यवहार पर खीझ उठती है तथा अपने को बडा समझती है। इसमे विषम लिङ्गीय आकर्षण बालको से प्रथम उत्पन्न हो जाता है, किन्तु इससे यह तात्पर्य नही है कि बालिकाओ को मैथुन का अनुभव प्रथम और अधिक होता है। हमारी सस्कृति मे बालिकाओ पर लगाए गये नियन्त्रण उन्हे बुराइयो से बचा लेते हैं और दोनो से मुक्त रखते हैं। जिन पाठशालाओ मे बालक और बालिकाओं की सह-शिक्षा होती है वहाँ के अध्यापको को बालिकाओ की इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसीलिए बालक और बालिकाओ के लिए एक प्रकार का पाठ्यक्रम और एक ही प्रकार की शिक्षा अधिक उपयोगी नही होती, क्योकि उनके विकास की प्रक्रिया में बहुत भिन्नता है। अतः शिक्षा, बालक और बालिकाओं के शारीरिक और मानसिक विकास को ध्यान मे रखकर, देनी चाहिए।

किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन[1]

'कैशोर' व्यक्ति के जीवन का वह काल है जबकि वह सन्तानोत्पादन के योग्य हो जाता है। यही वह समय है जब बालको की लिंग-ग्रंथियों मे शुक्रस्राव होने लगता है, जो स्त्री के अण्ड से मिलकर गर्भाधान करने के योग्य हो जाता है। इसी प्रकार यह बालिकाओ के लिए भी लैङ्गिक प्रौढ़ता का समय है। भारत मे यह लैंगिक प्रौढ़ता का काल बालिकाओ मे १२-१३ वर्ष और बालको मे १३-१४ वर्ष से प्रारम्भ होता है। इसी काल मे उनमे लैङ्गिक तारुण्य के लक्षण प्रथम बार दिखायी पड़ते हैं। किशोरावस्था को प्राप्त करने पर बालिकाओ मे रजस्राव होने लगता है और बालको मे भी शुक्रस्राव की क्षमता आ जाती है। किशोरावस्था का काल पूर्ण प्रौढ़ता तक चलता रहता है और यह भारत में १७ से १८ वर्ष तक माना जाता है।

किशोरावस्था में बालक मे महान् शारीरिक परिवर्तन आ जाते हैं। बालिकाएँ स्त्रीत्व को प्राप्त करती हैं और बालक पुरुषत्व को। 'किशोरावस्था' बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच का समय है। इसका प्रारम्भ तारुण्य के लक्षणो से पहचाना जाता है। किन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसी कोई दृढ़ सीमा-रेखा नहीं हो सकती जब से ही सभी बालिकाओं मे ऋतुस्राव प्रारम्भ हो, किसी में एक-दो

---

1. *Physical Changes in Adolescence.*

वर्ष प्रथम और किन्हीं बालिकाओं में एक-दो वर्ष उपरान्त भी यह प्रारम्भ हो सकता है, *क्योंकि अधिकतर यह उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर आधारित होता है। यही तथ्य* बालकों के लिए है।

बालिकाओं में अभिवृद्धि की सबसे अधिक तुलना १२½ वर्ष पर होती है और बालकों में लगभग १४ वर्ष पर। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं और अभिवृद्धि की दृष्टि से उसमें नाटकीय परिवर्तन होता है। किशोर के हाथ-पैर, नाक इत्यादि बहुत लम्बे हो जाते हैं। उसके भार में बहुत अधिक और शीघ्र परिवर्तन होता है। वह लगभग २५ पौण्ड तक एक ही वर्ष में बढ़ जाता है। बालक की आवाज भारी पड़ जाती है, वह प्रौढ़ के समान प्रतीत होती है। आवाज रूक्ष भी हो जाती है जिसके कारण कभी-कभी बालक में घबराहट होती है। दाढ़ी और मूँछें निकलना प्रारम्भ हो जाती हैं, जिससे बालक को बड़ा भद्दा अनुभव होता है। लड़कियों में उरोज विकसित होने लगते हैं। वे अधिक उन्नत और गोलाकार रूप में बढ़ते हैं। ये सभी परिवर्तन बालक के स्वभाव में चिड़चिड़ापन लाते हैं। वह बेचैनी का अनुभव करता है तथा आत्म-केन्द्रित बन जाता है।

चूँकि विभिन्न बालकों में विभिन्न प्रकार से अभिवृद्धि होती है, इसलिए कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि १२ वर्ष का बालक १५ वर्ष के सामान्य बालक अथवा बालिका के समान प्रौढ़ होता है, तथा एक १५ वर्ष का बालक ११ वर्ष के सामान्य बालक के समान ही विकसित होता है। ये अनियमितताएँ अध्यापक और अभिभावकों के लिए बड़ी समस्याएँ उत्पन्न कर देती हैं। सामान्य समय से उत्तरकाल का तारुण्य-प्राप्त बालक अपने को सरलता से समाज में व्यवस्थित नहीं कर पाता, जितना कि पूर्व तारुण्य-प्राप्त बालक उस बालक का व्यवहार समाज और पाठशाला—दोनों में ही बच्चों जैसा होगा, जबकि अवस्था की दृष्टि से उससे गम्भीर व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। जो बालक शारीरिक दृष्टि से कम उन्नत होते हैं, वे अधिक चंचल, प्रभुत्व जताने वाले और अधिक ऊर्जस्वित होते हैं। वे अध्यापकों के लिए एक *समस्या बन जाते हैं। उनका व्यवहार चंचल और शीघ्र होता है।*

तारुण्य के आ जाने से बालकों में विषमलिङ्गीय[1] प्रेम उत्पन्न हो जाता है। काम-भावना की जागृति तीव्र गति से होती है। १८ वर्ष की अवस्था तक बहुत-से बालक उचित वातावरण न मिलने पर बिगड़ जाते हैं, उनकी रुचि विपरीत लिङ्ग के प्रति विकृतावस्था तक पहुँच जाती है।

किशोरावस्था में बालक-बालिकाओं में लिङ्गीय प्रेम के विकास और कामुकता की अभिवृद्धि के कारण शिक्षा में कठिनाइयाँ आ जाती हैं। उनका कैसे निवारण करना चाहिए, इस बारे में हम "कैशोर और काम-शिक्षा" नामक अध्याय में पूर्ण विवेचन करेंगे।

---

1 Hetro-Sexual.

व्यक्तित्व और स्वास्थ्य[1]

प्राय: यह देखा जाता है कि जिन लोगो का स्वास्थ्य अच्छा, शरीर सुसङ्गठित, सुन्दर और पुष्ट होता है वे लोग समाज में आदर पाते हैं, तथा जो दुर्बल, शक्तिहीन और व्यनुपाती होते हैं, समाज उनकी उतनी प्रशंसा नही करता। स्वस्थ व्यक्तियो को अपने साथियो मे सम्मान मिलता है, विषमलिंगी आकर्षित होते और प्रेम प्रदर्शित करते हैं।

एक बालक अपने से बडो की उपस्थिति मे अपने को हीन अनुभव करता है, क्योकि वह उनकी तुलना मे छोटा होता है। इस लघुता की भावना से बालक मे हीन-ग्रन्थि पड जाती है। अतः इस कारण बालक को कम-से-कम वयस्को के साथ रखना चाहिए। उन्हे उसी उम्र के और उसी मात्रा के विकसित बालको के साथ रखना चाहिए।

एक बालक जो अपनी ही उम्र के बालकों की अपेक्षा बहुत अधिक छोटा है, उसमे कभी-कभी हीनता की भावना आ जाती है। वह अपनी उम्र के बालको से अपने को अलग रखने की चेष्टा करता है तथा अपने ही समान छोटे बालक-बालिकाओं मे मेलना पसन्द करता है। यह भी देखा गया है कि कभी-कभी छोटे लडके या लडकी परिश्रम कर, कक्षा मे अच्छे अंक प्राप्त कर या सगीत मे दक्षता प्राप्त कर अपनी लघुता की भावना की कमी को दूर करने की कोशिश करते हैं। वह अपनी लघुता की कमी को पूरा करने के लिए कभी-कभी झगडालू और आक्रामक भी हो जाते हैं। वे दूसरो मे दबना नही चाहते हैं। इसलिए उनका व्यवहार भी रुक्ष हो जाता है और इस आधार पर अध्यापक इन्हे शरारती ठहराता है। इसका मूल कारण बालक की आत्महीनता[2] की भावना है, जिसे वह किसी-न-किसी प्रकार पूरा करना चाहता है। परिणामस्वरूप, उसका व्यवहार दुर्विनीत और झगडालू बन जाता है। किन्तु यह भी ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक बालक मे इस प्रकार की प्रवृत्ति जाग्रत नही होती। कुछ ऐसे दुर्बल शरीर वाले बालक भी होते हैं जो जीवन मे अपने आप को भली-भाँति व्यवस्थित कर लेते हैं। किन्तु उन बालको मे जो सामान्य बालको से स्वास्थ्य मे कमजोर होते हैं, उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ अधिकतर पाई जाती है।

एक अधिक मोटे बालक अथवा पतले बालक, एक बहुत छोटे अथवा बहुत बडे बालक मे भी इसी प्रकार की अपर्याप्तताएँ और कमियाँ हो सकती हैं। पाठशालाओ मे मोटे बालकों को 'मोटू' कहकर पुकारा जाता है, और प्रत्येक बालक उसकी हँसी उडाता है। इसी प्रकार से बहुत लम्बे अथवा दुबले-पतले बालको को भी 'लम्बू' और 'सीकिया' कहकर पुकारा जाता है। इन व्यंग्यात्मक सम्बोधनो का परिणाम यह निकलता है कि बालक अपनी योग्यता और अपने मे आत्म-विश्वास खो बैठता है तथा दीन बन जाता है।

---

1. Personality & Health. 2. Inferiority Complex.

यदि हम किसी एक ही उम्र के बाल-समूह के शारीरिक और मानसिक स्तर के पारस्परिक सम्बन्धों का निरीक्षण करें तो देखेंगे कि उनमें आपस में बहुत निम्न अनुपात है। इससे यह परिणाम निकलता है कि यह आवश्यक नहीं कि जो लोग शारीरिक दृष्टि से अधिक विकसित हैं उनका मस्तिष्क भी उसी अनुपात में विकसित होगा। किन्तु फिर भी मानव के मानसिक और शारीरिक विकास में पारस्परिक सम्बन्ध है ही, इसलिए सुन्दर और स्वस्थ शारीरिक विकास के साथ उच्च भावनाओं का सम्बन्ध माना जाता है। अतः एक ही उम्र के एक बालक-समूह[1] में, जो शारीरिक दृष्टि से अधिक विकसित और परम स्वस्थ है, मानसिक विकास और स्वस्थता भी अधिक मिलती है तथा उम्र के अनुपात से जिनका शरीर विकसित नहीं हुआ, जो दुर्बल, छोटे और हीन रह गये, निश्चय ही उनका मानसिक विकास भी कम ही होगा। हाँ, दोनों में अपवाद भी मिल सकते हैं, किन्तु नियम तो सामान्य को ही दृष्टि में रखकर बनाया जाता है।

गामक विकास[2]

बालक का सर्वाङ्गीण विकास उसके गतिवाही विकास पर बहुत अधिक आधारित होता है। गामक विकास से हमारा अभिप्राय **"बालक की शक्ति, गति और माँसपेशियों के विकास से तथा पैरों के उचित उपयोग की क्षमता आ जाने से है।"** बालक का संवेगात्मक व्यवहार एवं उसका मानसिक विकास बहुत हद तक उसके गतिवाही विकास पर अवलम्बित होता है। बालक समुचित गामक विकास के द्वारा ही अपने को समाज के अनुरूप बनाना सीखता है। वह अपनी बौद्धिक जिज्ञासा को वस्तुओं के नियन्त्रण, खोज और प्राप्ति के द्वारा पूर्ण करता है। वह दूसरे से व्यवहार करने के ढंग सीखता है, उनसे सहयोग करने की भावना को ग्रहण करता है। ये सभी बातें बालक में समुचित गामक व्यवहार[3] के सीखने पर ही आती हैं। जीवन के किसी क्षेत्र में बालक की सफलता और असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपनी गामक योग्यताओं का प्रयोग किसी कार्य में कैसे और कब करता है।

गामक विकास केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इसका सम्बन्ध शारीरिक और मानसिक विकास से है, वरन् स्वयं इसकी परम उपयोगिता है और इसी कारण यह किसी भी व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। कोई बालक उच्च स्तरीय मानसिक कार्यों के करने योग्य न हो, उसमें उच्च बौद्धिक धरातल के कार्यों के करने[4] की क्षमता न हो, किन्तु वह गामक योग्यताओं में पूर्ण समर्थ हो, ऐसा बालक उन कार्यों के करने के अयोग्य ठहराया जा सकता है, जिनमें

---

1. Group. 2. Motor Development. 3. Proper Motor Behaviour. 4. Operation.

उच्च बौद्धिक धरातल अथवा प्रतिभा की आवश्यकता होती है; किन्तु वह एक कुशल कारीगर, दक्ष शिल्पकार और योग्य मिस्त्री बन सकता है।

गामक कौशल का विकास[1]—बाल्यावस्था में गामक विकास बड़ी शीघ्रता से होता है। बच्चा जब १८ मास का ही होता है, वह सरलता से चलना सीख लेता है। दूसरे और तीसरे वर्ष में वह दौड़ना, चढ़ना, उछलना-कूदना, सन्तुलन रखना और नृत्य करना भी सीख लेता है। बालक जब भी उछलना, सन्तुलन करना आदि कोई नयी चीज सीखता है, तो वह लगातार उसका अभ्यास करता है तथा बड़ों से उस कार्य की स्वीकृति प्राप्त करता है कि वह दौड़ना सीख गया है अथवा उसे सन्तुलन रखना अच्छा आता है।

(अ) (ब)

(स)
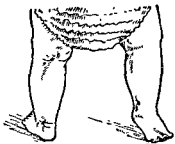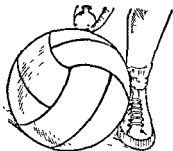
[चित्र अ, ब, स में देखिए, किस प्रकार टाँगों में परिपक्वता आती है। छोटे बालक के पाँव डगमगाते हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है।]

1. Development of Motor Skill.

समय-समय बालक अपनी माँसपेशियों के ठीक-ठीक और समुचित प्रयोग के नये-नये ढङ्ग सीखता है। यह देखा गया है कि एक २ वर्ष का बालक ईंटों का छोटा मकान बना सकता है। एक ३ वर्ष का बालक किसी वृत्त[1] की आसानी से अनुकृति कर सकता है, वह एक वृत्तीय मानवी रेखाकृति भी बना सकता है। वह एक बड़ा वृत्त का गोला बनाकर उसमे दो छोटे-छोटे गोले पैरों के लिए तथा दो छोटे-छोटे आँखो के लिए बनाने की क्षमता रखता है। एक ४ वर्ष का बालक समकोण वाले वर्ग की नकल कर उसे बना सकता है, तथा ५ वर्षीय बालक मानव की बाह्य रूपरेखा उसके हाथ-पैर, शरीर, आँखें और गर्दन का संकेत मात्र देकर बना सकता है।

बालक मे सन्तुलन के विकास सम्बन्धी एक प्रयोग[2] का वर्णन किया जा सकता है। इस प्रयोग मे ३२० बालक एवं १६० बालिकाओ को जो विभिन्न आयु के थे, एक १२ फीट लम्बे लट्ठे के किनारे पर चलाया गया जो २ फीट मोटा और ४ फीट चौड़ा था। इसको पृथ्वी से २ इंच ऊँचा रखा गया। इस लट्ठे के बीच मे कुछ खाँचा था। प्रत्येक बालक को तीन अवसर एक ओर से लट्ठे के आरम्पार जाने के दिये गये। बिना गिरे हुए लट्ठे को पार करने वाले बालक को अङ्क प्रदान किया गया। इस प्रकार जो बालक इधर प्रत्येक बार बिना गिरे जा सके, उसे ६ अङ्क प्राप्त हो सकते थे। किन्तु यह देखा गया कि ४ से ६ वर्ष तक के बालक एक बार भी बिना गिरे पार नही जा सके। ७ वर्ष की बालिकाएँ लगभग एक बार पार जा सकी। ११-१२ वर्ष के बालक ३-४ बार आर-पार बिना गिरे जा सके, जबकि इस आयु की बालिकाएँ २-३ बार ही आर-पार जा सकी।

बालकों में रंग, आकार, परिमाप, मात्रा आदि के प्रति प्रारम्भ मे ही रुचि पैदा हो जाती है। देवी माँन्तेसरी[3] ने अपनी शिक्षा की 'माँन्तेसरी प्रणाली' मे छोटे बालकों की इसी प्रवृत्ति से लाभ उठाया है, और उन्हें चमकीली विभिन्न रंग वाली वस्तुओं के माध्यम से सिखाने पर बल दिया है। एक २ वर्ष के बालक को ईंटों और लकड़ों को बक्स मे भरने और प्यालो को छिद्रों में रखने में ही आनन्द आता है। ३ वर्ष की उम्र मे वह विभिन्न रंगों तथा वस्तुओ के आकार मे तुलना करता और उनमे आनन्द लेता है। ४ वर्ष की उम्र में बालक तीन-चार साधारण टुकड़ों वाली चित्र-खण्ड पहेली[4] को बनाना सीख लेता है। एक ५ वर्ष का बालक सामान्य रंगों के नाम बता सकता है, जैसे—हरा, पीला, लाल, और कुछ अङ्को तथा अक्षरों की भिन्नता को भी बता सकता है।

गामक कौशल का विकास बालक मे सामान्य से विशिष्ट कार्य की तरफ होता

---

1. Circle

2 G. W. Cron and N H Pronko : "Development of a sense of balance in school children"—*Journal of Educational Research*, 1957, 51, 33-37.

3. Madam Montessori. 4. Jigsaw Puzzle.

है। पहले बालक सामान्य, सरल और साधारण कार्यों को करना सीखता है, फिर विशिष्ट कार्यों को। यह भी देखा गया है कि फिर वह ऐसे कार्यों को सीखना चाहता है जो सामान्य और विशेष कार्यों का मिश्रण हो। तात्पर्य 'सरल से कठिन' और 'कठिन से सरल' एवं ऐसे कार्य जिसमें ऐसी कई क्रियाएँ सम्मिलित हों जो वह प्रथम सीख चुका है, करने का प्रयत्न करता है। सर्वप्रथम बालक चलना सीखता है, अभ्यास के द्वारा उसमें कुशलता प्राप्त करने पर वह दौड़ना सीखता है। वह अपने हाथ से किसी वस्तु को पकड़ना सीखता है, फिर दौड़ते हुए भी गेंद को पकड़ना सीख लेता है। यह दौड़ते हुए गेंद को पकड़ने का कार्य दो विशिष्ट क्रियाओं का एकीकरण है, जिन्हें उसने पहले सीख लिया है—(i) दौड़ना, और (ii) गेंद को पकड़ना। इस प्रकार के कार्य करने में शरीर की विभिन्न मांसपेशियों, हाथ-पैर और नेत्रों के समन्वय की आवश्यकता होती है।

कौशल, जिसके द्वारा बालक में आत्म-निर्भरता की भावना जाग्रत होती है[1]

बालक जीवन के प्रारम्भ से ही ऐसे नैपुण्य को सीखने का प्रयास करता है, जिसके द्वारा उसमें आत्म-साहाय्य और आत्म-निर्भरता की भावना आ जाती है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक बालक को उसकी माँ दूध पिलाती है किन्तु धीरे-धीरे बालक उस भाजन को स्वयं पकड़ना सीखता है जिसमें दूध पीता है अथवा खाना खाता है। फिर एक दिन एकायक वह ऐसी स्थिति में आ जाता है कि स्वयं अपने हाथ से भोजन करने लगता है। उसके उपरान्त वह यह नहीं चाहता कि कोई उसे भोजन कराए, वरन् स्वयं अपने हाथ से ही खाना पसन्द करता है। माँ-बाप को यह बात पसन्द नहीं होती क्योंकि प्रारम्भ में स्वयं अपने हाथ से खाते समय बालक की मांसपेशियाँ संगठित एवं सन्तुलित रूप से कार्य नहीं कर पाती हैं और दूध छलक जाता है, सब्जी बिखर जाती है, बर्तन फूट जाता है। ऐसी घटना पर प्राय. माँ-बाप बालकों को झिड़क देते हैं, जो बिलकुल ही असंगत और अमनोवैज्ञानिक है।

बालक अन्य बहुत से कार्यों को भी अपने हाथ से स्वयं करना चाहता है। इन पंक्तियों के लेखक की बालिका, जिसकी उम्र लगभग ४ वर्ष की थी, अपने बालों को स्वयं सँवारती और कंघी करती थी और बिना माँ की मदद के स्वयं वस्त्र पहनना अधिक पसन्द करती थी। माँ के चाहने पर भी वह उनसे अपने बालों में कङ्घी नहीं करवाती। परन्तु ऐसा करने में प्राय. वह काम बिगाड़ देती थी—कभी फ्रॉक अस्त-व्यस्त पहन लेती थी तो कभी तेल बिखेर देती थी। यद्यपि माँ यह कतई पसन्द नहीं करती थी, फिर भी पुत्री उसी को चाहती थी। इस प्रकार के कार्यों से बालक के गतिवाही कौशल का विकास होता है और कुछ समय बाद उन कार्यों को करने में स्वयं दक्षता प्राप्त कर लेता है। माता-पिता बालकों को यदि ऐसे कार्य करने में

---

1. Skills which develop the attitude of self-help in the Child.

बाधा पहुँचाते हैं तो बालक को अधिक हानि पहुँचाते और उनके गतिवाही विकास में बाधक होते हैं। चूँकि ये क्रियाएँ ही बालक के आत्म-निर्भर होने में सहायता पहुँचाती हैं, अतः माता-पिता को उनमें रुकावट नहीं डालनी चाहिए।

[यह बालक स्वयं सब कार्य करना चाहता है। किन्तु गामक कौशल का विकास न होने के कारण वह चीजों को गिरा देता है फिर भयभीत हो जाता है क्योंकि उसे अपनी माता की डाँट का डर है।]

गामक-क्रिया और लिंग-भेद[1]

जेन्किन्स (Jenkins) एवं अन्य विद्वानों का यह कथन है कि एक सामान्य बालक सामान्य बालिका से शक्ति, गति और अन्य गामक नैपुण्य की परीक्षाओं में अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होता है। गामक-शक्ति के प्रदर्शन में बालकों की यह वरीयता दो कारणों से प्रतीत होती है : (१) उनके जन्म-जात कारणों से, तथा (२) सांस्कृतिक प्रभाव से। बालक प्रारम्भ से ही बाहर के सामाजिक कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर देते हैं। किन्तु हमारी संस्कृति लड़कियों को इस प्रकार का प्रोत्साहन नहीं देती। वे प्रारम्भ से ही घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहती हैं, उनका कार्य क्षेत्र केवल अपना घर ही होता है। यदि कोई लड़की सामाजिक कार्यों में अधिक भाग लेती है तो समाज उसे हेय दृष्टि से देखता है। शायद हमारे समाज ने स्त्री के लिए चरित्र का मानदण्ड घर के अन्दर बन्द रहना ही बना रखा है। शारीरिक दृष्टि से भी लड़कियाँ बालकों के समान कठिन कार्यों को करने के योग्य नहीं होतीं। तारुण्य प्राप्त करने पर भी

1. Sex-differences in motor-performance.

उनके हाथ-पैर और शारीरिक आकृति बालकों की अपेक्षा अनुपाततः छोटी होती
किन्तु उनकी गर्दन अनुपाततः बालकों से लम्बी होती है।

जैसे-जैसे बालक-बालिकाओं की उम्र बढ़ती जाती है, वैसे ही उनकी मानसिक
शक्तियों में भी अन्तर बढ़ता जाता है। बालिकाओं में इन मानसिक शक्तियों का विक
अपने परम बिन्दु पर १४ वर्ष की उम्र में पहुँच जाता है, जबकि बालकों में
विकास १७ वर्ष की उम्र तक होता रहता है।

बालक एवं बालिकाओं की तुलनात्मक अभिवृद्धि[1]
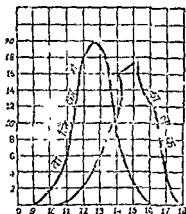
[वह आयु जिस पर बालक और बालिकाएँ अधिकतम अभिवृद्धि पर पहुँच जाते हैं।

बालिकाएँ बालकों से उन निश्चित कार्यों में आगे निकल जाती हैं, जिनमें मा
शारीरिक शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। एम० मैकफॉर्लेन[2] ने एक अध्ययन द्वार
यह पता लगाया कि बालक-बालिकाओं से ऐसे संकार्यों[3] में बहुत आगे निकल जा
हैं, जैसे लकड़ी के टुकड़ों का इकट्ठा करना, जिनसे एक पहियेदार गाड़ी बनती हो
ठीक इसी के समान लड़कियाँ लड़कों से कपड़ों के टुकड़ों को एकत्रित करने में बहु
आगे निकल जाती हैं, जिनसे मिलकर कोई वस्त्र बनता है और शारीरिक शक्ति
की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

हमारे देश में बालक और बालिकाओं की पाठशालाएँ बहुत ही पृथक्कृत हैं
उनकी आपस की कार्य-प्रणाली एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है; और कुछ हद तक य

[1] चित्र का आधार है. Shuttle Worth, F. "The Physical &

2. M. Mcrarlane 3. Operation

ठीक भी है कि बालिकाओ से स्त्रियो के कार्य सम्पन्न कराये जायें तथा बालको को पुरुषोचित कार्य करने के लिए दिये जायें। किन्तु अब समय आ गया है जब दोनो को ऐसे कार्यो मे भी लगाया जाय जिनमे दोनों ही समान रूप से भाग ले सकें। सौभाग्य से हमारा संविधान भी स्त्री तथा पुरुष दोनों को बराबरी पर बल देता है।

गामक योग्यताओ का आपस मे सम्बन्ध[1]

एक व्यक्ति मे यदि एक प्रकार की गामक सामर्थ्य अधिक है तो यह आवश्यक नही कि अन्य प्रकार की गामक योग्यताएँ भी उसमे उसी कोटि की शक्तिशाली होगी, जब तक कि कोई ऐसा विशेष कार्य न हो, जिसमे सभी गामक योग्यताओ, जैसे— शक्ति, गति, माँसपेशियो आदि, की आवश्यकता पडती हो। अत एक व्यक्ति की कोई विशेष गामक सामर्थ्य दूसरी गामक योग्यता से अधिक बलशाली हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति गामक नैपुण्य के प्रयोग मे दूसरे से भिन्न हो सकता है। कुछ व्यक्ति बहुत से विविध गामक नैपुण्य के प्रदर्शन मे अत्यन्त श्रेष्ठ हो सकते हैं जबकि दूसरे लोग केवल एक विशिष्ट गामक कौशल के प्रदर्शन मे ही सिद्धहस्त और परम दक्ष हो सकते हैं। अत शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन[2] 'सामान्य गामक योग्यता'[3] के आधार पर न होकर, सम्पूर्ण गामक योग्यताओ के आधार पर होना चाहिए।

वामहस्तता[4]

सोरेन्सन का कथन है कि ६ या ७ बालकों मे से एक बालक वामहस्ता होता है। आखिर इस वामहस्तता का कारण क्या है ? कुछ लोगो का मत है कि वामहस्तता जन्मजात होती है, परन्तु अन्य कुछ लोगों की धारणा यह है कि बालक के जीवन के प्रारम्भ के पूर्व अनुभवो के कारण यह आदत पड जाती है।

यह ध्यान देने की बात है कि बालक जन्म के कुछ महीनो तक न तो वामहस्ता होते हैं और न दक्षिण-हस्ता। वे अपने दोनों हाथो का प्रयोग आवश्यकतानुसार करते हैं, किन्तु धीरे-धीरे जैसे वे बढ़ते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे वे किसी एक हाथ—दाएँ या बाएँ—का प्रयोग करना प्रारम्भ कर देते हैं और वे वामहस्ता या दक्षिणहस्ता बन जाते हैं। कुछ बालकों मे यह अभिवृत्ति किसी प्राकृतिक प्रवृत्ति के कारण भी हो सकती है। उनके नाडीमण्डल की रचना मे ऐसी कुछ विशेषता हो सकती है, जिससे वे वामहस्त का ही प्रयोग करते हैं और वामहस्ता बन जाते हैं।

इस दक्षिणहस्तता वाले ससार मे बालक अपने आप दक्षिणहस्ता बन जाता है। वातावरण के प्रभाव के कारण बालक दक्षिणहस्तता को ही ग्रहण कर लेता है। यदि बालक खाने-पीने मे बाएँ हाथ का प्रयोग करता भी है तो अभिभावक उसे डाँट

1. Inter-relations of Motor Abilities 2. Educational Programmes. 3. General Motor Ability. 4. Left Handedness.

आपस में सह-सम्बन्ध है, फिर भी अध्यापक को बालक का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिए और तब उसके बारे में अपनी धारणा बनानी चाहिए।

बालक का सर्वाङ्गीण विकास उसके गामक विकास पर अधिक अवलम्बित होता है। गामक विकास से तात्पर्य बालक की शक्ति और मांसपेशियों के विकास से तथा हाथ-पैरों के समुचित प्रयोग की क्षमता आ जाने से है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका सम्बन्ध बालक के संवेगात्मक, बौद्धिक और सामाजिक विकास से होता है तथा स्वयं भी यह अत्यन्त उपयोगी है। गतिवाही विकास बाल्यावस्था में तीव्र गति से होता है। गामक कौशल का विकास बालक में सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है। पहले बालक सामान्य और साधारण कार्यों को करना सीखता है, फिर विशिष्ट कार्यों को। बालक अत्यन्त छोटी उम्र में ही उन नैपुण्यों को सीखने का प्रयास करता है, जिनसे उसमें आत्म-माहात्म्य और आत्म-निर्भरता की भावना का विकास होता है। *बालकों को आत्म-निर्भर बनाने वाले कार्य करते समय डाँटना नहीं चाहिए।* कुछ कार्यों के करने में बालक बालिकाओं से श्रेष्ठ होते हैं जिनमें केवल शारीरिक शक्ति की ही आवश्यकता होती है। किन्तु किन्हीं दूसरे कार्यों में लड़कियाँ भी लड़कों से श्रेष्ठ होती हैं। यद्यपि बालक और बालिकाओं की गामक शक्तियों में अन्तर होता है, फिर भी कुछ ऐसे कार्यों का आयोजन होना चाहिए जहाँ बराबर की हैसियत से बालक और बालिकाएँ कार्य में भाग ले सकें। चूँकि सामान्य गामक योग्यता का कोई महत्त्व नहीं है, इसलिए शिक्षकों को चाहिए कि शैक्षिक कार्यक्रम बनाते समय वे सामान्य गामक योग्यता के ऊपर बल न दें वरन् अपने कार्यक्रमों का आधार गामक योग्यताओं को ही बनायें।

सोरेन्सन के अनुसार ६ या ७ बालकों में एक बालक वामहस्ता हो सकता है। किन्तु इसके मूल कारणों पर प्रकाश डालने में अभी तक कोई विद्वान् पूर्ण सफल नहीं हुआ। जो बालक वामहस्ता है उन्हें दक्षिणहस्ता होने के लिए बल नहीं देना चाहिए वरन् उन्हें उसी का प्रयोग करने के लिए छोड़ देना चाहिए जिससे वे उसका प्रयोग कुशलता से कर सकें। यदि किसी बालक को दक्षिणहस्ता बनाना ही है तो यह कार्य शैशव के प्रारम्भ में ही कर लेना चाहिए, अन्यथा बाद में बालक के शरीर और मन पर इसके बुरे प्रभाव पड़ते हैं।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. एक बालक की उन शारीरिक परिस्थितियों की सूची बनाइए, जो बालक के मन में झुँझलाहट पैदा करती हों—जिस समय वह अपनी ही उम्र के बालकों के साथ हो।

२. एक अध्यापक की दृष्टि से आप बालक के स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और उसके व्यायाम का कार्यक्रम, उसके विकास के अनुसार, कैसे निर्धारित करेंगे? उदाहरण देकर समझाइए।

५ संवेगात्मक विकास
EMOTIONAL DEVELOPMENT

बालक के शारीरिक एवं गामक विकास के साथ-साथ उसका संवेगात्मक, सामाजिक एवं मानसिक विकास भी होता रहता है। आपने देखा होगा कि छोटे बालको मे क्रोध और झुँझलाहट बहुत अधिक होती है किन्तु जैसे-जैसे वह बड़े होते जाते हैं, उनके क्रोध के प्रदर्शन मे कमी होती जाती है। एक शिशु जब बाजार मे खिलौना देखकर मचल जाता है और जमीन पर लोटने लगता है तो इसे हम बाल-हठ कह देते है। किन्तु यह बाल-हठ बड़े होकर कहाँ चला जाता है और क्यो चला जाता है। हम यह कहकर टाल देते हैं कि अब बालक बड़ा हो गया है। मनोवैज्ञानिक इस बात का ही अध्ययन करना चाहता है कि विभिन्न आयु-स्तर पर क्या एक औसत बालक के संवेगो के प्रदर्शन में अन्तर होता है और यदि होता है तो क्यो ऐसा होता है। संवेग-प्रदर्शन मे विभिन्नता जो विभिन्न आयु-स्तर पर दिखाई पड़ती है, के साथ-साथ बालक किस प्रकार दूसरे व्यक्तियों की ओर आकर्षित होता है, उनसे मेल-मिलाप करता है इसमे भी विभिन्नता पाई जाती है। एक बालक जो लगभग दस वर्ष का है, दूसरे बालकों के साथ ही रहना तथा खेलना पसन्द करता है जबकि १३-१४ साल की आयु मे वह लड़कियो का साथ खोजने लगता है। बालक मे किस ढंग से सामाजिक विकास होता है, यह भी मनोवैज्ञानिको के लिए अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। बालक का सामाजिक विकास उसके मानसिक विकास से सम्बन्धित रहता है। जैसे-जैसे बालक मे बुद्धि तथा तर्क-शक्ति मे वृद्धि होती जाती है, उसके समाज के सदस्यो के साथ व्यवहार मे अन्तर आता जाता है। इसके अतिरिक्त बुद्धि, तर्क, स्मृति में वृद्धि उसके संवेगो के प्रकाशन में भी परिवर्तन ले आते हैं। अतएव एक बालक जैसे-जैसे आयु मे बढ़ता है, उसके संवेगात्मक, सामाजिक एवं मानसिक विकास एक निश्चित दिशा लेते जाते हैं।

हमारा ध्येय शिक्षा द्वारा व्यवहार मे रूपान्तर लाना है। हम यह रूपान्तर लाने मे उसी समय सफल हो सकते है जबकि हमे उस दिशा का ज्ञान हो जिससे एक औसत बालक का विकास स्वतः होता रहता है। हम इस अध्याय तथा आगे के तीन

अध्यायो मे इसी समस्या की ओर ध्यान देंगे कि बालक के विभिन्न आयु-स्तर पर उसके संवेगात्मक, सामाजिक व मानसिक विकास की दिशा क्या होती है और इस पर किस प्रकार नियन्त्रण रखा जा सकता है ताकि बालक के व्यवहार मे वांछित रूपान्तर लाया जा सके प्रथम कि हम विभिन्न प्रकार के विकासों का वर्णन करें, जिससे हमे यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि बालक का विकास समूचा होता है न कि बन्द कोठरियों मे अलग-अलग। बालक का शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा मानसिक विकास एक साथ ही होता रहता है और उसका व्यवहार किसी एक समय मे इन सब विकासो का ऐसा योग होता है जिसमे वह सब प्रकार के विकास घुले-मिले रहते हैं। अगले अध्यायो मे हम विभिन्न प्रकार के विकासो की चर्चा इसी सन्दर्भ मे करेंगे।

संवेगात्मक विकास

बालक मे संवेगात्मक विकास उसके जन्म के कुछ काल बाद से ही प्रारम्भ हो जाता है। इस विकास की दिशा की ओर ध्यान देने से पहले हमे समझ लेना चाहिए कि 'संवेग क्या है ?'

संवेग क्या है ?[1]

आर्थर टी० जर्सील्ड के अनुसार, "'संवेग' शब्द किसी भी प्रकार से आवेश मे आने, भड़क उठने अथवा उत्तेजित होने की दशा को सूचित करता है।"[2] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संवेग के अन्तर्गत भाव, आवेग तथा शारीरिक एवं दैहिक प्रतिक्रियाएँ—सभी आती हैं। ये भाव, आवेग तथा दैहिक प्रतिक्रियाएँ विभिन्न रूप से मिश्रित होकर तथा विभिन्न श्रेणियों में प्रकट होती हैं। इन भावों और आवेगों को भिन्न-भिन्न नाम दिये गए हैं। हम प्रतिदिन के व्यवहार मे ऐसे बहुत-से शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो संवेगात्मक दशा को सूचित करते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसी संवेगात्मक दशाएँ भी होती हैं जिनको हम विशिष्ट नाम नहीं दे पाते और किसी संवेग को व्यक्त करने के लिए उसे उपयुक्त नाम देने मे अपने को असमर्थ पाते हैं। 'भाव' संवेग का अंग होता है। भाव शारीरिक दशा पर निर्भर न होकर, मानसिक दशा पर निर्भर होता है। वह ऐसा स्वतन्त्र मानसिक अनुभव है जो संवेग के कारण उत्पन्न होता है, जबकि संवेग मे भाव, बाह्य उत्तेजन तथा शारीरिक अवयवों और ग्रन्थियों के परिवर्तन—सभी शामिल हैं।

संवेग को जाग्रत करने वाली दशाएँ[3]

'संवेग' एक ऐसी मिली-जुली अनुभूति है, जो बहुत-सी परिस्थितियों मे उत्पन्न

---

1. What is an Emotion ?
2. "The term 'emotion' denotes a state of being moved, stirred up or aroused in some way." —*Arthur, T. Jersild.*
3. Conditions that arouse Emotions.

होती है। अतः किसी भी संवेग अथवा संवेगों के विशिष्ट कारणों को बताना अत्यन्त कठिन है।

संवेगों के कारणों को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्रतिदिन के जीवन में आने वाली आवश्यकताओं, प्रेरणाओं, इच्छाओं तथा लक्ष्यों एवं उनके मार्ग में आने वाली बाधाओं का सम्यक् अध्ययन करें। किसी भी व्यक्ति के संवेग बाह्य उत्तेजना द्वारा, किसी बाह्य विषय-वस्तु अथवा घटना द्वारा जाग्रत किये जा सकते हैं, किन्तु कभी-कभी संवेगों का कारण व्यक्ति की अपनी मानसिक दशा या व्यक्तिगत घटना भी हो सकती है। अतः संवेगों के उत्पन्न होने के कारण बाह्य और आभ्यन्तर, दोनों ही हो सकते हैं। जैसे, यदि किसी व्यक्ति के आत्म-सम्मान पर प्रहार होता है अथवा शरीर पर आक्रमण होने की सम्भावना है तो संवेगों का भड़क उठना स्वाभाविक है। इस प्रकार की घटना से प्रायः निषेधात्मक संवेग[1], जैसे—भय[2], क्रोध[3], चिन्ता[4], अथवा ग्लानि या आत्मापमान आदि, की मिली-जुली अनुभूति होती है। संवेगों के उत्पन्न होने के कारण कोई ऐसी घटना अथवा ऐसी परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं जो व्यक्ति के लक्ष्य-प्राप्ति में बाधा डालती हैं।

वे परिस्थितियाँ जो संवेगों को उद्दीप्त करती हैं, व्यक्ति की रुचि और उसकी योग्यता-वृद्धि के साथ बदलती रहती हैं। शैशव काल में केवल वे उद्दीपन जो बालक को स्पष्टतः शारीरिक हानि पहुँचाते हैं अथवा वे परिस्थितियाँ जो उसकी सुख-सुविधा में बाधा पहुँचाती हैं, बालक में संवेगों को उत्पन्न करने का कारण बन जाती हैं। जैसे-जैसे शिशु बड़ा होता जाता है, उसका कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है और उसी अनुपात में उसमें अधिक संवेगों के अनुभव करने की क्षमता भी बढ़ती जाती है।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि किसी भी घटना अथवा वस्तु के प्रति व्यक्ति की संवेगात्मक प्रतिक्रिया, घटना के स्वरूप और स्वयं व्यक्ति की अन्तर्दशा, दोनों पर ही निर्भर होती है। एक ही घटना एक व्यक्ति को आनन्द प्रदान कर सकती है और दूसरे व्यक्ति के लिए दुःख का कारण बन सकती है। अतः यह सब व्यक्ति की मनोदशा पर ही आधारित है। यदि किसी बालक को कार्यवश घर से बाहर जाना है, और उसी समय वर्षा होने लगती है तो वह खिन्न हो जायगा, दूसरा बालक जो गर्मी की तीव्रता से ऊब चुका है, वर्षा को देख दौड़कर बाहर आएगा और वर्षा में खूब आनन्द मनाएगा। यहाँ एक ही वर्षा की घटना विभिन्न मानसिक दशा में विभिन्न प्रकार से दुःख और सुख के संवेगों का अनुभव कराती है।

कोई भी घटना जो बालक के जीवन में घटित होती है, बालक के किस संवेग—भय, सुख-दुःख अथवा घृणा—को उत्पन्न करेगी, यह इस पर आधारित होगा कि बालक उस घटना से कैसे और कितना लाभान्वित होगा अथवा उसे क्या हानि

1. Negative Emotion. 2. Fear. 3. Anger. 4. Anxiety.

उठानी पड़ेगी। वह अपने से स्वयं क्या आशा रखता है अथवा दूसरे उससे क्या आशा करते होंगे ?

संवेगों को जाग्रत करने की दूसरी परिस्थितियाँ हैं—रुचि और भय। जैसे-जैसे रुचि बदलती जाती है और व्यक्ति की योग्यता में वृद्धि होती जाती है, वैसे ही वैसे बहुत-से ऐसे संवेगों को ग्रहण करने की क्षमता उनमें घटती जाती है जो बाल्य-काल में बहुत अधिक तीव्र होते हैं। उदाहरण के लिए, बालक अपने बाल्यकाल के प्रारम्भ में अपने भाइयों और बहिनों के प्रति ईर्ष्या करता है। किन्तु जैसे ही वह बाहर समाज में आने-जाने लगता है, उसकी रुचियों और स्वार्थों का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है, वैसे ही उसकी ईर्ष्या भावना में भी किसी मात्रा तक कमी होती जाती है। किन्तु यह कहना भी असंगत होगा कि संवेग उम्र के साथ कम होते जाते हैं। वस्तुतः होता यह है कि पुरानी संवेगात्मक ग्रहण-शक्ति नवीन संवेगों को ग्रहण करने योग्य हो जाती है और पुराने संवेगों के स्थान को नये संवेग ग्रहण कर लेते हैं। वयस्क भी संवेगों से उतना ही प्रभावित होता है, जितना कि छोटा बालक।

कुछ ऐसे संवेग होते हैं जो व्यक्ति के विकास की प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक दशा में व्यक्ति द्वारा अनुभव किये जाते हैं, जैसे 'डर'—"एकायक तीव्र आवाज से प्रत्येक व्यक्ति डर जाता है।" यह संवेगात्मक अनुभव सभी अवस्था के व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। किन्तु कुछ ऐसे भी संवेग हैं, जो किसी क्षेत्र तक ही सीमित रहते हैं। वे तभी अनुभूत होते हैं जब बालक एक विशेष परिपक्वावस्था पर पहुँच जाता है। नीचे हम व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप संवेगात्मक प्रति-क्रियाओं पर विचार करेंगे।

व्यक्ति के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में संवेगात्मक प्रतिक्रिया[1]

यदि आप किसी नवजात शिशु का निरीक्षण करें, जो अभी कुछ दिन पहले जन्मा हो, तो आप देखेंगे कि उस शिशु का व्यवहार एक विचित्र प्रकार का होगा—वह चीखता है, अपने पैरों को फेंकता है। उसका यह व्यवहार वस्तुतः संवेगात्मक ही है। किन्तु उसके इस व्यवहार में आपको भिन्नता का अभाव मिलेगा। *उस बालक में उन किसी भी उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया नहीं होगी, जिनसे बाल्यकाल अथवा बड़े* होने पर होती है। उसकी प्रतिक्रिया एक 'सामान्य उत्तेजना'[2] के रूप में होगी। उसके भय, क्रोध, सुख, दुःख—इस प्रकार के भावों में आप कोई अन्तर नहीं कर सकेंगे। शिशु की संवेगात्मक प्रतिक्रिया को सुख, दुःख आदि निश्चित संवेगों में वर्गी-कृत करना अत्यन्त कठिन कार्य है। वास्तव में तरुणावस्था में भी प्रत्येक संवेग को

1. Emotional reactions of an individual at the earlier stage of his development. 2. *General Excitement.*

अलग-अलग करना बड़ा दुस्तर हो जाता है। फिर भी ज्यो-ज्यों बालक बढ़ता जाता है, उसकी अभिव्यक्तियाँ अधिक-से-अधिक स्पष्ट होती जाती हैं, अत उनको मोटे तौर पर सरलता से वर्गीकृत किया जा सकता है, यथा—

१. शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास[1]

गुडनबॅग[2] ने एक १० मास के बालक के चित्रो को लेकर बालको के संवेगों का वर्गीकरण करना चाहा और वे इस निष्कर्ष पर आये कि कुशल परीक्षक अधिकतर केवल उन परिस्थितियो का अनुमान लगा सके, जिनमे बालक के विविध चित्र खीचे गये थे। किन्तु जी० एम० जॉल महोदय ने एक प्रौढ की कई मुद्राओ के जब कई चित्र उतारे तो परीक्षक लोग विभिन्न मुद्राओं और उनके प्रकारो को काफी हद तक सही-सही पहचानने मे सफल हुए। यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि प्रौढ व्यक्तियों की मुखमुद्रा बहुत कुछ रूढियो एव संस्कारो से प्रभावित होती है तथा विभिन्न व्यक्तियो की मुखमुद्रा विभिन्न प्रकार की होती है। कोई प्रौढ जो क्रोध से जल रहा हो, अपने मुख पर हलकी मुस्कान भी ला सकता है, और दूसरे वयस्क की क्रोधाभिव्यक्ति चेहरे की मांसपेशियो के बंकिम और विपर्यास से भी अभिव्यक्त हो सकती है। फिर भी हम विभिन्न संवेगो को अलग-अलग पहचान सकते हैं किन्तु शिशुओ के संवेगात्मक व्यवहार मे आपको कोई विभिन्नता नहीं मिलेगी, इसलिए आप शिशु की चेष्टाओ को पृथक्-पृथक् वर्गीकृत नही कर सकते।

२. बाल्यावस्था के प्रारम्भ मे संवेगों का विकास[3]

बालक के जन्म से कुछ महीनो तक उसके चेहरे पर मानव चेहरे को देखने की प्रतिक्रियास्वरूप जो मुस्कान दिखाई पड़ती है, कालान्तर में यही अभिव्यक्ति हँसी का रूप धारण कर लेती है। गॅसिल[4] ने बालको पर बहुत-से परीक्षण किये और उनका सम्यक् अध्ययन करने के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर आये कि चार सप्ताह के उपरान्त शिशु के मूल-रुदन, क्रोध-रुदन और कष्ट-रुदन को पहचाना जा सकता है। शिशुओ के रोने का प्रकार प्राय एक से दूसरे का सर्वथा भिन्न होता है। एक माँ अपने बालक के रुदन को तुरन्त पहचान लेगी किन्तु बिना पहचाने बालक के रुदन को पहचानना अत्यन्त कठिन है। बालक के जीवन के प्रथम वर्ष में उसकी चीख और रुदन का सूक्ष्म अध्ययन करने से आप उसकी भय, प्रसन्नता और प्यार की अभिव्यक्ति को आसानी से पहचान सकते हैं।

बालक की जैसे-जैसे उम्र बढती जाती है, उसके संवेगों की अभिव्यक्ति मे भी विभिन्नता आती जाती है। इसके साथ-साथ उसके पैर हिलाने की क्रिया मे भी समन्वयन आता है। बालक की यह क्रिया वातावरण मे व्यवस्थित होने की चेष्टा करती

1. Emotional Devlopment in Infancy. 2. Goodenbough.
3. Development of Emotions in early Childhood. 4. Gasell.

है, जो फलस्वरूप बाह्य प्रतिक्रिया को जन्म देती है। बालक ज्यों ही बड़ा ह होता है, वह वस्तु-विशेष या व्यक्ति-विशेष के प्रति अपना आक्रोश प्रकट कर जबकि प्रारम्भिक अवस्था में उसकी अभिव्यक्ति सामान्य थी, किसी विशेष के नहीं, जैसा कि अब होने लगा।

बालक की उम्र में जैसे ही कुछ और वर्ष जुड़ते जाते हैं, उसकी प्रचण्ड क्रिया उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट बना देती है। बालक ज वर्ष से कम उम्र का होता है तो क्रोध की अभिव्यक्ति अधिक प्रचण्डता से करत यदि दूध की बोतल उसके मुख से छीन ली जाती है तो उसके प्रति क्रोध दश लिए उसका समस्त शरीर विद्रोह कर उठता है, वह पैर पटकता है, हाथ मार चीखता है और प्रचण्ड रुदन के द्वारा सारे घर को सर पर उठा लेता है। वही ७ या ८ वर्ष की उम्र में बहुत कम उग्रता के साथ इस प्रकार के व्यवहार की व्यक्त करता है। उसके रुदन और चीखने की मात्रा किसी चोट की प्रतिक्रिया पहले की अपेक्षा कम हो जाती है तथा क्रोध आने पर वह पूर्व की तरह प्रचण्ड नहीं चीखता।

संवेगों की अभिव्यक्ति की मात्रा में ह्रास के निम्नांकित तीन प्रमुख होते हैं :

(१) बालक एक भाषा सीख लेता है, जिसके माध्यम से वह अपने भाव अभिव्यक्त कर सकता है। अतः वह प्रचण्ड प्रतिक्रिया दिखाने की अपेक्षा संकेतों को व्यवहृत करता है।

(२) अनुभव द्वारा बालक यह सीख लेता है कि मात्र प्रचण्ड प्रदर्शन वह अपनी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता। अतः सम्भवतः उन प्रचण्डताओं परिहार करता है।

(३) अभिभावकों द्वारा बालक से बराबर यह कहा जाता है—"बच्चों व्यवहार मत करो, अब तुम बड़े हो गये हो, तुम्हें बड़ों की तरह व्यवहार क चाहिए।" पाठशाला में यदि वह छोटे बालकों की तरह व्यवहार करता, मचलत है तो अन्य बालक उसकी हँसी उड़ाते हैं। यदि वह अधिक भयभीत होता है तो 'डरपोक' कहा जाता है। अतः धीरे-धीरे वह अपने भावों को छिपाने की कल सीख लेता है और जब तक वह माध्यमिक पाठशाला में जाना प्रारम्भ करत पर्याप्त सीमा तक अपने भावों को छिपाना सीख लेता है। किन्तु बालकों द्वारा भावों के छिपाने की यह प्रवृत्ति शिक्षक को बालकों के संवेगों को समझने में कठिनाई उपस्थित कर देती है। क्योंकि बालक यद्यपि अपने संवेगों को समा सम्मुख अभिव्यक्त नहीं कर पाता, किन्तु वह उनका अनुभव अवश्य करता है। अपने भावों को अभिव्यक्ति देने में समर्थ नहीं, क्योंकि उसका शब्द-भण्डार अ सीमित है। अतः यह समस्या शिक्षक की कठिनाई को और बढ़ा देती है।

संवेगों को छिपाने के परिणाम

ऊपर यह वर्णन किया जा चुका है कि जैसे-जैसे बालक बढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे वह अपने भावों को सीधी-सादी, प्रकृत और स्पष्ट अभिव्यक्ति के स्थान पर आवृत्त, प्रच्छन्न और अस्पष्ट अभिव्यक्ति को अपनाता है। यह अस्पष्ट अभिव्यक्ति उसके वास्तविक व्यवहार को समझने मे उलझनें उत्पन्न करती है, क्योंकि बालक और प्रौढ—सभी अपने आत्म-सम्मान के लिए अपने प्रकृत भावों को छिपाने की चेष्टा करते हैं। अतः प्राय शिक्षक जब भी बालक के भद्दे व्यवहार की मीमांसा करने बैठता है, उसके कारणों को जानना चाहता है तो उसके सामने एक अत्यन्त कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है और उसका मन सन्देह-डोला मे डोलता है। वह किसी निश्चय पर नही पहुँच पाता।

कभी-कभी भावों की यह गोपनीयता भी समाज के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध होती है। यदि ऐसा न होता तो समाज रोते-पीटते हुए लोगों का एक समूह मात्र बन जाता, जहाँ सभी लोग अपनी-अपनी कठिनाइयों और असुविधाओं को लेकर स्पष्ट रूप से चीखते फिरते। इसी प्रकार से यदि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की सहानुभूति पर ही आश्रित हो, और लोग अपनी समस्या को सुलझाने के लिए यदि सदैव दूसरों पर ही निर्भर रहे तो समाज न तो विकास कर सकता है, और न कभी उन्नत होकर आनन्द का ही अनुभव कर सकता है।

किन्तु कभी-कभी भावों की यह छद्मवेशता गलत धारणाओं, भ्रमों और कष्टों को भी जन्म देती है। जैसे, कोई बालक अपनी परेशानी का मुकाबला करना चाहता है किन्तु उस परेशानी के बारे मे किसी भी दूसरे व्यक्ति से उसकी चर्चा नही करता। फलस्वरूप वह और अधिक कष्ट सहन करता है तथा सारे समय उसी में घुला करता है। उसे किसी की भी सहानुभूति नही मिलती है। ठीक इसके विपरीत, उसकी बहुत-सी समस्याओं और कष्टों का निवारण बड़ी सरलतापूर्वक होता है, यदि वह अपनी समस्याओं को दूसरों के सामने रखता है। साथ ही वह अपने कष्ट को अधिक सहिष्णुता के साथ सहन कर सकता है, जबकि उसके साथी उसे सहानुभूति दिखाने और उसके दुःख बाँटने को तैयार रहते हैं। वह एकाकी अनुभव नही करता। सोचता है—दुनिया मे कुछ तो मददगार हैं, बढ़े चलो आगे।

मनोभावों को छिपाने का कभी-कभी यह भी परिणाम होता है कि जो मनोभाव छिपाये जाते हैं, यकायक किसी दूसरे क्षण बड़ी तीव्रता से प्रकट होते हैं। जैसे, यदि कोई व्यक्ति किसी एक समय अपने तीव्र क्रोध को भी छिपा लेता है, जबकि उसके सम्मान को धक्का लगता है, वही व्यक्ति दूसरे क्षण थोड़ी-सी ही उत्तेजना से उबल पड़ता है। उसमे क्रोध यकायक प्रचण्ड रूप से दिखाई पड़ता है, जबकि उस परिस्थिति मे इतने क्रोध की कोई आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। यह क्रोध ऐसे व्यक्तियों के प्रति भी हो सकता है, जिनका सम्बन्ध क्रोध के कारण मे बिलकुल ही न हो।

एक व्यक्ति जो अपने भावों को छिपाने की सतत् चेष्टा करता है, वह सदैव इसलिए डरता रहता है कि कहीं उसके भाव लोगों पर प्रकट न हो जायें। फलस्वरूप वह उन्हें आवृत्त करने की चिन्ता में ही संलग्न रहता है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति कायर है और वह अपनी इस भावना को व्यक्त नहीं करता तो उसे छिपाने की चेष्टा करता है। किन्तु प्रति क्षण वह इस बात से चिन्तित रहता है कि कहीं लोग उसकी कायरता की भावना को समझ न जायें। अतः इस प्रकृति वाले व्यक्ति दुहरा कष्ट उठाते हैं। प्रथम वे यह जानते हैं कि वे कायर हैं, इसलिए उनका मन दुःखी रहता है, दूसरे वह उसके छिपाने की चिन्ता में व्यस्त रहते हैं कि कहीं कोई उनकी कमजोरी को पहचान न ले कि वह कायर हैं।

बालक के संवेगात्मक व्यवहार को समझना[1]

किसी बालक के संवेगात्मक व्यवहार को सही-सही समझना अत्यन्त कठिन कार्य है। उसकी मनोदशा उसके चारों तरफ स्थित वातावरण का ही परिणाम होती है। उस वातावरण में होने वाली घटनाएँ ही बालक के मनोभावों या संवेगों की जननी होती हैं। कई बार ऐसा होता है कि बालक का व्यवहार बाह्य दृष्टि से तर्कसंगत नहीं दिखाई पड़ता किन्तु गम्भीरतापूर्वक और दूसरे दृष्टिकोण से विचार करने पर मान्य और तर्कसंगत ही प्रतीत होता है। जैसे, एक बालक उस समय भी अत्यन्त भयभीत और डरा हुआ दिखाई पड़ता है, जबकि डरने का कोई कारण नहीं है। एक अध्यापक बालक के साथ समुचित व्यवहार करता है, फिर भी बालक उससे डरता है और अपने अभिभावकों से पाठशाला जाने के लिए रक्षता से मना कर देता है क्योंकि वह अध्यापक के सामने जाने में डरता है। इसका कारण यह हो सकता है कि किसी समय अध्यापक का व्यवहार बालक के प्रति उसके दृष्टिकोण से अत्यन्त ही अनुचित रहा होगा, जबकि अध्यापक के दृष्टिकोण से वह सर्वथा उचित था। ऐसी स्थिति में हमें बालक की भावनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए और उसका सम्मान करना चाहिए तथा उसके व्यवहार को प्रौढ़ के स्तर से नहीं मापना चाहिए।

बालकों के संवेगात्मक व्यवहार को ठीक-ठीक समझने के लिए हमें उनकी मुख्य और महत्त्वपूर्ण संवेगात्मक दशाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए जो प्रायः उनके व्यवहार में पाई जाती हैं, और यह भी देखना चाहिए कि बालकों में वे कैसे विकसित होती हैं। आगे हम कुछ महत्वपूर्ण संवेगों पर विचार करेंगे। यथा—

क्रोध,[2] झगड़ालूपन,[3] तथा प्रतिशोधात्मकता[4]

क्रोध

मनुष्य में क्रोध का प्रकाशन कई दिशाओं में दिखाई देता है। यह तीव्र रोष के रूप में भी हो सकता है, और कभी सामान्य खीझ और चिढ़ के रूप में भी। यह

1. Understanding a Child's Emotional Behaviour. 2. Anger 3. Pugnacity. 4. Vindictiveness.

कभी-कभी भय या दुःख की भावनाओं से मिश्रित ईर्ष्या में, और कभी भय से मिश्रित घृणा की भावना में भी पाया जाता है।

शैशव के प्रारम्भ में क्रोध उन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है जो बालक की क्रियाओं में बाधा पहुँचाती हैं तथा उन व्यक्तियों के कारण भी जो उसके घूमने-फिरने में रुकावट डालते हैं और तब भी जब उसकी इच्छापूर्ति में भी विलम्ब या बाधा पहुँचाती हैं, जैसे—भूख के समय दूध में विलम्ब। ये सभी परिस्थितियाँ शिशु के क्रोध को भड़काने वाली होती हैं। जैसे ही बालक परिपक्वावस्था की दिशा में विकसित होता है, वैसे ही उसके क्रोध को उत्तेजित करने के अवसर अधिकाधिक हो जाते हैं। उस समय केवल वे ही व्यक्ति या परिस्थितियाँ उसके क्रोध को उत्पन्न नहीं करतीं जो उसके कार्यों में रुकावट डालती हैं, वरन् वे व्यक्ति या परिस्थितियाँ जिनसे बालक के कार्यों, आत्मसम्मान, योजनाओं एवं इच्छाओं में किसी भी प्रकार से बाधा पड़ने की सम्भावना भी हो तो भी वे उसके क्रोध को जाग्रत करने के लिए पर्याप्त होती हैं। बालक की इच्छा किसी एक कार्य को करने की है यदि उसमें नियन्त्रण किया जाता है अथवा वह किसी कार्य को करना चाहता है जिसके लिए उसे बलपूर्वक मना कर दिया जाता है और उसे करने नहीं दिया जाता; जैसे—यदि वह ऊँचाई पर रखी हुई मिठाई को पाना चाहता है किन्तु ऊँचाई की बाधा के कारण वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता अथवा उसके हाथ में चॉकलेट का डिब्बा होने पर भी वह उसका ढक्कन खोलने में असमर्थ है, तब यह सभी बातें उसके क्रोध को जाग्रत कर देती हैं। प्रायः क्रोध व्यक्तियों की कमजोरियों या असमर्थताओं पर भी आता है। अन्य लोग आपसे बहुत कुछ करने की आशा रखते हैं किन्तु आप इष्ट कार्य को करने में असमर्थ हैं अथवा आपकी महान् और बड़ी-बड़ी इच्छाएँ हैं, किन्तु आप उनकी पूर्ति करने में असफल हो जाते हैं। इन सभी परिस्थितियों में आप अवश्य क्रोधित होंगे।

क्रोध को जाग्रत करने वाले कारण[1]

बालक को क्रोधोद्दीप्त करने के कुछ कारणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

(१) बालक के प्रतिदिन के कार्यों में अनावश्यक रुकावट पड़ जाना—कभी-कभी अध्यापक बालक को कठिन कार्य सौंपने के उपरान्त उसे डेस्क पर बैठकर बहुत समय तक अध्ययन करने पर बल देते हैं अथवा किसी एक कार्य में बालक के अवधान को बहुत अधिक समय तक लगाए रहने का प्रयत्न करते हैं, जबकि बालक के अवधान-विस्तार[2] की क्षमता उतनी नहीं होती है। ये सभी बातें बालक को चिढ़ाने वाली और उसके क्रोध को जगाने वाली होती हैं।

---

1. Factors responsible for Anger. 2. Attention Span.

(२) कुटुम्ब का रूप है—जिस परिवार में प्रौढ़ व्यक्ति संख्या में अधि
होते हैं वहाँ बालक अधिक क्रोध दिखाते हैं—अपेक्षाकृत उन घरों के, जहाँ परिवा
सदस्यों की संख्या में प्रौढ़ कम होते हैं।

(३) एक बालक जो शारीरिक कमजोरी, बीमारी, थकान अथवा और न
से अपनी दैनिक समस्याओं को आसानी से नहीं सुलझा पाता है, उसमें क्रोध की म
अधिक और शीघ्र उत्पन्न होती है। दूसरा बालक जो स्वस्थ और सामर्थ्यवान्
अपने दैनिक कार्यों को सरलतापूर्वक कर लेता है और दिन-प्रतिदिन के कार्यों में
वाली समस्याओं का डटकर बहादुरी से सामना करता है, उसमें क्रोध की मात्रा
होगी। एक भूखा बालक भोजन-प्राप्त बालक की अपेक्षा अधिक चिड़चिड़ा
क्रोधी होता है। आपने प्रायः यह देखा होगा कि जब आप भूखे हैं तो अधिक क्रोधि
होते हैं किन्तु जब आप अच्छी तरह भोजन कर चुके होते हैं तो उस मात्रा में क्र
नहीं आता। वास्तव में भूख व्यक्ति को चिड़चिड़ा बना देती है और क्रोध को उद्
कर देती है।

झुँझलाहट का संचय[1]

व्यक्ति के अन्दर जो झुँझलाहट अथवा खीझ दूसरों के प्रति होती है यदि
अभिव्यक्त नहीं हो पाती है तो एकत्रित होती जाती है और समय पाकर छोटी
बात के ऊपर भी यकायक भयंकर क्रोध के रूप में प्रकट हो जाती है। वस्तुतः
प्रचण्ड क्रोध किसी सामान्य उत्तेजना या साधारण उद्दीपन के कारण नहीं होता व
वह बहुत दिनों से संचित होती आ रही खीझ का परिणाम है। जब कोई बा
अथवा प्रौढ़ बिना किसी गम्भीर कारण के ही छोटी-सी बात पर विस्फोटित हो ज
हैं, उनके इस व्यवहार का कारण अन्दर छिपा क्रोध होता है जो अनुकूल परिस्थि
पाकर प्रचण्ड रूप से बाहर निकल पड़ता है। ऐसे समय में बालक के इस व्यव
के ऊपर कोई भी ध्यान न देना ही लाभकारी होगा। क्योंकि आपने देखा होगा
जब कोई व्यक्ति किसी साधारण तथ्य को लेकर यदि क्रोधित हो रहा हो और अ
शान्त करने का प्रयास करें तो वह शान्त होने की अपेक्षा और अधिक क्रोधित
उठता है। ऐसी परिस्थिति में ऊपरी सान्त्वना की अपेक्षा गम्भीर एवं दृढ़मूल उप
की आवश्यकता होती है।

एक किशोर बहुत दिनों से अपने मित्रों के साथ रविवार को किसी पिकनि
में जाने का विचार करता है और जब वह दिन आता है तो उसके पिता यकायक
जाने की अनुमति नहीं देते तो उस दिन वह विद्रोह कर बैठता है। चाहे जितना
वह अपने माता-पिता का आज्ञाकारी पुत्र रहा हो और चाहे जैसे कठिन माता-पि
के निर्देशों को मानता रहा हो, किन्तु उस दिन तो उसका विद्रोही मन अनुशा
स्वीकार नहीं करेगा। *क्योंकि इसके मूल में एक सामान्य बात के पूर्ण न होने का*

1. Accumulation of Annoyances.

कारण नहीं है वरन् बहुत दिनों पीछे से बालक आस लगाये बैठा था और जब वह दिन आया तो उसके पीछे के सारे दिनों की सङ्कलित लालसा का अन्त हो जाता है, जिसका एकदम समाप्त होना बाल-मन स्वीकार नहीं करता।

क्रोध वस्तुतः विषयीगत[1] होता है, और उसकी अभिव्यक्ति के समय उसके अन्दर छिपे कारण क्रियाशील हो उठते हैं। एक बालक से जो अत्यन्त दुबला-पतला है, यह कहकर कि "तुम बड़े दुबले हो", उसके क्रोध को जाग्रत किया जा सकता है जबकि वह प्रत्येक क्षण अपने व्यक्तित्व-निर्माण में अपनी मांसपेशियों को सुन्दर और सुडौल बनाने में लगा हुआ है। इसी प्रकार एक व्यक्ति बहुत अधिक स्वाभिमानी है, यदि कोई ऐसी बात वह दी जायगी जो उसकी भावनाओं को चोट पहुँचाए तो वह क्रोधित हो उठेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोध के संवेगों के समय हमें व्यक्ति की उन सभी आन्तरिक दशाओं का ध्यान रखना पड़ेगा जिनके कारण क्रोध उत्पन्न हो सकता है और ऐसा करने में व्यक्ति के प्रति सावधानी और ईमानदारी बरतनी होगी।

क्रोध का विषयान्तरण[2]

हम 'क्रोध' को भलीभाँति तब तक नहीं समझ सकते, जब तक हम यह न समझ लें कि क्रोध भी विषयान्तरित हो जाता है। विषयान्तरण से हमारा अभिप्राय यह है—जब व्यक्ति क्रोध के मूल कारण के प्रति अपने क्रोध को अभिव्यक्त नहीं कर पाता तो किसी दूसरी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अपना क्रोध प्रकट करता है जिसका क्रोध से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे, एक बालक यदि अपने ज्येष्ठ के प्रति क्रोधित है तो वह उनके प्रति अपना आक्रोश प्रकट कर सकने के कारण खिलौने तोड़ेगा या स्लेट फेंक देगा। इसी प्रकार जो बालक अपने अध्यापक पर क्रोधित है, वह घर आकर अपने आक्रोश को माँ-बाप पर दिखाता है। क्रोध के विषयान्तरण का कारण सम्बन्धित व्यक्ति पर रोष प्रकट करने में भयभीत होना है अथवा जब क्रोध के संवेग की अनुभूति होती है, उस समय हम उस अनुभूति को बनाए रखना चाहते हैं। यदि उसमें बाधा उपस्थित होती है तो हम दूसरों पर अपना रोष प्रकट करते हैं। यद्यपि जिस पर रोष प्रकट किया जाता है, वह रोष का मूल कारण नहीं होता।

हमारी पाठशालाओं में बालकों को मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा नहीं दी जाती, उनके साथ रूक्ष व्यवहार किया जाता है। जब बालक के मन में उस रूक्षता के प्रति प्रतिक्रिया होती है तो वह अध्यापक के भय के कारण उसे व्यक्त नहीं कर पाता, किन्तु ज्यों ही बालक घर पहुँचता है, वह छोटी से छोटी बात के ऊपर बिगड़ने लगता है। अतः पाठशाला या घर पर बालक का सुन्दर व्यवहार इस बात का प्रमाण नहीं है कि बालक क्रोध का अनुभव नहीं कर रहा है। वह एक समय छिपा रह सकता है और दूसरे समय व्यक्त हो सकता है।

1. Subjective 2. Displacement of Anger.

क्रोध का विपयान्तरण आधुनिक काल मे विचित्र प्रकार से होना
अत्यन्त स्पष्ट तथा हास्यास्पद है। एक अधिकारी जो घर पर अपनी पत्नी से
कर आया है, कार्यालय मे आते ही मुख्य लिपिक को बुलाता, डाँटता और फा
इधर-उधर फेंकता है। मुख्य लिपिक अपनी कुर्सी पर बैठकर लिपिक पर अपना
उतारता है। *लिपिक महोदय सारे दिन कठोर परिश्रम कर मुख्य लिपिक की भि*
सह थका-माँदा, भय और आर्थिक विषमताओ की समस्या मे उलझा सन्ध्या स
पहुँचता है और जाते ही अपनी पत्नी पर उबल पडता है—'ये बच्चे क्यों रो र
'हमारे आते ही यह तूफान !' 'कहीं भी चैन नही।' बेचारी गृहिणी जिसके जी
एकमात्र साधन उसके पति की प्रसन्नता ही है, अपने आक्रोश को पति के प्रति
करने मे असमर्थ होने के फलस्वरूप बालकों को पीटती है, उन्हे दण्डित कर
बेचारे कमजोर, निरीह और असमर्थ बालक इस अन्याय से रोकर रह जाते
अधिकतर कुण्ठाओ और मनोग्रन्थियो का शिकार होते हैं। यह मानव स्वभाव
वह अपने से शक्तिशाली के प्रति जब अपने क्रोध का प्रतिकार नही कर पा
अपने से कमजोरो को धर दबाता है। यही कारण है कि घर के वयस्क और
बालकों को अकारण ताड़ना देते हैं। शारीरिक दण्ड देने के पीछे भी यही
काम करती है। एक बड़ा व्यक्ति आसानी से और बिना किसी खतरे के छो
दण्डित कर सकता है। यही क्रोध के विपयान्तरण का मूलमन्त्र है।

क्रोध का विपयान्तरण कभी-कभी क्रूरता और पशुता का भी रूप धार
लेता है। क्रोध की यह अत्यन्त ही अवाछनीय स्थिति होती है। इस क्रूरत
बर्बरता का शिकार कमजोर व अरक्षित व्यक्ति बनते है। जो दीन-हीन है
और यातना मिलती है। यह प्रवृत्ति प्राय उन व्यक्तियो मे पाई जाती है जो
की कठिनाइयो का मुकाबला बहादुरी से नही कर सकते। वे अपने क्रोध का
अपने से कमजोरो को ही बनाते है। ऐसे व्यक्तियों की अत्यन्त ही रुग्ण मानसिक
होती है। वे शक्तिशाली व्यक्ति के द्वारा अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहार का
लेना चाहते हैं किन्तु स्वयं शक्तिहीन होने के कारण उनके विरुद्ध तो सर उठा
पाते और अपने से कमजोर और निरीह व्यक्तियों पर अपनी क्रूरता दिखाकर
मन की 'बदले की भावना' की तुष्टि करते हैं।

क्रोध का विपयान्तरण आसन्न व्यक्ति या वस्तु पर भी हो सकता है।
एक व्यक्ति यदि अपनी पत्नी द्वारा पकाये गये अरुचिकर भोजन पर क्रोधित हो
तो वह आसन्न रखे हुए बर्तनो एवं अन्य पात्रो को फेंकने लगता है, प्याले
तश्तरियो तो तोड़ डालता है। इस प्रकार का विपयान्तरण पाठशालाओ मे
रूप से दृष्टिगोचर होता है, जहाँ बालक अपने आक्रोश को प्रदर्शित करने के
कुर्सियाँ, खिड़की के शीशो और बेंचों इत्यादि को तोड डालते हैं। आधुनिक
मे क्रोध का यह स्वरूप हमारी सभी पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों तक मे
लक्षित होता है। यह प्रवृत्ति आजकल विद्यार्थियो द्वारा सामान्य रूप से ग्रहण क

गई है। जहाँ अध्यापक वर्ग के प्रति कुछ कोप हुआ, बेचारी कॉलिज-सम्पत्ति क्रोध का शिकार बनती है अथवा विद्यार्थियों की कुछ माँगें—सही या गलत—यदि पूरी न की गईं तो उस शिक्षा-संस्था को दुबारा ही फर्नीचर बनवाना पड़ता है।

क्रोध के समय व्यवहार करने की रीतियाँ[1]

ऊपर हमने क्रोध को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों और उनके कारणों की चर्चा की है। साथ ही यह भी बताया है कि क्रोध क्यों और कैसे उत्पन्न होता है। यहाँ हम कुछ ऐसी रीतियों को प्रस्तुत करेंगे जिनके अनुसार 'क्रोध' नामक संवेग को संयत किया जा सकता है। यह बताया जा चुका है कि क्रोध के सही स्वरूप को समझने के लिए उसकी प्रेरणा, उसके प्रयोजन एवं उसकी पृष्ठभूमि को भलीभाँति समझ लेना चाहिए। क्रोध पर काबू पाने के लिए सर्वश्रेष्ठ तरीका यह है कि क्रोधोद्दीपन को कम किया जाय जो अनावश्यक क्रोध को बढ़ाता है। ऐसी व्यर्थ की बाधाएँ जो परिणामी नहीं हैं, जिनसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, ऐसे कार्य जो व्यक्ति की सामर्थ्य के परे हों अथवा ऐसा कार्य जिसे बार-बार करने से अरुचि पैदा होती हो, अनावश्यक नियन्त्रण और अनुचित माँग—इन सभी बातों से बचना चाहिए, क्योंकि ये ही क्रोध का मूल कारण बनती हैं। यह भी ध्यान रखने की बात है कि व्यंग्य, विनोद, चुटकी और फटकार का प्रयोग तब तक नहीं करना चाहिए जब तक आप विश्वस्त न हों कि उनका प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा और उनका प्रयोजन सफल होगा। यदि आप जानते हैं कि आपके डाँटने पर भी बालक शान्त नहीं होगा तो उसे झिड़कना व्यर्थ है, उसे चुप करने का प्रयास निरर्थक है। सम्भव है कि वह और अधिक उत्तेजित हो उठे।

क्रोध की दशा में प्रायः आप जिस व्यक्ति के प्रति क्रोधित होते हैं, उसके प्रति आपके मन में तीव्र रोष होता है तथा आप उस आक्रोश को उसके प्रति अभिव्यक्त भी करते है। यदि वह व्यक्ति भी आपके प्रति क्रोधोद्दीप्त हो उठता है तो परिस्थिति बड़ी भयंकर हो जाती है तथा एक-दूसरे के प्रति तीव्र कटुता पैदा हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि व्यक्ति को अपने ऊपर नियन्त्रण रखना चाहिए। यद्यपि ऐसा करना अत्यन्त कठिन है, फिर भी यदि आप शांत और तटस्थ मस्तिष्क से बाद में विचार करें तो देखेंगे कि उसमें आपकी ही त्रुटि थी और आप अपनी गलती को छिपाने के लिए बार-बार क्रोधित हो रहे थे। आप यह भी देखेंगे कि अपेक्षाकृत दूसरे व्यक्ति की इतनी गलती नहीं थी। इस प्रकार क्रोध का आसानी से निवारण किया जा सकता है और वैर-भाव की मात्रा को भी कम किया जा सकता है।

वैर-भाव के बढ़ने का एक और कारण भी होता है। जब एक व्यक्ति किसी दूसरे निर्दोष व्यक्ति के सिर दोष मढ़ता है और दूसरे के प्रतिवाद करने पर भी जब

---

1. Methods dealing with Anger.

अगर व्यक्ति उसी को दोषी ठहराता है तो उसका क्रोध भड़क उठता है, क्रमशः विद्रोह कर उठती है, वह उस अपमान को बरदाश्त करने के लिए तैया होती। ऐसी परिस्थिति में यदि प्रथम व्यक्ति शान्तिपूर्वक स्वयं मन में विचा और अपनी भूल को स्वीकार कर ले तो वह स्थिति टल जाती है।

इस क्रोध की प्रवृत्ति पर विजय पाने और उसे नियन्त्रण में रखने का अधिक और सरल एवं व्यावहारिक उपाय यह है कि जब क्रोध की मनोदशा हो जाय तो व्यक्ति को अपने आपसे प्रश्न करना चाहिए—"मैं इतना क्रोधि हुआ ? क्या मेरा यह क्रोध उचित था ?" इस प्रकार की प्रश्नावली व्यक्ति को के बारे में बहुत-कुछ जानकारी प्रदान करती। वह भविष्य में अपने को शान्त की चेष्टा करेगा और इतना शीघ्र उत्तेजित नहीं होगा, जैसे कि पहले हो करता था।

अध्यापक बन्धु भी अपने बालकों को इस दशा में बहुत सहायता दे सकते वे बालकों में ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं, जिससे वे दिन-दिन के कार्यों में आने वाली बाधाओं के प्रति तुरन्त उत्तेजित न हो उठें। पाठ में अध्ययन के कुछ ऐसे विषय[1] हो सकते हैं जिनमें बालक अपनी निपुणता न सके। यदि उसकी इस कमजोरी पर अध्यापक कक्षा में उसका उपहास करता बालक में आक्रोश का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। किन्तु यदि वह बाल पाठ्यक्रम में सुधार कर उसकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप बनाकर उसे सीख लिए देता है तो बालक के कुपित होने का समय आ ही नहीं सकता। अतः अध्य को बालक का ठीक-ठीक अध्ययन कर उसकी शक्ति, सामर्थ्य और योग्यता तथा के अनुसार शिक्षा देनी चाहिए।

अध्यापक को बालक के उन कार्यों की भी सराहना करनी चाहिए, जि वह सिद्धहस्त और प्रवीण है। इससे प्रभाव यह पड़ता है कि बालक जिस विष कमजोर है उसके प्रति कुपित नहीं होगा वरन् अध्यापकीय श्लाघा से प्रफुल्लित हो वह उसमें भी निपुणता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करेगा। वस्तुतः इस इस का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति जिस विषय में दक्ष है, उसकी प्रशंसा आत्म-सन्तोष दूसरे के आक्रोश-जनित अभाव की पूर्ति कर देता है। फलस्वरूप विषय के प्रति उसके क्रोध की मात्रा में कमी हो जाती है।

अन्त में, हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि 'क्रोध' की व्या निरपेक्ष कोई अलग स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह व्यक्ति-सापेक्ष है, व्यक्ति पर आश्रि और व्यक्ति के कारण और उसके द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति होती है। अतः 'क्रो को भलीभाँति समझने के लिए सम्बन्धित व्यक्ति की रुचि, स्वार्थ, इच्छाएँ, साम एवं उसके कौशल को भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

---

1. Subjects.

भय[1]

क्रोध के समान ही 'भय' उत्पन्न होने के भी बहुत-से कारण और परिस्थितियाँ होती हैं। इसमें भी सामान्य आशंका, भय और आतङ्क—सभी सम्मिलित होते हैं और उन्हीं के अनुसार भय की मात्रा कम या अधिक होती है। 'भय' आने वाली भीषण विपत्ति की आशंका से उत्पन्न होता है अथवा ऐसी परिस्थिति, जिसका सामना व्यक्ति नहीं कर सकता, भय-उत्पादन का कारण बनती है। वह भय के कारण से दूर भागना चाहता है, उससे अपने को छिपाना चाहता है। उसकी यह प्रतिक्रिया इसलिए होती है कि वह जानता है कि उस परिस्थिति का सामना करने से उसे शारीरिक या अन्य भयङ्कर हानि हो सकती है, अतः वह उससे बचना चाहता है।

भय के उत्पन्न होने के कारण कभी-कभी प्रत्यक्ष परिस्थिति भी हो सकती है और कभी-कभी अस्पष्ट और अप्रत्यक्ष भी। जैसे, यदि एक बालक खेलते-खेलते गायों के झुण्ड के समीप पहुँच जाता है तो उसे गायों से भय प्रतीत होता है। यहाँ भय का कारण 'प्रत्यक्ष परिस्थिति' है। किन्तु जब व्यक्ति मानसिक चिन्ताओं और परेशानियों में डूबा हुआ है तो उसका मन भावी आशंका से, परिवार के अहित की कल्पना से सिहर उठता है, वह भयभीत होता है। यह 'अप्रत्यक्ष परिस्थिति' है। शैशवावस्था में बालक किसी तीव्र आवाज को सुनकर ही भयभीत हो उठता है। कोई वस्तु यकायक जमीन पर गिर पड़ती है—यही उसके भय का कारण बन जाती है, अथवा कोई ऐसा उद्दीपक जो उसने पहले कभी न देखा हो, यथा—बिजली की चमक, बादलों की गरज, यकायक किसी घटना का होना आदि भी भयोत्पादक होते हैं।

(भय का संवेग)
[गुरु-गम्भीर घोष, तुमुल नाद, दूसरे व्यक्ति द्वारा मारने दौड़ना—ये सभी बालक में भय उत्पन्न करने वाले उद्दीपक हैं।]

---

1. Fear.

किसी व्यक्ति की 'भय' की मनोदशा केवल बाह्य कारणों पर ही आधारित नहीं है, वरन् क्रोध की तरह बाह्य और आभ्यन्तर—दोनों प्रकार के अनगिनत कारणों और परिस्थितियों पर निर्भर होती है। जैसे, घटना के समय प्राणी की शारीरिक और मानसिक दशा, चारों तरफ का वातावरण, पूर्व-धारणाएँ, किसी घटना की घातकता को समझने की क्षमता, व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियाँ जिनके कारण वह आत्म-विश्वास खो चुका है, आदि।

अत: भय के मनोविकार को बिना व्यक्ति के अन्तर्जगत में झाँके, नहीं समझा जा सकता।

बालक के विकास के साथ जैसे-जैसे उसका कार्य-क्षेत्र विस्तृत और उसके स्वार्थ विविध होते जाते हैं, वैसे ही उसके भय का क्षेत्र भी विस्तीर्ण होता जाता है। जब बालक की कल्पना-शक्ति बढ़ जाती है, वह वर्तमान के दायरे से निकल कर भविष्य के बारे में भी विचार करने लगता है तो वह केवल वर्तमान की घटनाओं से ही भयभीत नहीं होता, वरन् भविष्य में होने वाली घटनाओं की कल्पना करके भी भय-भीत हो उठता है। वह अपने भावी जीवन के लिए आने वाले भय आदि की कल्पना कर सकता है।

बालक में सामाजिक भावना के विकास के साथ-साथ भय का क्षेत्र भी बढ़ जाता है। बड़ों की 'स्वीकृति' और 'अस्वीकृति' भी बालक में भय के विकास का कारण बन जाती है। वह किसी कार्य की असफलता के ऊपर अत्यन्त चिन्तित होता और सोचता है—कहीं अभिभावकों को पता न हो जाय। यह सब 'भय' को जन्म देने वाले और बालक में 'भय' की मनोवृत्ति को बढ़ाने वाले होते हैं। वह बड़ों से डरने लगता है। किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में व्यक्ति नयी-नयी प्रेरणाओं और आवेगों से भयभीत होने लगता है। किशोरावस्था में लिंग से सम्बन्धित भय विकसित होता है। प्रौढ़ावस्था में वह उन सब वस्तुओं के प्रति भयभीत होने लगता है जो बुढ़ापे में उसे अशक्त और अयोग्य बना देंगी।

उम्र की विभिन्न अवस्थाओं में भय[1]

शैशव-काल में भय किसी भयावह या तीव्र व भीषण उद्दीपन के प्रति प्रति-क्रिया के रूप में आता है। बालक में भय की अनुभूति उन प्रत्यक्ष घटनाओं की प्रति-क्रिया स्वरूप होती है जो उसके निकट के वातावरण में घटित होती हैं। पाठशाला में शिक्षा-प्राप्ति के पूर्व की अवस्था में बालक में भय का संचार किसी भावी आशंका के फलस्वरूप होता है। इसमें बालक प्रत्यक्ष घटनाओं से ही भयभीत न होकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की कल्पना द्वारा सोचकर भी भयभीत हो उठता है। प्रारम्भिक स्कूल में आने की आयु के उपरान्त बालक अपने भय का सम्बन्ध प्रायः दुर्भाग्य से

---

1. Fears at various Age-Levels.

जोड़ता है जिसके कारण वह अपने कार्यों में सफल नहीं होता है। बालक की ज्यों ही थोड़ी उम्र और बढ़ती है, वह उन परिस्थितियों से अब नहीं डरता है जिनसे वह शैशव-काल में डरता था, जैसे—शोरगुल, अज्ञात व्यक्ति और स्थान, अपरिचित परिस्थितियाँ। ये सभी परिस्थितियाँ बालक में भयोत्पादन की क्षमता खो बैठती है। उनके स्थान में बालक भावी भय की आशङ्का या विपत्ति की कल्पना से डरने लगता है।

अन्धकार—बाल्यावस्था में बहुत-से बालक अन्धकार से बहुत डरते हैं। वे अँधेरे स्थान पर नहीं जाना चाहते। चूँकि अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता है, अतः उसमें छिपी किसी विपत्ति की भी सम्भावना हो सकती है। यही सम्भावना व्यक्ति के मस्तिष्क में भय का उत्पादन करती है किन्तु अधिकतर विपत्ति की यह आशंका वास्तविक नहीं होती, बालक केवल कल्पना द्वारा भी भयाक्रान्त हो उठता है।

अन्धकार-जनित भय प्रायः दूसरे भय का प्रक्षेप[1] मात्र होता है, जो पहले से बालक के मस्तिष्क में विद्यमान होता है। बालक जो पहले से ही किसी वस्तु या व्यक्ति से भयभीत है, उसी से सम्बन्धित कल्पना करके और अन्धकार में उसकी उपस्थिति मानकर आतंकित हो उठता है। वह उसी प्रकार की पगचाप या ध्वनि का अनुभव करता है और अन्धकार की सघनता उसे वास्तविकता से परिचित नहीं होने देती। जैसे, किसी बालक ने यह सुन रखा है कि अमुक स्थान पर भूतों का डेरा है, और दुर्भाग्यवश यदि उसे इस रास्ते से अन्धकार में गुजरना पड़ा तो उन भूतों की स्मृति उसके मन में जाग्रत हो उठेगी, उसे अस्थिपिंजर युक्त आकृतियाँ हवा में दौड़ती हुई दिखाई देंगी और वह भयभीत हो उठेगा, क्योंकि लोगों ने उसे पहले से डरा रक्खा है कि भूत मनुष्य को मार देता है और कष्ट देता है।

अन्धकार में व्यक्ति यदि एकाकी हो तो उसका भय अधिक घनीभूत हो जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि बालक या वयस्क व्यक्ति यदि साथ-साथ हैं, तो वे नहीं डरते। यही नहीं, यदि साथी के नाम का दूसरा कोई छोटा बालक, कुत्ता या बिल्ली भी है तो भी भय बहुत मात्रा में कम हो जाता है।

बालक को अकेला छोड़ देना—पाठशाला-वय की पूर्वावस्था में यदि बालक को अकेला छोड़ दिया जाता है तो भी वह भयभीत हो उठता है। उसके भय का कारण उसकी असहायता अथवा अरक्षा है, जिसके कारण उसमें भय का विकास होता है। एक माँ बालक को कड़ी धमकी देकर, घर में अकेला छोड़कर, उस पर नियन्त्रण रखना चाहती है किन्तु फिर भी वह नहीं मानता। ऐसी परिस्थिति बालक को डरपोक भी बनाती है, और जो बालक अनुशासन को सरलता से स्वीकार भी कर सकता है, वह इन निर्दय उपायों से अनुशासनहीन ही बना रहता है।

पशुओं का भय—बच्चे शैशव और बाल्यावस्था में पशुओं से बहुत डरते हैं।

1. Projection.

भारतीय घरों में प्रायः यह देखा जाता है कि बालक कुत्ते और बिल्लियों से बहुत भयभीत होते हैं। वास्तव में बालक इस भय को यहीं सीखता है। माँ स्वयं डरा देती है—"बेटा ! कुत्ता काट खायगा।" "बेटा ! सो जाओ, वरना बिल्ली आ जायगी।" बालक को यदि स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो वह इन पशुओं से नहीं डरेगा। वह तो सर्प के साथ तक बड़ी प्रसन्नता से खेलेगा। वह तो बड़ों को देखता है और उनसे सीखता है, इसलिए वह भी भयभीत होता है।

अन्य प्रकार के भय—बाल्यावस्था के प्रारम्भ में अन्य कई वस्तुओं के प्रति बालक में भय का उदय हो जाता है, जैसे—लाश, भूत इत्यादि। यह भय की भावना बाल्यावस्था के समाप्त होने तक बनी रहती है। किन्तु किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों में जो डरपोक प्रवृत्ति के बन जाते हैं, यह जीवन-पर्यन्त बनी रहती है। उन्हें आजीवन रात्रि के अन्धकार में या वीरान स्थानों पर सदैव भूत के ही दर्शन होते हैं। जैसे-जैसे बालक बुद्धि और उम्र में बढ़ता है, उसमें परीक्षा में असफल होने का भय, उसके कार्यों के प्रति समाज की स्वीकृति और अस्वीकृति एवं विधि-निषेधों का भय भी उदय हो जाता है।

अविवेक-जनित भय—बालकों में अविवेक-जनित भय बाल्यावस्था के अत्यन्त आरम्भ से ही पाया जाता है। वे किसी अज्ञात वस्तु, अपरिचित व्यक्ति और वातावरण को देखकर डर जाते हैं, यद्यपि उन वस्तुओं से बालक के जीवन के लिए किसी भी प्रकार की विपत्ति या डर की आशङ्का नहीं है। इसी प्रकार का विवेकहीन भय किशोर और प्रौढ़ व्यक्तियों में भी पाया जाता है। आपने किन्हीं-किन्हीं युवा और प्रौढ़ व्यक्तियों को देखा होगा कि वे लौह-निर्मित पुल से भी बरसात की लहराती हुई नदी को पार करने में डरते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि पुल मजबूत है, नहीं टूटेगा, फिर भी उनका दिल उसे पार करने के लिए गवाही नहीं देता।

भय और चिन्ता[1]

शब्दकोश के अनुसार चिन्ता का अर्थ एक ऐसी कष्टदायक मानसिक स्थिति से है, जिसमें भारी विपत्तियों की आशङ्का से व्यक्ति व्याकुल होता है। 'चिन्ता' की व्याकुलता 'भय' की व्याकुलता से भिन्न होती है। चिन्ता का विषय स्वयं व्यक्ति होता है, उसकी व्याकुलता स्वयं उसकी मानसिक स्थिति-जन्य होती है, जबकि भय में व्याकुलता का कारण किसी बाह्य विषय[2] द्वारा व्यक्ति के ऊपर आपत्ति आने का डर होता है। भय में हम भारी विपत्ति के निश्चय पर व्याकुल होते हैं और तभी भय उत्पन्न होता है। किन्तु चिन्ता तो विषयीगत[3] व्याकुलता है, जिसका बाह्य पदार्थों से सम्बन्ध नहीं। 'चिन्ता' हृदयगत छिपी हुई परेशानी के प्रति मस्तिष्क की प्रतिक्रिया है, जबकि 'भय' प्रत्यक्ष एवं विषयगत खतरे के प्रति प्रतिक्रिया है। चिन्ता में आशंका

---

1. Fear and Anxiety. 2. Object. 3. Subjective.

विषयीगत होती है, जबकि भय में विषयगत। यही सबसे बड़ा अन्तर है। किसी व्यक्ति की चिन्ता को देने वाले विषयीगत कारण अचेतन भी हो सकते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों के विचार से चिन्ता में व्यक्ति अपनी अन्तर्दशा और तज्जन्य विचारों को बाह्य पदार्थों की परिस्थितियों में प्रक्षिप्त रूप से देखता है। इसे दुर्भीति[1] कहते हैं। उदाहरण के लिए, प्रेत, भूतात्मा या लाश का भय अथवा किसी ऐसी भयप्रद पूर्व घटना जो वर्तमान में उसे हानि नहीं पहुँचा सकती अथवा ऐसी कोई परिस्थिति पैदा नहीं कर सकती जो व्यक्ति के लिए भय का कारण बने। ये इस प्रकार के भय हैं जो आन्तरिक कारणों से उत्पन्न होते हैं और किसी बाह्य घटना के प्रतीक-स्वरूप भय उत्पादन करने वाले बन जाते हैं।

कोई भी व्यक्ति सरलतापूर्वक इस चिन्ता-पिशाचिनी की व्याकुलता से मुक्त हो सकता है, यदि वह अपने मन की अन्तर्दशाओं का सामना करना सीख ले। उसे स्वयं अपने ऊपर विचार करना चाहिए, अपने को समझना चाहिए कि उसका भय विवेकहीन और असङ्गत है, उसके भाव दोषी और मिथ्या हैं। इन सब तथ्यों पर व्यक्ति को गम्भीरता से सोचना और समझना चाहिए। अतः चिन्ता को दूर करने के लिए व्यक्ति की अन्तर्दशाओं का सूक्ष्म अध्ययन और विचार कर लेना चाहिए।

भय का प्रकाशन[2]

भय का प्रकाशन भी विविध प्रकार से होता है। इसकी अभिव्यक्ति के प्रत्यक्ष चिन्ह काँपना, चीखना, पसीना आना, भागना, मुख विवर्ण होना इत्यादि हैं। इसमें व्यक्ति का रक्त-चाप भी बढ़ जाता है और कभी तो वह बेहोश भी हो जाता है। कोई व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है जो अत्यन्त डरा हुआ हो किन्तु इस प्रकार के अनुभवों को प्रकट न होने दे। वह दिखाने के लिए अपने चेहरे पर मुस्कराहट ला सकता है और इस प्रकार का व्यवहार कर सकता है जैसे कि वह बिलकुल ही भय-भीत न हो, जबकि मन में वह भीषण रूप से डर रहा है। झगड़ालू और विद्रोही बालक भी अपने अन्तर्मन में भयाक्रान्त हो सकते हैं। कभी-कभी लोग अपने भय को छिपाने के लिए क्रोध का प्रदर्शन करके, और कभी-कभी मृदु व्यवहार और उपेक्षा दिखाकर अपने भय को छिपाना चाहते हैं।

भय से लाभ-हानि[3]

लाभ—अन्य संवेगों की तरह हमें भय से बहुत-से लाभ भी प्राप्त होते हैं। यह हमें हानि से बचाता है और भावी आपत्ति की आशंका का संकेत कर हमें सचेत कर देता है। यह व्यक्ति को व्यर्थ के अनुपयोगी कार्यों में प्रवृत्त होने से रोकता है। "भय व्यक्ति को दूरदर्शी, विवेकी और सावधान बनाता है तथा आने वाले भविष्य का साहसपूर्वक सामना करने के लिए तैयार करता है।" किसी दुर्घटना के होने का भय व्यक्ति को सावधान कर देता है। नौकरी छूट जाने का भय व्यक्ति को अधिक

---

1. Phobia 2. Expression of Fear. 3. Values of Fear.

समाप्त ही किया जा सकता है। बालक मे बहुत-से भय यकायक और बिना कारण ही उत्पन्न हो जाते है, प्रौढ़ व्यक्ति जिनके आने की कल्पना भी नही कर सकते। अत रोकथाम सम्भव नहीं होती। फिर भी भय को किसी मात्रा तक रोका अवश्य जा सकता है, उसको नियन्त्रित किया जा सकता है। बालक जैसे-जैसे उम्र मे बढ़ता जाता है, वैसे ही यह भी सम्भावना होती जाती है कि बहुत प्रकार की भयप्रद परिस्थितियों से जिनमे बालक शैशवावस्था मे डरता था, अब नही डरेगा—वे उसके लिए भयोत्पादन का कारण नहीं बन सकती। किन्तु उनका पूर्णरूपेण निराकरण इस ढग से नही हो सकता और बहुत-से प्रौढ़ व्यक्ति भी शैशवकालीन भयोत्पादक कारणो के उपस्थित होने पर डर जाते हैं।

भय को रोकने और उसको दूर करने के लिए हमे उसके कारणो को जान लेना चाहिए—(१) भय किसी भयानक घटना के देखने या रोमांचकारी कहानी सुनने मे उत्पन्न होता है, (२) प्रतिदिन के जीवन मे पड़ने वाले विविध प्रभाव जो व्यक्ति की सुरक्षा मे बाधा डालने व उसके आत्म-विश्वास को नष्ट कर देते हैं, भय उत्पादन का कारण बनते हैं, और (३) अन्य बहुत-से कारणों मे भय उत्पन्न होता है, जैसे—अचानक अप्रत्याशित रूप से किसी समस्या का आ जाना, जिसका सामना करने मे व्यक्ति समर्थ न हो, और न जिसके लिए पहले से तैयार ही हो।

भय को रोकने के लिए निम्नलिखित उपायो को प्रयोग मे लाना चाहिए :

(१) अचानक एक अप्रत्याशित परिस्थिति का होना बालक के भय का कारण बनता है। अत उसे शनैः शनैः नयी-नयी परिस्थितियो से अवगत कराना चाहिए। तदुपरान्त उसे नवीन कार्य करने को देना चाहिए तथा नयी-नयी क्रियाओ से अवगत कराना चाहिए। किन्तु इन परिस्थितियों की नूतनता मे सदैव मात्रा का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा न हो कि आप उसे एकदम अपरिचित परिस्थिति मे अवगत कराएँ। यह कार्य अत्यन्त सावधानी से और क्रमशः होना चाहिए।

(२) जिस वस्तु के प्रति भय की भावना स्थापित हो चुकी है, उसमे बराबर यह विश्वास दिलाने मे कि वह वस्तु भय का कारण बन ही नही सकती, उससे डरना ही क्या, वहाँ कुछ भी भय नहीं है, आदि युक्तियाँ भय को दूर करने में सफल हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, लेखक का छोटा भाई जिसकी उम्र १७-१८ वर्ष की थी, भूत-प्रेत और श्मशान से बहुत डरता था। वह रात्रि मे गाँव मे स्थित घर के बाहर अकेला निकलना कभी पसन्द नही करता था। लेखक उसे रात्रि के घने अन्धकार मे अर्द्धरात्रि के समय कई बार घुमाने बाहर ले गया—भय के कारण को दूर करने के लिए उसने रायफल भी दी, श्मशान, वीरान स्थानो मे घुमाता फिरा—जहाँ उल्लू बोलते थे और धमगादड़ चीखते थे। धीरे-धीरे उसका भय जाता रहा और फिर कभी रायफल साथ ले जाने की आवश्यकता नही पड़ी। लेखक और वह, *गर्मी मे* रात्रि के ११-१२ बजे तक, नहर के किनारे घूमा करते थे।
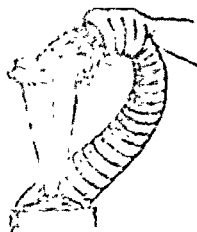
बालकों का भय जो साधारण कोटि का होता है, सरलतापूर्वक दूर किया जा सकता है। किन्तु उस प्रकार के भय जो व्यक्ति के मन में गहरी जड़ें जमा लेते हैं, आसानी से दूर नहीं होते। इस दशा में बालक के भय के कारणों का गहरा अध्ययन करना चाहिए और फिर उसके निवारण का व्यावहारिक उपाय ढूँढना चाहिए। *अन्य प्रकार के भय अपनी योग्यता और शक्ति में विश्वास रखने से भी दूर किये जा सकते हैं।* अच्छी आदतों के निर्माण से और अभ्यास के द्वारा भय को दूर भगाया जा सकता है। आत्मविश्वास, व्यावहारिक उपाय और परिस्थिति का साहसपूर्वक सामना भय को दूर करने में सर्वाधिक सहायक होते हैं।

शिक्षा और भय की समस्या[1]

कोई भी परिस्थिति जिसमें बालक को जिस मात्रा में भयभीत होना चाहिए, कभी-कभी वह उसमें कई गुना अधिक भयभीत हो जाता है। भय की यह अधिकता बालक के व्यक्तित्व पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है, उसके अन्दर संवेगात्मक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उसके स्वभाव में भय की प्रबलता की सम्भावना हो जाती है। *आजकल के भारतीय विद्यालय जिस सिद्धान्त पर आधारित हैं, वहाँ बालकों की इस समस्या पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। साथ ही यह भी कटु सत्य है कि बालकों* में बहुत प्रकार के भय विद्यालय जीवन में ही उत्पन्न होते हैं। आधुनिक भारतीय विद्यालयों में कई साहित्यिक विषयों के पढ़ने और परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर बहुत जोर दिया जाता है। अतः बालक को इस परीक्षा-पद्धति से सदैव यह भय लगा रहता है कि कहीं वह अनुत्तीर्ण न हो जाय। उसे किसी-न-किसी प्रकार अच्छे अङ्क प्राप्त करने ही हैं। खास तौर से यह भय उन बालकों में पाया जाता है, जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होती अथवा जिनकी रुचि साहित्य में नहीं होती। भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा-पद्धति की यह दशा अत्यन्त शोचनीय है।

विद्यालयों में बालक को परिस्थितियों का साहसपूर्वक सामना करने और उनसे संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा उसे भय से बचाना चाहिए। उसे अपनी शक्तियों को समझने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा उसमें आत्मविश्वास जाग्रत करना चाहिए एवं बालक की योग्यता, रुचि, सम्मान और उसके मानसिक स्तर के अनुकूल ही उसे शिक्षा देनी चाहिए, जिससे वह निर्धारित कार्य को निर्भय होकर कर सके और उसमें किसी भी प्रकार के भय की भावना का उदय न हो।

प्रेम[2]

जैसे ही बालक जन्म लेता है, वैसे ही उसे अपने माँ-बाप और सगे-सम्बन्धियों का प्यार मिलता है। यह प्रेम जो बालकों को दूसरों से प्राप्त होता है और जिसके

---

1. Fear as a Problem in Education. 2. Affection.

प्रतिफल यह दूसरों से प्रेम करता है, उसके जीवन के संवेगात्मक विका महत्त्व रखता है। जैसे ही बालक उम्र में बड़ा होता है, वह विभिन्न वस्तु विभिन्न मात्रा में प्रेम का अनुभव करता है। वह अपने कुटुम्ब, पड़ोस मुहल्ला, राष्ट्र और अन्य उन सभी संस्थाओं से प्रेम करने लगता है, जि सम्पर्क स्थापित होता है।

व्यक्ति अपनी सन्तान के प्रति जिस प्रेम का अनुभव करता है, यह एवं प्राकृतिक होता है, फिर भी वह विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न मा जाता है। सभी माँ-बाप अपनी सन्तान के प्रति एक ही मात्रा में अपना प्य नहीं करते, कोई कम करता है कोई अधिक। वास्तव में माँ-बाप का सन्तान के प्रति जन्म के समय की उनकी अपनी संवेगात्मक दशाओं होता है। यदि बालक ऐसे कुल में जन्म लेता है जहाँ उसकी बहुत काम तथा परिवार धन-धान्य से परिपूर्ण है, उसके लालन-पालन पर बहुत ध लिया जा सकता है, तो वहाँ बालक के प्रति माँ-बाप में अगाध प्रेम होगा जिस परिवार के माँ-बाप अधिक सन्तान नहीं चाहते, जहाँ उपस्थित भोजन जुटाने का प्रश्न ही अत्यन्त जटिल होता है, वहाँ बालक को मा उतना प्रेम नहीं मिलता है। यदि माँ प्रजनन के समय शारीरिक दृष्टि से अथवा उस गरीब माँ के कई बच्चे हैं, अथवा जहाँ माँ-बाप सन्तानोत्पत्ति सुख-सुविधा और स्वतन्त्रता में बाधा समझते हैं, वहाँ भी बालक को य नहीं मिलता। कभी-कभी माँ-बाप में अच्छे सम्बन्ध न होने के कारण भी उपेक्षा की जाती है। यदि घर में विमाता या विपिता है तो भी बालक पात्र बनता है। ये बालक के लिए दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियाँ हैं, जहाँ जनक उसे प्यार नहीं देते हैं।

बालक जिस प्रेम को अभिभावक, अध्यापक तथा अन्य सम्बन्धि करता है, वही प्रेम उसके समुचित विकास में सहायक होता है। प्रेम प्र से तात्पर्य यह नहीं है कि केवल शाब्दिक प्रेम दिखाया जाये, वरन् बाल हृदय से अनुराग हो। हमारे हृदय के प्रत्येक कोने की सम्पूर्ण स्वीकृति उ प्रति हो।

जिस बालक को अपने माँ-बाप का उचित प्रेम मिलता है, वह स समाज में मिल-जुल सकता है, उसमें दूसरों के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। विचारों को अभिव्यक्ति देने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है तथा वह अपने प्रकाशन भलीभाँति कर सकता है। इसी प्रकार अपनी सन्तान को वास्त प्यार करने वाले माँ-बाप बालकों से स्पष्ट कह देते हैं कि अमुक प्रकार उन्हें पसन्द नहीं है, अमुक प्रकार के कार्यों से उन्हें चिढ़ है तथा अमुक को इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह दूषित और समाज-विरोधी है। अ

और बालक के बीच भय या आतङ्क जैसी कोई वस्तु नहीं होती, उनमें एक-दूसरे के विचार का आदर करने की भावना उदय हो जाती है।

विद्यालयों में विद्यार्थियों के प्रति प्रेम की कमी[1]

बालक यदि यह समझता है कि उसे कोई प्रेम नहीं करता तो वह बहुत-सी बुरी आदतें सीख लेता है। यह प्रवृत्ति पाठशाला में अध्यापक द्वारा सहानुभूति न मिलने पर और अधिक बढ़ जाती है। जब बालक यह देखता है कि कक्षा के अन्य बालक अध्यापक के प्रेम-पात्र हैं, वह उपेक्षित है तो उसमें अपने प्रति हीन-भावना या अध्यापक के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

अध्यापक यदि बालक के अच्छे कार्यों की प्रशंसा नहीं करता है तो भी वह अपने को उपेक्षित अनुभव करता है। यदि बालक की वेश-भूषा, केश-कलाप आदि की आलोचना व्यंग्यात्मक रूप में अध्यापक द्वारा होती है तो बालक अपने को अपमानित अनुभव करता है। अध्यापक द्वारा बालक में किया गया उपहास भी उसके मन में उपेक्षा और उदासीनता की भावना को जन्म देता है।

हमारी भारतीय शिक्षा-प्रणाली भी बालकों में उपेक्षा और उदासीनता की भावनाएँ उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है—जहाँ बालकों को रटने, परीक्षा पास करने, पाठ्यक्रम की पुस्तकें कण्ठस्थ करने और कई विषयों को बालक की बिना सामर्थ्य, योग्यता और उम्र का ध्यान दिये ही पढ़ाने पर बल दिया जाता है। यदि यह कहा जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी कि भारतीय विद्यार्थी विद्यालयों को एक जेल के समान समझते हैं और अध्यापकों को जेल-अधिकारियों के समान। आधुनिक काल में भी इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली को अपनाना कितना भयानक है, जबकि हमारी शिक्षा-प्रणाली इन दोषों से भरी पड़ी है। हमें इसमें सुधार करके मनोवैज्ञानिक रीति से बालकों को शिक्षा देनी चाहिए।

सारांश

'संवेग' भावातिरेक की मानसिक दशा का सूचक होता है जो किसी उद्दीपक अथवा बाह्य उत्तेजना के कारण उत्पन्न होता है। इसके अन्तर्गत भाव, आवेग और शारीरिक एवं दैहिक प्रतिक्रियाएँ आती हैं। वे परिस्थितियाँ जो संवेगों को उद्दीप्त करती हैं, विभिन्न व्यक्तियों की योग्यता और उनकी रुचि के अनुसार बदलती रहती हैं। जो परिस्थितियाँ बाल्यावस्था में संवेगों को जाग्रत करती हैं, वे प्रौढ़ावस्था में नहीं कर सकतीं, क्योंकि व्यक्ति में अवस्था के अनुसार रुचि बदलती रहती है।

शैशव-काल में बालक के संवेग मिल-जुलकर समग्र रूप में सामने आते हैं, उनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। वह अपनी हँसी, खुशी, नाराजगी केवल एक 'चीखने' के संकेत से ही प्रकट करता है। किन्तु ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है,

---

1. Consequence of lack of Affection in Schools.

संवेगों के विविध प्रकार भी स्पष्ट होते जाते हैं और उनकी अभिव्यक्तियों में अन्तर आता जाता है। बाल्यावस्था में आकर शैशव-काल की भयंकर चीख या संवेग संचार हो जाता है। बालक अब उतनी जोर से नहीं चीखता क्योंकि विभिन्न संवेगों के लिए उसके पास अब विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं, जबकि उस समय केवल एक चिल्लाने की ही अभिव्यक्ति उसके पास थी। बालक की उम्र जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वह संवेग की सीधी-सादी, सरल और स्पष्ट अभिव्यक्ति को अधिक अस्पष्ट और छद्म अथवा जटिल रूप में प्रकट करता है। अतः इस प्रकार वह अपने संवेगों को छिपाने की कला सीखता है।

विद्यार्थियों के संवेग की यह छद्मवेशता अध्यापक को उनके वास्तविक व्यवहार को समझने में अत्यन्त बाधा पहुँचाती है और वह बालक के अभद्र व्यवहार का कारण ढूँढने में असमर्थ हो जाता है, किन्तु यह कभी-कभी समाज के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध होती है। यदि लोग अपने संवेगों को छिपाना न जानते होते तो यह संसार या तो केवल हँसने, गाने और प्रसन्न लोगों का समुदाय बन जाता अथवा दुःखी और विलाप करते व्यक्तियों का एक झुण्ड मात्र। संवेगों के छिपाने के कुछ दुष्प्रभाव भी होते हैं, जैसे—(१) भावों की छद्मता मिथ्या धारणाओं और गलतफहमियों को जन्म देती है, (२) छिपाने से भाव कभी-कभी असमय में और उग्र रूप में प्रकट हो जाते हैं, (३) व्यक्ति सदैव चिन्ता के भार से दबा रहता है और डरता है कि कहीं लोग उसकी वास्तविकता को जान न जायें।

बालक के संवेगात्मक व्यवहार को समझने के लिए हमें कुछ संवेगों का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए, जिनका अनुभव बालक प्रायः किया करते हैं। सबसे प्रथम हमें क्रोध, भग्नाशापन, प्रतिरोधात्मकता आदि संवेगों का अध्ययन करना चाहिए। क्रोध व्यक्ति में उसकी मात्रानुसार बहुत-से रूपों में पाया जाता है, यह अनमेदन और खीझ से लेकर भयंकर ज्वलित क्रोध के रूप तक में मिलता है। बालक की शैशवावस्था में यह उसके कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से व्यवधान डालने पर उदित होता है। बड़े होने पर क्रोध उत्पन्न करने की बहुत-सी परिस्थितियाँ और कारण होते हैं, जो विविध प्रकार के क्रोध के प्रकारों को जन्म देते हैं। एक व्यक्ति जिसका स्वास्थ्य सामान्य से बहुत ही क्षीण है, जो बहुत थका हुआ है अथवा जिसे नींद नहीं आती या जो भूखा है, वह शीघ्र ही क्रोधित हो उठता है। ऐसे बहुत-से समय आते हैं, जब बालक क्रोधी व्यवहार दिखाता है। वह किसी समय अपने अभिभावक अथवा अध्यापक की आज्ञा नहीं मानता है तथा नकारात्मक व्यवहार को अपनाता है। किशोरावस्था में यह अभिवृत्ति बहुत अधिक दिखाई पड़ती है। अध्यापक और अभिभावकों के द्वारा यदि बालक के साथ दयालु और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाय एवं उसकी भावनाओं का उचित सम्मान किया जाय तो बालक के निषेधात्मक व्यवहार में सरलता से सुधार किया जा सकता है।

भय को उत्पन्न करने वाले कारण तथा परिस्थितियाँ हैं—(१) बालक के

दिन-प्रतिदिन के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप, (२) उसकी सामर्थ्य से परे उसे कार्य सौंपना, (३) शिक्षक अथवा अभिभावकों के द्वारा वास्तविक या काल्पनिक पक्षपात, (४) प्रौढ़ व्यक्तियों का व्यवहार जिसे बालक अपना अपमान समझे, (५) जब परिवार में प्रौढ़ व्यक्तियों की संख्या अधिक हो, (६) बीमारी, थकान अथवा नींद न आने से शारीरिक शक्ति का ह्रास, और (७) कभी-कभी व्यक्ति क्रोध में यकायक उबल-उबल पड़ता है। इसका कारण यह होता है कि अन्य वस्तुओं के प्रति, जिनके लिए वह अपना क्रोध अन्य कारणों से प्रकट नहीं कर सकता, आक्रोश एकत्रित होता जाता है और समय पाकर चाहे आसन्न कारण छोटा ही क्यों न हो, वह क्रोधोद्दीप्त हो उठता है। क्रोध का विषयान्तर भी होता है—एक व्यक्ति या वस्तु जिसके प्रति क्रोध प्रकट न करने पर दूसरों पर प्रकट होना है और क्रोध कभी-कभी क्रूरता की सीमा तक पहुँच जाता है।

क्रोध का कुछ व्यावहारिक महत्त्व भी है। इससे व्यक्ति को लाभ भी होते हैं, जैसे—(१) क्रोध के उदय होने के उपरान्त व्यक्ति परिस्थिति पर विजय पाने के लिए बड़ा परिश्रम करने के लिए तैयार हो जाता है। अपने व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन लाता है और रचनात्मक कार्यों में लग जाता है, (२) क्रोध में बालक अपने भावों, विचारों और आलोचना को व्यक्त करता है, जो उसकी रुचि और मानसिक दशा को समझने में परम सहायक सिद्ध होती है, (३) अभिभावक यह अनुभव करने लगते हैं कि बालक को आवश्यकता से अधिक कार्यों में लगाए रहना अवाञ्छनीय है। मानव-जीवन के ऊपर क्रोध के बड़े दुष्प्रभाव भी पड़ते हैं, जैसे—(१) क्रोध में समस्या का सम्यक् समाधान नहीं होता, (२) व्यक्ति के अन्दर क्रोध में ही कार्य करने या समस्या को सुलझाने की आदत पड़ जाती है, और (३) शक्ति का ह्रास होता है। क्रोध में व्यवहार करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिए—(१) उत्तेजना को कम करना चाहिए, (२) ठंडे मस्तिष्क से बालक को विचार करना चाहिए कि वह क्रोधित क्यों हुआ। उसकी क्या आवश्यकता थी, और अपनी त्रुटियों का आकलन करना चाहिए, (३) अध्यापक बालक को उसकी योग्यतानुसार कार्य करने के लिए सौंपकर, उसे प्रोत्साहन देकर और उसके अच्छे कार्यों की सराहना कर उसे बहुत सहायता पहुँचा सकते हैं।

भय भी कई प्रकार का होता है। यह सामान्य घबराहट से लेकर आतङ्क की सीमा तक पाया जाता है। इसका उदय उन परिस्थितियों के कारण होता है जिनका व्यक्ति सामना नहीं कर सकता। बालक की रुचि, कार्य और सामाजिक भावना के विस्तार के साथ, भय का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। शैशवावस्था में यकायक कुछ हो जाने, तीव्र ध्वनि होने अथवा किसी भीषण उद्दीपक के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया के रूप में भय का संवेग आता है। उम्र के बढ़ने पर बहुत-सी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो पहले भयप्रद थीं किन्तु अब भयोत्पादन का कारण नहीं रहतीं। बाल्यावस्था के सामान्य भय—अन्धकार का भय, अकेले छोड़ दिये जाने पर भय,

ुओं का भय तथा लाश, भूत-प्रेत आदि के भय हैं। बहुत-से बालकों, किशोर
ाढ व्यक्तियों के भी भय विवेकहीन और निराधार होते हैं।

भय और चिन्ता में अन्तर यह है कि चिन्ता में व्यक्ति को केवल आन
ाकुलता मिलती है, जिसका कारण वह स्वयं या उसके अन्तर की कुछ ऐसी
ाती है जो उसे आकुल बना देती है, जबकि भय में व्याकुलता का कारण
ाने वाला खतरा होता है। व्यक्ति यदि अपनी आन्तरिक दशाओं का सामना
। उन्हें वश में करना सीख ले तो चिन्ता का निवारण किया जा सकता है। भ
त्पन्न करने के कारण हैं—(१) आसन्न आपत्ति, (२) ऐसी परिस्थिति जिसमें
ात्मविश्वास खो बैठता है, और (३) भयङ्कर घटना या रोमांचकारी कहानी
यप्रद पुस्तकें पढ़ना अथवा भीषण दृश्यों वाले चलचित्र देखना, इत्यादि।

भय का प्रकाशन करने वाले स्पष्ट शारीरिक अनुभव ये होते हैं—क
ेखना, भय के कारण से भागने का प्रयास करना, चेहरे का रंग उड़ जाना,
ॅप जाना इत्यादि। भय से कुछ लाभ भी हैं—(१) व्यक्ति व्यर्थ के मूर्ख
ार्यों में अपने को नहीं फँसाता, (२) बालकों को अपने अभिभावकों के प्रति
ान और जागरूक बना देता है। किन्तु भय हानिप्रद भी बहुत होता है। व्यक्ति
ा कारण उन कार्यों को करना छोड़ देता है जो उसके लिए परम लाभदायक ह
ौर उसकी परेशानियों को दूर करने में सहायक होते हैं।

भय को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना चाहि
१) व्यक्ति को विश्वास दिलाना चाहिए कि कथित वस्तु कुछ भी भयप्रद नह
२) व्यक्ति को अपने भय का विश्लेषण करने के लिए प्रेरित करना चाहिए,
यक्ति को नयी-नयी परिस्थितियों से धीरे-धीरे-धीरे अवगत कराना चाहिए; (४)
रिस्थिति के यथार्थ संघर्ष से भी दूर हो जाता है, (५) व्यक्ति के समक्ष
यक्तियों का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। शिक्षा-काल में अध्यापक का
र्तव्य है कि वह बालक के भय के सभी प्रकारों का सम्भव उपायों द्वारा निराक
रे। विद्यालय में बालकों को परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रोत्सा
रना चाहिए जिससे वे वास्तविक संघर्ष में भय से दूर हो सकें।

अपने जन्म के समय से ही बालक जिस प्रेम को अपने माता-पिता से प्र
रते हैं, उसका उनके जीवन पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बालक अ
ावक, पड़ोसी, सम्बन्धी और अध्यापक से प्रेम प्राप्त करता है। इसी के द्वारा उ
यक्तित्व का सन्तुलन और सर्वाङ्गीण विकास होता है। यदि बालक यह अनु
रता है कि अध्यापक अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उसे कम प्यार करता है, उ
पेक्षा की जाती है तो उसके मन में अध्यापक के प्रति घृणा पैदा हो जाती है
ह अपने को उपेक्षित अनुभव करता है। पाठशाला में इस प्रकार की मनोवृत्ति कि
ी तरह उत्पन्न नहीं होनी चाहिए, अध्यापक को सभी बालकों के प्रति समान व्य
ार करना चाहिए।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. भय किसे कहते हैं ? इसके कितने प्रकार होते हैं ? भय के उन सभी प्रकारों की सूची बनाइए, जिन्हें आपने बाल्यकाल में अनुभव किया हो, और यह बताइए कि आपने उनसे किस प्रकार छुटकारा पाया। आपके द्वारा अपनाये गये ढङ्ग उपयुक्त थे अथवा नहीं ? प्रस्तुत अध्याय में दिये गये सुझावों के आधार पर अपनी विधियों के ऊपर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

२ भय के विषयान्तरण से आप क्या समझते हैं ? प्रत्यक्ष उदाहरण देते हुए उन विधियों को बताइए, जिनसे इसका निराकरण किया जा सके।

३. अध्यापक के उन व्यवहारों का वर्णन कीजिए, जिनसे विद्यार्थी यह समझे कि उसके साथ पक्षपात किया जाता है तथा अध्यापक द्वारा उसकी उपेक्षा की जाती है। बालक की इस भावना को दूर करने के लिए व्यावहारिक उपाय बताइए।

४. एक असामान्य रूप से झिझकने वाले बालक के लिए अध्यापक को क्या-क्या व्यावहारिक उपाय अपनाने चाहिए, जिससे उसकी झिझक दूर हो जाय ?

५. एक बालक के लिए भय और क्रोध का क्या मूल्य है ? अपने अनुभव के आधार पर प्रत्यक्ष उदाहरण देकर समझाइए।

६. संवेग को छिपाने से क्या-क्या दुष्परिणाम होते हैं ? एक कुशल अध्यापक बालक के वास्तविक संवेगों की जानकारी कैसे प्राप्त कर सकता है ? वह बालक के अभद्र व्यवहार में किस प्रकार इष्ट परिवर्तन ला सकता है ?

७. झुँझलाहट के संचयन से आप क्या समझते हैं ? इसे कैसे रोका जा सकता है ?

६ सामाजिक विकास
SOCIAL DEVELOPMENT

आपने देखा होगा कि ज्यों ही बालक ३ या ४ वर्ष का होता है, उसमें दूसरे बालकों के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है। वह उनके साथ खेलना चाहता है, उनसे वार्तालाप करने में ही उसे अधिक आनन्द आता है। ६ या १० वर्ष के बालक इसी प्रवृत्ति के कारण घर से बाहर अपने साथियों के साथ खेलने देखे जाते हैं, क्योंकि उन्हीं के साथ खेलना उन्हें बहुत प्रिय लगता है। फलस्वरूप, बेचारी माँ को यह शिकायत रहती है कि—"राजू बड़ा शैतान हो गया है, वह मेरी बात तो सुनता ही नहीं, अपने साथियों को लिये सारा दिन बाहर घूमता रहता है अथवा 'सीमना' बड़ी जिद्दी हो गई है, वह सारे दिन अपनी सहेलियों के साथ गुड़िया खेलती रहती है, घर के कार्यों में कतई रुचि नहीं लेती और न मेरा हाथ बँटाती है। अभी कुछ वर्ष पहले वह ऐसी शैतान तो न थी।" मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह प्रश्न उठते हैं कि—बालक के अन्दर यह प्रवृत्ति क्यों और कैसे जाग्रत हुई? अब बालक इतना सामाजिक क्यों हो गया है, जबकि पहले वह नहीं था? वे कौनसी क्रियाएँ हैं, जिन्होंने इस सामाजिक भावना के विकास में योग दिया?

सामाजिक भावना का विकास[1]

बालक जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे उसके शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और प्रवृत्यात्मक व्यवहार का विकास ही नहीं, वरन् सामाजिक व्यवहार का भी विकास होता जाता है। वह अधिक मानव-प्रिय और सामाजिक बनता जाता है।

बालक के मानसिक विकास का उसके सामाजिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। परिवार के सदस्यों के प्रति बालक के व्यवहार अथवा समाज के साथ उसके व्यवहार में हम उसकी बुद्धि के प्रथम लक्षणों को देखते हैं। वह एक ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो उसकी बुद्धि के लक्षणों की ओर संकेत करती है। भाषा व्यक्ति

1. Development of Social Feelings

के भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचाने का साधन है। भाषा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के अन्तर्गत रहने वाले प्राणियों में सामाजिक भावना का विकास होता है। अतः जब बालक में भाषा की योग्यता का विकास होता है, तभी उसमें सामाजिकता सम्बन्धी योग्यता की भी अभिवृद्धि होती है। इसी प्रकार संवेगात्मक और सामाजिक विकास भी आपस में सम्बद्ध हैं। बालक की प्रायः सभी संवेगात्मक दशाओं का सामाजिक महत्त्व होता है, और बहुत-सी सामाजिक समस्याओं का मूल कारण संवेगात्मक समस्याएँ ही होती हैं।

सामाजिक अभिवृद्धि का अर्थ[1]

सोरेन्सन के मत से, **"सामाजिक अभिवृद्धि और विकास का तात्पर्य है—अपनी और दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता-वृद्धि।"**[2] व्यक्ति जैसे ही प्रौढ़ता को प्राप्त होता जाता है, उसकी रुचि, रुझान, प्रवृत्ति और व्यवहार में परिवर्तन आता जाता है। यह परिवर्तन इसलिए आवश्यक होता है कि व्यक्ति इसी आधार पर अपने को सामाजिक वातावरण में व्यवस्थित करने में अधिक योग्य पाता है। जैसे, कोई लड़की बाल्यावस्था में गुड़ियों से खेलती है, किन्तु प्रौढ़ होने पर भी यदि वह उन्हीं गुड़ियों से खेलती रहे, तो उसकी प्रौढ़ता संदिग्ध मानी जायगी, क्योंकि उसकी उम्र के बढ़ने के साथ-साथ उसकी रुचि में भी परिवर्तन होना चाहिए।

एक विशेष वातावरण में होने वाले सामाजिक कार्यों के फलस्वरूप ही सामाजिक भावना की अभिवृद्धि होती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, सामाजिक अभिवृद्धि को स्वाभावतः विकासोन्मुखी होना ही चाहिए। यह क्रम से एक स्तर से दूसरे स्तर तक विकसित होती हुई पूर्ण सामाजिकता को प्राप्त करती है।

फ्रांसिस एफ० पावर्स के अनुसार, **"सामाजिक दाय को ध्यान में रखकर व्यक्ति के कृत-कार्यों के द्वारा उत्तरोत्तर विकास और उन सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप व्यवस्थित चरित्र का निर्माण ही सामाजिक अभिवृद्धि है।"**[3] इस परिभाषा का सही-सही अर्थ क्या है? इसका विवेचन हमें यहाँ कर लेना चाहिए।

उपर्युक्त परिभाषा में व्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास पर बल दिया गया है तथा व्यक्ति का आने वाली परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही सामा-

1 Meaning of Social Growth.

2 "........by social growth and development we mean the increasing ability to get along well with oneself and others."

—*Sorenson*.

3. Francis F Powers defines 'Social Growth' as, "the progressive improvement, through directed activity of the individual in the comprehension of the social heritage and the formation of flexible conduct patterns of reasonable conformity with this heritage."

क्रमिक अभिवृद्धि बताया गया है। बाल्यावस्था में बालक अपने माता-पिता पर निर्भर रहता है। प्रौढ़ावस्था आने पर यह निर्भरता बालक में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता में बदल जानी चाहिए। व्यक्ति के जीवन की अवस्थाओं के अनुकूल यही परिणामी अभिवृद्धि उत्तरोत्तर विकास कहलाता है।

उपर्युक्त परिभाषा में एक भाव यह भी निहित है कि व्यक्ति को अपने वर्ग के सामाजिक दाय को भलीभाँति समझना चाहिए। उसे अपने चरित्र को एक ऐसे साँचे में ढालना चाहिए जिससे वह अपने वंशानुक्रम के दाय को वातावरण के अनुकूल भलीभाँति व्यवस्थित कर सके। इसमें तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अपने समुचित विकास के लिए अपने वर्ग की सामान्यताओं, रीति-रिवाज और परम्पराओं को भलीभाँति समझना चाहिए। उस वर्ग-विशेष की विलक्षणताएँ क्या हैं? और वह वर्ग किस प्रकार अपने सदस्यों को महत्त्वाकांक्षाओं के लिए प्रोत्साहित करता है? किन्तु उन सामाजिक रीति-रिवाजों को समझना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उपयुक्त शक्ति का निर्माण कर उनके अनुकूल अपने को बनाना भी आवश्यक है। किन्तु यह स्थिति अत्यन्त जटिल होती है, क्योंकि एक ही वर्ग या समुदाय के अन्दर कभी-कभी विभिन्न प्रकार की संस्कृति पाई जाती है, और व्यक्ति को अपने समुचित विकास के लिए उन सभी में सामञ्जस्य स्थापित करना पड़ता है।

सामाजीकरण और व्यष्टिकरण तथा उनका आपस में सम्बन्ध[1]

मानव के व्यक्तित्व और उसकी सामाजिक भावना का विकास साथ-साथ होता है। व्यक्ति के समुचित विकास के लिए 'सामाजीकरण' और 'व्यष्टिकरण'—दोनों की ही आवश्यकता होती है। वे एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों की अपेक्षा से ही व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। व्यक्तित्व के विकास में इन दोनों तत्त्वों का महत्त्व उसी प्रकार पृथक् और अनिवार्य है, जैसे 'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' का। बालक के बढ़ने पर उसमें सामाजिक रुचि का विकास होता है। वह अन्य सहपाठियों के साथ मिलना-जुलना, साथ खेलना प्रारम्भ कर देता है तथा बहुत-से सामाजिक कार्यों में भाग लेता है। इसी सामाजिक भावना के विकास के साथ-साथ, उसके व्यक्तित्व में भी उन्नति होती रहती है। वह दूसरों पर अपना प्रभाव डालना सीखता है, वह किसी भी प्रकार की आलोचना बर्दाश्त नहीं करता, उसमें आत्मसम्मान की भावना का विकास होता है, वह अपने को प्यार करने लगता है। इस प्रकार बालक में सामाजिक वृत्ति के विकास के साथ-साथ उसकी वैयक्तिकता का विकास होता है। बालक दूसरे बालकों के साथ खेलना भले ही पसन्द करे, किन्तु अपने खिलौनों के प्रति वह अत्यन्त सावधान रहता है और दूसरे बालक उन खिलौनों को नहीं छीन सकते।

---

1. Socialization & Individualization and their Relationship.

सामाजिक भावना की प्रौढ़ता के विभिन्न स्तर[1]

सामाजिक भावना की प्रौढ़ता के विभिन्न स्तरो को अलग-अलग बताना अत्यन्त कठिन कार्य है। सामाजिक विकास के अलग-अलग कोई स्पष्ट स्तर नहीं हैं। फिर भी हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति के सामाजीकरण के स्तरों का उसके व्यवहार तथा उसकी उम्र और वर्ग के गतिवाही, संवेगात्मक और मानसिक विकास एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थापन के आपसी सम्बन्ध की योग्यता को ध्यान मे रखते हुए समझा जा सकता है। जैसे, यदि बालक की सामाजिकता की आयु उसकी वास्तविक आयु के समान है तो उसी के अनुरूप हम उसकी सामाजिक भावना के सामान्य स्तरो को समझ सकते हैं।

सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे निम्नलिखित सामान्य प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं

(१) दूसरों के प्रति सचेतनता[2]—बालक जन्म के कुछ मास उपरान्त ही दूसरो के प्रति सचेतनता प्रदर्शित करना प्रारम्भ देता है। जब कोई व्यक्ति उसके पास जाता है तो वह मुस्कराने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति दूसरो के अवधान को आकर्षित करने के लिए होती है। उसकी सामाजिक प्रतिक्रियाएँ विशेष रूप से प्रौढ़ व्यक्तियों के प्रति होती हैं।

(२) सामाजिक वर्गों से मेल जोल[3]—बालक जब छ मास का होता है तभी से वह दूसरो को पहचानना सीख लेता है। किन्तु डेढ़ वर्ष की आयु तक वह अन्य बालकों के साथ सामूहिक खेलों मे भाग नही लेता। २ वर्ष से ६ वर्ष की अवस्था तक बालकों मे दूसरो से मिलने और उनके साथ खेलने की भावना का उत्तरोत्तर विकास होता है। वे साथ-साथ खेलना और साथ-साथ रहना अधिक पसन्द करते हैं।

बालक जब विद्यालय मे जाना प्रारम्भ करते हैं, उस समय तक उनमें दूसरे बालकों के साथ खेलने और उनसे मिलकर रहने की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा मे बढ जाती है। उनका सामाजीकरण हो जाता है, किन्तु उनका वर्ग छोटा होता है। विद्यालय मे आकर वह अपने को बडे समूह के अन्तर्गत पाते हैं। उस बडे समूह मे से अपनी-अपनी वृत्तियो के अनुसार वे छोटे-छोटे वर्ग चुनते हैं, जिनके द्वारा अपनी सामाजिक भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करते है। प्रत्येक बालक की एक मित्र-मण्डली होती है, और इस मण्डली के बाहर भी कक्षा के अन्य विद्यार्थियो या पाठशाला के दूसरे छात्रों मे उसकी जान-पहचान होती है, किन्तु केवल औपचारिक रूप मे। जैसे-जैसे वे प्रौढ होते जाते हैं, वैसे ही वे बडे-बडे सामाजिक वर्गों के या तो स्वयं नेता बनते हैं या दूसरे नेताओ के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं। वे कक्षा और विद्यालय के कार्यों मे अपनी क्षमता के अनुकूल अधिकाधिक भाग लेने लगते हैं।

---

1. Levels of Social Maturity. 2. Awareness of Others. 3. Mixing in the Social Groups.

(३) बालक और बालिकाओं के सम्बन्धों में परिवर्तन[1]—बाल्यावस्था के प्रारम्भ में बालक और बालिकाएँ समान रूप से दल में सक्रिय भाग लेते हैं। किन्तु बाद को कुछ सामाजिक बन्धनों के कारण और कुछ स्वयं की नैसर्गिक प्रवृत्ति के कारण बालक बालिकाएँ अपनी ही जाति के साथ अधिक रुचि दिखाते हैं। बालक बालकों के साथ घर के बाहर खेलना पसन्द करता है, बालिका बालिकाओं के साथ घर के भीतर गुड़िया खेलना पसन्द करती है। तरुणावस्था तक बालक-बालिकाएँ अपने ही लिङ्ग के सामूहिक कार्यों के प्रति रुचि प्रदर्शित करते और उनमें सक्रिय भाग लेते हैं।

तरुणावस्था में आकर बालक पुनः विषमलिङ्गी के प्रति आकर्षित होता और उनमें रुचि लेता है। बालक बालिका का और बालिका बालक का साथ चाहती है, इस प्रकार मिश्रित दलों का निर्माण हो जाता है। किन्तु यह भी ध्यान देने की बात है कि हमारे देश में अपनी भिन्न सांस्कृतिक चेतना के कारण बालक और बालिकाओं का स्वतन्त्र मिलना-जुलना सम्भव नहीं। अतः तरुणावस्था में भी जबकि व्यक्ति विषमलिङ्गी का साहचर्य चाहता है, उसके दल का निर्माण केवल स्वलिङ्गीय सदस्य से ही होता है। किन्तु उनकी रुचि विषमलिंगी के प्रति किंचित् भी कम नहीं होती, वरन् उनमें एक-दूसरे के प्रति जिज्ञासा और अधिक बढ़ जाती है। वे अपने-अपने समूह में विषमलिङ्गी के प्रति बातचीत करने में बड़ा आनन्द लेते हैं। आज हम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते कि हमारी संस्कृति के लिंगीय पृथक्करण[2] के सिद्धान्त ने ऐसी बहुत-सी जटिल समस्याओं को जन्म दिया है जो समाज के विकास में बाधक हैं। आधुनिक भारत में आज भी विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता की जटिल समस्या है, और उसका एक कारण उपर्युक्त सांस्कृतिक चेतना है।

सांस्कृतिक और आर्थिक दशा का सामाजिक व्यवहार पर प्रभाव[3]

बालकों के विकास की प्रत्येक अवस्था में एक बालक का सामाजिक व्यवहार दूसरे से भिन्न होता है। इसका कारण उसके ऊपर उस सांस्कृतिक वातावरण, रीति-रिवाज और परम्पराओं का प्रभाव होता है जिसमें वह उत्पन्न हुआ और पाला-पोसा गया है। जैसे, एक भारतीय परिवार में जन्म लेने वाले बालक का सामाजिक व्यवहार, यूरोप में जन्म लेने वाले बालक के व्यवहार से भिन्न होगा। वहाँ के बालक-बालिकाओं के सम्बन्धों में यहाँ के तुलनात्मक बड़ा भारी अन्तर है। भारत के बालक-बालिकाओं का सामाजिक गोष्ठियों एवं सार्वजनिक स्थानों में साथ-साथ जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे सिनेमा, क्लब और नाट्यशाला में—कहीं भी साथ-साथ नहीं जा सकते। इस प्रकार से पूर्णरूपेण पृथक्करण का वातावरण रहता है।

---

1. Changes in the boy-girl relationships. 2. Segregation of Sexes. 3. Influence of Cultural & Economic States on Social Behaviour.

उनके सामूहिक कार्यों और सामूहिक उत्सवों का आयोजन भी यहाँ सम्भव नहीं
पाश्चात्य संस्कृति में सामान्य रूप से पाया जाता है। वहाँ लिङ्ग-भेद का प्रश्
नहीं उठता।

सामाजिक परम्पराओं का प्रभाव भी बालक के जीवन पर बहुत अधिक
है, यह उसके कार्यों से स्पष्ट लक्षित होता है। गरीब परिवार में जन्म लेने के
बालक उन्हीं खेलों को खेलना अधिक पसन्द करता है जो उसके परिवार की पर
में खेले जाते हैं अथवा परिवार के रीति-रिवाजों से प्रभावित हैं। जैसे, गरीब
वार के बालक भोजन बनाना, वर्तनों को मलना और उसी के समान दूसरे अन्य
को खेलना अधिक पसन्द करते हैं। सम्भ्रान्त और उच्च कुल से आने वालक
सामूहिक खेल दूसरे प्रकार के होते हैं।

बालकों के विभिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहार के लिए उनके परिवा
आर्थिक परिस्थिति भी बहुत हद तक उत्तरदायी होती है। एक गरीब परिवार से
वाला बालक अपने वस्त्रों और शिष्टाचार के नियमों के प्रति अधिक जागरूक
है और यह अनुभव करता है कि वह एक गरीब और हीन परिवार से आया
अतः वह सामाजिक दृष्टि से अपने को भलीभाँति व्यवस्थित नहीं कर पाता।

बालकों को शिक्षा देते समय उनकी सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थि
को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। जैसे, एक बालक यदि ऐसे परिवार से आ
जिसमें माता-पिता अपराधी, शराबी या आपस में झगड़ने वाले हैं तो यह निश्चि
कि उस बालक का सामाजिक व्यवहार भी अपने परिवार के सांस्कृतिक वातावर
प्रभावित होगा। एक कुशल अध्यापक को उस बालक के साथ अन्य बालकों की अ
जो सम्पन्न और शिष्ट सामाजिक स्तर वाले परिवार से आते हैं, भिन्न प्रका
व्यवहार करना चाहिए तथा उसे सुधारने की चेष्टा करनी चाहिए।

कभी-कभी अध्यापक विद्यार्थियों से एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार की अ
करता है। उस व्यवहार के मानदण्ड अध्यापक के अपने होते हैं। वह चाहता है
विद्यार्थी भी उसी प्रकार का व्यवहार करें। किन्तु अध्यापक की इस प्रकार की
णाएँ अपने स्वयं के सांस्कृतिक वातावरण की उपज होती है। अध्यापक का यह
दृष्टिकोण सही है। क्योंकि स्कूल में आने वाले बालकों की आर्थिक और सांस्कृ
परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती है, अतः भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवहार दिखाने
बालक वहाँ आते हैं। अध्यापक इन सब पर अपने द्वारा निर्धारित किये हुए नि
को नहीं लाद सकता, क्योंकि वे उसके अपने सांस्कृतिक वातावरण की उपज है।
भी सम्भव हो सकता है कि अध्यापक स्वयं एक गरीब और हीन परिवार में
हो, अतः अपने भिन्न दृष्टिकोण के कारण वह समृद्ध परिवार से आने वाले छात्रों
सामाजिक व्यवहार का सम्यक् आकलन नहीं कर पाता है। अतः अध्यापक को चा
कि सदैव अपनी मान्यताओं से तटस्थ होकर बालक की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अ
अवलोकन करे और तदनुसार उसे शिक्षा प्रदान करे।

सामाजिक, शारीरिक और मानसिक विकास[1]

बालक की आयु में जैसे ही कुछ और वर्ष जुड़ते हैं, वैसे ही वैसे तरुणावस्था तक उसका शारीरिक और मानसिक विकास भी होता जाता है। शरीर अधिक समृद्ध और मस्तिष्क अधिक शक्तिशाली बन जाता है। इस विकास के साथ-साथ बालक में सामाजिक भावना का भी विकास होता जाता है।

शारीरिक विकास की दृष्टि से यदि हम देखें तो मालूम पड़ता है कि उसकी वृद्धि के अनुपात से ही बालक में सामाजिक विकास होता है, जैसे—एक बालक जो शारीरिक दृष्टि से अधिक विकसित और हृष्ट-पुष्ट है, अल्प-विकसित और क्षीण स्वास्थ्य वाले बालक की अपेक्षा अपने को समाज में शीघ्र व्यवस्थित कर लेता है। वह समाज के सदस्यों से आसानी से मिलने-जुलने लगता है। इसी प्रकार एक बालक जो अधिक मोटा, दुबला, अत्यधिक लम्बा अथवा अत्यधिक ठिगना है—समाज में अपने को भद्दा और हीन अनुभव करता है और उसके साथी उसे प्राय 'मोटू', सींकिया' या 'लम्बू' आदि की उपाधियों से विभूषित कर पुकारा करते हैं। यह सब बालक के सामाजिक विकास में बाधक होते हैं और उसकी गति को धीमा बना देते हैं। एक अल्प-विकसित बालक अपने उन दूसरे साथियों के साथ मिलना पसन्द नहीं करेगा, जिनका सम्यक् शारीरिक विकास हुआ है। कभी-कभी तो वे बालक उससे छोटी उम्र के होते हैं और उनके समान अपने को शारीरिक योग्यता में न पाकर, वह उनके साथ मिलने में झिझकते हैं। इस प्रकार बालक अपने को समाज में भलीभाँति व्यवस्थित नहीं कर पाता।

मानसिक और सामाजिक विकास का भी आपस में गहरा सम्बन्ध है। एक प्रतिभाशाली बालक मन्द-बुद्धि बालक से शीघ्र प्रौढ़ हो जाता है। बालक का मानसिक विकास उसे दूसरों के साथ सामंजस्य स्थापित करने, व्यवहार-कुशल होने और सामाजिकता की भावना-वृद्धि में सहायक होता है। उनके सामूहिक कार्यों में भाग लेने की सामूहिक भावना का उदय शीघ्र होता है। वे दूसरों का नेतृत्व भलीभाँति कर लेते हैं और अच्छे नेता की सभी योग्यताएँ उनमें आ जाती हैं।

शारीरिक और मानसिक विकास के अलावा व्यक्ति का सामाजिक विकास उसकी शिक्षा के प्रकार पर भी निर्भर रहता है। एक प्रतिभावान बालक जिसका शारीरिक विकास भी समुचित रूप से हुआ हो, कभी-कभी दूसरे बालकों से भली-भाँति नहीं मिलता, उनमें अपना व्यवस्थापन नहीं कर पाता। इसका मूल कारण उसका पैतृक वातावरण और पारिवारिक वातावरण होता है जिसमें उसका पालन-पोषण हुआ है। यह सम्भव हो सकता है कि प्रारम्भ से उसे बालकों का साथ न मिला हो और वह एकाकीपन में ही पला हो, तब उसके मन में असामाजिकता का आ जाना स्वाभाविक ही है। वह समाज में मिलने से झिझकने लगता है।

---

1. *Social, Physical & Mental Development.*

सामाजिक व्यवहार में वैयक्तिक विभिन्नताएँ[1]

उपर्युक्त वर्णन में हम अभी यह देख चुके हैं कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न प्रकार का सामाजिक व्यवहार करता है। कभी-कभी तो उनके व्यवहारों में बहुत अन्तर दिखाई देता है। सामाजिक व्यवहार का यह अन्तर बालकों में शैशवावस्था से ही देखा जाता है। बालक के विकास के प्रथम वर्ष में ही यह देखा जाता है कि दूसरों को देखकर बालक के हँसने, शरमा जाने, झिझकने अथवा अन्य प्रतिक्रियाओं में वह दूसरे बालकों से भिन्न प्रकार का व्यवहार करता है। बाल्यकाल में कुछ बालक अधिक शर्मीले और दब्बू, कुछ आक्रामक,[2] कुछ सहिष्णु और दूसरे साथियों के प्रति सहानुभूतिपरक एवं कुछ उद्दण्ड होते हैं। इसी प्रकार की वैयक्तिक भिन्नता किशोरावस्था और प्रौढावस्था में भी पाई जाती है।

इन वैयक्तिक भेदों के कारणों को ठीक-ठीक समझना अत्यन्त कठिन है। फिर भी यही देखा गया है कि इस विभिन्नता का मूल कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा और पारिवारिक वातावरण ही है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही माता-पिता की सन्तान एक ही प्रकार के पारिवारिक और शैक्षणिक वातावरण में पलने पर भी उनके सामाजिक व्यवहार में बहुत भिन्नता होती है। यही नहीं, शिशु-शालाओं[3] में पले हुए बालकों में भी जिनमें सभी को समान प्रकार का व्यवहार और शिक्षा मिलती है, वैयक्तिक भेद पाया जाता है। इसका एकमात्र कारण बताया जाता है—वंशानुक्रम। किन्तु व्यक्ति के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण इतने सम्मिलित रूप से प्रभाव डालते हैं कि यह बताना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव-सा हो जाता है कि अमुक व्यवहार वंशानुक्रम का फल है, और अमुक वातावरण का। साथ ही यह भी सत्य है कि बालकों के साथ समान व्यवहार के लिए आप कितने ही जागरूक क्यों न हों, फिर भी व्यवहार करते समय आपका दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न बालकों के प्रति भिन्न प्रकार का हो जाता है।

वैयक्तिक भिन्नता और शिक्षा[4]

के० मैकिनन[5] ने १६ बालकों का उनकी २ या ३ वर्ष की उम्र से ८ या ६ वर्ष की उम्र तक गम्भीर एवं सूक्ष्म अध्ययन किया और उनके सामाजिक व्यवहार के आधार पर उन्हें चार वर्गों में विभाजित किया। ये वर्ग इस प्रकार हैं :

१. प्रत्याहार[6]—ऐसा वर्ग उन बालकों का होता है जो दूसरों से मिलने में झिझकते हैं और उनके सम्मेलन से बचना चाहते हैं।

२. समनुरूप[7]—यह वर्ग उन बालकों का होता है जो अपने को समाज की विभिन्न और बदली हुई परिस्थितियों में व्यवस्थित कर लेते हैं। वे ही वास्तविक सामाजिक प्राणी हैं।

---

1. Individual Differences in Social Behaviour. 2. Agressive. 3. *Nursery Houses.* 4. *Education and Individual Differences.* 5. K. McKinnon. 6. Withdrawl. 7. Conforming.

३. जटिल[1]— यह वर्ग आक्रामक और झगडालू बालको का होना है। इनका व्यवहार अत्यन्त रुक्ष और अपरिष्कृत होता है।

४. सावधान[2]—यह वर्ग उन बालको का होता है जो सामाजिक परिस्थितियो के प्रति जागरूक होते हैं, किन्तु बडी सावधानी से व्यवहार करते हैं। दूसरो के प्रति किये गये उनके व्यवहार मे एक झिझक होती है, किन्तु यदि एक बार उनकी झिझक खुल जाती है, फिर वे दूसरो से स्वच्छन्दतापूर्वक और बिना हिचक के मिलते हैं।

सामाजिक व्यवहार के आधार पर बालको का जो स्थूल वर्गीकरण किया गया उसमे सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने पर कोई भी एक बालक विशुद्ध रूप से किसी एक वर्ग का नही हो सकता। एक बालक जिसका वर्गीकरण एक विशेष वर्ग मे किया जाय, कभी-कभी इस प्रकार का व्यवहार भी करता है जो दूसरे वर्ग के व्यवहार की प्रमुख विशेषताओं से परिपूर्ण होता है।

६ वर्ष के अध्ययन काल मे कुछ बालको के साथ यह प्रयत्न किया गया कि वे अपने व्यवहार को बदल दें। किन्तु इनमें से बहुत कम बालकों में इष्ट परिवर्तन के लक्षण दिखाई दिए, शेष बालको मे उनके मूल व्यवहार मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। १६ बालको मे से सम्पूर्ण अध्ययन काल मे अधिकतर बालक अपने वर्ग के ही बने रहे। किन्तु विभिन्न परिस्थितियों मे उनके व्यवहार करने के ढङ्ग मे कुछ परिवर्तन अवश्य आ गया। एक बालक जो २ वर्ष की अवस्था मे जिस प्रकार का व्यवहार करता था, ८ वर्ष की अवस्था मे उसी व्यवहार को भिन्न प्रकार से करता था। व्यवहार के व्यक्त करने के स्वरूप या विधि में अन्तर आ जाता है, यद्यपि मूल व्यवहार वही रहता है।

मैक्किनन द्वारा किया गया यह अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योकि यह दो तथ्यो के ऊपर विशेष प्रकाश डालता है। प्रथम—बालको के व्यवहार के आधार पर उन्हे चार स्थूल वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। दूसरा—बालको के सामाजिक व्यवहार की रीति मे परिवर्तन लाया जा सकता है, यदि उनके साथ उपयुक्त व्यवहार किया जाय और सहानुभूतिपूर्वक उनको सदाचरण की ओर प्रेरित किया जाय।

यह देखा गया है कि बालक मे इष्ट परिवर्तन तभी आये जब उनकी विलक्षणताएँ और अधिक दृढ़ हो गई और मार्ग-प्रदर्शन का आधार उसके विशुद्ध गुणो को ही माना गया जो उसमे पहले से उपस्थित थे। तात्पर्य यह है कि बालक के व्यवहार मे किसी प्रकार का परिवर्तन उसकी योग्यता और मूल गुणों के आधार पर ही लाया जा सकता है। अध्यापक बाहर से एकदम नवीन वस्तु देकर उसके व्यवहार को

1. Evasive. 2. Cautious.

नहीं बदल सकता। अध्यापक को बालक की मौलिकता, दाय और शक्ति को पहचानना चाहिए, तभी सफलता प्राप्त हो सकती है। उन्हीं मौलिकताओं के आधार पर अध्यापक बालक को समुचित मार्ग प्रदर्शित कर उसे उसके आक्रामक और प्रत्याहारी व्यवहार को छोड़ने तथा अत्यधिक सावधान होने के लिए उत्प्रेरित कर सकता है और इष्ट परिवर्तन ला सकता है।

अध्यापकों और मार्ग-प्रदर्शकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि यदि बालक शर्मीला अथवा आक्रामक है तो उसके व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए उन्हें शीघ्रता नहीं करनी चाहिए, *क्योंकि सुन्दर सामाजिक अनुकूलन का कोई एक सार्वजनिक स्तर* नहीं है। एक बालक जो शर्मीला अथवा आक्रामक है, सामाजिक दृष्टि से पूर्ण व्यवस्थित भी हो सकता है। ऐसा होने पर उसे उचित निर्देश देकर स्वयं विकास करने के लिए छोड़ देना चाहिए। जैसे, एक शर्मीला बालक अपने सीमित सामाजिक घेरे में ही बातचीत करना पसन्द करता हो, थोड़े लोगों के साथ ही अपना थोड़ा समय व्यतीत करता हो, शेष समय किसी उपयोगी एवं बहुमूल्य रचनात्मक कार्य के करने में बिताता हो तो उसे अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने के लिए छोड़ देना चाहिए। अत अध्यापक को बालक के व्यवहार का सम्यक् और सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए और तब उसके विकास के लिए कोई क्रियात्मक कदम उठाना चाहिए। इसमें धैर्य, अन्तर्दृष्टि और निरपेक्ष अध्ययन की परम आवश्यकता है। बालक के किसी एक कार्य अथवा कुछ थोड़े-से कार्यों को देखकर उसके सम्पूर्ण व्यवहार का निर्णय नहीं करना चाहिए, वरन् उसके अन्तस् में झाँककर उसके समग्र गुणों का अध्ययन कर उसके सम्पूर्ण व्यवहार का आकलन करना चाहिए। इसमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।

बालक के सामाजिक व्यवहार का आकलन सदैव इस दृष्टि से करना चाहिए कि व्यक्तियों में आपस में एक-दूसरे में विभिन्नता है। किन्हीं भी दो व्यक्तियों का व्यवहार समान नहीं हो सकता। अत यदि उनमें परिवर्तन लाना ही है तो उनके मूल गुणों के आधार पर जो दाय स्वरूप उन्हें मिले होते हैं, परिवर्तन लाना चाहिए। उन्हें किसी एक निश्चित सामाजिक व्यवहार के अनुकूल अथवा कुछ अटल सिद्धान्तों के समनुरूप बनाने का हठ नहीं करना चाहिए। अध्यापक को कुछ सिद्धान्त निर्धारित कर बालक को उनके अनुकूल व्यवहार करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए, वरन् बालक में उपलब्ध गुणों और उसकी विशेषताओं को सामाजीकरण की ओर विकसित करना चाहिए। बालक ऐसी कोरी पटिया नहीं है, जिस पर चाहे जो लिखा जा सके वरन् कुछ जन्मजात विशिष्ट गुणों से युक्त एक ऐसा प्राणी है, जिसे उचित वातावरण प्रदान कर उसकी मौलिक शक्तियों को सन्मार्ग की ओर लाया जा सकता है।

विद्यालय में सामाजिक वातावरण[1]

वैयक्तिक भिन्नता होने के बावजूद भी अधिकतर बालक का सामाजिक विकास

1. Social Atmosphere in the School.

उसकी उन सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है, जिनमे वह शिक्षा प्राप्त करता है। इस दृष्टि से कक्षा तथा पाठशाला का सामाजिक वातावरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह बालक की विचारधारा और भावनाओं पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है।

[एक बालक जब दूसरे बालकों को खेलता देखकर भी उनके साथ नहीं खेल सकता तो इस बात मे संदेह नहीं रहता कि बालक के सामाजिक अनुकूलन में कोई त्रुटि है।]

विद्यालयों और कक्षा मे पाए जाने वाले सामाजिक वातावरण को स्थूल रूप से तीन भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है :

(१) निरंकुश[1] प्रवृत्ति के अध्यापकों द्वारा उत्पन्न किया हुआ वातावरण—निरंकुश एवं प्रभव अध्यापक कड़े अनुशासन मे विश्वास रखते हैं। उनकी कक्षा में कोई भी छात्र हाथ-पैर नहीं हिला सकता, स्वेच्छापूर्वक नहीं बैठ सकता। कोई भी छात्र उनसे प्रश्न नहीं करता। उनकी पढ़ाने की विधि अत्यन्त रूढ़ होती है, उसमे वाद-विवाद तथा मानसिक विनोद के लिए कोई स्थान नहीं होता। इस प्रकार के अध्यापक की कक्षा मे बालक के किसी भी प्रकार के सामाजिक विकास की कोई सम्भावना नही। बालक डाँट-फटकार के भय से दब्बू बन जाते हैं। उनके मन मे उठने वाली जिज्ञासा बिना पूर्ण हुए ही समाप्त हो जाती है। बालकों के अन्तस् मे इस प्रकार

1. Autocrat.

के अध्यापक के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है तथा उनमें समाज-विरोधी भावनाएँ; जैसे—परपीड़न, अकारण झगड़ना आदि, उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे अध्यापक की कक्षा में बालकों को एक-दूसरे के विचारों का आदान-प्रदान न होने से सामूहिक कार्यों की रुचि को प्रोत्साहन नहीं मिलता, बालक केवल भयभीत होना ही सीखते हैं, और वे अधोगामी बन जाते हैं।

(२) एक दुर्बल व्यक्तित्व वाले नम्र अध्यापक द्वारा उत्पन्न किया गया वातावरण– जहाँ पर अध्यापक कक्षा में उचित नियन्त्रण नहीं रख पाता, वहाँ बालक अनुशासनहीन और उद्दण्ड बन जाते हैं, कक्षा में पूर्ण अव्यवस्था रहती है। इस प्रकार की कक्षा में किसी भी प्रकार का सामाजिक विकास सम्भव नहीं, क्योंकि अव्यवस्था की परिस्थिति में बालक सामूहिक कार्यों में नियन्त्रित रूप से भाग नहीं ले सकते। अतः उनमें सामाजिक भावना व सामूहिक भावना का विकास हो ही नहीं सकता।

(३) ऐसे अध्यापकों द्वारा उत्पन्न किया गया वातावरण जो न तो निरंकुश ही हैं और न दुर्बल—जो अध्यापक न तो निरकुंश हैं और न दुर्बल उनके द्वारा उत्पन्न किया गया वातावरण छात्रों में सहकारिता की भावना को जन्म देता है। बालकों में सामूहिक कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अध्यापक और छात्रों में मित्रों जैसा व्यवहार होता है, वे दोनों मिलकर पढ़ने का विषय चुनते हैं और आपस में चर्चा करने के उपरान्त बालक उसे सीखते हैं तथा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझते और उसकी सराहना करते हैं। बालक समूहों में कार्य करते हैं और अपनी सामाजिक भावना का परिचय देते हैं। ऐसे वातावरण में गुरु और शिष्य में विचारों के आदान-प्रदान का बहुत समय मिलता है।

इस प्रकार के अध्यापक की कक्षा में सामाजिक परिस्थितियाँ सर्वोत्तम होती हैं। यहाँ बालकों को नेतृत्व करने के लिए प्रेरित किया जाता है। उन्हें स्वयं अपने संवेगात्मक और मानसिक विकास के लिए सहायता और सम्यक् निर्देश मिलता है। विद्यालयों में ऐसे ही उपयुक्त वातावरण की अपेक्षा की जाती है जो बालक को स्वत विकसित होने के लिए सहायता प्रदान करे। इस प्रकार का वातावरण बालकों में सामाजिक भावना के प्रादुर्भाव के लिए परम आवश्यक है।

सारांश

बालक की आयु के बढ़ने के साथ-साथ उसके शारीरिक, मानसिक, प्रवृत्यात्मक, संवेगात्मक और सामाजिक व्यवहार का भी विकास होता है। सामाजिक व्यवहार का विकास अन्य प्रकार के व्यवहारों के विकास से घने रूप में सम्बन्धित है।

सामाजिक विकास से तात्पर्य यह है कि बालक अपने को लगातार उम्र के साथ बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में व्यवस्थित करता रहता है तथा

उसे अपने वर्ग के सामाजिक दाय की पूरी जानकारी होनी है और उसी के अनुरूप वह अपने को सामाजिक वातावरण मे व्यवस्थित करता है। बालक का सामाजिक विकास उसके व्यष्टिगति विकास के मूल्य पर नही होता वरन् दोनों प्रकार का विकास बालक मे साथ-साथ होता है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं। बिना व्यष्टिगत विकास के सामाजिक विकास सम्भव नही और बिना सामाजिक विकास के व्यक्ति के व्यक्तित्व का समुचित विकास नही हो सकता। बालक के व्यष्टिगत विकास के कुछ स्तरो द्वारा ही उसका सामाजिक विकास पूर्णता को प्राप्त होता है। किन्तु ये स्तर स्पष्ट रूप मे प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि आप विकास-काल की ऐसी कोई निश्चित सीमा-रेखा नही खीच सकते हैं कि यहाँ से अमुक विकास प्रारम्भ होता है और यहाँ से अमुक स्तर का विकास शुरू होता है। किन्तु फिर भी उसका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—(१) दूसरो के प्रति सावधानता—यह भावना बाल्य-जीवन के प्रारम्भ होने से कुछ माह उपरान्त ही बालक मे आ जाती है। (२) सामाजिक वर्गों से मेल-जोल—यह भावना २ वर्ष मे ६ वर्ष की उम्र तक स्पष्ट देखी जा सकती है। १० वर्ष की अवस्था पर बालक मे दल-भावना का विकास होता है। (३) बालक और बालिकाओ के आपसी सम्बन्धो मे परिवर्तन—तरुणाई से पहले प्राय सामाजिक वर्गों का निर्माण अपने ही लिग के व्यक्तियो में होता है, किन्तु तरुणाई आने पर बालक बालिका के साथ और बालिका बालक के साथ मिल-जुलकर कार्य करना या आपस मे मिलना पसन्द करते हैं।

बालक के सामाजिक व्यवहार पर उसके परिवार के आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। बालक का सामाजिक व्यवहार उसके शारीरिक और मानसिक विकास तथा शिक्षा के प्रकार पर भी, जो उसे मिली है, बहुत आधारित रहता है। बालकों मे वैयक्तिक भिन्नता उनके शैशव काल मे ही पायी जाती है, किन्तु उस भिन्नता के कारणो को सही-सही बताना बड़ा दुष्कर कार्य है। मैकगिलन महोदय ने सामाजिक व्यवहार के आधार पर बालकों को चार स्थूल भागों मे वर्गीकृत किया है; जैसे—(१) प्रत्याहार, (२) समनुरूप, (३) हीन, और (४) सावधान। एक अध्यापक को जो अपने शिक्षण के द्वारा बालकों मे उचित सामाजिक व्यवस्थापन की क्षमता का विकास करना चाहता है, बालकों की व्यक्तिगत भिन्नता पर विशेष ध्यान देना चाहिए और तदनुरूप ही उनमे सामाजिक एवं सामूहिक भावना का विकास करना चाहिए। अध्यापक बालकों मे उचित व्यवस्थापन की भावना का विकास तभी ला सकता है, जबकि वह कक्षा मे बालकों के साथ न तो निरंकुशता का व्यवहार करता है और न अत्यधिक विनम्र प्रकृति को ही अपनाता है वरन् बालकों को समुचित अनुशासन मे रखकर भी उन्हें वाद-विवाद के लिए, विचारों के आदान-प्रदान के लिए समय देता है—जिससे बालकों मे कटुता भी न फैले और उनका बौद्धिक विकास भी हो, तथा उनमे सामाजिक भावना का प्रादुर्भाव और समुचित विकास भी हो सके।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१. जन्म से किशोरावस्था तक बालक की सामाजिक भावना के विकास पर प्रकाश डालिए। विस्तृत विवेचन करते हुए उपयुक्त उदाहरण दीजिए।

२. अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर एवं अपने साथियों के अनुभव के आधार पर जिनके जीवन से आप भलीभाँति परिचित हैं, किशोरावस्था की समस्याओं की एक सूची बनाइए। उन समस्याओं के कारणों का विवेचन कीजिए तथा उनके लिए उपयुक्त हल बताइए।

३. "हमारे देश में विद्यालयों और महाविद्यालयों में 'लिंगीय पृथक्करण' की नितान्त आवश्यकता है।" क्या आप इस विचार से सहमत हैं? अपने मत की पुष्टि के लिए उसके कारणों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डालिए।

४. सत्य अथवा असत्य कथन की छाँट कीजिए.

(अ) बालक तीन, चार वर्ष का होने पर भी दूसरों के प्रति सचेतना प्रदर्शित करता है। हाँ/नहीं

(ब) बालक तीन, चार वर्ष की आयु से सामूहिक खेलों में रुचि लेने लगता है। हाँ/नहीं

(स) प्रतियोगी खेलों में वह किशोर काल के उपरान्त ही रुचि लेता है। हाँ/नहीं

(द) बालक की रुचि विषमलिंगी में चार, पाँच वर्ष से प्रदर्शित होने लगती है। हाँ/नहीं

(य) बालक तथा बालिकाओं का पृथक्करण अच्छे सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है। हाँ/नहीं

•

७ मानसिक विकास
MENTAL DEVELOPMENT

आपने पिछले अध्यायों मे देखा कि शारीरिक और सामाजिक विकास के साथ ही मानसिक विकास भी होता है। बिना मानसिक विकास के उपयुक्त सामाजिक विकास सम्भव नही। हमने अभी देखा कि एक बालक जिसका मानसिक विकास समुचित ढङ्ग से हुआ है, किसी भी कार्य को दूसरो से अधिक ठीक प्रकार से कर सकता है। अब हम मानसिक विकास की ही चर्चा करेंगे जिसका अर्थ समझने की शक्ति, स्मृति, तर्क-शक्ति और बुद्धि-अभिवृद्धि से है।

इस अध्याय मे मानसिक विकास के अन्य सभी पक्षो का विवेचन किया जायगा। केवल बुद्धि[1] की चर्चा हम अगले अध्याय मे करेंगे। यहाँ हम स्मृति, भाषा-विकास तथा तर्क-शक्ति इत्यादि का वर्णन सक्षेप मे ही करेंगे। पुस्तक के अगले भाग मे 'सीखना' के अन्तर्गत इनके महत्व के संदर्भ मे विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

मानसिक योग्यता की अभिवृद्धि[2]

बालक जैसे ही शैशवावस्था से प्रौढावस्था की ओर विकसित होता है, वैसे ही उसकी मानसिक शक्तियो मे भी वृद्धि होती जाती है। यह वृद्धि निम्नलिखित आधारो पर होती है :

(१) शैशवावस्था मे बालक केवल उन वस्तुओं मे रुचि लेता है जिनका सबध उसकी आसन्न आवश्यकताओं से होता है, जैसे—भूख और प्यास। धीरे-धीरे सांसारिक वस्तुओ के प्रति उसका दृष्टिकोण विस्तृत होता जाता है। वह चल-वस्तुओं को भी अपनी आँख से देखने और पहचानने लगता है। वस्तुओ के प्रति अपनत्व की भावना का भी विकास होता है, और अधिक से अधिक वस्तुएँ उसकी रुचि का विषय बनती हैं।

(२) बालक जैसे ही बढता जाता है, उसमे 'कालानुभूति' की भावना का विकास होता जाता है। जो घटना अभी तक घटित हो रही है और जो पहले घटित

1. Intelligence. 2. Growth of Mental Ability.

हो चुकी है, उसके काल में अन्तर करना सीख लेता है। उसमें घटना के काल के साथ उसके स्थान का भी निश्चय करने की क्षमता आ जाती है कि अमुक घटना किस काल और स्थान पर घटित हुई। अन्त में, वह प्राचीन घटनाओं को याद कर भविष्य में उनका उपयोग करने के योग्य भी बन जाता है।

(३) शिशु चीखकर माँ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है, और माँ यह समझ लेती है कि बालक की क्या आवश्यकता है। धीरे-धीरे वह अपनी इच्छा को संकेतों द्वारा अभिव्यक्त करना सीख लेता है और कुछ समय उपरान्त एवं उपयुक्त शब्द-भण्डार को भी सीख लेता है। किन्तु उससे पहले वह अपनी इच्छाओं को एक अथवा दूसरे शब्द द्वारा अभिव्यक्त करता है अथवा कुछ मौखिक ध्वनियों द्वारा उन्हें व्यक्त करने की चेष्टा करता है। आपने बालकों को 'दा'-'मा' बोलते हुए सुना होगा और माँ भी समझ जाती है कि बालक क्या चाहता है, उसकी क्या आवश्यकता है? बालक कभी-कभी कहता है 'बाजी' (बाहर) और आप तुरन्त समझ जाते हैं कि वह बाहर घूमने जाना चाहता है।

(४) बालक जैसे ही उम्र में बढ़ता जाता है, उसके कार्य और योजनाएँ भी भविष्य के लिए बनती जाती हैं। वह ऐसे लक्ष्य की योजना बनाता है जो उसकी उम्र की दृष्टि से बहुत आगे के होते हैं तथा निकट भविष्य में उन्हें प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। जैसे, बालक अपने घर पर अध्ययन के लिए कार्यक्रम बनाता है, जिसका उद्देश्य सुदूर भविष्य में परीक्षा में उत्तीर्ण होना होता है।

बालक किसी योजना अथवा कार्य को बहुत देर तक करने के योग्य भी बन जाता है। वह अपने अवधान को किसी कार्य पर अधिक समय तक केन्द्रित करने में समर्थ होता है, जो पहले नहीं करता था।

किन्तु यह भी ध्यान देने की बात है कि ये सभी परिवर्तन एकदम नहीं होते, और न एक प्रकार के ही होते हैं। वे परिवर्तन जो मानसिक हैं, निश्चय ही परिपक्वता के बढ़ने की ओर संकेत हैं, किन्तु मानसिक विकास के स्तर भी अलग-अलग नहीं देखे जा सकते। बालक अपने विकास के किसी भी विशिष्ट स्तर पर एक आसन्न एवं प्रत्यक्ष स्तर से सुदूर और अमूर्त स्तर पर नहीं पहुँच जाता। परिपक्वता की प्रक्रिया विकास के सभी स्तरों में धीरे-धीरे चलती रहती है और प्रौढ़ावस्था में पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त होती है। जैसे, एक व्यक्ति जिसकी विचार-शक्ति परिपक्व हो चुकी है, अमूर्त वस्तुओं के बारे में और भविष्य के बारे में गम्भीर चिन्तन कर सकता है। किन्तु विकास की सभी अवस्थाओं में वह ऐसा कर सकता है यह सम्भव नहीं है।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि बालक के मानसिक विकास के विभिन्न स्तरों को रेखीय क्रम में विभाजित नहीं किया जा सकता, फिर भी विकास

की कुछ ऐसी विशिष्ट दिशाएँ और व्यवहार की विशिष्ट सारणियाँ होती हैं जो एक स्तर पर दिखाई नही पडती और दूसरे स्तर अथवा उच्च स्तर पर दृष्टिगोचर होती हैं।
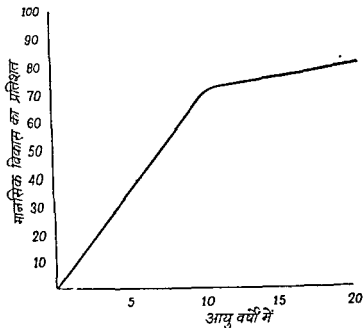
[इस रेखाचित्र में मानसिक विकास सैद्धान्तिक रूप से कितना किस आयु स्तर पर होता है, यह दिखाया गया है]

बालक के जीवन के प्रथम मास मे इन्द्रिय-ज्ञान का विकास प्रारम्भ होता है, और वह ज्ञानेन्द्रिय अवयवों के उपयोग को सीखता है। आयु के प्रथम दो वर्षों मे वह इन्द्रियों की सहायता से समन्वेषण की दृष्टि प्राप्त करता है।

बालक प्रथम दो वर्षों मे धीरे-धीरे भाषा का प्रयोग करना भी सीख लेता है। सबसे पहले बालक मौखिक प्रतीकों और ध्वनि-संकेतों का प्रयोग करना सीखता है जो विशिष्ट वाक्य अथवा भावना के प्रतीक-स्वरूप होते हैं। यह अस्पष्ट, तोतली, मूकात्मक एवं प्रतीकात्मक भाषा होती है। फिर धीरे-धीरे शब्दों को स्पष्ट रूप से बोलना सीखता है। २ से ३ वर्ष की अवस्था तक वह छोटे-छोटे वाक्यों को बोलना सीखता है। ये प्रायः वे ही वाक्य होते हैं जो उसके परिवार के बड़े सदस्य बोलते हैं। बालक उनका अनुकरण कर उन्हें मात्र दुहराता है।

तीसरे वर्ष के प्रारम्भ में बालक अपने आसपास की वस्तुओं में अधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर देता है। वह बड़ा जिज्ञासु बन जाता है और ऐसे प्रश्न करता है— 'यह किसने किया ? यह क्या है ? यह यहाँ क्यों रखा है ?' बालकों द्वारा सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाने वाला वाक्य 'यह क्या है ?' होता है।

इसी प्रकार ७ वर्ष से ११ वर्ष तक, और ११ वर्ष से १६ वर्ष तक बालकों में विभिन्न प्रकार के विकास और परिवर्तन देखे जाते हैं। जैसे, ७ और ११ वर्ष की उम्र के बीच में बालक दूसरों का ध्यान आकृष्ट करना, बड़े लोगों की तरह व्यवहार करना आदि बातों में अधिक दिलचस्पी लेता है। वह सब शिष्टाचार का ख्याल रखता है कभी वह दादागिरी करता, कभी लड़ता और कभी नेता का अभिनय करता है। इस प्रकार के अनुकरणात्मक खेलों में उसकी अभिरुचि अधिक होती है, उसका मन उन्हीं में रमता है। किन्तु किशोरावस्था में वह ऐसी बातों में दिलचस्पी लेने लगता है और ऐसे खेलों में जिनसे वह अपनी आत्माभिव्यक्ति कर सके, अथवा अपने दबे हुए मन को तृप्ति दे सके।

नीचे हम मानसिक विकास की विभिन्न अभिव्यक्तियों का वर्णन करेंगे।

स्मृति का विकास[1]

'स्मृति मानसिक विकास की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। उसके बिना बुद्धि का कोई अस्तित्व नहीं। बालक अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से सम्पूर्ण जिस समय तक व अनुभवों में अवगत रहता है। किन्तु प्रौढ़ बालक के जीवन के प्रथम तीन वर्षों के अथवा कुछ समय बाद तक के अनुभव वह नहीं याद रख पाता। बाल्य-काल की भी कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ ही प्रौढ़ व्यक्ति को याद रह पाती हैं।

जन्म के समय बालक की स्मृति बहुत थोड़ी होती है। यह उसके अनुभव और विकास के साथ-साथ बढ़ती जाती है। किन्तु 'भूलने' की क्रिया भी उसके साथ जुड़ी हुई होती है। यह शैशवावस्था और बाल्यावस्था में अधिक रहती है। आगे चलकर व्यक्ति उस मात्रा में नहीं भूलता। किशोर की उच्च अवस्थाओं में व्यक्ति इसलिए 'कम भूलता' है कि उस समय तक उसका नाड़ी-मण्डल अपेक्षाकृत सशक्त और प्रौढ़ हो जाता है, और वह अपने गत अनुभवों को भाषा के माध्यम से पुनरुज्जीवित कर लेता है।

केवल वे ही स्मृतियाँ जीवन भर याद रहती हैं जिनका सम्बन्ध किसी महत्व-पूर्ण या विस्मयकारी घटना से होता है अथवा किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति से होता है। कॉलेज के विद्यार्थी अपने प्रथम कॉलेज-दिवस को भली-भाँति याद रखते हैं अथवा जब वे हाईस्कूल व इण्टरमीडिएट परीक्षा पास करते हैं, अथवा उन्हें वाद-विवाद, अभिनय इत्यादि में बड़ी सफलता मिलती है, उन दिनों की याद उनकी स्मृति में जीवन भर ताजी बनी रहती है।

---

1. Development of Memory.

इसी प्रकार हम लोगों में जीवन के कटु अनुभवों की अपेक्षा मधुर अनुभव और सुन्दर घटनाओं को याद रखने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से होती है।

भाषा-विकास[1]

जन्म के समय बालक केवल 'चीख' सकता है, यही ध्वनि उत्पन्न करने की उसमें मात्र क्षमता होती है। एक माह का होने पर वह विभिन्न प्रकार से विभिन्न कारणों पर चीखना प्रारम्भ कर देता है। कुशल माता या नर्स उसके चीखने को समझने लगती है। वह उसकी दर्द की चीख अथवा भूख की चीख में अन्तर कर सकती है। जैसे ही बालक कुछ महीनों का होता है, वह—वा-वा, दा-दा, मा-मा, आदि ध्वनियों का उच्चारण करने लगता है और जब तक एक वर्ष का होता है, वह एक या दो अस्पष्ट शब्द बोलना सीख लेता है। इसके उपरान्त उसके बोलने की शक्ति और शब्द-भण्डार बड़ी तीव्र गति से बढ़ता है। २ वर्ष की आयु में लगभग २७० शब्दों का उसका शब्द-भण्डार होता है। ७ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते उसका शब्द-भण्डार १६,००० शब्दों तक पहुँच जाता है।

बालक की सम्पूर्ण विकास-अवस्थाओं में उसका भाषा-ज्ञान बढ़ता रहता है। लगभग २ वर्ष की उम्र में अथवा उसके कुछ समय बाद वह कुछ छोटे-छोटे साधारण एवं सरल वाक्यों को दुहराना सीख लेता है, जो उसने अपने बड़ों से सुने होते हैं। ५ और ६ वर्ष की अवस्था तक वह साधारण और सरल वाक्यों का प्रयोग करता है, फिर उसमें संयुक्त और जटिल वाक्यों को बोलने की प्रवृत्ति का उदय होता है।

धीरे-धीरे बालक शब्द के कई अर्थों को सीखना प्रारम्भ कर देता है। वह शब्द की सार्थकता और उसके विशेष महत्त्व को भी समझने लगता है। किन्तु सीखने की यह प्रक्रिया कभी पूर्ण नहीं होती, आजीवन चलती ही रहती है। प्रौढ़ावस्था में भी ऐसे बहुत-से शब्द होते हैं जिन्हें बालक को सीखना होता है, यद्यपि वे उन शब्दों को जानते हैं और उनका प्रयोग भी करते हैं। किन्तु यह प्रयोग प्राय. अस्पष्टता और जटिलता को जन्म देता है। बहुत-सी अशुद्ध धारणाओं का मूल कारण व्यक्ति के द्वारा शब्द बोलने में शब्दों का अशुद्ध प्रयोग होता है।

अध्यापक को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि बालक ऐसे बहुत-से शब्दों का प्रयोग करता है जिनको वह जानता अवश्य है, किन्तु जिस भाव की अभिव्यक्ति के लिए उनका प्रयोग किया गया है—वह उस भाव की अभिव्यक्ति नहीं करता, वरन् दूसरे भाव का ही प्रतीक होता है। इसलिए उसे बालकों को शब्द का सही अर्थ, उसकी सार्थकता और महत्त्व तथा संदर्भ का प्रयोग बताना चाहिए। साथ में उसे स्वयं को भी ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो सही-सही भावों की अभिव्यक्ति करते हों। यदि अध्यापक स्वयं शब्दों का अशुद्ध प्रयोग करेंगे

1. Einguistic D.

प्रवृत्ति के कारण उसी प्रकार से शब्द का प्रयोग करने लगेंगे जो अशुद्ध और अपूर्ण होंगे तथा सम्यक् और प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना में बाधक होंगे। अध्यापक शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में करता है, उसे बालक भलीभाँति समझा अथवा नहीं, इसकी जाँच के लिए अध्यापक को चाहिए कि वह बालक से उस शब्द का प्रयोग प्रत्यक्ष और दिन-प्रतिदिन के जीवन से उदाहरण देकर करवाये। इस प्रकार वह बालकों को शब्दों के सही अर्थ से अवगत कराने में सफलता प्राप्त करेगा।

वातावरण का भाषा-विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जो बालक उच्च सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर से आते हैं उनका भाषा-विकास अन्य बालकों से अधिक अच्छा होता है। इकलौते बालक का भाषा-विकास ऐसे बालक से जिसके भाई-बहन होते हैं, अधिक अच्छा होता है। इसी प्रकार जुड़वाँ बालकों से ऐसे बालक का विकास अच्छा होता है जो जुड़वाँ नहीं हैं। इसका कारण यह है कि इकलौता बालक प्रौढ़ व्यक्तियों का अनुसरण करता है जिनका भाषा-विकास अधिक हो चुका होता है जबकि वह बालक जिसके भाई-बहन हैं, अपने भाई तथा बहन का अनुसरण ही करता है। किन्तु भाई-बहन का भाषा-विकास थोड़ा ही होता है इस कारण ऐसा बालक भी भाषा का प्रयोग कम ही सीख पाता है। जुड़वा बालक एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं और क्योंकि दोनों का विकास कम होता है, उनके भाषा-विकास में कमी रह जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि घर का वातावरण भाषा-शिक्षा में बहुत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षक के प्रयास उसी समय सफल हो सकते हैं जबकि घर का वातावरण भी भाषा-विकास की ओर हो।

भाषा-कौशल एवं बुद्धि में भी सम्बन्ध है। वह बालक जिनमें उच्च बुद्धि होती है, भाषा-कौशल में भी उत्तम होते हैं। जिन बालकों की बुद्धि कम होती है वह भाषा में भी पिछड़े होते हैं। किन्तु उच्च बुद्धि-स्तर होने पर यह आवश्यक नहीं कि अच्छा शब्द-भण्डार हो ही। इसलिए यदि एक बुद्धिमान व्यक्ति को सफलता प्राप्त करनी है तो उसे अपना शब्द-भण्डार बढ़ाना चाहिए।

नियंत्रित निरीक्षण से यह भी पता चला है कि व्यक्ति का वातावरण में समायोजन और उसके शब्द-भण्डार का धनात्मक सहसम्बन्ध है[1]। इससे तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति का शब्द-भण्डार अधिक होगा वह वातावरण में समायोजन भी अच्छे प्रकार से कर पायेगा। ऐसा इस कारण होता है कि अधिक शब्द-भण्डार उसे वातावरण को अधिक अच्छे ढङ्ग से समझने में सहायता देता है।

अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि शब्द-भण्डार व्यक्ति की व्यावसायिक और सामाजिक स्थिति के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण होता है। यह देखा गया कि बड़े अफसरों का शब्द-भण्डार भी अधिक था।

---

1. Positive correlation. इस पर अगले अध्याय में और प्रकाश डाला गया है।

यह भी देखा गया है कि एक बालक की निहित विद्वत्ता का अच्छा सूचक उसका शब्द-भण्डार होता है। एक शिक्षक बालक की विद्वत्ता मे वृद्धि उसका शब्द-भण्डार बढाकर कर सकता है।

भाषा-विकास के सम्बन्ध मे यह बात भी ध्यान देने की है कि यह एक दूसरे से विचारो का आदान-प्रदान करने का सबसे अच्छा साधन है। यदि स्पष्ट शब्द बिना तोड़े-मरोड़े प्रयोग किये जायें तो यह अच्छी समझ को उत्पन्न करते है तथा भाईचारे को बढावा देते हैं। किन्तु कूटनीतिक भाषा अच्छे सम्बन्धों को समाप्त कर देती है।

वह राष्ट्र जो एकसी भाषा बोलते है, आपस मे अधिक नजदीक होते हैं उनकी बजाय जो विभिन्न भाषा बोलते हैं। यही बात राज्यो के लिए हमारे देश मे महत्त्वपूर्ण है। यदि राज्य विभिन्न भाषा बोलते हैं तो आपसी प्रेम तथा सद्भावना मे बाधा पड़ती है, किन्तु यदि एक राष्ट्रीय भाषा का प्रचलन हो जाये तो इनके अधिक नजदीक आने की सम्भावना हो जाती है। इसीलिए हम इस देश मे संवेगात्मक एकता के लिए एक राष्ट्र की भाषा पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कहते हैं कि अधिक से अधिक व्यक्ति दूसरे क्षेत्रों की भी भाषा पढें। इस सन्दर्भ मे त्रिभाषाई सूत्र मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयुक्त प्रतीत होता है।

भाषा के महत्त्व का उपर्युक्त वर्णन इस ओर स्पष्ट संकेत करता है कि बालक को प्रारम्भ से ही अच्छा भाषा-शिक्षण देना चाहिए। भाषा-विकास पर व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय भविष्य बहुत कुछ निर्भर होता है, अतएव इसके विकास की ओर हमे पूर्ण चैतन्य होना चाहिए।

भाषा-विकास अभिप्रेरण[1], अनुबन्धन[2] तथा अनुकरण[3] पर निर्भर रहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षण देने मे व्यक्तिगत आवश्यकताओ को ध्यान मे रखा जाये। अर्थपूर्ण दोहराना हो एव अच्छे उदाहरण दिये जायें। शिक्षक को विद्यार्थियों को घनी तथा विभिन्न अनुभवो को देना चाहिए ताकि बालक की भाषा-तत्परता मे वृद्धि हो।

अब हम भाषा-विकास के एक विशेष पक्ष पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

द्विभाषीय वातावरण और उसका प्रभाव[4]—भारत मे भाषा-समस्या का हल अभी तक नहीं हुआ है। हिन्दी एवं अंग्रेजी, दोनो ही भाषाओ का प्रयोग अध्ययन और अध्यापन मे चल रहा है। हमें यह देखना चाहिए कि यह द्विभाषीय वातावरण बालक के विकास एवं सीखने मे क्या प्रभाव डालता है। हम एक दक्षिण भारतीय परिवार का उदाहरण लेगे, जिसमें तेलुगु और हिन्दी, दोनो का ही प्रयोग समान रूप से होता है, अथवा एक ऐसा परिवार है जहाँ माँ तेलुगु बोलने वाली दक्षिणी और बाप हिन्दी बोलने वाला उत्तर भारतीय है। ऐसे पारिवारिक वातावरण मे

1. Motivation, 2. Conditioning. 3. Imitation, 4. Bilingual Environment and Its Effect.

बालक का भाषा-विकास कुछ समय के लिए रुक जायेगा, किन्तु कालान्तर में द्विभाषीय वातावरण बालक के भाषा-विकास में बाधक नहीं होगा वरन् बालक दो भाषाओं को साथ-साथ सीखकर लाभान्वित ही होगा।

अतः इस प्रकार बालक के जन्म के समय से ही उसके द्वारा दो भाषाओं का साथ-साथ सीखना उसके लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में यदि बालक का भाषा-विकास उसकी शैशवावस्था में मन्द गति से होता है तो अभिभावकों को चिन्तित नहीं होना चाहिए। धीरे-धीरे बालक दोनों ही भाषाओं का सीखना प्रारम्भ कर देगा और फिर उसका उचित मानसिक विकास होगा।

दूसरे अन्य मानसिक विकास[1]

तर्क-शक्ति और संबोधना का विकास[2]

बालकों एवं प्रौढ़ व्यक्तियों के तर्क करने के प्रकार में कोई विशेष अन्तर नहीं होता, किन्तु बालकों का तर्क प्रायः अपरिपक्व और असंगत होता है। बालक का अनुभव सीमित होने के कारण वह सही-सही ढङ्ग से तर्क नहीं कर पाता, अतः प्रौढ़ व्यक्तियों के तर्क करने की विधि का अनुकरण करता है। उसके असंगत एवं *अनुपयुक्त तर्क का कारण उसमें अनुभव की कमी, अपूर्ण भाषा-विकास* एवं आसन्न प्रत्यक्ष वस्तुओं के ही प्रति रुचि तथा सुदूर और अमूर्त एवं कल्पना सम्बन्धी विचारणा की क्षमता का न होना है।

इस विषय में हम आगे चलकर 'चिन्तन, तर्क और अवधारणा' वाले अध्याय में सविस्तार विचार करेंगे।

नैतिक संबोधना[3]

बालक किसी वस्तु के शुद्ध और अशुद्ध एवं सही और गलत के प्रथम दृष्टिकोण को अपने माता-पिता से प्राप्त करता है। वह कुछ ऐसे कार्य करता है जिन्हें उसके अभिभावक स्वीकार करते हैं और उन्हें सही बताते हैं। उसके कुछ अन्य कार्यों को अस्वीकृत किया जाता है, वे गलत बताये जाते हैं और उन्हें दुहराने का आदेश दिया जाता है। सारे जीवन भर इसी प्रकार समाज की स्वीकृति और अस्वीकृति के *अनुसार नैतिक संबोधनाएँ बनती रहती हैं।* इनका आधार कभी-कभी धार्मिक सिद्धान्त भी हुआ करते हैं। प्रायः व्यक्ति सही और गलत के प्रति अपने स्वयं के विचार बनाते हैं और उनका व्यवहार उन्हीं निर्दिष्ट विचारों और सिद्धान्तों के अनुरूप होता है। इन विचारों का निर्माण व्यक्ति में उसके अपने अनुभव के आधार पर होता है। जैसे, यदि बालक ने दूसरे किसी बालक की कोई वस्तु छीन ली है तो वह बालक दूसरे के

---

1. Some Other Mental Developments. 2. Development of Concepts and Reasoning 3 Moral Concepts.

द्वारा पीटा जाता है। यह अनुभव उसे यह सिखाता है कि किसी दूसरे की वस्तु लेना अथवा छीनना बुरा है।

मानसिक विकास और शिक्षा में उसका महत्त्व—बालक के मानसिक विकास की सम्यक् जानकारी से अध्यापक को उसे सुशिक्षित बनाने में बहुत सहायता पहुँचती है। अध्यापक जब यह ठीक-ठीक समझ लेता है कि बालक में किस अवस्था से कैसा और कितना मानसिक विकास होता है तथा अमुक विकास के स्तर पर बालक की अमुक प्रकार की मानसिक प्रौढ़ता होगी तो वह बालक के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम की योजना बनाने में सफल होता है जिसको बालक आसानी से और रुचिपूर्वक सीख सकता है। अतः बालक की अवस्था और उसके मानसिक स्तर के आधार पर जो शिक्षा बालक को दी जाती है, वही मनोवैज्ञानिक और छात्रोपयोगी होती है, उसी से बालक में इष्ट व्यवहार लाया जा सकता है।

अध्यापक उन समस्त पुस्तकों का सही-सही आकलन कर सकता है जो विकास के किसी एक विशेष स्तर पर बालकों को पढ़ाई जा सकती है। एक बालक जो समुचित मानसिक विकास न होने के कारण ६-१० वर्ष की अवस्था में किसी कार्य में रुचि नहीं लेता, वही उसे १४ या १५ वर्ष की अवस्था में सरलतापूर्वक सीख सकता है। ऐसी परिस्थिति में अध्यापक बालक के मानसिक स्तर का अध्ययन कर उसे आयु के स्तर के अनुसार नहीं, वरन् उसे उसके मानसिक स्तर के अनुसार ही सीखने के लिए कार्य देता है। ऐसा करने पर बालक अवश्य ही कृतकार्य होता है।

उम्र के विकास के साथ-साथ बालक का शब्द-भण्डार और उसके अर्थ की सम्यक् जानकारी भी बढ़ती है। अतः अध्यापक को पाठ्य-विषय के चुनाव में यह ध्यान रखना चाहिए कि बालक का शब्द-भण्डार विकास के किसी एक विशेष स्तर पर कितना होगा, उसी के अनुसार उसके लिए पाठ्यक्रम बनाना चाहिए, जिससे बालक मानसिक विकास के उस स्तर पर पाठ्य-विषय को भलीभाँति सीख सके।

२० और ४० वर्ष के बीच के समय में व्यक्ति का मानसिक विकास पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त होता है। इस उम्र में व्यक्ति अपने कार्य-क्षेत्र में अत्यन्त दक्ष हो जाता है। मानसिक शक्तियाँ प्रौढ़ता को प्राप्त हो जाती हैं, इसलिए वह मानसिक दृष्टि से पूर्ण विकसित और सक्रिय हो जाता है तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा वह अपने मानसिक विकास का पूरा-पूरा लाभ उठाता है।

४० वर्ष के उपरान्त भी मानसिक क्षमता बहुत अधिक रहती है, किन्तु वह उतनी उन्नत नहीं जितनी कि पहले थी, उसकी मात्रा में कुछ कमी आ जाती है। किन्तु फिर भी इस अवस्था में भी व्यक्ति उच्च मानसिक धरातल को प्राप्त कर सकता है। अतः शिक्षा का क्रम आजीवन चलना चाहिए। उसे उन्नति के मार्ग में आगे और आगे ही बढ़ना है, ज्ञान का अधिक से अधिक उपार्जन करना है, जो केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। यदि अध्ययन का क्रम रुक जाता है अथवा बाधा के कारण

स्थगित हो जाता है तो प्रौढ़ व्यक्ति की मानसिक क्षमता औसतन कम हो जायेगी और वह अपने प्रौढ़ मानसिक विकास का पूर्ण लाभ नहीं उठा पायेगा। वह अपने वर्ग के व्यक्तियों से पिछड़ जायगा।

सारांश

शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक बालक की उम्र के विकास के साथ-साथ उसका मानसिक विकास भी निम्नलिखित आधार पर होता है—(१) उसकी रुचियों का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, (२) उसमें काम-चेतना जाग्रत होती है, (३) उसकी अभिव्यक्ति का प्रकार प्रौढ़ होता जाता है तथा भाषा-विकास होता है, (४) वह सुदूर भविष्य में प्राप्त होने वाले उद्देश्यों की योजना बनाता है। किन्तु ये सभी मानसिक विकास एकदम बालक में नहीं आते और न ऐसा कोई समय होता है जबकि उसमें किसी-न-किसी प्रकार का मानसिक विकास न हो रहा हो। किसी भी व्यक्ति में उसके विकास की सभी अवस्थाओं में परिपक्वता की प्रक्रिया चलती ही रहती है। तात्पर्य यह कि व्यक्ति के अन्दर धीरे-धीरे प्रौढ़ता आती जाती है। बालक के जीवन के प्रथम भाग में उसमें संवेदनात्मक विकास होता है, वह इन्द्रियों द्वारा अनुभव करना सीख लेता है। प्रथम वर्षों में बालक धीरे-धीरे भाषा का प्रयोग करना सीखता है। लगभग ३ वर्ष की अवस्था में वह अपने चारों तरफ के पदार्थों में अधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर देता है। ५ से १२ वर्ष की अवस्था के बीच अपने खेलों में दूसरे लोगों का अनुकरण करना अधिक पसन्द करता है, जैसे—दरोगा बनना, राजा बनना या अध्यापक का स्वांग रचना। किशोरावस्था आने पर बालक विषमलिंगी में अधिक रुचि प्रदर्शित करता है, जो १३ से १८ या १९ वर्ष तक रहती है।

जन्म के समय बालक में स्मरण-शक्ति बहुत कम होती है जिसकी वृद्धि उत्तरोत्तर उसके विकास और अनुभव के आधार पर होती है। व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति सदैव बनी रहती है। दुःखद घटनाओं को व्यक्ति शीघ्र भूल जाता है। यह भी प्रकृति की देन है, अन्यथा उसका जीवन भी दूभर हो जाय। जन्म के समय बालक केवल 'चीख' सकता है। यही केवल ध्वनि या ध्वनि-संकेत है, जिसे वह प्रकट करता है। शनैः शनैः बालक दूसरी अन्य ध्वनियों को भी उत्पन्न करना सीखता है और फिर २-४ सरलतम शब्दों को बोलना सीख लेता है। उसके शब्द-भण्डार में वृद्धि होती है और ऐसे शब्द का प्रयोग करना सीखता है जिसके अनेक अर्थ होते हैं।

द्विभाषीय वातावरण में बालक को प्रारम्भ में सीखने में कठिनाई होती है, उसके सीखने की गति धीमी होती है। किन्तु यह वातावरण आगे चलकर बालक के भाषा-विकास में बाधा उत्पन्न नहीं करता और बालक दोनों भाषाओं को सरलतापूर्वक सीख लेता है। प्रारम्भ में बालकों की तर्क-शक्ति अपरिपक्व और असंगत होती है। वह सही और गलत के बारे में प्रथम दृष्टिकोण अपने अभिभावकों से ही प्राप्त करता

है। एक अध्यापक बालक के मानसिक विकास की सम्यक् जानकारी से परम लाभान्वित हो सकता है। बालक के मानसिक स्तर और उसकी परिपक्वता के अनुसार बालक के लिए पाठ्य-विषय और पुस्तकों का चुनाव करेगा, जिसमें बालक उनको पढ़ने और सीखने में रुचि प्रदर्शित करे और अपना समुचित विकास करे।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१. बहुत छोटे शिशु द्वारा पैदा की जाने वाली ध्वनियों की एक सूची बनाइए और बताइए कि उन ध्वनि-संकेतों द्वारा बालक परिवार के किसी प्रौढ़ व्यक्ति से क्या कहना चाहता है। इन ध्वनियों के आधार पर बालक का शब्द-भण्डार कैसे समृद्ध होता है? उदाहरण सहित समझाइए।

२. अपनी स्मृति से उन शब्दों, पदों और सम्बोधनाओं को लिखिए जिनका अर्थ आप आज जो समझते हैं, पहले इससे सर्वथा भिन्न समझते थे। उन शब्दों आदि के दो अर्थों पर भलीभाँति प्रकाश डालिए और उनके कारणों को समझाइए।

३. "अध्यापक को अमूर्त्त वस्तुओं से सम्बन्धित पदों को सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।" इस कथन से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? कथन के अन्तर्गत छिपी हुई समस्या के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों की स्पष्ट व्याख्या कीजिए और उन्हें सोदाहरण समझाइए।

४. मानसिक विकास से क्या तात्पर्य है? एक शिक्षक के लिए मानसिक विकास को समझना क्यों आवश्यक है?

८ बुद्धि
INTELLIGENCE

बौद्धिक विकास, उसका स्वरूप और बुद्धि-परीक्षा[1]

प्रारम्भ के कुछ अध्यायों में आपने यह देखा कि बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में कैसे विविध प्रकार का विकास होता है। यह भी बताया गया है कि विभिन्न व्यक्तियों में वैयक्तिक भेदों के कारण विकास की मात्रा कम या अधिक होती है। विकास की मात्रा का यह अन्तर सभी अभिभावकों के द्वारा बालकों में देखा जा सकता है। यद्यपि अपने और पड़ोस के बच्चों की तुलना करते समय वे थोड़े से अपने बच्चों की तरफ पक्षपाती अवश्य हो जाते हैं किन्तु फिर भी वे इस अन्तर का आकलन सरलतापूर्वक और निर्विवाद रूप से कर सकते हैं। जैसे, यदि उनके बालक के दाँत निकलने के सामान्य समय से पहले ही दाँत निकल आते हैं अथवा उनका बालक उस समय से बहुत पहले ही चलना सीख लेता है जब सामान्य रूप से बालकों के चलना सीखने का समय होता है तो वे समझते हैं कि उनका बालक दूसरे बालकों से बहुत अच्छा है, क्योंकि उसका विकास बहुत शीघ्र हो रहा है।

जो तथ्य शारीरिक विकास के साथ है, वही मानसिक विकास के साथ भी सत्य है। आपने व्यक्तियों को दूसरों के प्रति यह कहते सुना होगा कि अमुक व्यक्ति अत्यन्त प्रतिभाशाली और मेधावी है, अमुक अत्यन्त योग्य और अमुक अत्यन्त मन्द-बुद्धि तथा मूर्ख है। एक बालक जब २ वर्ष की अवस्था में ही कविता पाठ करने लगता है तो माँ अत्यन्त गौरव का अनुभव करती है और दूसरे लोग यह कहने में नहीं हिचकते कि बालक प्रतिभाशाली है। इसी प्रकार जब एक ३ वर्षीय बालक शब्दों का साफ-साफ उच्चारण भी नहीं कर सकता तो माँ उसके बारे में चिन्तित हो उठती है

---

1 Development of Intelligence, Its Nature & Intelligence-Tests.

और दूसरे लोग उसे मन्द-बुद्धि कहकर पुकारते हैं। वस्तुतः तथ्य यह है कि बालकों की मानसिक योग्यता में भेद होता है, और इसी कारण एक सामान्य व्यक्ति द्वारा प्रतिभावान और मन्द-बुद्धि का किया गया वर्गीकरण बालक की एक या दो क्रियाओं के ऊपर ही आधारित हो सकता है, अतः वह उसके व्यक्तित्व का सही आकलन नहीं होगा।

मनोविज्ञान ने बुद्धि मापने की सही प्रविधियों और उनकी सम्यक् व्याख्या के द्वारा व्यक्तियों के मानसिक विकास के आधार पर उनका वर्गीकरण कर मानव जाति को बहुत लाभ पहुँचाया है। मनोविज्ञान के द्वारा ही हम इस तथ्य का कारण जान सके कि 'जॉन स्टुअर्ट मिल' सामान्य उम्र से बहुत पहले ही क्यों ग्रीक पढ़ना सीख गया। एक बालक उम्र से पहले क्यों पढ़ना सीख लेता है, और दूसरा लगातार स्कूल जाने पर भी १२ वर्ष की उम्र में गणित के सरलतम प्रश्नों को भी हल नहीं कर पाता? मनोविज्ञान ने ऐसी मानसिक परीक्षाओं को जन्म दिया जो व्यक्तियों का वर्गीकरण उनकी सहज-प्रज्ञा[1] के आधार पर करती हैं। इसी ने बुद्धि और उसके मापने की अवधारणा को जन्म दिया तथा बुद्धि को मापने वाली ये विधियाँ बुद्धि-परीक्षाएँ कहलाईं।

इस अध्याय में हम सर्वप्रथम बुद्धि-परीक्षा के इतिहास की चर्चा करेंगे, तदुपरान्त बुद्धि की परिभाषा और उसके बारे में विविध सिद्धान्तों का विवेचन होगा।

बुद्धि-परीक्षा का इतिहास[2]

बुद्धि मापने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रविधि जो आज अपनायी जाती है, वह यह स्वरूप बहुत-से परीक्षणों के उपरान्त विकसित होकर इस अवस्था को प्राप्त हुआ। बुद्धि-परीक्षा के विकास के इतिहास का अध्ययन अत्यन्त रोचक और महत्त्वपूर्ण है। यहाँ हम स्थानाभाव के कारण उसकी रूपरेखा पर ही विचार-विमर्श करेंगे। जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए पुस्तक के अन्त में सहायक पुस्तकों की सूची दी हुई है। वे उससे लाभ उठाकर अपनी मानसिक तुष्टि कर सकेंगे और बुद्धि-परीक्षा—उसके जन्म, विकास एवं विविध प्रविधियों के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

अभी बहुत समय नहीं हुआ जबकि वह व्यक्ति जो सामान्य बौद्धिक स्तर से बहुत नीचे होता था, मूर्ख समझा जाता था और उसके अन्दर किसी दुरात्मा का वास माना जाता था। दुरात्मा को दूर करने के लिए उसके साथ लोगों का व्यवहार अत्यन्त क्रूर, अमानवीय और कोड़े लगाने तक का होता था। भारत में जादू-टोने वाले ऐन्द्रजालिक, भूत उतारने वाले ओझा और इसी प्रकार के अन्य तान्त्रिक अब भी बुद्धिहीन और मूर्ख लोगों के ऊपर से प्रेतात्मा आदि का प्रभाव हटाने के बहाने उन्हें बड़े शारीरिक कष्ट देते, डंडों, बेंतों से मारते और घोर पाशविक व्यवहार करते हैं। सुदूर ग्रामों में रहने वाली पिछड़ी जातियों में यदि तरुणियाँ 'हिस्टीरिया' के

1. Native Intelligence. 2. History of Intelligence Testing.

रोग से उन्मादग्रस्त हो जाती हैं, उन्हें बेहोशी आ जाती है तो प्रेत उतारने वाले ओझा आते हैं और बुरी तरह मार लगाते हैं। साँप काट लेता है तो भगतई होती है, सर्प देवता मनाए जाते हैं, किन्तु डाक्टर तक ले जाने का प्रयास नहीं किया जाता। इन सब का कारण लोगों की निरक्षरता, अज्ञानता एवं उचित शिक्षा का अभाव तथा शताब्दियों से चले आ रहे परम्परागत अन्धविश्वास हैं। यूरोप में भी इसी प्रकार की दशा १८वीं शती तक रही किन्तु विज्ञान ने उन्हें जगा दिया और १९वीं शती में सामाजिक न्याय[1] की भावना का उदय हुआ जिसने उन क्रूरताओं को समाप्त कर दिया।

सीज्युन[2] महोदय ने फ्रांस में मन्द-बुद्धि[3] व्यक्तियों की शिक्षा के ऊपर सबसे पहले बल दिया। जब उन्होंने अपने दृष्टिकोण को लोगों को भलीभाँति समझाया तो वहाँ उन लोगों का उपचार करने के लिए, जो सामान्य बौद्धिक स्तर से बहुत नीचे थे, बहुत-सी विशिष्ट कक्षाएँ और विरजालयों[4] की स्थापना हुई। किन्तु कोई व्यक्ति मन्द-बुद्धि है, और है तो कितना है, इसके लिए बुद्धि की सही-सही मात्रा को नापना, उसकी योग्यता का सम्यक् आकलन नितान्त आवश्यक था। अतः इस योजना को ध्यान में रखकर बहुत-सी प्रविधियों का विकास हुआ।

व्यक्ति की बुद्धि मापने की प्रविधियों का विकास प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की परीक्षणशालाओं के द्वारा भी हुआ। यूरोप में वुन्ट[5] महोदय ने, और अमरीका में कैटेल ने उपयुक्त क्रियाओं द्वारा परीक्षणशालाओं में व्यक्ति के कार्य-कलापों का आकलन करने की दिशा में कई सफल कदम उठाये। इङ्गलैंड में डार्विन, स्पेन्सर और गॉल्टन महोदय ने वंशानुक्रम की समस्याओं का अत्यन्त रोचक और वैज्ञानिक अध्ययन किया तथा उनके गहन अध्ययन के फलस्वरूप व्यक्ति-योग्यता की प्रविधियों में महत्त्व-पूर्ण विकास हुआ।

जी० एस० हॉल तथा क्लिपेट्रिक प्रभृत विद्वान् बाल-अध्ययन आन्दोलनों[6] में लगे हुए थे। किन्तु फिर भी बालक के सम्यक् अध्ययन के लिए उसकी योग्यता की सही-सही माप परम अपेक्षित थी। अतः अमरीका में इन विद्वानों ने कुछ और व्यक्तियों की सहायता से बालक की बुद्धि मापने की दिशा में कुछ प्रयास किये।

योग्यता मापने की दिशा में जो सर्वप्रथम परीक्षा प्रचलित हुई, वह थी— "शारीरिक विशेषताओं की परीक्षा"; जैसे—कसकर पकड़ने की क्षमता, घूमने-फिरने-दौड़ने की शक्ति, शारीरिक बल—इत्यादि। जर्मनी में एबिंगहॉस महोदय 'स्मृति' के अध्ययन में बहुत ही रुचि रखते थे। उन्होंने अपने स्मृति-अध्ययन के द्वारा 'सीखने और भूलने' की माप की प्रविधि को जन्म दिया।

इन सब विकासों के होते हुए भी बुद्धि-परीक्षा[7] के सम्बन्ध में जो सबसे

1. Social Justice. 2. Seguin. 3. Feeble-minded 4. Clinics. 5. Wundt. 6 Child-Study Movements. 7. Intelligence Test.

महत्त्वपूर्ण विकास हुआ, उसका श्रेय फ्रांस को है। उस विकास के लिए प्रेरणा उस समय मिली जबकि पेरिस मे बहुत बड़ी संख्या में बालक अनुत्तीर्ण हुए। शिक्षा-अधिकारियों को इसके बारे में बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने बालकों के असफल होने का सही कारण जानना चाहा। उन्होंने जानना चाहा कि असफलता का मुख्य कारण बालकों का कठिन परिश्रम न करना या उनका कामचोरपन है अथवा उनकी सहज-प्रज्ञा और जन्मजात बुद्धि में कुछ ऐसी कमी है जो उस कोटि की शिक्षा को ग्रहण करने के सर्वथा अयोग्य है। यदि विद्यार्थी पढ़ने में रुचि और ध्यान नहीं लगाते हैं तो उनके लिए कुछ परिणामी उपायों को सोचना चाहिए, जिससे बालकों का ध्यान पाठ्य-विषयों की ओर आकर्षित हो, वे उसे भलीभाँति सीखें। किन्तु यदि उनमें योग्यता की कमी है, उनकी सहज-प्रज्ञा का अभी उपयुक्त विकास नहीं हुआ है तो उन्हें दूसरे प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है जिसे वे सरलतापूर्वक ग्रहण कर सकें। अतः यह एक गम्भीर समस्या थी और उसका हल तभी सम्भव था जबकि मानसिक योग्यता की कोई विषयगत-परीक्षा[1] हो जिससे कामचोरों और अयोग्यों में सही-सही अन्तर किया जा सके। यह गम्भीर समस्या 'दैहिक मनोविज्ञान की परीक्षणशाला'[2] के संचालक अल्फ्रेड बिने[3] (१८५७-१९११) के समक्ष आई। उस समय परीक्षणशाला सोरबोन में स्थापित थी। उनको एक दूसरे चिकित्सक थियोफाइल साइमन[4] की सहायता से एक ऐसे यन्त्र को बनाने में सफलता प्राप्त हुई जिसके द्वारा बुद्धि को नापा जा सके।

बिने-साइमन की माप-बुद्धि—बुद्धि को मापने की बहुत-सी विधियों और प्रविधियों की परीक्षा के उपरान्त बिने महोदय इस निर्णय पर आये कि इसका सर्वश्रेष्ठ और सही तरीका यह होगा कि एक बहुत बड़ी संख्या में छोटे-छोटे कार्यों को चुना जाय, फिर इनकी सहायता से बालकों की बुद्धि मापी जाय। जिन कार्यों को एक विशेष उम्र के बालक अधिकतर हल कर लेते हैं वही कार्य करने की क्षमता उस वर्ग के बालकों की मानसिक योग्यता मानी जाय। सन् १९०५ ई० में बिने महोदय ने उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर प्रथम माप-परीक्षाएँ प्रकाशित कीं। इसमें छोटी-छोटी ३० परीक्षाएँ थीं। एक से दूसरी कठिनतर के क्रम में रखी गई थीं। सन् १९०८ ई० में उन्होंने दूसरी माप-परीक्षाएँ प्रकाशित कीं। ये परीक्षाएँ उम्र के वर्ग के आधार पर क्रमबद्ध की गई और उन्हीं के आधार पर बिने ने मानसिक आयु की सामग्री को एकत्रित किया तथा मानसिक आयु के बारे में सही-सही पता लगाया। मानसिक आयु का आधार उन्होंने यह बताया कि प्रत्येक उम्र के सामान्य बालकों के लिए कुछ ऐसे कार्य हो सकते हैं जो वह सफलतापूर्वक कर सकते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक आयु उसके द्वारा कार्यों को करने की क्षमता के ऊपर आधारित होती है। जैसे—

1. Objective Test. 2. Laboratory of Physiological Psychology. 3. Alfred Binet. 4. Theophile Simon.

किसी भी वास्तविक उम्र का बालक यदि १० वर्ष के बालकों के लिए निर्धारित परीक्षा को पास कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु १० वर्ष मानी जायगी। सन् १९११ ई० में बिने ने अपनी 'परीक्षाओं' में संशोधन और परिवर्तन किया तथा उसी वर्ष मानवता की हित-साधना में ही यह महान् आत्मा समाप्त हो गई।

बिने ने सर्वप्रथम जो बुद्धि-माप-विधि चुनी, उसमें उन्होंने विभिन्न उम्र के बालकों के लिए अलग-अलग प्रश्नावली तैयार की। ११ और १३ वर्ष की उम्र के बालकों को छोड़कर ३ वर्ष से १५ वर्ष तक के बालकों की परीक्षा के लिए प्रश्नावलियाँ तैयार की गईं। प्रत्येक प्रश्नावली को इस प्रकार तैयार किया गया कि ५ वर्ष का बालक जिस प्रश्नावली को कर लेता था, उसे ४ वर्ष का बालक नहीं कर पाता था। ये क्रम से कठिन और कठिनतर होते इसी प्रकार १४ वर्ष का बालक १५ वर्ष के बालक के प्रश्नों को हल नहीं कर पाता था। जो बालक अपनी उम्र के लिए निर्धारित प्रश्नों को हल कर लेता था वह सामान्य बुद्धि वाला, जो अपनी उम्र से अधिक उम्र के प्रश्नों को हल कर लेता वह प्रतिभावान और जो अपनी उम्र से कम उम्र के लिए निर्धारित प्रश्नों को हल कर पाता वह मन्द-बुद्धि माना जाता था। प्रत्येक प्रश्नावली में ५ या ६ प्रश्न रखा करते थे। बिने ने इस प्रश्नावली को तैयार करने में बड़ी सावधानी से काम लिया, उनका विचार था कि बालक में आयु-वृद्धि के साथ-साथ ज्ञान-वृद्धि भी होती है, अतः किसी विशिष्ट उम्र का बालक उस उम्र के निर्धारित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता तो वह अवश्य ही मन्द-बुद्धि का बालक है।

वस्तुतः बिने ने ज्ञान को बुद्धि का प्रतीक माना और किस उम्र के बालक किस प्रश्नावली को हल कर सकेंगे, इसके लिए उन्होंने प्रत्येक उम्र के १,००० बालकों की परीक्षा की और जिन प्रश्नों का उत्तर एक ही उम्र के बालक ६० प्रतिशत सही देते थे, वही प्रश्नावली उनके लिए निर्धारित की गई। वही उस उम्र के बालकों के लिए बुद्धि-मापन परीक्षा मानी गई। एक बालक जिस उम्र के बालकों के निर्धारित प्रश्नों का उत्तर दे देता, वही उसकी मानसिक उम्र मानी गई। कोई बालक जिसकी वास्तविक उम्र १० वर्ष है, यदि १२ वर्ष के लिए निर्धारित प्रश्नों का उत्तर दे देता है तो उसकी मानसिक आयु १२ वर्ष मानी गई और यदि यही बालक ८ वर्ष के बालक के लिए निर्धारित प्रश्नों का ही सही उत्तर दे पाता है तो उसकी मानसिक आयु ८ वर्ष मानी गई। एक बालक जो अपनी आयु के सभी प्रश्न कर लेता है और अपने से बड़ी अवस्था की प्रश्नावली के भी कुछ प्रश्न कर लेता है तो बड़ी अवस्था की प्रश्नावली के प्रत्येक प्रश्न के लिए बिने $\frac{१}{६}$ वर्ष मानसिक आयु जोड़ देता था। जैसे, यदि कोई बालक जिसकी वास्तविक आयु ५ वर्ष है, अपनी अवस्था के सभी प्रश्नों को हल कर लेता है तथा ६ वर्ष के दो प्रश्न और ७ वर्ष के एक प्रश्न को हल कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु इस प्रकार होगी—

$$५ + \frac{२}{६} + \frac{१}{६} = ५\frac{३}{६} \text{ वर्ष।}$$

विने-साइमन ने ही सबसे पहले बुद्धि मापने का मनोवैज्ञानिक ढङ्ग ढूँढ निकाला। उसने अपनी परीक्षा मे साहित्यिक और विद्या सम्बन्धी उपलब्धियों को दूर रखा। वह उच्च मानसिक प्रक्रियाओं की परीक्षा करना चाहता था। उसने लिखा है कि—"यह केवल बुद्धि ही है जिसे हम मापना चाहते हैं, व्यक्ति द्वारा प्राप्त की हुई शिक्षा अथवा विद्या की माप हम नहीं चाहते।" विने का यह मत था कि जिस बालक को जितना अधिक ज्ञान है, उतनी ही बुद्धि उसमे अधिक है। वह यह मानता था कि एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने चारो तरफ के वातावरण मे, एकसी परिस्थितियो मे उस बालक की अपेक्षा अधिक ज्ञान प्राप्त करेगा, अधिक सीख लेगा जो मन्द-बुद्धि है।

सन् १९११ ई० मे विने ने अपनी प्रश्नावली मे संशोधन करने के उपरान्त निम्नलिखित माप-विधि बनाई .

विने के बुद्धि-परीक्षा प्रश्न

तीन वर्ष की आयु के लिए

(१) तुम्हारी नाक, आँख और मुँह कहाँ हैं ?
(२) २ अङ्कों से बनी संख्या को दोहराना।
(३) ६ शब्दो से बने वाक्य को दोहराना।
(४) चित्र मे जो देखते हो, उसे कहो।
(५) अपना अन्तिम नाम बताओ।

चार वर्ष की आयु के लिए

(१) तुम लड़की हो या लड़का ?
(२) तीन संख्याओं को दोहराना।
(३) कुंजी, चाकू और सिक्का दिखाकर—ये क्या हैं ?

पाँच वर्ष की आयु के लिए

(१) विभिन्न भार के दो बक्सों की तुलना करवाना।
(२) वर्ग को दिखाकर उसे खिचवाना।
(३) धैर्य के खेल खेलने को कहना।
(४) चार सिक्को को गिनवाना।
(५) ११ शब्द-खण्डों वाले वाक्य को दोहराना।

आठ वर्ष की आयु के लिए

(१) २० से ० तक पीछे की ओर गिनने को कहना।
(२) दिन और तारीखों के नाम पूछना।
(३) ५ अङ्कों की बनी संख्या को दोहराना।
(४) ६ सिक्कों को गिनवाना।

(५) ४ रंगों का नाम बताना।

(६) किसी गद्य-खण्ड का पढवाना और दो बातो को याद रखने को कहना।

ग्यारह वर्ष की आयु के लिए

(१) निरर्थक कथनों की आलोचना करवाना।

(२) किसी वाक्य मे ३ शब्द प्रयुक्त करवाना।

(३) ३ मिनट मे ६० शब्द कहलवाना।

(४) अमूर्त्त वस्तुओ की परिभाषा करवाना।

(५) किसी वाक्य मे बेतरतीब रखे शब्दो को तरतीब मे रखवाना।

पन्द्रह वर्ष की आयु के लिए

(१) ७ अङ्को को दोहराना।

(२) एक मिनट मे दिये हुए शब्द से ३ प्रकार की लय निकलवाना।

(३) २६ शब्दो से बने वाक्य को दोहराना।

इन प्रश्नो के अतिरिक्त ६, ७, ८, १०, १२, १३, १४ वर्ष की आयु के लिए भी प्रश्न निर्धारित किये गये।

बिने-परीक्षा और अमरीकी संशोधन—बिने महोदय की बुद्धि-परीक्षा के प्रश्न फ्रान्स वालो के लिए बनाये गये थे। जब अमरीका ने यह मनोवैज्ञानिक प्रगति देखी तो उसका भी ध्यान इधर आकर्षित हुआ। इन परीक्षाओ को अमरीकी बालको पर प्रयुक्त करने के लिए वहाँ विद्वानो ने कुछ संशोधन की आवश्यकता समझी। सर्व-प्रथम गोडॉर्ड महोदय ने सन् १९१० ई० मे बिने द्वारा स्वीकृत १९०८ ई० की बुद्धि-परीक्षाओ को प्रकाशित किया। उसमे प्रथम संशोधन करने वाले हैरिसन महोदय थे। सन् १९१६ ई० मे स्टैण्डफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टरमैन महोदय ने बिने की बुद्धि-परीक्षा मे कुछ दोष निकाले तथा उसका संशोधित रूप प्रकाशित किया, जिसकी अमरीका मे बहुत लोकप्रियता बढी तथा मान्यता भी मिली। सन् १९३७ ई० मे माउड एम० मैरिल[1] ने उसमे भी उपयुक्त संशोधन किये।

स्टैण्डफोर्ड-बिने परीक्षा—बिने महोदय की बुद्धि-परीक्षा-विधि मे जो टरमैन ने संशोधन किये वह संशोधित रूप 'स्टैण्डफोर्ड-बिने परीक्षा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह नामकरण केवल उस विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि के लिए किया गया, जहाँ टरमैन महोदय ने कार्य किया था। इस संशोधन की बहुत-सी विशेषताएँ हैं और परीक्षा-विधि बिने से कुछ भिन्न है।

बिने ने प्रत्येक उम्र के बालको के लिए ५-५ प्रश्न रखे थे, किन्तु टरमैन ने संशोधन के उपरान्त प्रत्येक के लिए ६ प्रश्न कर दिए। यह प्रश्नावली ३ वर्ष की उम्र से १० वर्ष की उम्र तक के बालको के लिए थी। १२ वर्ष की उम्र के बालकों के

---

1. Moud, M. Merril.

लिए उसने ८ प्रश्न निर्धारित किये तथा १४, १६, और १८ वर्ष के व्यक्तियों के लिए ६ प्रश्न निर्धारित किये। उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :

टरमैन द्वारा संशोधित
"सैण्डफोर्ड-बिने बुद्धि-परीक्षा प्रश्न"[1]

तीन वर्ष की आयु के लिए

(१) कुछ वस्तुओं को पहचानो (जैसे—घड़ी, कलम, पेन्सिल, चाकू), उनके नाम बताओ।
(२) तुम्हारी नाक कहाँ है ? तुम्हारे कान कहाँ हैं ?
(३) तुम चित्र में क्या देखते हो ?
(४) तुम लड़की हो या लड़का ?—आदि

छः वर्ष की आयु के लिए

(१) अपना बायाँ हाथ दिखाओ। अपनी दाहिनी आँख दिखाओ।
(२) इस चित्र को देखो। इसमें क्या अधूरा है ?
(३) १३ सिक्कों को मेज पर रखकर बालक को जोर-जोर से गिनने को कहो।
(४) चार-पाँच प्रकार के सिक्के रखकर पूछो—ये क्या हैं ?

एक ३ वर्ष का बालक साधारणतः चित्र में बनी हुई वस्तु का नाम बता सकेगा, एक ७ वर्ष का बालक उस चित्र का वर्णन भी कर सकेगा, और एक १२ वर्षीय बालक उस चित्र की व्याख्या करने में समर्थ होगा।

१९३७ ई० में "सैण्डफोर्ड रिवीजन" में टरमैन और मैरिल ने कुछ संशोधन किये। उसने कुछ अङ्कगणित के प्रश्न हल करने के लिए रखे—विभिन्न परिस्थितियों में आप क्या और कैसे करेंगे ? जैसे, जब आप प्यासे हैं अथवा स्कूल को देर से पहुँचने के कारण भयभीत हैं। इस कथन में निहित व्यर्थता पर प्रकाश डालिए—"चूहा जिसके पास केवल एक बिल है, आसानी से पकड़ा जाता है।"

बुद्धि की अन्य वैयक्तिक परीक्षाएँ[2]

एक समय में एक व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा करना 'वैयक्तिक परीक्षा' कहलाता है जो सामूहिक बुद्धि-परीक्षा से सर्वथा भिन्न है। बिने-साइमन माप-परीक्षा के अतिरिक्त ऐसी बीसियों परीक्षाएँ हैं जो व्यक्ति की बुद्धि मापने के लिए काम आती हैं किन्तु उन सब में वैयक्तिक रीति को ही अपनाया जाता है। उनमें एक 'मैरिल-पामर परीक्षा'[3] अधिक प्रसिद्ध है। इसके अन्दर कुल ३८ प्रश्न होते हैं और यह

1. Sandford Revision of Binet Scale. 2. Other Individual Test of Intelligence. 3. Merril-Palmer Scale.

१८ मास से ५½ वर्ष तक के बालकों के लिए होती है। दूसरी परीक्षा "दि मिन्नेसोटा प्री-स्कूल स्केल"[1] है। यह १८ मास से लगभग ५ वर्ष के बालकों के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसका विकास दो समान रूपों में हुआ।

कुछ दूसरी और बुद्धि-परीक्षाएँ भी हैं, जैसे—"एल्स्टीन पिक्चर वॉकैबुलरी टैस्ट।"[2] इसे "वान एल्स्टीन चित्र-शब्द-भण्डार परीक्षा" भी कहा जाता है। इसका प्रयोग भी पाठशालावस्था से पहले किया जाता है। गुडेन औध का "ड्राइंग-ए-मैन टैस्ट"[3] (व्यक्ति का चित्र बनवाकर परीक्षा करना), बेकर और लेलैण्ड का "दि डेट्रोइट टैस्ट्स ऑव लर्निङ्ग एप्टिट्यूड"[4] और "वेशलर-बैलेविन इन्टैलिजेन्स टैस्ट"[5] आदि परीक्षाएँ १० वर्ष और उससे बड़े बालकों की बुद्धि मापने के प्रयोग में आती हैं। इनसे प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि-योग्यता का भी पता लगाया जा सकता है।

बुद्धि की सामूहिक परीक्षा[6]

बिने, टरमैन प्रभृत विद्वानों की बुद्धि मापने की विधियाँ वैयक्तिक थीं। उनमें एक समय में केवल एक व्यक्ति की परीक्षा हो सकती थी। अतः एक ऐसी विधि की आवश्यकता हुई जिससे थोड़े समय में बालकों की बुद्धि-परीक्षा हो जाय। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। प्रथम विश्व-महायुद्ध (सन् १९१४-१९१८ ई०) में अमरीका में फौजी सैनिकों और अधिकारियों की भर्ती के लिए वहाँ की सरकार के सामने कठिन समस्या उत्पन्न हुई। वह सैनिकों की बुद्धि-परीक्षा के द्वारा उनकी मानसिक योग्यता का आकलन कर ही उन्हें भर्ती करना चाहती थी। किन्तु वैयक्तिक विधि से इसमें बहुत समय लगता और जितनी शीघ्र उन्हें फौजियों की आवश्यकता थी, उतने लाघव से परीक्षा करना बिने-प्रणाली से सम्भव न था। अतः अमरीका के सैनिक अधिकारियों ने सुझाव दिया कि व्यक्तियों में सामूहिक बुद्धि-परीक्षा होनी चाहिए। इस कार्य-भार के लिए मनोवैज्ञानिकों की एक समिति बनाई गई। उसने बिने और टरमैन की विधि को स्वीकार तो किया, किन्तु उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर उसे 'सामूहिक परीक्षा' के योग्य बनाया। इस प्रकार सामूहिक बुद्धि-परीक्षा के आधार पर अमरीका में लाखों सैनिकों और हजारों अफसरों की भर्ती हुई तथा बुद्धि के अनुसार उनका वर्गीकरण भी किया गया कि अमुक व्यक्ति अमुक कार्य के लिए उपयुक्त होगा और अमुक, अमुक कार्य के लिए।

सामूहिक परीक्षा दो प्रकार से की जाती है : (१) मौखिक, (२) क्रियात्मक या नॉन-वर्बल। किन्तु बहुत-से लोग दोनों ही विधियों को साथ-साथ अपनाते हैं।

1. Minnesota Pre-school Scale. 2. The Van Alstyne Picture-Vocabulary Test. 3. *Drawing-a-Man Test.* 4. The Detroit Test of Learning Aptitude. 5. The Wechelar-Bellevine Intelligence Test. 6. Group Tests of Intelligence.

मौलिक विधि में कुछ प्रश्न या अभ्यास हल करने के लिए दिये जाते हैं, किन्तु जो पढे-लिखे नहीं होते उनके लिए क्रियात्मक प्रश्न बनाए जाते हैं। उन सब मे प्रसिद्ध दो परीक्षाएँ हुई : प्रथम "आर्मी अलफा टैस्ट" [1] और दूसरी "आर्मी जनरल क्लासिफिकेशन टैस्ट"[2]। इनमे प्रथम परीक्षा का विकास प्रथम महायुद्ध में हुआ और दूसरी का द्वितीय महायुद्ध मे।

नॉन-वर्बल अथवा 'क्रियात्मक परीक्षा' के अन्तर्गत चित्र, रेखाचित्र, रेखागणित, कुछ चित्र-शब्दो के स्थान पर अभ्यास समस्या के रूप मे हल करने के लिए दिये जाते हैं। क्रियात्मक परीक्षा का विकास बहुत छोटे बालको की बुद्धि मापने के लिए हुआ। इससे उन लोगों की बुद्धि भी मापी जाती है जो निरक्षर हैं और शब्दो को लिख-पढ नहीं सकते। शाब्दिक एवं क्रियात्मक—दोनो ही प्रकार की सामूहिक विधियो मे विचित्र प्रकार की सरल से कठिनतम तक की समस्याएँ और क्रिया करने के लिए अभ्यास दिये होते हैं। ये एक छोटी पुस्तक के रूप मे छपे रहते हैं।

क्रिया-परीक्षा[3]

बुद्धि मापने की इस विधि का विकास भी उन्हीं लोगों के लिए हुआ, जिन्हें भाषा की कुछ कठिनाई थी अथवा जो निरक्षर थे। इन विधियो मे प्रत्यक्ष एवं मूर्त वस्तुओ का प्रयोग किया जाता है। उसमें विषयी से कुछ समस्यापूर्ण व्यावहारिक कार्यों को करने के लिए कहा जाता है, जैसे—विभिन्न बिखरी आकृतियों को एक आकृति-फलक[4] मे भरना इत्यादि, और उसी के अनुसार उसकी बुद्धि को मापा जाता है। आकृति-फलक या 'फॉर्मबोर्ड' एक लकडी का तख्ता होता है, जिसमे ६ छेद बने होते हैं। इन छेदो मे १४ टुकडे लगाने होते हैं—किसी मे चौकोर, किसी मे तिकोना। इसी प्रकार एक 'सेनविन फॉर्म-बोर्ड' भी होता है। उसमे १० छेद होते हैं और उन छेदो मे समकोण चतुर्भुज, समानान्तर चतुर्भुज, अर्द्धवृत्त तथा वृत्त आदि बैठाये जा सकते हैं।

इसी प्रकार "भूलभुलैया विधि"[5] मे भी बुद्धि मापी जाती है। इसका एक रेखाचित्र बालक को दिया जाता है। उससे कहा जाता है कि यदि उसे एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिना रुकावट के पहुँचना है तो वह कौनसा रास्ता अपनाएगा ?

इस प्रकार की सर्वप्रथम परीक्षा "दि पिन्टर-पीटर्सन स्केल ऑव पर्फोरमैन्स टैस्ट्स" के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमे १५ आकृति-फलको का प्रयोग किया जाता था। उसका प्रयोग ४ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक के बालकों के लिए था। इसकी एक 'संक्षिप्त परीक्षा' १९३७ ई० मे पिन्टर और हिर्लुंग के द्वारा प्रकाशित हुई। दूसरी प्रकार की क्रिया-परीक्षाओं मे—"आर्थर प्वाइन्ट-स्केल ऑव पर्फोरमैन्स टेस्ट्स",

---

1. Army Alpha Test. 2. Army General Classification Test. 3. Performance Test 4. Form-board, 5. Maze Tests.

"दि पारजेल-कोहस परफोरमेन्स टेस्ट", तथा "पीटर इन्टरनेशनल परफोरमेन्स स्केल" आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

ये क्रिया-मात्र अथवा क्रियात्मक परीक्षाएँ 'बिने-परीक्षा' के सहायक रूप में प्रयुक्त की जाती हैं—जहाँ विषयी पढ़ा-लिखा न हो, अथवा उसे किसी भी प्रकार की भाषा सम्बन्धी कठिनाई हो, बहरापन या अन्य किसी प्रकार की बाधा आ पड़ती हो, जहाँ 'बिने-परीक्षा' का क्रियान्वित करना असम्भव दिखाई पड़ता हो वहीं इसका प्रयोग करते हैं। गूँगे, बहरे, अन्धों के लिए बुद्धि-परीक्षा की आशातीत सफलता ने व्यक्ति की अन्य विशेषताओं और गुणों को भी मापने के लिए अन्य विधियों के विकास को भी बहुत प्रोत्साहन दिया। व्यावसायिक रुझान परीक्षा[1], ज्ञान परीक्षा[2] आदि का भी विकास बालक की विभिन्न योग्यताओं को मापने के लिए हुआ।

भारत में बुद्धि-परीक्षा[3]—भारत में बुद्धि-परीक्षा का महत्व लोगों ने बड़ी ही देर से समझा। शिक्षा की दृष्टि से देश के पिछड़ा होने के कारण इस विधि का विकास भारत में अभी थोड़े दिन पहले ही हुआ। यद्यपि बहुत पहले से कुछ व्यक्तियों द्वारा 'बिने-परीक्षा' को भारतीय परिस्थितियों में अपनाने का कठिन परिश्रम किया गया, किन्तु यह अभी थोड़े दिन पूर्व आकर ही उचित रीति से परिनिष्ठित होकर गृहीत हो सका।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त भारत के विभिन्न राज्यों के 'मनोविज्ञान विभाग'[4] और विश्वविद्यालय के 'शिक्षा-विभाग' भारतीय बालकों की विश्वसनीय और समुचित बुद्धि-परीक्षा के लिए महान् एवं कठिन प्रयत्न कर रहे हैं। डा० सी०एच० राइस ने १९२१ ई० में "हिन्दुस्तानी बिने कार्यात्मक परख"[5] प्रकाशित किया। इस परीक्षा के लिए पंजाब के ५ से १६ वर्ष तक के १०७० बालकों के ऊपर परीक्षा करके सामान्य स्तर[6] तैयार किये गए हैं। १९७२ ई० में डा० जे० मोरे ने भारतीय बालकों के लिए कुछ "शाब्दिक समूह परख"[7] तथा "प्रारम्भिक वर्गीकरण परख"[8] प्रकाशित की। इन परखों के अतिरिक्त दूसरी परखें भी प्रकाशित हुई हैं। इनमें डा० भाटिया की कार्यात्मक परख बहुत महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। इस परख में भाषा की योग्यता की आवश्यकता नहीं है। एक और बुद्धि परीक्षा के जिसे 'साधारण बुद्धि-परीक्षा'[9] कहते हैं, कुछ प्रश्नों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :

(१) निम्नलिखित प्रश्नों में प्रत्येक कोष्ठक के अन्दर पाँच शब्द हैं। इनमें से केवल एक शब्द बाहर लिखे हुए तीनों शब्दों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। कोष्टक के अन्दर ऐसे शब्दों को मालूम कीजिए और उनके नीचे रेखा खींचिए, जैसे—सेब, सन्तरा, अंगूर (फूल, फल, तरकारी, मेवा, मिठाई)।

1. Vocational Aptitude Test. 2. Achievment Test. 3. Intelligence Testing in India 4. Psychological Bureau. 5. Hindustani Binet Performance Test 6. Norms. 7. Verbal Group Tests. 8. Preliminary Classification Tests. 9. General Intelligence Test.

अब इसी प्रकार निम्नलिखित प्रश्नों को कीजिए :

१. जाड़ा, गर्मी, बरसात (हवा, पानी, जलवायु, ऋतु, वसंत)।

२. बम्बई, कलकत्ता, मद्रास (भारतवर्ष, प्रदेश, बन्दरगाह, प्रान्त)।

(२) कृष्ण से राम लम्बा है और राम से मोहन छोटा है। इसलिए कृष्ण मोहन से छोटा हुआ। (हाँ, अनिश्चय, नहीं)

(३) यदि पन्द्रह मिनट पहले सवा बजे थे तो एक / डेढ़ / दो घण्टे बाद साढ़े सात / सौ / आठ बजेंगे।

इस अवधि मे कुल मिलाकर विभिन्न प्रकार के १०० प्रश्न होते हैं। उनमें से कुछ प्रश्न बालकों के कथन के अनौचित्य को समझने के लिए हैं। कुछ अन्य बालकों से तुलना के लिए, कुछ प्रश्न सत्य और झूठ की जानकारी के लिए होते हैं।

वी० वी० कामट ने एक बिने-स्केल कन्नड़ एवं मराठी मे १९१५ मे प्रकाशित किया।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में जो बुद्धि-परीक्षाएँ उपलब्ध हैं, उनका विवरण इस प्रकार है

१. सी० आई० ई० शाब्दिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षा—११ से १४ वर्ष के बालकों के लिए (४ परीक्षाएँ), निर्माणकर्त्ता—सी० आई० ई० दिल्ली।
२. शाब्दिक बौद्धिक परीक्षा—१० वर्ष के बालकों से प्रौढ़ों तक के लिए—(८ परीक्षाएँ), निर्माणकर्त्ता—यू० पी० ब्यूरो ऑफ साइकोलॉजी।
३. शाब्दिक बौद्धिक परीक्षा—VIII, X एवं XII ग्रेड के लिए, निर्माणकर्त्ता—यू० पी० ब्यूरो ऑफ साइकोलॉजी।
४. शाब्दिक बौद्धिक परीक्षा—VI से XI ग्रेड तक (१० से १६ वर्ष); निर्माणकर्त्ता—एम० एम० मोहसिन।
५. साधारण मानसिक योग्यता—(१२ से १६ वर्ष), निर्माणकर्त्ता—एम० जलोटा।
६. पी० एम० एम० सामान्य बौद्धिक परीक्षा—१३ वर्ष से ऊपर एवं प्रौढ़ों के लिए, निर्माणकर्त्ता—के० जी० रामाराव एवं एस० के० डानी।
७. सामूहिक बुद्धि परीक्षण—(१२ से १८ वर्ष तक), निर्माणकर्त्ता—पी० मेहता।
८. टैस्ट ऑफ जनरल मेण्टल एबिलिटी—(१० से १६ वर्ष तक), निर्माणकर्त्ता—शिक्षा-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय।

इनके अतिरिक्त अब अनेक अशाब्दिक परीक्षण एवं व्यक्तिगत परीक्षण भारतीय विद्यालयों के लिए उपलब्ध हैं।

हमने अभी तक बुद्धि-परीक्षण के विकास की चर्चा की कि कैसे उनका उद्भव और विकास विभिन्न देशों मे हुआ। किन्तु अभी तक यह नहीं बताया कि बुद्धि-परीक्षा

का अभिप्राय क्या है अथवा बुद्धि क्या है और उसका स्वरूप क्या है। इसके पहले कि हम बुद्धि की परिभाषा दें, हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि मानसिक आयु किसे कहते हैं और बुद्धि-लब्धि क्या है।

मानसिक आयु और बुद्धि-लब्धि[1]

मानसिक आयु—हमने अभी देखा है कि बिने महोदय ने बुद्धि-परीक्षा के सम्बन्ध में मानसिक आयु की भी चर्चा की है। मानसिक आयु सम्बन्धी धारणा के विकास ने बुद्धि-परीक्षा के वास्तविक महत्त्व को बढ़ाया और उसकी प्रयोजनता को अधिक अर्थपूर्ण बना दिया। "मानसिक आयु किसी व्यक्ति के द्वारा प्राप्त विकास की सीमा की वह अभिव्यक्ति है जो उसके कार्यों द्वारा जानी जाती है तथा किसी आयु-विशेष में उसकी अपेक्षा होती है।"[2]

इससे तात्पर्य यह है कि जिस बालक की मानसिक आयु ८ वर्ष बताई जाती है, वह परीक्षा के अनुसार अपनी ८ वर्ष की उम्र के ही सामान्य बालकों के समान कार्य करने में सफल होता है।

बुद्धि-परीक्षा के लिए परीक्षक बहुत-सी उन वस्तुओं का संकलन करेगा जिन्हें वह अपनी परीक्षा में सम्मिलित करना चाहता है, तथा उनको एक विशिष्ट क्रम में लगायेगा। फिर विभिन्न उम्र के प्रतिनिधि बालकों को समस्याएँ हल करने के लिए देगा। यह सब इस प्रकार से आयोजित किया जायेगा कि बालकों की विभिन्न उम्र की सामान्य उपलब्धियों का ठीक-ठीक पता लग जाय। परीक्षा में विभिन्न उम्र के प्रतिनिधि बालकों द्वारा कार्यों में जिस सीमा तक सफलता पाई गई तथा एक ही उम्र के अधिक बालकों ने जिस कार्य को सफलतापूर्वक किया, वही उस विशिष्ट उम्र की मानसिक आयु निश्चित कर ली गई। जैसे, ५ वर्ष की उम्र के सामान्य बालकों की औसत उपलब्धि ही उनकी ५ वर्ष की मानसिक आयु का प्रतीक होगी। यदि कोई ५ वर्ष का बालक ऐसे कार्यों को कर लेता है जो ६ वर्ष का सामान्य बालक कर सकेगा तो उसकी मानसिक आयु ६ वर्ष ही कहलायेगी। किन्तु यदि ५ वर्ष का बालक ऐसे कार्यों को ही कर सकता है जो उससे छोटी उम्र का, ४ वर्ष का भी, सामान्य बालक कर लेता है तो उस बालक की मानसिक आयु ४ वर्ष ही मानी जायगी, जबकि उसकी वास्तविक आयु[3] ५ वर्ष की मानी जायगी। इस प्रकार प्रथम बालक अपनी उम्र के सामान्य बालकों से अधिक श्रेष्ठ होगा, और दूसरा बालक अपनी उम्र के सामान्य बालकों की अपेक्षा हीन होगा।

वास्तव में मानसिक आयु किसी विशिष्ट उम्र में उसकी मानसिक परिपक्वता

---

1. Mental Age (M. A.) and Intelligence Quotient (I. Q.).
2. "The mental age is an expression of the extent of deve-...nt achieved by the individual stated in terms of the perfor-... that can be expected at any given age."
3. Chronological Age (C. A.)

को बताती है कि बालक उस वास्तविक आयु पर मानसिक दृष्टि से कितना प्रौढ़ हुआ है। यही प्रौढ़ता व परिपक्वता की मात्रा मानसिक आयु है। बालक की आयु-वृद्धि के साथ-साथ उसकी मानसिक परिपक्वता भी बढ़ती जाती है। बिने-परीक्षा व्यक्ति की "सामान्य मानसिक योग्यता" को ही मापती है जिसका विकास थोड़े-बहुत अन्तर से प्रौढ़ता तक एकरूपेण ही होता है। व्यक्ति का मानसिक विकास जिस उम्र में पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त होता है वह सभी के द्वारा १४ से २२ वर्ष माना जाता है। यह विविध परीक्षाओं में विभिन्न हो सकता है।

बुद्धि-लब्धि[1] (आई० क्यू०)—किसी भी व्यक्ति को जो प्रतिभा प्राप्त होती है, उसकी मात्रा को बताने वाली बुद्धि-लब्धि कहलाती है; अथवा व्यक्ति के पास बुद्धि की कितनी मात्रा है, उसकी माप अथवा उसके द्वारा उपलब्ध बुद्धि ही बुद्धि-लब्धि है। बुद्धि-लब्धि निकालने के लिए मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग दिया जाता है, जैसे—

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \left[I\ Q = \frac{M.A.}{C.A.} \right]$$

उदाहरण के लिए, यदि बालक की वास्तविक आयु १० वर्ष है, और बिने-परीक्षा के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि वह १२ वर्ष के सामान्य बालकों के समान कार्य कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु १२ वर्ष मानी जायगी तथा उसकी बुद्धि-लब्धि इस प्रकार होगी—

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} = \frac{१२}{१०} = १.२$$

प्रायः दशमलव के भागों को पूर्णाङ्क बनाने के लिए और इससे आने वाली असुविधा को दूर करने के लिए १०० से गुणा कर दिया जाता है और संख्या को पूर्णाङ्क बना लिया जाता है। यह केवल सुविधा की दृष्टि से ही किया जाता है। जैसे, इसी उदाहरण में—

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = १.२ \times १०० = १२०$$

बुद्धि-लब्धि किसी भी बालक की मानसिक अभिवृद्धि की मात्रा को प्रकट करती है। उपर्युक्त उदाहरण में बालक के मानसिक विकास की गति सामान्य बालक से अधिक है। यदि उसी बालक की बुद्धि-लब्धि ५०० रही होती तो उसका मानसिक विकास सामान्य माना जाता। यदि वह ७५ रही होती तो उसकी अभिवृद्धि सामान्य से कम हुई हुई होती। चूँकि बुद्धि-लब्धि मानसिक विकास की मात्रा को बताती है, इसलिए इसे हम प्रतिभा का सूचीपत्र भी कह सकते हैं।

आगे (पृष्ठ १६० पर) एक सूची दी हुई है जिसमें 'बुद्धि-लब्धि' और 'प्रतिभा' की मात्रा का सम्बन्ध दिखाया गया है। इस सूची का निर्माण टरमैन, मैरिल, रोबिन्सन

1. Intelligence Quotient.

के अध्ययन के आधार पर किया गया है, तथा डा० मैरिल[1] द्वारा यह स्वीकृत और मान्य है :

(बु० ल०)	(प्रतिभा)
१४०—१६९	अत्युत्कृष्ट[2]
१२०—१३९	उत्कृष्ट[3]
११०—११९	सामान्य से ऊपर[4]
९०—१०९	सामान्य[5]
८०— ८९	सामान्य से नीचे[6]
७०— ७९	हीन बुद्धि की सीमा-रेखा[7]
६०— ६९	मूर्ख[8]
५०— ५९	मूर्ख[9]
२५— ४९	मूढ़[10]
०— २४	जड़[11]

बुद्धि का स्वरूप[12]

बुद्धि की परिभाषा विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से दी है। उनमें आपस में कोई समानुरूपता नहीं है। वस्तुतः बुद्धि की परिभाषाएँ उतनी हैं जितने इस विषय के लेखक। किन्तु उन परिभाषाओं में अन्तर प्रतीत होता है। यह सम्भव है कि परिभाषा का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो, किन्तु उनकी आत्मा तो एक ही है।

नीचे हम कुछ महान् विद्वानों की परिभाषाओं को उद्धृत कर रहे हैं, जो इस विषय के पारंगत माने जाते हैं, यथा—

१. बिने और साइमन की परिभाषा— "निर्णय, सद्भावना, उपकरण, समझने की योग्यता, युक्तियुक्त तर्क और वातावरण में अपने को व्यवस्थित करने की शक्ति ही 'बुद्धि' है।"[13]

२. बर्ट की परिभाषा— "नवीन मनो-शारीरिक संयोगों के आयोजन द्वारा अपेक्षाकृत नवीन परिस्थितियों में पुनर्व्यवस्थापन की शक्ति ही 'बुद्धि' है।"[14]

---

1. Merril, Maud A 2. Very Superior. 3. Superior. 4. High average. 5. Normal or average. 6. Low average. 7. Borderline-Defective. 8. Moron. 9. Moron. 10 Imbecile. 11. Idiot. 12. Nature of Intelligence.

13. Binet and Simon, 1905, in Rite (trans), 1916, pp. 42-43 : "Judgment, good sense, initiative, the ability to comprehend and to reason well and to adapt one's self to circumstances"

14. Burt. 1909, 168 "The power of readjustment to relatively novel situations by organizing new psycho-physical combinations."

३. स्टर्न की परिभाषा— "नयी परिस्थितियों में अपनी विचारधारा को सुव्यवस्थित कर लेने की एक सामान्य शक्ति 'बुद्धि' है।"[1]

४. टरमैन की परिभाषा— "अमूर्त वस्तुओं के विषय में सोचने की योग्यता ही 'बुद्धि' है।"[2]

५. पिन्टनर की परिभाषा—"जीवन में आगत नूतन परिस्थितियों में अपने को सुव्यवस्थित करने की व्यक्ति की क्षमता ही 'बुद्धि' है।"[3]

६. बॉकघम की परिभाषा—"सीखने की शक्ति ही 'बुद्धि' है।"[4]

७. थॉर्नडाइक की परिभाषा—वास्तविक परिस्थिति के अनुसार अपेक्षित प्रतिक्रिया की योग्यता ही 'बुद्धि' है।"[5]

८. स्टोडार्ड की परिभाषा—"उन कार्यों को करने की शक्ति जिनमें कठिनाई, जटिलता, उद्देश्य-प्राप्ति की क्षमता, सामाजिक मूल्य एवं मौलिकता की अपेक्षा है तथा विशिष्ट परिस्थितियों में ऐसे कार्य करने की क्षमता जिनमें शक्ति के केन्द्रीकरण की एवं संवेगात्मक शक्तियों पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है, 'बुद्धि' है।"[6]

९. गैरेट की परिभाषा— ऐसी समस्याओं को हल करने की योग्यता जिनमें ज्ञान और प्रतीकों के समझने एवं प्रयोग की आवश्यकता हो, जैसे—शब्द, अंक, रेखाचित्र, समीकरण और सूत्र, ही 'बुद्धि' है।"[7]

---

1 Stern, 1914, p. 3 . "A general capacity of an individual consciously to adjust his thinking to new requirements."

2 Terman, 1921, p. 126 "The ability to carry out abstract thinking"

3. Pintner, 1921, p 139 "The ability of the individual to adapt himself adequately to relatively new situations in life"

4. Bukingham, 1921, p. 273 · "The ability to learn"

5. Thorndike, 1921, p 124 . "The power of good response from the point of view of truth or fact."

6. Stodard's Definition, 1943, p 4 . "The ability to undertake activities that are characterized by difficulty, complexity, adaptiveness to a good, social value and the emergence of originals, and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and a [illegible]"

[illegible] in the [illegible] use of symbols, i. e, words, numbers, diagrams equations, formulas."

१०. बुद्धि : *एक सामान्य योग्यता*—गेट्स ने अपनी पुस्तक "एजूकेशनल साइकोलॉजी" में बुद्धि को 'व्यावहारिक ज्ञान' मानते हुए इस प्रकार परिभाषा दी है—"सीखने के लिए स्थूल, सूक्ष्म एवं विशेष रूप से अमूर्त वस्तुओं को सावधान एवं सम्यक् रूप से समझने के लिए, मानसिक नियन्त्रण एवं *समस्याओं के हल ढूँढने में आनम्यता तथा प्रतिभा का* प्रदर्शन कर सकने की योग्यता, अथवा योग्यताओं के सङ्गठन का नाम ही 'बुद्धि' है।"[1]

उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ किसी न किसी प्रकार से 'बुद्धि' की व्याख्या करती हैं। उनकी सबकी अपनी उपयोगिता है, क्योंकि वे विभिन्न दृष्टिकोणों में बौद्धिक माप के ऊपर प्रकाश डालती हैं। ये परिभाषाएँ किसी भी प्रकार से बुद्धि की व्याख्या करती हों, परन्तु सभी एक विशेष दिशा में संकेत करती हैं कि बुद्धि की माप बुद्धि-परीक्षा द्वारा होती है।

बुद्धि-परीक्षा क्या मापती है ?—अभी हमने बताया कि बुद्धि-परीक्षा में बुद्धि की माप की जाती है। बुद्धि की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि बुद्धि-परीक्षा सामान्यतः उन योग्यताओं की माप है, जो चार भागों में विभाजित की जा सकती हैं, जैसे—

१. सीखने की योग्यता।
२. *नयी समस्याओं अथवा परिस्थितियों में अपने ज्ञान का समुचित प्रयोग* करने की योग्यता।
३. विविध सम्बन्धों को समझने की योग्यता, सारभूत वस्तुओं को पहचानने की योग्यता।
४. सम्यक् तर्क की योग्यता।

बुद्धि के प्रकार[2]

थॉर्नडाइक के अनुसार बुद्धि कई प्रकार की शक्तियों का एक समूह है, इसलिए उन्होंने स्थूल दृष्टि से बुद्धि के तीन प्रकार बताए; जिनके नाम हैं—(१) अमूर्त बुद्धि, (२) *सामाजिक बुद्धि, और* (३) *यान्त्रिक बुद्धि। हम यहाँ पर क्रमशः* उनकी चर्चा करेंगे। यथा—

१. अमूर्त बुद्धि[3]—पुस्तकीय ज्ञान के प्रति अपने को व्यवस्थित करने की

---

1. Gates & Others : "*Educational Psychology*", p. 225 : "A composite or organization of abilities, to learn, to grasp broad and subtle facts, especially abstract facts with alertness and accuracy to exercise mental control and to display flexibility and ingenuity in seeking the solution of problems"

2. *Kinds of Intelligence.* 3. *Abstract Intelligence.*

योग्यता 'अमूर्त बुद्धि' कहलाती है। विद्यालय के वातावरण में बुद्धि-परीक्षा सबसे अधिक सफल सिद्ध होती है। इस परीक्षा के द्वारा यह सफलतापूर्वक बताया जा सकता है कि बालक में कौन-कौनसी विशिष्ट योग्यताएँ हैं तथा रुझान-परीक्षा के द्वारा बालक की रुचि और रुझान के बारे में हमें लाभदायक जानकारी प्राप्त होती है। अमूर्त बुद्धि स्वयं अपने को ज्ञानोपार्जन के प्रति रुझान, पढ़ने-लिखने और शब्दों एवं प्रतीकों के रूप में आने वाली समस्याओं को हल करने के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करती है। यह वह शक्ति है जो शब्दों और प्रतीकों के प्रति प्रभावशाली व्यवहार के रूप में व्यक्त होती है। जिस व्यक्ति में इस प्रकार की बुद्धि होगी वह पाठशाला के ज्ञानोपार्जन के वातावरण में सबसे अधिक सफल होगा।

कोई भी व्यक्ति अमूर्त बुद्धि की कितनी मात्रा से युक्त है, इसकी जानकारी निम्नलिखित विधि से की जा सकती है :

(क) बौद्धिक कार्यों में आने वाली कठिनाइयों के किस स्तर तक वह कठिन कार्य को कर सकता है।

(ख) समान कठिनाई के विविध बौद्धिक कार्यों की संख्या, जिन्हें वह कर सकता है।

(ग) किस वेग अथवा गति से वह इन कार्यों को पूरा कर सकता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि अमूर्त बुद्धि त्रिमुखी है। स्तर, क्षेत्र और वेग अथवा गति ही उसकी तीन विभिन्न विमा[1] हैं।

यदि इस अमूर्त बुद्धि में किसी प्रकार की कमी हो तो इससे तात्पर्य नहीं कि अन्य दो प्रकार की बुद्धि में भी किसी प्रकार की कमी होगी। अमूर्त बुद्धि के कम होने पर भी अन्य प्रकार की बुद्धि ठीक हो सकती है। बुद्धि की मात्रा विभिन्न व्यक्तियों में उनकी अनुभव करने, समझने और याद करने की शक्ति के अनुसार कम या अधिक होती है। बुद्धि की यह विभिन्नता तर्क में प्रयुक्त प्रतीकों के सद्प्रयोग के ऊपर भी बहुत आधारित होती है।

२. सामाजिक बुद्धि[2]—अपने को समाज के अनुकूल व्यवस्थित करने की योग्यता ही 'सामाजिक बुद्धि' है। यह दूसरे लोगों के साथ प्रभावपूर्ण व्यवहार करने की क्षमता है। दूसरों के साथ सदाचरण करने, उनसे मिल-जुलकर रहने, उनके साथ विकास के कार्यों में भाग लेने और सामाजिक कार्यों में रुचि लेने की योग्यता ही 'सामाजिक बुद्धि' है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए सामाजिक बुद्धि नितान्त आवश्यक होती है। बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी देखे जाते हैं जिनमें अमूर्त बुद्धि तो प्रतिभा की सीमा तक होती है, किन्तु सामाजिक बुद्धि के अभाव के कारण वे जीवन की विविध परिस्थितियों में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। फिर भी प्रायः अमूर्त बुद्धि और सामाजिक बुद्धि का विकास साथ ही साथ होता है।

1. Dimensions 2. Social Intelligence.

बुद्धि है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि विविध स्वतन्त्र प्रभावों को एक पूर्ण इकाई के रूप मे अभिव्यक्त करने की योग्यता ही 'बुद्धि' है अथवा विभिन्न भागों को पूर्ण बनाने की योग्यता ही 'बुद्धि' है।

एक-खण्ड सिद्धान्त के समर्थक बुद्धि को एक इकाई मानते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण बुद्धि एक समय मे सक्रिय होकर एक ही प्रकार का कार्य सम्पन्न करती है। किन्तु इस सिद्धान्त की आलोचना इस तथ्य के आधार पर की गई कि योग्यता की विभिन्न परीक्षाओं मे कोई भी पूर्ण आपसी सम्बन्ध नहीं होता है। अतः कोई एक ऐसा योग्यता खण्ड नहीं हो सकता जिसे हम बुद्धि कह सकें, क्योंकि अलग-अलग प्रकार की मानसिक योग्यताओं के लिए अलग प्रकार की बुद्धि-परीक्षाएँ की जाती हैं।

(२) द्वि-खण्ड सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के सर्वप्रथम प्रतिपादक स्पीयरमैन महोदय थे। उन्होंने सन् १९०४ ई० में ही इस सिद्धान्त पर बल दिया। इस सिद्धात के अनुसार 'बुद्धि' दो भागो से मिलकर बनी होती है—पहला—सामान्य बौद्धिक खण्ड (G), दूसरा—अनेक विशिष्ट खण्ड (S)।

बुद्धि का सामान्य खण्ड 'G' मानव-जीवन के सभी कार्यों मे भाग लेता है। विज्ञान, दर्शन और अन्य इसी प्रकार के विषयो मे एवं कार्यों मे सफलता सामान्य खण्ड के ऊपर ही निर्भर रहती है। किन्तु कुछ विशिष्ट कार्यों मे, जिनमे विशेषित बुद्धि की आवश्यकता पडती है, 'विशिष्ट खण्ड' 'S' द्वारा ही सहायता ली जाती है। जैसे, कोई कौशल, कला या शिल्प की सिद्धहस्तता विशिष्ट बुद्धि खण्ड 'S' द्वारा ही प्राप्त होती है। इसमे सामान्य खण्ड 'G' की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पडती। प्रत्येक व्यक्ति में एक सामान्य खण्ड 'G' और बहुत-से विशिष्ट नैपुण्य अथवा विशिष्ट खण्ड 'S' होते हैं। सभी प्रकार के कार्यों मे तत्सम्बन्धी, एक विशिष्ट खण्ड 'S' की आवश्यकता पडती है जबकि सभी कार्यों मे सामान्य खण्ड 'G' की अपेक्षा होती है।

बहुत-से ऐसे कार्य भी होते हैं, जिनमे 'G' खण्ड का अधिक महत्त्व होता है, और बहुत-से ऐसे भी जिनमें 'G' खण्ड की आवश्यकता 'S' खण्ड या खण्डों की अपेक्षा गौण होती है। 'G' खण्ड को प्रत्यक्ष रूप से कभी नापा नहीं जा सकता। इसकी माप अप्रत्यक्ष रूप से उन कार्यों के आपसी सम्बन्ध के द्वारा की जाती है जिनमे 'G' की आवश्यकता होती है।

स्पीयरमैन ने आगे चलकर 'G' और 'S' खण्डो के साथ एक 'समूह खण्ड' को और जोड दिया। बुद्धि के 'समूह खण्ड' से उनका तात्पर्य कुछ ऐसे खण्डों से था जो 'G' खण्ड की अपेक्षा कम सामान्य, अधिक विस्तीर्ण एवं सजातीय तथा 'S' खण्ड की अपेक्षा अधिक सामान्य, सुदूर विस्तृत एवं सजातीय होते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे—विशिष्ट योग्यता ('S' खण्ड अपेक्षित) और सामान्य बुद्धि ('G' खण्ड अपेक्षित) के बीच मे एक सर्वतोमुखी योग्यता (समूह खण्ड अपेक्षित) की आवश्यकता होती है जो सामान्य और विशिष्ट, दोनो योग्यताओं के बीच की खाई को पाट देती है।

(३) त्रि-खण्ड सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि तीनों भागों से मिल कर बनी होती है। स्पीयरमैन महोदय ने ही जो पहले सिद्धान्त में आस्था रखते थे बाद में 'G' और 'S' खण्डों के साथ 'सामूहिक खण्ड'[1] को जोड़ा। जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, यही 'G', 'S' और 'समूह खण्ड' मिलकर तीन खण्ड हो जाते हैं जिनके आधार पर ही यह 'त्रि-खण्ड सिद्धान्त' विकसित हुआ।

थॉर्नडाइक महोदय ने इस सिद्धान्त का खण्डन किया और कहा कि एक सामान्य 'G' खण्ड को मानना तथ्यों का बहुत अधिक सरलीकरण करना है। उनका मत था कि बौद्धिक कार्य एक जटिल तन्तु-संस्थान द्वारा सम्पन्न होते हैं, जो विभिन्न शैलियों[2] में सम्पादित होते है। वर्णन की दृष्टि से ये शैलियाँ अत्यन्त जटिल और एक-दूसरे से भिन्न होती हैं एवं एक 'G' खण्ड और बहुत-से 'S' खण्डों के मिश्रण अथवा एक 'G' खण्ड और 'समूह खण्ड' तथा थोड़े से 'S' खण्ड के संयोग द्वारा स्पष्ट नहीं होती हैं।

(४) बहु-खण्ड सिद्धान्त—यह सिद्धान्त विस्तृत सांख्यिकीय विश्लेषण के ऊपर आधारित है। थर्स्टोन ने अपने शिष्यों की सहायता से गणित के आधार पर व्यक्ति के सहस्र गुणों का पृथक्करण और मापने की विधि निकाली, जो 'खण्ड विश्लेषण-विधि'[3] कहलाती है। थर्स्टोन के अनुसार बुद्धि ६ प्रारम्भिक मानसिक योग्यताओं से मिलकर बनी होती है। वे इस प्रकार है—(१) दृश्य अथवा वरिम योग्यता[4], (२) प्रात्यक्षिक योग्यता[5], (३) संख्यात्मक योग्यता[6], (४) तर्क विषयक अथवा मौखिक योग्यता[7], (५) शब्दों के प्रयोग में धाराप्रवाहिता[8], (६) स्मृति[9], (७) आगमन योग्यता[10], (८) निगमन अथवा सिद्धान्तात्मक योग्यता[11], और (९) समस्या के हल पर नियन्त्रण की योग्यता[12]।

थर्स्टोन का मत है कि किसी विशेष कार्य को करने मे; जैसे—गणित के एक कठिन प्रश्न को समझना, साहित्य का अध्ययन करना, कविता का रसास्वादन करना आदि मे उपर्युक्त ६ मानसिक योग्यताओं के संयोजन की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ ऐसी योग्यताएँ हैं, जिनकी उपयोगिता किन्हीं विशिष्ट कार्यों में दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है, जैसे—गणित के अध्ययन के लिए संख्यात्मक योग्यता, परीक्षात्मक एवं सिद्धान्तात्मक या निगमन योग्यता आदि की अन्य योग्यताओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में आवश्यकता है।

थर्स्टोन का 'बहु-खण्ड सिद्धान्त' इस अवधारणा पर आधारित है कि ये मानसिक योग्यताएँ प्रारम्भिक और सामान्य हैं क्योंकि उनकी आवश्यकता किसी-न-

---

1. Group factors. 2 Patterns. 3. Factor-analysis 4. Visual. or Spatial ability. 5. Perceptual ability. 6. Numerical ability. 7. Logical or verbal relational ability. 8. Fluency with words. 9. Memory. 10. Inductive ability. 11. Deductive ability. 12. Ability to restrict the solution of a problem.

किसी मात्रा में सभी जटिल बौद्धिक कार्यों मे पड़ती है। थर्स्टोन का दृष्टिकोण स्पीयरमैन से सर्वथा भिन्न है क्योंकि उसके द्वारा मान्य ६ मानसिक योग्यताएँ स्पीयरमैन द्वारा मानी हुई शक्तियो के समान नही हैं।

इन सिद्धान्तों का महत्त्व—बुद्धि के बारे मे जिन सिद्धान्तो का निरूपण ऊपर किया गया, वे मुख्य-मुख्य सिद्धान्त हैं। किन्तु इन सभी सिद्धान्तो का विकास अभी थोड़े दिनो पूर्व ही हुआ है, इसीलिए अभी यह नही कहा जा सकता कि वे कितने ठीक और उपयोगी हैं। भविष्य मे होने वाले अनुसन्धान ही इन सिद्धान्तो की सम्पन्नता और बुद्धि के सही स्वरूप को निर्धारित करेंगे। शिक्षा मे हमारा सम्बन्ध केवल उन्ही योग्यताओं की माप से है जिन्हें हम विश्वसनीय और मान्य यन्त्रो की सहायता से माप सकते हैं। हमारा ध्येय केवल यहाँ बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या करना भर है तथा इन सिद्धान्तो के द्वारा बालको की विभिन्न योग्यताओं की जानकारी प्राप्त कर उन्हें उनके अनुकूल शिक्षा देना है।

मानसिक योग्यता का संक्रमण[1]

बहुत-सी विधियो से यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य की सामान्य योग्यता अथवा बुद्धि आगे की पीढ़ियों में संक्रमित होती है। वातावरण का कार्य केवल इस जन्मजात शक्ति के विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियो का निर्माण करना है। वातावरण किसी भी ऐसी योग्यता को उत्पन्न नहीं कर सकता जो व्यक्ति मे पहले से उपस्थित नही होती। कभी-कभी लोग बुद्धि और ज्ञान को भी एक ही ठहराते हैं। ऐसा ठीक नही है, क्योंकि बुद्धि जन्मजात होती है और ज्ञान अर्जित। बुद्धि वंशानुक्रम पर आधारित होती है और ज्ञान वातावरण पर। यह आवश्यक नहीं कि जो व्यक्ति बुद्धिमान है वह धुरन्धर विद्वान् भी हो, और जो विद्वान् हैं उनके लिए भी आवश्यक नही कि वह बुद्धिमान भी हो। गाँव के बहुत-से बिना पढ़े-लिखे लोग भी बुद्धिमान देखे जाते हैं और बहुत-से एम० ए० पास व्यक्ति भी सामान्य योग्यता मे हीन मिलते हैं। यह अवश्य है कि अनुकूल वातावरण द्वारा जन्मजात योग्यता का विकास किया जा सकता है, उसे समाजोपयोगी कार्यों मे लगाया जा सकता है तथा निर्माण एवं रचनात्मक कार्यों की ओर उसे दिशा दी जा सकती है।

क्या बुद्धि संक्रमित होती है? इस प्रश्न का सही-सही उत्तर पाने के लिए आज के मनोवैज्ञानिक खोजियों ने विश्वसनीय एवं प्रामाणिक सामग्री को एकत्र करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया है—(१) सह-सम्बन्ध प्रणाली[2], (२) कुटुम्ब-इतिहास का अध्ययन[3], (३) यमजैक नियन्त्रण विधि,[4] (४) धात्रेय बालकों का परीक्षण[5]।

---

1. Inheritance of Mental Ability. 2. The Correlation Technique 3. Family History Studies. 4. Co-twin Control-Procedure. 5. Foster-children Experiment.

गई।[1] यह सहसम्बन्ध स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करते हैं कि रक्त-सम्बन्ध जितना घना होगा उसी मात्रा में बुद्धि-परीक्षा में प्राप्तांको की भी समानता होगी। वे चाहे प्रतिभा के धावाक हो अथवा मन्द-बुद्धिता के, उनमें अधिक समानता होगी। यही तथ्य सहसम्बन्ध और बुद्धि-परीक्षा के आधार पर सिद्ध हुआ है। किन्तु पूर्ण विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि सहसम्बन्ध की यह मात्रा केवल वंशानुक्रम के ही कारण है अथवा उसमें वातावरण का भी प्रभाव था। आजकल यह सर्वमान्य है कि केवल वंशानुक्रम ही व्यक्ति के जीवन का विधायक नहीं, वातावरण का भी उसमें बड़ी मात्रा में हाथ होता है, अत इसे भी नहीं भुलाया जा सकता।

२ **कुटुम्ब-इतिहास का अध्ययन**—कई मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के संक्रमण की सम्यक् जानकारी के लिए कालीकॉक, ज्यूक्स और एडवर्ड परिवार का इतिहासपरक अध्ययन किया। कालीकॉक युद्ध में एक सामान्य कोटि का सिपाही था, युद्धकाल मे एक निम्न कोटि की महिला से उसका सम्बन्ध हो गया। उससे कुछ सन्तानें उत्पन्न हुई। युद्धोपरान्त उसने संभ्रात परिवार की श्रेष्ठ महिला से विवाह किया। इस प्रकार कालीकॉक महोदय से दो भिन्न श्रेणी—मन्द-बुद्धि और प्रतिभाशाली—की स्त्रियों से दो विभिन्न प्रकार के परिवारों का सूत्रपात हुआ। प्रथम महिला से उत्पन्न वंशजो के ४८० व्यक्ति उत्पन्न हुए। उनके अध्ययन से पता चला कि उनमे १४३ मन्द-बुद्धि, ४६ सामान्य, ३६ जारज सन्तानें, ३३ वेश्याएँ, २४ शराबी, ३ मिरगी के रोगी और ३ जघन्य अपराधी थे। दूसरी पत्नी से उत्पन्न वंशजो के लगभग ४६६ व्यक्ति हुए। इनमें सभी व्यक्ति सामान्य और प्रतिभाशाली थे, केवल ५ ऐसे व्यक्ति निकले जो मन्द-बुद्धि अथवा दुराचारी थे। यह अध्ययन गॉडर्ड[2] महोदय के द्वारा किया गया था।

अध्ययन की इस दिशा में अंग्रेज मनोवैज्ञानिक गॉल्टन ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने ६७७ प्रतिभावान व्यक्तियों का अध्ययन किया तो पता चला कि उनमे ५३५ व्यक्तियों मे निकट रक्त-सम्बन्ध था। इसी प्रकार उन्होंने ६७७ सामान्य व्यक्तियों का भी अध्ययन किया तो उनमे निकटतम रक्त-सम्बन्धियों मे से केवल ४ ही प्रतिभावान और प्रसिद्ध व्यक्ति निकले। इससे यह सिद्ध होता है कि वंशानुक्रम का प्रभाव निश्चित है तथा बुद्धि का संक्रमण अवश्य होता है।

इसी प्रकार मैंन महोदय ने अमरीका के ज्यूक्स परिवार का भी ऐतिहासिक अध्ययन किया। उससे पता चला कि ज्यूक्स एक दुराचारी व्यक्ति था। उसने एक भ्रष्ट महिला से शादी करके एक अपराधी कुटुम्ब को जन्म दिया। सन् १७२० से लेकर १८७७ ई० तक उसकी पाँच पीढ़ियों मे लगभग १००० व्यक्ति हुए। उनमे ३०० शैशवकाल मे ही मर गये, ४४० लोग रोगी रहे, १४० अपराधी हुए, ३१० को अनाथालयों मे रहना पड़ा, केवल २० कुछ व्यवसाय अथवा कारीगरी सीख सके।

1. Freeman, F. N. etc. : "Influence of Environment on the Intelligence, Achievement and Conduct of Foster Children."
2. Goddard.

प्रकार उनके अलग-अलग होने के उपरान्त उनका अध्ययन किया गया। अध्ययन के उपरान्त यह देखा गया कि विभिन्न शैक्षिक और सामाजिक वातावरण के बावजूद उनकी लम्बाई और भार में बहुत थोड़ा अन्तर था। किन्तु विभिन्न सामाजिक वातावरण ने उनकी मानसिक योग्यता पर कुछ प्रभाव अवश्य डाला और बुद्धि-परीक्षा के प्राप्तांकों[1] में अन्तर पाया गया। शैक्षिक वातावरण की भिन्नता के कारण उनकी शैक्षिक योग्यता में बहुत अधिक अन्तर पाया गया। इस अध्ययन सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एकसम-जुड़वाँ बालकों में जो विभिन्न परिस्थितियों में पले हैं, भ्रातृीय-जुड़वाँ बालकों की अपेक्षा जो साथ-साथ पले है, आपस में कम सादृश्य एवं समानता होती है। लेकिन शायद ही उन खास भाई-बहनों से अधिक, जिनका साथ-साथ पालन-पोषण हुआ है।

इन सभी अध्ययनों से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि व्यक्ति के ऊपर सामाजिक और शैक्षणिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है किन्तु वातावरण जन्मजात योग्यता-बुद्धि में कोई अन्तर नहीं ला सकता। बुद्धि तो वंशानुक्रम का ही परिणाम है। अतः बालकों की 'बुद्धि' की मात्रा का निर्धारक उनका वंशानुक्रम ही है। यह बालक के जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का तो यहाँ तक मत है कि प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि निश्चित होती है। यह अपरिवर्तनीय है और वातावरण के द्वारा इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जा सकता।

बुद्धि-लब्धि की स्थिरता और वातावरण[2]

अनुकूल शैक्षिक वातावरण का व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे भलीभाँति जानने के लिए इस दिशा में बहुत-से विद्वानों ने कार्य किया। उन्होंने यह भी खोज करने का प्रयास किया कि सामान्य वातावरण का बुद्धि-लब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन सभी अध्ययनों के आधार पर विद्वान् लोग इस निष्कर्ष पर आये कि उपयुक्त शैक्षिक वातावरण से बुद्धि-लब्धि में थोड़ी धनात्मक वृद्धि होने की सम्भावना होती है, जैसे—किसी बालक की बुद्धि-लब्धि ११० है तो उसे उपयुक्त वातावरण और अनुकूल प्रशिक्षण के द्वारा ११५ तक बढ़ाया जा सकता है।

यह भी देखा गया कि बुद्धि-परीक्षा की विभिन्न परीक्षा-विधियों द्वारा एक ही व्यक्ति की विभिन्न बुद्धि-लब्धि आती है। अतः अध्यापक को पहले से यह विचार नहीं कर लेना चाहिए कि एक बालक की बुद्धि-लब्धि की मात्रा सभी बुद्धि-परीक्षाओं के परिणामस्वरूप समान होगी तथा एक ही बुद्धि-परीक्षा विधि के दुहराने से यह भी आवश्यक नहीं कि समान निष्कर्ष ही आये। परीक्षणों के आधार पर यह भी देखा गया है कि व्यक्ति के विद्यालय जीवन में यदि प्रारम्भ से ही शैक्षिक वातावरण अच्छा है तो उसके बुद्धि-निष्कर्षों में अवश्य ही शीघ्र परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन बुद्धि

---

1. Scores. 2. Environmental Factors & Constancy of I Q.

के उत्तरोत्तर विकास की दिशा में होता है। कॉलेज के विद्यार्थियों में बुद्धि-परीक्षाप्राप्तांकों की भी अभिवृद्धि पाई जाती है।

बहुत-से विद्वानों के अनुसन्धानों के आधार पर यह पूर्णतः सिद्ध हो चुका है कि विभिन्न व्यक्तियों की मानसिक योग्यताओं के विकास की गति में अन्तर होता है। उनमे विभिन्न मात्राओं में वृद्धि होती है। हारजोइक[1] महोदय ने इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्ययन किया। उन्होंने २१ मास के बालकों से लेकर ७२ मास तक के बालकों का अध्ययन किया। फ्रीमैन और फ्लोरे ने ८ वर्ष से १७ वर्ष तक के बालकों का और वैलमैन ने विद्यालय अवस्था के प्रथम से लेकर कॉलेज अवस्था तक का अध्ययन किया। इनका भी मत है कि विभिन्न बालकों में मानसिक विकास विभिन्न गति और मात्रा में होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण, बालक और उसके विकास का सम्यक् अध्ययन कर यह देखा कि अनुपयुक्त वातावरण बालक के मानसिक विकास में बाधा डालता है और उसकी अभिवृद्धि की गति को धीमा बना देता है। यही कारण है कि शिक्षित परिवार में उत्पन्न बालकों को यदि उपयुक्त वातावरण में नहीं रखा गया, उन्हें समुचित शिक्षा नहीं मिली तो उनकी बुद्धि-वृद्धि रुक जाती है और अशिक्षित कुल में उत्पन्न होने पर भी उचित वातावरण मिलने पर उनकी बुद्धि में अधिक विकास होता है। इस दिशा में विशेष अध्ययन किये गये हैं जिनमे अशर का 'केन्टुकी गिरि-बालकों का अध्ययन'[2] (१९३५), शरमैन और के महोदय का "अलग-अलग रहते हुए पहाड़ी बालकों का अध्ययन"[3] (१९३२), और ह्वीलर का 'ईस्ट टेनेसी बालकों का अध्ययन'[4] आदि उल्लेखनीय हैं।

बुद्धि-लब्धि की स्थिरता[5]

उपर्युक्त अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि बुद्धि-लब्धि परिवर्तनीय है। किन्तु सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके परिवर्तन का यह क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। एक व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि उसकी आयु-वृद्धि के साथ बढ़ भी सकती है और घट भी सकती है। किन्तु उसके विकास या ह्रास की मात्रा में जो परिवर्तन होगा, वह बहुत थोड़ी सीमा तक होगा। अतः हम कह सकते हैं कि बुद्धि-लब्धि लगभग स्थिर रहती है, उसमें परिवर्तन अधिक से अधिक १० अङ्क तक हो सकता है। चाहे सुन्दर वातावरण से वह १० अङ्क अधिक बढ़ जाय, और दूषित वातावरण से १० अङ्क घट जाय—इससे अधिक परिवर्तन की सम्भावना नहीं।

यदि बालकों की बुद्धि-लब्धि में कुछ समय उपरान्त तक बहुत अधिक अन्तर दिखाई पड़ता है तो बुद्धि-परीक्षा की विधि में कोई त्रुटि अवश्य होगी। परीक्षा स्वयं

---

1. Horzike. 2. Asher's Study of Kentucky Mountain Children (1935). 3. Sherman & Key's Study of Isolated Mountain Children (1932) 4. Wheeler's Account of East Tennesse Children. 5. Constancy of I Q.

या तो अविश्वसनीय होगी, या परीक्षक अयोग्य होगा अथवा बालक क्लान्त, भयभीत या अविरोधी होगा। कभी-कभी उन व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ता है जो पहले शारीरिक दोषों से ग्रसित थे, किन्तु अब उन्हें मुक्ति मिल गई। ये दोष जैसे बहिरापन, गूँगापन अथवा अन्धता आदि हैं।

बुद्धि के स्थायित्व के सम्बन्ध में एक अध्ययन का वर्णन किया जा सकता है। यह अध्ययन हान्जिक, मेक फारलेन एवं ऐलन[1] महोदय द्वारा किया गया। इस अध्ययन में २१ मास से १८ वर्ष तक के बालकों को जिनकी संख्या २५२ थी, व्यक्तिगत बौद्धिक परीक्षा दी गई। ६ वर्ष तक बालकों का परीक्षण प्रति वर्ष किया गया। इसके पश्चात् १५ वर्ष तक दो वर्ष के पश्चात् परीक्षण किये गये। फिर सबका परीक्षण १८ वर्ष तक किया गया। कुछ का परीक्षण १३, १५ एवं १८ वर्ष पर किया गया, अन्य का १४, १५ एवं १८ वर्ष पर। इस प्रकार एक बालक का १४ बार मानसिक परीक्षण सम्भव हो सका। इस अध्ययन के निम्न परिणाम निकले :

(१) ६ वर्ष से १८ वर्ष तक बुद्धि-लब्धि में ६० प्रतिशत बालकों में १५ पॉइन्ट का अन्तर पाया गया, समूह के ⅓ भाग ने २० अथवा अधिक पॉइन्ट का अन्तर व्यक्त किया, समूह के ६ प्रतिशत भाग ने ३० अथवा अधिक पॉइन्ट का अन्तर व्यक्त किया। समूह के १५ प्रतिशत भाग ने १० पॉइन्ट से भी कम का अन्तर व्यक्त किया। सम्पूर्ण समूह के औसतों को निकालने से पता लगा कि सबसे अधिक बुद्धि-लब्धि में परिवर्तन इस आयु के बीच में ११८ से १२३ था।

(२) कुछ बालक बुद्धि-लब्धि में बराबर वृद्धि प्रदर्शित करते रहे, जबकि कुछ दूसरे बराबर नीचे गिरते रहे। यहाँ तक कि कुछ में ५० पाइंट तक का अन्तर आ गया।

(३) परिवार के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्तर बुद्धि-लब्धि पर प्रभाव डालते पाये गये।

इस परीक्षण के परिणामों ने बहुत कुछ यह प्रदर्शित कर दिया है कि ६ से १८ वर्ष की आयु के बीच में बालकों की बुद्धि-लब्धि में स्थायित्व होता है। ऐसा समूह के परिणामों पर सामूहिक रूप में विचार करने पर निष्कर्ष आता है। किन्तु जब व्यक्तिगत रूप से बुद्धि-लब्धि का अध्ययन किया जाता है तो पता चलता है कि एक ही परीक्षण के आधार पर हमें कभी भी बालक की बुद्धि-लब्धि के सम्बन्ध में निर्णय नहीं लेना चाहिए।

बुद्धि की अभिवृद्धि[2]

बुद्धि-परीक्षा के परिणामों से यह सिद्ध हो चुका है कि बालक की बुद्धि

1. Honzik, Mac Farlane & Allen : "The Stability of Mental Test Performance between two and eighteen years," as Quoted in "*Reading in Educational Psycholoy*" by Noel & Noel.

2. Growth of Intelligence.

उसकी उम्र के साथ बढ़ती रहती है, और बालक की मानसिक आयु उसके जन्म से किशोरावस्था के अन्त तक बढ़ती रहती है। किस उम्र पर आकर बुद्धि की वृद्धि रुक जाती है उसे ठीक ठीक बताना अत्यन्त कठिन है। पिटर महोदय का मत है कि १४ और २२ वर्ष के बीच में बुद्धि का विकास किसी भी समय रुक जाता है। टरमैन के विचार में सामान्य मानसिक क्षमताओं के बालक अपनी बुद्धि के विकास के चरम-बिन्दु पर १६ वर्ष की अवस्था में पहुंच जाते हैं।

बुद्धि की अभिवृद्धि के सम्बन्ध में और अच्छी तरह से समझने के लिए हम विभिन्न आयु पर कुछ विशेष योग्यताओं के पाए जाने के सम्बन्ध में वर्णन करेंगे :

१. २ वर्ष का बालक २ अंकों वाली संख्या को दोहरा सकता है, २०० शब्दों को समझ सकता है। एक कुत्ते के चित्र की ओर संकेत कर सकता है।
२. ३ वर्ष का बालक ३ अंकों की संख्या को दोहरा सकता है, यह समझने लगता है कि उसे क्या करना है—जब उसे प्यास लगती है।
३. ५ वर्ष का बालक एक वर्ग की नकल कर सकता है, वह बता सकता है कि जूता किस वस्तु का बना है।
४. १० वर्ष का बालक ६ अंकों की संख्या दोहरा सकता है, २६,००० शब्दों को समझ सकता है।
५. १४ वर्ष का बालक १८,००० शब्दों को समझ सकता है। अमूर्त विचारों वाले शब्द, जैसे—ईमानदारी, दान आदि की परिभाषा दे सकता है।
६. १६ वर्ष का बालक ४०,००० शब्दों को समझ सकता है, कठिन शब्द जैसे सुस्ती और काहिली में अन्तर व्यक्त कर सकता है।

बुद्धि के विकास के चरम-बिन्दु पर पहुंचने से यह तात्पर्य नहीं है कि १६ वर्ष के उपरान्त व्यक्ति में किसी भी प्रकार की बौद्धिक अभिवृद्धि नहीं हो सकती। व्यक्ति का बौद्धिक विकास ३० वर्ष या उसके परे तक निरन्तर चालू रह सकता है। किन्तु नयी-नयी समस्याओं को हल करने की योग्यता उसमें जो १६ वर्ष पर थी, वही अब ४० वर्ष पर भी होगी। व्यक्ति का मानसिक विकास चाहे लगातार होता रहे फिर भी उसमें नयी परिस्थितियों को हल करने, उनमें अपने को व्यवस्थित करने एवं समझने की योग्यता तो किशोर जीवन में ही पूर्ण हो जाती है। वस्तुतः बाद को बुद्धि नहीं बढ़ती, ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान एक अर्जित शक्ति है, जो बुद्धि नहीं है। बुद्धि तो वह जन्मजात योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी भी समस्या के हल करने के सम्भव साधनों को अपनी क्षमता के अनुसार जुटाता, उसे हल करता और अपने को वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करता है। इस प्रकार की जन्मजात बौद्धिक योग्यता कैशोर्य की परिसमाप्ति तक पूर्ण हो चुकती है, उसके आगे वृद्धि की सम्भावना नहीं। हाँ, केवल संचित ज्ञान ही बढ़ता जाता है।

जीवन में सफलता और उसका बुद्धि से सम्बन्ध[1]—जीवन में सफलता प्राप्त

---

1. The relation of intelligence and success in life.

करने के लिए बुद्धि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्ति की बहुत कुछ सफलता उसकी बौद्धिक शक्तियों के ऊपर ही निर्भर होती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि जो व्यक्ति अधिक प्रतिभावान और मेधावी है, उसे आवश्यक रूप से जीवन में सफलता मिल ही जायगी। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए बुद्धि के अलावा और भी दूसरी वस्तुएँ हैं जिन पर सफलता निर्भर रहती है। उसमें से दो प्रमुख तत्व 'प्रेरणा'[1] और 'अनवरत अध्यवसाय'[2] हैं जो 'सफलता' और 'असफलता', दोनों में ही बहुत महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। किन्तु अधिकतर यही देखा गया है कि यदि किसी व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि अधिक है तो उसकी सफलता के अवसर उस व्यक्ति से बहुत अधिक होंगे जिसकी बुद्धि-लब्धि कम होगी। किन्हीं-किन्हीं विशिष्ट व्यवसायों में उच्च बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है और किन्हीं-किन्हीं में कम बुद्धि से ही कार्य चल जाता है। जैसे, एक वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा प्रोफेसर के लिए उच्च बौद्धिक धरातल की आवश्यकता है, जबकि क्लर्क आदि के व्यवसाय में सामान्य योग्यता से ही कार्य चल जाता है।

बुद्धि-परीक्षा के उपयोग[3]

आधुनिक काल में बुद्धि-परीक्षा परम उपयोगी सिद्ध हुई है। प्रायः यह देखा गया है कि जीवन में सफलता और असफलता तथा नयी परिस्थितियों के समायोजन एवं नयी समस्याओं के हल करने में बुद्धि का बहुत बड़ा हाथ रहता है। यही नहीं, मानव-जीवन के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में बुद्धि की बहुत अधिक महत्ता और उपयोगिता है। चूँकि बुद्धि-परीक्षा द्वारा ही बुद्धि मापी जाती है, इसलिए उसकी भी बहुत उपयोगिता है। हम उसके कुछ उपयोगों का वर्णन नीचे करेंगे :

१. मन्द-बुद्धि बालकों का पता लगाना[4]—बुद्धि-परीक्षा के द्वारा अध्यापक सरलतापूर्वक एक ही कक्षा में पढ़ने वालों में से मन्द-बुद्धि और प्रखर-बुद्धि बालकों को छाँट सकता है। उनका बुद्धि-लब्धि के आधार पर वर्गीकरण कर, उनके समान बुद्धि-लब्धि वाले बालकों के साथ उन्हें शिक्षा देकर उनका समुचित विकास कर सकता है। बुद्धि-परीक्षा से मन्द-बुद्धि, सामान्य और प्रतिभाशाली—सभी बालकों की जानकारी आसानी से हो जाती है। उनमें आपस में अन्तर किया जा सकता है। एक बालक जिसकी बुद्धि-लब्धि ७० है, मन्द-बुद्धि माना जाता है, जिसे विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, उसे प्रखर मेधावी बालकों के साथ जिनकी बुद्धि-लब्धि १२० से ऊपर होती है, नहीं पढ़ाया जा सकता। हम इस विषय की पूर्ण चर्चा "विशिष्ट बालकों का व्यवस्थापन और शिक्षा" नामक अध्याय में करेंगे।

२. बालापराधियों से व्यवहार[5]—प्रायः यह देखा गया है कि अधिकतर बालापराधी निम्न बौद्धिक धरातल के होते हैं। उच्च मानसिक स्तर के बालापराधी

1. Motivation, 2. Persistance. 3. Uses of Intelligence Test. 4. Treating Feeble-minded Children 5. Dealing with Delinquents.

बहुत कम मिलते हैं। बुद्धि-परीक्षा हमें इन बालापराधियों से उपयुक्त व्यवहार करने में सहायता पहुँचाती है, क्योंकि बुद्धि-परीक्षा द्वारा बालापराधियों की बुद्धि-लब्धि निकाली जाती है, फिर उन बहुत-से कारणों को समझा जाता है जिनसे बालक अपराधी बन जाता है। कम बुद्धि वाले बालक को अधिक कार्य सौंप देने से वह या तो दब्बू बन जायगा या विद्रोही, अतः इस प्रकार बुद्धि-परीक्षा बालापराधों के कारणों को खोजने मे तथा उसे समुचित व्यवहार करने के योग्य बनाने मे सहायता पहुँचाती है। इस विषय पर 'बालापराध' नामक अध्याय मे विस्तृत रूप से चर्चा की जायेगी।

३. शिक्षा मे उपयोग—बुद्धि-परीक्षा का सबसे अधिक उपयोग विद्यालयों मे होता है। बुद्धि-परीक्षा के आधार पर बालकों का वर्गीकरण—सामान्य, मन्द और प्रतिभाशाली अथवा प्रखर के रूप मे—किया जाता है। शैक्षिक कार्यक्रमों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मन्द-बुद्धि और प्रखर-बुद्धि बालको मे अन्तर किया जाय, उन्हें भिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाय। अतः निम्नलिखित कारणों से बुद्धि-परीक्षा शिक्षा के क्षेत्र मे परमोपयोगी सिद्ध हुई है :

(क) बुद्धि-परीक्षा हमें यह बताती है कि पाठशाला मे बालक की उन्नति मे कमी का कारण उसकी मानसिक योग्यता की कमी है अथवा अन्य कोई कारण है।

(ख) बुद्धि-परीक्षा कम बुद्धि वाले बालक को तुरन्त पहचान लेती है।

(ग) बुद्धि-परीक्षा उत्कृष्ट बालक को छाँटकर बता देती है। उसकी उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा के लिए, उसके सम्यक् विकास के लिए उसे उचित अवसर प्रदान करने पर बल देती है।

(घ) अध्यापक के आगे आने वाली समस्याओं के हल मे सहायता पहुँचाती है तथा विद्यालय मे बालापराधियों को पहचानने मे मदद देती है।

(ङ) बुद्धि-परीक्षा बालकों की मानसिक योग्यता का सम्यक् आकलन कर उन्हें उचित शैक्षिक मार्ग-प्रदर्शन करती है।

(च) बुद्धि-लब्धि के आधार पर किसी बालक के लिए यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि वह कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय के उच्च अध्ययन के योग्य है अथवा नही।

(छ) बुद्धि-परीक्षा अध्यापकों और विशेषज्ञों को बालकों के लिए व्यावसायिक चुनाव मे बहुत मदद देती और उचित मार्ग-प्रदर्शन करती है।

४. विशिष्ट वर्गों के अध्ययन के लिए उपयोगी[1]—बुद्धि-परीक्षा व्यक्तियों के कुछ विशिष्ट वर्गों के लिए परमोपयोगी है। यह विशिष्ट वर्गों, जैसे—अन्धे, गूँगे, बहरे और जातीय समुदायों, का सर्वेक्षण करती है।

५. उद्योगों मे उपयोगिता[2]—उद्योगों मे अधिकारियों, कर्मचारियों और

---

1. Use for Special Groups. 2. Use in the Industries.

विशेषज्ञों के चुनाव में बुद्धि-परीक्षा बहुत सहायता देती है। चुनाव की अन्य विधियों, जैसे—साक्षात् विधि एवं उम्मीदवार के आवेदन-पत्र के जिसमें उसके पूर्व-अनुभवों, शैक्षिक और सामाजिक एवं विशिष्ट योग्यताओं का लेखा-जोखा होता है, साथ बुद्धि-परीक्षा भी परम उपयोगी सिद्ध होती है।

बुद्धि-परीक्षा के महत्त्वपूर्ण उपयोगों का ऊपर वर्णन किया गया है। वस्तुतः आज के युग के लिए, विशेष रूप में शिक्षा के क्षेत्र में तो यह वरदान सदृश्य सिद्ध हुई है। किन्तु इन बुद्धि-परीक्षाओं का जो बहुत प्रकार की होती हैं, बड़ी सावधानी से प्रयोग करना चाहिए तथा उनमें बहुत ही सतर्कता बरतनी चाहिए। परीक्षण किन्हीं अनुभवी और सुप्रशिक्षित एवं दक्ष व्यक्तियों द्वारा आयोजित किये जाने चाहिए। परीक्षा-प्राप्ताङ्कों[1] को पूर्ण रूप से सही नहीं मानना चाहिए, क्योंकि बुद्धि-परीक्षा किसी भी प्रकार से पूर्ण नहीं हो सकती। उसका विषय भौतिक जड़-वस्तु न होकर चेतन और अस्थिर मन वाला बालक होता है, उसमें कुछ त्रुटि आ जाना स्वाभाविक ही है। अतः हमें उनकी उपयोगिताओं की सीमा जान लेनी चाहिए। हमें व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा के द्वारा प्राप्त जानकारी के अलावा उसके बारे में और बहुत अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए, और तब उसी के अनुसार उसे व्यावसायिक अथवा शैक्षिक मार्ग-प्रदर्शन करने का निर्णय करना चाहिए।

सारांश

मनोविज्ञान ने बुद्धि मापने की सही-सही विधियों एवं उनके परिणामों की सम्यक् व्याख्या से व्यक्तियों को उनकी मानसिक योग्यता एवं बौद्धिक विकास के आधार पर उनका वर्गीकरण कर मानव-समाज की बहुत बड़ी सेवा की है। ऐतिहासिक दृष्टि से बुद्धि-परीक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य फ्रान्स में बिने और साइमन महोदय ने किया। बिने ने तीन परीक्षाएँ क्रमशः सन् १९०५, १९०८ और १९११ ई० में प्रकाशित कीं। अमरीका में गॉडार्ड महोदय ने बिने की सन् १९०८ की बुद्धि की मापन-विधि को स्वीकार कर सर्वप्रथम सन् १९१० में अमरीकी बालकों के लिए प्रकाशित किया। सन् १९१६ में टरमैन महोदय ने बिने की प्रणाली में आवश्यक संशोधन किया, जो अमरीका में बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ। यह बुद्धि-परीक्षा वैयक्तिक परीक्षा-प्रणाली थी। इनके अलावा अमरीका में इस प्रकार की 'वैयक्तिक परीक्षाएँ' बहुत प्रचलित हुईं। इसके साथ-साथ बहुत-सी 'सामूहिक परीक्षाएँ' भी एक पूरी कक्षा अथवा वर्ग या व्यक्ति-समूहों की बुद्धि की एक साथ परीक्षा के लिए आविष्कृत हुईं। जो बालक अशिक्षित थे अथवा जिन्हें भाषा की कठिनाई थी उनके लिए 'क्रिया-प्रश्न' या 'क्रियात्मक परीक्षा-विधि' अपनायी गई। भारतवर्ष में भी भारतीय बालकों के लिए परिनिष्ठित बुद्धि-परीक्षाएँ[2] अपनाई गईं और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी इस दिशा में पर्याप्त विकास हुआ।

---

1. Test Scores. 2. Standard Intelligence Tests.

बुद्धि-परीक्षा के लिए दो अवधारणाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानी गईं। उनमें से एक 'मानसिक आयु' और दूसरी 'बुद्धि-लब्धि' है। "मानसिक आयु एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त विकास के विस्तार की वह अभिव्यक्ति है जो उसके कार्यों द्वारा व्यक्त होती है तथा सामान्यतः उन कार्यों को करने की क्षमता उस व्यक्ति में उस विशिष्ट उम्र में ही होनी चाहिए।" बुद्धि-लब्धि को प्राप्त करने के लिए मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग दिया जाता है तथा परिणाम को १०० से गुणा कर देते हैं। जो मान आता है, वही 'बुद्धि-लब्धि' कहलाती है।

विभिन्न विद्वानों ने बुद्धि की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। उनमें भिन्नता होते हुए भी सभी ने एकमत से स्वीकार किया है कि बुद्धि, बुद्धि-परीक्षा द्वारा मापी जा सकती है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि बुद्धि-परीक्षा निम्नलिखित तथ्यों की माप करती है :

१. सीखने की योग्यता।
२. नयी समस्याओं एवं परिस्थितियों में अपने ज्ञान का समुचित प्रयोग।
३. सम्बन्धों के अनुभव करने की योग्यता एवं आवश्यकता की पहचान।
४. सम्यक् तर्क की योग्यता।

मनोवैज्ञानिकों के मत से बुद्धि तीन प्रकार की होती है :

(i) अमूर्त—पुस्तकीय ज्ञान से व्यवस्थापन की योग्यता।
(ii) सामाजिक—समाज में व्यवस्थापन की योग्यता।
(iii) यान्त्रिक—यन्त्र आदि की विशिष्ट योग्यता।

बुद्धि के बारे में बहुत-से सिद्धान्त प्रचलित हैं। उनमें से चार मुख्य और प्रसिद्ध हैं :

१. एक-खण्ड सिद्धान्त—बिने, टरमैन आदि के द्वारा समर्थित।
२. द्वि-खण्ड सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के प्रणेता स्पीयरमैन महोदय थे।
३. त्रि-खण्ड सिद्धान्त—यह द्वि-खण्ड सिद्धान्त का ही संशोधित और परिवर्द्धित रूप है।
४. बहुखण्ड सिद्धान्त—थॉर्नडाइक महोदय द्वारा प्रतिपादित।

बहुत-से गम्भीर अध्ययनों और बहुत-से आधुनिक विद्वानों ने निम्नलिखित विधियों के द्वारा विश्वसनीय सामग्री एकत्रित कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि बुद्धि जन्मजात होती है : सहसम्बन्ध-प्रणाली, कुटुम्ब-इतिहास का अध्ययन, यमजक-नियन्त्रण विधि तथा धात्रेय-बालकों की परीक्षा। अन्य प्रकार के विविध अध्ययनों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि वातावरण भी बुद्धि-लब्धि पर प्रभाव डालता है, किन्तु उसका प्रभाव-क्षेत्र अत्यन्त संकुचित होता है। बुद्धि की अभिवृद्धि का चरम बिन्दु १६ वर्ष माना गया है।

आधुनिक काल मे बुद्धि-परीक्षा विभिन्न क्षेत्रो मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुई। इसका उपयोग दिखाई पड़ता है—(१) मन्द-बुद्धि बालकों का पता लगाने में, (२) बाल-अपराधियों के व्यवहार मे, (३) शिक्षा के उपयोग मे, (४) विशिष्ट वर्गों के अध्ययन में, (५) उद्योग मे। इन बुद्धि-परीक्षाओ का प्रयोग बड़ी ही सावधानी और सतर्कता से करना चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि इनका आयोजन अनुभवी, सुप्रशिक्षित और दक्ष व्यक्तियों के द्वारा किया जाय।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. बुद्धि की 'वैयक्तिक परीक्षा' और 'सामूहिक परीक्षा'—विधियो की तुलना करते हुए दोनों की हानि और लाभो पर प्रकाश डालिए।

२ प्रौढ व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि निकालने के लिए उनकी किस वास्तविक उम्र का प्रयोग करना चाहिए ?

३. बुद्धि-परीक्षा से व्यक्ति की किन-किन योग्यताओ की और कहाँ तक माप की जाती है ? बुद्धि-परीक्षा की सफलताओं के किन-किन उपायो को अपनाना चाहिए ?

४. विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओ को ध्यान मे रखते हुए अपने अध्ययन के आधार पर बुद्धि की परिभाषा लिखिए, और स्पष्ट बताइए कि बुद्धि की परिभाषा में आपकी दृष्टि में कौन-कौनसे तत्त्व महत्त्वपूर्ण और आवश्यक हैं ?

५. 'मानसिक आयु' और 'बुद्धि-लब्धि' किसे कहते हैं ? वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षा के आधार पर मानसिक आयु और बुद्धि-लब्धि निकालने के प्रत्यक्ष उदाहरण दीजिए।

६. बुद्धि-परीक्षा की उपयोगिता और उसके दोषो पर प्रकाश डालिए। क्या बालक अपनी बुद्धि-लब्धि को स्वयं निकाल सकता है ? अथवा उसे अपने अभिभावक अथवा अध्यापक द्वारा बुद्धि-परीक्षा आयोजित करके बुद्धि-लब्धि प्राप्त करनी चाहिए—कारणों पर प्रकाश डालिए।

७. निम्नलिखित अध्ययन-निर्णयों के आधार पर यह क्यों सिद्ध हो गया कि व्यक्ति की बुद्धि पर उसके वंशानुक्रम का प्रभाव वातावरण से अधिक महत्त्वशाली है :

   (क) बुद्धि-परीक्षा प्राप्तांकों मे उच्च सहसम्बन्ध घने रक्त-सम्बन्ध का परिणाम होता है।

   (ग) मानसिक उत्कृष्टता मे अन्तर विभिन्न प्रकार के मानसिक स्तर के लोगों के समागम का परिणाम होता है—कालीकॉक, ज्यूक्स, एडवर्ड परिवार का उदाहरण दीजिए।

(ग) मशीन-नियन्त्रण विधि द्वारा बुद्धि-परीक्षा के परिणामों में समानता दिखाई पड़ती है।

८. बुद्धि के स्वरूप के बारे में थर्स्टन और थॉर्नडाइक के सिद्धान्तों की तुलना कीजिए।

९. निम्न तालिका में एक ओर बुद्धि-परीक्षा के नाम दिये हुए हैं और दूसरी ओर उन मनोवैज्ञानिकों के जिन्होंने बुद्धि-परीक्षाएँ बनाई हैं। आप परीक्षा के नाम के सामने दिये हुए मनोवैज्ञानिकों के नामों में से छाँटकर उनका नाम लिखें जिन्होंने वह परीक्षा बनाई हो :

(क) स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षा	वान एल्स्टीन
(ख) हिन्दुस्तानी बिने क्रियात्मक परख	पी० मेहता
(ग) सामूहिक बुद्धि-परीक्षण	टरमैन
(घ) साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण	राइस
	मोहसिन
	जलोटा

६ वृद्धि के विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रतिमान (विशेषतः किशोर-काल में)
PATTERN OF GROWTH AT DIFFERENT STAGES OF DEVELOPMENT (Especially of Adolescence)

पिछले अध्यायो मे हमने व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सवेगात्मक, सामाजिक, और मानसिक विकास की चर्चा की, जिसमे यह स्पष्ट वर्णन किया गया कि व्यक्ति के विभिन्न स्तरो पर उसमे विभिन्न प्रकार की अभिवृद्धि कब और किस मात्रा मे होती है। स्थूल रूप से व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओ की भी चर्चा की गई है। इस अध्याय मे हम विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे से प्रत्येक अवस्था की विशिष्ट एवं विस्तृत चर्चा करेंगे तथा यह देखेंगे कि जिन विभिन्न प्रकार के विकासो का वर्णन पिछले अध्यायों मे किया गया है, वे विभिन्न विकास प्रत्येक अवस्था में कब और कितनी मात्रा मे होते हैं।

चूँकि किशोर अवस्था मे विभिन्न प्रकार की जटिल समस्याएँ उठ खडी होती हैं, अभिभावक और अध्यापक कभी-कभी उन समस्याओ को हल करने मे अपने को असमर्थ पाते हैं। इसलिए 'किशोर' और उनकी समस्याएँ तथा उनके समाधान की चर्चा हम विशेष रूप से करेंगे। किशोरावस्था मे काम-भावना का जन्म हो जाता है, अतः बालक को उचित मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। यह समस्या आज के शिक्षा-शास्त्रियों के सामने भी है कि बालको को काम सम्बन्धी शिक्षा किस प्रकार दी जाय तथा विशेष रूप मे एक किशोर को उसकी शिक्षा कैसे दी जाय? इस सम्बन्ध मे हम काम-सम्बन्धी शिक्षा के ऊपर विस्तृत विवेचन भी इस अध्याय मे करेंगे।

विकास की अवस्थाएँ[1]

डा० अर्नेस्ट जोन्स के अनुसार मानव-विकास की चार विभिन्न एवं सुस्पष्ट अवस्थाएँ होती हैं, जैसे—

१. शैशव[2]—प्रारम्भ मे ५ वर्ष तक।

२ उत्तर बाल्यकाल[3]—५ वर्ष से १२ वर्ष तक।

---

1. Stages of Development. 2 Infancy. 3. Later Childhood.

३. कैशोर्य[1]—१२ वर्ष से १८ वर्ष तक।
४. प्रौढ़ावस्था[2]—१८ वर्ष के बाद की उम्र से।

शैशव कब समाप्त होता है या प्रौढ़ता कब प्रारम्भ होती है, इसके बारे में विभिन्न विद्वानो के विभिन्न मत हैं। कुछ मनोवैज्ञानिको के मत से शैशव ७ वर्ष पर समाप्त होता है तथा किशोर-काल १६ वर्ष की अवस्था तक चलता रहता है। इन विभिन्न अवस्थाओ की कोई भी विभाजन-रेखा हो, किन्तु यह ध्यान मे रखना चाहिए कि ये अवस्थाएँ किसी भी प्रकार आनम्य[3] नहीं होती। इनका विभाजन *केवल सुविधा को ध्यान मे रखकर किया गया है।*

इसके प्रथम कि हम विभिन्न अवस्थाओ मे से प्रत्येक की चर्चा अलग-अलग करें, हमे उन सिद्धान्तो की चर्चा कर लेनी चाहिए जो पिछले अध्यायो के निष्कर्ष-स्वरूप आते हैं।

अभिवृद्धि एवं विकास के सिद्धान्त[4]

हम इन सिद्धान्तो का वर्णन यहाँ इस कारण कर रहे हैं कि उनका ज्ञान *अभिवृद्धि के समझने मे बहुत सहायक होगा। यहाँ हम यह बात भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह सिद्धान्त अपने मे पूर्ण नहीं हैं। यह तो सामान्यीकरण हैं जो* शिक्षक को अभिवृद्धि की दशा, विशेषताएँ, विकास की गति इत्यादि समझने में सहायता देते हैं। इनमें अनेक अपवाद मिल सकते हैं।

(१) विकास की दिशा का सिद्धान्त[5]—एक मानव बालक में सिर पहले प्रौढ़ावस्था को पहुँचता है, *टाँगें सबसे बाद में। आन्तरिक अंग, जैसे हृदय, पहले पूर्ण* कार्यक्षमता प्राप्त कर लेता है, हाथ-पाँव बाद मे कार्यक्षमता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शारीरिक ढांचे और शारीरिक क्रियाओ की अभिवृद्धि सिर से पैर की ओर एवं केन्द्र से परिधि की ओर होती है। एक भ्रूण मे यह सिद्धान्त बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

(२) सातत्य का सिद्धान्त[6]—*मानव-अभिवृद्धि अवस्थाओ या स्तरो मे बँटी* हुई नहीं है। यह एक सतत प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है। यह जन्म के समय से प्रारम्भ होती है और धीरे-धीरे निरन्तर चालू रहती है। एक अध्यापक को सदैव यह ध्यान मे रखना चाहिए कि यदि कोई बालक एक विशेष विकास की अवस्था मे गुजर रहा है तो यह आवश्यक नहीं कि उसकी वृद्धि उसी विकास की अवस्था के अनुरूप हो, और जब बालक दूसरे विकास की अवस्था मे आ जाये तो एकदम दूसरे प्रकार का विकास प्रारम्भ हो जाय। वस्तुतः मानव एक चेतन प्राणी है—मशीन नहीं, जहाँ उसमे सीमेंट की नालियो की तरह खाने या स्तर बनाये जायँ कि अमुक अवस्था

1. Adolescence 2. Maturity, 3. Rigid 4. Principles of Growth and development. 5 The Principle of developmental direction. 6. The Principl: of Continuity.

पर पहुँचकर अमुक प्रकार की वृद्धि प्रारम्भ हो ही जायगी। यह सम्भव है कि अवस्था-विशेष में होने वाली वृद्धि किन्हीं कारणों से उसमें सम्पन्न न होकर आगे की अवस्था में सम्पन्न हो। बालक की शारीरिक, मानसिक और अन्य किसी भी प्रकार की अभिवृद्धि तो सतत रूप से चलती ही रहेगी, वह विकास की चाहे जिस अवस्था में हो।

यहाँ यह याद रखना चाहिए कि शारीरिक अभिवृद्धि सब स्तरों पर एकसी नहीं होती। जन्म से २ वर्ष तक और ११ से १५ वर्ष तक यह तेजी से होती है जबकि ३ से १० वर्ष के बीच की आयु में यह धीमी गति से होती है।

(३) विकास के अनुक्रम का सिद्धान्त[1]—सामान्य रूप से शारीरिक वृद्धि के विभिन्न स्तर एक क्रमशील ढङ्ग से एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं जिनका भविष्य-कथन किया जा सकता है। यह देखा जाता है कि सब बालकों के कुछ विशेष दूध के दाँत पहले टूटते हैं, कुछ दूसरे सबसे बाद में। सब बालक यौवनारम्भ[2] की दशा को शारीरिक रूप से वृद्धि प्राप्त करने से पहले ही पहुँच जाते हैं। यह तो ठीक है कि सब बालक वृद्धि के एकसे समय-चक्र का अनुसरण तो नहीं करते किन्तु सब बालकों के विकास के क्रम की लगभग ठीक ही भविष्यवाणी की जाती है। फिर भी क्रम में कुछ अपवाद हो सकते हैं, जैसे कुछ ऐसे भी बालक होते हैं जिनके दाँत जन्म के समय से ही निकले होते हैं।

(४) परिपक्वता अथवा तत्परता का सिद्धान्त[3]—प्रत्येक बालक को विकास के एक निश्चित स्तर तक पहुँचना आवश्यक है, इसके प्रथम कि वह कुछ विशिष्ट कार्य जो उसके विकास से सम्बन्धित हैं, कर सके। उसका कंकालीय-मासपेशिय-स्नायुक[4] विकास एक विशेष स्तर तक आवश्यक है। उदाहरण के लिए, आप एक छः माह के बालक से यह आशा नहीं कर सकते कि वह अपने मल-मूत्र त्यागने पर नियंत्रण रख लेगा। चाहे कितनी ही चेष्टा करें, वह मूत्र त्यागना या चलना या दौड़ना नहीं सीख पायेगा। यहाँ हम इस ओर भी स्पष्ट संकेत दे सकते हैं कि यदि उच्च स्तर की प्रेरणा बालक को दी जाय तो सम्भव है कि उसका शारीरिक विकास शीघ्र हो जाये किन्तु बिना परिपक्वता के अथवा शारीरिक ढङ्ग से तत्परता के बालक से कोई भी कार्य करने की अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। यदि अभिभावक अथवा अध्यापक बालक के विकास को ध्यान में दिये बिना उससे कुछ कार्य करने की आशा करते हैं तो न केवल उन्हें निराशा होगी वरन् वह बालक को भी हानि पहुँचायेंगे।

(५) अभिवृद्धि में व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धान्त[5]—प्रत्येक बालक के विकास के क्रम और दिशा एक-समान होते हैं, किन्तु प्रत्येक बालक अभिवृद्धि का

---

1. The Principle of developmental sequence. 2. Puberty. 3. The Principle of Maturation or Readiness. 4 Skeletal-muscular-neurological. 5. The Principle of individua differences in growth.

एक अपना समय-चक्र अनुसरण करता है। जैसे, एक बालक एक कार्य को दूसरे से शीघ्र सीख लेता है।

विकास की अवस्थाएँ विभिन्न आयु-अवधियों में बँटी हुई हैं। अधिकांश बालक जब एक विशेष उम्र पर एक विशेष अवस्था को प्राप्त होते हैं तो कहा जाता है—अमुक विकास की अवस्था प्रारम्भ हो गई तथा अमुक विकास की अवस्था समाप्त हो गई। उदाहरण के लिए, जैसे यह माना जाता है कि कैशोर्य ११ वर्ष की उम्र से प्रारम्भ हो जाता है तो इससे तात्पर्य यह है कि बालकों की अधिकतर संख्या इसी काल-अवधि पर आकर किशोरावस्था को प्राप्त करती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी बालक निश्चित रूप से उसी उम्र पर आकर किशोरावस्था को प्राप्त होंगे, अथवा उनमें किशोर-कालीन विकास के चिह्न दिखाई पड़ने लगेंगे। विभिन्न बालकों में वैयक्तिक भेद पाये जाते हैं। कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जिनमें तारुण्य बहुत शीघ्र आ जाता है और बहुत-से ऐसे होते हैं जिनको तरुणाई कैशोर्य के प्रारम्भ के कई वर्ष उपरान्त शुरू होती है। सभी व्यक्तियों में वृद्धि की मात्रा एक-समान नहीं होती। किसी की वृद्धि की गति तीव्र और किसी की बहुत मन्द होती है। अतः इन वैयक्तिक भेदों के कारण सभी व्यक्तियों में एक विशिष्ट काल-अवधि पर ही किसी विशिष्ट अवस्था का प्रारम्भ नहीं होता।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का ज्ञान एक शिक्षक को अपनी क्रियाएँ संगठित करने में सहायक होगा। उदाहरण के लिए, एक व्यायाम शिक्षक बालकों से उस व्यायाम को करने या उस खेल को खेलने को नहीं कहेगा जिसकी उसमें परिपक्वता नहीं है।

विकास की विभिन्न अवस्थाएँ जिनकी चर्चा हम आगे करने जा रहे हैं, स्थूल वर्गीकरण के ऊपर ही आधारित हैं। यदि शैशव, बाल्यकाल अथवा कैशोर्य की किसी विशेष अभिवृद्धियों की चर्चा की जाती है तो उससे यह तात्पर्य नहीं कि सभी बालकों में उस प्रकार की अभिवृद्धि अनिवार्य रूप से उसी समय मिलेगी।

शैशव[1]

मनोविज्ञान के क्षेत्र में पिछले ४० वर्षों में बहुत अधिक उन्नति हुई है। विद्वानों ने इस दिशा में गम्भीर एवं विशद अध्ययन किया है और इसके आधार पर 'शैशव' के महत्त्व के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। फ्रॉयड, एडलर प्रभृत विद्वानों ने इस दिशा में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, और विकास की उस अवस्था को बहुत ही सार्थक घोषित किया है। एडलर का मत है कि "बालक के जन्म के कुछ मास उपरान्त ही यह निश्चय किया जा सकता है कि जीवन में उसका क्या स्थान है।" यद्यपि हम इस अतिवादी दृष्टिकोण को भले ही स्वीकार न करें, किन्तु यह सर्वमान्य है कि सुन्दर जीवन के निर्माण के लिए यही कालावधि वह नींव का पत्थर

है जिस पर व्यक्ति के व्यवस्थित व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है। अत इस अवस्था मे बालक की बडी देख-रेख की आवश्यकता है। यह काल अभिभावकों और अध्यापको की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

पिछले अध्यायो मे हमने बालक की शारीरिक, मानसिक एव अन्य प्रकार की वृद्धि का विभिन्न अवस्थाओ के अनुसार वर्णन किया है। विज्ञ पाठकों को बालक के शैशव-कालीन विकास को समझने के लिए पिछले अध्यायों से भी लाभ उठाना चाहिए। यहाँ पर हम सक्षेप मे विभिन्न अवस्थाओं मे जो विकास का क्रम होता है उसका साराश देंगे तथा कैशोर्य की समस्याओ पर प्रकाश डालेंगे जो शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं

(१) बुद्धि-परीक्षा से यह सिद्ध हो चुका है कि बालक शैशव मे मानसिक दृष्टि से पूर्ण विकसित नही होता है। अत उसे शिक्षा देने के लिए हमे सदैव उसकी मानसिक योग्यता को ध्यान मे रखना चाहिए। बालक को कोई भी ऐसी चीज नही सिखानी चाहिए जो उसकी समझ के बाहर हो। उदाहरण के लिए, एक वर्ष का बालक साफ-साफ लिखना नही सीख सकता, चाहे अध्यापक उसके लिए कितना ही प्रयत्न करे। यह भी सम्भव हो सकता है कि जो बालक मानसिक योग्यता के परे है, उस पर बार-बार बल देने से बालक को मानसिक क्षति पहुँचेगी। वैलेन्टाइन का कथन है कि प्रौढ़ो ने जो अँगुलियो को गिनने मे भी अँगुलियों का प्रयोग करते हैं, उस अवस्था मे मानसिक अङ्कगणित प्रारम्भ किया होगा "जबकि उनकी मानसिक शक्ति उन मानसिक कार्यों को करने के योग्य परिपक्व नहीं हुई थी, इस कारण उनमे अँगुलियों से गिनने की आदत पड़ गई।"

वह आगे कहता है कि "बालक के लिए प्रत्येक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कार्य को करने के लिए एक विशिष्ट काल-अवधि होनी है, जिसमे वह उस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के सर्वथा योग्य होता है।"

(२) बालक का व्यवहार उसकी जन्मजात प्रेरणाओं[1] के ऊपर आधारित होता है। ये उत्तोदनाएँ शीघ्र ही अपनी परितुष्टि चाहती हैं, अत. उसके प्राय. सभी कार्यों मे एक प्रेरणा अथवा अन्तश्चालना काम करती है। बालको की इन उत्तोदनाओ मे परिवर्तन केवल सुख या दुःख की भावना से ही आता है।

बालको को शिक्षा देते समय सदैव यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि बालक जन्म से ही कुछ विशिष्ट गुणों अथवा शक्तियों को लेकर आता है जो उसके व्यवहार मे सदैव प्रेरणा का कार्य करती हैं। अत उसे सदैव ऐसे कार्य सम्पन्न करने के लिए देने चाहिए जो उसकी प्रेरणाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करें। प्रौढ़ व्यक्तियों के

---

1. *Innate Urges.*

पिता के बारे मे भी बहुत-सी असंगत मनगढ़न्त कहानियो का वर्णन करता है। अध्यापक बालको को अच्छे व्यक्तियो की कहानियाँ एवं शिक्षाप्रद घटनाओ को सुनाकर उसकी कल्पनाशील भावनाओ की तुष्टि भी कर सकते हैं और उनमे महान् कार्यों की ओर रुचि भी उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार बालको की इस अवस्था की रुचि के अनुसार उनको उपयुक्त शिक्षा भी देनी होगी और उनका समुचित विकास भी करना होगा। किन्तु मॉन्तेसरी पद्धति बालकों को परियो की कहानियाँ सुनाने के विरुद्ध है, ऐसा उनका अपना अलग मत है।

(५) छोटा बालक परिचित वस्तुओ अथवा कार्यों को बार-बार दुहराने मे परम आनन्द लेता है। इस प्रकार वह अपनी आत्म-प्रदर्शन की प्रवृत्ति की तुष्टि करता है। बालक के सामने बहुत-सी विभिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ आती हैं, वह उन सब पर विजय प्राप्त कर उनमे निष्णात बनना चाहता है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह अपने अनेक कार्यों की बार-बार पुनरावृत्ति करता रहता है। यह प्रवृत्ति सबसे अधिक स्पष्ट रूप से खेल में देखी जाती है। वह 'खेल' मे कुशल होने के लिए कठिन अभ्यास करता है और दूसरो से अधिक निपुण होने की चेष्टा करता है। इन पक्तियो के लेखक ने अपनी बालिका के बारे मे जिसकी उम्र लगभग ५ वर्ष है, यह देखा कि वह घण्टो गुडियो से खेलती है। वह गुडियो को सँवारती है, सजाती है, उन्हें अच्छे-अच्छे आभूषण और वस्त्रो से सुसज्जित करती है। उसकी यह क्रिया बार-बार दुहराई जाती है और बहुत लम्बे समय तक चलती है। वह एक ही कार्य को पुनरावृत्ति करती रहती है। यह शायद स्वयं अपने हाथ से माँ की सहायता के बिना वस्त्र पहनने की अपनी इच्छा की तुष्टि करती हो, क्योकि उसकी माँ प्राय. उसे गन्दा नही रहने देती और उसे स्वयं ही पहनाती है।

(६) यह तथ्य आज सर्वमान्य है कि एक शिशु की काम-प्रवृत्ति पर्याप्त समृद्ध होती है। फ्रॉयड ने शैशव मे होने वाली काम-भावना के विकास के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। फ्रॉयड के अनुसार प्रारम्भिक शैशव मे बालक अपने को ही प्यार करता है, उसमे आत्म-प्रेम की भावना का विकास होता है। यह वह अवस्था है जब बालक के संवेग अपने ही बारे मे स्थायीभाव का रूप ग्रहण करना प्रारम्भ कर देते हैं। अपने द्वारा अपने आत्म को ही प्रेम करने की यह प्रवृत्ति "नार्सेसिज्म"[1] या आत्म-कामिका कहलाती है। इस नामकरण का आधार यूनानी पौराणिक कथा है, जिसमें नार्सेगॉट[2] नामक एक युवक स्वयं अपने शरीर को ही प्यार करते हुए बताया गया है। उसकी आत्म-कामिका प्रवृत्ति से ही फ्रॉयड ने इस भावना को यह नाम दिया।

सबसे प्रथम बालक मे माता के प्रति प्रेम का विकास होता है। पुत्रो मे मातृभाव से तात्पर्य होता है—माँ को प्यार करना, जबकि उसमे पितृभाव से तात्पर्य है—पिता को घृणा करना। अतः एक बालक अपनी माँ को प्यार करता है और पिता को

1. Narcissism. 2. Narcessat.

[यह बालिकाएँ छोटी होने पर भी युवा-युवतियों का ढंग अपने कपड़े
प्रदर्शित करने में अपनाती हैं। ऐसा करना उनकी आत्म-प्रदर्शन
की प्रवृत्ति को तुष्टि प्रदान करता है]

घृणा। इसी माता-पिता-पुत्र की विचित्र परिस्थिति के कारण बालक में 'इडीपस भावना-ग्रन्थि'[1] का निर्माण होता है। यूनानी पौराणिक कथाओं के अनुसार 'इडीपस' एक ऐसा व्यक्ति था, जिसने भूल से अपने बाप को मारकर अपनी माँ से विवाह किया और उससे चार सन्तानें उत्पन्न हुई।

पिता के प्रति अरुचि अथवा घृणा की भावना का कारण पिता का कठोर स्वभाव हो सकता है। चूँकि अध्यापक पिता का स्थानापन्न होता है, इसलिए पुरुष अध्यापकों को सदैव इस बात से सावधान रहना चाहिए कि बालकों के मन में किसी प्रकार का आक्रोश अथवा अरुचि व घृणा अध्यापकों के प्रति सरलता से परिवर्तित हो सकती है।

बालिकाओं में इस भावना-ग्रन्थि का विकास विपरीत ढङ्ग से होता है। वे पिता को प्यार करती हैं और माता को घृणा। यह "इलेक्ट्रा भावना-ग्रन्थि"[2] कहलाती है। ग्रीक पौराणिक कथाओं के अनुसार, 'इलेक्ट्रा' एक लड़की थी जिसने अपने पिता 'एगॅमेनन' से प्रेम होने के कारण अपने भाई 'ऑरेस्टस' को अपनी माँ 'क्लेनैस्ट्रा' को कत्ल करने में सहायता दी थी। कुछ भी हो, इन भावना-ग्रन्थियों के निर्माण के बारे में फ्रायडवादी जो अपने तर्क पेश करते हैं, वे अधिक उचित और उपयुक्त नहीं मालूम पड़ते हैं।

उत्तर बाल्यकाल[3]

शैशव और किशोरावस्था की अपेक्षा इस अवस्था में विकास की गति धीमी होती है, किन्तु इसमें सभी शक्तियों का सघटन एवं संगठन होता है। हमने अभी देखा कि बालक में ३ वर्ष की अवस्था तक शारीरिक वृद्धि बहुत ही तीव्रता से होती है, उसकी गति अत्यन्त तीव्र होती है। उसके उपरान्त यह धीमी पड जाती है, किन्तु फिर भी ६ या ७ वर्ष की अवस्था तक यह गति अत्यन्त द्रुत होती है, यद्यपि प्रारम्भ के ३ वर्षों के समान नहीं। ६ या ७ वर्ष के उपरान्त वह समय आता है जबकि विकास की गति में बहुत ही मन्थरता आ जाती है—एक प्रकार से स्थिरता सी दिखाई पड़ती है, हालांकि धीमा-धीमा विकास चलता ही रहता है। यह अवस्था कैशोर्य के प्रारम्भ तक रहती है।

संक्षिप्त रूप में इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार होती हैं :

(१) यह शारीरिक और मानसिक स्थिरता का समय होता है। यह अवस्था आभासी प्रौढावस्था[4] भी कहलाती है। इस अवस्था में विकास एक कुन्तलाकार रूप में होता है। तात्पर्य यह है कि जो विकास पहले हो चुकता है, उसमें गति तो आती है, किन्तु ठोसपन और दृढ़ता अधिक आती है। यह किशोरावस्था में आकर पुनः

---

1. Oedipus Complex. 2. Electra Complex. 3. Later Childhood. 4. Pseudo-maturity.

अस्थिर हो उठता है और पूर्ण परिपक्वता आने पर ही पुनः स्थिरता आती है जो जीवनपर्यन्त थोड़ी कम या अधिक मात्रा मे अधिक बनी रहती है।

(२) ८ अथवा ९ वर्ष की अवस्था तक बालक की दृष्टि एवं श्रवण इन्द्रियाँ पूर्ण विकसित हो चुकती हैं, उनमे बहुत थोड़ी-सी मात्रा मे विकास ११ वर्ष की उम्र तक चलता रहता है। शारीरिक दक्षता की दृष्टि से बालक मे ९ वर्ष की अवस्था तक द्रुत विकास होता है, उसके उपरान्त विकास की गति बहुत मन्द होती है। बालक इस अवस्था मे किसी कौशल या नैपुण्य को प्राप्त करने की अपेक्षा किसी वस्तु को बनाने अथवा कार्य के करने मे अधिक रुचि दिखाते और आनन्द लेते हैं।

८ से १२ वर्ष की अवस्था तक शब्दो और अङ्को को याद करने की स्मरण-शक्ति मे बहुत ही धीमे-धीमे विकास होता है तथा यह धीमा विकास १४½ वर्ष तक चलता रहता है। स्मृति अधिक तीव्रता से नही बढ़ती। इसके उपरान्त एकदम त्वरित विकास होता है।

बर्ट के अनुसार एक ८ वर्ष का बालक सभी आवश्यक मानसिक शक्तियो से सम्पन्न होता है। किन्तु सीमित शब्द-भण्डार और अनुभवहीनता के कारण वह जिन मानसिक कार्यों को करेगा, वह उस स्तर के नही होगे जो प्रौढ़ व्यक्ति द्वारा सम्पादित होते हैं। उसका चिन्तन मूर्त्त एवं प्रत्यक्ष वस्तुओ के बारे मे अधिक होगा, वह अमूर्त्त और अप्रत्यक्ष वस्तुओ का अधिक चिन्तन नही कर सकता।

(३) इस काल मे बालको मे कुछ विशिष्ट मानसिक रुचियाँ दिखाई पड़ती हैं, किन्तु वे चिरस्थायी नही होती, प्रायः वातावरण के परिवर्तन के साथ उनमे भी परिवर्तन आ जाता है। ९ और १० वर्ष की उम्र मे बालक की इन विशिष्ट योग्यताओ मे जिनमे वह विशेष दक्ष है, प्रौढता नही आती है। उसकी सामान्य योग्यताओं मे भी १४ या १५ वर्ष या इससे भी आगे की उम्र मे विकास होता रहता है।

विद्यालय के पाठ्य-विषयो के प्रति बालको की रुचि मे बहुत ही उतार-चढाव रहता है। उनकी रुचि के परिवर्तन का कारण प्रायः अध्यापक अथवा विषय-वस्तु का परिवर्तन होना है। रुचियो की इस परिवर्तनशीलता का उत्तरदायित्व मुख्यतः अध्यापन विधि के ऊपर होता है।

(४) उत्तर-बाल्यावस्था मे बालक के सामाजिक व्यवहार में बहुत अन्तर आ जाता है। सामूहिकता की प्रवृत्ति उस अवस्था तक पूर्ण परिपक्व हो जाती है। बालक एक दल अथवा समूह का सदस्य बन जाता है। किन्तु इन दिनो उसमे परमार्थ और आत्म-बलिदान की भावना अधिक दिखाई नही पड़ती। उसका व्यवहार अधिकतर समाज द्वारा उसकी बड़ाई और निन्दा पर आधारित होता है। इन दिनो वह टोली के अधिकार को ही सर्वशक्तिशाली मानता है।

(५) ८ या १० वर्ष की उम्र मे बालक-बालिकाएँ अपने वर्ग के व्यक्तियो से ही खेलना पसन्द करते हैं और इस प्रकार बालक-बालको की टोली और बालिका-ओ की टोलियाँ अलग बनती हैं। बालक साहस के खेलों में भाग लेना प्रारम्भ

कर देते हैं और बालिकाएँ सरल किन्तु कौशल के कार्यों मे भाग लेना अधिक पसद करती हैं।

इस अवस्था मे रचनात्मक कार्यों के करने एवं उपार्जन की प्रवृत्ति भी प्रमुख हो जाती है। लडके औजारो के द्वारा वस्तुओ के बनाने मे रुचि लेते हैं। ऐसे खेल या कार्य जिनको बालक को अपने हाथ से खुद करना पडे, उसे अत्यन्त प्रिय होते हैं। लडकियाँ कपडो मे गुडिया बनाना, कपडा सीना, कढाई करना बहुत पसद करती हैं। उनमे वस्तुओं को एकत्रित करने की प्रवृत्ति भी बहुत अधिक पाई जाती है।

(६) बालको मे नयी खोज करने की और घूमने की प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ जाती है। बर्ट के अनुसार लगभग ६ वर्ष की अवस्था पर आवारा घूमने, बिना छुट्टी लिये पाठशाला से भाग जाने एवं आलस्य आदि सामान्य बालापराध हैं। बालक इधर-उधर घूमना अधिक पसंद करता है। जब कभी उन्हे समय मिलता है, वे घर से अथवा पाठशाला मे भाग निकलते हैं और निरुद्देश्य इधर-उधर घूमते फिरते हैं। एक निपुण अध्यापक बालको की इस प्रवृत्ति का लाभ उठाकर, इनके लिए समुचित कार्य का आयोजन कर इसका सदुपयोग कर सकता है। बालकों की इस उम्र पर "बालचर" और "बालचारिका" पद्धतियो पर अधिक जोर देना चाहिए। उन्हे बाहर भ्रमण के लिए ले जाना चाहिए। अच्छी इमारतो, ऐतिहासिक स्थानो को दिखाने से उनकी घूमने की प्रवृत्ति की भी तुष्टि होती है और उनका ज्ञान-वर्द्धन भी होता है।

(७) विद्यालयो मे बालक इस अवस्था मे दुराग्रह, हठ और उपद्रव की बहुत-सी समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं। एक अध्यापक को बडी कुशलता एवं युक्तिपूर्वक इन परिस्थितियों का सामना करना चाहिए तथा उन समस्याओं को हल करना चाहिए। जो बालक हठी अथवा दुराग्रही है, अध्यापक को उसके प्रति प्रेमपूर्वक और सज्जनता से व्यवहार करना चाहिए किन्तु उसके प्रति किसी प्रकार का अशक्त व्यवहार नही दिखाना चाहिए।

(८) पियाजे[1] महोदय ने छोटे-छोटे बालको का अध्ययन किया और वे इस निर्णय पर आये कि ७ या ८ वर्ष की उम्र तक उनमे किसी वस्तु के प्रति कर्त्तव्य-भावना एवं सही अथवा गलत की धारणा उन प्रौढ़ व्यक्तियो की मान्यता के आधार पर होती है जिनकी वह इज्जत करता है। श्रद्धेय जिसे सही और मान्य समझते हैं, उन्हीं के अनुसार बालक भी अपनी धारणा बना लेते हैं। इसके बाद वह अवस्था आती है जबकि बालक अपने बडो की आज्ञा को नहीं मानता है। वह स्वनिर्मित नियमो को ही पसद करता है और उन्हीं को अपने मौलिक ढङ्ग से प्रयोग मे लाता है।

११ अथवा १२ वर्ष की अवस्था के लगभग बालक मे नैतिक भाव विकसित होता है। यह विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान मे रखना है। बालक ६ वर्ष से किशोरा-वस्था तक समाज मे पाये जाने वाले नैतिक सिद्धान्तो मे प्रबल आस्था रखता है।

---

1. Piagets.

शील के सम्बन्ध में वह समाज के निर्णय का विरोध नहीं करता, उसे ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेता है। उसकी शील-सम्बन्धी धारणा पर जनमत का बहुत प्रभाव होता है। किन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बालकों में भी वैभाविक भेद होते हैं, अतः कोई एक ऐसा १० वर्ष का बालक हो सकता है जिसमें समाज द्वारा गृहीत नैतिक सिद्धान्तों और आचरण से भिन्न कुछ स्वतन्त्र धारणाएँ भी पाई जायँ। वह परम्परागत सामाजिक न्याय को ही न्याय न समझकर शील-सम्बन्धी अपने स्वयं के विचार रखता हो और उन्हीं के अनुकूल आचरण करता हो।

चूँकि बालक अपने दल द्वारा स्वीकृत सदाचार के नियमों को ही मान्यता देता है, इसलिए वह अपने दल के लिए अध्यापक से झूठ भी बोलता है। इसी कारण बहुत-से अध्यापक अपनी अनुपस्थिति में बालकों द्वारा कक्षा में की गई गुस्ताखी के कारणों को जानने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते हैं। कोई बालक सत्य को कहने के लिए आगे नहीं बढ़ता, क्योंकि वे जनमत एवं दल के अन्य लोगों से डरते हैं। वे सोचते हैं कि यदि उन्होंने अपने दल द्वारा किये उपद्रव का सत्य उद्‌घाटन कर दिया तो बाद को उनका दल उन्हें दण्डित करेगा कि वे दल के प्रति वफादार क्यों नहीं रहे। साथ ही 'कायर' की उपाधि भी मिलेगी। ऐसी परिस्थिति में अध्यापक यदि समस्या के सही कारणों को जानना ही चाहता है तो उसे बालकों से अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण और प्रेम का व्यवहार करना चाहिए। अध्यापक को इसी प्रकार के मृदुल एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के लिए बालकों को भी प्रोत्साहित करना चाहिए, विशेष रूप से जब वे पाठशाला के बाहर वृहत् समाज के सम्पर्क में आते हैं अथवा समाज-सेवा का बीड़ा उठाते हैं। 'बालचर'[1] तथा 'बालचारिका' पद्धतियाँ बालकों की सामूहिक भावना का अधिक विकास करेंगी, अतः उनको अधिकाधिक प्रयोग में लाना चाहिए। बालक-बालिकाओं को समाज-सेवा करना और समाज के प्रति विनम्र होना सिखाना चाहिए। इसी से अच्छे समाज का निर्माण हो सकता है।

कैशोर्य एवं लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षण[2]

यह कहा जाता है कि शैशव में बालक अपने को अपने आत्म से व्यवस्थित करना सीखता है और अपने व्यक्तित्व को पहचानने की चेष्टा करता है। प्रायः विद्यालय काल में बालक अपने परिवार के साथ व्यवस्थित होना सीखता है। जब वह मध्य बाल्यावस्था को प्राप्त होता है तो वह स्कूल के वातावरण से व्यवस्थापन करना सीखता है। यह व्यवस्थापन एक अत्यन्त कठिन प्रक्रिया है और प्रायः बालक के आत्म, कुटुम्ब तथा पाठशाला के व्यवस्थापन पर अधिक निर्भर रहता है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से 'कैशोर्य' जीवन के प्रथम चरण की सर्वश्रेष्ठ पुनरावृत्ति मानी जाती है। यह कुन्तलाकार विकास की दूसरी आवृत्ति होती है। इस समय पर

1. Scout. 2. Adolescence and Sex-Education.

आकर बालक पुन. अनस्थिर हो उठता है। उत्तर-बाल्यकाल मे जो स्थिरता आती है वह समाप्त हो जाती है और शारीरिक एवं मानसिक व्यवस्थापन पुन: अस्त-व्यस्त हो जाता है। कभी-कभी वह अपने को पुन: वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए शिशु की तरह व्यवहार करता है।

'कैशोर्य' व्यक्ति के जीवन की वह अवस्था है जो बाल्यकाल की समाप्ति पर प्रारम्भ होती है और प्रौढावस्था के प्रारम्भ होने पर समाप्त होती है। बालिकाओं मे इस अवस्था का आगमन रजोदर्शन से माना जाता है। बालकों में कैशोर्य के लक्षण बालिकाओं के समान स्पष्ट नही होते। फिर भी उनमे तारुण्य आने पर दाढी-मूँछों के रूप मे हलकी रोमावलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। हम इसके बारे मे पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि वैयक्तिक भेद होने के कारण विभिन्न व्यक्तियों मे किशोरावस्था विभिन्न उम्र मे आती है। साथ ही सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भी उस उम्र मे भिन्नता पायी जाती है। जैसे, अपने देश मे शहरों की संस्कृति से दूर बसे कुछ ग्रामों मे अब भी १४ वर्ष का बालक पूर्ण विकसित एव प्रौढ माना जाता है, उसकी शादी हो जाती है तथा उसके सन्तानें भी होती हैं। पुरानी विचारधारा के लोगों की यह धारणा थी कि यदि प्रथम रक्तस्राव से पहले ही लडकी का विवाह नही किया गया तो उन्हें पाप लगेगा। इसका परिणाम यह होता था कि बालक-बालिकाएँ बाल्यावस्था के उपरान्त किशोर जीवन का अनुभव ही नही कर पाते थे और उन्हें प्रौढ पुरुष एवं प्रौढ स्त्री के जीवन मे पदार्पण करना पड़ता था।

इन बालकों और बालिकाओं मे जैसे ही सन्तानोत्पादन की क्षमता आ जाती थी, उनसे यह आशा की जाती थी कि वे प्रौढ व्यक्तियों जैसा आचरण करेंगे। फल यह होता था कि अपरिपक्व बालक-बालिकाओं मे सन्तानें उत्पन्न होने के कारण समाज का ह्रास होता था और सन्तानें शारीरिक, मानसिक दृष्टि से उतनी उत्कृष्ट नही होती थीं जितनी कि होनी चाहिए। जैसे ही समाज में कुछ जागृति की भावना आई, इस प्रचलन की कड़ी निन्दा की गई और घोर विरोध हुआ। आजकल अब पढे-लिखे समाज में बालक-बालिकाओं मे विवाह किशोरावस्था के उपरान्त ही होता है। वे छोटी उम्र पर परिणय होने के दुष्परिणामों को समझ गये हैं। फिर भी उनको बडे शीघ्र ही अब भी प्रौढ समझ लिया जाता है और उन्हें प्रौढ व्यक्तियों की तरह आचरण करने पर बल दिया जाता है। भारत मे व्यावहारिक रूप मे किशोर-काल की बहुत छोटी कालावधि होती है, अत: उसकी औसत सीमा क्या होगी, इसके लिए ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। भारत में किशोर-काल की ठीक-ठीक अवधि को जानने के लिए विविध समाजों से एक बड़ी राशि में आँकड़ों को एकत्रित करने की आवश्यकता है, तभी हम किसी प्रामाणिक निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

वैयक्तिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता के साथ-साथ किशोर-काल जलवायु की भिन्नता के कारण भी विभिन्न देशों मे विभिन्न उम्र पर पाया जाता है। कैशोर्य के

चिह्न—रजोदर्शन, मूँछों की रोमावलि—एक गर्म देश में शीघ्र दृष्टिगोचर होने जबकि ठंडे देशों में कुछ वर्ष उपरान्त। उदाहरण के लिए, एक भारतीय बालिका ऋतुस्राव सामान्यतः १३ वर्ष की उम्र से प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु इङ्गलैंड नार्वे-स्वीडन में ऋतुस्राव १६ वर्ष के लगभग प्रारम्भ होता है। अतः किशोराव का प्रारम्भ-काल उसकी काल-अवधि, वैयक्तिक भिन्नता, सांस्कृतिक वातावरण स्थानीय जलवायु पर निर्भर रहते हैं। उसमें भिन्नता होने से कैशोर्य के प्रारम्भ की उम्र और उसका काल भी विभिन्न हो जाता है।

किशोर-काल के विशेष अध्ययन की आवश्यकता[1]

एक अध्यापक यह अनुभव करेगा कि हाई स्कूल के अन्तिम वर्षों में अथ कॉलेज जीवन के प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्षों में बालक प्रायः किशोरावस्था में होता है। चूँकि इस अवस्था में नयी-नयी और विशिष्ट समस्याएँ उठ खड़ी होती अतः अध्यापक को चाहिए कि वह समस्याओं के स्वरूप और उनके कारण को भल भाँति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न करे जिससे वह उन समस्या को भलीभाँति हल करने में सफल हो।

एक किशोर न तो बालक होता है, और न प्रौढ़। इस लक्ष्य को अध्याप एवं अभिभावक-गण प्रायः भुला दिया करते हैं और वे एक क्षण तो किशोर को व छोटा बालक ठहराते हैं, उसे किसी कार्य को स्वतन्त्र रूप से अपनी योजना के अनुस करने के अयोग्य बताते हैं और दूसरे ही क्षण किशोर के द्वारा किसी कार्य के सम्प न होने पर अथवा उसके किसी सही निश्चय पर न जाने से उसे हेय दृष्टि से देख हैं। कहते हैं कि "अब बालक नहीं हो, ये कार्य तो तुम्हें करने ही चाहिए।" उदाहर के लिए, जैसे कुछ समय पूर्व अभिभावक किशोर को उसके सुदूर स्थित मित्र के घ एकाकी जाने के लिए मना करेंगे, किन्तु दूसरे ही क्षण उसे सब्जी खरीदने के लि अकेला बाहर भेज देंगे अथवा घर की अन्य आवश्यक वस्तुओं को बाजार से लाने लिए स्वतन्त्रतापूर्वक भेज देंगे। यदि खरीद में उससे कोई त्रुटि हो जाती है तो उस बाल आचरण के लिए उसका मजाक बनाया जाता है। ये सब मनोवैज्ञानिक बा बालक में संवेगात्मक समस्याओं को जन्म देती हैं।

किशोर-काल का अध्ययन अत्यन्त गम्भीर एवं विशिष्ट प्रकार से करना चाहि क्योंकि इस काल में बाल-अपराधों की संख्या सबसे अधिक होती है। बालक सिगरेट पीना सीख जाता है, स्कूल से बिना छुट्टी लिये ही भाग जाता है। इन सभी अप- राधों की समस्या को हल करने के लिए समुचित उपाय ढूँढने से पूर्व, अध्यापक को इस अवस्था और उसकी विलक्षणताओं का अध्ययन कर लेना चाहिए। उन विशेष- ताओं को पहचाने बिना कोई भी उपचार सफल सिद्ध नहीं हो सकता।

इस अवस्था में काम-सम्बन्धी भावना की बहुत प्रधानता होती है और विषम-

---

1. Need for a Special Study of Adolescence Period.

लिङ्गी के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। अतः अध्यापक और अभिभावकों क
पहले ही निर्णय कर लेना चाहिए कि इस अवस्था में किस प्रकार काम-सम्बन्धी
देनी है तथा काम-भावना का कैसे समुचित व्यवस्थापन करना है।

किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएँ[1]

(१) **मानसिक अथवा बौद्धिक विकास**[2]—किशोरावस्था में मानसिक वि
बहुत शीघ्रता से एवं बहुत अधिक मात्रा में होता है। यह वह समय है जबकि
अपने विकास के चरम-बिन्दु पर पहुँचती है। किशोरावस्था के प्रारम्भ से ही
विकास प्रारम्भ होता है और उसके अन्त तक पहुँचते-पहुँचते सीखने की योग्यत
सम्पन्न हो जाती है।

सामान्यतः निम्नलिखित लक्षण किशोरावस्था में स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं

(क) अमूर्त चिन्तन एवं तर्क-शक्ति की अपेक्षाकृत अधिक योग्यता।

(ख) अध्ययन को केन्द्रित करने की अधिक क्षमता एवं स्मृति-विस्तार
अधिक योग्यता।

(२) **पढ़ने में रुचि**[4]—किशोरावस्था में बालकों में पुस्तकों को पढ़ने में
ही रुचि उत्पन्न हो जाती है। लड़के साहसिक कार्यों की कहानियों, रोमानी उप
को पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं तथा लड़कियाँ गृह, स्कूल-जीवन एवं प्रेम-स
कहानियों का अध्ययन करना अधिक पसन्द करती हैं।

डा० बैल, ह्वीलर और वैलिस्टाइन प्रभृत मनोवैज्ञानिकों ने अपने अनुस
से यह सिद्ध कर दिया है कि किशोरावस्था में बालकों में पढ़ने के प्रति तीव्र
उत्पन्न होती है। किन्तु अभी तक कोई भी विद्वान् वैज्ञानिक विधि द्वारा किसी
णिक निष्कर्ष पर नहीं आ सका है कि बालकों में किस प्रकार की पुस्तकों के प्रति
उत्पन्न होती है। पश्चिम में इस दिशा में जो परीक्षण हुए, उनमें प्राप्त निष्क
विश्वसनीय और प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। इसलिए इस दिशा में अभी
संधान की अपेक्षा है।

भारतवर्ष में यह कार्य विभिन्न विश्वविद्यालयों में इस जानकारी को
करने के लिए हुआ कि स्कूल-अवस्था में, कॉलेज-स्तर पर और विश्वविद्याल
पर बालकों में किस प्रकार की पुस्तकों को पढ़ने की रुचि होती है। किन्तु इन
संधानों का क्षेत्र सीमित था तथा जितने विद्यार्थियों पर परीक्षण किये गए, वह
भी अपर्याप्त थी।

व्यावहारिक एवं प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता
किशोरावस्था में बालक जासूसी, रोमानी एवं सस्ता साहित्य पढ़ने में अ
भावना से सम्बन्धित है, अधिक रुचि लेता है। लेखक के विद्यार्थी जीवन में ऐसे

1. Chief Characteristics of Adolescence Period 2. Ment
Intellectual Development 3. Memory Span. 4. Reading Intere

वालों में जो केवल हिन्दी, उर्दू में (...) जासूसी और प्रेम की कहानियों एवं रूमानी पुस्तकों के पढ़ने में ही बड़ी रुचि रखते थे। वे पुस्तकें प्रायः अंग्रेजी की जासूसी प्रेम, रहस्य आदि पर लिखी पुस्तकों की नकल या रूपान्तर हुआ करती थीं। अधिकतर जनता में यह देखा जाता है कि किशोर किशोरी का अपना साहित्य एवं विज्ञान-पत्रिकाओं के पढ़ने में बड़ी रुचि रखते हैं। किन्तु इस कथन को पुनः दुहराया जा सकता है कि किशोर की नहीं-नहीं रुचि को जानने के लिए वैज्ञानिक साधनों के अभाव में हम अब तक किसी पूर्ण निश्चित परिणाम पर नहीं आ सके हैं।

साहित्यिक और पढ़ने की प्रवृत्ति के विकसित होने के कारण किशोर में सर्जनात्मक शक्ति का विकास होता है। अतः उसके लिए वाद-विवाद प्रतियोगिता, सर्वे करने एवं विविध विषयों पर चर्चा करने के लिए पाठशाला में साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन इस दृष्टि से होना चाहिए कि प्रत्येक बालक को अपने दृष्टिकोण के प्रदर्शन का समय मिले। अतः उनकी भावनाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए वाद-विवाद अथवा भाग विचारपूर्ण चर्चा, भाषण आदि में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

(९) कल्पना की बहुलता[1]– किशोरावस्था में बालक बहुत ही तरंगपूर्ण एवं कल्पनाशील होता है। उसमें कल्पना का सा अतिरेक हो जाता है। वह रंगीन दुनिया की रंगीनियों की सुखद छाया में ही विश्राम लेना चाहता है। उसमें दिवास्वप्न और व्यर्थ के विचारों का भी बाहुल्य होता है। डा० बर्न ने किशोर और किशोरियों का अध्ययन किया और इस परिणाम पर आये कि बाल-बालिकाओं में केवल ४% ऐसे होते हैं जिन्हें दिवा-स्वप्न कभी नहीं आते। १३ वर्ष की उम्र के उपरान्त लड़कियों में ४५% तथा लड़कों में २७% ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनमें दिवा-स्वप्न प्रवृत्ति अधिक बढ़ जाती है।

ये दिवा-स्वप्न अपने सामान्य रूप में किशोर के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं। कभी-कभी ये कहानी लिखने, कविता बनाने के रचनात्मक कार्यों में परिणत हो जाते हैं और बालक को लाभ पहुँचाते हैं।

दिवा-स्वप्न कभी-कभी व्यक्ति की उन नैसर्गिक इच्छाओं की आंशिक पूर्ति करने में सहायक होते हैं जिन्हें व्यावहारिक जगत में पूर्ण करने की क्षमता उस व्यक्ति में नहीं होती। जैसे, यदि एक बालक जो क्रिकेट खेलने में बहुत ही कमजोर है, दिन में ही अपनी कल्पना की आँखों से यह स्वप्न देखता है कि वह मनकद और हजारे को बल्लेबाजी में पराजित कर रहा है तो इससे उसे कुछ तुष्टि मिलती है।

दिवा-स्वप्न हानिकारक भी होते हैं, वे व्यक्ति की काम-वासना को उत्तेजित कर देते हैं जिसका प्रभाव उसके मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है। इन दिवा-स्वप्नों के कारण ही कभी-कभी किशोर में भी समाज-विरोधी भावनाओं की अभिवृद्धि होती है, उसका व्यवहार असामाजिक बन जाता है। 'वर्ट' के अनुसार लगभग

---

1. Exuberant Imagination.

सभी बालपराधी किशोर-काल में दिवा-स्वप्न-द्रष्टा होते हैं। उन किशोर बालकों के लिए तो ये दिवा-स्वप्न अत्यन्त हानिकारक होते हैं जो सदैव उनमें ही डूबे रहते हैं, और जिन्हें दिवा-स्वप्न देखने की अधिक आदत पड़ जाती है, वे उसी में आनन्द लेने लगते हैं। वे व्यावहारिक जीवन में अपनी समस्याओं का सामना कर, उसकी कठिनाइयों को बरदाश्त कर उनके लिए हल नहीं ढूँढ़ते, वरन् एक स्थान पर बैठकर अपनी कल्पना की उड़ान में दिवा-स्वप्न देखते हुए वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण भी हो जाते हैं और सारी कठिनाइयों पर निमिष मात्र में विजय प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार वे कल्पना-प्रिय, पलायनवादी और किंचित् कठिनाई आने पर भी डरने वाले भीरु बन जाते हैं।

किशोर की कल्पना-बहुलता कभी-कभी एक अच्छे कवि, कलाकार, चित्रकार या संगीतज्ञ में परिणत हो जाती है। वह अपनी कल्पना में आदर्शों का निर्माण करता है। वह सोचता है कि सिने-जगत का एक लब्ध-प्रतिष्ठ अभिनेता अथवा अभिनेत्री बनेगा। फिर वह अपने चुने हुए आदर्शों को प्यार करने लगता है और अपने आदर्श के अनुरूप अपने को बनाने की चेष्टा करता है। यह सभी किशोर के भावी जीवन की सफलता के लिए परमोपयोगी है किन्तु उसे यह समझना चाहिए कि केवल रंगीन कल्पना की तरंगों में डूबे रहना हानिकारक होगा। उसे अपने आदर्श के अनुकूल परिश्रम भी करना चाहिए और उसके आदर्श का महल सदैव यथार्थ की दृढ़ नींव पर ही होना चाहिए, अन्यथा वह व्यवहार की चपेट से खण्ड-खण्ड हो जायगा और उसका मन भग्न-आशाओं का घर बन जायेगा।

किशोरावस्था जीवन का वह काल है, जिस समय बालक में परमार्थ-भावना अत्यन्त सक्रिय होती है। वह अपने देश, मानव-जाति एवं अपने आदर्श व्यक्ति की सेवा करना चाहता है। यह भावना प्रायः अपने माँ-बाप की सेवा में परिणत हो जाती है। इसके साथ यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि किशोरों की यह परहित भावना उनकी आत्माभिव्यक्ति और उनकी महत्त्वाकांक्षाओं के साथ जुड़ी होती है। बालक परहित के कार्यों को प्रायः इस भावना से प्रेरित होकर अधिक करते हैं कि उन्हें उन कार्यों द्वारा महान् समझा जायगा, समाज में उनका सम्मान होगा। इस प्रकार आत्म-प्रदर्शन की भावना की तुष्टि भी हो जाती है।

(४) शारीरिक विकास[1]—किशोरावस्था में व्यक्ति का शारीरिक विकास भी बड़ी तीव्रता से होता है। उत्तर-बाल्यकाल की स्थिरता गत्यात्मकता में परिवर्तित हो जाती है। किशोर के सभी अङ्गों में बहुत परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन किशोर और अध्यापक, दोनों के ही लिए अत्यन्त महत्त्व रखता है, क्योंकि वैयक्तिक और उनकी विलक्षणताओं को समझे बिना बालक का ठीक-ठीक शिक्षण नहीं हो सकता। किशोर इस अवस्था पर आकर अपनी मांसपेशियों के विकास में रुचि लेता

1. Physical Development.

आरम्भ कर देता है और अपने स्वास्थ्य के बढ़ाने एवं मांसपेशियों को सुन्दर, बलिष्ठ एवं गठित बनाने के लिए वह तैरना, डम्बल से व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि विविध प्रकार के व्यायामों में अत्यन्त रुचिपूर्वक भाग लेना प्रारम्भ कर देता है। बालक की इस किशोर-कालीन प्रवृत्ति का लाभ उठाने के लिए अभिभावक और अध्यापकों को चाहिए कि बालकों को खेलने और व्यायाम करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करें तथा इसके लिए प्रोत्साहन भी दें।

किशोरावस्था में बुद्धि भी परिपक्वावस्था को प्राप्त होती है। अतः जो कठिन एवं जटिल विषय प्रथम नहीं पढ़ाए जा सकते थे, अब उन्हें सफलतापूर्वक पढ़ाया जा सकता है।

बालकों में अन्य विभिन्नताओं के समान उनके शारीरिक विकास में वैयक्तिक भिन्नता होती है। कोई प्रारम्भ से ही हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होता है तथा समय पर आकर पूर्ण तारुण्य को प्राप्त होता है। कोई शुरू से ही कमजोर, दुबला-पतला होता है और बहुत समय उपरान्त पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त होता है। हमने अभी बालक के सामाजिक विकास के अध्याय में देखा कि देर से तरुणाई आने से क्या-क्या दोष बालक में आते हैं और वे कितने अधिक हानिप्रद होते हैं।

अध्यापक द्वारा बालकों को इस प्रकार के शारीरिक कार्य करने के लिए देने चाहिए जिसका प्रत्येक बालक को अपना स्वास्थ्य बनाने का पूरा-पूरा अवसर मिले। बहुत-से ऐसे खेल हैं जिनमें नाटे कद के बालक और बालिकाएँ ही सफलतापूर्वक एवं अधिक कौशल से खेल सकते हैं, जिनमें अधिक लम्बाई और शारीरिक शक्ति की आवश्यकता नहीं, वरन् कौशल की अधिक महत्ता होती है। अध्यापक को सहगामी क्रियाओं का चुनाव और आयोजन इस प्रकार से करना चाहिए कि विभिन्न शारीरिक क्षमता वाले सभी बालक उन कार्यों में भाग ले सकें जो उनकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप हों, और अपना समुचित शारीरिक विकास कर सकें।

(५) संवेगात्मक विकास[1]—किशोरावस्था में बालक अत्यन्त संवेगात्मक अवस्था में रहता है। उसमें भावुकता, अस्थिरता, घबराहट, भावों के उतार-चढ़ाव एवं अहं चरम सीमा पर होता है। वह कभी-कभी बहुत उत्तेजित हो उठता है और कभी अत्यन्त मलीन मन और खिन्न दिखाई पड़ता है। उसके संवेग आनन्द और उदासीनता के बीच में आते रहते हैं। इस काल में जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में आने वाले संवेगों की पुनरावृत्ति होती है। यदि उस समय इन संवेगात्मक संघर्षों को भली-भाँति हल नहीं किया गया तो किशोरावस्था में वे अधिक तीव्र रूप में प्रकट होते हैं।

जीवन के प्रारम्भ में यदि बालक पर माता-पिता का बहुत कड़ा अनुशासन रहता है तो वह किशोर-काल में उद्दण्ड और विद्रोही बन जाता है तथा अपने को स्वतन्त्र बनाने की चेष्टा करता है। और, यदि इस अवस्था में भी उसे कठोर रूप से

1. Emotional Development.

नियन्त्रित किया गया तो वह जीवन भर के लिए बिगड़ जायगा और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए वाममार्गी बन जायगा।

वैलेन्टाइन महोदय ने विश्वविद्यालय के २०० छात्रों का अध्ययन किया जिनकी उम्र २१ या २२ वर्ष की थी। निरीक्षण करने से पता चला कि उनमें धर्म और सामूहिक मेलों के प्रति बहुत अधिक रुचि थी। महिला सदस्यों में अपने ही वर्ग के प्रति—स्त्रियों के प्रति—अधिक रुचि पाई गई तथा उनमें दुःखात्मक संवेगों, उदासीनता और खिन्नता की मात्रा भी अधिक पाई गई। पुरुष सदस्यों में विषमलिङ्गी के प्रति अधिक आकर्षण दिखाई पड़ा। उनमें भी खिन्नता की मात्रा बहुत अधिक थी और किन्हीं-किन्हीं में तो वह आत्महत्या की सीमा तक पाई गई। कुछ पुरुष सदस्य ऐसे भी थे, जो भविष्य के प्रति आस्थावान् और महान् बनने के अभिलाषी थे।[1]

इसी अध्ययन के सिलसिले में वैलेन्टाइन महोदय ने उन्हीं विद्यार्थियों द्वारा लिखे गये २०० लेखों को जो उनके किशोर जीवन के अनुभव पर आधारित थे, प्राप्त किया। यह लेख दूसरे से गोपनीय रखकर लिखे गये थे, उन लेखों के आधार पर वैलेन्टाइन महोदय इस निष्कर्ष पर आये कि "युवा व्यक्तियों की मानसिक परेशानियों का मूल कारण उनकी अत्यधिक आत्म-चेतना[2], आत्म-हीनता की विचित्र भावना, माता-पिता से कटु सम्बन्ध, कभी-कभी धर्म के प्रति अनास्था और उसके सिद्धान्तों के प्रति संदेह, कभी-कभी काम-संवेग के प्रथम अनुभव से उसके प्रति भय या घृणा की भावना, अथवा बालिकाओं में अपूर्ण यौवन की दशा में ही किशोर अथवा पुरुषों द्वारा समागम, तथा कभी-कभी सामाजिक बुराइयों-जनित विपत्ति जिसका निवारण करने में व्यक्ति तब तक अपने को असमर्थ पाता है, जब तक कि उसे उन्हें हल करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दे दी जाती।"[3]

किशोर सफलता-प्राप्ति के लिए कुछ अवसर चाहता है, वह यह चाहता है कि वह कुछ ऐसा कार्य करे जिससे लोग उसकी सहायता करें, उसे बहुत कुछ समझें। किसी न किसी प्रकार उसकी आत्म-प्रदर्शन की तीव्र भावना रास्ता खोजना चाहती है। अध्यापक को चाहिए कि उसे ऐसे अवसर प्रदान करे जिनके द्वारा वह इच्छित कार्यों को पूर्ण कर दूसरे लोगों की सहायता का पात्र बन सके और वह अपनी आत्म-प्रदर्शन की भावना की परितुष्टि भी कर सके।

(६) सामाजिक सम्बन्ध[4]—किशोरावस्था सामाजिक व्यवस्थापन का समय है। इस काल-अवधि में व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों के बहुत-से पाठ पढ़ता और बहुत

---

1 Valentire . *Psychology and Its Bearing on Education*, pp. 563-64

2. Self-Consciousness

3. Valentine : *Psychology and Its Bearing on Education*, p. 565.

4. Social Relations.

सामाजिक अनुभव प्राप्त करता तथा सामाजिक परिस्थितियों में अपने को व्यवस्थित करने की चेष्टा करता है। किशोर-काल के प्रारम्भ में बालक और बालिकाओं की मित्रता तीव्र संवेगों के ऊपर आधारित होती है। उत्तर किशोर-काल में इस मित्रता का आधार वैयक्तिक दृष्टिकोण एवं रुचियों की समानता होती है। इस काल की मित्रता में एक-दूसरे के प्रति दृढ़ प्रेम एवं प्रगाढ़ भक्ति होती है। वे एक-दूसरे के प्रति वफादार होते हैं।

मैत्री-भावना के विकास की प्रथमावस्था में अपने ही वर्ग के प्रति प्रेम होता है, जैसे लड़के लड़कों से और लड़कियाँ लड़कियों से मित्रता करना पसन्द करती हैं। दूसरी अवस्था में किसी भी लिङ्ग के किन्तु उम्र में बड़े लोगों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होता है तथा तीसरी अवस्था में मैत्री का विकास केवल समान उम्र के विषमलिङ्गी के प्रति होता है।

किशोर को अपने आदर्श पर ही पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रहना चाहिए। वह अपने आदर्श अथवा उद्देश्य से प्रेरणा तो ग्रहण करे किन्तु उसी पर उसे पूर्णरूपेण निर्भर रहना उचित नहीं, अन्यथा उसका सामाजिक विकास रुक जायगा। अतः उसे जीवन के अन्य स्रोतों से भी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

विषमलिङ्गी के प्रति प्रेम, किशोर के रुचि-रुझान इत्यादि को जानने में बहुत सहायता पहुँचाता है। यह जानकारी भावी जीवन में उनके साथ सह-अस्तित्व स्थापित करने और मधुर सम्बन्धों को जोड़ने में भी अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती है। दुर्भाग्यवशात् हमारे देश में बालक इन अनुभवों से पूर्णरूपेण वंचित रहता है। बालक और बालिकाओं की पृथक्करण की नीति को अपनाने के कारण उनमें मेलजोल नहीं होता। वे किन्हीं सामाजिक व सामूहिक कार्यों में साथ-साथ भाग नहीं ले सकते अतः वे एक-दूसरे से बिलकुल अपरिचित रहते हैं। यह अनभिज्ञता व्यक्तियों में बहुत-सी बुराइयों को जन्म देती है और प्रौढ़ होने पर भी पुरुष अन्य स्त्रियों से और स्त्रियाँ अन्य पुरुषों से स्वतन्त्र रूप से एवं दृढ़ता से बातचीत भी नहीं कर सकती। बालक-बालिकाओं की यह पृथकता कभी-कभी भावना-ग्रन्थियों और दिवा-स्वप्नों को भी जन्म देने का कारण बनती है जिससे व्यक्ति का भावी जीवन उपर्युक्त दोषों के अतिरेक से भर जाता है तथा उसके व्यक्तित्व का संतुलित और सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो पाता। उनका सामाजिक व्यवस्थापन भी अधूरा रहता है।

(७) लिंगीय विकास[1]—डॉ० जॉन के अनुसार शैशवकालीन काम-भावना की पुनरावृत्ति किशोरावस्था में अधिक तीव्र एवं उच्चतर रूप में होती है। यह अवस्था उत्तर बाल्यकालीन सुषुप्त काम-भावना का जागृति-काल है। इसमें काम-प्रवृत्ति जाग्रत होकर तीव्र रूप धारण करती है तथा व्यक्ति में प्रजनन-शक्ति आ जाती है। यह सभी प्रकृति की ही देन हैं।

किशोर तरुणावस्था को प्राप्त कर सन्तानोत्पत्ति के योग्य बन जाता है और

1. Sexual Development.

लिंगीय दृष्टि से वह पूर्ण विकसित हो जाता है। काम-भावना का विकास किशोर में धीरे-धीरे होता है। उसकी तीन प्रमुख और स्पष्ट अवस्थाएँ होती हैं, जैसे—(१) स्व-प्रेम[1], (२) समानलिङ्गीय प्रेम[2], और (३) विषमलिङ्गीय प्रेम[3] की अवस्था। उपर्युक्त अवस्थाएँ व्यक्ति में एक के उपरान्त दूसरे के क्रम से आती हैं। किन्तु यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी व्यक्ति में ये तीनों ही प्रकार के प्रेम एक साथ पाये जाते हों। अतः हमें एक-एक करके सभी की चर्चा कर लेनी चाहिए; यथा—

१. स्व-प्रेम

किशोर अपने ही शरीर से प्रेम करने लगता है और अपनी काम-भावना की तृप्ति के लिए अपने लिंग-अवयव को स्पर्श करता है। *यह स्पर्श हस्तमैथुन जैसे अप्राकृतिक कार्यों तक पहुँच जाता है। मनोवैज्ञानिकों की अधिकतर संख्या इस बात*

[४-५ वर्ष का बालक माता से अगाध प्रेम करने लगता है। फ्रॉयड के अनुसार *उसमें इडीपस-कम्पलैक्स का निर्माण हो जाता है।*]

[एक शिशु में स्व-प्रेम की भावना बहुत अधिक मात्रा में पाई *जाती है।*]

पर एकमत है कि बालकों की बहुत बड़ी संख्या और बालिकाएँ भी बहुत बड़ी गिनती में हस्तमैथुन जैसी दुष्प्रवृत्ति का शिकार बनती हैं। आधुनिक काल तक मनोवैज्ञानिकों द्वारा हस्तमैथुन की प्रवृत्ति को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था। किन्तु हैवलॉक एलिस के विचार से—"यह स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। काम-भावना के जाग्रत हो जाने पर उसकी तुष्टि के विषय" के अभाव में इस प्रकार के परिणामों का होना

1. Auto Erotism. 2. Homosexuality. 3 Hetrosexuality. 4. Object

स्वाभाविक ही है। काम-भावना की पूर्ति न होने के फलस्वरूप प्रौढ़ावस्था से पहले तो इस प्रकार की क्रियाएँ दृढ़तापूर्वक स्वाभाविक ही समझी जाती हैं।"[1] आजकल किशोर द्वारा स्व-मैथुन अथवा हस्तमैथुन स्वाभाविक समझा जाता है। एक युवक के लिए उसकी स्वाभाविक काम-वासना की तृप्ति का जब कोई साधन नहीं होता, या उसके लिए दुर्लभ अथवा अप्राप्य होता है तो उसके अभाव में व्यक्ति अपनी सहजात काम-प्रवृत्ति की तुष्टि जो इस काल में आकर अत्यन्त तीव्र बन जाती है, अप्राकृतिक साधनों—हस्तमैथुन इत्यादि—से ही करता है।

प्राचीन काल में निन्दा करके कि हस्तमैथुन क्रिया द्वारा किशोर की बहुत ही शारीरिक हानि होती है तथा यह कहकर कि यह प्रवृत्ति पापमय है, व्यक्ति को बहुत ही हानि पहुँचाई जाती थी। व्यक्ति अपने को दोषी एवं पापी समझने लगता था और शारीरिक हानियों को विचार कर उसके मन में बहुत-सी संवेगात्मक उलझनें पैदा होती थीं और संवेगात्मक आघात लगता था।

चूँकि स्व-मैथुन के दोषों की अत्यधिक आलोचना करने से बालक में बहुत-सी बुराइयाँ आ जाती हैं, वह बहुत ही शर्मीला बन जाता है और अपने को दोषी समझने लगता है, अतः उसकी बुराइयों और दोषों की अधिक भर्त्सना नहीं करनी चाहिए।

[११-१२ वर्ष तक की आयु के बालकों में यह देखा जाता है कि बालक बालकों के साथ तथा बालिकाएँ बालिकाओं के साथ खेलना पसन्द करती हैं।]

1. "Its manifestation are natural, they are inevitable result of the action of the sexual impulse when working in the absence of the object of sexual desire...... ....and they are emphatically natural when they occur before adult age."

—Havelock Ellis · *Psychology of Sex.*

फिर भी स्व-मैथुन की बहुत-सी बुराइयाँ हैं ही; और उससे व्यक्ति की हानि भी हो सकती है। अतः इस प्रकार की प्रवृत्ति को हतोत्साहित ही करना चाहिए। यदि यह प्रवृत्ति प्रौढ़ावस्था तक चलती रहती है और काम-भावना की तुष्टि के लिए प्राकृतिक साधन होते हुए भी लोग इसे अपनाते हैं तो इसके परिणाम अत्यन्त हानिकारक होते हैं।
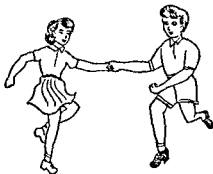
[किशोर अवस्था आते ही बालकों तथा बालिकाओं में विषमलिङ्गी प्रेम उनके खेल इत्यादि में दिखाई पड़ने लगता है।]

२. सलिंग-कामुकता[1]

यह वह अवस्था है जबकि समान लिङ्ग के व्यक्तियों में परस्पर प्रेम उत्पन्न हो जाता है और वह कामुकता की दशा को पहुँच जाता है। किशोर-काल के प्रारम्भ में लड़के लड़कों से और लड़कियाँ लड़कियों से मिलना-जुलना अधिक पसन्द करती हैं। उनमें समानलिङ्गी के प्रति ही अधिक रुचि दिखाई पड़ती है। फिर भी कुछ किशोर और किशोरियों में विषमलिङ्गी के प्रति भी रुचि देखी जाती है। भारतवर्ष में जहाँ लड़के लड़कियों से बिलकुल पृथक् रखे जाते हैं, समाज उन्हें स्वतन्त्र रूप से मिलने-जुलने की आज्ञा नहीं देता, अतः यहाँ सलिङ्ग कामुकता की अवस्था स्पष्ट लक्षित होती है। बालकों को केवल बालकों का ही साथ मिलता है और बालिकाओं को केवल बालिकाओं का ही सम्पर्क उपलब्ध होता है। फलस्वरूप, सलिङ्ग के प्रति ही उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। वे अपनी कामुकता की पूर्ति का सहज साधन उन्हें ही मानने लगते हैं। यह प्रवृत्ति केवल भारत में ही प्रचलित नहीं है, वरन् वैलेन्टाइन ने यह देखा कि स्वयं उनके देश में भी किशोर विद्यार्थियों में ५० प्रतिशत बालकों और ७२ प्रतिशत बालिकाओं में सलिङ्ग कामुकता की प्रवृत्ति पाई जाती है।

यह प्रवृत्ति उन शिक्षण-संस्थाओं में अधिक पायी जाती है, जिनमें या तो केवल बालक ही बालक पढ़ते हैं अथवा केवल बालिकाएँ। उन शिक्षा-संस्थाओं में

---

1. Homosexuality.

जहाँ बालक-बालिका साथ-साथ रहते हैं, सलिङ्ग कामुकता की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम पाई जाती है, क्योंकि वहाँ वे विषमलिङ्गी के प्रति आकर्षित हो जाते हैं और उनकी काम-भावना को स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिलती है।

सलिङ्ग कामुकता में बालक विषमलिङ्गी के स्थान पर स्वलिङ्गी को ही अपनी काम-तृप्ति के लिए स्थानापन्न समझ लेता है। इसमें व्यक्ति सुरक्षा की भावना से अनुप्राणित होता है, तात्पर्य यह है कि बड़े छोटों के प्रति अनुरक्त होते हैं। पुरुष में विषमलिङ्गी के प्रति जो सुरक्षा की भावना होती है, वही समानलिङ्गी के प्रति स्थानान्तरित हो जाती है और व्यक्ति अपने से कमज़ोर और छोटे बालकों के प्रति कामुकता प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार बालिकाएँ भी अपनी कामुकता की पूर्ति के लिए पुरुषों के अभाव में उनके स्थान पर समानलिङ्गी को चुनती हैं। इस चुनाव में वे अपने से बड़ी उम्र की बालिका को ही युवकों का स्थानापन्न बनाती हैं। चूँकि पुरुष शक्तिशाली और रक्षा करने में समर्थ होता है, इसलिए उसी के अनुरूप अपने से बड़ी बालिका को कामुकता की तृप्ति का साधन बनाया जाता है। इस प्रकार की स्थानापन्नता हमारी पाठशालाओं में बहुत ही सामान्य रूप से प्रचलित है, क्योंकि लिङ्गीय पृथक्करण की नीति से कामुकता की तृप्ति का प्राकृतिक साधन न मिलने पर ही पुरुष का स्थानापन्न स्त्री और स्त्री का स्थानापन्न पुरुष बनाया जाता है। यद्यपि अधिकतर बालक और बालिकाओं में यह प्रवृत्ति आकर्षण और अनुरक्तता तक ही सीमित रहती है, उनमें इस प्रवृत्ति का सक्रिय शारीरिक रूप बहुत कम मिलता है, फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि यह भावना विद्यालयों में प्रचलित है। इस प्रवृत्ति के कारण विद्यालयों के अन्तर्गत छात्रों में बहुत-से झगड़े भी उठ खड़े होते हैं, जो अध्यापकों के लिए एक समस्या बन जाते हैं। अध्यापकों को चाहिए कि इस प्रकार की समस्याओं का समाधान मनोवैज्ञानिक विधि से तथा काम-शोधन विधि से करें।

सलिङ्ग कामुकता अथवा समानलिङ्गी को प्यार करने की प्रवृत्ति अपमानजनक नहीं है किन्तु सक्रिय शारीरिक सम्बन्धों एवं समानलिङ्गी कामुकता की आलोचना अवश्य होनी चाहिए। कभी-कभी यह सलिङ्गीय प्रेम विषमलिङ्गीय कामुकता का स्थान ग्रहण कर लेता है और व्यक्ति अपनी कामुकता की पूर्ति स्वलिङ्गी के सक्रिय शारीरिक सम्बन्धों द्वारा पूर्ण करता है। यह प्रवृत्ति किशोर-काल के उपरान्त कभी-कभी प्रौढ़ावस्था तक भी चलती रहती है। यह अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है और किसी भी प्रकार से उच्चित नहीं ठहराई जा सकती। अत: इस दिशा में निरुत्साहित ही नहीं, वरन् इसका विरोध भी करना चाहिए, तभी व्यक्ति की वास्तविक उन्नति सम्भव है। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है केवल भर्त्सना अथवा शारीरिक कष्ट देने से इसका समाधान नहीं हो सकता है। सलिङ्ग कामुक व्यक्ति एक रोगी है और रोगी के समान ही उसके साथ व्यवहार होना चाहिए। उसके रोगों के कारणों का निदान करके उसका उपचार करना चाहिए।

भारतवर्ष मे सलिङ्ग कामुकता की प्रवृत्ति का उन्मूलन सरल नही है, क्योकि यहाँ बालक-बालिकाओ की शिक्षा पृथक्-पृथक् होती है और यह प्रवृत्ति उसी पृथक्-करण की नीति का दुष्परिणाम है। आज से २०-२५ वर्ष पहले जबकि बाल-विवाह का बोलवाला था, इस प्रवृत्ति का स्थानान्तरण विषमलिङ्गीय कामुकता मे किया जा सकता था। किन्तु समस्या गम्भीर है। यदि विद्यार्थियो को रचनात्मक कार्य मे लगा दिया जाये तो बहुत-कुछ इस प्रवृत्ति का शोधन किया जा सकता है। बालक तथा बालिकाओं को मिल-जुलकर कार्य करने के अवसर देने चाहिए।

३. विषमलिगी कामुकता की प्रावस्था[1]

इस अवस्था मे कामुकता का विषय[2] विषमलिङ्गी प्रेम होता है। इस प्रवृत्ति का विकास किशोरावस्था के उत्तर-काल मे होता है, किन्तु वह अन्य दो प्रारम्भिक प्रवृत्तियो के विकास-काल के समय उनके साथ-साथ भी पायी जाती है।

विषमलिङ्गी प्रेम मे यह भी सम्भावना हो सकती है कि दो व्यक्तियो का प्रेम विशुद्ध आदर्श के आधार पर स्थित हो, उनमे कुछ भी शारीरिक सम्बन्ध न हो। ऐसा प्रेम 'प्लाटोनिक प्रेम'[3] के नाम से पुकारा जाता है। बहुत-से लोगो की यह धारणा होती है कि यदि किशोरावस्था मे बालक-बालिकाओं को स्वतन्त्र रूप से मिलने दिया जायगा तो अनुभव विहीन और कामुकता की उत्तेजना के कारण वे अपनी काम-वासना को मैथुन के रूप मे परिणत कर देंगे जो सर्वत्र हेय एव निन्दनीय है। किन्तु यह धारणा सर्वथा सत्य नही होती। प्राय किशोर बालिकाओं से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने मे हिचकता है तथा किशोरियाँ तो स्वभाव से ही शर्मीली होती हैं, जिसके फलस्वरूप उनमे कितना हो आकर्षण क्यो न हो, उनके शारीरिक सम्बन्धो की सम्भावना कम ही रहती है, जब तक कि बालक अथवा बालिका किसी अत्यन्त दूषित वातावरण मे न पले हो। उनका प्रेम प्राय' आदर्श प्रेम की सीमा तक ही सीमित रहता है क्योकि आदर्शवादिता किशोर का एक प्रमुख लक्षण होता है।

यदि हमारे विद्यालयो और कालेजों मे किशोर और किशोरियो के लिए सम्मिलित कार्यों और सामूहिक क्रियाओ का आयोजन किया जाय तो अनुशासनहीनता और बालको द्वारा बालिकाओ को छेड़ने तथा चिढ़ाने की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है। भारतीय समाज आज संक्रान्ति वेला के किनारे खड़ा है। एक तरफ पुरानी परम्पराएँ, रुढ़ियाँ और अन्धविश्वास हैं, दूसरी तरफ नवीन चेतना और जागरण की विचारणा है। हम पुराने सिद्धान्तो की कटु आलोचना करते हैं—उनमें बुराइयाँ हैं, दोष हैं, जो हमारे समाज के विकास मे बाधक है—किन्तु नवीन सिद्धान्तो, नवीन आदर्शों को हम ग्रहण नही कर पाये हैं। उनमे आस्था रखते हुए भी उन्हे हम अपने व्यावहारिक जीवन मे उतार नही पाये हैं। इसका परिणाम हमारे नवयुवको पर बहुत बुरा पड़ता है, उनके मस्तिष्क मे संघर्ष है, अन्तर्द्वन्द्व है। वे नवीन विचारो के होते

1. Hetrosexual Phase. 2. Object. 3. Platonic Love.

है तथा दूसरे किशोरों से सम्पर्क स्थापित न करने के कारण उसमें सामाजिक ह्रास का होना सम्भव ही है, क्योंकि उसके अनेक समाज-स्वीकृत कार्यों को समाज स्वीकृति नहीं देता।

वस्तुतः हमारे समाज की वर्तमान स्थिति अत्यन्त दयनीय है। यह स्थिति प्रायः हमारे विद्यालयों और कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वैसे तो भारतीय युवकों में सभी प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह पाया जाता है किन्तु सेक्स व्यवहार के प्रति उनके मन में भारी असन्तोष है तथा इस अति मानसिक संघर्ष एवं मानसिक द्वन्द्व की समस्या को हल करने में व असमर्थ हैं। युवकों के अन्दर विपरीतलिंगी के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है। किन्तु उनसे बातचीत करने, उनसे सम्पर्क स्थापित करने की स्वीकृति समाज नहीं देता। इसका परिणाम यह होता है कि किशोर का व्यवहार असन्तुलित एवं समाज विरोधी बन जाता है। किशोर लड़कियों को छेड़ने लगता है, उन्हें चिढ़ाता है, कक्षा में बैठकर बालिकाओं की खिल्ली करता, उनके प्रति भद्दे शब्दों का प्रयोग करता है तथा साथी मित्र एवं लड़कियों के बारे में भद्दी कहानियाँ कहने में आनन्द लेता है। इन किशोर-कालीन समस्याओं का समाधान केवल एक ही विधि से हो सकता है कि बालक और बालिकाओं में सामाजिक सम्पर्क स्थापित करने का अधिक अवसर दिया जाय जिससे वे समझ सकें कि विपरीतलिंगी भी उन्हीं के समान मानव हैं, उनमें कुछ इतर विशेषताएँ नहीं। वस्तुतः उनकी लिंग-सम्बन्धी जिज्ञासा की अपूर्णता ही उन्हें असामाजिक कार्य करने और तत्सम्बन्धी समस्याओं को जन्म देने के लिए सहज रूप से प्रेरित करती है। इसलिए किशोर और किशोरियों को अधिक मिलने-जुलने, उनको सामूहिक एवं सहकारी रूप से सामाजिक कार्यों में भाग लेने की सुविधा प्रदान करनी चाहिए जिससे विपरीतलिंगी से मिलने का अभाव उन्हें खटकता न रहे। जब एक-दूसरे के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है तो उनके सम्पर्क के अभाव से जनित समस्याओं का समाधान उनके सामाजिक सम्पर्क स्थापित करने से ही हो सकता है। इसलिए उन्हें सहयोगी कार्यों और खेलों में भाग लेने का अवसर प्रदान करना चाहिए। किशोरावस्था में काम-सम्बन्धी शिक्षण[1] भी परम उपयोगी होता है। उससे किशोर की काम-सम्बन्धी जिज्ञासा की पूर्ति होती है, वह अन्धकार में भटकता नहीं है। उसे लिंग-सम्बन्धी जानकारी सही-सही और पूर्ण प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार काम-सम्बन्धी शिक्षण बालकों को उनके व्यवहार के व्यवस्थापन में बहुत सहायता पहुँचाता है।

किशोरकालीन समस्याओं की उपर्युक्त चर्चा से हम इस निर्णय पर आते हैं कि किशोर को काम-सम्बन्धी शिक्षा भी प्रदान करनी चाहिए। अतः इस चर्चा से प्रथम हमें किशोरावस्था की कुछ और विलक्षणताओं पर विचार कर लेना चाहिए, यथा—

1. Sex-Education.

(१) निर्भरता की प्रवृत्ति[1]—शिशु के समान किशोर में भी निर्भरता की प्रवृत्ति पायी जाती है। शैशव-काल में निर्भरता की जो भावना बालकों में माता-पिता के प्रति होती है, वही किशोरावस्था में आकर उस समय के किसी नेता अथवा ऐतिहासिक वीर एवं महापुरुष के प्रति स्थानान्तरित हो जाती है। किशोरावस्था के बढ़ने के साथ-साथ यह प्रवृत्ति कम होती जाती है किन्तु पूर्ण रूप से इसका विलयन नहीं हो पाता, कुछ न कुछ अंशों में यह बनी ही रहती है। बालकों की इस निर्भरता की प्रवृत्ति का लाभ उठाने के लिए अध्यापक को एक नेता की तरह व्यवहार करना चाहिए, जिससे बालक उसको ही अपना आदर्श मानें और उसी का अनुकरण करें। अध्यापक को यह चाहिए कि वह बालकों को नेता अथवा आदर्श व्यक्ति के गुणों का ही अनुकरण करने के लिए अनुप्राणित करे, व्यक्ति का नहीं। वीर-पूजा की भावना गुण-केन्द्रित होनी चाहिए—व्यक्ति-केन्द्रित नहीं, अन्यथा वह हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है।

(२) धार्मिक निर्भरता[2]—किशोरावस्था में व्यक्ति किसी एक ऐसे विषय को ढूँढता है जिसके प्रति वह अपने हृदय की समस्त निष्ठा को उँडेल सके, उसकी पूजा कर सके। बस, यहीं से किशोर में परार्थ की भावना का प्रारम्भ होता है। निर्भरता की भावना किशोर को धार्मिक सिद्धान्तों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती है। उसमें धार्मिक चेतना आ जाती है और धर्म में उसकी अभिरुचि बढ़ जाती है। धर्म के प्रति बालक में रुचि उत्तर-बाल्यावस्था से प्रारम्भ हो जाती है। इसका मूल उत्स जीवन के बहुमुखी ज्ञान से परिचित होना होता है। यही प्रवृत्ति किशोरावस्था में आकर और अधिक विकसित हो जाती है।

किन्तु किशोर में धर्म के प्रति अविश्वास की भावना भी जाग्रत होती है। वह अपनी सभी नैतिक समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता तथा उन वयोवृद्ध लोगों के आदर्शों से भी उसका मेल नहीं खाता, जो धर्म का प्रतिपादन करते हैं। ये सभी बातें अविश्वास को बढ़ाने वाली होती हैं। इस वय में धर्म के प्रति अविश्वास विज्ञान की उन विभिन्न शाखाओं के अध्ययन से भी उत्पन्न होता है जो धर्म के अन्ध-विश्वासों और अवैधानिक कार्यों का खण्डन करती हैं। ऐसी परिस्थिति में अध्यापक का यह पावन कर्त्तव्य हो जाता है कि बालकों में धार्मिक भावना एवं अविश्वास की प्रवृत्ति के बीच समुचित समन्वय करे। धर्म और विज्ञान, दोनों की उपयोगिता को समझाए तथा अतिवादी दृष्टिकोण से उन्हें सदैव बचाए।

किशोर-जीवन पर यदि हम समग्र दृष्टि से एवं गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो देखेंगे कि यह अवस्था विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों से परिपूर्ण एवं बड़ी ही रोचक है। इस अवस्था में व्यवस्थापन सम्बन्धी बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं। अभिभावकों एवं अध्यापकों को किशोर के प्रति अत्यन्त सहानुभूतिपूरक एवं सहिष्णु व्यवहार

1. Attitude of Dependence. 2. Religious Dependence.

निकलता है कि काम-सम्बन्धी शिक्षण का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन, दोनों से ही है।

(१) शैशव-काल में लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा—काम-सम्बन्धी शिक्षण की प्रक्रिया शैशव-काल से ही प्रारम्भ होकर किशोरावस्था तक चलती रहनी चाहिए, जिससे बालक को लिंग-सम्बन्धी पूरी जानकारी शुद्ध रूप से हो सके। शैशव-काल में माँ का यह कर्त्तव्य होता है कि वह बालक को काम-सम्बन्धी निर्देश एवं उचित मार्ग-प्रदर्शन करे। सामान्यतः १-४ वर्ष के बालकों का प्रायः यह प्रश्न होता है कि "बच्चा कैसे पैदा होता है ?" इस प्रश्न का उत्तर माँ को स्पष्ट किन्तु सरल शब्दों में देना चाहिए ताकि बालक की जिज्ञासा अपूर्ण न रहे और वह जन्म के बारे में कोई भ्रान्त एवं गलत धारणा न बना ले। इस प्रश्न का यह उत्तर देना कि "यह बालक परिचारिका ने दिया है अथवा ईश्वर ने भेजा है" त्रुटिपूर्ण है। इसका सीधा-सा सरल उत्तर यह होना चाहिए कि "बच्चा माँ के गर्भ में बढ़ता है जो उसके उदर में स्थित रहता है, कुछ समय तक जब तक कि उसे बाह्य वातावरण से रक्षा की आवश्यकता होती है, गर्भ में ही विकसित होता रहता है और समय आने पर उसका जन्म होता है, माँ के उदर से वह बाहर आ जाता है। बच्चा जिस समय तक माँ के गर्भ में रहता है—वह एक एक निश्चित अवधि होती है, उस समय तक वह माँ की संचित शक्ति से ही भोजन प्राप्त करता है। उस समय पिता का यह कर्त्तव्य होता है कि वह माँ को अच्छा और पौष्टिक भोजन कराये।" इस प्रकार का सरल उत्तर बालकों की जिज्ञासा को शान्त कर देगा और उनके मन में मिथ्या धारणाओं का जन्म भी नहीं होगा।

ठीक इसके विपरीत यदि इस प्रकार के प्रश्न पर बालकों को डाँट दिया जाता है तो बालक की जिज्ञासा और तीव्र हो जाती है, वह हठपूर्वक किसी न किसी प्रकार से उसे जानने की चेष्टा करता है। किसी उपयुक्त उत्तर के न मिलने पर 'जन्म' के बारे में वह कल्पना द्वारा अपनी धारणा बनाता है जो प्रायः गलत और अनुचित होती है। कभी-कभी बालक में इसकी प्रतिक्रियास्वरूप घृणा की भावना भी उत्पन्न हो जाती है। ये सभी बातें उसके भावी विकास में बहुत ही बाधक होती हैं और किसी सीमा तक बहुत ही बुरा प्रभाव डालती हैं।

बालक यह सोचता है कि उसकी सबसे [illegible] ंग-अवयव की
कमी है, फलस्वरूप उसके प्रति [illegible] दूसरी तरफ
छोटी बालिकाएँ [illegible] की कमी है
जो कि [illegible] के प्रति एक
[illegible] भावनाएँ यदि इन

लिङ्ग-अवयवों की जानकारी के प्रति जिज्ञासा प्रदर्शित करते हैं तो माता-पिता को उन्हें झिड़कना नहीं चाहिए। यदि सामान्य ढंग से उनकी जिज्ञासा को शान्त नहीं किया जाता तो वे उसकी तुष्टि के लिए चुपचाप बहुत-सी अवांछनीय प्रवृत्तियों को अपना लेते हैं जो किसी भी दृष्टि से समुचित नहीं एवं बुरी आदतों को जन्म देने वाली होती हैं। यदि प्रारम्भ से ही माता-पिता बालकों को लिंग-भेद के बारे में सही-सही जानकारी करा देते हैं तो उनमें इसके प्रति विशेष जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती। किन्तु जहाँ पर लिंग-भेद को अधिक छिपाया जाता है, उसकी सामान्य चर्चा करना भी पाप समझा जाता है, वहाँ बालकों में इसके प्रति अधिक उत्कण्ठा जाग्रत होती है और वे इसे पूर्ण करने के लिए किसी भी दूषित से दूषित विधि को अपना सकते हैं एवं दूषित भावनाओं के शिकार बनते हैं।

(२) **बाल्य-काल में लिङ्ग-भेद सम्बन्धी शिक्षा**[1]—बाल्यावस्था में भी माता-पिता को बालकों की लिंग-भेद की जिज्ञासा के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उन्हें लिंग-भेद को अस्पृश्य वस्तु समझ कर उसे गोपन नहीं रखना चाहिए, वरन् बालकों को लिंग-भेद की उचित शिक्षा देकर उनके संवेगात्मक विकास में सहायता पहुँचानी चाहिए जिससे उनका दृष्टिकोण लिंग-भेद एवं काम के प्रति स्वस्थ एवं उचित बने तथा तत्सम्बन्धी समस्याओं के प्रति भी बालकों का दृष्टिकोण सही हो और वे बुराइयों से सरलतापूर्वक बच सकें।

पाठशालाओं में बालकों को जीवशास्त्र की शिक्षा भी देनी चाहिए जिसके द्वारा उन्हें पेड़-पौधों, पशुओं एवं मानव शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं रचना की जानकारी करानी चाहिए। जीवशास्त्र बालकों को लिंग-भेद की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा देता है, उसकी सही-सही जानकारी कराता है तथा उन्हें काम-भावना के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करता है। जीवशास्त्र में मैथुन, निषेचन, गर्भाधान और उत्पत्ति आदि का स्पष्ट किन्तु वैज्ञानिक वर्णन होता है। इसके शिक्षण के उपरान्त किसी भी प्रकार की जिज्ञासा अथवा उत्कण्ठा बालक में शेष नहीं रह जाती। किन्तु इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि यह शिक्षा आवश्यकता से अधिक इस प्रकार न दी जाय जो बालक में उत्तेजना उत्पन्न करने वाली हो। ऐसी शिक्षा हानिकारक होगी। अतिवादी सीमा से उसे सदैव बचाना चाहिए।

(३) **किशोरावस्था में लिङ्ग-भेद सम्बन्धी शिक्षा**[2]—किशोरावस्था में जबकि बालक तारुण्य को प्राप्त होता है, उससे पहले ही लड़कियों को उनके ऋतुस्राव के सम्बन्ध में और लड़कों को शुक्र एवं उसके स्राव के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करा देनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो किशोर इस स्राव को देखकर अत्यन्त भयभीत होता है और उसके सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनाएँ करता हुआ अपने को दोषी ठहराता है, और लिंग-अवयवों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की

1. Sex-Education in C

धारणाएँ बना लेता है जो बिलकुल ही भ्रान्त एवं अशुद्ध होतीं हैं। लेखक कुछ ऐसे व्यक्तियों से परिचित है जो उम्र मे उससे छोटे हैं और उनके किशोर-काल प्रारम्भ होने पर जब उन्हें स्वप्नदोष आदि प्रारम्भ हुए तो वे इसे पाप समझते थे, उनकी धारणा थी कि यह एक विशेष रोग है और वे उससे बुरी तरह पीडित हैं। किशोरावस्था के कारण उन्हे कुछ आलस्य भी आता और नींद अधिक आती थी, फलस्वरूप वे अपने को रुग्ण समझने लगे। जब उनसे कहा गया कि यह तो इस उम्र मे स्वाभाविक है, तो उन्होने विश्वास नहीं किया। यहाँ तक कि जब उन्हे डाक्टर को दिखाया गया और वहाँ भी वही बात दोहराई गई, तब भी वे विश्वास करने को तैयार नहीं हुए। जब उनसे बार-बार कहा गया और जीवशास्त्र की पुस्तकों को पढने को दिया गया तो उन्हें विश्वास आया, तब उनकी शारीरिक ही नहीं, मानसिक भ्रान्ति भी दूर हो गई। भारत मे इस प्रकार की भ्रान्त धारणाओं और व्यर्थ झूठे मानसिक कष्टों को सहने वाले हजारो नवयुवक और नवयुवतियाँ हैं जिन्हे लिङ्ग-भेद, रजोदर्शन और वीर्य-सम्बन्धी जानकारी की बहुत अधिक आवश्यकता है। तभी वे इस भ्रम-जाल की बुराइयों से बच सकेंगे।

इस अवस्था मे सर्वथा यही उचित होगा कि लिङ्ग-भेद सम्बन्धी शिक्षा प्रौढ, अनुभवी एव योग्य व्यक्तियों द्वारा बालकों को दी जाय। पाश्चात्य देशो मे यह प्रथा प्रचलित है कि वहाँ कक्षाओ मे लिङ्ग-भेद सम्बन्धी शिक्षा वयस्कों एव योग्य प्रौढ व्यक्तियों द्वारा दी जाती है। इस प्रकार की शिक्षा का प्रचलन वहाँ मनोविज्ञान के गहन अध्ययन और मनन के उपरान्त हुआ। कुछ लोगो के विचार से इस प्रकार का सामूहिक शिक्षण परमोपयोगी है। किन्तु अन्य लोगों का मत है कि लिङ्ग-भेद सम्बन्धी शिक्षा सामूहिक रूप से एक कक्षा के रूप मे न देकर वैयक्तिक रूप से देनी चाहिए, क्योंकि किशोरों मे आपस मे वैयक्तिक भेद होता है, जिसके फलस्वरूप समान रूप से सभी को शिक्षा नहीं दी जा सकती, और माता-पिता ही इस प्रकार की शिक्षा देने के सर्वथा योग्य एवं उपयुक्त पात्र हैं।

किशोरावस्था की काम-सम्बन्धी सभी समस्याओ के समाधान एवं उनके उपयुक्त हल के लिए लिंग-भेद सम्बन्धी सूचना मात्र देना पर्याप्त नहीं है वरन् उसके बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करनी चाहिए। काम-सम्बन्धी समस्याएँ क्यों और कैसे उत्पन्न होती हैं ? इनका निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है अथवा सामाजिक दृष्टि से जिन मूल-प्रवृत्तियों का प्रकाशन हम प्राकृतिक रूप से नहीं कर सकते, उनका शोधन किस प्रकार होना चाहिए ? इन सभी तथ्यों से बालकों को अवगत कराना चाहिए। किशोर के लिए विविध प्रकार के ऐसे कार्यों का आयोजन कराना चाहिए, जिससे वह रचनात्मक कार्यों मे भाग ले सके और अपनी काम-जिज्ञासा की तुष्टि उन व्यावहारिक कार्यों के द्वारा कर सके। इस प्रकार अध्यापक किशोर को रचनात्मक कार्यों मे लगाकर उसकी काम-शक्ति का मार्ग-परिवर्तन कर सकता है। वह शक्ति अन्य दूसरे सृजनात्मक कार्यों में प्रयुक्त होकर व्यक्ति और समा[illegible]

कर सकती है। उसे एक नयी दिशा मिल जाती है, जिसमें व्यस्त होकर वह कामुकता के गर्हित पक्ष को छोड़ बैठता है। साहित्य, कला एवं समाज-सेवा की भावना से अनुप्राणित होकर किशोर की काम-भावना सृजनात्मक कार्यों में पर्यवसित हो जाती है, उसका उदात्तीकरण एवं मार्गान्तरीकरण हो जाता है, जिससे उसका शोधन होकर वह समाजोपयोगी कार्यों में योगदान देती है। किशोरावस्था में बालचर और बालचारिका पद्धति अत्यन्त लाभदायक होती है। भ्रमण, समाज सेवा, आत्म-निर्भरता से उसे परम आनन्द प्राप्त होता है और वह रचनात्मक कार्यों में रत हो जाता है।

किशोर की लिंग भेद सम्बन्धी शिक्षा के बिना चारित्रिक शिक्षा अधूरी मानी जायगी। वस्तुतः ये दोनों प्रकार की शिक्षाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। वे एक-दूसरे की अपेक्षा रखती हैं और दोनों प्रकार की शिक्षा से किशोर की लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा की पूर्ति होती है। यदि तरुण बालक अथवा बालिका को नैतिक एवं आदर्श सम्बन्धी अथवा धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी तो उसका पतन सम्भाव्य ही होता है।

बिना चारित्रिक और नैतिक शिक्षा के लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा व्यर्थ ही नहीं वरन् हानिकारक भी सिद्ध होती है। किशोर की जिज्ञासा इस दिशा में अधिक तीव्र होगी और वह किसी न किसी प्रकार काम-भावना की तुष्टि का मार्ग खोजेगा, जो व्यक्ति और समाज, दोनों की ही दृष्टि से हानिकारक है। लिंग-भेद के प्रति किशोर की रुचि वैज्ञानिक न होकर, कामुकतापूर्ण हो जायगी और वह गर्हित भावनाओं एवं इन्द्रिय-संसर्ग की ओर मुड़ जायगा। अतः लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा देते समय सदैव नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा भी साथ-साथ देनी चाहिए तथा किशोर का ध्यान आध्यात्मिक भावना की दिशा में भी उन्मुख करना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा के बहुत ही सुन्दर परिणाम निकलते हैं। किशोर अवांछनीय कामुकता में अपने को नहीं फँसाता है तथा अवैध मैथुन को पापाचार एवं भ्रष्टाचार समझ उन कार्यों से दूर ही रहता है। अभिभावक और अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि विषमलिंगी के प्रति शारीरिक सम्बन्धों की भर्त्सना करें, उसे गर्हित और नीच कार्य बताकर उससे दूर रहने के लिए किशोर को शिक्षा दें। किशोर को यह समझाना चाहिए कि काम-भावना के मूल उत्स 'प्रेम' को लौकिक एवं शारीरिक वासना में परिणत कर उसके मूल उद्देश्य को नष्ट नहीं करना चाहिए, वरन् उसे उदात्त भावनाओं एवं पुनीत विचारों की ओर उन्मुख करना चाहिए। प्रेम की परिणति ईश्वर-प्रेम में होनी चाहिए। प्रेम-भावना जो विषमलिंगी के प्रति होती है, वह शारीरिक एवं वासनात्मक न होकर विराट्, पावन एवं आदर्शात्मक होनी चाहिए। इस प्रकार के आध्यात्मिक, आदर्शात्मक एवं लिंग-भेद सम्बन्धी उचित शिक्षण से किशोर की लिंग-सम्बन्धी जिज्ञासा भी शान्त हो जायगी और उसकी काम-भावना का शोधन भी हो जायगा। वह जीवन में सृजनात्मक कार्यों में रत हो जायगा तथा पुनीत भावनाओं और आदर्शों का प्रेमी बन जायगा, जो उसके व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास में बहुत अधिक सहायक होगा।

सारांश यह है कि किशोर को लिंग-भेद सम्बन्धी बुराइयों से बचाने
उसे तत्सम्बन्धी शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। किन्तु वह शिक्षा किशोर क
भावना को उत्तेजना देने वाली और वासना को जगाने वाली न बन जाय,
उसे आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा भी देनी चाहिए। नैतिक शिक्षा के बिन
भेद सम्बन्धी शिक्षा अधूरी रह जायगी। वह एकाङ्गी होगी और व्यक्तित्व का
होने के स्थान पर उसके ह्रास की ओर उन्मुख होने की सम्भावना बनी रहेगी
नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षण देना भी अनिवार्य एवं परम उपयोगी है।

सारांश

मानव विकास की चार प्रमुख अवस्थाएँ हैं। यद्यपि निश्चित रूप
कोई सीमा-रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं कि अमुक काल-अवधि के उपरान
अवस्था प्रारम्भ होगी, फिर भी उन्हें स्थूल रूप से वर्गीकृत किया जा सकता
वर्गीकरण इस प्रकार है

(१) शैशव—जन्म से ५ वर्ष की उम्र तक; (२) उत्तर-बाल्यकाल–
५ वर्ष से १२ वर्ष तक, (३) कैशोर्य—लगभग १२ वर्ष से १८ वर्ष तक;
प्रौढ़ावस्था—१८ वर्ष के बाद की उम्र तक।

ये अवस्थाएँ किसी भी प्रकार अन्याय नहीं मानी जा सकती। इ
में विवेचन करते समय हमें अभिवृद्धि एवं विकास के सिद्धान्तों पर विश
रखना चाहिए।

आधुनिक काल में 'शैशव' बालक के जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स
जाता है। यही वह समय है जब सुन्दर जीवन की नींव रखी जाती है। इस
विशेषताएँ ये हैं—(१) बालक मानसिक दृष्टि से पूर्ण विकसित नहीं होता
बालक का व्यवहार अव्यवस्थित रूप से जन्मजात प्रेरणाओं द्वारा शासित
(३) बालक में निर्भरता या पराधीनता की प्रवृत्ति होती है, (४) यह वह
जिसमें बालक कल्पनाओं और मन की मौजों में विचरण करता है, (५)
वस्तु अथवा कार्य को बार-बार दुहराने में उसे आनन्द आता है, (६)
काम-प्रवृत्ति पर्याप्त समृद्ध होती है। इस अवस्था में बालक को शिक्षा देने
इस बात की उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए। तदनुकूल
से ही बालक का वांछित विकास हो सकता है।

शैशव के उपरान्त उत्तर-बाल्यकाल का समय आता है। बाल
कालावधि की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(१) बालक के विकास में
और मानसिक स्थिरता आती है। (२) उसके नेत्र एवं श्रवण-इन्द्रियाँ
विकसित हो जाती हैं। इस उम्र में बालक कामों को अपने हाथ से करने औ
को बनाने में आनन्द लेता है। (३) बालकों में कुछ मानसिक रुचियाँ होने

कार्य मे रुचि प्रदर्शित करता है। (४) बालक के सामाजिक व्यवहार मे बहुत परिवर्तन आ जाता है, (५) रचनात्मक एव उपार्जन-कार्य करने की प्रवृत्ति प्रमुख हो उठनी है (६) बालक इधर-उधर घूमने और नयी खोजो मे बहुत रुचि लेता है, (७) बालक प्राय हठी, दुराग्रही और उपद्रवी बन जाता है। (८) वह अपने दल अथवा टोली द्वारा स्वीकृत नैतिक सिद्धान्तो मे विश्वास करता है।

किशोरावस्था का प्रारम्भ लगभग १३ या १४ वर्ष की उम्र से होता है किन्तु वैयक्तिक भेद होने के कारण ऐसी कोई निश्चित आयु-सीमा-रेखा नही खींची जा सकती जहाँ से निश्चित रूप से किशोरावस्था प्रारम्भ होती हो। विभिन्न व्यक्तियों मे तारुण्य काल विभिन्न उम्र म आता है, अतः उनकी किशोरावस्था का प्रारम्भ तभी से माना जायगा। इस अवस्था का अध्ययन करना मनोविज्ञान और शिक्षा, दोनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इसी काल मे सबसे अधिक बालापराध होते हैं एवं किशोर मे व्यवहार-सम्बन्धी समस्याएँ सबसे अधिक इसी काल मे पायी जाती हैं। इस काल की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(१) इस काल में महान् बौद्धिक एवं मानसिक परिवर्तन होते है। किशोर की बुद्धि का विकास होता है। वह परिपक्वावस्था को प्राप्त होती है जो उसकी अध्ययन के प्रति रुचि से स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है। (२) किशोर बहुत अधिक कल्पनाशील बन जाता है। (३) इस काल मे महान् शारीरिक विकास होता है, (४) इस काल मे संवेगों का आविर्भाव होता है। (५) इसी अवस्था मे किशोर अपने को समाज मे व्यवस्थापित करता है। (६) किशोर मे काम-भावना का विकास भी तीव्र गति से होता है। काम-भावना का विकास क्रमशः तीन स्तरों मे होता है, किन्तु किन्हीं व्यक्तियो मे ये तीनो स्तर एक साथ भी देखे जाते हैं। ये स्तर इस प्रकार होते हैं—(क) स्वलैंगिक प्रेम, (ख) समान-लिंगी प्रेम, (ग) विषमलिंगी प्रेम। (७) किशोर स्वतन्त्रता-प्रेमी होता है। वह अपने कार्यों को स्वय सम्पादित करना चाहता है, दूसरों के निर्देश से नहीं। किशोर-काल की इन समस्त विलक्षणताओं को ध्यान मे रखकर ही उसकी शिक्षा का आयोजन करना चाहिए, जिससे उसके व्यक्तित्व का विकास विकार रहित हो सके।

किशोर-अवस्था मे उत्पन्न होने वाली काम-भावना किशोर के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है, व्यक्तित्व का प्रत्येक क्षेत्र इससे प्रभावित होता है। व्यवहार का प्रकार बहुधा इसी पर निर्भर होता है। अतः किशोर को लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा देना अत्यन्तावश्यक एवं परम महत्त्वपूर्ण है। लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा से हमारा तात्पर्य बालक और बालिकाओ मे एक-दूसरे के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण करना है, जिससे वे विषमलिंगी के प्रति मनमानी भ्रान्त धारणाएँ न बनाएँ और दोनों मिलकर स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताकर योग्य नागरिक बनें। लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा का प्रारम्भ शैशव-काल से ही होना चाहिए और किशोर-काल तक यह शिक्षा चलती रहनी चाहिए। माता-पिता को शैशव-काल से ही बालकों में लिंग-भेद के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए। उनको पौढ़वार्षीय लिंग-

सम्बन्धी एवं प्रजनन सम्बन्धी जिज्ञासाओं का सरल किन्तु स्पष्ट शब्दों में समाधान करना चाहिए। काम-भावना को गोपनीय नहीं रखना चाहिए किन्तु उसे पावन, नैतिक एवं आदर्श रूप देना चाहिए। बालकों को समझना चाहिए कि 'काम' प्रेम का ही तीव्र रूप है। प्रेम बुरी वस्तु नहीं—वह सहज, स्वाभाविक और सम्राजोपयोगी है, किन्तु उसका विकृत रूप वासना, शारीरिक सम्बन्ध जघन्य और त्याज्य है। वह समाज-विरोधी और अनैतिक है, जब तक पूर्ण प्रौढ़ होकर समाज द्वारा स्वीकृत व्यक्ति के प्रति ही उसे व्यक्त नहीं किया जाता। किशोर में काम-सम्बन्धी स्वस्थ दृष्टिकोण के विकास के लिए अभिभावकों एवं अध्यापकों को लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा के साथ-साथ उन्हें आध्यात्मिक, नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा भी प्रदान करनी चाहिए। नैतिक शिक्षा के बिना लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा अधूरी एवं कामोद्दीपक होती है। अतः दोनों ही प्रकार की शिक्षाएँ साथ-साथ देनी चाहिए, जिससे बालक में भावना-ग्रन्थि रहित स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास हो।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१ एक १० वर्ष के बालक के सामने 'व्यवस्थापन' की क्या समस्याएँ हैं? आप उनके निराकरण के लिए क्या सुझाव देते हैं? उदाहरण देते हुए, अपने सुझावों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

२ शैशव की क्या-क्या मुख्य विशेषताएँ हैं? शैक्षिक कार्यक्रमों में उनका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है? इस उम्र के बालक को शिक्षा देने में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? विस्तृत वर्णन कीजिए।

३ "शिशु की काम-प्रवृत्ति पर्याप्त समृद्ध होती है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

४. एक शिशु जो रोता है, चीखता है और बहुत अधिक संवेगात्मक विस्फोट दिखाता है, अपने माँ-बाप के लिए एक समस्या बन जाता है। बालक के इस व्यवहार के उपचार के लिए आप उसके माँ-बाप को क्या सुझाव देंगे? विस्तृत विवेचन कीजिए।

५. किशोरावस्था की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? बालक के मानसिक विकास को ध्यान में रखते हुए, आप इस काल के लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण किस प्रकार करेंगे? कारण सहित समझाइए।

६. लिङ्ग-भेद सम्बन्धी शिक्षा से आप क्या समझते हैं? इसका प्रयोजन क्या है? स्पष्ट समझाइए। यदि आप किसी विद्यालय के प्रधान अध्यापक हैं तो अपनी पाठशाला में लिंग-भेद सम्बन्धी शिक्षा की व्यवस्था किस प्रकार करेंगे?

१० व्यक्तिगत भेद तथा शिक्षा
INDIVIDUAL DIFFERENCES & EDUCATION

पिछले अध्यायो मे समय-समय पर हमने व्यक्तिगत भेद पर प्रकाश डाला है। मानसिक विकास के अध्याय मे हमने विभिन्न व्यक्तियो की वृद्धि के स्तर मे विभिन्नता होने के सम्बन्ध मे वर्णन किया है और इसी प्रकार संवेगात्मक विकास एव सामाजिक विकास तथा गामक विकास के अध्यायो मे वैयक्तिक भिन्नता का वर्णन किया है। हमारा तात्पर्य यह सब दोहराने का यह है कि व्यक्ति एक-दूसरे मे मानसिक, संवेगात्मक तथा गतिवाही आदि दशाओं मे भिन्न होते हैं। एक व्यक्ति हर पहलू मे दूसरे के समान नही होता। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विभिन्नताएँ होती हैं जो उसे दूसरे से अलग प्राणी के रूप में प्रस्तुत करती हैं। यह व्यक्तिगत विभिन्नता व्यक्ति मे एक बहुत बड़ी समस्या खड़ी कर देती है। हमे व्यक्ति की विभिन्न योग्यतानुसार शिक्षा देनी चाहिए। यह सिद्धान्त शिक्षा मे मान्य है। अब प्रश्न यह उठता है कि योग्यता की माप कैसे की जाये, और विभिन्न योग्यता वाले व्यक्तियो की शिक्षा किस प्रकार आयोजित की जाये तथा शिक्षा देते समय विभिन्न योग्यता का किस तरह ध्यान रखा जाये ? अतः व्यक्तिगत रूप से शिक्षा तथा योग्यता की समस्याएँ हमारे सम्मुख आती हैं। हम व्यक्तिगत रूप से शिक्षा के सम्बन्ध मे इस अध्याय मे विचार करेंगे। विभिन्न व्यक्तियों की योग्यताओं की माप कैसे की जाय इसका वर्णन पुस्तक के भाग ६ मे दिया गया है।

यहाँ पर हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मे दूसरे से बहुत कुछ समानताएँ होती हैं और बहुत-सी विभिन्नताएं। पिछले अध्यायो मे हमने एक व्यक्ति के चाहे वह कोई भी हो, विभिन्न प्रकार के विकास का वर्णन किया है और इस ओर ध्यान दिया है कि कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर सामान्य रूप से एक व्यक्ति का विकास किन स्तरों से होकर गुजरता है। इस समानता और विभिन्नता के दो-रगे वर्णन को ठीक ढङ्ग से समझने के लिए यहाँ हम पहले सब बालकों मे जो निश्चित रूप से समानताएँ पाई जाती हैं उनका वर्णन करेंगे और फिर जिन बातो मे बालकों मे पृथकता पाई जाती है उन पर ध्यान देंगे। अन्त मे व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर शिक्षा कैसे हो, इसका वर्णन करेंगे।

सब बालकों में समानताएँ[1]

हम पाँच समानताओं का वर्णन स्पष्ट रूप से कर रहे हैं। यह समानताएँ

(१) बौद्धिक क्षमता[2]—सब बालकों में ज्ञानेन्द्रियाँ, मस्तिष्क, मांसपेशि तथा ग्रन्थियाँ होती हैं जिनके संयुक्त कार्य से बौद्धिक क्षमता उभरती है। प्रत्ये बालक में इस प्रकार बौद्धिक क्षमता होती है जिसे अनुभव तथा शिक्षण से उन्न लाई जा सकती है।

(२) प्रत्येक बालक में प्रेम, क्रोध, भय इत्यादि के संवेग तथा आनन्द एवं दु के भाव होते हैं।

(३) सुरक्षा, स्वतन्त्रता, सफलता, स्वीकृति इत्यादि की आवश्यकता प्रत्येक बालक प्रतीत करता है।

(४) प्रत्येक बालक समाज के रीति-रिवाज तथा परम्पराओं से प्रभावित होता है।

(५) प्रत्येक बालक को समाज में कुछ अधिकार मिलते हैं और कुछ कर्तव्यों की उससे आशा होती है।

व्यक्तिगत भेद

व्यक्तिगत भेद का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में साधारण और वीर पुरुषों में अन्तर किया जाता था। किन्तु स्पष्ट रूप से व्यक्तिगत भेद के विचार हमारे समक्ष उस समय आये, जब नये प्रकार की परीक्षा का अन्वेषण हुआ। इनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तिगत भेद पर प्रकाश डाला गया। हम यहाँ पर उन मुख्य क्षेत्रों का जिनमें व्यक्तिगत भेद पाए जाते हैं, वर्णन करेंगे।

(१) बुद्धि-स्तर पर आधारित विभिन्नता[3]—हम बुद्धि के स्तर में विभिन्नता के सम्बन्ध में अध्याय ८ में प्रकाश डाल चुके हैं। वहाँ हमने वर्णन किया है कि बुद्धि का विकास विभिन्न मनुष्यों में विभिन्न होता है और बुद्धि-परीक्षा के अनुसार हम व्यक्तियों को एक ऐसी श्रेणी में क्रमबद्ध कर सकते हैं जो प्रतिभावान (बुद्धि-लब्धि १४०—१६७) से आरम्भ होकर मूर्ख और मूर्ख से जड़ (बुद्धि-लब्धि ०—२४) तक समाप्त हो जाती है।

एक अध्यापक को शिक्षा हरएक बालक की बौद्धिक योग्यतानुसार देनी चाहिए। बहुधा अध्यापक अपने शिक्षण को मध्य वर्ग के (बुद्धि-लब्धि के अनुसार) बालकों के अनुकूल बना लेते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शेष बालकों की जो उच्च या निम्न श्रेणी में आते हैं, और कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। अतएव ऐसे बालक

1. Similarities among all children. 2. Intellectual Capacity. 3. Differences in the Intelligence Level.

जो साधारण बालकों की श्रेणी मे नही आते, असफलता का अनुभव करने लगते हैं और भावना-ग्रन्थियों के शिकार बन जाते हैं।

यदि एक कक्षा की बुद्धि-लब्धि की माप की जाये तो अधिकतर बालकों की बुद्धि-लब्धि १०० के लगभग होगी, कुछ की १३० या अधिक हो सकती है, कुछ की ८० या उससे भी कम। टरमैन के अनुसार जो वक्ररेखा[1] इस प्रकार के माप द्वारा बनेगी, वह घंटाकार[2] की होगी।
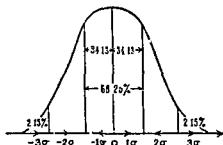
[इस प्रकार का वक्र बुद्धि-लब्धि के अनुसार बालकों के विभाजन के सम्बन्ध मे आता है। इससे तात्पर्य यह है कि ६८ २% बालक औसत के आसपास होंगे, २ १५% लगभग निम्न-बुद्धि के और २ १५% लगभग उच्च-बुद्धि के बालक किसी भी कक्षा मे होंगे]

(२) शारीरिक विकास में विभिन्नता—बालकों मे शारीरिक विकास मे भी भिन्नता होती है। कोई बालक लम्बा होता है तो कोई ठिगना, कोई मोटा होता है तो कोई दुबला। फिर यदि कक्षा के समान[3] आयु वाले बालकों की लम्बाई आदि नापी जाये तो अधिकतर बालक मध्यमान के निकट होंगे। बहुत कम ऐसे बालक होंगे जो मोटाई या लम्बाई आदि मे बहुत अधिक होंगे या अत्यन्त कम।

अध्यापक का कर्तव्य है कि बालकों द्वारा कार्य सम्पादन कराने में उनके शारीरिक विकास को ध्यान में रखे। बालकों मे यदि शारीरिक भिन्नता मध्यमान से बहुत अधिक हो तो ऐसे बालकों को उचित निर्देश दे।

(३) ज्ञानोपार्जन मे विभिन्नता[4]—ज्ञानोपार्जन परीक्षाओं द्वारा यह पता

---

1. Curve. 2. Bell-Shaped. 3. इस चित्र के विभिन्न अङ्कों से क्या तात्पर्य है, यह सांख्यिकी वाले अध्याय मे स्पष्ट किया गया है।

4. Differences in Achievement.

चलता है कि बालकों की ज्ञानोपार्जन क्षमता में भी भिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता गणित तथा अंग्रेजी पढ़ने में बहुत अधिक होती है।

ज्ञानोपार्जन में विभिन्नता उन बालकों में भी पायी जाती है, जिनकी बुद्धि का स्तर समान है। ऐसा बुद्धि के विभिन्न पक्षों की योग्यता में विभिन्नता तथा पूर्व-अनुभव या निर्देश या रुचि के कारण होता है।

ज्ञानोपार्जन की क्षमता में विभिन्नता होने के कारण एक अध्यापक को चाहिए कि वह शिक्षा देने में व्यक्तिगत तथा कक्षा-शिक्षण विधियों के मिश्रण को अपनाए। विभिन्न बालकों को विभिन्न प्रकार के गृह-कार्य देने चाहिए और उन्हें विभिन्न क्रियाओं या कार्य-कलापों को करने को देना चाहिए।

ज्ञानोपार्जन यदि बौद्धिक योग्यतानुसार नहीं है तो शिक्षक को चाहिए कि बालक की कठिनाई को मालूम करे। बहुधा ऐसा रुचि की कमी के कारण या संवेगा-त्मक समस्याओं के कारण या अवसर न मिलने के कारण होता है।

कुछ ऐसे भी बालक होते हैं जो अपनी बुद्धि-योग्यता से भी अधिक ज्ञानो-पार्जन करने में सफल होते हैं। यह बालक पढ़ने में बहुत समय या शक्ति लगाते हैं और अधिक ज्ञानोपार्जन करने में सफल होते हैं। उनको ऐसा करने की प्रेरणा बहुधा अपने माता-पिता से मिलती है। कभी-कभी ऐसे बालक अधिक मेहनत करते हैं क्योंकि वे किसी और दिशा में अपनी कमी की पूर्ति करना चाहते हैं। यहाँ सर आइज़क न्यूटन का उदाहरण उल्लेखनीय है। न्यूटन महोदय ने उस कमी की पूर्ति करने के लिए जो उन्हें अपने एक सहयोगी को जो उद्दण्ड था, पीटने में असफलता के कारण अनुभव हुई, गणित की ओर ध्यान लगाया।

एक कुशल अध्यापक को चाहिए कि वह देखे कि किसी प्रकार से अधिक ज्ञानोपार्जन करने वाला बालक असन्तुष्टि की भावना में सदैव के लिए ओतप्रोत न हो जाये।

(४) झुकाव में विभिन्नता[1]—झुकाव से तात्पर्य है एक सामान्य प्रवृत्ति जो एक समूह अथवा एक संस्था के प्रति होती है।[2] व्यक्तियों की विभिन्न संस्था या समूह के सम्बन्ध में विभिन्न रुझान होते हैं। कुछ व्यक्ति शिक्षा या समाज के नियमों को अच्छा समझते हैं, कुछ बुरा।

शिक्षा के प्रति झुकाव बुद्धि के स्तर पर निर्भर नहीं है। यह घर के वातावरण पर बहुत अधिक निर्भर रहता है। यदि माता-पिता के शिक्षा की ओर झुकाव अच्छे तथा उचित हैं तो बालकों के झुकाव भी उसी प्रकार विकसित होंगे। भारत में ग्राम-वासी शिक्षा की ओर से उदासीन रहते हैं और यह उनकी अशिक्षा का एक बहुत बड़ा कारण है।

1. Differences in Attitude. 2. "Attitude is generalized disposition towards a group of people or an institution."

बालको का अधिकारियो के प्रति झुकाव विभिन्नताएँ लिये होना है। यह झुकाव बाल्यकाल मे ही बालक सीख लेता है। अधिकारियों के प्रति झुकाव मे अन्तर घर के वातावरण के कारण भी हो सकता है।

एक अच्छा शिक्षक उचित प्रकार के झुकाव को बालकों में विकसित कर सकता है।

(५) **व्यक्तित्व विभिन्नता**[1]—हमने अध्याय २० मे व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे विवरण दिया है। व्यक्तित्व-विभिन्नता की श्रेणी अति विस्तृत है, यह विभिन्नता व्यक्तित्व के गुणो पर निर्भर रहती है।

अध्यापक को शिक्षा देते समय इस प्रकार की विभिन्नता भी ध्यान मे रखनी चाहिए।

(६) **गतिवाही योग्यता मे विभिन्नता**[2]—हर आयु के व्यक्तियो मे गतिवाही योग्यता में विभिन्नता दिखाई पड़ती है। कुछ मनुष्य गतिवाही कार्य शीघ्रता से तथा सफलतापूर्वक कर लेते हैं, जबकि दूसरे व्यक्ति जो उसी आयु-स्तर के हैं, उन कार्यों को करने मे असफलता का अनुभव करते हैं।

(७) **लिङ्ग-विभिन्नता के कारण भेद**[3]—स्त्रियों और पुरुषो मे भी व्यक्तिगत विभिन्नता देखने मे आती है। स्त्रियाँ कोमलांगी होती हैं, परन्तु सीखने के बहुत-से क्षेत्रों मे बालकों और बालिकाओं की क्षमता मे बहुत अन्तर नहीं होता है। लिंग-सम्बन्धी अन्तर के सम्बन्ध मे किए गए अन्वेषण अभी विश्वासी परिणाम नहीं देते हैं। अतः इस सम्बन्ध मे पूर्ण विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता।

बुद्धि एवं लिङ्ग-विभिन्नता—वर्तमान बुद्धि-परीक्षाओं के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि दोनों लिंगो के औसत अङ्क लगभग समान ही होंगे। किन्तु यह भी देखा गया है कि विभिन्नता का फैलाव दोनों लिंगो मे विभिन्न होता है। बुद्धि-परीक्षाओ पर कुल अङ्को मे जो दोनों लिंग प्राप्त करते हैं, यद्यपि समानता होती है किन्तु यह समानता परीक्षा के विभिन्न भागो पर भी हो, ऐसा नहीं है। यह लगभग सामान्य रूप से देखा गया है कि भाषा भाग पर लड़कियों के प्राप्ताङ्क लड़कों के प्राप्ताङ्को से अधिक होते हैं और लड़कों के प्राप्ताङ्क गणित वाले भाग पर अधिक होते हैं। स्मृति के परीक्षणो मे लड़कियाँ अधिक प्राप्ताङ्क प्राप्त करती हैं।

ज्ञानोपार्जन एवं लिंग-विभिन्नता—सामान्य ज्ञानोपार्जन[4] मे प्राथमिक स्तर पर अधिकतर यही पाया गया है कि बालिकाओं का स्तर बालकों से अधिक उच्च

---

1. Personality Differences 2. Differences in Motor-ability. 3. Differences on account of Sex. 4. General achievement.

था। इस सम्बन्ध मे फिफर[1] का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। पोयले[2] महोदय का तो यह कहना है कि बालकों की शिक्षा बालिकाओं की शिक्षा प्रारम्भ करने के ६ माह उपरांत प्रारम्भ करनी चाहिए। बालको के निम्न स्तर का कारण उनमे हकलाना तथा अन्य दोषों का होना दिया जाता है।

बालिकाओ की श्रेष्ठता का कारण वास्तव मे उनका भाषा पर अधिकार होना है। वह बालकों से भाषा में श्रेष्ठता बहुत कम आयु से प्रकट करने लगती हैं। वह उनसे पहले बातें करने लगती हैं और स्पष्ट बोलती हैं। विद्यालय मे आने पर बालकों का विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान अधिक श्रेष्ठ दिखाई पडता है। शीघ्र ही वह गणित मे भी श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते हैं।

कार्टर[3] महोदय के अध्ययन यह बताते हैं कि बालिकाओ को अध्यापक अपने परीक्षणो मे उन प्राप्तांको से अधिक अंक प्रदान करते हैं जो एक प्रमाणीकरण किए हुए ज्ञानोपार्जन परीक्षण पर प्राप्त करेंगे। बालकों को अध्यापक अपने परीक्षणों में तुलनात्मक कम अंक प्रदान करते हैं। सोवल[4] महोदय के अनुसार दोनों लिंग के प्राथमिक स्तर पर अध्यापक बालिकाओ को ही अधिक अंक प्रदान करते हैं। माध्यमिक स्तर पर स्त्रियाँ तो सदैव बालिकाओ को ही अधिक अंक देती हैं किन्तु पुरुषों के सम्बन्ध मे प्रदत्त सामग्री इतनी निश्चित नही कि कुछ पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सके।

(८) जाति या राष्ट्र-सम्बन्धी विभिन्नता[5]—जाति या राष्ट्र-सम्बन्धी विभिन्नता के सम्बन्ध मे किए गए अन्वेषण भी अभी अपूर्ण हैं। इस कारण विश्वासी रूप से इस सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकते। परन्तु फिर भी विभिन्न राष्ट्र के नागरिकों इत्यादि में विभिन्न प्रकार की योग्यताओ मे विभिन्नता पाई जा सकती है।

(९) सामाजिक विभिन्नता[6]—व्यक्तियों मे स्पष्ट रूप से सामाजिक विकास में विभिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता जब बालक एक ही वर्ष का होता है, तभी से दृष्टिगोचर होने लगती है। कुछ बालक इतने भीरु होते हैं कि जैसे ही किसी दूसरे

---

1. Fifer, G . "Grade placement of Secondry School pupils in relation to age and ability", *J. Calif, Education Research*, 1952, 31-36.

2. Pauly, F. R. : "Sex differences and legal school entrance age", *Jourral of Education Research*, 1958, 45, 1-9.

3. Carter, R S. : "Non-Intellectual Variables involved in teacher's marks", *Journal of Education Research*, 1953, 47, 81-95.

4. Sobel, Frances S. : "Teachers' Marks and objective tests as indicies of school adjustment," *Teach. Coll. Contr. Educ.* No 674, 1936.

5. Facial & National Differences. 6. Social Differences.

परिवार का सदस्य आता है, वे अपना मुँह छिपा लेते हैं। परन्तु दूसरे प्रकार के बालक उनकी ओर बिना झिझक के बढ़ जाते हैं।

व्यक्तिगत भिन्नता चेहरे के भाव को समझने की योग्यता में भी होती है। बालक लड़ने में भी विभिन्नता प्रकट करते हैं। उनकी लड़ाइयाँ मौखिक गाली-गलौज से लेकर मारपीट, नोच-खसोट, काटना आदि तक होती हैं। बालकों में अपने मित्र बनाने के सम्बन्ध में भी विभिन्नता पाई जाती है।

सामाजिक एवं आर्थिक स्तर तथा बुद्धि-विकास[1]

मेरडिथ[2] के अध्ययन के आधार पर केवल यह कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से उन परिवारों के बालक अधिक स्वस्थ एवं विकसित होते हैं, जो सामाजिक स्तर से ऊँचे होते हैं। बहुत-से शारीरिक दोष, जैसे—टेढ़े-मेढ़े दाँत, लँगड़ाना, क्षय रोग इत्यादि, निम्न आय वाले परिवारों के बालकों में अधिक पाये जाते हैं।

अच्छे परिवारों के बालक न केवल स्वास्थ्य में ही श्रेष्ठता लिये होते हैं वरन् बुद्धि एवं ज्ञानोपार्जन में भी वह उत्तम होते हैं। टरमैन एवं मैरिल[3] के अनुसार जो बालक उच्च व्यवसाय वाले माता-पिता की सन्तान होते हैं, उनकी बुद्धि-लब्धि १० से १५ साल के बीच ११८ होती है, जबकि क्लर्की पेशे वाले समूह के बालकों की बुद्धि-लब्धि १०७ होती है और मजदूरों के बालकों की केवल ९७।

यहाँ यह कह देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि आर्थिक-सामाजिक स्तर तथा बुद्धि-लब्धि में सम्बन्ध तो है किन्तु यह बहुत उच्च स्तर का नहीं है, सहसम्बन्ध के आधार पर यह ·३ या ·४ ही पाया गया है। निम्न स्तर के आर्थिक एवं सामाजिक समूह में अनेक उच्च बुद्धि-लब्धि के बालक पाए जाते हैं और उच्च स्तर के आर्थिक एवं सामाजिक समूह में निम्न बुद्धि-लब्धि वाले बालक पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, क्योंकि साधारण आर्थिक-सामाजिक समूह में व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है, इसलिए संख्या के आधार पर उच्च बुद्धि के बालकों की संख्या इस समूह में अधिक होगी।

एक और बात ध्यान देने की है। वह यह कि उन परिवारों में जिनमें दो भाषाएँ बोली जाती है या जिनमें घर में बोली जाने वाली भाषा समाज में बोली जाने वाली भाषा से विभिन्न होती है, के बालकों के प्राप्तांक निम्न होते हैं। इस सम्बन्ध में डारसी[4] के अध्ययन का वर्णन किया जा सकता है।

---

1. Social & Economic Status and the Growth of Intelligence.
2. Meredith, H. V. : 'Relation between Socio-economic status and body size in boys seven to ten years of age."
3. Terman & Merrill : *Measuring Intelligence*, Houghton Mifflin Co, p. 48.
4. Darcy, Natalie T. : "Review of the literature on the effect of bilingualism upon the measurement of intelligence", *J Genet. Psychol*, 1953, 82, 21-57.

(१०) संवेगात्मक विभिन्नता[1]—हमने 'संवेगात्मक विकास' के अध्याय में स्पष्ट रूप से इस पर बल दिया है कि संवेगात्मक विकास विभिन्न बालकों में विभिन्नता लिये हुए होता है, जबकि यह भी सत्य है कि मोटे रूप से संवेगात्मक विशेषताएँ बालकों में समान रूप से पाई जाती हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोध का संवेग प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अनुभव होता है, परन्तु कुछ मनुष्य चिड़चिड़े होते हैं और शीघ्र क्रोधित हो जाते हैं जबकि कुछ और व्यक्ति शान्त स्वभाव के होते हैं और उन्हें क्रोध बहुत ही कम मात्रा में आता है। उसी बात पर एक व्यक्ति इतना क्रोधित हो जाता है कि मरने-मारने पर तैयार हो जाता है, और उसी बात पर दूसरा व्यक्ति मुस्करा देता है। जिस प्रकार क्रोध के संवेग में विभिन्नता पाई जाती है, उसी प्रकार भय तथा अन्य संवेगों में भी यह भिन्नता पाई जाती है।

व्यक्तिगत भिन्नता का स्वरूप[2]

व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर ही शिक्षा में निर्देशन की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त हम आज के समय में जानते हैं कि व्यक्ति की योग्यतानुसार ही उसके लिए व्यवसाय चुना जाना चाहिए। इससे यह तात्पर्य है कि बालकों को व्यवसाय के सम्बन्ध में भी निर्देशन उसकी योग्यतानुसार देना चाहिए। हम शिक्षा-निर्देशन तथा व्यवसाय-निर्देशन का वर्णन आगे करेंगे। परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि हमारा व्यक्तिगत भेद से क्या अभिप्राय है तथा इसकी क्या प्रकृति है?

व्यक्तिगत भेद में विचलनशीलता[3] तथा सामान्यता[4], दोनों पाई जाती हैं। विचलनशीलता से हमारा तात्पर्य यह है कि हम किसी भी विशेषता या योग्यता को किसी भी एक समूह में माप करें तो हमें व्यक्तियों की उस योग्यता आदि में विभिन्नता दिखाई पड़ेगी। व्यक्ति एक-दूसरे से उस योग्यता में विचलनशील होंगे। इसके अतिरिक्त इस समूह में यह भी देखने को मिलेगा कि अधिकतर व्यक्ति मध्यमान के निकट होंगे। कुछ ही व्यक्ति असाधारण रूप से योग्य अथवा अयोग्य मिलेंगे। हमारा सामान्यता से यही तात्पर्य है। यदि योग्यता-माप की वक्र रेखा खींची जाए तो वह सामान्य सम्भावी वक्र[5] के रूप में होगी। यह वक्र वैसा ही होगा जैसा बुद्धि के सम्बन्ध में खींच दिया गया है।

व्यक्तिगत भेद का आधार, विकास तथा सीखने में भिन्नता भी होती है। प्रत्येक व्यक्ति के विकास का क्रम विभिन्न होता है तथा उसके सीखने की योग्यता तथा आकार विभिन्न होते हैं। इस कारण भी व्यक्तिगत भेद दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रत्येक बालक का अभिवृद्धि का एक विशेष प्रतिमान होता है[6]

एक बालक की शारीरिक अभिवृद्धि बहुधा अव्यवस्थित होती है। वह कुछ

1. Emotional Differences. 2. Nature of Individual Differences. 3. Variability. 4. Normality. 5. Normal Probability Curve.
6. Each pupil has a distinct pattern of growth.

विकास के पहलू में द्रुत विकास की स्थिति में होता है, कुछ और में औसत और बहुत सो मे मन्द स्थिति मे होता है। यह प्रतिमान निम्न चित्र में दिखाया गया है। इस चित्र मे अभिवृद्धि के विभिन्न पक्ष शतमक-प्राप्तांक[1] मे दिए गए हैं। यह देखा जा सकता है कि मानसिक आयु ५० वें शताशी मान पर है। इससे तात्पर्य यह है कि बालक इस विकास के पक्ष मे औसत है। गतिगामी विकास मे वह बहुत आगे है क्योंकि इसका शततमक-प्राप्तांक ९२ है।

एक विद्यार्थी की अनेक मनोवैज्ञानिक अभिवृद्धि के क्षेत्रों में अभिवृद्धि प्रतिमान की परिच्छेदिका[2]

मानसिक स्वास्थ्य
गतिगामी कुशलता
शारीरिक परिपक्वता
सामाजिक परिपक्वता
ज्ञानोपार्जन
संवेगात्मक परिपक्वता
20 40 60 80 100

शततमक-प्राप्ताङ्क
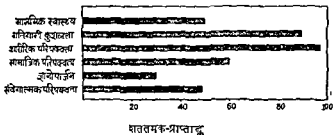
एक शिक्षक को बालक की इस अभिवृद्धि के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। एक बालक को जो मानसिक विकास मे औसत से अधिक है, गतिगामी विकास मे भी औसत से अधिक नही मानना चाहिए। इन दोनों प्रकार की अभिवृद्धि मे बहुत ही थोड़ा सहसम्बन्ध है। एक बालक जिसका सुलेख खराब है, पढ़ने में, गणित मे, अन्य पाठ्य-विषय मे बहुत अच्छा हो सकता है। जो बालक गणित में कमजोर हैं वह भाषा मे अच्छे हो सकते हैं।

व्यक्तिगत भेद की एक अन्य विशेषता की ओर भी हम ध्यान दे सकते हैं। वह यह है कि एक क्षेत्र मे विभिन्नता, जैसे—ज्ञानोपार्जन, बुद्धि, स्वभाव आदि में विभिन्नता, कुछ दूसरे क्षेत्रों मे विभिन्नता पर भी प्रभाव डाल सकती है। यदि एक बालक की बुद्धि कम है तो उसके ज्ञानोपार्जन की क्षमता भी कम होगी और इस प्रकार उसमे ज्ञानोपार्जन सम्बन्धी विभिन्नता भी पाई जायगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ क्षेत्रो की विभिन्नता तो निजी होती है किन्तु कुछ अन्य क्षेत्र जिनमे एकसी

---

1. Percentile ranks इनको कैसे ज्ञात किया जाता है यह सांख्यिकी वाले अध्याय मे समझाया गया है।

2. Profile of the growth pattern of one pupil in several areas of psychological growth.

योग्यता की आवश्यकता होती है, एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। मानसिक और गतिमान मे सम्बन्ध न हो किन्तु बौद्धिक योग्यता ज्ञानोपार्जन पर अवश्य प्रभाव डालती है।

व्यक्तिगत विभिन्नता वंशानुक्रम तथा वातावरण के प्रभाव से पनपती है। एक बालक बहुत-से गुणों को लेकर उत्पन्न होता है जो उसकी व्यक्तिगत योग्यता को निर्धारित करते हैं, और वह दूसरे बालको के जन्मगत गुणो से वैभिन्य लिये होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक बालक का वातावरण दूसरों से भिन्न होता है, अतएव जो गुण वह अर्जित करता है, वह भी दूसरों से विभिन्न होते हैं।

व्यक्तिगत भेद के आधार पर शिक्षा[1]

हमने यह देखा है कि व्यक्तिगत भिन्नता एक ऐसा तथ्य है जिसकी अवहेलना हम नही कर सकते क्योंकि शिक्षा देने में हमारा उद्देश्य प्रत्येक बालक को शिक्षा देना है, न कि बालको के समूह को। शिक्षा को बालको की विभिन्नता के आधार पर ही देना आवश्यक है। इस कारण प्रत्येक विद्यालय का यह कर्त्तव्य है कि वह हर **सीखने वाले के लिए उसकी विभिन्नता के अनुसार शिक्षा का पर्याप्त आयोजन करे।**

यह कार्य सरल नही है, क्योंकि हमें ऐसा करने के लिए—(१) योग्यता की माप के लिए विश्वासी परीक्षणों का निर्माण करना होगा, (२) बालको को योग्यतानुसार अवसर प्रदान करने होंगे, ताकि उन्हें सीखने में सफलता मिले, (३) उनको उचित भौतिक तथा सामाजिक वातावरण प्रदान करना होगा जिससे उनकी जन्मगत योग्यता को विकास का अवसर मिले, (४) विद्यालयों में अच्छे प्रशिक्षित अध्यापक हो जो बालको को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाने मे रुचि लें, अच्छा पाठ्यक्रम हो जो बालको की आवश्यकताओं और इच्छाओं पर आधारित हो तथा उपयोगी सहायक सामग्री हो, जो बालकों को सिखाने के लिए प्रेरणा प्रदान करे, तथा (५) विद्यालयों की सहायता, शिक्षा देने वाली सब संस्थाएँ—नियमित तथा अनियमित[2]—करें, जिससे व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जा सके, जो सीखने वाले तथा समाज, दोनों के लिए उपयोगी हो।

विद्यालयों में कक्षा-विभाजन[3]—पाठशालाओं मे शिक्षा के लिए कक्षा-विभाजन की आवश्यकता प्रत्येक विद्यालय को मान्य है, परन्तु यह विभाजन किस प्रकार हो, यह एक समस्या है। बहुत-सी विधियाँ इस बात को हल करने के लिए अपनायी गई हैं। कुछ विद्यालयो में कक्षा-विभाजन बुद्धि-लब्धि के अनुसार किया गया, किन्तु यह बहुत ही कम अवसरो पर सन्तोषजनक पाया गया। आजकल कक्षा-विभाजन का जो सिद्धांत मान्य है, वह यह है कि बालक का कक्षा-विभाजन न केवल मानसिक आयु या वास्तविक आयु के आधार पर होना चाहिए, परन्तु यह बालकों की

---

1. Education on the Basis of individual Differences. 2. Formal & Informal. 3 Grouping in School.

शारीरिक प्रौढ़ता[1] सामाजिक प्रौढ़ता तथा संवेगात्मक प्रौढ़ता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

यह अच्छा समझा जाता है कि कक्षा-विभाजन सजातीय समूह[2] में ही हो। सजातीय समूह में बालकों को व्यक्तिगत शिक्षा देने के अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं। सजातीय समूह में उच्च योग्यता के बालकों को एक अलग कक्षा में रखा जाता है। मध्य वर्ग के बालकों को दूसरी में, और कम योग्यता वालों को तीसरी कक्षा में।

कुछ मनोवैज्ञानिक सजातीय समूह का विरोध करते हैं और विजातीय[3] समूह पर ही बल देते हैं। ऐसा वह जिन कारणों के आधार पर करते हैं, वह हैं—(१) सजातीय समूह में प्रतिभावान बालकों को कम बुद्धि वालों से अलग कर दिया जाता है, फलतः मन्द-बुद्धि वाले बालकों को प्रेरणा प्राप्त होने का अवसर नहीं मिलता है और अपनी उन्नति करने में वह गतिहीन हो जाते हैं, (२) ऐसे समूह जनतान्त्रिक भावना की अवहेलना करते हैं, क्योंकि उनके द्वारा एक कक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है और दूसरी कम महत्त्वपूर्ण, (३) यह समूह प्रतिभावान को नेता बनने के अवसर कम कर देते हैं, (४) ऐसे समूह साधारण बुद्धि वालों को भी कोई प्रेरणा प्रतिभावान से ग्रहण करने का अवसर नहीं देते हैं।

उपर्युक्त कारणों से हम सजातीय विभाजन के गुणों की ओर से आँखें बन्द नहीं कर सकते। सजातीय विभाजन अच्छा है, यदि यह समझा जाये कि हरएक कक्षा-खण्ड उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि दूसरा, और हरएक कक्षा-खण्ड के बालकों को स्पष्ट रूप से यह बात समझा दी जाये और सब खण्डों को एक-दूसरे से मिल-जुलकर कार्य करने के अवसर दिये जायें।

पाठ्यक्रम और व्यक्तिगत भेद[4]—एक जनतन्त्रीय राज्य में बहुत-से विभिन्न विषयों का पाठ्यक्रम में होना आवश्यक है ताकि हरएक बालक की रुचि, आवश्यकता तथा योग्यतानुसार शिक्षा दी जा सके। प्रगतिशील विद्यालय में पाठ्यक्रम स्थायी[5] नहीं होता, बालकों की रुचि के अनुसार पाठ्यक्रम में हेर-फेर कर दिया जाता है।

प्रतिभावान, पिछड़े और कुसमायोजित बालकों की शिक्षा[6]—इन सब की शिक्षा के सम्बन्ध में भाग ६ में विस्तृत रूप से विचार करेंगे। शिक्षा का यह अच्छा सिद्धान्त है कि बालकों की विशेषता के अनुसार शिक्षा दी जाये। किस प्रकार से असाधारण बालकों की शिक्षा का आयोजन किया जाय, इसका वर्णन हम विस्तारपूर्वक आगे करेंगे।

शिक्षा-विधि[7]—शिक्षा-विधि का निर्धारित होना भी व्यक्तिगत भेद पर

---

1. Maturity. 2. Homogeneous Group. 3. Hetrogeneous. 4. Curriculum & Individual Differences. 5. Rigid. 6. Education of Gifted, Backward and Deformed Chidren. 7. Methods of Teaching.

आधारित होना चाहिए। एक प्रतिभावान बालक एक मूर्ख से ऊ
आता है, अतएव दोनों को शिक्षा देने की विधियों में बहुत अन्तर है
इसके अतिरिक्त उन बालकों के जो नीच कुल से आते हैं, विचार
और इस प्रकार के बालकों को शिक्षा देने समय ऐसी विधि अपनाने
अनुभवों को विस्तृत कर सके।

शिक्षण को व्यक्तिगत रूप देने वाली कुछ शिक्षा प्रणालियाँ[1] के आरम्भ में शिक्षण को व्यक्तिगत रूप देने वाली कई प्रणालियों क
गया। इन प्रणालियों को मूल रूप में अब शायद ही कोई विद्
परन्तु उन सबके कुछ तथ्य एक विद्यालय अपनाने की चेष्टा करता

(१) **डाल्टन प्रणाली**[2]—इस प्रणाली के अनुसार विद्यालय
रूप दे दिया जाता है और कक्षाएँ प्रयोगशालाओं का रूप धारण क
बालों को कुछ कार्य[3] दे दिए जाते हैं जो उन्हें एक माह में पूरे कर
इस समय में पूरी छूट होती है कि वह किसी भी विषय के अध्ययन
चाहे, लगायें। इस प्रकार प्रत्येक बालक को अवसर मिलता है-
गति से सीखने का, और अपनी योग्यतानुसार सीखने का।

(२) **विनेटिका प्रणाली**[4]—कारलेटन वाशबर्न[5] ने इस प्र
प्रकार किया। इस प्रणाली में जो प्रमुख शिक्षा-सिद्धान्त है, वह
बालक को स्वयं अपने सीखने की गति के अनुसार सीखने का अव
चाहिए। हरएक उस विषय को जो उसके पाठ्यक्रम में है, सूक्ष्म के
उत्साहित करना चाहिए। यह प्रणाली डाल्टन प्रणाली से इस ब
इसमें हर सीखने वाले को विभिन्न विषयों में विभिन्न गति से सी
है, जबकि डाल्टन प्रणाली में बालकों को सब विषयों में एक ही स्तर
है। शिक्षण-वस्तु इकाई[6] कार्य या उद्देश्य के रूप में संगठित
बालक स्वयं अपने सीखने का परीक्षण कर सकता है। इसके पश्च
आपको शिक्षक द्वारा दिये जाने वाले परीक्षण के लिए प्रस्तुत करता
इस प्रणाली में असफल होने का प्रश्न नहीं उठता।

(३) **प्रोजेक्ट प्रणाली**[7]—इस प्रणाली में बालकों को प्रोजे
जो बहुधा चार प्रकार के होते हैं—(१) उत्पादक प्रोजेक्ट[8], (२) उ
(३) समस्यात्मक प्रोजेक्ट[10], तथा (४) अभ्यास प्रोजेक्ट[11]। ब
एक प्रोजेक्ट पर कार्य करते हैं और इस प्रकार सीखना व्यक्तिगत र
पर निर्भर रहता है।

---

1. Some Plans for Individualizing Instructior
Plan. 3. Assignments. 4. Winnetka Plan. 5. Carlet
6. Learning Unit. 7. Project Method. 8. Produ
9. Consumer's Project 10. Problem Project. 11. Drill

सारांश

नवीन परीक्षाओ ने व्यक्तिगत भेद को स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष रख दिया है। जो मुख्य व्यक्तिगत भेद पाये जाते हैं, वह हैं—(१) बुद्धि-स्तर मे, (२) शारीरिक विकास मे, (३) ज्ञानोपार्जन मे, (४) व्यवहार मे, (५) व्यक्तित्व मे, (६) गतिवाही योग्यता मे, (७) लिंग-सम्बन्धी विभिन्नता मे, (८) राष्ट्र या जाति-सम्बन्धी विभिन्नता मे, (९) सामाजिक विकास मे, तथा (१०) संवेगात्मक विकास मे।

व्यक्तिगत भेद मे विचलनशीलता तथा प्रतिमानता—दोनो पाई जाती हैं। व्यक्तिगत विभिन्नता विकास-क्रम की विभिन्नता के कारण तथा एक क्षेत्र की विभिन्नता का दूसरे क्षेत्र मे प्रभाव के कारण अथवा वंशानुक्रम तथा वातावरण के कारण होती है।

व्यक्तिगत भेद के आधार पर शिक्षा देनी चाहिए। इसके लिए—(१) विद्यालयो मे प्रत्येक सीखने वाले के लिए उसकी विभिन्नता के अनुसार शिक्षा का पर्याप्त आयोजन करना चाहिए। (२) विद्यालय मे कक्षा-विभाजन सजातीय समूहो मे होना चाहिए। (३) पाठ्यक्रम का आयोजन व्यक्तिगत भेद के आधार पर होना चाहिए। (४) असाधारण बालको की शिक्षा का उचित प्रबन्ध होना चाहिए, तथा (५) शिक्षा-विधि को निर्धारित करना, व्यक्तिगत भेद पर ही होना आवश्यक है।

जो प्रणालियाँ व्यक्तिगत भेद को ध्यान मे रखकर शिक्षण-व्यवस्था करती हैं, वह हैं—डाल्टन प्लान, विनेटका प्लान तथा प्रोजेक्ट प्रणाली।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. व्यक्तिगत भेद से आप क्या समझते हैं ? व्यक्ति एक-दूसरे से किन-किन बातो मे विभिन्नता लिये रहते हैं ? वर्णन कीजिए।

२. आपको एक विशिष्ट पाठ्यक्रम की प्रत्येक बालक के लिए क्यों आवश्यकता है ? एक पिछड़े हुए बालक के लिए आप किस प्रकार का पाठ्यक्रम अपनायेंगे ?

३. डाल्टन तथा विनेटका प्लान किस प्रकार व्यक्तिगत भेद के आधार पर शिक्षा देती हैं ? इन दोनों प्रणालियो के अन्तर पर दृष्टिपात कीजिए।

४. कक्षा-विभाजन सजातीय समूह के रूप मे होना चाहिए या विजातीय ? स्पष्ट कीजिए तथा अपने उत्तर की पुष्टि के लिए उदाहरण दीजिए।

५. सत्य अथवा असत्य कथन का चुनाव कीजिए :

(अ) सब बालको मे कोई भी समानता नहीं होती। हाँ/नहीं

भाग ३

सीखना

[LEARNING]

११ सीखने का स्वरूप एवं प्रक्रिया
NATURE & PROCESS OF LEARNING

व्यक्ति अपने जीवन के प्रारम्भ से ही सीखना आरम्भ कर देता है और जीवन-पर्यन्त सीखता ही रहता है। बालक शैशवावस्था के आरम्भ मे बिलकुल असहाय होता है, उसका जीवन दूसरो पर निर्भर रहता है। किन्तु वह धीरे-धीरे अपने को वातावरण के अनुकूल व्यवस्थापित करने का प्रयत्न करता है। उसके सीखने की प्रक्रिया मे दो मुख्य तत्त्व निहित होते हैं जो उसे वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करने मे सहायता पहुँचाते हैं—(i) परिपक्वता, (ii) अनुभूति से लाभ उठाने की योग्यता। बालक की परिपक्वता, उसकी अभिवृद्धि और विकास के जो उसकी उम्र के बढने के साथ-साथ होता जाता है, सम्बन्ध मे हम पिछले अध्यायो मे चर्चा कर चुके हैं। इस स्थान पर हम **'अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता'** पर प्रकाश डालेंगे तथा परिपक्वता और प्रौढता की भी जहाँ आवश्यक होगा, साथ-साथ चर्चा करेंगे।

प्रत्येक प्राणी कुछ ऐसे जन्मजात उपस्करण को लेकर उत्पन्न होता है, जो उसकी प्रारम्भिक प्रतिक्रियाओं की दिशा निर्धारित करते हैं। प्राणी इन्ही उपस्करणो के आधार पर अपने को सरल वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करता है, जो जन्म के समय चारो तरफ मिलता है। किन्तु मानव तो जटिल परिस्थितियो मे रहता है, अतः उसके व्यवहार को दिशा देने वाले ये जन्मजात उपस्करण अपूर्ण सिद्ध होते हैं। उसे अपनी प्रतिक्रियाओ एव व्यवहार को अधिक व्यापक और वातावरण के उपयुक्त बनाने के लिए जीवन के अनुभव से लाभ उठाना पडता है। उसे कुछ सीखना पडता है। इस अर्थ में हम 'सीखने' की परिभाषा इस प्रकार देंगे—**"वातावरण के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया को अपनाने की प्रक्रिया ही 'सीखना' है।"**[1]

सीखने से तात्पर्य है, 'संचयी उन्नति'[2]। उन्नति के स्वरूप का आकलन उन परिवर्तनों द्वारा किया जा सकता है जो उस समय होते हैं जबकि सीखने की क्रिया हो

1. Learning is the process of acquiring the appropriate response. 2. Comulative improvement.

रही होती है। जीवन के आरम्भ में बालक के सीखने की प्रक्रिया का स्वरूप
रस एवं समन्वेषी होता है। उस समय बालक के कार्य-व्यापारों में विभि
गोचर नहीं होती तथा उसकी प्रतिक्रियाएँ प्राय: दोषपूर्ण होती हैं। उचि
द्वारा वह कम त्रुटियाँ करना सीख लेता है, वह अपने कार्यों में एकरूप
और निर्णय करने की क्षमता का विकास करता है। बालक के लिए शिक्षा
सीखने की दिशा एवं तत्सम्बन्धी पाठ्यक्रम बालक की अभिवृद्धि और
अवस्थाओं पर निर्भर होता है। बालक की उम्र में जैसे-जैसे वृद्धि होती
विचारों में अनिश्चितता और अस्थिरता कम होती जाती है। वह अपने उन
सरलतापूर्वक करने लगता है जिन कार्यों को वह प्रथम अवस्था में अत्यन्त
एवं घबराहट के साथ किया करता था।

व्यक्ति की उन्नति से हमारा तात्पर्य अनुभव के द्वारा लाभान्वित
किन्तु सीखने का अर्थ एक यान्त्रिक विधि से अभ्यास के द्वारा तथ्यों एव
को प्राप्त करना मात्र नहीं है वरन् सीखने में जिज्ञासु को साधन, वस्तुओं का
और मूल्यांकन भी करना पड़ता है तथा उनकी कई प्रकार के अर्थों में व
करनी पड़ती है, और वह चेतन रूप से वांछित उद्देश्य प्राप्त करने की चे
लगता है। हमें सीखने की परिभाषा पर पूर्ण रूप से विचार कर लेना चाहि

सीखने की परिभाषा

बर्नहर्ट के अनुसार, "सीखना व्यक्ति के कार्यों में एक स्थायी
लाना है जो निश्चित परिस्थितियों में किसी इष्ट को प्राप्त करके अथवा कि
को सुलझाने के प्रयास में अभ्यास द्वारा लाया जाता है।"[1] सीखना ए
प्रक्रिया है जो व्यक्ति के अपने कार्यों पर निर्भर रहती है, जबकि मानसिक
अथवा प्रौढ़ता विकास की प्रक्रियाएँ हैं, जिनके सम्बन्ध में व्यक्ति बहुत कम
सकता है।

गेट्स के अनुसार, "अनुभव द्वारा व्यवहार में रूपान्तर लाना ही
है।"[2] व्यक्ति को क्या सीखना है, इसका निश्चय उसके शारीरिक स्व
परिस्थितियों की माँग पर आधारित होता है। मनुष्य पर वातावरण का ब
प्रभाव पड़ता है। वह अपने चारों तरफ की परिस्थितियों से प्रभावित हुए
नहीं रहता है। वह स्वभाव से आत्मरक्षा प्रवृत्ति वाला होता है, उसकी प्रति

---

1. Bernhardt : *Practical Psychology*, p. 259—"Lea
defined as the more or less permanent modification of an indi
activity in a given situation due to practice in attempts to
some goal or solve some problem."

2. Gates & Others : *Educational Psychology*, P
"Learning is modification of behaviour through experience."

कुछ निश्चित पितृागत विधियाँ होती हैं। "उसकी रुचि, रुझान, निपुणता, योग्यता एवं श्लाघा शक्ति—सभी सीखने की क्रिया की ही उपज हैं।"

पील महोदय के अनुसार, "सीखना व्यक्ति में एक परिवर्तन है जो उसके वातावरण के परिवर्तनों के अनुसरण में होता है।"[1] किन्तु वह यह कहते हैं कि प्रत्येक वातावरण मे परिवर्तन 'सीखना' नहीं। यदि एक व्यक्ति मोटर दुर्घटना मे संज्ञाहीन हो जाता है तो यह सीखना नही है।

पील महोदय सीखने की प्रक्रिया का सक्षेपीकरण निम्न प्रकार से करते है :

(१) सीखना सहज क्रियात्मक नहीं है। इससे तात्पर्य यह है कि पलक का झपकना या टखने पर चोट लगने पर उसे पीछे हटाना सीखना नही है। यह क्रियाएँ शारीरिक क्रियाएँ हैं जो व्यक्ति स्वाभाविक रूप से करता है।

(२) सीखना चेतन उद्देश्य से हो सकता है अथवा यह सामाजिक और जैविक अनुकूलन के लिए हो सकता है।

(३) सीखने के द्वारा व्यक्ति मे स्थायी तथा अस्थायी परिवर्तन आते हैं।

(४) यह अनुकूलित हो सकता है। तात्पर्य यह कि यह समाज-स्वीकृत व्यक्ति बना सकता है अथवा प्रतिकूलित हो सकता है जो असामाजिक व्यवहार को जन्म दे सकता है। इस सम्बन्ध मे हम 'मानसिक स्वास्थ्य' वाले अध्याय मे विस्तार से वर्णन करेंगे।

(५) सीखना सही हो सकता है या त्रुटिपूर्ण।

सीखने की प्रक्रिया[2]

सीखने की प्रक्रिया मे कोई अनुप्रेरण[3] या अंतर्नोद[4], एक आकर्षित करने वाला लक्ष्य अथवा लक्ष्य को प्राप्त करने मे रुकावट शामिल रहते हैं। हम एक उदाहरण द्वारा सीखने की प्रक्रिया को स्पष्ट कर सकते हैं। एक बालक भूखा है। भूख यहाँ अन्तर्नोद है। वह अलमारी के पास जाता है जिसमे उसकी माता ने मिठाई रखी है। वह उसे खोलने की चेष्टा करता है किन्तु चटखनी ऊँचाई पर लगी होती है और वह उस तक पहुँच नही पाता। वह इधर-उधर देखता है। एक स्टूल उसे दिखाई पड़ता है। वह उसे उठा लेता है। चटखनी खोलता है और मिठाई निकाल लेता है। इस उदाहरण मे मिठाई प्राप्त करने का लक्ष्य स्पष्ट है। अब यदि वह प्रारम्भ मे ही बिना कठिनाई के अलमारी खोलने मे सफल हो जाता है तो उसकी क्रिया वहीं समाप्त हो जाती है और कोई नवीन सीखना नही होता। किन्तु यहाँ एक रुकावट है। चटखनी ऊँची है। यह रुकावट उसमे तनाव उत्पन्न कर देती है। वह बेचैनी महसूस करता है

1. E. A. Peel : ...
burgh, Oliver & Boyd,
individual following up

2. Learning Prc

और एक हल की खोज करता है। यह हल उसे स्टूल पर चढ़कर चटस रूप में मिल जाता है। अतएव उसका सीखना हो गया। इस अनुभव प्रकार में सीखा . (१) उसने प्रस्तुत समस्या को हल करना सीखा, तथ एक विधि सीख ली जिसका प्रयोग वह भविष्य में ऐसी समस्याओं को कर सकेगा।

सीखना और प्रौढ़ता[1]

हम पहले बता चुके हैं कि 'प्रौढ़ता' और 'सीखना', दोनों मिलक विराम में सहायता पहुँचाते हैं। वे एक-दूसरे से इतने अधिक सम्बन्धित अं होते हैं कि उन्हे अलग-अलग करके देखना अत्यन्त कठिन है किन्तु फि हारिक दृष्टि से उनका मूल्यांकन करने के लिए हमे उनका अलग-अल करना चाहिए।

'प्रौढ़ता' व्यक्ति की वह स्वाभाविक अभिवृद्धि है जो बिना किन् परिस्थितियों, जैसे—शिक्षा एवं अभ्यास आदि, के ही अनवरत रूप से चलत उदाहरण के लिए, सभी बालक एक निश्चित उम्र पर पैरों चलना, बोलन ऐसे कार्य करना सीखते हैं। विभिन्न बालकों का वातावरण एवं परिस्थि बिलकुल भिन्न हों, फिर भी उनमें यह अभिवृद्धि अवश्य ही होती है। इस सीखने की क्रिया में वातावरण द्वारा प्रदान किये हुए उत्तेजक व्यक्ति के परिवर्तन लाते हैं। बालक अपने अनुभवों के आधार पर एवं अपनी प के अनुसार ही सीखता है। इसमें अभ्यास और शिक्षा, दोनों ही रहते हैं।

मैक-ग्रो[2] एवं उनके साथियों ने अपने जुड़वाँ बालकों के अध्ययन पर यह सिद्ध किया कि "बालक की साधारण अभिवृद्धि के लिए जिन आवश्यकता होती है, उन पर बार-बार जोर देना तथा उनका अभ्यास कर उपयोगी नहीं होता। स्ट्रेयर[3] ने दो समान जुड़वाँ बालकों T और C दिये जाने वाले प्रशिक्षण से देर में दिये जाने वाले शाब्दिक प्रशिक्षण की तु २८ दिन में C जुड़वाँ बालक ने उतने शब्द-भण्डार को सीख लिया जित दिनों में, C से छोटी आयु पर दिये गये शिक्षण द्वारा सीख सका। परन्तु प अवधि के अन्त में T जुड़वाँ बालक का जिसकी शिक्षा C से पाँच सप्ताह पह हुई थी, शब्द-भण्डार, उच्चारण और वाक्य-योजना दूसरे से श्रेष्ठ थी।

1. Learning & Maturation.

2. M. C. McGrow : *Growth.*

3. L. C. Strayer : *Language & Growth*—"The I Efficiency of Early and Deferred Vocabulary Training studied method of co-twin control."

माह के उपरान्त उसकी श्रेष्ठता समानता मे परिवर्तित हो गई। यह सीखने की प्रक्रिया अन्य कार्यों, जैसे—खिसकना, चलना आदि, मे भी इसी प्रकार होती है।

विशिष्ट प्रशिक्षण और अभ्यास उन कार्यों मे बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध होता है, जिनका सम्बन्ध मनुष्य के सामान्य विकास और अभिवृद्धि से नही होता; जैसे—तैरना, पहाड़ों पर चढना, घुड़सवारी, स्केटिंग आदि। मैक-ग्रो महोदय ने जिन दो समान यमजो का अध्ययन किया उनमे मे एक को जबकि वह ३५० दिन का था, रौलर स्केट्स की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। यह प्रशिक्षण लगभग उसकी दो वर्ष की आयु तक चलता रहा, उस समय वह ६६४ दिन का था। उसके शारीरिक गठन मे उसी प्रकार के प्रारम्भिक लक्षण पाये गए जो व्यवसायी 'स्केटर' मे होते हैं। इन परिणामों से यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कार्य मे विशिष्ट कौशल प्राप्त करने के लिए तद्विषयक प्रशिक्षण अत्यन्त प्रारम्भ मे देना चाहिए अन्यथा बहुत समय उप-रान्त इन दिशाओं मे यह व्यक्ति उस कार्य मे प्रवीणता प्राप्त कर सकेगा। सीखने की प्रक्रिया अभिवृद्धि मे स्वतन्त्र नही रहती, उसका आधार तो बालक की अभिवृद्धि के स्तर पर ही निर्मित होना चाहिए। अभ्यास जब अभिवृद्धि के स्तर को ध्यान मे रखकर दिया जाता है तो लाभदायक होता है।

उपर्युक्त विवेचन तथा प्रयोगात्मक अध्ययनो के निष्कर्षों के आधार पर हम चार अन्तिम परिणामो पर आते हैं :

१. परिपक्वता एक सत्य है।
२ परिपक्वता सीखने की गति पर प्रभाव डालती है।
३. किसी क्रिया मे अभ्यास जिसका परिपक्वता स्तर नही प्राप्त हुआ है, प्रभावशाली नहीं होगा।
४ यह अत्यन्त आवश्यक है कि सब सीखने की क्रियाओं मे परिपक्वता के स्तर को ध्यान मे रखा जाये।

सीखने के उद्देश्य[1]

सीखने के उद्देश्यो को मोटे तौर पर दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(अ) ज्ञानोपार्जन, और (ब) कौशल-अर्जन। ज्ञानोपार्जन मे तात्पर्य मानसिक एवं संवेगात्मक संपरिवर्तन तथा आत्म-नियन्त्रण से है। कौशल-अर्जन का अर्थ सीखने की प्रक्रिया द्वारा संवेगात्मक, गामक एवं नाड़ी-जाल सम्बन्धी रूपान्तर लाना तथा उन पर समुचित नियन्त्रण रखना होता है।

(अ) ज्ञानोपार्जन

सीखने के उद्देश्य 'ज्ञानोपार्जन' मे भी कई उपभेद हो सकते हैं। [illegible] उप-भेद मस्तिष्क के सीखने की शक्ति को किस प्रकार विकसित [illegible] इस ढङ्ग से सीखने की प्रक्रिया मे वृद्धि की [illegible]

1. The G [illegible]

जाते हैं। यहाँ इन सब उपभेदों का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से किया गया है। विद्यार्थी को चाहिए कि इन सब उपभेदों का विस्तृत अध्ययन उन अध्यायों को पढ़-कर करे जहाँ इन पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। सभी सम्भाव्य उपभेदों का विवेचन क्रमशः नीचे किया गया है :

(१) प्रत्यक्षीकरण[1]—"किसी वस्तु अथवा घटना के बारे में किसी क्षण-विशेष में जब इन्द्रिय-बोध द्वारा हमारा सीधा सम्बन्ध उससे स्थापित किया जाता है तो तत्सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी ही प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाती है।" वस्तुतः प्रत्यक्ष ज्ञान संवेदन के बाद की अवस्था है। संवेदना शुद्ध इन्द्रिय-ज्ञान होता है। इससे हमारे पूर्व-अनुभवों का कोई सम्बन्ध नहीं होता, अतः संवेदना के द्वारा किसी वस्तु का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता। हम वस्तु को देखते, स्पर्श करते, सुनते हैं किन्तु किसी निर्णय पर नहीं आ पाते। जब हम पुराने संस्कारों द्वारा निर्णयावस्था पर पहुँच जाते हैं तो प्रत्यक्षीकरण होता है, इसे ही प्रत्यक्ष-ज्ञान कहते हैं। जब कोई पदार्थ हमारी ज्ञानेन्द्रिय के सम्पर्क में आता है तो हम उसकी संवेदना का अनुभव करते हैं तथा पुराने अनुभव के आधार पर उस पदार्थ का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर उसे 'विशेष' की संज्ञा देते हैं। यही प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। उदाहरणार्थ, छोटा बालक किसी महिला को देखता है। पूर्वकाल में किसी महिला ने उसे दूध पिलाया था, अतः उस महिला को देखते ही उसके प्राचीन संस्कार जाग उठेंगे। वह उस महिला की तुलना प्राचीन संस्कारों से करेगा और तुलना के फलस्वरूप उसके मस्तिष्क में परिचायिका अथवा माँ का चित्र बन जायगा। इसे हम स्त्री-सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण कहेंगे। प्रत्यक्ष के स्तर पर इस प्रकार के सीखने को हम 'प्रत्यक्षात्मक सीखना' कहेंगे। इसका विस्तृत विवेचन हम आगे अन्य अध्याय में करेंगे।

(२) प्रत्यय या संकल्पना ज्ञान[2]—प्रत्यक्ष ज्ञान का अर्थ है संगठित ज्ञान जो प्रत्यक्ष अथवा सामान्य विचारों के रूप होते हैं तथा किन्हीं विशेष प्रत्यक्षीकरण के उच्च-स्तर पर होते हैं। प्रत्यक्षीकरण में हमें किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों अथवा विशिष्ट व्यक्ति का ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष में सामान्य अथवा सार्वभौमिकता या जाति का बोध होता है। प्रत्यक्षीकरण में बालक नारंगी, सेब और केला इत्यादि का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है और उनके गुणों को भी बताने में समर्थ होता है। इन सभी के आधार पर बालक फलों के बारे में एक धारणा बना लेता है, एक विचार निश्चित करता है, यही प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। इस विषय पर हम आगे अन्य अध्याय में विस्तृत विचार करेंगे।

(३) साहचर्य से सीखना[3]—साहचर्य से सीखने से तात्पर्य यही है कि विभिन्न प्रत्ययों में ऐसे सम्बन्ध स्थापित किये जायें कि जब एक प्रत्यय का पुनः स्मरण कर ... प्रत्यय जो उससे सम्बन्धित हैं, वह सब भी पुन.स्मरण[4] कर लिये

...erception. 2. Conception 3. Associative Learning. 4. Recall.

जायें और उनकी पहचान[1] हो जाये। इस प्रकार का सीखना स्मृति[2] के अन्तर्गत आता है। किस प्रकार विभिन्न प्रत्ययों में साहचर्य स्थापित किया जाये और कि प्रकार स्मृति को दृढ़ बनाया जाये, जिससे इस प्रकार का सीखना हो सके—इन बातों की विस्तृत रूप से चर्चा 'स्मृति' के अध्याय में की गई है।

(४) रसानुभूति[3]—किसी संवेगात्मक अथवा भावुकतापूर्ण वर्णन द्वारा प्र वित होकर जब हम भावों, आदर्शों, मनोवृत्ति आदि पर रसानुभूतिपरक ज्ञान प्र करते हैं तो वह 'रसानुभूति' कहलाता है। ज्ञानोपार्जन की यह विधि भावात्मक त पर निर्भर होती है।

(ब) कौशल-अर्जन

इसमें हम 'संवेदनात्मक' नामक प्रक्रियाओं को समझते और उन्हें सीखते उदाहरणार्थ—लिखना-पढ़ना, संगीत, भाषा-ज्ञान प्राप्त करना एवं चित्रकारी आ

नवीन मतानुसार 'सीखना' एक गतिशील क्रिया है। यह एक क्रियाहीन ज्ञ का शोषण नहीं है, न केवल किताबों का पाठन है और न उपदेशों का इस वि से सुनना है कि जो कुछ सुना जाय उसे याद कर लिया जाए ताकि उसको भी चाहे दुहरा सकें। वास्तविक सीखना अपने अनुभवों को उपयोगी बनाना इस दृष्टिकोण के बारे में कुछ परिणाम हमें उस समय देखने को मिलते हैं जब हम क्रि शील कार्यक्रमों को गौरव देते हैं। क्रिया द्वारा सीखना, वस्तु के साथ सीधा सम्ब *योजना-विधि*, स्वयं क्रिया आदि पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण

'सीखना' रूपान्तरण है जो व्यावहारिक प्रतिमानों के अनुभवों के आधार किया जाता है। सीखने में प्राणी अपने वातावरण के अन्दर *प्रक्रिया* करता वातावरण ही उसे प्रेरित करता है और वातावरण पर ही वह प्रतिक्रिया करत और जब उसकी प्रतिक्रियाएँ उसके अनुभवों के आधार पर और शिक्षा के आ पर रूपान्तरित हो जाती हैं—तभी हम कह सकते हैं कि सीखना आरम्भ हो चुका

सीखने की क्रिया में क्रियात्मक सीखने के द्वारा, व्यावहारिक प्रतिमानों रूपान्तरण एक आसान कार्य नहीं है। विशेष रूप से *मानवों के सीखने में* क प्रशिक्षण तथा उन तत्त्वों का उचित नियन्त्रण जो सीखने की *क्रिया को सम्बद्ध* क हैं, आवश्यक है। अब हमें उन तत्त्वों का निर्धारण करना चाहिए जो सीखने *क्रिया को निबद्ध करते हैं*, और इसके पश्चात् हम उन विषयों पर विचार करेंगे सीखने में कुशलता प्रदान करते हैं।

सीखने को निबद्ध करने वाले तत्त्व[4]

सीखने की क्रिया में तीन तत्त्व सयुक्त हैं जिन्हें *हम इस प्रकार कह सकते है* (i) मनोवैज्ञानिक तत्त्व, (ii) शारीरिक तत्त्व, और (iii) वातावरण सम्बन्धी तत्त्व

---

8 D... ... ... Appreciation. 4. Fact
gical Factor, (ii) Psy

मनोवैज्ञानिक तत्त्व को हम सीखने में अनुप्रेरणा[1] कहते हैं। सीखना प्राणी की वह क्रिया है जिसके द्वारा वह अपने पर्यावरण से प्रतिक्रिया करता है। सीखने वाले के अन्दर क्रिया को अभिप्रेरणा के द्वारा ही उत्पन्न करते हैं।

हमारा शारीरिक प्रत्युत्तर अथवा प्रतिक्रिया हमारे ज्ञान-ग्राह्य तन्तुओं (चक्षुदृष्टि आदि) प्रभावकों[2] की दशा और शरीर की सामान्य दशा पर निर्भर होता है। दोषपूर्ण दृष्टि, दोषपूर्ण श्रवण-ग्रन्थियों की निष्क्रियात्मकता स्पष्ट रूप से सीखने पर प्रभाव डालती है। यहाँ पर हमें आयु का प्रभाव और परिपक्वता, थकान तथा नशीली वस्तुओं के प्रभाव को भी विचार में लाना चाहिए। सामान्यतः, आयु का हमारे में सचालन भी निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है जहाँ तक कि यह स्पष्ट रूप से शरीर के ऊपर प्रभाव डालते हैं। ऊपर वर्णन किये हुए सब तत्त्व शारीरिक तत्त्व के अन्तर्गत ही आते हैं।

तीसरा वातावरण सम्बन्धी तत्त्व हमारे सम्मुख सम्पूर्ण वातावरण की उन अवस्था को प्रकट करता है, जो सम्पूर्ण सीखने की क्रिया में अत्यन्त सहायक होती है। हम विस्तार से इन तत्त्वों पर प्रकाश डालेंगे।

जब हम सीखने को निबद्ध करने वाले तत्त्वों पर ध्यान देते हैं तो यह तत्त्व हमारे सम्मुख दो प्रकार से आते हैं :

(१) वह तत्त्व जो सीखने में सहायक होते हैं।[3]

(२) वह तत्त्व जो सीखने की गति कम कर देते हैं।[4]

अगले दो अध्यायों में हम इन्हीं तत्त्वों पर ध्यान देंगे। पहले हम सीखने के अभिप्रेरणा इत्यादि के महत्त्व का वर्णन करेंगे फिर सीखने की गति को धीमा करने वाले तत्त्वों का वर्णन उसके आगे अध्याय में करेंगे।

सीखने की विधियाँ[5]

सीखने की अच्छी विधियाँ क्या हैं यह एक शिक्षक के लिए जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु इन विधियों की अच्छी जानकारी हमें उस समय तक नहीं मिल सकती जब तक हम सीखने को निबद्ध करने वाले तत्त्वों तथा सीखने के सिद्धान्तों को न जान लें। हम सीखने के सिद्धान्तों का वर्णन [illegible] अध्याय में करेंगे और सीखने के प्रकार और विधियों का [illegible] अध्याय में।

सारांश

प्रत्येक व्यक्ति जन्म के आरम्भ से ही सीखना आरम्भ करता है और [illegible] [illegible] ही रहता है। जन्म के समय और उसके कुछ समय बाद तक [illegible] [illegible] [illegible] है। किन्तु वह धीरे-धीरे अपने को वातावरण के अनुकूल [illegible]

---

1. Motivation, 2. [illegible], 3. Factors that facilitate learning,
4. Factors that retard learning, 5. Methods of Learning.

करना सीखता है। वातावरण के अनुकूल व्यवस्थापन में दो मुख्य तत्व कार्य करते हैं—(१) परिपक्वता, और (२) अनुभव से लाभ उठाना। वस्तुत. अनुभवो को बढ़ाना और प्रतिक्रियाओ को उपयुक्त बनाना ही सीखना है।

बालक जब प्रारम्भ में सीखना शुरू करता है तो उसकी विधियाँ अनुसन्धानात्मक एवं रूक्ष होती हैं। फलस्वरूप उसकी प्रतिक्रियाएँ भी अस्पष्ट तथा मिली-जुली होती हैं। धीरे-धीरे बालक अपने कार्यों में से त्रुटियों को दूर करता और अपने प्रयासो मे एकरूपता लाना सीखता है। जैसे ही वह उम्र में बढ़ता जाता है, वह जटिल से जटिल कार्यों को भी क्रमबद्ध करना सीखता है।

सीखने से तात्पर्य केवल अनुभव से लाभ उठाना, किसी कौशल को ग्रहण करना मात्र नहीं है वरन् सीखने की सामग्री सुनियोजित करना, उसका मूल्याङ्कन करना और उसमें बहुत से अर्थ निकलने मे केवल उस अर्थ को ग्रहण करना है जो अपने विषय के अनुकूल ही है। सीखने की परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी हैं। बर्नहर्ट के अनुसार, "किसी समस्या को सुलझाने अथवा किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अभ्यास के द्वारा किन्ही निश्चित परिस्थितियो मे व्यक्ति के कार्य-कलापो मे जो स्थायी रूपान्तर होता है उसे ही 'सीखना' कहते हैं।" गेट्स के मत से, "अनुभव द्वारा व्यवहार मे रूपान्तर लाना ही 'सीखना' है।"

प्रौढता और सीखने की प्रक्रिया का धना सम्बन्ध होता है। व्यक्ति जैसे-जैसे प्रौढ होता जाता है, उसके सीखने की शक्ति बढती जाती है। व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे व्यक्ति विभिन्न प्रकार से सीखता है। कुछ अवस्थाएँ ऐसी हैं जब सभी व्यक्ति एक ही प्रकार की बातें सीखते हैं, जैसे—शैशव एव बाल्यकाल, इनमे सभी बालक चलना, बोलना, दौड़ना और खेलना सीखते हैं। मैक-ग्रो और उनके साथियों ने जुड़वाँ बालकों के अध्ययन से यह देखा कि ऐसे कार्यों मे जिनकी आवश्यकता मानव के सामान्य विकास मे पड़ती है, विशेष अभ्यास अथवा प्रशिक्षण अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं होता है, जैसे—चलना, बोलना, दौडना।

अभ्यास एवं विशेष प्रशिक्षण उन कार्यों मे अधिक लाभदायक होता है जिनका मानव के सामान्य सहज विकास मे कोई सम्बन्ध नही होता तथा जिनमे कौशल-अर्जन की आवश्यकता होती है, जैसे—तैरना, घोड़े पर चढना, फुटबाल या हॉकी खेलना इत्यादि।

सीखने के कुछ उद्देश्य होते हैं, जिनमे निम्नलिखित प्रमुख हैं· (१) ज्ञान-प्राप्ति, और (२) कौशल-प्राप्ति। ज्ञान-अर्जन अथवा ज्ञान-प्राप्ति के कुछ भेद भी हो सकते हैं, जैसे—(i) प्रत्यक्षीकरण, (ii) प्रत्यय ज्ञान, (iii) साहचर्य से सीखना, तथा (iv) रसानुभूति। कौशल-प्राप्ति के अन्तर्गत लिखना, पढना, संगीत इत्यादि आते हैं।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. "सीखने का तात्पर्य नवीन अनुभवों को प्राप्त करना पुरानी अनुभूतियों को एकत्रित करना है। इतना ही और नवीन अनुभवों का संश्लेषण भी है, जिसके सुनियोजित एवं क्रमबद्ध अनुभव हमें प्राप्त होना है व्याख्या कीजिए और बताइए कि सीखने का तात सीखने का मनोविज्ञान किसे कहते हैं ?

२ प्रायः सामान्य तौर पर 'सीखने' की परिभाषा क्या दी परिभाषा देते हुए 'सीखने' के बारे में अपनी धारणा यह बताइए कि आपके राज्य में हायर सेकेण्डरी धारणा से बालकों के शिक्षण में किस प्रकार का आवश्यक है ?

३. सीखने का स्वरूप क्या है ? स्पष्ट समझाइए। शैक्षिक तथा पाठशाला के वातावरण में आप 'सीखने की प्रक्रि प्रकार अध्ययन करेंगे ? विस्तारपूर्वक समझाइए।

४. सत्य, असत्य कथन को छाँटें

(अ) विशिष्ट प्रशिक्षण और अभ्यास उन कार्यों में लाभदायक होता है जिनका सम्बन्ध मानव के स और अभिवृद्धि से नहीं होता।

(ब) अनुभव द्वारा व्यवहार में रूपान्तर लाना ही सीखन

(स) सीखने की क्रिया समस्या के हल में रुकावट आती है।

(द) परिपक्वता का सीखने की क्रिया से कोई सम्बन्ध नहं

(य) सीखने की गति सीखने को निबद्ध करने वाले तत्वों

१२ अभिप्रेरक और सीखना
MOTIVES AND LEARNING

सीखने के सहायक तत्त्व[1]

मानव-व्यवहार कुछ प्रेरकों द्वारा ही नियन्त्रित, पथ-प्रदर्शित एवं रूपान्तरित होता रहता है। जब भी कोई व्यक्ति भूखा है और खाने की तलाश कर रहा है या जब वह कोई मकान बना रहा है या विषमलिङ्गीय के साथ मिल रहा है या नई कलाओं को सीख रहा है, तब हम प्रत्येक दशा मे कुछ ऐसे तत्त्वों को ढूँढ निकाल सकते हैं जो उसकी क्रियाओं को प्रारम्भ करते हैं और बराबर उसके कार्यों का पथ-प्रदर्शन करते हैं एवं उसकी सफलताओं और असफलताओं के प्रकाश मे उसके व्यवहार को मोडते हैं। हम इन तत्त्वो को 'अभिप्रेरक' कहते हैं। व्यक्ति खाने की तलाश करता है क्योंकि भूख एक प्रेरक है, और यह प्रेरक उसको खाना तलाश करने की क्रिया के लिए आवश्यक स्फूर्ति प्रदान करता है। इस प्रकार हम प्रेरको को 'मानव प्रकृति का कच्चा पदार्थ'[2] कहते हैं। हमारे बहुत-से सामाजिक कार्य हमारे शारीरिक अभिप्रेरकों पर ही निर्भर रहते हैं। शारीरिक या जैविक अभिप्रेरक सामाजिक वातावरण के प्रभाव के कारण सामाजिक अभिप्रेरकों के रूप मे विस्तृत एवं विकसित हो जाते हैं। इस अध्याय मे हमारा उद्देश्य विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरको का वर्णन करना तथा उनका सीखने मे क्या महत्त्व है इस पर प्रकाश डालना है।

अध्यापक यह जानकर कि बालक किस प्रकार से अभिप्रेरण ग्रहण करते हैं और कौनसे अभिप्रेरक सीखने मे सहायक होते हैं, वांछित शिक्षण प्रदान कर सकता है। हम यहाँ इसी ओर प्रयास करेंगे कि एक शिक्षक को बालको के सीखने मे महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तत्त्व अभिप्रेरण के प्रयोग मे अवगत करा दें।

अभिप्रेरण क्या है ?[3]

अभिप्रेरण क्या है—इसे समझने के लिए हम एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं: दो बालक मोहन और सोहन एक ही कक्षा मे पढ़ते हैं। दोनों हॉकी खेलने

---

1. Factors that facilitate learning 2. Raw material of human nature. 3. What is Motivation ?

मे रुचि रखते हैं। एक दिन शाम को उन्हें दूसरे बालकों के साथ खेल प्रदर्शन के लिए बुलाया जाता है ताकि विद्यालय की टीम का चुनाव हो सके। चुनाव में दोनों बालक ही असफल हो जाते हैं। मोहन उन अध्यापक महोदय के जो चुनाव करते हैं, पास जाता है और प्रार्थना करता है कि उसे टीम में अवश्य ले लिया जाये। वह कहता है कि टीम में लिये जाने पर उसे खिलाड़ियों के लिए जो छात्रवृत्ति है, वह मिल जायेगी। अध्यापक महोदय कहते हैं कि उसका खेल उस स्तर का नहीं कि उसे टीम में ले लिया जाये। मोहन निराश हो जाता है और अपने सहपाठियों से अध्यापक के व्यवहार की आलोचना करता है। वह अध्यापक के व्यवहार को पक्षपातपूर्ण समझता है।

सोहन भी अध्यापक के पास जाता है। वह उनसे अपनी खेल-सम्बन्धी त्रुटियाँ पूछता है। वह जानना चाहता है कि वह अपना खेल कैसे अच्छा कर सकता है। वह खेल के सम्बन्ध मे अपना ज्ञान विस्तृत बनाना चाहता है। सोहन एक अच्छा खिलाड़ी बनना चाहता है। वह प्रदेश तथा देश की टीम मे आना चाहता है और भविष्य में खिलाड़ी के रूप में ही चमकना चाहता है। शिक्षक उससे विचार-विमर्श करता है। उसे उसकी त्रुटियाँ बताकर अच्छे खेल के लिए प्रोत्साहित करता है। फलस्वरूप जब सोहन अध्यापक के पास से लौटता है तो सन्तुष्ट होता है। उसे अपने उद्देश्य की ओर पथ-प्रदर्शन मिल जाता है।

उपर्युक्त उदाहरण मे दोनों बालकों का व्यवहार अनेक प्रकार से समान है। प्रत्येक खेल मे रुचि रखता है। प्रत्येक खेलने जाता है। दोनों ही असफल रहते हैं। लगभग दोनों का खेल समान स्तर का होता है। दोनों ही शिक्षक के पास जाते हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि दोनों के व्यवहार के कारण विभिन्न हैं। मोहन टीम मे छात्रवृत्ति के कारण आना चाहता है, जबकि सोहन अच्छे खेल के प्रदर्शन में रुचि रखता है। मोहन के लिए टीम में आना छात्रवृत्ति के उद्देश्य के लिए है, जबकि सोहन एक अच्छा खिलाड़ी बनना चाहता है जिसके लिए उसे खेल के नियम और अपनी त्रुटियों को समझना आवश्यक है। इस प्रकार मोहन अपने उद्देश्य मे सफल रहता है, जबकि सोहन अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है।

इन दोनों बालकों मे अन्तर अभिप्रेरण के अन्तर के ही कारण है। किन्तु अभिप्रेरणा को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते। हम तो उनके व्यवहार को देखकर ही अभिप्रेरण के सम्बन्ध में अनुमान लगाते हैं। हम व्यवहार को देखकर ही कह सकते हैं कि मोहन को टीम मे आने की अभिप्रेरणा छात्रवृत्ति पाने के कारण मिली और सोहन को यह अभिप्रेरणा अच्छा खेल खेलने की इच्छा के कारण मिली। अतएव हमें यह याद रखना चाहिए कि अभिप्रेरण व्यवहार के निरीक्षण से अनुमानित होती है। जितने सही निरीक्षण होंगे, उतने ही सही अभिप्रेरण सम्बन्धी अनुमान होंगे।

व्यवहार के पीछे जो अभिप्रेरक क्रियाशील होते हैं, उनका अनुमान लगाने के लिए हमें व्यक्ति के व्यवहार का विभिन्न स्थितियों में निरीक्षण करना चाहिए। इसके

अतिरिक्त जो अभिप्रेरण का अनुमान लगाया जाये, उसकी सत्यता की जाँच उसके विभिन्न व्यवहार मे प्रदर्शन के द्वारा की जाये। मोहन की छात्रवृत्ति की अभिप्रेरणा उसके विभिन्न व्यवहार मे भी दृष्टिगोचर होगी।

उपर्युक्त अभिप्रेरण के विवेचन से दो महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरण-सम्बन्धी सिद्धान्त स्पष्ट होते हैं

(१) अभिप्रेरण व्यक्ति की आन्तरिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का ज्ञान हमे निरीक्षित व्यवहार की व्याख्या भी देता है और व्यक्ति के भविष्य सम्बन्धी व्यवहार के सम्बन्ध मे जानकारी दे देता है।

(२) हम अभिप्रेरण की प्रकृति निरीक्षित व्यवहार से अनुमान लगाकर निर्धारित करते हैं। इस अनुमान की सत्यता हमारे निरीक्षणों की विश्वसनीयता पर निर्भर है। यह सत्यता उस समय स्थापित हो जाती है, जब हम दूसरे व्यवहार की व्याख्या करने मे उसका प्रयोग कर सकते हैं।

'अभिप्रेरण' की परिभाषा[1]

अभिप्रेरण की परिभाषा हम केवल निरीक्षित व्यवहार के आधार पर नही दे सकते। कुछ अन्य प्रक्रियाएँ, जैसे—चिन्तन, मूल्यांकन इत्यादि भी निरीक्षित व्यवहार पर अनुमानित होती हैं। अभिप्रेरणा और इन प्रक्रियाओ मे अन्तर है। अत: अभिप्रेरण की परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं—"**अभिप्रेरण व्यक्ति का एक आन्तरिक शक्ति-परिवर्तन है जो भावात्मक जागृति तथा पूर्वानुमान उद्देश्य प्रतिक्रियाओं द्वारा वर्णित होता है।**"[2]

इस परिभाषा मे तीन तत्त्व सम्मलित हैं :

(१) अभिप्रेरण: व्यक्ति के अन्दर शक्ति-परिवर्तन से प्रारम्भ होती है[3]— मानव के स्नायुक-शारीरिक संस्थान में शक्ति-परिवर्तन के कारण ही अभिप्रेरण मे परिवर्तन होता है। बहुत से अभिप्रेरकों के सम्बन्ध में हम यह नही बता सकते कि यह शक्ति-परिवर्तन कैसे होता है। किन्तु भूख की प्रेरणा इत्यादि व्यक्ति के शारीरिक परिवर्तन के कारण ही उत्पन्न होती है। मोहन और सोहन के अन्दर उनकी अभिप्रेरण से सम्बन्धित शक्ति-परिवर्तन का वर्णन हम ठीक प्रकार से नही कर सकते। जितना अभिप्रेरण सम्बन्धी ज्ञान हमे है, उसके आधार पर केवल यही कह सकते हैं कि कुछ शक्ति-परिवर्तन अवश्य होता है।

---

1. Definition of Motivation.

2. McDonald, F. J—*Educational Psychology*, California, Wadswor M, 1962, p 77: "Motivation is an energy change within the person characterized by affective arousal and anticipatory goal relations."

3. Motivation begins in an energy change in the person.

(२) *अभिप्रेरण : भावात्मक जागृति द्वारा वर्णित होती है*[1]—अभिप्रेरण का यह भावात्मक पक्ष अनेक शब्दों से वर्णित किया जाता है। इसे हम मनोवैज्ञानिक तनाव की स्थिति कह सकते हैं। व्यक्तिगत रूप से इस भावात्मक दशा का वर्णन संवेग द्वारा करते हैं। जब एक शिक्षक क्रोधित होकर बालक को मारता है तो मारने की प्रेरणा वाला व्यवहार क्रोध के संवेग द्वारा वर्णित होता है।

भावात्मक जागृति का गम्भीर होना कोई आवश्यक नहीं है, क्योंकि इसके सम्बन्ध में पूर्ण रूप से चेतन ही होना है। गम्भीर भावात्मक जागृति बहुधा व्यवहार में स्पष्ट होती है। एक विद्यार्थी अपने विचारों को जोरदार शब्दों में व्यक्त करता है। वह ऊँची आवाज में बोलता है, हाथों को हवा में पटक जाता है। शब्द-तीर चलाता है और आगे चल कर अन्त पर क्रोधित होता है। ऐसी दशा में वहन करने में जो प्रेरणा कार्य कर रही है, उसका भावात्मक पक्ष स्पष्ट हो जाता है। किन्तु बहुत बार प्रेरणात्मक व्यवहार में यह पक्ष गुप्त हो जाता है। जैसे, जब एक विद्यार्थी शान्ति से अपने कमरे में बैठा गहन अध्ययन में लीन होता है, तब भावात्मक पक्ष गुप्त ही रहता है। किन्तु प्रेरणात्मक व्यवहार स्पष्ट है। गहन अध्ययन ही वास्तव में उसके भावात्मक पहलू का द्योतक है।

(३) *अभिप्रेरण : पूर्वानुमान उद्देश्य द्वारा वर्णित होती है*[2]—अभिप्रेरित व्यक्ति कुछ प्रतिक्रियाएँ करता है, जो उसे उद्देश्य की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। इन प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यक्ति में वह तनाव कम हो जाता है जो शक्ति-परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में, अभिप्रेरण उद्देश्य प्राप्त कराने वाली प्रतिक्रियाओं की ओर ले जाती है।

अभिप्रेरण के संघटक[3]

अभिप्रेरण में *एक आन्तरिक और एक बाह्य संघटक होता है।* आन्तरिक संघटक व्यक्ति के अन्दर परिवर्तन है। यह असन्तोष की दशा अथवा मनोवैज्ञानिक तनाव की दशा है। बाह्य संघटक वह है, जो व्यक्ति चाहता है। यह वह उद्देश्य है, जिसकी ओर व्यक्ति का व्यवहार लक्षित होता है। सोहन को प्रशंसा की भूख है। वह यह प्रशंसा अनेक प्रकार से प्राप्त कर सकता है, किन्तु वह हॉकी के खेल में चमक कर यह प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है। उसकी अभिप्रेरण का आन्तरिक संघटक—प्रशंसा की आवश्यकता है और बाह्य संघटक हॉकी के खेल में चमकना है।

आवश्यकता की सन्तुष्टि एवं व्यवहार का पुष्टिकरण[4]—यहाँ यह बात और

1. Motivation is characterized by affective arousal.
2. Motivation is characterized by anticipatory goal reactions.
3. Components of Motivation.
4. Need-Satisfaction and Reinforcement of Behaviour.

ध्यान देने की है कि उद्देश्य की प्राप्ति व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव डालती है। वह व्यवहार जो आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की ओर ले जाने वाला होता है, फिर दोहराया जाता है जबकि आवश्यकताएँ फिर जाग्रत हो जाती हैं। यदि सोहन हॉकी के खेल में चमकता है तो वह प्रशंसा प्राप्त करने के लिए बार-बार अपने खेल का प्रदर्शन करेगा। इस प्रकार यह व्यवहार जो उद्देश्यों की प्राप्ति कराने वाला होता है, पुष्ट हो जाता है। जब व्यक्ति दुबारा अभिप्रेरित होता है, तब वही व्यवहार दोहराया जाता है।

बहुत-से बालक कक्षा में ऐसा व्यवहार करते हैं जो अध्यापक के दृष्टिकोण में अच्छा नहीं है। वह नहीं समझ पाता कि बालक वह व्यवहार क्यों करते हैं ? और जब वह उस व्यवहार को छोड़ने की चेष्टा करता है तो असफल रहता है। ऐसा व्यवहार पुष्टिकरण के कारण ही स्थापित हो जाता है। एक बालक जब भी कक्षा में शोर मचाता है, सबका ध्यान उस ओर केन्द्रित हो जाता है। उसकी आवश्यकता ध्यान को अपनी ओर केन्द्रित करने की है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वह शोर मचाने का व्यवहार करता है, जिसका पुष्टिकरण हो जाता है। अतएव जब भी बालक अपनी ओर ध्यान खींचने की आवश्यकता से प्रेरित होगा, वह शोर मचायेगा। यदि शिक्षक उसे डाँटेगा या मारेगा तो और अधिक उसकी अपनी ओर ध्यान खींचने की आवश्यकता की पूर्ति होगी, और इस प्रकार मार इत्यादि उसके व्यवहार की पुष्टि ही करने वाले होंगे।

अभिप्रेरकों से हमारा क्या तात्पर्य है ?[1]

अभिप्रेरक वह शक्ति है जो एक व्यक्ति को कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है। वह व्यक्ति के व्यवहार की दिशाओं को निर्धारित करते हैं और उनकी क्रियाओं की गति का संचालन करते हैं, जब व्यक्ति को कोई अभिप्रेरक मिलता है तो वह एक तनाव एवं असन्तुलन महसूस करता है। वह श्रमहीन हो जाता है, तब उसको कुछ क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। व्यक्ति को किसी एक दिशा में कार्य करने की उत्तेजना मिल जाती है। व्यक्ति की करीब-करीब सब क्रियाएँ अभिप्रेरकों से ही प्रेरित होती हैं। व्यक्ति को एक गतिशील धक्का लगता है, जबकि उसे एक अभिप्रेरण मिलता है। वह कार्य करने लगता है और उसकी क्रियाएँ उस समय तक चलती रहती हैं, जब तक कि वह एक उद्देश्य नहीं प्राप्त कर लेता है। अभिप्रेरक तीन कार्य करते हैं :

१. वह कार्य का प्रारम्भ करते हैं,
२. क्रियाओं को गतिशीलता देते हैं, और
३. जब तक उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती, क्रियाओं को एक निश्चित दिशा की ओर प्रेरित किये रहते हैं।

---

1. What we mean by Motives ?

इस प्रकार हम एक अभिप्रेरक की परिभाषा इस तरह से दे सकते हैं :

"यह क्रिया करने की वह प्रवृत्ति है जो एक उदीरणा द्वारा प्रारम्भ होती है तथा अनुकूलन द्वारा समाप्त होती है।"[1]

उदाहरण के लिए, हमारी शारीरिक क्रियाओं के कारण हमें भूख लगती है। जब हमें भूख लगती है तब हमारे अन्दर एक तनाव उत्पन्न हो जाता है और हम इस प्रकार से एवं इस दिशा में कार्य करने लगते हैं, जिससे हमारी भूख मिट सके। अतएव हमारी क्रिया एक उदीरणा, जैसे—'भूख' उदीरणा से आरम्भ होती है और उस समय समाप्त होती है, जब हमारी भूख मिट जाती है या हम एक समायोजन प्राप्त कर लेते हैं।

आवश्यकता, अंतर्नोद, प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरकों में अन्तर[2]

वास्तव में अभिप्रेरण के सम्बन्ध में बहुत-से शब्द उपयोग किये जाते हैं जैसे—क्षुधा,[3] आवश्यकताएँ,[4] अंतर्नोद[5] एवं अभिप्रेरक। हम अंतर्नोद शब्द का उस समय प्रयोग करते हैं, जब शरीर की आवश्यकताओं से उत्पन्न हुए मानसिक तनाव की अनुभूति होती है, जैसे—जब भोजन की कमी होती है तो भूख लगती है या पानी की कमी से प्यास लगती है। इस प्रकार अंतर्नोद के अन्तर्गत हम भूख, प्यास इत्यादि को रख सकते हैं। अतएव हम कह सकते हैं—अंतर्नोद आवश्यकता से उत्पन्न होती है और प्राणी को कार्य करने के लिए अग्रसर करती है।

वातावरण का वह तत्त्व जो एक अंतर्नोद को सन्तुष्ट करता है उसे प्रोत्साहन कहते हैं। उदाहरण के लिए, 'भूख' की अंतर्नोद के लिए 'भोजन' प्रोत्साहन है। भोजन से हमारी भूख सन्तुष्ट होती है, इसलिए इसे हम एक प्रोत्साहन कहते हैं।

अभिप्रेरक में आवश्यकता और अंतर्नोद के साथ-साथ लक्ष्य के भाव का और समावेश हो जाता है। इससे हमारा तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति में आवश्यकताएँ और अंतर्नोद सक्रिय हैं और उसमें एक लक्ष्य की ओर कार्य करने का भाव है, तो इस अवस्था को 'अभिप्रेरक' की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभिप्रेरक के आवश्यक अंग निम्नलिखित हैं

१. आवश्यकता एवं अंतर्नोद जो व्यक्ति में सक्रियता उत्पन्न करती हैं।

२. उद्देश्य-प्राप्ति की ओर व्यवहारों की दिशा का नियन्त्रण।

३. उद्देश्य प्राप्त कर लेने के पश्चात् क्रियाओं का अन्त।

प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरण[6]—हमारे विद्यालयों में बालकों को अनेक प्रकार के पुरस्कार दिये जाते हैं, जैसे इनाम, अध्यापक द्वारा शाबाशी, कक्षा के मित्रों द्वारा

---

1 A motive can be defined, "as a tendency to activities initiate by a drive and concluded by an adjustment."

2. Difference between needs, drives, incentives and motives.

3. Appetites 4. Needs. 5. Drives. 6. Incentives and motivation.

स्वीकृत इत्यादि। बालकों से आशा की जाती है कि वह इन पुरस्कार इत्यादि को प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे। यही पुरस्कार प्रोत्साहन कहलाते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि यह विद्यार्थियों को अधिक और अच्छा कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

प्रोत्साहन तथा उद्देश्य[1]—एक उद्देश्य प्रोत्साहन से विभिन्न होता है क्योंकि उद्देश्य एक वस्तु या एक कार्य की स्थिति है जिसकी जब प्राप्ति हो जाती है तो यह व्यक्ति की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है, जबकि एक प्रोत्साहन व्यक्ति की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकता अथवा नहीं। फिर भी कुछ दशाओं में उद्देश्य तथा पुरस्कार दोनों समान हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, एक भूखा बालक एक आवश्यकता से अभिप्रेरित होता है जो खाने द्वारा सन्तुष्ट हो सकता है और खाना एक भूखे बालक के लिए प्रोत्साहन भी है। किन्तु जटिल प्रकार के अभिप्रेरकों के साथ ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिए, स्वीकृति की आवश्यकता की सन्तुष्टि अनेक प्रकार से हो सकती है क्योंकि अनेक उद्देश्य उसको सन्तुष्ट कर सकते हैं। एक पुरस्कार उद्देश्य के रूप में नहीं खोजा जा सकता है। पुरस्कार द्वारा स्वीकृति खोजी जा सकती है, एक अच्छी नौकरी प्राप्त करने के लिए अथवा प्रेमिका का आदर प्राप्त करने के उद्देश्य के लिए। हम संक्षेप में एक उद्देश्य और एक प्रयोजन का अन्तर कक्षा के कमरे की ओर विशेष रूप से ध्यान देकर इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं। उद्देश्य वह है जो बालक खोजता है, प्रोत्साहन वह है जो शिक्षक प्रदान करता है। उनमें आपस में सम्बन्ध हो चाहे न हो।

अभिप्रेरक के प्रकार[2]

अभिप्रेरकों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। एम० के० थॉमसन[3] महोदय के अनुसार अभिप्रेरकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये निम्न हैं

(१) प्राकृतिक[4], और (२) कृत्रिम[5]।

थॉमस (Thomas) महोदय ने अनुप्रेरकों को चार वर्गों में बाँटा है :

१. सुरक्षा[6]
२. प्रतिक्रिया[7]
३. प्रतिष्ठा[8]
४. नई अनुभूतियाँ

शेफर[10]

२. निपुणता[1]
३. आदत[2]
४. संवेग[3]

विभिन्न प्रकार का वर्गीकरण दो वर्गों में इस प्रकार है :

१. दैहिक अभिप्रेरक[4]
२. सामाजिक अभिप्रेरक[5]

(१) दैहिक अभिप्रेरक—यह है जो दैहिक आवश्यकताओं के कार होते हैं। ये हैं— भूख, प्यास, काम, विश्राम, मल-मूत्र त्यागने की इच्छा, इत्यादि। इन अभिप्रेरकों का आधार शारीरिक होता है।

(२) सामाजिक अभिप्रेरक—यह सामाजिक अभिप्रेरण के कारण उ हैं। ये हैं— प्रतिष्ठा[6], सुरक्षा[7], संग्रहता[8], निपुणता[9], सामाजिकता[10], करण[11], सामाजिक गुण[12], समुदाय के साथ एकीकरण[13] इत्यादि।

दैहिक आवश्यकताएं एवं क्षुधा[14]

मनुष्य की रचना कुछ इस प्रकार की है कि उसे अपने को जीवित लिए कुछ आवश्यकताओं की संतुष्टि करना आवश्यक है। उसका निर्माण ढंग से हुआ है कि जब कोई आवश्यकता उसके अन्दर अनुभव की जाती है कुछ क्रियाएँ करने को बाध्य हो जाता है जो उन आवश्यकताओं की पूर्ति सहयोग देती हैं। उसे अपने को जीवित रखने के लिए साँस लेने की, खाना खा पानी पीने की, मल-मूत्र त्यागने की, निद्रा की, आराम की एवं कामेच्छा करनी होती है। यह आवश्यकताएँ क्रियाओं को जन्म देती हैं, और उनको उस तक जारी रखती हैं तथा उन पर नियन्त्रण रखती हैं, जब तक कि आवश्यकता पूर्ति नहीं हो जाती। हम इन आवश्यकताओं को 'क्षुधा'[15] के नाम से सकते हैं।

क्षुधा की यह विशेषता है कि वह व्यक्ति को सक्रिय बनाती है। एक व्यक्ति बेचैन रहता है, और वह उस बेचैनी को दूर कर सकता है जब भूख दूर हो जाय। दूसरे, क्षुधा न केवल प्राणी को सक्रिय बनाती है, वरन् भूख मिटाने के लिए एक विशिष्ट प्रकार की क्रिया का बोध कराती है, जिसके से आम-तौर पर व्यक्ति की भूख मिट जाती है। तीसरे, भूख कुछ काल तक हो जाती है और फिर जब शारीरिक अवस्था जोर पकड़ती है, तब वह फिर स हो जाती है।

---

1. Mastery 2. Habits. 3. Emotions. 4. Bio-genic mot 5 Socio-genic motive 6 Prestige. 7. Security. 8. Acquisitiven 9. Mastery. 10. Sociability. 11. *Confirmity*. 12. Social Va 13. Group Identification. 14. Organic Need. 15. Appetite.

यदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तुरन्त नहीं होती तो उनमें जो तनाव उत्पन्न होता है, उसके कारण व्यक्ति का शारीरिक सन्तुलन भंग हो जाता है। हमारे शरीर की रचना ऐसी है कि हम अपने शरीर का सन्तुलन अपनी क्रियाओं द्वारा ही बनाये रहते हैं। जब भी हमारे शरीर का सन्तुलन भंग हो जाता है, तुरन्त हम उस सन्तुलन को पुनर्स्थापित करने को प्रवृत्त हो जाते हैं। शारीरिक सन्तुलन को इस प्रकार बनाये रखने की व्याख्या—एक धारणा जिसे सम-स्थिति[1] कहते हैं, के द्वारा की जाती है। यह धारणा इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है कि एक प्राणी में जो प्रभाव उसे असन्तुलित करने वाले होते हैं, वे स्वयं ही ऐसी क्रियाओं का प्रादुर्भाव कर देते हैं, जिससे वह असन्तुलन दूर हो जाता है। यही कारण है कि हमारे शरीर के तापमान को बढ़ने न देने के लिए तुरन्त पसीना आने लगता है।

अब हम यहाँ मूलप्रवृत्तियों का भी वर्णन करेंगे जिन्हें वर्तमान काल के मनोवैज्ञानिक जैविक प्रेरकों के ही अन्तर्गत रखते हैं।

मूलप्रवृत्तियाँ[2]

आपने प्रायः एक माँ को अपने बच्चे को प्यार करते हुए देखा होगा। उसी समय आपने यह अनुभव किया होगा कि माँ अपने बच्चे को कितना प्रगाढ़ प्रेम करती है। उसके मन में बालक के प्रति वात्सल्य की कितनी गहरी भावना रहती है। इसके विपरीत बालक चाहे उद्दण्ड भी हो, अवज्ञाकारी हो, फिर भी माँ के हृदय का प्रेम उसके प्रति कम नहीं होता। वस्तुतः यह प्राकृतिक है। स्त्री चाहे जिस जाति, वर्ग, समुदाय, वर्ण एवं धर्म की हो—यदि वह माँ है तो उसके हृदय में अपने बालक के प्रति प्यार का समुद्र सदैव हिलोरें लेता रहता है। बालक उसका निरादर एवं तिरस्कार भी करे, फिर भी इसके बदले में वह प्यार ही प्रदर्शित करती है। माँ अपने बालक को इतना प्यार क्यों करती है ? इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि—'यह भावना उसमें स्वाभाविक रूप से पायी जाती है।' किन्तु यदि इसका मनोवैज्ञानिक आधार ढूँढें तो यही कहा जायगा कि माँ में मातृवत्सलता की भावना एक स्वाभाविक अन्तःप्रेरणा के रूप में होती है। एक माँ में यह जन्मजात मूलप्रवृत्ति होती है जिसे मातृमूलक-प्रवृत्ति कह सकते हैं जिसके फलस्वरूप ही माँ बालक के प्रति ऐसा प्रेमपूर्ण व्यवहार करती है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि इस अन्तःप्रेरणा अथवा मूलप्रवृत्ति से क्या तात्पर्य है ? अतः प्रश्न को भली-भाँति समझने के लिए हम इसकी विवेचना करेंगे।

मूलप्रवृत्ति किसे कहते हैं ?[3]

मूलप्रवृत्ति के स्वरूप और उसकी परिभाषा के बारे में मनोवैज्ञानिकों में बहुत मतभेद है। यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता कि कितनी मूलप्रवृत्तियाँ मानव ने अपने पूर्वजों से संक्रमित की हैं। अतः उसके स्वरूप को निर्धारित करने के लिए

---

1. Homeostatis. 2. Instincts. 3 What is Instinct ?

न मूलप्रवृत्तियों के परिणामों द्वारा उनकी जानकारी प्राप्त करेंगे। कुछ ऐसे
योग या क्रियाएँ होती हैं जिन्हें मूलप्रवृत्तियों की उपज या उनका परिणाम
ता है, जैसे बालक द्वारा माँ का स्तनपान अथवा मकड़ी द्वारा जाला
लप्रवृत्त्यात्मक कार्य भी होते हैं। किन्तु मूलप्रवृत्ति की बिल्कुल सही परिभा
त्यन्त कठिन है। पशुओं में मूलप्रवृत्ति का प्रकाशन मनुष्यों की तरह प्रच्छन्न,
यं छद्मवेश में न होकर प्राकृतिक एवं सहजात रूप में होता है। उच्च मा
विकास के न होने के कारण वे मूलप्रवृत्तियों को पृथक रूप में विभाजित कर
नव की तरह सामान्यीकरण के रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाते। उच्च मान
क्रियाएँ केवल मानव जाति में ही पाई जाती हैं, पशुओं में नहीं। यद्यपि
मानसिक दृष्टि से विकसित पशुओं में अन्य पशुओं की अपेक्षा बुद्धि अधिक पाई
, किन्तु फिर भी मानव के समान नहीं।

मैक्डूगल के अनुसार, मूल-प्रवृत्ति एक "पितृगत अथवा जन्मजात
शारीरिक वृत्ति है जो इसके धारणकर्ता को किसी एक विशिष्ट विषय का प्रत
्यक्षीकरण करने, उसकी ओर अवधान केन्द्रित करने तथा एक संवेगात्मक उत्तेजन
ानुभूति करने से जो उस विषय के विशेष गुण युक्त की सम्बोधना से उत्पन्न हो
और उसी के अनुरूप विशिष्ट दिशा में कार्य करने अथवा उस कार्य-सम्बन्धी प्रे
ा अनुभव करती हो।"[1]

अत: मैक्डूगल के अनुसार मूलप्रवृत्तियाँ जन्मजात एवं सहज वृत्तियाँ हैं जि
निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं

१. ज्ञानात्मक पक्ष[2]—किसी परिस्थिति अथवा वस्तु-विशेषता को
ध्यान देना तथा उसमें रुचि लेना,

२. संवेगात्मक पक्ष[3]—इन वस्तुओं की ओर किसी संवेग का अनु
करना, तथा

३ उनके प्रति एक विशेष प्रकार से क्रियात्मक होना।

मैक्डूगल के अनुसार संवेगात्मक या भावात्मक पक्ष मूल है। ऊपर के
क्षों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल-प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार में मानसि

---

1. McDougall defines an instinct as "inherited or inna
sycho-physical disposition which determines its possessor to pe
eive, and to pay attention to object of a certain class, to exper
nce an emotional excitement of particular quality upon perceivin
uch an object, and to action in regard to it in a particular mann
r at least to experience an impulse to such action performed pe
ectly at the first attempt."

2. Cognitive Aspect. 3. Emotive Aspect.

अनुभव की तीनों प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। ये तीनों क्रियाएँ कहलाती हैं—ज्ञानात्मक, भावात्मक, तथा चेष्टात्मक।

मैक्डूगल के अनुसार मूलप्रवृत्तियाँ[1]

मैक्डूगल यह चाहता है कि मूलप्रवृत्यात्मक विवरण व्यवस्थित रूप से ही किया जाय। उसके लिए यह प्रवृत्ति उस ताले के समान हो, जो एक विशिष्ट कुंजी रूप उद्दीपक द्वारा ही खोला जा सकता हो। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मूल-प्रवृत्ति किसी भी प्रकार के उद्दीपक द्वारा या किसी भी समय क्रियाशील नहीं हो सकती। जिस प्रकार एक ताला अपनी ही कुंजी द्वारा खोला जा सकता है, ठीक उसी प्रकार मूलप्रवृत्त्यात्मक व्यवहार भी विशिष्ट प्रकार के उद्दीपक द्वारा ही प्रत्यक्ष होना चाहिए। इस प्रकार किसी भी मूलप्रवृत्ति की स्थिति का पता लगाने के लिए उचित कुंजी खोजकर प्रयोग में लानी चाहिए।

मैक्डूगल के अनुसार निम्नलिखित १४ मूलप्रवृत्तियाँ हैं :

१. पुत्र कामना की मूलप्रवृत्ति[2]
२. युयुत्सा की मूलप्रवृत्ति[3]
३. जिज्ञासा की मूलप्रवृत्ति[4]
४. भोजनान्वेषण की मूलप्रवृत्ति[5]
५. निवृत्ति की मूलप्रवृत्ति[6]
६. पलायन की मूलप्रवृत्ति[7]
७. सामूहिकता की मूलप्रवृत्ति[8]
८. आत्म-गौरव और प्रकाशन की मूलप्रवृत्ति[9]
९. आत्म-विनम्रता की मूलप्रवृत्ति[10]
१० काम-प्रवृत्ति[11]
११. संग्रह की मूलप्रवृत्ति[12]
१२ सृजनात्मक मूलप्रवृत्ति[13]
१३ शरणागति की मूलप्रवृत्ति[14]
१४ हास की मूलप्रवृत्ति[15]

संवेग और मूलप्रवृत्ति[16]

पूर्व पृष्ठों में वर्णित, मैक्डूगल के अनुसार 'मूलप्रवृत्ति' की परिभाषा में निम्न शब्दों का दूसरे शब्दों के साथ उपयोग किया गया है—"विशेष गुणयुक्त एक संवेगात्मक उत्तेजना की अनुभूति करना जो उस विषय की सम्बोधना से उत्पन्न हुई हो।"

---

1. Instincts according to McDougall. 2. Maternal. 3 Combat. 4. Curiosity 5. Hunger. 6 Repulsion 7. Escape. 8. Gregarious 9. Self-assertion or Self-display. 10. Self-submissiveness. 11. Sex. 12. Acquisition. 13. Constructive. 14. Appeal. 15. Laughter. 16. Instincts & Emotions.

वर्तमान मनोवैज्ञानिक कहता है कि 'मूलप्रवृत्ति' शब्द का प्रयोग समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि इसका बहुत दुरुपयोग हुआ है तथा 'मूलप्रवृत्ति' शब्द का साहचर्य बहुत-सी ऐसी अवधारणों से हो गया है जो वैज्ञानिक तथा प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से गलत हैं। अब मनोवैज्ञानिक यह समझते हैं कि जैविक तथा वातावरणीय तत्त्वों का गूढ़ अध्ययन ही मानव के उस व्यवहार की व्याख्या कर सकता है जिसका अध्ययन हो रहा है।

अनेक अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि बालक का जीवन बहुत सूक्ष्म भौतिक आवश्यकताओं से प्रारम्भ होता है। वह संसार में कुछ ऐसी सहज क्रियाओं से युक्त आता है, जैसे—चूसना, निगलना इत्यादि। यह सहज क्रियाएँ बहुत कुछ अस्पष्ट रूप में होती है।

बालक जन्म लेने के समय कुछ ऐसे अंगों से युक्त होता है जो उसका वातावरण से साधारण अनुकूलन प्राप्त करने में सहायक होते हैं। किन्तु वातावरण उसके विकास में दिन-प्रतिदिन जटिल होता जाता है, और उसके साथ समायोजन उसे धीरे-धीरे सीखना होता है।

बालक के अन्दर ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं जो उत्तेजकों को प्राप्त करती हैं तथा वह अंग होते हैं जैसे मांसपेशियाँ तथा ग्रन्थियाँ जो प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करती हैं तथा स्नायु-संस्थान होता है जो उसकी गति पर नियन्त्रण रखता है। इस प्रकार बालक उत्पन्न होते ही इस लायक होता है कि वातावरण से साधारण अनुकूलन रखकर अपने को जीवित रख सके। किन्तु आयु के बढ़ने के साथ उसे वातावरण से प्रतिक्रिया करके नये अनुभव प्राप्त होते हैं, जिनसे सीखकर ही वह जटिल वातावरण में अपने को जीवित रखने तथा जीवन सम्बन्धी विभिन्न क्रियाओं को करने में समर्थ होता है। अतएव मनोविज्ञान में मूल-समस्या मूलप्रवृत्ति की नहीं है, वरन् इस बात की है कि किस प्रकार जीवन भर विभिन्न प्रेरणाएँ व्यक्ति पर प्रभाव डालकर उसे वह व्यवहार सिखाती हैं जो उसके जीवन की क्रियाओं के लिए आवश्यक है।

कुछ वर्ष पहले शिक्षा-मनोविज्ञान की पुस्तकों में मूलप्रवृत्ति पर बहुत बल दिया जाता था, किन्तु अब इस विषय का वर्णन बहुत ही सूक्ष्म रूप से किया जाता है। शिक्षा में अब मूलप्रवृत्ति की धारणा का महत्त्व यही है कि यह महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरण है जिसका वर्णन सीखने की क्रिया में जैविक प्रेरकों[1] के अन्तर्गत आता है।

हम 'मूलप्रवृत्ति' शब्द का प्रयोग न करें, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि सीखने की क्रिया में कुछ अभिप्रेरक; जैसे—काम, सामूहिकता, इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। यह सिद्ध करना कि यह जन्मजात हैं तथा मूलप्रवृत्त्यात्मक हैं, दूसरी बात है, किन्तु यह तो सत्य है ही कि कोई भी शिक्षक इनकी अवहेलना नहीं कर सकता।

1. Biological Motivation

सामाजिक अभिप्रेरक[1]

सामाजिक संप्रेरणा, जैसे—प्रतिष्ठा, सुरक्षा, आत्म-गौरव इत्यादि का निर्धारण सामाजिक स्थितियों, आदर्शों इत्यादि के द्वारा होता है। यह संप्रेरणा एक बहुत बड़ी सीमा तक व्यक्तियों के व्यवहार पर प्रभाव डालती है। किन्तु विभिन्न समाजों में वह विभिन्न रूप से सक्रिय होती है। उदाहरण के लिए, जूनी जाति[2] के सदस्यों में आत्म-प्रकाशन, धन का संग्रह करना, इत्यादि प्रकार की संप्रेरणाओं को कोई महत्व नहीं है। क्योंकि इस जाति की संस्कृति ऐसी है कि इसमें धन का संग्रह करने को या आत्म-प्रकाशन को कोई महत्व नहीं दिया जाता। दूसरी ओर डाबू जाति में आत्म-प्रशंसा, प्रतिष्ठा, धन-संग्रह इत्यादि बहुत शक्तिशाली प्रेरक होते हैं क्योंकि इन जातियों में जिस व्यक्ति के पास धन होता है उसका अधिक आदर किया जाता है। इसी प्रकार के उदाहरण अन्य जातियों के भी दिये जा सकते हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि वह प्रेरक जिनकी उत्पत्ति सामाजिक होती है, विभिन्न जातियों या समाजों में एक-सी मात्रा में सक्रिय नहीं रहते।

सामाजिक मूल्य, सामाजिक आदर्श एवं सामाजिक अवरोध भी बहुत महत्व-पूर्ण अभिप्रेरक हैं। यह अभिप्रेरक जैविक अभिप्रेरकों पर भी नियन्त्रण रखते हैं।

अभिप्रेरक एवं आवश्यकताएँ[3]

हमने अब तक अभिप्रेरणा के सामान्य विचार का विवेचन किया है और यह स्पष्ट कर दिया है कि जब हम अभिप्रेरण के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं तो हम एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करते हैं जिसकी कुछ विशेषताएँ होती हैं। इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो शब्द प्रयोग किये जाते हैं, उनका वर्णन भी हम कर चुके हैं। हम देख चुके हैं कि आवश्यकता, अन्तर्नोद, प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरक यद्यपि अभिप्रेरण प्रक्रिया को व्यक्त करते हैं, फिर भी उनमें भेद है। शिक्षा के क्षेत्र में हम दो शब्दों का बहुत प्रयोग करते हैं, वह है—अभिप्रेरक तथा आवश्यकता। वास्तव में शिक्षा में अभिप्रेरण का वर्णन आवश्यकता के वर्णन और महत्व पर केन्द्रित है। यहाँ हम अब आवश्यकता के सम्बन्ध में विवेचन करेंगे और अभिप्रेरण एवं आवश्यकता का सीखने की क्रिया में जो महत्व है उस पर विचार करेंगे।

आवश्यकता की परिभाषा[4]

आवश्यकताएँ व्यक्ति के अन्दर लगभग स्थायी प्रवृत्तियाँ हैं जो विशिष्ट प्रकार से ही अनुप्रेरित होती हैं। यह या तो आन्तरिक परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती हैं या प्राणी के वातावरण में प्रस्तुत उत्तेजकों के कारण होती हैं। शारीरिक आव-श्यकताओं का वर्णन हम जैविक अभिप्रेरण के अन्तर्गत कर चुके हैं।

---

1. Socio-genic Motives. 2. Zuni Tribe. 3. Motives & Need.
4. Definition of Need

हम अभिप्रेरकों से आवश्यकताओं का अनुमान लगाते हैं। अनेक अभिप्रेरित व्यवहार के उदाहरणों का अध्ययन करके हम आवश्यकताओं को निर्धारित करते हैं। अभिप्रेरक आवश्यकताओं से ही उत्पन्न होते हैं। जब एक व्यक्ति विशिष्ट रूप से अभिप्रेरित होता है तो वह इस चेष्टा में लगा होता है कि कोई निहित आवश्यकता की पूर्ति करे। वास्तव में अभिप्रेरक अभिप्रेरित व्यवहार का एक उदाहरण होता है। अतएव इसको हम उद्देश्य-खोजने के व्यवहार का एक उदाहरण भी कह सकते हैं। अभिप्रेरकों में समानताओं के आधार पर हम आवश्यकताओं का अनुमान लगाते हैं। इसी कारण आवश्यकता की परिभाषा में हमने 'लगभग स्थायी प्रवृत्तियाँ जो विशिष्ट प्रकार अभिप्रेरित' होती हैं, शब्दों को सम्मिलित किया है। व्यक्ति उद्देश्य-खोजने के लिए अभिप्रेरित होता है। विभिन्न अभिप्रेरित व्यवहार उसे उद्देश्य की ओर ले जाते हैं। इन व्यवहारों में जो समान तत्त्व होते हैं वह आवश्यकताओं का अनुमान देते हैं। मोहन हॉकी अच्छा खेलता है, कक्षा में प्रथम आने की चेष्टा करता है, बड़ों का आदर करता है। यह सब अभिप्रेरित व्यवहार हैं जो उसे किसी उद्देश्य की ओर ले जाते हैं। इन व्यवहारों और उद्देश्यों में समान तत्त्व निकाल कर हम इस अनुमान पर आ जाते हैं कि *मोहन को प्रशंसा की आवश्यकता है।* अतएव प्रशंसा एक आवश्यकता हुई जो मोहन के आचरण में लगभग स्थायी प्रवृत्ति है जो विशिष्ट प्रकार के अभिप्रेरित व्यवहार—हॉकी खेलने में कुशलता, बड़ों का आदर, इत्यादि—को जन्म देती है।

अभिप्रेरणा चक्र के स्तर

[आवश्यकता उत्पन्न होने पर प्राणी चेष्टा करता है। वह किसी उद्देश्य की ओर क्रिया करता है। उद्देश्य-प्राप्ति उसे सन्तुष्टि देती है और फिर इस सन्तुष्टि के पश्चात् फिर आवश्यकता उत्पन्न होती है और चक्र चलता रहता है।]

संक्षेप मे, हम आवश्यकता और अभिप्रेरकों के अन्तर को इस प्रकार व्य
गमते है—अभिप्रेरक अभिप्रेरण प्रक्रिया के विशिष्ट उदाहरण हैं जबकि आवश
निहित दशाएँ हैं जिनमे अभिप्रेरण के विशिष्ट उदाहरण उभरते हैं। जब एक
मे कोई आवश्यकता है तो इसमे तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति विशिष्ट प्र
अभिप्रेरित होगा।

आवश्यकता-संस्थान[1]

आवश्यकता के सम्बन्ध में कुछ मौलिक प्रश्न उठते हैं—'क्या समान आ
ताएँ सब व्यक्तियों मे पाई जाती हैं ? क्या प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी आवश्य
का प्रतिमान रखता है ? क्या व्यक्ति का आवश्यकता संस्थान स्थायी तथा अपरि
शील है ?' इन प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने में शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। य
बालकों की समान आवश्यकताओं का पता लगा लेंगे तो हम वातावरण क
संगठित कर सकते हैं कि उनकी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट हो जायें और आवश्य
को इस प्रकार से प्रेरित कर सकते हैं कि बालक वांछित रूप मे शिक्षा ग्रहण क
आज पाठ्यक्रम-संगठन का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि यह बालक की आवश्य
को सन्तुष्ट करे। यह सिद्धान्त इस बात पर ही केन्द्रित है कि बालकों मे ऐसी
श्यकताएँ होती हैं जो निरीक्षित तथा परिभाषित की जा सकती हैं। इसके अ
यह सिद्धान्त इस विचार मे भी आस्था रखता हुआ प्रतीत होता है कि बाल
आवश्यकताओं मे कुछ समानताएँ होती हैं। अतएव ऊपर उठाये गये प्रश्न
सिद्धान्त और शिक्षा के व्यावहारिक रूप मे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण[2]

मानव की समान आवश्यकताओं का वर्गीकरण अत्यन्त कठिन का
अनेक प्रयास जो इस दिशा मे हुए हैं, वह सफल नहीं हुए हैं। आज तो यह दशा
आवश्यकताओं की विभिन्न सूचियाँ उतनी ही हैं जितने कि मनोवैज्ञानिक जिन्होंने
दिशा मे कार्य किया है। आवश्यकताओं का वर्गीकरण करना इसलिए अत्यन्त
है कि मानव-व्यवहार मे बहुत विभिन्नता पायी जाती है। विभिन्न व्यक्ति आवश्य
की सन्तुष्टि के लिए विभिन्न व्यवहार अपनाते हैं। व्यवहार का निरीक्षण करके
श्यकता का अनुमान लगाना, इसी विभिन्नता के कारण यदि असम्भव नहीं तो
दुष्कर अवश्य है। एक बालक माता-पिता का बहुत आज्ञाकारी है, दूसरा बहुत
है और माता-पिता का विरोध भी कर देता है। क्या यह दोनों बालक विभिन्न
श्यकताओं से प्रेरित हैं अथवा दोनों की आवश्यकता 'माता-पिता को आकर्षित क
समान है ? इस सम्बन्ध मे किसी निष्कर्ष पर आना सरल नहीं है।

मरे तथा मेस्लो द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं की तालिका[3]—जैसा

1. The Need System. 2. Classification of Needs 3. List
needs as given by Murray and Maslow.

ने ऊपर कहा है, आवश्यकताओं की विभिन्न तालिकाएँ विभिन्न मनोवैज्ञानिकों
ा दी गयी है। हम यहाँ केवल दो तालिकाओं का वर्णन करेंगे : (१) मरे की,
) मेस्लो की।

मरे की तालिका

मरे की तालिका आवश्यकताओं की लम्बी सूची देती है और विभिन्न आवश्यक-
ओं में विभेद प्रस्तुत करती है, यथा—

(१) अपमान[1]—अपने को समर्पण करना, दण्ड स्वीकार करना, माफी माँगना इत्यादि।

(२) निष्पत्ति[2]—कठिनाइयों पर विजय पाना, शक्ति का प्रयोग करना इत्यादि।

(३) अभिग्रहण[3]—जायदाद तथा वस्तुएँ प्राप्त करना, सौदा करना या जूआ खेलना इत्यादि।

(४) सम्बन्धन[4]—मित्रता तथा सम्बन्ध स्थापित करना, प्रेम करना, समूहों का सदस्य बनाना इत्यादि।

(५) आक्रमण[5]—दूसरे पर हमला करना या घायल करना, कठोर दण्ड देना इत्यादि।

(६) स्वायत्तता[6]—प्रभाव या दबाव का मुकाबला करना, शक्ति का विरोध करना इत्यादि।

(७) दोष-बचाव[7]—दोष-बचाव करना, कानून मानना इत्यादि।

(८) विपरीत क्रिया[8]—हार न मानकर बदला लेना, अपना मान रखना।

(९) संज्ञान[9]—अन्वेषण करना, प्रश्न पूछना, ज्ञान की खोज करना।

(१०) निर्माण[10]—संगठित करना तथा निर्माण करना।

(११) सम्मान[11]—प्रशंसा करना और अपनी मर्जी से अपने से उच्च का अनुसरण करना, प्रसन्नता से सेवा करना।

(१२) प्रतिरक्षण[12]—दोष से अपना प्रतिरक्षण करना, अपने कार्यों को न्यायोचित बताना इत्यादि।

(१३) प्रभुत्व[13]—दूसरों पर प्रभाव डालना अथवा नियन्त्रण रखना, एक समूह का व्यवहार संगठित करना।

(१४) प्रदर्शन[14]—अपना और दूसरों का अवधान केन्द्रित करना।

(१५) स्पष्टीकरण[15]—प्रदर्शन करना, तथ्यों में सम्बन्ध स्थापित करना।

---

1. Abasement. 2. Achievement. 3. Acquisition. 4. Affilation
. Aggression 6. Antonomy. 7. Blame-avoidance. 8. Counter-action.
Cognizance. 10. Construction. 11. Deference 12. Defendance.
3. Dominance. 14. Exhibition. 15. Exposition.

(१६) हानि-बचाव[1]—दर्द से बचना, भयानक स्थिति से भाग
(१७) पतन-बचाव[2]—असफलता, शर्म, गिरावट, उपहास इत्य
(१८) पोषण[3]—पोषण करना, सहायता करना या असहा करना, सहानुभूति दिखाना।
(१९) व्यवस्था[4]—वस्तुओं को व्यवस्थित तथा संगठित करना
(२०) खेल[5]—अपना मनोरंजन करना।
(२१) परित्याग[6]—अलग तथा उदासीन रहना।
(२२) धारण[7]—वस्तुओं पर अधिकार रखना, उन्हें जमा कर
(२३) संवेदनशीलता[8]—संवेदनशील अनुभवों का आनन्द प्राप्त
(२४) काम[9]—यौन-समागम करना।
(२५) प्रतिश्रम[10]—सहायता प्राप्त करना, सहायता के लिए
(२६) उच्चता[11]—यह आवश्यकता, निष्पत्ति एवं मान्यता का
(२७) समझ[12]—अनुभवों का विश्लेषण करना, विचारों का संबं

२ मेस्लो की तालिका

मेस्लो द्वारा जो तालिका दी गई है, वह आवश्यकता-संस्थान के नियमों पर केन्द्रित है। मेस्लो ने एक पूर्णात्मक आवश्यकताओं का संस्था युक्त था, प्रस्तुत किया। इसमें श्रेणी-विभाजन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर आधारित था। मेस्लो के अनुसार आवश्यकताओं का वि प्रकार है :

१. दैहिक आवश्यकताएँ[13]
२. सुरक्षा आवश्यकताएँ[14]
३. प्रेम तथा सम्बद्धता आवश्यकताएँ[15]
४. आदर आवश्यकताएँ[16]
५. आत्म-वास्तविकीकरण आवश्यकताएँ[17]
६. जानने और समझने की इच्छाएँ[18]

(१) कुछ मूल आवश्यकताओं का गुट होता है[19]—यह आवश्यक रूप से प्रत्येक व्यक्ति में पायी जाती है, जैसे—खाने की आवश्यकता दैहिक आवश्यकताओं के अन्तर्गत इस प्रकार की आवश्यकताओं का हैं है।

---

1 Harm-avoidance 2. Infavoidance, 3. Nurturance. 4. Play. 6. Rejection. 7. Retention. 8. Sentience. 9. Sex. 1 orance. 11. Superiority 12. Understanding. 13. Physic Needs. 14. Safety Needs. 15. Love & Belonging Needs 16. Needs. 17. Self-actualization Needs. 18. Desires to know derstand. 19 There is a set of basic needs.

मैस्लो के अनुसार आवश्यकताओं का श्रेणी-विभाजन
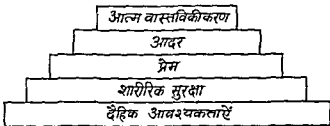
(२) कुछ आवश्यकताएँ सांस्कृतिक सन्दर्भ में अर्जित की जाती हैं[1]—इस प्रकार की आवश्यकताओं का वर्णन हम सामाजिक संप्रेरणाओं के अन्तर्गत कर चुके हैं।

(३) व्यक्तियों का आवश्यकता-संस्थान कुछ भाग में व्यक्तियों के विकास की दशा पर निर्भर है[2]—जैसे-जैसे बालक बड़े होते जाते हैं, उन्हें विभिन्न प्रकार का वातावरण मिलता जाता है। इस विभिन्न वातावरण का उनके आवश्यकता-संस्थान पर प्रभाव उनके विकास के स्तर पर निर्भर रहता है।

उपर्युक्त तीन नियम आवश्यकताओं की एक श्रेणीयुक्तता को अभ्यक्त करते हैं। सबसे प्रथम मानव में कुछ ऐसी आवश्यकताएँ हैं जिन पर संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरी कुछ आवश्यकताएँ हैं जो एक ही समाज के सदस्यों के लिए समान हैं किन्तु दूसरे समाज में वह विभिन्न हैं। तीसरी आवश्यकताएँ व्यक्ति के अनुभव के बढ़ने के साथ विकसित होती जाती हैं।

व्यक्तियों में आवश्यकताओं की समानताएँ समान अनुभवों के कारण होती हैं, और विभिन्नताएँ अनुभवों की विभिन्नताओं के कारण होती हैं।

आवश्यकताओं का अनुमान लगाने की विधि[3]—आवश्यकता या अभिप्रेरक का अनुमान व्यवहार के निरीक्षण से लगाया जा सकता है। व्यवहार में दिशा और प्रयत्न में लगा रहना देखकर हम आवश्यकता का अनुमान लगा सकते हैं। यह अनुमान दो प्रकार से लगाया जा सकता है :

१. उस उद्देश्य-वस्तु का निरीक्षण करके जिसकी ओर व्यक्ति लगातार प्रयत्नशील रहता है।
२. उन प्रभावों को देखकर जो उस समय दिखाई पड़ते हैं, जब व्यक्ति को उद्देश्य-वस्तु नहीं मिल पाती।

---

1. Some needs are characteristically acquired within cultural contents. 2. The needs system of individuals is dependent in part on their state of development. 3. Method of inferring needs.

सोहन की प्रशंसा की आवश्यकता का अनुमान हम लगातार उसका ऐसे व्यवहार का निरीक्षण करके लगा सकते हैं जो प्रशंसा प्राप्त करने की दिशा में है। मोहन हॉकी प्रशंसा के लिए खेलता है। वह पढ़ने में मेहनत प्रशंसा के लिए करता है, उसका सद् व्यवहार भी यदि इसी ओर है तो हम उसकी आवश्यकता का अनुमान ठीक ढग से लगा लेते हैं। इसके अतिरिक्त हमें उसके उस व्यवहार से भी उसकी आवश्यकता का पता लग जाता है, जिसमें उसको उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हुई है। उसके हॉकी के खेल की, पढाई की कोई प्रशसा नही करता और वह उदास हो जाता है या आक्रमण का व्यवहार या झुँझलाहट का व्यवहार प्रदर्शित करता है तो भी हमारा अनुमान उसकी प्रशंसा की आवश्यकता की ओर जाता है।

आवश्यकताओं की ग्रहणता पर वातावरण का प्रभाव[1]

मानव कुछ जैविक आवश्यकताओं के साथ उत्पन्न होता है। किन्तु जिस वातावरण में वह उत्पन्न होता है वह जटिल होता है। यह जटिल वातावरण जैसा कि हमने इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा, उस पर प्रभाव डालता है और उसकी आवश्यकताओं में परिवर्तन आने लगता है।

बालक के घर का वातावरण उसकी ग्रहण की हुई आवश्यकताओं पर प्रभाव डालता है। जिस प्रकार से बालक का पालन-पोषण होता है, वह भी उसकी आवश्यकताओं की ग्रहणता पर प्रभाव डालता है। विन्टरबोटम[2], काहल[3] इत्यादि के अनुसंधान बालक पर परिवार के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। यह अनुसंधान बताते हैं कि परिवार आवश्यकता-ग्रहणता में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है।

एक शिक्षक के लिए यह जानना आवश्यक है कि वातावरण की विभिन्नता व्यक्ति के आवश्यकता-संस्थान में विभिन्नता ले आती है। जब बालक विद्यालय में आता है तो परिवार के कारण उसमें एक आवश्यकता-संस्थान विकसित होने लगा होता है। यह संस्थान परिवार और समाज के प्रभावों से पुष्ट होता रहता है। कुछ उदाहरणों में बालकों के उद्देश्य और आवश्यकताएँ जो उन्होंने घर के वातावरण में ग्रहण किये हैं, विद्यालय द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों इत्यादि के विपरीत हो सकते हैं। अन्य उदाहरणों में यह विद्यालय द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों के समान हो सकते हैं। जहाँ यह समान होंगे वहाँ बालक उद्देश्यों की ओर मजबूती से प्रेरित होगा और उन्हें ग्रहण करने की चेष्टा करेगा। जहाँ वैपरीत्य होगा, वहाँ शिक्षक का कार्य कठिन हो

1. Influence of Environment on the Acquisition of Needs.

2. M. R Winterbottom . "The Relation of Childhood Training in Independence to Achievement Motivation." Quoted in McClelland etal, *The Achievement Motive*, N. Y Appleton, 1953, pp. 297-306.

3. J. A. Kahl : "Educational Aspirations of 'Common Man' Boys", *Harvard Educational Review*, 23, 1953, pp 186-203.

जायेगा। ऐसी दशा में शिक्षक को बालक के वांछित उद्देश्यों के सम्बन्ध में विचारों को विस्तृत करना होगा, उन्हें वांछित उद्देश्यों के सम्बन्ध में नई प्रत्याशाओं को विकसित करना होगा और उन आवश्यकताओं को प्रवृत्त करना होगा जो उन्हें वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने की ओर अभिप्रेरित करें। शिक्षक को बालक में जो आवश्यकताएँ विद्यमान हैं, उनका उपयोग करके उसके अभिप्रेरणा संस्थान को पुनर्संङ्गठित करने की चेष्टा करनी चाहिए। जैसे, एक बालक प्रेम की आवश्यकता से अभिप्रेरित है, शिक्षक इसका उपयोग उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करके कर सकता है। वह उसे प्रेम से पढ़ने की ओर प्रेरित कर सकता है। कुछ समय पश्चात् बालक प्रेम से अभिप्रेरित न होकर पढ़ने के महत्त्व से ही अभिप्रेरित होने लगेगा। इस प्रकार पढ़ने का वांछित उद्देश्य उसमें उसके आवश्यकता-संस्थान का प्रयोग करके स्थापित किया जा सकता है।

उद्देश्य-प्राप्ति की ओर व्यवहार[1]

अधिकतर व्यक्तियों में ऐसा आवश्यकता-संस्थान होता है जो एक विस्तृत क्षेत्र में फैले और विभिन्नता लिये हुए उद्देश्यों द्वारा सन्तुष्ट होता है। सोहन को प्रशंसा की आवश्यकता है किन्तु इसके साथ-साथ उसकी आवश्यकताएँ—प्रेम की, स्तर की, उपार्जन इत्यादि की भी हो सकती हैं। यह सब आवश्यकताएँ उसके जीवन-काल के विभिन्न समयों में विभिन्न प्रकार से सन्तुष्ट होती हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति विकसित होता जाता है, उसका आवश्यकता-संस्थान अधिक विभिन्न होता जाता है और इसमें जटिलता आ जाती है। उद्देश्यों की संख्या और उद्देश्यों के प्रकार जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, भी बदल जाते हैं। मोहन छात्रवृत्ति की ओर प्रेरित है किन्तु जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती जाती है, अन्य आवश्यकताएँ, जैसे—धन-उपार्जन की, विवाह की, प्रस्तुत हो जाती हैं और उसके उद्देश्यों में वृद्धि तथा विभिन्नता आ जाती है।

विकास की क्रिया में एक व्यक्ति उद्देश्य स्थापित करने और उद्देश्य प्राप्त करने के अनुभवों को सीखता रहता है। एक बालक अपने उद्देश्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट समझता और उद्देश्य प्राप्त करने के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर रहता है जबकि दूसरा बालक यह नहीं जानता कि उसे क्या प्राप्त करना है, और वह उद्देश्य प्राप्त करने की अपनी क्षमता के सम्बन्ध में अनिश्चित रहता है। बालकों में यह अन्तर उन व्यक्तिगत अनुभवों के कारण होते हैं, जो वह उद्देश्य-खोज की क्रियाओं में प्राप्त करते हैं।

अभिप्रेरकों और आवश्यकताओं का शिक्षक के लिए महत्त्व[2]

इस अध्याय में हमारा मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि हम यह समझ लें कि

1. Goal-setting Behaviour. 2. Importance of Motives & Needs for a Teacher.

अभिप्रेरक और आवश्यकता मानव-व्यवहार में किस प्रकार सक्रिय रहते हैं। समझ लेना हमें इसलिए आवश्यक है कि हम शिक्षा द्वारा बालकों में वांछित व्यव का प्रादुर्भाव करना चाहते हैं।

एक शिक्षक की समस्या यह है कि वह अभिप्रेरक और आवश्यकता का योग करके बालकों को उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करे जो शि रूप में वांछित हैं। वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया में व्यावहारिक परिवर्तन आयेंगे। शैक्षिक अनुभवों को बालकों को इस प्रकार दिया जाना आवश्यक है कि यह व्यावहारिक परिवर्तन प्राप्त हो जायें। शिक्षक का कार्य यह है कि वह बाल को वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने की ओर प्रेरित करे और यह देखे कि इस प्रक्रि द्वारा वह वांछित व्यवहार ग्रहण कर लें।

जब हम व्यक्ति के व्यवहार और उसके व्यवस्थापन के सम्बन्ध[1] में विचे करते हैं तो हमारा विशेष ध्यान मूल शारीरिक आवश्यकताओं की ओर होता कक्षा के कमरे में मूल प्रेरक प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम ही प्रयोग किए जाते हैं। शिक्ष शायद ही कभी भोजन की प्रत्यक्ष आवश्यकता का अभिप्रेरक के रूप में उपयोग कर है। कुछ साल पहले दर्द से बचाव की आवश्यकता का अभिप्रेरक के रूप में उपयो किया जाता था, जब बालकों को मारा-पीटा जाता था; अब इस अभिप्रेरक का बहुत ही कम उपयोग होता है। इसी प्रकार काम इत्यादि के अभिप्रेरक का प्रयो नहीं होता। किन्तु शिक्षक कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से मूल प्रेरक और जैवि आवश्यकताओं का प्रयोग करता है। यह अभिप्रेरक तथा आवश्यकताएँ सदैव पृष्ठ भूमि में तो रहती ही हैं और शिक्षक इनकी अवहेलना नहीं कर सकता।

शिक्षक प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक और बौद्धिक अभिप्रेरकों का ही प्रयो करता है। वह बालकों की मैत्री की आवश्यकता, प्रशंसा की आवश्यकता, दूसरों क प्रभावित करने इत्यादि की आवश्यकता का स्वतन्त्रता से उपयोग कर सकता है।

सीखने की प्रक्रिया अभिप्रेरित होनी चाहिए[2]

हम पीछे इस बात पर बल दे चुके हैं कि शिक्षक को अभिप्रेरणा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यहाँ हम फिर इस बात को दुहरा रहे हैं कि सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरकों का बहुत महत्त्व है। एक बालक का सीखना वांछित ढङ्ग से हो जायेगा, जब वह ज्ञान-अर्जन या कौशल-अर्जन की आवश्यकता अनुभव करेगा और उन उद्देश्यों की ओर अभिप्रेरित होगा।

एक व्यक्ति साधारण अभिप्रेरणा से प्रेरित होकर कोई कार्य प्रारम्भ कर सकता है। जैसे, एक व्यक्ति अपने घर के आगन में फूल इत्यादि लगाना प्रारम्भ कर देता है

---

1. व्यक्तित्व और व्यवस्थापन इत्यादि का वर्णन इस पुस्तक के 'मानसिक स्वास्थ्य' भाग में किया गया है।

2. Learning has to be motivated.

ताकि उसके पड़ोसी उसकी प्रतिष्ठा मान लें। यह एक साधारण-सी अभिप्रेरणा होती है, किन्तु धीरे-धीरे इस व्यक्ति को बागवानी में आनन्द आने लगता है। अब यह व्यक्ति फूल-पौधे प्रतिष्ठा या प्रशंसा के लिए न लगाकर बागवानी में अपनी रुचि के कारण लगाता है और वह बागवानी का ज्ञान इत्यादि प्राप्त करने लगता है। यह दूसरे स्तर की अभिप्रेरणा होती है। किन्तु यह व्यक्ति यहीं नहीं रुकता। अब वह अपने बाग में उन्नति पर उन्नति करना चाहता है। वह सुन्दर से सुन्दर फूल उगाने की चेष्टा में लग जाता है। उसका बागवानी का स्तर ऊँचा उठता जाता है। यह तीसरे प्रकार की अभिप्रेरणा है। इस स्तर पर व्यक्ति अपनी ही क्षमता को चुनौती देता है। सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरक इन तीनों प्रकार से कार्य करते हैं। एक अच्छा शिक्षक बालक को बाह्य प्रेरणा देकर उस स्तर तक लाने की चेष्टा करता है, जहाँ वह अपने सीखने के स्तर स्वयं अपने अनुभवों पर निर्धारित करता है।

यह स्तर न केवल हमारी कला में, दक्षता या ज्ञान में प्रवेश पा जाते हैं वरन् वह मानव-मूल्यों में जो हमें व्यक्तिगत रूप में मान्य हैं, भी प्रवेश कर जाते हैं। हमारे आन्तरिक आत्म के वह मुख्य तत्त्व बन जाते हैं। अपने बनाये हुए स्तरों से ही हम अपने नैतिक विचारों, क्या सत्य है, क्या सुन्दर है इत्यादि का विकास करते हैं और उन पर नियन्त्रण रखते हैं। इस प्रकार तीसरे प्रकार की अभिप्रेरणा उच्चतम सीखने को जन्म देती है। मानव ज्ञान तथा कला में वृद्धि चाहता है। वह यह भी जानता है कि समाज में वह अच्छा जीवन उसी समय व्यतीत कर सकता है जब वह नैतिक आदर्शों और मूल्यों को विकसित करे। ज्ञान, कौशल, आदर्श, मूल्य सब वह सीखता है। यह सीखना उसी समय सफल होता है जब इस स्तर पर सीखने की प्रेरणा स्वयं उसे अपने आत्म से मिले। इसी को हम आत्म-आवेष्टन[1] कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम तीन निष्कर्ष निकालते हैं :

१ सीखने की क्रिया में अभिप्रेरक आवश्यक हैं।

२ अभिप्रेरणा प्रारम्भ में सरल प्रकार की हो सकती है, किन्तु सीखने की प्रक्रिया में जटिलता के साथ जटिल होती जाती है।

३ उच्च सीखने के लिए आत्म का आवेष्टन आवश्यक है।

विभिन्न अभिप्रेरकों की सीखने में प्रभावशीलता[2]

यहाँ हम विभिन्न अभिप्रेरकों का वर्णन करेंगे जो सीखने में प्रभावशाली हैं :

(१) सीखने की इच्छा[3]—सीखने में सरलतम प्रेरणा हम यह दे सकते हैं कि बालक से कहें कि उसे सीखना है। जब बालक यह जान जायेगा कि उससे सीखने की आशा की जाती है तो वह सीखने की चेष्टा करेगा।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि बहुत बार व्यक्ति उस समय भी सीख

1. Ego-involvement. 2. Effectiveness of Different Motives in Learning. 3. Intention to learn.

लेता है, जबकि उसकी सीखने की कोई इच्छा नहीं होती। बालक टेलीविजन
सुनकर बिना इच्छा के ही सीख जाते हैं। बहुत कुछ सीखना उस सम
जाता है जब व्यक्ति किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करता है किन्तु उसे सी
लिए नहीं कहा जाता है।

वर्तमान समय में अनेक अनुसंधान निद्रावस्था में सीखने पर हो रहे है
सकता है कि भविष्य में व्यक्ति निद्रावस्था में भी सीखने लगे।

बालक बहुत-सी मनोवृत्तियाँ[1] भी बिना इच्छा के सीख लेता है। दूसरों
या बड़ी बातों से घृणा करना इत्यादि वह बिना किसी इच्छा के सीख जाता है।

विद्यार्थी बिना इच्छा के कुछ सीख जाता है किन्तु सीखने की इच्छा स
में बहुत सहायता करती है, इसमें कोई संदेह नहीं है। यह एक अत्यन्त मह
प्रश्न है और शायद ही कोई शिक्षक इसका प्रयोग न करता हो।

(२) आत्म का आवेष्टन[2]—मानव दूसरे प्राणियों से भिन्न है। वह
स्तर की मानसिक प्रक्रिया कर सकता है। वह अनेक ऐसे जटिल कार्य कर स
है, जो दूसरे प्राणी नहीं कर सकते। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इन
क्रियाओं का आधार जो मानसिक वस्तु है, 'आत्म' है।

आत्म की प्रकृति व्यवहार और अनुभवों के निरीक्षणों द्वारा समझी जा स
है। पहले हम यह कह सकते हैं कि एक व्यक्ति का आत्म वह कुछ है जो निरी
किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जान
रखता है। दूसरे, आत्म मूल्यों और मनोवृत्तियों का संगठन होता है। तीसरे, आ
में बहुत कुछ वह होता है, जिसे हम साधारण रूप से स्वार्थ कहते हैं। हमारे यह
विवेचन के लिए आत्म की यह तीन विशेषताएँ महत्त्व की हैं (i) आत्म का निरी
किया जा सकता है और यह व्यक्तियों द्वारा जाना जा सकता है, (ii) वह
व्यक्तियों और बाह्य संसार से स्पष्ट रूप से सीमांकित किया जा सकता है, और (
इसमें मनोवृत्तियाँ और मूल्य होते हैं जो व्यक्ति को मान्य होते हैं।

एक व्यक्ति अपने वातावरण के प्रति दो प्रकार से प्रक्रिया कर सकता
एक प्रकार तो निष्पक्ष ढंग से प्रक्रिया करना है। जब हम जूते का फीता बाँधते
या बस पर चढ़ते हैं, या गुनगुनाते हैं तब हम निष्पक्ष रूप से ही प्रतिक्रिया करते
दूसरे प्रकार की प्रतिक्रिया उस समय होती है जब हम व्यक्तिगत रूप से ध्यानपू
कोई कार्य करते हैं और उसमें पूर्णतः अपने को संलग्न कर लेते हैं। पहले प्रकार
व्यवहार में आत्म अलग ही रहता है। दूसरे प्रकार के व्यवहार में आत्म अन्तवि
होता है। शेरिफ तथा केन्ट्रिल महोदय[3] दूसरे प्रकार के व्यवहार को आत्म-आवे
व्यवहार कहते है। आत्म-आवेष्टन आत्म के पूर्ण भाग लेने की वह दशा है जिसमें

1. Attitudes. 2. Ego-involvement. 3. Sherif and Cantrf

ज्ञाता, संगठनकर्ता, निरीक्षणकर्ता, स्तर खोजने वाला तथा सामाजिक प्राणी है।[1] आत्म-आवेष्टन उन कार्यों में हो जाता है जिनमें हम यह समझते हैं कि हमारी सफलता को चुनौती है।

बहुत बार जब ऐसे साधारण कार्यों में, जैसे—कपड़े पहिनना, स्नान करना, ड्रम पकड़ना, बिना रुकावट के चलते हैं तो कोई आत्मा का आवेष्टन नहीं होता है। यदि हमारी क्रिया में रुकावट पड़ती है तब इन कार्यों में आत्मा का आवेष्टन हो जाता है। जब हम प्रतिदिन बस पकड़ कर अपने ऑफिस को जाते हैं तो यह सरल क्रिया चलती रहती है। किन्तु जब बस देर से आती है और हम ऑफिस देर से पहुँचने का भय होता है, तब आत्मा का आवेष्टन हो जाता है। आत्म-आवेष्टन की चरम-सीमा का उदाहरण आत्म-बलिदान है। जब हम कोई नई कला सीख रहे हैं या नया ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं तो हमारे आत्म का आवेष्टन होता है।

आत्म का आवेष्टन बहुत-से व्यक्ति बैग प्राप्त कर लेते हैं, इसका एक उदाहरण हम पाकिस्तानी हमले के समय का दे सकते हैं। जब पाकिस्तान ने हमला किया तो अनेक भारतवासियों ने उन राष्ट्रीय क्रियाओं में अपना आत्म-आवेष्टन कर लिया, जिनके सम्बन्ध में वे पहले उदासीन थे। उन्होंने इसी आत्म-आवेष्टन के कारण कहीं जवानों के लिए चाय के स्टाल लगाये, कहीं धन का दान दिया, कहीं बिना कोई पारिश्रमिक लिये हुए कार्य में जुट गये। वह सब समझने लगे कि यह सब कार्य उनके अपने हित के ही लिए हैं। हमारे उस समय के प्रधान मन्त्री लाल-बहादुर शास्त्री ने अपने ओजपूर्ण भाषणों से नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से अपने को राष्ट्र के काम में लगाने की प्रेरणा दी। उनके भाषणों ने राष्ट्र के उन उदासीन नागरिकों को भी झंझोर दिया जो राष्ट्र-सम्बन्धी क्रियाओं को अपने से अलग समझते हैं।

आज हमारे देश में भाषा का जो प्रश्न है उसको भी हम बहुत कुछ आत्म-आवेष्टन के मनोविज्ञान द्वारा समझ सकते हैं। हम शेरिफ एवं कैन्ट्रिल के द्वारा दिये गये एक उदाहरण से इसे समझने की चेष्टा करेंगे। जर्मनी ने अल्सेशियन लोगों के लिए नियम बनाया कि वह फ्रेंच न बोलें। अल्सेशियन साधारण तौर से फ्रेंच भाषा का प्रयोग न करते थे। उनकी बोली जर्मन भाषा की ही एक लिपि थी। किन्तु जर्मन नियम के कारण जर्मन अधिकृत क्षेत्र में फ्रेंच बोला जाना गौरव का विषय हो गया। क्योंकि अल्सेशियन अपनी स्वाधीनता को महत्त्व देते थे, इस कारण जर्मन नियम ने उन्हें फ्रेंच की ओर आकर्षित कर दिया। भारत में जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रश्न उठाया गया, तब दूसरे भाषी इसका विरोध करने लगे। दूसरे भाषी

---

1. Ego-involvement is a condition of total participation of the self as knower, organiser, observer, status seeker and as socialized being.

प्रान्त इससे अपने आत्म का आवेष्टन नहीं कर पाये। अब तो ऐसी भाषाएँ मान्यता प्राप्त करने के लिए उठ खड़ी हुई है जिनको पहले व्यक्ति कोई महत्त्व नहीं देते थे। उदाहरण के लिए, पहाड़ी भाषा के विकास के लिए धन इत्यादि का व्यय किया जाने लगा है। इस भाषा मे साहित्य हो या न हो, हिमाचली ने आज इस भाषा से अपने आत्म का आवेष्टन कर लिया है और इसकी मान्यता की ओर प्रयत्नशील है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि भाषा-सम्बन्धी आत्म-आवेष्टन क्षेत्रीय भावनाओ के आधार पर ही हो रहा है। प्रत्येक क्षेत्र अपना व्यक्तिगत रूप चाहता है, और इस रूप के निर्धारण मे भाषा एक महत्त्वपूर्ण संघटक है।

भाषा की समस्या इस देश मे राजनीतिज्ञो की भूल के कारण ही बढ़ गई है। स्वतन्त्रता के समय देश एक भाषा अपना सकता था, क्योंकि उस समय जनता का आत्म-आवेष्टन देश की एकता की ओर था किन्तु मुट्ठी भर राजनीतिज्ञ और सरकारी अफसरो ने ऐसा न होने दिया। आज परिस्थिति बदल गई है। अब तो हिन्दी उसी समय मान्य हो सकती है, जब इस भाषा से प्रत्येक भाषी राज्य के नागरिको का आत्म-आवेष्टन हो जाये। एक मनोविज्ञान के छात्र को वर्तमान काल की इस गम्भीर समस्या को समझ लेना चाहिए। यदि क्षेत्रीय भाषाओं मे क्षेत्र के व्यक्तियों का पूर्ण आत्म-आवेष्टन हो जायेगा और राष्ट्रीय भाषा को कोई मान्यता नहीं मिलेगी तो भविष्य मे भाषा की समस्या इतनी जटिल हो जायेगी कि फिर इसका कोई हल शायद सम्भव न हो। आवश्यकता इस समय यह है कि ठीक ढंग से देश के नागरिको मे राष्ट्रभाषा के आत्म-आवेष्टन की चेष्टा की जाये। यह उसी समय हो सकेगा, जब व्यक्ति राष्ट्र की एक भाषा के सम्बन्ध मे सहमत हो और भाषा को उत्तर या दक्षिण के आधिपत्य के रूप मे न देखें।

मानव-व्यवहार अधिकतर आत्म-आवेष्ट नहीं होता। यह एक तरह से अच्छा ही है, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो सरल कार्य भी अति जटिल हो जाते। मैं प्रातः काल से उठकर अनेक कार्य करता हूँ जो आत्म-आवेष्टन के नहीं, और इस प्रकार अपने को अधिक थकान से बचाता हूँ। विचार कीजिए कि मानव का जीवन क्या हो जायेगा—यदि वह दाँत माँजने मे, शेव करने मे, नहाने मे, जूतो पर पालिश करने मे अपना पूर्ण अवधान केन्द्रित कर दे और इन सब के करने मे आत्म को प्रविष्ट कर दे। वास्तव मे हम सीख जाते हैं कि कुछ व्यवहार स्वयं-संचालित स्तर पर चलने चाहिए और कुछ हमारे जीवन और इच्छा के निकट हैं वह आवेष्ट होने चाहिए। शिक्षक का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वह कुछ कार्यों को स्वयंचालित तथा भार रहित बनाये और कुछ कार्यों को जो बालक के विकास और क्रिया से सम्बन्धित हैं, आवेष्टपूर्ण बनाये। स्वयंचालित कार्य आदत का निर्माण करके सरलतापूर्वक किये जा सकते हैं। आदतें कैसे बनाई जायें इसका वर्णन हम १५ वें अध्याय मे करेंगे।

आत्म-आवेष्टन से तात्पर्य है, जो कार्य हम कर रहे हैं उसमे समाविष्ट हो जाना। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि कार्य के अन्दर आत्म के तत्त्व स्थानान्तरित हो जाते हैं।

एक प्रयोग का यहाँ वर्णन कर सकते हैं जिसमे कार्यों को आत्म-आवेष्ट करने का प्रभाव देखा गया। विद्यार्थियों के एक समूह को ६ बुद्धि-परीक्षाएँ दी गई। उनमे फिर अपने कार्य मे सफलता के सम्बन्ध मे आत्मविश्वास का मूल्याङ्कन कराया गया। प्रत्येक विद्यार्थी के ६ मापो मे बहुत कम स्थिरता पाई गई। इसी प्रयोग को दोहराया गया। अब परीक्षा देने के पूर्व विद्यार्थियो से कहा गया कि उनके परीक्षा के परिणाम उनके आगे कक्षा मे प्रवेश के लिए उपयोग किये जायेंगे और इस प्रकार उन्हे कार्य मे आवेष्ट किया गया। अब उनके आत्म-विश्वास की माप ने बहुत स्थिरता दिखाई।

प्रयोगो ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि चरित्र के गुण, जैसे ईमानदारी या स्वच्छता, उसी समय सामान्य होते है और प्रत्येक स्थिति मे व्यक्ति द्वारा प्रयोग होते हैं जब वह ईमानदारी या स्वच्छता के प्रत्यय मे आत्म-आवेष्ट होते है। यदि आवेष्टन नही होता तो व्यक्ति का व्यवहार बहुत अव्यवस्थित होता है। यह बात चरित्र-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण है। आत्म का आवेष्टन सामाजिक तथ्यो या भौतिक गुणो के निर्णय पर भी प्रभाव डालता है।

हम कह सकते हैं कि वास्तविक शिक्षा और साधारण प्रशिक्षण मे अन्तिम रूप से अन्तर व्यक्ति के आत्म के आवेष्टन की सीमा पर है।

शिक्षक अनेक ढङ्गो मे विद्यार्थियो मे आत्म के आवेष्टन के अनुभवों को बढा सकता है। एक विधि यह है कि वह उनकी कार्य प्रारम्भ करने की भावना को प्रोत्साहित करे। यदि विद्यार्थी यह समझकर कार्य करता है कि यह उसका अपना विचार है, तब वह अधिक उत्तरदायित्व अनुभव करता है और उसको अपना ही एक भाग मान लेता है।

(३) स्पृहा-धरातल[1]—एक अन्य प्रेरणा जो सीखने की क्रिया मे महत्त्वपूर्ण है वह है 'स्पृहा-धरातल'। स्पृहा-धरातल वह सीमा बताता है, जिस सीमा तक एक व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है। जब कोई व्यक्ति एक कार्य कर रहा है तो वह अपने लिए एक नया स्तर बना लेता है जिसे [illegible] है। इसे ही हम स्पृहा-धरा[illegible]
व्यक्ति सफलता
लेता है।

सीमा तक सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, यह उनके लालसा या स्पृहा-धरातल को स्पष्ट करता है। एक डाक्टरी की सबसे उच्च डिग्री प्राप्त करना चाहता है किन्तु दूसरा कुछ चिकित्सा सम्बन्धी नियम सीखकर अपना जीवनयापन करना चाहता है। इस प्रकार दोनों व्यक्तियों के एकसे जीवन-ध्येय होते हुए भी उनके स्पृहा-धरातल में भिन्नता होती है। जो व्यक्ति विशेषज्ञ बनना चाहेगा वह उसके लिए अध्ययन करेगा और पढाई में लगा रहेगा, जबकि दूसरा व्यक्ति मामूली अध्ययन करेगा और थोड़ा ही सीखने पर सन्तुष्ट हो जायगा।

हम दो श्रेणियाँ ऐसे खण्डों की बना सकते हैं जो स्पृहा-धरातल का निर्धारण करती हैं। प्रथम श्रेणी में व्यक्तिगत खण्ड[1] आते हैं। यह सीखने वाले के तत्कालीन अनुभव और स्थिति में सम्बन्धित होते हैं। पहले की असफलता स्पृहा-धरातल को गिरा देती है और पहले की सफलता इसे उठा देती है। इस बात के भी प्रमाण है कि यदि एक क्रिया में असफलता हुई है तो यह असफलता का भाव दूसरी क्रियाओं में भी स्थानान्तरित हो जाता है और उन क्रियाओं में भी स्पृहा-धरातल को गिरा देता है। हम सब जानते हैं कि एक विद्यार्थी जो परीक्षा में बार-बार फेल होता है, हर प्रकार से अपने को व्यर्थ समझने लगता है।

द्वितीय श्रेणी में सास्कृतिक और वातावरणीय तत्त्व आते हैं। एक समूह या कक्षा के औसत स्तर व्यक्ति के स्पृहा-धरातल पर प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार एक कक्षा में जो तेज बालक है वह अपना स्पृहा-धरातल नीचे गिरा लेता है और जो मन्द बालक है वह अपने लिए एक उच्च स्तर बना लेता है। इसके अतिरिक्त दूसरे समूहों का भी व्यक्ति के स्पृहा-धरातल पर प्रभाव पड़ता है। एक विद्यालय के हॉकी के खेल का उच्च स्तर दूसरे विद्यालय की टीम के खिलाड़ियों का स्पृहा-धरातल ऊँचा उठा देता है। यदि अच्छी टीम के खिलाड़ी जानते हैं कि उनका खेल साधारण टीम से होता है तो उनका स्पृहा-धरातल गिर जाता है और यदि उनका खेल अपने से उच्च कोटि की टीम से है तो उनका स्पृहा-धरातल उठ जाता है। यह सीखने में प्रतिष्ठा की शक्ति को व्यक्त करता है।

(४) प्रशंसा तथा आरोप[2]—इन उत्तेजनाओं को जब उन व्यक्तियों द्वारा दिया जाता है जिनका विद्यार्थी आदर करता है, तब बड़ा ही प्रभावोत्पादक परिणाम मिलता है। बहुत सीमित मात्रा में जो प्रयोगात्मक कार्य हुआ है, वह इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रशंसा औसत तथा दीन[3] बालकों को उत्तेजित करती है, किन्तु कुशाग्र बुद्धि[4] वाले बालकों पर कम प्रभाव उत्पन्न करती है। बालिकाओं के ऊपर प्रशंसा का अधिक प्रभाव होता है। कुछ अध्ययन इस बात की ओर भी संकेत करते हैं कि बिना आयु, लिंग, योग्यता आदि को ध्यान में रखे हुए यह कहा जा

1. Personal Factors. 2. Praise & Blame. 3. Inferior. 4 Superior Intelligence

चलता है कि सब प्रकार के विद्यार्थियों (बालक तथा बालिका) पर प्रशंसा का प्रभाव सबसे अधिक होता है। इस मत पर चेज़[1] महोदय द्वारा १९१२ में किए गए अध्ययन के परिणाम यह हैं कि—आरोप का प्रशंसा से अधिक प्रभाव पड़ता है, मुख्य रूप से छोटे बालकों पर। किन्तु हरलॉक[2] द्वारा १९२० में किया अध्ययन उस सामान्य निष्कर्ष की ओर संकेत करता है, जिसकी पुष्टि तत्कालीन अन्वेषकों द्वारा की गई है कि प्रशंसा अधिक प्रभावशाली प्रेरक है। किन्तु यह अध्यापक पर निर्भर है कि वह प्रशंसा को तथा आरोप को कहाँ पर प्रयोग करता है। एक कुशल अध्यापक वह है जो दोनों का उपयुक्त अवसर पर उचित समय प्रयोग करता है। आगरा में लेखक के निरीक्षण में किया गया एक ४ से ५ वर्ष के बालकों पर परीक्षण भी इस ओर संकेत करता है कि 'प्रशंसा' आरोप से अधिक प्रभावशाली प्रेरक है। परन्तु आरोप-प्रेरक किसी भी प्रकार के प्रेरक के न देने से अधिक प्रभावशाली है। इस अध्ययन में यह भी देखा गया कि प्रशंसा का छोटी बालिकाओं पर बालकों की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ता है।[3]

(५) प्रतिद्वन्द्विता[4]—बालकों के अन्दर प्रतिद्वन्द्विता जो ईर्ष्या[5], रोष[6] आदि अथवा समूहों की प्रतिद्वन्द्विता जो घृणा[7] उत्पन्न करती है, किसी भी प्रकार सराहनीय प्रेरक नहीं है जो पाठशाला में प्रयोग करने चाहिए। आत्म-प्रतिद्वन्द्विता[8] अथवा प्रतियोगिता[9] के रूप में प्रतिद्वन्द्विता सबसे अच्छी प्रकार की है। इसी को बालकों में अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु यदि प्रतियोगिता तथा प्रतिद्वन्द्विता पर अधिक बल दिया जायेगा तो शिक्षा सामाजिक स्थिति को विकसित करने में असफल हो जायेगी। किन्तु फिर भी की गई प्रयोगात्मक खोजें यह बताती हैं कि प्रतिद्वन्द्विता प्रेरक एक शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न करता है। परन्तु विद्यालयों में प्रयोग करने के इसके संवेगात्मक और सामाजिक परिणामों पर विचार कर लेना चाहिए। सूज़ के १९३० में किए गए प्रयोग यह बताते हैं कि ४७% पाठशाला के विद्यार्थियों ने प्रगति दिखाई, जब उन्हें प्रतिद्वन्द्विता का ज्ञान कराया गया।

(६) पुरस्कार तथा दण्ड[10]—पुरस्कार तथा दण्ड, प्रशंसा तथा निन्दा के अधिक स्पष्ट और प्रखर रूप हैं। यही नहीं, यह अभिप्रेरणा के सबसे अच्छे साधन भी हैं।

'दण्ड' से तात्पर्य जानते हुए किसी को पीड़ा देने से है, और पीड़ा पीड़ित को यह विचार रखते हुए दी जाती है जिससे उसके भविष्य के व्यवहार पर प्रभाव

1. Chase. 2. Hurlock's Studies in 1920.

3. Vimla Devi : *Effect of Praise & Blame on the Learning of the Child* (unpublished), M. Ed. Dissertation, W. T. College, Daylabagh, Agra.

4. Rivalry. 5. Jealousy. 6. Resentment 7. Hatred. 8. Self-rivalry. 9. Competition. 10. Punishment & Rewards.

पडे । वास्तव मे यह युवक के मार्ग-दर्शन की सबसे शैक्षिक तथा उपयोगी प
है । यह भय पर आधारित होती है । यह भय शारीरिक पीड़ा, स्तर-हीनत
घबराहट[2] पर निर्भर होता है । भय बडी ही प्रभावोत्पादक उत्तेजना है, इस
धारण प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जिससे बालक अपने व्यवहार को इच्छि
के अनुसार बदलने तथा उस पर चलने का प्रयत्न करता है । किन्तु जिस
हम तीव्र या कठोर कर देते हैं, उसके परिणामस्वरूप बालक के अन्दर बुरा म
प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और वह उस शिक्षण-कार्य से भी जी चुराने[3] ल
बहुत-से प्रयोगात्मक कार्य भी इस क्षेत्र मे किये जा चुके हैं । किन्तु अन्वेषक
बात पर मतैक्य प्रकट नही करते । फिर भी विचारणीय प्रमाण इस बात
मिलता है कि दण्ड कठिन तथा उलझे हुए समस्यात्मक कार्यों को सुलझाने मे
करता है । यह भी सम्भव है कि जो व्यक्ति भय के कारण आज्ञापालन करता है
का उल्लंघन भी कर सकता है—जब उसके समक्ष भय न रहे अथवा जब व
परिणामो का सामना करने को तैयार हो जाये ।

धन, छूट[4] आदि के रूप मे दिये गए उत्तेजक, जैसा कि प्रयोगात्म
बताते हैं, अधिक शक्तिशाली प्रेरक के रूप हैं । किन्तु उन्हे हम आदर्श उत्तेज
कह सकते हैं । हॉर्ट शोर्न और मेय[5] द्वारा ईमानदारी पर किये गए प्रयोगात्मक
जो पाठशाला के विद्यार्थियो पर किये गए थे, यह बताते हैं कि जिस समूह
बटी ढंग से ईमानदारी के प्रति पुरस्कार द्वारा उत्तेजित किया गया था, वह स
बालको से कही कम ईमानदार निकला । बालकों को पुरस्कार प्राप्त करने
स्पष्ट रूप मे इतना अधिक उत्तेजित किया गया कि उन्होंने ईमानदारी के स्थ
बेईमानी से पुरस्कार प्राप्त करने की चेष्टा की ।

साधारणतया पिन-पदक[6], कप और अन्य वस्तुएँ बालक को इतनी ही
की प्रेरणा देती हैं और वे किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति प्रेरणा देने मे अ
रहती हैं । भारतीय विद्यालयों मे सबसे अधिक दुःखपूर्ण उत्तेजक का उदाहरण
डिवीजन देने तथा डिग्री प्रदान करने का ढंग । यह कहना भी त्रुटिपूर्ण न हो
भारतीय विद्यार्थी केवल परीक्षा पास करने और प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के
से विद्याभ्यास करता है । उसका लक्ष्य किसी भी प्रकार अच्छा डिवीजन प्राप्त
का होता है । वह नकल करता है, निरीक्षको को धमकी देता है, परीक्षको
जाता है अथवा इसी प्रकार के अन्य अशोभन कार्यों को अपनाता है—केवल प्र
पत्र-प्राप्त करने के लिए । और जैसे ही उसे प्रमाण-पत्र मिल जाता है, वह
पाठन को शीघ्रातिशीघ्र भूल जाता है । यही नहीं, उसके समक्ष फिर ज्ञान प्राप्त
या काम करने का कोई उत्तेजक ही नही रहता । वृहत् रूप मे विश्वविद्याल

1. Loss of Status. 2 Embarrasment. 3. Resentment 4. Exe
ion. 5. Hart Shorne & May. 6. Badges.

भी आरोपित किया जा सकता है जो इस प्रकार की अतिरिक्त महत्ता[1] अवैज्ञानिक परीक्षा के ढंग को अपना कर करते हैं। यदि हमारे देश का सम्पूर्ण शिक्षा-विश्लेषण हो और वर्तमान समय में हमारी परीक्षा के ढंगों पर यथाशक्ति विचार किया जाय तो हम यह देखेंगे कि सबसे अधिक दोष हमारी शिक्षा में हमारे परीक्षा के ढङ्गों में ही निहित है।

(७) उन्नति का ज्ञान[2]—वह बालक जिसे हम यह बता देते हैं कि वह उन्नतिशील है, उसने कितनी उन्नति की है तो उसे अधिक प्रयत्न करने की उत्तेजना मिलती है। आत्म-प्रदर्शन[3] और आत्म-संकेत[4] कारक[5] यहाँ पर सक्रिय होते हैं। प्रयोगात्मक कार्य भी इसका साक्षी है कि उन्नति का ज्ञान, अधिक प्रयत्नों को उत्तेजित करता है। इसी कारण प्रगति-पत्र[6] बालकों के लिए महान् उपयोगी है। अध्यापकों को भी चाहिए कि वे बालकों को वहाँ उचित अवसर दें, जहाँ पर कि बालक किसी कार्य को आसानी से समाप्त कर सकता है। यदि कई बार इन विद्यार्थियों को असफलता मिलती है तो वे हतोत्साहित हो जाते हैं और उनमें क्षोभ की भावना का उदय हो जाता है।

यह भी आवश्यक है कि बालकों को लक्ष्य का ज्ञान हो। लक्ष्य के लिए अभिप्राय-युक्त चेष्टा अधिक फलदायी होती है। कभी भी अभिप्राय के बिना किया हुआ आरम्भ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता। अतः यह उपयुक्त है कि लक्ष्य के लिए अभिप्राय-युक्त आरम्भ होना चाहिए। यदि लक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शित है तो प्रेरणा बहुत ही शक्तिशाली मिलती है। इस प्रकार कार्य के निश्चित उद्देश्य होने चाहिए जो बालक की शक्ति और रुचि को विशेष रूप से ध्यान में रखकर ही निर्धारित किये जायें। परन्तु वह इतने कठिन भी हों कि बालक को उनको प्राप्त करने के लिए चेष्टा करनी पड़े।

सर्वप्रथम जॅड[7] द्वारा १९०५ में किये गए प्रयोगों ने यह बताया कि कुछ विशेष प्रकार के सीखने में जब तक परिणामों का ज्ञान न हो, व्यक्ति के सीखने में कोई उन्नति नहीं होती। उदाहरण के लिए, जॅड ने यह पता लगाया कि परिणामों के ज्ञान के बिना किये गये अभ्यासों से सीखने वाले व्यक्ति की लाइनों की लम्बाई सम्बन्धी निर्णय को उन्नतिशील नहीं बना पाया। परन्तु त्रुटियों के सुधार द्वारा तथा उन्नति के ज्ञान द्वारा प्रेरित करने पर सीखने वाले व्यक्ति के निर्णय में प्रगति हो गई। थॉर्नडाइक[8] द्वारा १९३५ में किये गये प्रयोग भी हमें इन्हीं परिणामों पर मानसिक तथा गतिगामी व्यवहारों[9] के सम्बन्ध में ले आते हैं। उसके बिना अर्थ वाले अक्षरों[10]

1. Extraneous importance. 2. Knowledge of progress. 3. Self-display. 4. Self-instruction. 5. Operative. 6. Progress Report. 7. Judd. 8. Thorndike. 9. Mental & Motor Behaviour. 10. Nonsense Syllable.

को अपनाते हैं। हमारी संस्कृति में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करने की विभिन्न विधियाँ होती हैं। एक शिक्षक को यह समझ लेना चाहिए कि यदि बालक एक छोटी जाति से आता है तो वह ऊँची जाति वालों का अनुकरण करके प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहेगा। उच्च जाति के बालक डिवीजन, ग्रेड तथा परीक्षाफल द्वारा उसे प्राप्त करना चाहते हैं। वह दूसरी जाति वालों के अनुकरण करने के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करना नहीं चाहते हैं। एक बालक जो गरीब परिवार से आता है, प्रतिष्ठा के लिए आक्रमणकारी व्यवहार अपना सकता है जबकि एक मध्यवर्गीय बालक प्रतिष्ठा भद्र व्यवहार, नम्र वाणी, शान्त स्वभाव द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा कर सकता है। अतएव शिक्षक को प्रतिष्ठा का अभिप्रेरक देने में सतर्क रहना चाहिए। उसे बालक की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही यह अभिप्रेरक देने की चेष्टा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बालक की आर्थिक-सामाजिक स्थिति को समझ कर वह यह भी जान सकता है कि विभिन्न बालक विभिन्न विधियाँ क्यों प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए प्रयोग करते हैं।

(६) श्रव्य-दृश्य सामग्री[1]—वर्तमान काल में यह कक्षाओं में शिक्षा की सहायक उत्तेजना के रूप में प्रयोग की जाती है। दृश्य सामग्री द्वारा यह देखना कि क्या हो रहा है, बालक की शक्ति तथा समय को बचाता है, और कार्य को अधिक रुचिपूर्ण तथा विविधतापूर्ण बनाने में सहायक होता है। इसमें बालक की अनुकरण-शक्ति का पूर्ण लाभ उठाया जाता है, जहाँ तक कि इसके प्रयोगात्मक प्रयोग का प्रश्न है। चलचित्र, हास्य-नाटक, आकाशवाणी, चित्रपट, प्रयोगशाला तथा कार्य-कक्ष[2] आदि का पाठशाला की शिक्षा में पूर्ण योग होना चाहिए। यह सब प्रेरणा देने की महान् सामग्री हैं।

सीखने की क्रिया में अभिप्रेरकों के तीन कार्य[3]

गेट्स के मतानुसार 'सीखने की क्रिया' में प्रेरक तीन कार्य करते हैं। वे इस प्रकार हैं

(i) **अभिप्रेरक हमारे व्यवहार को शक्तिवान बनाते हैं[4]**—प्रेरक शक्ति का प्रवाहन करते हैं जिससे हमारे अन्दर क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। इस प्रकार भूख तथा प्यास हमारे अन्दर मांसपेशिक तथा ग्रन्थिक[5] प्रतिक्रिया को उत्पन्न करती है। प्रशंसा, आरोप, पुरस्कार, दण्ड आदि शक्तिशाली उत्तेजक हैं जो हमारे बहुत से कार्यों को प्रभावित करते हैं। यह हमें किसी विशेष दिशा की ओर कार्य करने को बाध्य करते हैं और सीखने की क्रिया में सहायक होते हैं।

(ii) **अभिप्रेरक हमारे व्यवहार को चुनने वाले होते हैं[6]**—प्रेरक व्यक्ति

---

1. Audio-visual aids. 2 Movies, Comics, Radio, Televison, Laboratory & Workshop. 3. Three Functions of Motive in Learning Process 4. Motives Menergiz behaviour. 5. Muscular & Glandular. 6 Motives are selectors of our behaviour.

बुद्धिपूर्ण अनुकूलन की ओर भी संकेत करते हैं, जब उनमें खोज और समस्या-समाधान पर बल दिया जाता है, न कि केवल दिखावटी श्रम या स्मृति पर बल होता है, जब वे सामाजिक सम्बन्धों की सन्तुष्टि करते हैं। सहयोग में कार्य करते हुए अध्यापक तथा बालक को ऐसे लक्ष्यों का निर्माण करना चाहिए जो इस प्रकार के शैक्षिक अनुभवों को सम्भव बनायें तथा साथ ही साथ प्रभावोत्पादक योजनाओं के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करें।

सारांश

अभिप्रेरकों को 'मानव-प्रकृति का कच्चा माल' कह सकते हैं। आरम्भ की प्रेरणाएँ वे हैं जो हमारी शारीरिक आवश्यकताओं से प्रारम्भ होती हैं।

अभिप्रेरण—व्यक्ति का एक आन्तरिक शक्ति-परिवर्तन है जो भावात्मक जागृति तथा पूर्वानुमान उद्देश्य प्रक्रियाओं द्वारा वर्णित होता है। अभिप्रेरणा का एक आन्तरिक और एक वाह्य संघटक होता है।

हम अभिप्रेरक से क्या समझते हैं?—प्रेरणा वह शक्ति है जो व्यक्ति के व्यवहारों का प्रारम्भ करती है। हम प्रेरणा को परिभाषा इस तरह कर सकते हैं कि "यह क्रिया करने की वह प्रवृत्ति है जो एक उदीरणा द्वारा प्रारम्भ होती है तथा अनुकूलन द्वारा समाप्त होती है।"

अभिप्रेरणाओं के प्रकार—विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरकों का विभाजन विभिन्न प्रकार से किया है। महत्वपूर्ण विभाजन जैविक प्रेरणाओं तथा समाज-जनित प्रेरणाओं के बीच में है।

जैविक प्रेरणाओं का आरम्भ जैविक आवश्यकताओं के कारण होता है। समाज-जनित प्रेरणाओं का आरम्भ समाज-जनित आवश्यकताओं से होता है।

जैविक आवश्यकताएँ एवं भूख—व्यक्ति को कुछ विशेष वस्तुओं की आवश्यकता होती है ताकि वह जीवित रह सके। उसकी मूल आवश्यकताएँ भूख, प्यास इत्यादि हैं।

जैविक अभिप्रेरकों के अन्तर्गत ही हम मूलप्रवृत्तियों को रख सकते हैं। मूल-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में वर्तमान समय में बहुत मतभेद हैं। बहुत-से मनोवैज्ञानिक उन्हें जन्मजात मानने को तैयार नहीं हैं।

समाज-जनित प्रेरक—समाज-जनित प्रेरक सामाजिक स्थितियों, मूल्यों, आदर्शों इत्यादि द्वारा निर्धारित होते हैं।

अभिप्रेरक एवं आवश्यकताएँ—आवश्यकताएँ व्यक्ति के अन्दर लगभग स्थायी प्रवृत्तियाँ हैं जो विशिष्ट प्रकार से ही अभिप्रेरित होती हैं। अभिप्रेरक अभिप्रेरण प्रक्रिया के विशिष्ट उदाहरण हैं, जबकि आवश्यकताएँ निहित दशाएँ हैं जिसमें से अभिप्रेरणा के विशिष्ट उदाहरण उभरते हैं।

४. मैस्लो के अनुसार आवश्यकताओं का श्रेणी-विभाजन किस प्रकार किया जाता है ? इस प्रकार के श्रेणी-विभाजन के अध्ययन से शिक्षक को अपने कार्य में कैसे सहायता मिलती है ?

५. आत्म के आवेष्टन से आप क्या समझते हैं ? सीखने की क्रिया में इस अभिप्रेरक का क्या महत्त्व है ?

६ भारत में भाषा की समस्या का विश्लेषण कीजिए। इस समस्या के हल में आत्म-आवेष्टन किस प्रकार जटिलता ला देता है ?

७ प्रशंसा तथा आक्षेप के अभिप्रेरकों का वर्णन कीजिए। इन दोनों में से किसे आप अधिक महत्त्वपूर्ण समझते है और क्यों ?

८. बालक को जब अपनी उन्नति का ज्ञान हो जाता है तो वह अधिक सीखता है। ऐसा क्या होता है ? कुछ परीक्षणों का वर्णन कीजिए जो उन्नति के ज्ञान को एक महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक सिद्ध करते हैं।

१३ थकावट, दुश्चिंता तथा सीखने में अन्य महत्त्वपूर्ण त

FATIGUE, ANXIETY, HABITS, AND OTHER IMPO
TANT FACTORS IN LEARNING

हमने अभिप्रेरक, आवश्यकता, प्रोत्साहन, अन्तर्नोद, उद्देश्य इत्यादि का व
पिछले अध्याय में किया है। यह सब तत्त्व सीखने को प्रोत्साहित करते है। इन
तत्त्वों के अतिरिक्त सीखने की प्रक्रिया को निबद्ध करने वाले कुछ अन्य ऐसे तत्त्व
हैं जो इस प्रक्रिया की गति को धीमा कर देते हैं। यह तत्त्व अधिकतर शारीरिक
मानसिक स्वास्थ्य और वातावरणीय दशाओं में निहित रहते हैं। एक अध्यापक
इनके सम्बन्ध में भी जानकारी होनी चाहिए ताकि वह उनके प्रभाव को दूर क
अच्छा शिक्षण प्रदान कर सके। यहाँ पर हम विशेष रूप से थकान और दुश्चिन्ता
वर्णन ऐसे तत्त्वों के अन्तर्गत करेंगे जो सीखने की गति को धीमा कर देते
महत्त्वपूर्ण हैं। इन तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्वों जैसे दिन का समय, तापमा
नशीली औषधि इत्यादि का सीखने की प्रक्रिया पर प्रभाव का वर्णन करेंगे। इन त
का भी यदि ठीक ढंग से प्रयोग न किया जाये तो यह भी सीखने की गति में कमी
देते हैं, किन्तु यदि इनके प्रभावों को समझ कर सीखने की प्रक्रिया में इनकी सहाय
प्राप्त की जाये तो यह सीखने के सहायक तत्त्व बन जाते हैं। इसी कारण इन
प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर समझना आवश्यक है।

आदत बन जाना सीखने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण है। आदत जब बन जाती
तो यह एक अभिप्रेरक की तरह कार्य करती है, किन्तु यह अभिप्रेरक दोनों प्रकार
सक्रिय हो सकता है—सीखने को गति देने वाला अथवा उसकी गति को धीमा क
वाला। एक व्यक्ति जो प्रातः काल जल्दी उठकर अपने कार्य में लग जाता है, ऐसी आ
बनाता है जो सीखने को प्रोत्साहित करती है, परन्तु यदि एक मनुष्य नशा करने
आदत बना लेता है तो वह उसके सीखने में अवरोध उत्पन्न करती है। अतः आ
एक ऐसा तत्त्व है जो सीखने का सहायक अथवा अवरोधक दोनों हो सकता है।
इस अध्याय में आदत का भी वर्णन करेंगे ताकि इसका सीखने में महत्त्व समझ
आ जाय।

थकान[1]

थकान के तीन प्रकार हैं। वे हैं—(i) मांसपेशिक[2], (ii) संवेदनात्मक, और (iii) मानसिक। मांसपेशिक तथा संवेदनात्मक थकान एक-दूसरे से मिली हुई हैं और इन्हें 'शारीरिक थकान' कह सकते हैं। 'थकान' टाक्सिक[3] पदार्थों की उत्पत्ति अथवा ऑक्सीजन का अभाव या अन्य कारणों से पैदा होती है। टाक्सिक पदार्थों का बनना न केवल थकान की भावना को, वरन् वास्तविक थकान को भी उत्पन्न करता है। यह कहा जाता है कि मांसपेशिक या शारीरिक थकान मानसिक थकान को भी उत्पन्न करती है। यह बात यह संकेत करती है कि दोनों प्रकार की थकान सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं और शारीरिक थकान मानसिक क्षमता को कम कर देती है।

बहुत-से तत्त्व जो थकान उत्पन्न करते हैं, आन्तरिक तथा बाह्य दोनों हैं। उनमें से कुछ आन्तरिक तत्त्व यह हैं—दाँत, जबड़े, दोषपूर्ण नेत्र, भोजन-स्तर, अपूर्ण निद्रा। यदि दाँत बहुत ही दयनीय अवस्था में हैं तो जबड़े या गलफड़े सूज जाते हैं और आँखों को भी प्रभावित कर देते हैं। बहुत ही दीन दशा से विकसित शरीर अथवा उपयुक्त आराम का न मिलना, निश्चय रूप से शक्तिहीन बना देता है। ऐसा बालक आसानी से थक जाता है, लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करने में भी वह असमर्थ होता है। शारीरिक और स्वास्थ्य-शिक्षा का अच्छा कार्यक्रम एक बालक को स्वस्थ शारीरिक अवस्था में रखेगा और बालक को शीघ्र थकान न आएगी।

बाह्य कारण जो थकान को उभारते हैं, अत्यधिक उत्तेजन, अस्वास्थ्यजनक वस्त्र, अनुपयुक्त रोशनदान,[4] अपूर्ण प्रकाश,[5] अत्यधिक शोर[6], अनुपयुक्त कुर्सी तथा मेज और अविचारणीय ढंग से दिया गया पाठशाला का कार्य। यदि पाठशाला का कार्य एक सीमा से अधिक कठोर या सरल है तो थकान की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

दिये हुए कार्य के बहुत-से दोषपूर्ण प्रभाव इसे उचित रूप से प्रबन्धित करने पर दूर किये जा सकते हैं और सीखने की क्रिया को उचित उत्तेजना प्रदान की जा सकती है। अध्यापक को अपने कार्य का ढाँचा बनाना चाहिए, कार्य-प्रणाली को स्वयं निर्दिष्ट करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह अपने बालकों को भली प्रकार मार्ग-प्रदर्शित करे जिससे वह अपने दिये हुए कार्य को मेहनत से करें। कार्यों को भली प्रकार विभाजित किया जाये। शारीरिक शिक्षण के घंटे छोटे हों। बालकों को पाठशाला में स्वास्थ्य-शिक्षा और अन्य रुचिपूर्ण कार्यों की शिक्षा दी जाये। यदि हम इन सभी बातों के ऊपर बल देते हैं तो बालक अपनी मानसिक क्रियाओं को करने में बिना थकावट के संलग्न रहेगा।

---

1. Fatigue. 2. Muscular. 3. Toxic 4. Ventilation. 5. Poor illumination. 6. Excessive Noise.

विभिन्न घण्टों में सीखने की क्षमता में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। प्रयोगात्मक मतानुसार बालकों में दिन के किसी भी समय सीखने से वास्तविक मानसिक थकान नहीं होती। बालकों की कई बार परीक्षा स्कूल के विविध घण्टों में की गई। इन परीक्षाओं में यह देखा गया कि गुणा, जोड़ पढ़ना, वाक्य में शब्द-पूर्ति तथा इस प्रकार की अन्य क्रियाओं में बालकों की क्षमता पर दिन के समय का क्या प्रभाव पड़ता है। परिणामों के अनुसार यह प्रतीत होता है कि पाठशालाओं के विभिन्न घण्टों में बालक की सीखने की योग्यताओं में बहुत ही थोड़ा अन्तर होता है। औसत रूप में, बालक उतनी ही मानसिक कुशलता से ४ बजे सायंकाल कार्य कर सकता है, जितना कि वह सुबह ७ बजे। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकालना बहुत ही सरल है कि सीखने में दिन के किसी भी समय कोई भी सीखने की शक्ति का ह्रास, मानसिक थकान के कारण नहीं होता।

रुचि की कमी, ऊब जाना, बेचैनी और वायु-द्वारों का अनुचित प्रबन्ध—हमारी सीखने की क्षमता को कम कर देते हैं। सुधरे हुए शिक्षा के ढंग इनकी सही औषधि हो सकते हैं।

यह सत्य है कि पाठशाला के अध्ययन-काल में बालक मानसिक थकान को अनुभव नहीं करते, किन्तु फिर भी वह शारीरिक थकान को तो अनुभव करते ही हैं। थकान की भावना ही उनकी कुशलता में कमी उत्पन्न कर देती है। यह कमी उस समय तक रहती है, जब तक कि कक्षा की परिस्थितियाँ ही उन्हें शीघ्र गति से कार्य करने को विवश न करें। पाठशाला के समय किसी भी घण्टे में कार्यशक्ति में किसी भी मात्रा में कमी वास्तविक शक्ति-ह्रास से उत्पन्न नहीं होगी, वरन् रुचि की कमी और 'थक रहे हैं' की भावना से होती है।

जैसे-जैसे दिन ढलता जाता है, हमारे मस्तिष्क पाठशाला के समय के बाद की क्रियाओं की ओर आकृष्ट होने लगते हैं और परिणामतः हम अपने पाठों पर कम ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार क्रियात्मक रूप से शिक्षक को अपने बालकों के लिए यह देखना आवश्यक है कि विद्यालय के अन्तिम घण्टों में उनकी कार्य-क्षमता कम न हो सके। वे उतनी ही कुशलता से पाठशाला के अन्तिम घण्टों में कार्य कर सकते हैं जितना कि आरम्भ में। किन्तु पाठशाला के कमरे में शिक्षक इसे कार्यान्वित करना मुश्किल समझता है, क्योंकि छुट्टी का ध्यान उसकी तथा बालकों की रुचि को कम कर देता है। न तो अध्यापक और न बालक ही दिन में अन्तिम घण्टों को शीघ्रतापूर्वक कार्य करने के योग्य समझते हैं। यदि बालक को इस समय किसी परीक्षा आदि में व्यस्त कर दिया जाय तो वे बड़ी तत्परता से कार्य कर सकते हैं। किन्तु पाठशाला का साधारण नियन्त्रण दिन में परीक्षा की सी प्रेरणा देने वाली अवस्था नहीं होती, परिणामतः साधारणतया दिन के अन्तिम भाग में बालक अधिक उत्सुक नहीं रह पाते हैं। अध्यापकों की समस्या क्रियात्मक समस्या है। उन्हें पाठशाला के

कार्यक्रम को इस प्रकार बनाना चाहिए कि बालक थका कर, दोनों ही उपायों के साथ सम्पूर्ण पाठशाला के समय में कार्य कर सकें।

प्रयोगों द्वारा यह भी देखा गया है कि यह कहना कि अमुक विषय अधिक थकानकारी होता है, उस दिन के प्रथम घण्टे में पढ़ाना चाहिए, सत्य नहीं है। यह विचार किया जाता था कि गणित विषय से अधिक थकान उत्पन्न होती है, अतः इसे कभी भी अन्तिम घण्टे में नहीं पढ़ाना चाहिए। किन्तु मनोवैज्ञानिक अन्वेषक इस ओर संकेत करते हैं कि यह विचार त्रुटिपूर्ण है। विषयों में भिन्नता नहीं करनी चाहिए या उनसे सम्बन्धित थकान को भी भिन्नता नहीं देनी चाहिए। बालक भूगोल, इतिहास, गणित आदि दिन के किसी भी समय पढ़ने के योग्य होते हैं। जैसा कि हम ऊपर विचार कर चुके हैं, हमारा मन सीखने में रुचि के अभाव के कारण नहीं लगता है। इसी कारण हमारी कार्यशक्ति नष्ट हो जाती है और हम थके हुए प्रतीत होते हैं। खोई हुई कार्य-शक्ति को पुनः प्राप्त करने का सबसे अच्छा ढंग विषय-परिवर्तन है। *सीखने में कार्य-क्षमता को बनाए रखने के लिए वास्तविक समस्या रुचि की है, न कि थकान की।*

दुश्चिंता[1]

दुश्चिंता एक प्रक्रिया में रुकावट समझी जाती है। एक व्यक्ति जो दुश्चिंता से पीड़ित होता है, एक कार्य के करने में पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। इस *प्रकार यह विचार किया जाता है कि दुश्चिंता क्रिया में रुकावट डालती है* और इस तरह सीखने की गति में कमी आ जाती है। किन्तु यह विचार पूर्णतः सत्य नहीं है और दुश्चिंता के कार्य को ठीक से न समझने के कारण है। वास्तव में दुश्चिंता सीखने में *रुकावट भी डाल सकती है और इसको प्रेरित भी कर सकती है। बुगेलस्की*[2] के अनुसार अवधान सीखने में एक प्राथमिक तत्त्व है। अवधान पुरस्कार की इच्छा, दण्ड से बचने की इच्छा, जिज्ञासा इत्यादि के परिणामस्वरूप होता है किन्तु अवधान के लिए मूल वस्तु दुश्चिंता है। बुगेलस्की का विचार है कि शिक्षक का *कार्य आवश्यक* सीमा तक दुश्चिंता उत्पन्न करना है। यह एक कठिन प्रश्न है कि कितनी दुश्चिंता उत्पन्न की जाए क्योंकि यदि यह दुश्चिंता बहुत अधिक है तो यह सीखने की स्थिति से बचने को प्रोत्साहित करेगी और यदि बहुत कम है तो अवधान में कमी आ जायेगी। बुगेलस्की का कथन है कि जब विद्यार्थी की जिज्ञासा जाग्रत की जाती है तो दुश्चिंता उत्पन्न हो जाती है क्योंकि जिज्ञासा दुश्चिंता का गुप्त रूप है। विद्यार्थियों की जिज्ञासा जाग्रत करनी चाहिए और उन्हें ऐसे कार्य देने चाहिए जिनमें वह सफल हों।

सामाजिक स्थितियों में, *बहुत कुछ सीखना इस कारण होता है कि व्यक्ति* दुश्चिंता को कम करना अथवा दूर करना चाहता है। बालक अपने व्यवहार में परि-

---

1. Anxiety. 2. Bugelske.

वर्तन ले आते हैं ताकि अपने माता-पिता को निराश न करें। अपने माता-पिता को प्रसन्न करने के लिए बालक परीक्षा पास करने के लिए मेहनत करते हैं।

ऐलीसन एवं ऐश के[1] परीक्षण जो चल-चित्र से सीखने में दुश्चिंता का प्रभाव पता करने के लिए थे, इस परिणाम पर आये कि दुश्चिंता के स्तर को बढ़ाने से परीक्षण से प्राप्तांकों में वृद्धि होती है।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते है कि साधारण दुश्चिंता ही विद्यार्थियो को सीखना ग्रहण करने योग्य बनाती है। यदि इस प्रकार की दुश्चिंता सामाजिक स्थितियों में नही है तो विद्यार्थी अपने अधिकार और दूसरो की भावना की ओर से लापरवाह हो जाते हैं। ऐसे बालक आत्म-केन्द्रित हो जाते हैं। वह दूसरों की परवाह नही करते। किन्तु अधिकतर बालक साधारण दुश्चिंता विकसित करना सीख लेते हैं। यह उन पर सामाजिक प्रभाव रखती है और बालकों को आत्म-नियंत्रण और आत्म-निरोध सीखने के योग्य बनाती है।

जो बालक दुश्चिंता की अधिकता अनुभव करते हैं वह सीखने में प्रगति नही कर पाते। वह इस प्रकार के व्यवहार प्रतिमानो को विकसित कर देते हैं जो अवाछनीय हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक विद्यार्थी परीक्षा मे बहुत अधिक दुश्चिंता से पीड़ित होते हुए प्रवेश करता है तो वह प्रश्नो को गलत समझ सकता है और बहुत कुछ सामग्री भूल भी सकता है। इसलिए सीखने मे केवल बीच के स्तर की दुश्चिंता प्रदान करती है। कोक्स[2] महोदय ने मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया के पाँचवी ग्रेड के विद्यार्थियो को दुश्चिंता परीक्षण दिये और उन्हे तीन समूहों में विभाजित किया, जो उच्च, मध्य और निम्न स्तर की दुश्चिंता के आधार पर थे। मध्य दुश्चिंता वाले समूह का शैक्षिक कार्य दूसरे दोनों समूहों से अच्छा था। सबसे खराब कार्य उच्च दुश्चिंता समूह का था।

एक यंत्र मेस्युर, सारासोन[3] इत्यादि ने बनाया जो "परीक्षण दुश्चिंता"[4] की माप के लिए था। "परीक्षण दुश्चिंता" से तात्पर्य उनका उस प्रकार की दुश्चिंता से था जो व्यक्तियो को तनाव की स्थिति मे कार्य करने से रोकती है। यह पता लगा कि वह बालक जो "परीक्षण दुश्चिंता" पर अधिक प्राप्तांक प्राप्त करते हैं, बुद्धि

1. Sarah G Allison and Philip Ash, Quoted in *Educational Psychology in the classroom* by Lindgren, H. C., N Y, John Wiley, 1967, p 307.

2. Cox, F. N : "Correlates of general and test anxiety in Children," *Austral. J. Psychol.*, 12 : 169-77, 308, 1960.

3. Sarason, S B etc : *Anxiety in elementary school children* : *A Report of research*, N. Y., Wiley, 102, 308, 1960.

4 Test Anxiety.

परीक्षा एवं ज्ञानोपार्जन परीक्षा में कम अङ्क प्राप्त करते हैं। फेल्डहुसन एवं क्लोस्मीयर[1] ने भी एक 'दुश्चिता परीक्षण' बनाया जिसे "चिल्ड्रन मेनीफैस्ट एंग्जायटी स्केल" (CMAS) कहा गया। यह परीक्षण दुश्चिता, बुद्धि एवं ज्ञानोपार्जन का सम्बन्ध निकालने के लिए बनाया गया। यह पता चला कि सबसे निम्न बुद्धि-लब्धि समूह की दुश्चिता सीमा सबसे अधिक थी। दुश्चित अङ्को का, उन समूहों में जिनमें मध्य अथवा निम्न बुद्धि-लब्धि के बालक थे, बुद्धि-लब्धि और ज्ञानोपार्जन से विपरीत सहसम्बन्ध था। उच्च बुद्धि-लब्धि वाले समूह के साथ दुश्चिता अङ्क सहसम्बन्ध लगभग शून्य था। कालेज स्तर के विद्यार्थियों के साथ अनुसधानों ने भी यह बात सिद्ध की कि उच्च स्तर की दुश्चिता ज्ञानोपार्जन में बाधा उत्पन्न करती है। एक अन्य अध्ययन से जो माथुर, और चोपड़ा[2] द्वारा किया, यह पता चला कि जब परीक्षा के समय तनाव अधिक था तो विद्यार्थियों ने कम अङ्क प्राप्त किये और जब यह तनाव कम था तो अधिक अङ्क प्राप्त किये। इस अध्ययन से यह भी पता चला कि परीक्षा के समय तनावों ने बालकों के व्यक्तित्व को कुसमायोजित नहीं कर दिया।

इसी प्रकार के अनेक अध्ययन जो दुश्चिता के क्षेत्र में किये गये, से कुछ रोचक तत्त्व सामने आये हैं। यह पता लगा है कि उच्च स्तर की दुश्चिता साधारण सीखने में तो सहायक होती है किन्तु जटिल पदार्थों को सीखने में अवरोध डालती है। यह परिणाम एक ऐसे शिक्षक के लिए कठिन समस्या उत्पन्न कर देता है जिसमें आशा की जाती है कि वह 'मध्य स्तर की दुश्चिता' उत्पन्न करेगा। वह यह निर्धारित नहीं कर पाता कि कितनी दुश्चिता मध्य स्तर की है और कितनी उच्च स्तर की। यदि इस सम्बन्ध में वह अपना कुछ निर्णय ले भी ले तो उसके लिए अन्य कठिनाई यह है कि कुछ बालक जरा सी दुश्चिता से अपने सीखने की गति धीमी कर देते हैं और कुछ अधिक दुश्चिता में भी सीखने की गति बढ़ाते रहते हैं। अतएव किस बालक को सीखने की गति बढ़ाने के लिए कितनी दुश्चिता दी जाए यह निर्धारित करना यदि असंभव नहीं तो बहुत जटिल तो है ही। यही कारण है कि शिक्षण एक कठिन कार्य कहा जाता है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि एक प्रभावशाली शिक्षक वह है जो यह जानता है कि दुश्चिता को कक्षा में कैसे उत्पन्न किया जाए और किस प्रकार अधिक दुश्चिता का मुकाबला किया जाए। अच्छा अध्यापक दुश्चिता के स्तर का पता रखता

1. Feldhuson, J F. etc : Anxiety, Intelligence and Achievement in children of low, average and high intelligence.

2. Mathur, S. S.; Chopra, N : "An Analysis of the Effect of Examinations on the Mental Health of the students of class IX of a High School", Unpublished, Deptt. of Education, Punjab Uni- .. y, Chandigarh.

है जो कक्षा के कमरे में प्रस्तुत होती है। यदि वह इसे अधिक पाता है तो इसे कम करने की चेष्टा करता है। यदि कम पाता है तो इसे बढ़ाता है।

कुंठा[1]

सीखने की गति को धीमे करने वाले तत्त्वों में कुंठा भी महत्त्वपूर्ण है। यदि एक बालक कोई कार्य करना चाहता है किन्तु उसमें उसे बार-बार विफलता मिलती है तो वह कुंठाग्रस्त हो सकता है। जैसे, एक बालक बार-बार परीक्षा में फेल होता है तो वह कुंठा से पीड़ित हो जाता है। कुंठा के कारण अब उसका मन पढ़ने में बिलकुल नहीं लगता। वह पढ़ाई छोड़कर भाग जाना चाहता है। अतएव एक शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह बालकों में कुंठा न बनने दे। इसके लिए उन्हें बालकों को उनकी रुचि तथा योग्यता के अनुसार कार्य देने चाहिए।

कुंठा बहुत कुछ लालसा-धरातल पर निर्भर होती है। एक व्यक्ति का लालसा धरातल यदि बहुत बढ़ा हुआ है और उसका अर्जन बहुत कम है तो वह कुंठाग्रस्त हो जायेगा। यदि लालसा-धरातल कम है तो वह कम ही प्राप्त करके सन्तुष्ट हो जायेगा। इस प्रकार अपने अर्जन से सन्तुष्टि अथवा असन्तुष्टि भी कुंठा को निर्धारित करती है।

कुंठा तनाव की स्थिति है। इस स्थिति में व्यक्ति के मन में क्लेश रहता है जो उसे कुछ भी सीखने से रोकता है। तनाव के कारण व्यक्ति कैसे कुंठित हो जाता है और कुंठाएँ कैसे उसका समाज में व्यवस्थापन बिगाड़ देती हैं इस पर हमने व्यक्तित्व वाले अध्याय में प्रकाश डाला है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि एक अव्यवस्थित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का सीखना भी बहुत मन्द गति से चलता है।

वातावरणिक तत्त्व तथा अन्य दशाएँ[2]

अध्यापकों का विचार है कि वातावरण बहुत बड़ी सीमा तक सीखने में बालकों की कार्य-शक्ति की वृद्धि करने में सहायक होता है। सन्देह नहीं कि उच्च तापमान और अधिक नमी[3] बालक की कार्य-शक्ति को कम कर देते हैं। पोफेन बर्गर[4] ने पाया कि दो ऐसे कारखानों में जिनमें दोषयुक्त वायु-संचार की विधि अपनायी गई थी, वर्ष के गर्म सप्ताहों में १८ और ११ प्रतिशत कमी सामान बनाने में थी, परन्तु अच्छी वायु-संचार वाले कारखानों में केवल ८% की कमी थी। प्रयोगात्मक कार्य यह भी प्रदर्शित करते हैं कि यदि उचित प्रेरणाएँ उपस्थित हों तो गर्म वायु अवस्था, अनुचित शोर आदि सीखने की क्रिया में बाधक नहीं होते हैं। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि जब इच्छा के साथ कोई कार्य किया जाता है तो शारीरिक कष्ट उठाए जा सकते हैं, जबकि साधारण रूप में यह कष्ट सहन नहीं होते हैं।

नशीली वस्तुएँ, शराब, कैफीन, तम्बाकू[5]

नशीली वस्तुएँ आदि के प्रभावों को मानसिक कार्य-कुशलता के ऊपर देखने

1 Frustration. 2. Atmospheric and other conditions 3. High *temperature and high humidity.* 4 *Poffen Berger* 5. *Drugs, Alcohol* Caffein, Tobacco

के लिए किये गये उन प्रयोगों से हमें कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं मिलता। कुछ अध्ययन यह संकेत करते है कि जो बालक धूम्रपान करते हैं, वे उन बालकों की अपेक्षा जो धूम्रपान नही करते, कम अङ्क प्राप्त करते हैं। साधारण तौर से धूम्रपान न करने वाले, धूम्रपान करने वालों से अधिक अच्छे विद्यार्थी होते हैं। किन्तु इस अध्ययन की खोजें हमें यह स्पष्ट रूप से बताने में असमर्थ हैं कि धूम्रपान सीखने की क्रिया को रोकता है। इसका कारण यह है कि इन अध्ययनों में अन्य दशाएँ और परिस्थितियाँ जो धूम्रपान करने वाले या धूम्रपान न करने वाले बालकों पर प्रभाव डालती हैं, उन पर विचार नही किया गया। इसके अतिरिक्त धूम्रपान करने वाले बालक आमतौर से अच्छे वातावरण में न तो पोषित होते हैं, न उनकी बुद्धि-लब्धि[1] अधिक होती है, और न पढ़ने में ही रुचि रखते हैं। यह सब बातें उन बालकों में नहीं होनी हैं जो धूम्रपान नहीं करते। इस प्रकार यदि हम मानवीय क्रियाओं पर धूम्रपान के प्रभाव का वैज्ञानिक ढंग से विचार करना चाहते हैं तो उन सब अवस्थाओं को समान करके धूम्रपान करने वाले बालकों पर और धूम्रपान न करने वाले बालकों पर परीक्षण करना चाहिए। इस समय तो हम यह भी कह सकते हैं कि धूम्रपान करने वाले बालकों के सीखने की शक्ति में कमी दूसरे तत्वों के कारण भी हो सकती है, केवल धूम्रपान के ही कारण नहीं।

प्रयोगात्मक कार्य निश्चित रूप से यह बताते हैं कि धूम्रपान आदि शारीरिक या मानसिक शक्ति का विकास नहीं करते। दूसरा सत्य जो हमें इन प्रयोगों द्वारा मिलता है वह यह है कि नशीली वस्तुओं का क्षणिक प्रभाव, जो धूम्रपान इत्यादि के आदी होते हैं, उनके वास्ते सहायक हो सकता है। सामान्य रूप से इनका लगातार बहुत समय तक प्रयोग सीखने की क्रिया के प्रतिकूल होता है। कॉफी का एक या दो प्याला, स्मरण-शक्ति में थोड़ी उन्नति कर देता है, यह ऊबन तथा ऊँघन[2] को कम करता है और हमें आगे की ओर बढ़ने को उत्तेजित करता है। किन्तु इस प्रकार की सभी वस्तुओं के लगातार सेवन का अन्तिम परिणाम मानसिक शक्ति को क्षीण ही करता है। इसलिए यदि किसी व्यक्ति को रात-भर पढ़ना है तो वह क्षणिक समय के लिए इनका सेवन करके अपनी शक्ति को बढ़ा सकता है। किन्तु सामान्य कार्यशीलता की वृद्धि के लिए उसे अपने कार्य का बुद्धिपूर्ण वर्गीकरण करना चाहिए। आराम, पौष्टिक भोज्य सामग्री[3] तथा सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा भी उसमें कार्य-कुशलता की वृद्धि की जा सकती है।

आदतें[4]

आदत से तात्पर्य है किसी कार्य को स्थायी प्रकार से करना[5]। यह चेतन स्तर से बनना आरम्भ होती है परन्तु बार-बार अभ्यास के कारण स्वतः संचालित होने

1. Intelligence Quotient 2. Boredom & Sleeping. 3. Diet. 4. Habits. 5. Habit means a confirmed way of doing a thing.

लगती है। जैसे, सिगरेट पहले जान-बूझकर पी जाती है परन्तु बार-बार इसे पीते से इसे पीने का अभ्यास हो जाता है और आदत पड जाती है। अब इसे पीने के इच्छा की कोई आवश्यकता नहीं पडती। आदतें सीखने में महत्वपूर्ण हैं। यदि ब में अच्छी आदतें हैं तो वह एक अच्छे प्रेरक के रूप में कार्य करती हैं। बुरी आ सीखने में अवरोध उत्पन्न करती हैं। आदतें स्वयं सीखी जाती हैं किन्तु एक सीखने के पश्चात् वह व्यवहार पर अपना नियन्त्रण जमा लेती हैं।

आदत हमारी प्रकृति के दो मुख्य तत्वों पर निर्भर होती है। वह (१) लचीलापन[1], तथा (२) धारण करने की शक्ति।[2] हमारा मस्तिष्क एवं स्न मण्डल रूपान्तरित[3] हो सकते हैं। इसमें परिवर्तन लाये जा सकते हैं। लचीलेप हम यही समझते हैं। यह रूपान्तर हमारे अन्दर काफी समय तक धारण रह सकते

स्नायु-संस्थान के दृष्टिकोण से आदत बनने से हमारा तात्पर्य एक मार्ग बनना है। एक स्नायु-आवेग बार-बार एक विशेष स्नायुओं की शृङ्खला में गुज है। इस तरह बार-बार गुज़रने से सन्धि-स्थल[4] की रुकावट स्थायी तौर से स्नायु-आवेग के लिए कम हो जाती है और फिर इसके पश्चात् वह स्नायु-आवेग उन स्नायु-तन्तुओं की शृङ्खला में सरलता से गुज़र जाता है। इस प्रकार आदत से स्नायु-मण्डल में नये मार्ग निर्धारित हो जाते हैं।

आदत की चार विशेषताएँ प्रतीत होती हैं .

(१) प्रतिक्रिया एक सरल रूप में होती है।

(२) एक बार जब आदत बन जाती है तो प्रतिक्रिया बहुत कुछ स्वयमे जाती है जिसमें विचार और इच्छा की कोई आवश्यकता नहीं होती।

(३) जो स्थिति एक आदत में सम्मिलित होती है वह भी सरल होती है।

(४) एक आदत के बनने के लिए उस सीखने को जिसकी आदत बननी अनेक बार दोहराया जाता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर थायन[5] महोदय कहते हैं कि "एक आ को सीखने की एक ऐसी क्रिया समझा जाता है जिसमें आपेक्षिक रूप से साधारण प्रतिक्रिया होती है जो स्वयमेव होती है और बार-बार होती है, एक क्षिक साधारण प्रकार की स्थिति में।"[6]

आदत के प्रभाव[7]

मुख्य रूप से आदत के चार प्रभाव हैं। इनका वर्णन हम नीचे दे रहे हैं

1. Plasticity 2. Retentivity. 3. Modify 4. Synapse. 5. Tl
6. "A habit my be *regarded as an instance* of learning in whi relatively simple response is *made automatically* and fairly fr ently, to a relatively simple kind of situation" 7. Effects of H.

(१) आदत कार्य को सरल बना देती है[1]—जब कार्य बार-बार दोह जाता है तो वह सरल हो जाता है और बेकार की हलचलें छोड़ दी जाती हैं। टाइप करने में आरम्भ में बहुत-सी बेकार की हलचलें होती हैं, परन्तु जै व्यक्ति टाइप सीख लेता है, वह सरलता से निश्चित ढङ्ग से 'की-बोर्ड' पर हाथ च लगता है।

(२) आदत कार्य को अधिक सही बना देती है[2]—जैसे ही ठीक आदतें जाती हैं, कार्य के करने में त्रुटियाँ कम हो जाती हैं।

(३) आदत से थकावट कम होती है[3]—अभ्यस्त कार्य सरलता और सुग से होते हैं, इसलिए उनको करने में थकावट उत्पन्न नहीं होती।

(४) आदत कार्य के लिए चेतन ध्यान की आवश्यकता को कम कर देती है आदत बिना चेतन नियन्त्रण के होती रहती है। जो व्यक्ति घूमने का आदी है, घू भी रहता है और चेतन रूप से किसी समस्या पर विचार भी करता रहता है।

अभ्यस्त कार्य से लाभ[5]

शिक्षा के दृष्टिकोण से अच्छी आदतें बनाना बड़ा लाभदायक है। यदि आ अच्छी हैं तो व्यक्ति का नैतिक चरित्र भी अच्छा हो जाता है। आदत के सामा महत्त्व के सम्बन्ध में जेम्स का विचार है कि "आदत समाज के लिए प्रबल च चक्र है तथा इसका मूल्यवान कट्टरवादी प्रतिनिधि है।"[6] आदत के द्वारा ही हम परम्पराएँ एवं रीति-रिवाज स्थायी रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे व्यक्तिगत जी की अनेक क्रियाएँ आदत के ही कारण हमारे अन्दर बिना तनाव उत्पन्न किए सम्पन्न हो जाती हैं।

अभ्यस्त कार्य से हानियाँ[7]

अभ्यस्त कार्य करने में केवल लाभ ही नहीं, वरन् अनेक हानियाँ भी आदत की ही वजह से हम प्रगति करने से रुक जाते हैं। यह हमारी आदत के कारण होता है कि हम परिवर्तन को पसन्द नहीं करते। कभी-कभी हमारी आ इतनी शक्तिशाली हो जाती हैं कि उनको छोड़ना अत्यधिक कठिन हो जाता है। शराबी शराब छोड़ने के लिए चाहे कितना ही उत्सुक दिखाई पड़े, परन्तु वह आदत को नहीं छोड़ पाता।

---

1. Habit simplifies Movement. 2. Habit makes the moveme more accurate. 3. Habit diminishes Fatigue. 4. Habit diminish the conscious attention need for Action. 5. Advantages Habitual Action.

6. "Habit is the enormous fly-wheel of Society, its mo precious conservative agent." —W. James. : *Psychology*, p. 1

7. Disadvantages of Habitual Action.

विलियम जेम्स आदत के निर्माण के लिए निम्न चार नियम प्रतिपादित करते हैं :

(i) नई आदत बनाने के लिए यथासम्भव शक्तिशाली प्रेरणा-शक्ति से कार्य प्रारम्भ करो।[1]

(ii) कभी भी नियम का अपवाद मत करो, जब तक आदत स्थायी रूप से न बन जाय।[2]

(iii) अपने निर्णय पर सबसे पहले अवसर पर कार्य करो।[3]

(iv) अपनी चेष्टा करने की शक्ति को प्रत्येक दिन स्वतन्त्र रूप से अभ्यास करके जीवित रखो।[4]

एक शिक्षक को चेष्टा करनी चाहिए कि बालकों में अच्छी आदतें बनें। यह आदतें विद्यार्थियों को जीवन के कार्य का सरल ढंग से करने में सहायक होनी चाहिए।

आदत-निर्माण के पद[5]

शिक्षक निम्न पदों का अनुसरण करके आदतें निर्माण करा सकता है :

(१) उद्देश्य का प्रत्यक्षीकरण—आदत के निर्माण में पहला पद उद्देश्य का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण है। शिक्षक को बार-बार विद्यालय की क्रियाओं के तुरन्तकालीन तथा बुनियादी उद्देश्यों की ओर ध्यान दिलाना चाहिए। इस प्रकार बालक यह जान जायेंगे कि वह आदत-निर्माण से क्या प्राप्त करने जा रहे हैं।

(२) सही प्रारम्भ[6]—यदि प्रारम्भ सही है तो आदत बनाने की चेष्टा बनी रहती है। शिक्षक को चाहिए कि नई क्रियाओं और नये प्रोजेक्ट को जोश के साथ ले। प्रत्येक शिक्षण की इकाई को इस प्रकार प्रवेश कराये कि बालक उसमें रुचि लें। उदाहरण के लिए, यदि शिक्षक सफाई की आदत पड़वाना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह तुरन्त इसका विद्यार्थियों से अभ्यास कराये। सफाई के अभ्यास की ओर जो पहला पद होगा वही आगे के विकास का मार्ग निर्धारित करेगा।

(३) कार्य में स्थिरता[7]—सही प्रारम्भ के बाद रुक नहीं जाना चाहिए। उस कार्य को बार-बार दोहराना चाहिए। आदत-निर्माण दो मुख्य बातों पर निर्भर है—अभिप्रेरणा एवं दोहराना। इसलिए नई आदत बनाने के निश्चय का अनुसरण दोहराने से करना चाहिए। सफाई का अभ्यास प्रतिदिन बार-बार करना चाहिए। इस अभ्यास में कोई अपवाद नहीं होना चाहिए।

---

1. Begin a new habit as strong and decided an initiative as possible. 2. Never suffer an exception to occur till the new habit is securely ryoted in your life. 3. Seize the first opportunity to act on your resolution. 4. Keep the faculty of effort alive in you by a little gratuitous (free) exercise every day. 5. Steps in the habit formation. 6. Right Start. 7. Consistency of action.

(४) एक सुनिश्चित कार्यक्रम का अपनाना[1]—पुरानी आदत
स्थान पर यह चेष्टा करनी चाहिए कि उसका स्थानापन एक नई आदत
शिक्षक को अस्त्यात्मक व्यवहार को प्रोत्साहित करना चाहिए, न कि नास्
बालकों को इस बात की शर्म महसूस कराने के स्थान पर कि यह आदत
उनको नई आदत के लिए प्रोत्साहन देना अच्छा है।

(५) कोई अपवाद नहीं[2]—आदत-निर्माण का अन्तिम पद यह है
अपवाद आदत के अभ्यास में नहीं होना चाहिए। दोहराना, स्थिरता तथा
नहीं, साथ-साथ चलने चाहिए। एक अकेला अपवाद सारे प्रयास पर पानी
है। यदि आप सिगरेट छोड़ना चाहते हैं और सोचते हैं कि केवल एक ब
लूँ तो यह एक बार ही आपके निश्चय को समाप्त कर देगा।

बुरी आदतों को तोड़ने के लिए भी चार नियम दिये जा सकते हैं,

(१) अपनी प्रतिज्ञा को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित करना चाहिए
आप यह प्रतिज्ञा बना लें कि इस आदत को तोड़ना है, वैसे ही उस पर का
कर देना चाहिए। आपको इस बात का इन्तजार नहीं करना चाहिए कि ज
अवसर आयेगा तभी उस आदत को तोड़ेंगे। आदत तोड़ने का कार्य दृढ़
आरम्भ होना चाहिए और आरम्भ में कोई अपवाद नहीं होना चाहिए।

(२) पुरानी आदत के स्थान पर नई आदत बनानी चाहिए—केवल
आदत को दबा देना उचित नहीं है, वरन् उसके स्थान पर एक नई अच्
बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

(३) अपने चारों ओर का वातावरण इस प्रकार से बना लेना चा
पुरानी आदत की पुनरावृत्ति करने के लिए कम से कम प्रलोभन मिलें।

(४) अपने स्नायु-संस्थान को अपना मित्र बना लें, न कि शत्रु[3]
आदत की पुनरावृत्ति न होने दें और नई आदत को बार-बार दोहराएँ, जिस
स्नायु-आवेग के मार्ग कमजोर पड़ जाएँ और नये दृढ़।

सारांश

सीखना एक सरल क्रिया नहीं है। सीखने को निबद्ध करने वाले बहुत
होते हैं। इनको मुख्य रूप से हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१
वैज्ञानिक तत्त्व, (२) शारीरिक तत्त्व, तथा (३) पर्यावरण सम्बन्धी तत्त्व। म
निक तत्त्वों को हम सीखने में प्रेरणा कहते हैं।

यह तत्त्व सीखने की गति को बढ़ा देते हैं। कुछ ऐसे शारीरिक और म
तत्त्व होते हैं जो सीखने की गति को धीमा कर देते हैं। इनमें थकान, दुश्चि

---

1. Adoption of a positive programme. 2. No Exception
3. "Make your nervous system your ally (friend), inste
your enemy."—*James.*

कुंठा महत्त्वपूर्ण हैं। थकान के तीन प्रकार हैं : (अ) माँसपेशिक, (ब) संवेदनात्मक, और (स) मानसिक। थकान के कारण वाह्य तथा आन्तरिक, दोनों हो सकते हैं। मानसिक थकान सरलता से उत्पन्न नहीं हो सकती है। बहुधा ऊबने को ही हम मानसिक थकान के दृष्टिकोण से देखने लगते हैं। मानसिक थकान इस बात पर निर्भर नहीं रहती कि सीखने में दिन का समय क्या है। शाम के समय भी हम उसी लगन से कोई बात सीख सकते हैं, जितनी कि सुबह के समय। दुश्चिता सीखने में अवरोध तब उत्पन्न करती है जब यह अत्यधिक होती है। मध्य मात्रा में दुश्चिता सीखने को प्रोत्साहित करती है।

सीखने में वातावरण बहुत सीमा तक बालक में कार्य-शक्ति उत्पन्न करने में सहायक होता है। उच्च तापमान और अधिक नमी बालक की कार्य-शक्ति को कम कर देते हैं, परन्तु यदि प्रेरणाएँ दृढ़ हैं तो वातावरण की दूषित दशाओं पर सीखने में विजय प्राप्त की जा सकती है।

यह धारणा निर्मूल है कि नशीली वस्तुएँ सीखने की योग्यता को बढ़ा देती हैं। वह कुछ काल के लिए उत्तेजना देने में तो सफल हो जाती हैं, परन्तु सीखने की योग्यता स्थायी रूप से उनके द्वारा नहीं बढ़ सकती।

आदत चेतन स्तर से बनना आरम्भ होती है, परन्तु बार-बार अभ्यास के कारण स्वत संचालित होने लगती है।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. इस तथ्य पर अपने विचार प्रकट कीजिए—"बहुत-से सीखने वालों के लिए सीखने की सीमाएँ शारीरिक खण्डों द्वारा निर्धारित नहीं की जा सकतीं। सीमाएँ ढङ्ग, सामग्री और कार्य करने की दशाओं द्वारा निर्धारित की जाती हैं।"

२ थकान और वातावरण की अवस्थाएं बालक के सीखने पर किस प्रकार प्रभाव डालती हैं ?

३. दुश्चिता सीखने में क्यों महत्त्वपूर्ण है ? दुश्चिता पर किये गये परीक्षणों के परिणाम एक शिक्षक का कार्य किस प्रकार जटिल बना देते हैं ?

४. कुंठा, दुश्चिता और थकान को क्या हम सीखने के अवरोधक तत्त्वों की श्रेणी में रख सकते हैं ? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए इन तत्त्वों पर किये गये कुछ अध्ययनों का वर्णन कीजिए।

५. आदतें सीखने में रुकावट उत्पन्न करती हैं ? क्या आप इस विचार से सहमत हैं ? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

६. सत्य, असत्य कथनों की छाँट कीजिए :

(अ) कुंठा व्यक्ति के अपने लालसा-धरातल पर निर्भर होती

(ब) मानसिक थकान का दूर करना शारीरिक थकान को दू
कहीं अधिक सरल है।

(स) मामूली दुश्चिता भी समाज में विघटन ले आती है।

(द) आदतें तोड़ना उसी समय संभव है जब व्यक्ति दृढ़
कार्य करे।

(य) आदतें यदि न बनें तो हमारे साधारण कार्य भी जटिल

१४ सीखने के नियम, सिद्धान्त एवं प्रकार
LAWS, THEORIES AND TYPES OF LEARNING

इस अध्याय में हमारा लक्ष्य सीखने के सिद्धान्त तथा नियमों पर प्रकाश डालना है। आमतौर से शिक्षा-मनोविज्ञान की पुस्तकों के लेखक सीखने के सिद्धान्त और नियमों पर बहुत-से कारणों से बुद्धिपूर्ण विवादों को करना पसन्द नहीं करते। इनमें से मुख्य कारण हैं—(i) यह सिद्धान्त पशुओं पर किये गए प्रयोगों के द्वारा विकसित होते हैं और समझते हैं कि मानवीय सीखना पशुओं से सीखने के केवल मात्रा में अन्तर रखता है। अत: यह सिद्धान्त अपूर्ण होते हैं। (ii) जिन समस्याओं के सम्बन्ध में खोज सिद्धान्तों की स्थापना करने के लिए की जाती है, वे बनावटी प्रतीत होती हैं। (iii) विभिन्न मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय इन सिद्धान्तों इत्यादि को अलग-अलग अपने ढङ्ग से स्पष्ट करते हैं, उनमें मतैक्य नहीं है। (iv) यह विश्वास कि सीखने की अवस्था विशिष्ट प्रकार की होती है, सामान्य नहीं होती। अत: हम ऐसे नियमों को नहीं बना सकते हैं जो सर्वव्यापी कहे जा सकें। फिर भी हमारा विचार है कि शिक्षा-मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए यह न्यायसंगत न होगा, यदि इन नियमों और सिद्धान्तों के मुख्य लक्षणों पर विचार न किया जाये, साथ ही साथ उन शैक्षिक संकेतों की ओर भी ध्यान न दिया जाये जो इन सिद्धान्तों द्वारा मिलते हैं। सीखने के नियम और सिद्धान्त सीखने की क्रिया के लिए मुख्य-मुख्य दशाओं को बताने का प्रयत्न करते हैं।

सीखने के सिद्धान्त साहचर्य के नियमों[1] से प्रारम्भ होते हैं जो बहुत प्राचीन हैं, और प्रबलन[2] के सिद्धान्त तक आते हैं जो आधुनिक है। हम यहाँ इन सब सिद्धान्तों पर विचार करेंगे।

साहचर्य का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव-विचारों का लेखा करने

1. Laws of Association. 2. Reinforcement

की योग्यता का विकास। इस सिद्धान्त के अनुसार एक प्रत्यय दूसरे का स्मरण कराता है। यह स्मरण सरल हो जाता है अर्थात् विचारों में समानता, विपरीतता तथा सहचारिता होती है। इस सिद्धान्त पर हमने आगे 'स्मृति' के अध्याय में भी प्रकाश डाला है।

विचारों में साहचर्य होता है। किन्तु साहचर्य के नियम जो इस सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित होते हैं, इतने सरल हैं कि बहुत-सी पशु और बालक के सीखने की प्रक्रिया की गतिशीलता की व्याख्या नहीं कर सकते हैं।

उत्तेजक-प्रतिक्रिया सिद्धान्त[1]—सम्बन्धवाद[2]

थॉर्नडाइक एवं वुडवर्थ महोदय का विचार है कि सब मानसिक घटना उत्तेजकों के प्रति प्रतिक्रिया है। किसी क्रिया में एक उत्तेजक (S) होता है जो प्राणी पर प्रभाव डालता है और प्रतिक्रिया (R) हो जाती है। एक विशिष्ट उत्तेजक एक प्रतिक्रिया से सम्बन्धित हो जाता है और S—R बन्धन बन जाता है। जब भविष्य में उत्तेजक (S) दोहराया जाता है तो प्रतिक्रिया (R) हो जाती है। इस प्रकार के बन्धन के कारण ही इस सिद्धान्त को 'सम्बन्धवाद' भी कहते हैं। यह बन्धन गतिगामी[3], विचारात्मक[4], प्रत्यक्षात्मक[5] अथवा संवेगात्मक[6] हो सकते हैं। यह बन्धन के संस्थान में संगठित हो सकते हैं। ज्ञान एक ऐसा संस्थान है और सीखना एक ऐसी क्रिया है, जिससे बन्धन निर्मित होते हैं, मजबूत होते हैं और संस्थान में संगठित होते हैं।

थार्नडाइक ने S—R बन्धनों का अध्ययन किया और सीखने के कुछ नियमों का प्रतिपादन किया।

थॉर्नडाइक के सीखने के नियम[7]

थॉर्नडाइक को ही प्रथम श्रेय है जो उसने वाह्य[8] रूप से नियमों की रचना की, जिन्हें हम अब 'सीखने के मुख्य नियम' कहते हैं। सीखने के इन नियमों का उत्पादन प्रयोगात्मक विधि द्वारा पशु-मनोविज्ञान से हुआ है। जिन नियमों की रचना पहले की गई थी, वे तीन थे—(क) तत्परता-नियम, (ख) अभ्यास-नियम, और (ग) परिणाम-नियम।[9] किन्तु बाद में मानव पर प्रयोग तथा प्रतिपादित नियमों की आलोचना के कारण थॉर्नडाइक ने एक मनोवैज्ञानिक तत्त्व इसी सम्बन्ध में और बढ़ाने का प्रयत्न किया।

(क) तत्परता-नियम

इस नियम का तात्पर्य यह है कि जब प्राणी किसी कार्य को करने के लिए

---

1. Stimulus-Response Theory. 2. Connectionism. 3. Motor. 4. Ideational. 5. Perceptual. 6. Emotional. 7. Thorndike's Laws of ... ng. 8. Explicit. 9. (a) The Law of Readiness (b) The Law ... Exercise. (c) The La

तैयार होता है तो वह प्रक्रिया यदि वह कार्य करता है तो आनन्द देती है, यदि कार्य नहीं करता तो खीझ उत्पन्न करती है और जब उसमे सीखने की इच्छा या सीखने को तैयार नहीं होता और उसे बाध्य किया जाता है तब वह झुंझला जाता है।[1] एक बालक जो किसी कार्य को करने का इच्छुक है, यदि उसे वह कार्य करने से मना किया जाता है तो वह क्रोधित हो जाता है। जब उसे हम कार्य करने के लिए कह देते हैं तब वह प्रसन्न हो जाता है, और जब उसे कार्य करने को बाध्य कर देते हैं तो पुन. उसे असन्तोष मिलता है।

सामान्यतया सीखने के 'तत्परता-नियम' को हम यह कहकर व्यक्त कर सकते हैं कि जब एक व्यक्ति अपने को किसी कार्य या सीखने के लिए तैयार समझता है तो वह बहुत ही शीघ्र कार्य करता है या सीख लेता है और उसे अधिक मात्रा मे सन्तोष भी मिलता है, उस हालत की अपेक्षा जबकि वह सीखने को तैयार नहीं। तत्परता का पर्यायवाची[2] शब्द 'मानसिक मेल'[3] है। एक बालक उस समय जब उसकी प्रवृत्ति किसी कार्य को करने की है, मानसिक तत्परता रखता है।

किसी समस्या के सम्बन्ध मे तत्परता या मानसिक मेल उसको हल करने की इच्छा के समान है। अध्यापक का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह अपने बालको मे पाठ याद करने की तत्परता का विकास करे। एक अध्यापक जो कार्य-कुशल है, बालको को हल करने के लिए आनन्द देने वाले प्रश्न देता है। उसके प्रश्न बालको के अन्दर जिज्ञासा[4] की भावना उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार वह उनके अन्दर कार्य के प्रति अनुकूल मानसिक मेल उत्पन्न करता है।

मानसिक तत्परता, मेल या बालकों मे रुचि बहुत ही बड़ी मात्रा मे योजना-विधि[5] और शिक्षण की दूसरी नवीन विधियों द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। साधारण रूप से इन विधियो मे शिक्षक कोई विषय अलग से पढ़ाने को नही लेता, किन्तु सीखने के लिए ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देता है कि वह जिस विषय को पढ़ाना चाहता है, उसे योजना के पूर्ण होने पर बालक स्वयं सीख जाते हैं। उदाहरण के लिए, ताजमहल पर योजना इस प्रकार आरम्भ होगी कि—उस यादगार को देखा जाये। सर्वप्रथम बालक यह सीखेंगे कि एक यात्रा की तैयारी कैसे होती है और ताजमहल से सम्बन्धित इतिहास को भी वे सीखेंगे। सुन्दर वस्तु की सराहना करने की भावना भी उनमे उत्पन्न होगी और महल बनाने की विद्या के बारे मे ज्ञानोपार्जन करेंगे। यहाँ पर मुख्य विचार यह है कि जब हम मानसिक मेल को एक विशेष समस्या की

---

1. When a bond is ready to act, to act gives satisfaction, and not to act gives annoyance. When a bond which is not ready to act is made to act, annoyance is caused.

2. Synonymous. 3. Mental set. 4. Curiosity. 5. Project Method.

हम अभ्यास नही करते, वह बिना सीखा हुआ ही रहता है। साधारणतया सीखना अभ्यास की मात्रा के आनुपातिक योग मे नही होता है। कुछ दृष्टान्तों मे, जैसे गाने के अभ्यास मे या कविता को याद करने मे, कम अभ्यास अधिक रुचि के साथ अधिक सीखने मे सहायक होता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि दोहराना ही केवल सीखने में कुशाग्रता नही उत्पन्न करता। दूसरे तत्त्व भी, मुख्य रूप से संवेगात्मक तत्त्व, सीखने पर बहुत प्रभाव डालते हैं। अतः अभ्यास का नियम मात्रा के रूप या यान्त्रिक रूप[1] मे लागू नही किया जा सकता।

जब दोहराने के साथ रुचि और प्रयोजन सम्बन्धित होते है, तब यह अधिक प्रभावोत्पादक होता है। दोहराने के साथ रुचि उत्तेजक और अर्थ-सहितता होनी चाहिए जिससे तत्त्वो तथा विचारो को बढाया जा सके।[2]

(ग) परिणाम अथवा प्रभाव का नियम[3]

इस नियम मे यह बताया गया है कि जब सुखप्रद या सन्तोषप्रद परिणाम किसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होते हैं तो हम वह प्रतिक्रिया दोहराते हैं। इसी प्रकार जब कोई क्रोध उत्पन्न करने वाला या कष्टदायी परिणाम होता है, तब हम उसे नही दोहराते। "सन्तोषप्रद परिणाम शक्तिवर्द्धक[4] होते हैं और कष्टकारक स्थिति तथा प्रतिक्रिया के बन्धन को निर्बल बना देते हैं।"[5] थॉर्नडाइक के अनुसार यह नियम सीखने और शिक्षण का आधारभूत[6] नियम है।

इस सिद्धान्त में संवेगात्मक भावना या संवेगात्मक स्थिति सीखने के अनुभव मे सम्मिलित रहती है। जब बालक अभ्यास करते हुए किसी प्रश्न को हल कर लेता है, तब वह प्रसन्न होता है, और परिणामतः स्थिति और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध शक्ति-वर्द्धक हो जाते हैं। यदि उत्तर त्रुटिपूर्ण होता है तो इससे सम्बन्धित क्रोध की भावना जाग्रत हो जाती है और वह प्रतिक्रिया छोड़ दी जाती है। हाँ, यह हो सकता है कि यह अनुभव अत्यधिक कष्टदायी या पीड़ाजनक हो, उस समय यह घटना या त्रुटि हमारी स्मृति मे स्थायी हो जाती है। अधिकतर सही प्रत्युत्तर के सम्बन्ध दोहराये जाते हैं और त्रुटिपूर्ण छोड दिये जाते हैं और उनको हम अलग कर देते हैं। सन्तोष की भावना ही एक प्रतिक्रिया को दृढ़ करती है, जबकि असन्तोष की भावना इसे नष्ट कर देती है।

सफलता और विफलता पाठक को एक विस्तृत सीमा तक नियन्त्रित करती है। किसी भी कार्य की सफलता पाठक के सीखने की क्रिया को नियमित तथा नियन्त्रित

---

1. Quantitatively or mechanically. 2. With repetition there must be interest, motive and meaningfulness to enhance the acquisition of facts and ideas. 3 The law of Effect. 4. Strengthen. 5. Satisfying results strengthen, and discomfort weakens the bond between situation and response. 6. Fundamental

करती है; किन्तु विफलता संवेगात्मक स्थिति को उत्पन्न करती है। यह निश्चित कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बालक के लिए ऐसी सीखने की स्थिति उत्पन्न करे, जिससे सफलता मिले और उसमें सन्तोष की भावना भी बढ़े। यदि बालक अपनी निरन्तर बराबर विफलता की भावना प्राप्त करेगा तो वह एक विस्तृत सीमा में असफलता की भावना से प्रभावित होगा जिससे सीखने की प्रगति रुक जायेगी।

तत्परता-नियम, अभ्यास-नियम और परिणाम-नियम अलग-अलग नहीं हैं। यह एक-दूसरे पर आधारित हैं और एक-दूसरे से आन्तरिक रूप से सम्बन्धित भी हैं। तत्परता और संवेगात्मक प्रभाव अभ्यास पर प्रभाव डालते हैं और परिणाम, अभ्यास के संवेगात्मक प्रभाव दूसरी स्थिति में बालक की तत्परता को निश्चित करते हैं। उस बालक की अपेक्षा जो अपने पाठ को याद करने में असफल रहता है, वह बालक जो पाठ याद करने में सफलता प्राप्त करता है, अपने कार्य को पूरा करने के अनुकूल मानसिक तत्परता रखता है।

सीखने के गौण नियम[1]

सीखने के उपर्युक्त तीन मुख्य नियमों के अतिरिक्त पाँच गौण नियम भी हैं जो मुख्य नियमों को विस्तार देते हैं। वे इस प्रकार हैं :

(a) बहु-प्रतिक्रियाओं का नियम, (b) मानसिक विन्यास का नि[यम], (c) अपूर्ण क्रिया का नियम, (d) सादृश्यीकरण का नियम, और (e) साहचर्य-परि[वर्तन] का नियम (अनुबन्धन)।[2]

(a) बहु-प्रतिक्रियाओं का नियम—यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि अनेक प्रयासों के पश्चात् प्राणी एक सन्तोषजनक प्रतिक्रिया पर आ पाता है। इस सिद्धान्त का शिक्षा में महत्त्व यह है कि विद्यार्थियों को विस्तृत अनुभव [दिये] जायें। विद्यार्थियों को स्वयं प्रयोग करने और अपनी त्रुटियों से सीखने के अवसर [मिलने] चाहिए।

(b) मानसिक विन्यास का नियम—यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि बाह्य स्थिति की ओर प्रतिक्रियाएँ सीखने वाले की दशा पर निर्भर होती हैं। यहाँ मानसिक विन्यास से तात्पर्य सीखने वाले की अभिवृद्धि से है। यदि एक बालक अध्ययन के लिए तैयार नहीं है तो वह पढ़ने की ओर ध्यान नहीं लगायेगा।

(c) अपूर्ण क्रिया का नियम—एक प्रतिक्रिया सम्पूर्ण स्थिति के प्रति नहीं होती। यह तो सम्पूर्ण के कुछ पक्षों अथवा भागों के प्रति होती है। जब केवल एक स्थिति का एक भाग ही दोहराया जाता है तो प्रतिक्रिया हो जाती है। उदाहरण के लिए, एक बालक माता के प्रति प्रतिक्रिया करता है चाहे वह रात्रि की पोशा[क]

1. Secondary Laws of Learning. 2. (a) Multiple Response t... (b) Attitude, Set or Disposition, (c) La... ...ilation; (e) Law of Associa...

में हो चाहे दिन के कपडो मे। यहाँ माता पूर्ण स्थिति का एक भाग है। पूर्ण स्थिति उसके कपडे इत्यादि सबको सम्मलित करती है।

अपूर्ण स्थिति मे एक प्रतिक्रिया सीखने मे मितव्ययिता लाती है। यदि एक बालक सीखता है कि 3×5=15 तो जब किसी स्थिति मे वह 3×5 पायेगा तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया करेगा कि यह 15 के बराबर है।

(d) सदृशीकरण का नियम—जब एक व्यक्ति एक नई स्थिति का सामना करता है जिसकी उसके पास कोई प्राकृतिक अथवा सीखी हुई प्रतिक्रिया नही होती है तो जो प्रतिक्रिया वह करेगा वह उसी प्रकार की स्थिति मे पहले कभी की गई प्रतिक्रिया की भाँति होगी। इससे तात्पर्य यह है कि एक नई स्थिति उसी प्रकार की प्रतिक्रिया को उभारती है जो उसी प्रकार की स्थिति मे पहले की गई।

शिक्षा मे यह सिद्धान्त इस प्रथितोक्ति[1] को बल देता है कि "ज्ञात से अज्ञात"[2] की ओर शिक्षण देना चाहिए। शिक्षक को बालक को विस्तृत अनुभव देने चाहिए ताकि वह नई स्थिति मे सही प्रत्युत्तर अपना सके।

(e) साहचर्य-परिवर्तन का नियम—इससे तात्पर्य यह है कि कोई भी प्रतिक्रिया जो एक सीखने वाले के करने योग्य है, किसी भी ऐसे उत्तेजक से सम्बन्धित की जा सकती है जिसके प्रति वह सवेदनशील है। वास्तव मे यह नियम अनुबन्धन के सिद्धान्त का औपचारिक कथन है। यह नियम इस बात की व्याख्या करता है कि क्यो अक्षर t-a-b-l-e एक निश्चित वस्तु का सकेत देते हैं। व्यक्ति यह सीखता है कि जब अक्षरो को इस क्रम मे रखा जाता है तो वह एक वस्तु का सकेत देते हैं। जब भी वह table शब्द से परिचित होता है, तुरन्त उसके मस्तिष्क मे इस शब्द द्वारा साकेतिक वस्तु आ जाती है।

थॉर्नडाइक का सीखने का सिद्धान्तवाद और उसकी आलोचना[3]

इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना बन्धन-रचना मे होता है।[4] इसका अभिप्राय यह है कि सीखने के द्वारा स्थिति (S's) और प्रतिक्रिया (R's) का बन्धन शक्तिशाली हो जाता है। सीखना एक अगयोगात्मक[5] क्रिया नही है। जब सीखना आरम्भ होता है और दूसरी दशाएँ समान रहती हैं तो यह अधिक सम्भावना रहती है कि एक निश्चित स्थिति, एक निश्चित प्रतिक्रिया को उत्पन्न करे। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि S और R (स्थिति और प्रतिक्रिया) का सम्बन्ध सन्तोष के द्वारा शक्तिवर्द्धक होता है और असन्तोष के द्वारा शक्तिहीन।

थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित नियम शारीरिक सिद्धान्त[6] पर आधारित है। यह विचार किया जाता है कि सीखना व्यक्ति के नाडी-व्यवहार[7] के भागों का

---

1. Maxim 2. From known to unknown. 3 Throndike's Theory or Learning and Its Criticism 4. Learning consist of bond formation. 5. Haphazard. 6. Physiological Theory. 7. Neural Conduction.

भोजन न देकर बुद्ध् बनाया गया, वह सतर्क हो गया। उसने अपनी प्रतिक्रिया को छिपा लिया। अब यह कहना कठिन है कि इसमें से कौनसा मत उचित है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कृत्रिम उत्तेजक के द्वारा नियन्त्रित सीखना इतना सरल नहीं या इतना यान्त्रिक नहीं, जैसा कि सोचा जाता है।

ऊपर दिया हुआ पवलव के प्रयोग का एक साधारण विवरण है। इस प्रयोग के अनेक परिवर्तन[1] हो चुके हैं जो गूढ़ हैं, और यह प्रयोग वस्तु-मनोविज्ञान[2] का मुख्याधार हो गया है। अनुबंधन का सिद्धान्त हमारे बहुत-से भय, घृणा[3] और ऐसी प्रतिक्रियाओं की जो व्यक्ति, जगह और वस्तुओं आदि के सम्बन्ध में होती हैं और जो साधारण रूप से हमारी समझ में नहीं आती, व्याख्या करने में उपयोग किया जाता है। विभिन्न कृत्रिम उत्तेजकों के साथ भय इत्यादि से सम्बद्धता बालकपन में ही हो जाती है और बड़े हो जाने पर चाहे हमारे भय इत्यादि के कारण हमें अज्ञात ही रहें, परन्तु कृत्रिम उत्तेजकों का प्रभाव शेष रह जाता है। अतएव यह कहा जाता है कि कुछ भय, उदाहरण के लिए बालक का अंधेरे या किसी जानवर का भय इत्यादि, प्राकृतिक नहीं होता, यह भय सम्बद्धित होता है। यह सिद्धान्त यह भी बताता है कि मानवीय व्यवहार इतना अतार्किक[4] क्यों होता है। यह हमारे अन्ध-विश्वासों के कारणों पर भी प्रकाश डालता है। ऐसे बहुत-से व्यक्ति हैं जो, यदि बिल्ली उनका रास्ता काट जाती है तो, उस मार्ग से नहीं जायेंगे जिधर से बिल्ली ने उनका रास्ता काटा है। वे यह विश्वास करेंगे और आशंका करते हैं कि उनके ऊपर कोई संकट आ पड़ेगा, यदि वे उस रास्ते चले जायेंगे। उनके अन्दर यह भावना सम्बद्धता के द्वारा ही बनी है। बिल्ली का रास्ता काट जाना और दुर्भाग्य का पड़ जाना—किसी घटना के कारण सम्बद्धित हो सकता है और व्यक्ति उसकी सम्बद्धता के आधार पर अन्धविश्वास बना लेता है या इस अन्धविश्वास की सम्बद्धता दूसरे व्यक्तियों द्वारा भय के प्रदर्शन के कारण भी हो सकती है। इस प्रकार त्रुटिपूर्ण सम्बद्धता से ही अन्धविश्वास विकसित होते हैं।

अनुबंधन से सीखने में निहित खतरा[5]—अनुबंधन से सीखना खतरनाक हो सकता है, जिसके निम्नलिखित कारण हैं :

(१) उत्पन्न होते ही बालक इच्छित और अनिच्छित[6] अनुबंधन में बँधना जाता है। उसकी भूख, आराम और प्रेम की इच्छा को इस प्रकार सम्बद्धित किया जाता है कि वह उन सब बालकों का आज्ञा-पालन करने लगता है जो उसके चारों ओर हैं। अकुशल तथा अन्यायसंगत वयस्क बालक की प्राकृतिक प्रतिक्रियाओं को

1. Variation. 2. Objective Psychology. 3. Repugnances. 4. Non-rational 5. Danger involved in the learning by conditioning. 6 Intentional & Unintentional

किसी भी कृत्रिम उत्तेजक से सम्बन्धित कर सकते हैं। वह किसी भी वस्तु को किसी और वस्तु का सूचक बना सकते हैं। इस प्रकार जो चाहो सो बालक को सिखा दो—उसे मनुष्यों, शब्दों और परिस्थितियों को प्यार करना, घृणा करना या भय करना। चाहे डरपोक या बहादुर, नटखट या अच्छा, सुन्दर या द्रोही, प्रसन्न या निर्धन बनाया जा सकता है।

(२) जब बालक ऐसे अनुभव प्राप्त कर सकता है जो जोड़े में या समूह में उसे एक साथ मिलते हैं तो बिना ऐच्छिक[1] शिक्षण के भी वह उन अनुभवों के मध्य सम्बद्धता स्थापित कर लेता है। जैसे, जब बालक को उसकी दादी प्यार करती है और यदि उस समय छत से कुछ गिरकर कोई दुर्घटना हो जाती है तो परिणामतः वह वर्षों तक अपनी दादी से डरता रहता है। बालक बिजली की कड़क से डरने लगता है; क्योंकि जब बिजली चमकती है तो उसकी माता डर प्रदर्शित करती है, फलतः वह उम्र भर बिजली से डरता रहता है। एक असफल प्रेमी के लिए वह शहर जिसमें उसका प्रेम असफल हुआ हो, घृणा की भावना पैदा कर देता है।

इस प्रकार के अनुभवों के अनुबंधन से अधिक खतरनाक यह होता है कि कोई उत्तेजक जिससे हम पूर्णतः परिचित नहीं हैं, किसी भी प्रकार हमारे नाड़ी-तन्त्र से सम्बन्धित हो गया है और उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हम ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करने लगते हैं जो पूर्णतया किसी भी प्रकार उस उत्तेजक की प्रतिक्रिया से सम्बन्धित नहीं है।

एक प्रयोग में यह पाया जाता है कि नेत्रों (S_2) के साथ-साथ चमकदार प्रकाश के बार-बार डालने से और श्रवण की जाने वाली से भी नीची आवाज करने से जिसको न सुना जा सके (S_1) विषयी[2] की पलकों का सिमटना[3] जो तेज प्रकाश की प्रतिक्रिया-स्वरूप होता है, न सुनी जाने वाली ध्वनि से सम्बद्ध कर दिया गया।[4]

S_1 (उत्तेजक)—श्रवण की नीचे की आवाज, जो न सुनी जा सके......

S_2 (उत्तेजक)—नेत्रों पर चमकदार रोशनी→R_2 (प्रतिक्रिया) परीक्ष्य की पलकों का सिमटना।

S_1+S_2........R_2

अन्त में S_1........R_2

इससे स्पष्ट होता है कि न सुनी जाने वाली आवाज भी उचित नियन्त्रण या सम्बन्ध के कारण परीक्ष्य में आँख के पलकों की सिमटन उत्पन्न कर सकती है।

इस प्रयोग के अनुसार, यह समझना कठिन नहीं है कि किस प्रकार यह

---

1. Deliberate. 2 Experimenter. 3 Contraction
4. "The pupillary response conditioned to subliminal auditory stimuli." —L. T. Baker : *Psychological Monogram.*

रर्थक स्थिति को भी तीव्र उत्तेजक के कारण प्रभावशाली बनाया जा सकता है। हुत-सी स्त्रियों मे अन्तर्ज्ञान कुछ विशेष प्रकार के भाव या कार्य को जन्म दे देता है। ह भाव या कार्य जो प्रतिक्रिया के रूप मे होते हैं, ऐसे उत्तेजकों पर निर्भर रहते हैं ो इतने शक्तिहीन होते हैं कि उनका प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जा सकता।

(३) यह भी सत्य है कि भावनाएँ, शब्द, कार्य और मांसपेशियों का सिमटना क गुच्छे[1] के रूप में साथ-साथ हो सकते हैं और एक-दूसरे से इतने मिले हुए हो सकते हैं कि किसी एक का प्रकट होना किसी दूसरे को उत्पन्न कर सकता है या सभी त्पन्न हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए, एक बालक के पिता कठोर हैं और उसे हमेशा मूर्ख और मन्द बुद्धि पुकारते और शारीरिक दण्ड देते हैं तो ऐसे बालक के अन्दर एक ऐसी प्रवृत्ति विकसित हो जायेगी कि जैसे ही उसकी आलोचना की जायेगी, उसे इस आलोचना से वास्तविक दण्ड के कष्ट का अनुभव होगा। इस प्रकार आलोचना उसके अन्दर भय और घृणा उत्पन्न कर देगी और उसके हृदय, फेफड़े, जिगर और ग्रन्थियो आदि में भी वैसे परिवर्तन हो जायेंगे जो उस समय होते हैं जब कोई शक्तिशाली संवेग सक्रिय होता है। कुछ समय बाद पिता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसको दण्ड दे, क्योंकि बालक के लिए आलोचना ही पर्याप्त होगी। अब किशोरावस्था या बाद के जीवन मे जब वह किसी व्यक्ति के द्वारा आलोचित किया जायेगा, उसके अन्दर वैसी ही भय और घृणा जाग्रत हो जायेगी जैसी कि जब उसके पिता उसकी आलोचना करते थे, तब जाग्रत होती थी। मुख्य रूप से ऐसा समय वह होगा जब वह आलोचक उसके पिता से मिलता हुआ हो। यही कारण है कि अक्सर अध्यापक कुछ बालकों में, जब वह उनकी आलोचना करते हैं, क्रोध तथा शत्रुता की भावना देखते हैं।

अनुबन्धन द्वारा सीखने की उपयोगिता[2]—ऊपर हमने अनुबंधन द्वारा सीखने के कुछ भयानक परिणामों का वर्णन किया है। किन्तु उनके कारण इनकी उपयोगिता कम नहीं होती। लगभग हमारी सभी आदतें, जिनमे भाषा भी सम्मिलित है, हमारी सम्बद्धता का ही परिणाम हैं। हमारा संवेगात्मक जीवन भी सम्बद्धता के द्वारा निर्मित किया जाता है।

जब अनुबंधन की क्रिया सफल हो जाती है तब कोई विशिष्ट प्रतिक्रिया किसी विशिष्ट उत्तेजक की ओर संकेत करती है, व्यवहार स्वचालित होता है और तब हम यह कह सकते हैं कि सीखने वाले की एक विशेष आदत बन गई, जिसमे वह एक विशेष प्रकार से प्रतिक्रिया करता है। इसी कारण कुछ पाठशालाओं में ऐसे विषय जैसे—पढ़ना, लिखना, शब्द-विन्यास, भाषा की उक्तियाँ आदि द्वारा एक विशेष

---

1. Cluster. 2. Usefulness of the Learning by Conditioning.

के चारों ओर के वातावरण या पर्यावरण का ही उत्तेजक के समान या उससे भी अधिक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, वह कुत्ता जिसकी प्रतिक्रिया को घंटी से सम्बद्ध कर दिया गया, जिसमें घंटी के बजने से उसके लार निकले, यह प्रतिक्रिया कभी न करता यदि घण्टी किसी बिलकुल नये वातावरण या परिस्थिति में बजाई जाती, जैसे, उस समय जबकि कुत्ता गली को पार कर रहा होता। इसी प्रकार भाषा-शिक्षण में बहुधा कक्षा में इस प्रकार का वातावरण हो जाता है जो उस भाषा को सुगमता से सीखने वाले वातावरण से कहीं दूर होता है। एक व्यक्ति किसी भाषा को बहुत शीघ्र सीखता है यदि उसे उन्हीं लोगों के बीच में देखा जाए जो उस भाषा को बोलते हों। कारण यह है कि ऐसी परिस्थितियों में सम्बद्धता लाने के लिए उप-युक्त दशाएँ सरलता से मिल जाती हैं। यही कारण है कि वे बालक जो भारत में अंग्रेजी पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त करते हैं, अंग्रेजी के बोलने तथा समझने में कठिनाई का अनुभव नहीं करते हैं।

अनुबंधन सिद्धान्त की आलोचना[1]

यह सिद्धान्त बहुत-से मनोवैज्ञानिकों द्वारा आलोचित किया जाता है, क्योंकि यह सिद्धान्त यह बताने में असफल हो जाता है कि उच्च विचार तथा तर्क और ऐच्छिक क्रियाएँ आदि क्या हैं? यह ठीक है कि यह सिद्धान्त कुछ विशेष प्रकार के सीखने की क्रिया का समुचित वर्णन करता है किन्तु इस सिद्धान्त की आलोचना तब की जाती है जब हम गूढ़ विचार-शृङ्खला[2] के बारे में इसके द्वारा कोई उचित उत्तर नहीं पाते।

समग्राकृति सिद्धान्त भी सम्बद्ध-क्रिया सिद्धान्त की आलोचना करता है। इसके अनुसार सीखना हमारी क्रियाओं के किसी लक्ष्य की ओर निर्देशन की क्रिया है।[3] इस क्रिया में विशेष गुण यह है कि क्रिया के अन्तर्निहित तत्त्वों में आपसी सम्बन्ध स्थापित हो। S–R (उत्तेजना-प्रतिक्रिया) का सिद्धान्त इस पर कोई बल नहीं देता कि परिस्थिति के तत्त्वों का एक-दूसरे से अनुबंधित होना आवश्यक है और कोई भी सम्बद्धता उस समय तक नहीं उत्पन्न की जा सकती जब तक कि यह सम्बन्ध उपस्थित न हो। उदाहरण के लिए, भय को अनुबंधित करने का सरल उपाय यह है कि बालकों को उनके माँ-बाप की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को देखने दिया जाए। बालक सर्प से नहीं डरता क्योंकि उसे यह मालूम नहीं होता या उसे यह नहीं बताया गया है कि सर्प हानिकारक होते हैं। जब बालक किसी जानवर से डरने लगता है, क्योंकि जैसे ही वह इसे देखता है तो जोर की ध्वनि होती है या कोई दूसरे इसी प्रकार के दु:ख-दायी उत्तेजक उसे दिये जाते हैं, तब वह सोचता है कि जानवर ही ध्वनि उत्पन्न करता

---

1. Criticism of the Conditioning Theory. 2. Complex Thought Process. 3 Learning is process of directing activities towards some end or goal.

है। इस प्रकार वह जानवर, ध्वनि, स्थान, इत्यादि में एक सम्बन्ध स्थापित कर
है जो उसके मस्तिष्क में एकीकृत हो जाते हैं। यह सम्बन्ध या तत्त्वों का एक स
इकाई में मिलना ही सम्बद्धता या सीखने के लिए आवश्यक है।

,,समग्राकृति अथवा अवयवीवाद (सूझ द्वारा सीखना[1])

सूझ द्वारा सीखने में हम सम्पूर्ण परिस्थिति को एक साथ देखते हैं और
एक इकाई के रूप में समझते हैं। प्राणी सम्पूर्ण परिस्थिति को देखता है और
सही रास्ता निकाल पाता है। "सीखना उसी सीमा तक प्रभावशाली होता है,
तक कि व्यक्ति आवश्यक साधन तथा साध्य के सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण
सकता है।"

सीखने की स्थिति में सूझ का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति स्थिति को सम्पूर्ण
से समझने के योग्य है। सूझ वहीं पर कार्य करती है जहाँ पर समस्या का प्र
करण होता है, कठिनाई के तत्त्वों को और उद्देश्य को समझने की क्षमता होती

सूझ के सीखने का प्रकार समग्राकृतिवाद या क्षेत्रीय सिद्धान्त पर आधारि
यहाँ अब हम इस सिद्धान्त का वर्णन करेंगे जिसके मुख्य प्रवर्तक तीन मनोवैज्ञानि
वरथीमियर[2], कोफका[3] एवं कोह्लर[4] महोदय हैं।

समग्राकृति सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित है। १९वीं शताब्द
मानसिक परमाणुवाद[5] के प्रवर्त्तक यह प्रतिपादित करते थे कि प्रत्यक्ष अनुभव
संवेदना के तत्त्व होते हैं और यह उन तत्त्वों में तोड़ा जा सकता है। उदा
लिए, यदि हम एकमुखी प्रत्यक्षीकरण अनुभव 'ठंडा नीबू-पानी पीना' का वि
करें तो संवेदनात्मक तत्त्व यह होंगे ठंडा, गीला, मीठा, पीला, साफ, भारी इ
अनुभव इस प्रकार के तत्त्वों में तोड़ा जा सकता है। किन्तु अवयवीवाद के प्र
इस विचारधारा का विरोध करते हैं। वह कहते हैं कि यदि हम यह सब तत्त्व
भी कर लें फिर भी कुछ रह जायेगा और पीने वाला भी रह जायेगा। उन्होंने
वित किया कि एक घटना का अनुभव समग्र रूप में लेना चाहिए। उन्होंने
एक गेस्टाल्ट या आकृति "एक समग्र है, जिसकी विशेषताएँ पता लगाई ज
समग्र की आन्तरिक प्रकृति के द्वारा, न कि उसके व्यक्तिगत तत्त्वों की विशे
के द्वारा।"[6]

जिस प्रकार से अवयव या समग्र हमारे अनुभवों में आते हैं, इस सम्ब
कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। जब हम एक लम्बी सड़क पर निगाह डालते

---

1. Gestalt Theory of Learning (Insight). 2. Wertbe
3. Koffka. 4. Kohler. 5. Mental atomism.
6. "A gestalt or form is a whole whose characteristi
determined not by characteristics of its individual elements, b
the internal nature of the whole."

हम यह समझ लेते हैं कि सड़क उतनी ही चौड़ी लगभग २ फर्लांङ्ग पर है जितनी कि वह हमारे बिलकुल पास। वास्तव में संवेदना तो हमें उसे छोटा होने की सूचना देती है, किन्तु हम उसको समग्र रूप से देखकर इस निश्चय पर आ जाते हैं कि उसकी चौड़ाई छोटी नहीं हो रही है। इस प्रकार आकृति की स्थिरता हमें समग्र के विचार की ओर ले आती है। प्रत्यक्षीकरण में किस प्रकार समग्र हमारे अनुभवों पर प्रभाव डालता है, इसका वर्णन हम 'प्रत्यक्षीकरण' वाले अध्याय में करेंगे।

अवयवीवाद का मनोविज्ञान अनुभव से सम्बन्धित है और वह हमें प्रत्यक्षीकरण के नियम एवं मानव सीखने की समस्याओं में विशिष्ट रुचि के नियमों से अवगत कराता है। इसमें निहित यह विचार है कि सीखने वाला अपने प्रत्यक्षीकरण और विचारों को संगठित एवं पुन संगठित करता रहता है। अवयवीवाद समग्रता पर बल देता है। व्यक्ति समग्र अनुभवों के आधार पर नियम बनाता है और इस प्रकार गेस्टाल्ट या अवयव बन जाते हैं। अच्छे गेस्टाल्ट उस समय बनते हैं, जब हम अपने अनुभव इस प्रकार संगठित करते हैं कि वह हमारे लिए अच्छे हों। हमारे अन्दर स्पष्ट गेस्टाल्ट बनाने की प्रवृत्ति बहुत सक्रिय होती है और कभी-कभी यह हमें उन परिणामों की ओर ले जाती है जो हमारे विस्तृत ज्ञान के प्रतिकूल होते हैं। शिक्षक की आवश्यकता यहीं है। अवयवीवाद के अनुसार शिक्षक का मुख्य कार्य विद्यार्थी को अपने अनुभव और सीखने को पुनर्संङ्गठित करने में सहायता देना है।

अवयवीवाद यह मानता है कि सीखने वाला समस्या को निष्पक्ष रूप से देख सकता है और वह उद्देश्य से इतना अधिरूढ़ नहीं होता जितना कि साधारण व्यवहार के सीखने में। जब वह निष्पक्ष भाव से विश्लेषण करता है तो इसे हम सूझ कहते हैं और सूझ द्वारा सीखना विद्यालय में सीखने की प्रक्रिया का आधार है।

अनुबंधन, प्रयास एवं त्रुटि तथा अन्तर्दृष्टि सिद्धान्तों की तुलना[1]

इन तीनों के अन्तरों को स्पष्ट समझने के लिए निम्न चित्र की ओर ध्यान दें।

(अ) अनुबन्धन (ब) प्रयास एवं त्रुटि (स) अन्तर्दृष्टि

चित्र (अ) में R_1 एक प्रतिक्रिया है जो $S_1, S_2, S_3\cdots$ उत्तेजकों के प्रतिक्रिया-स्वरूप होती है। S_1 पहले ही पर्याप्त होता है (प्राणी के विकास के कारण

1. Comparison of Conditioning, Trial and Error and Insight Theories.

अथवा पहले के अनुबंधन के कारण) R_1 प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लि
बार जब S_2 या S_3 उत्तेजक जो पहले R_1 के लिए पर्याप्त नहीं थे,
प्रदान किये जाते हैं तो R_2 के होने की प्रवृत्ति हो जाती है। इस प्रकार
एक दी हुई प्रतिक्रिया एक विस्तृत उत्तेजकों के क्षेत्र के प्रति करना सीख

चित्र (ब) में व्यक्ति एक उत्तेजक S_1 के सम्पर्क में आता है जि
उसके पास कोई पर्याप्त अथवा आदानात्मक प्रतिक्रिया तुरन्त नहीं होती।
प्रयास R_1, R_2, R_3 इत्यादि करके प्रत्येक प्रयास के परिणामस्वरूप ए
प्रतिक्रिया खोज निकालता है।

चित्र (स) की अन्तर्दृष्टि स्थिति मूल रूप में प्रयास एवं त्रुटि स्थिति
नहीं है। जो अन्तर है वह यह कि सीखने वाला सम्पूर्ण स्थिति के अर्थ क
करण करता है इससे पहले कि वह कोई प्रतिक्रिया करे। इसी कारण चि
आकृति के अन्दर S_1 तथा R_1 इत्यादि को दिखाया गया है। अन्तर्दृष्टि
व्यक्ति मानसिक पूर्वानुमान R_1, R_2, R_3 इत्यादि S_1 के प्रति बना लेता
वह अपने अनुमान के अनुसार उपर्युक्त प्रतिक्रिया बिना व्यक्त प्रयासों
लेता है।

सीखने के मुख्य प्ररूप[1]

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर हम सीखने के प्रकारों का वर्णन क
हैं। यहाँ हम चार प्रकारों का वर्णन करेंगे · (A) निरीक्षण से सीखना,[2] (I
दृष्टि अथवा सूझ से सीखना,[3] (C) अनुकरण से सीखना,[4] (D) प्रयत्न एवं
सीखना।[5]

(A) **निरीक्षण से सीखना**—निरीक्षण वस्तुतः प्रत्यक्षीकरण ही है
अवधान और सम्मिलित कर लिया जाता है। निरीक्षण का तात्पर्य किसी
अवधान को केन्द्रित करना होता है। अवधान के केन्द्रीकरण से प्रत्यक्षीकर
अधिक समृद्ध होता है। शिक्षा के क्षेत्र में निरीक्षण-पद्धति का लाभ उठाने
सीखने की क्रिया सर्वप्रथम मूर्त्त वस्तुओं से प्रारम्भ करनी चाहिए। बालकों को
के लिए शिक्षकों को प्रतीकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि बालकों का
मूर्त्त वस्तु पर शीघ्र केन्द्रित होता है। अमूर्त्त, अशरीरी एवं सूक्ष्म वस्तुओं
अपना अवधान केन्द्रित नहीं कर सकते। कालान्तर में अभ्यास द्वारा वे उ
ज्ञानोपार्जन करने लगते हैं किन्तु प्रारम्भ में ऐसा नहीं होता।

(B) **अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ से सीखना**—निरीक्षण की अन्तिम क्रिया
समझी जाती है। निरीक्षण का अर्थ किसी वस्तु-विशेष पर अवधान को पूर्णरूपेण

---

1. Main Types of Learning. 2. Learning by observa
3. Learning through Insight. 4. Learning by imitation. 5. Lea
by Trial and Error.

करके उसके सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना है, जबकि सूझ का अभिप्राय यह है कि निरीक्षण-क्रिया का अन्त सफलतापूर्वक हो गया और वस्तु-सम्बन्धी उपयुक्त ज्ञान-कारी प्राप्त हो गई। वह मानसिक संगठन जिसके द्वारा एक समस्या सहसा अपने सब सम्बन्धों के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है, 'सूझ' कहलाती है। वस्तुत सूझ अवधान के केन्द्रीकरण से आगे की स्थिति है, जिसके ऊपर सम्पूर्ण सफलता निर्भर होती है। सूझ मे हम मस्तिष्क का वस्तु से एकीकरण करते हैं, साधारण रूप मे वह क्रियाएँ सूझ द्वारा सीखने की क्रियाएँ कहलाती है जो व्यक्ति की स्थिति का अवलोकन कराके समस्या को पूर्ण रूप से समझने के योग्य बनाती हैं।

लगभग सभी सीखने की क्रियाओं मे 'सूझ' की आवश्यकता पड़ती है, विशेष रूप से उस समय जबकि समस्या के सर्वाङ्गीण स्वरूप को समझने मे बाधा उपस्थित होती है। किसी समस्याजन्य परिस्थितियों में सूझ का अभिप्राय होना है—तत्सम्बन्धी पूर्ण हल को प्रस्तुत करने की आवश्यक क्षमता। दूसरे शब्दों मे, सूझ व्यक्ति की उस समय सहायता देती है जब गन्तव्य तक पहुँचने में विविध बाधाएँ आती हैं। उस समय किसी वस्तु-विशेष सम्बन्धी ज्ञानोपार्जन करने मे बाधाओं को हटाकर सूझ सीखने मे सहायता पहुँचाती है।

सूझ द्वारा सीखने मे दो साथ-साथ होने वाले अथवा दो परस्पर परिवर्तनशील कार्यों का सम्मेलन होता है। इन्हे हम 'सामान्यीकरण'[1] और विभेदीकरण'[2] कह सकते है; यथा—

(अ) **सामान्यीकरण**—सामान्यीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम अपने बहुत-से अनुभवों के महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध, समानताएँ अथवा सामान्य रूप के तत्वों को निकालते हैं। उदाहरण के लिए, बहुत-से हरे सेवों को खाने के उपरान्त बालक सेवों के बारे मे यह सामान्यीकरण करता है कि सभी हरे सेव खट्टे होते है अथवा इसी प्रकार से बहुत-से गुणा करने, जैसे २ × २, ३ × ३ से वह यह सामान्यीकरण करेगा कि गुणनफल सदैव अपने मूल अङ्कों से गणना मे अधिक होता है।

सामान्यीकरण के द्वारा ही व्यक्ति तथा तथ्यों, भावों, प्रवृत्तियों को क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान करता है तथा वह पुरातन एव नवीन अनुभवों को श्रेणीबद्ध करता है। इसी सामान्यीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति अपने प्राचीन अनुभवों का लाभ नवीन समस्याओं के हल करने में उठाता है। वह सोचता है कि यह समस्या भी उसी के समान है जिसका भुक्तभोगी वह रह चुका है, अत उससे लाभ उठा लेता है।

किसी समय-विशेष मे जो ज्ञान व्यक्ति को होता है, सामान्यीकरण द्वारा वह अत्यन्त उचित ढङ्ग से उसे व्यवस्थित कर लेता है। इस प्रकार यह क्रिया उसे सीखने मे अत्यन्त सहायता पहुँचाती है, किन्तु और अधिक अच्छी तरह सीखने के लिए विभेदीकरण के सिद्धान्त को अपनाना होगा, जो सामान्यीकरण को परिवर्तित तथा अधिक उपयुक्त बनाने के लिए आवश्यक है।

1. Generalization. 2. Differentiation.

(घ) विभेदीकरण—विभेदीकरण वह क्रिया है जो वस्तुओं अनु
भवों उनके मध्य भेद होते हैं, प्रकाश डालती है, जैसे—एक बालक यह
कि उसका 'कुत्ता' उसे नहीं काटेगा किन्तु दूसरा कुत्ता उसे काट सकता है
वह सीखता है कि काला, लाल से भिन्न है और मीठा, कड़वे से पृथक है।
कुत्ते और दूसरे कुत्ते में विभेदीकरण करता है या विभिन्न रङ्गों के भेद क
लेता है।

विभेदीकरण के द्वारा व्यक्ति अपने को अनेक प्राचीन अनुभवों में
करता है कि नवीन परिस्थितियों और समस्याओं में कौन सर्वाधिक सहा
उपयुक्त हो सकती है। चुनाव और विभेदीकरण के द्वारा ही वह यह निश्चि
है कि कौन-कौन से अनुभव नई समस्या सुलझाने में हानिकारक हो सकते
उनकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि विभे
के आधार पर ही हम उन अनुभूतियों तथा वर्तमान अनुभवों के बीच के
स्पष्टीकरण करते हैं। हमें पता चल जाता है कि जो अनुभव हम इस समय
हैं, वह पहले हमें मिले हुए अनुभवों से किस प्रकार भिन्न है।

जब व्यक्ति अनुभवों की सामान्य विभिन्नताओं पर ध्यान देने के स
उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभिन्नताओं को भी देखने लगता है तो यह विभेदी
प्रक्रिया बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती है; जैसे—एक बालक अपने
इतना अधिक पहचानने लगता है कि प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से उसमें विभेद करने
है। ऐसी परिस्थिति में यदि वह माँ से कुछ क्षणों के लिए भी विलग हो जा
सदा ही भयाक्रान्त होता है और तीव्र रुदन करता है, क्योंकि वह समझता है
के बिना वह एक क्षण भी सुरक्षित नहीं है। वह यह समझ ही नहीं सकता कि
सुरक्षा की उसे आवश्यकता है, वह माँ के अलावा अन्य व्यक्तियों से भी उ
सकती है।

एक व्यक्ति जो आवश्यकता से अधिक वस्तुओं एवं अनुभवों में विभेद
है, वह जानी हुई एवं प्रत्यक्ष वस्तुओं की अनुपस्थिति का शीघ्र ज्ञान कर ले
किन्तु नयी वस्तु और नवीन अनुभवों की खोज के प्रति वह अनिच्छुक एवं उ
रहता है और वह व्यक्ति प्रायः विभिन्नताओं की विस्तृतता एवं सूक्ष्मताओं
रहने के कारण उनमें आपस में अन्तर और सद्सम्बन्ध भी स्थापित नहीं कर
जैसे, अधिक विस्तृत जानकारी रखने वाला बालक कक्षा में प्रत्येक बालक औ
गुणों के बारे में बता सकता है। किन्तु वह यह भूल जायगा कि सभी बालक
कक्षा के अङ्ग मात्र हैं। सम्पूर्ण कक्षा के हित के लिए उनके क्या आदर्श होने
उनका विकास किस प्रकार हो सकता है, उन्हें क्रियान्वित कैसे किया जा सकत
यह इन सर्वउपादेय तत्वों को भूल जायगा। इधर उसकी दृष्टि ही नहीं जायेग

सूझ के द्वारा सीखने की क्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए एक शि
निम्न तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए :

(१) पूर्ण समस्या का प्रस्तुतीकरण[1]—चूँकि सूझ के द्वारा सीखने मे विद्यार्थी को समस्या का हल स्वयं निकालना पड़ता है, अत. अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थी के समक्ष समस्या को समग्र रूप से प्रस्तुत करे, उसे थोड़ा-थोड़ा एक-एक पद के द्वारा नही, क्योंकि इस दशा मे विद्यार्थी उस समस्या का हल ढूँढने मे सफल नही होगा। जैसे, बीजगणित मे अध्यापक को पूरा प्रश्न या समस्या ही प्रस्तुत करनी चाहिए, उसकी कुछ संख्या, खण्ड या सूत्र मात्र नही। इसी प्रकार अङ्कगणित मे भी उस संख्या या अङ्को को नही, वरन् उस प्रश्न को ही बालको के सामने प्रस्तुत करना चाहिए, जिस प्रश्न या समस्या के वे अङ्क खण्ड हैं।

(२) सीखने मे गतिशीलता[2]—समस्या का प्रारम्भिक प्रस्तुतीकरण और सीखने मे अनवरत विकास की क्रिया सीखने वाले की तत्परता तथा शिक्षण के अनुकूल होनी चाहिए। सीखने मे गतिशीलता का आधार इन दोनो पर निर्भर होना चाहिए—बालक का प्रारम्भिक ज्ञान, तथा बालक की ज्ञानात्मक और संवेगात्मक तत्परता। गतिशीलता का लक्ष्य विद्यार्थियों को विकास के क्रम मे सहायता देना है, न कि उन्हें विकास की ओर धकेल देना। यदि विद्यार्थी में सीखने की क्रिया को अनवरत रूप देने के प्रति तत्परता नही है तो अध्यापक का कर्त्तव्य है कि उसमे इस भावना को जाग्रत करे। इसके लिए उसे समस्या को बिना खण्ड-खण्ड किये ही उसे सरल बना देना चाहिए अथवा उस समय तक इन्तजार करना चाहिए जब तक कि विद्यार्थी में सीखने के प्रति वांछित तत्परता न आ जाये, और वह समस्या को भली-भाँति समझने की स्थिति मे न आ जाये।

(३) ज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक तत्परता[3]—ज्ञानात्मक तत्परता से अभिप्राय है कि विद्यार्थी के पास सामान्यीकरण की पूँजी पर्याप्त मात्रा मे है, जिसके द्वारा वह समस्या को सफलतापूर्वक हल कर सकता है। संवेगात्मक तत्परता से तात्पर्य है कि विद्यार्थी सीखने की परिस्थितियों को ग्रहण करने के लिए पूर्ण तैयार है। उसके मन मे उस सीखने की प्रक्रिया के प्रति कोई भी निरोधात्मक वृत्ति अथवा पूर्वधारणा नहीं है जो समस्या को सम्पूर्ण रूप मे या खण्ड-खण्ड करके सीखने मे बाधा उपस्थित कर सके। एक बालक को परमाणु के टूटने एवं उसके द्वारा परमाणु-बम आदि के निर्माण का सिद्धान्त तब तक नही सिखाया जा सकता जब तक कि तत्सम्बन्धी सरल सिद्धान्तों को पहले न सिखा दिया जाय। इसी प्रकार जो बालक स्कूल जाने में संवेगात्मक धक्के का अनुभव करता है, वह तब तक उस पाठशाला मे कुछ भी नही सीख सकता जब तक उसे वह पाठशाला एक भयावह स्थान के बदले आनन्द और क्रीड़ा का स्थल न प्रतीत हो। अतः सूझ के द्वारा सीखने मे तत्परता की परम आवश्यकता होती है। सूझ का प्रथम तत्त्व 'तत्परता' ही है।

1. Presentation of the whoe Problem. 2. Pacing 3. Cognitive & Emotional Readiness.

(४) सफलता-प्राप्ति के लिए अध्यापक को पर्याप्त सहायता देनी चाहिए[1]—सीखने की अन्य विधियों की तरह सूझ से सीखने में बालक को अध्यापक की सहायता अत्यन्त लाभदायक एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। अध्यापक की सहायता से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि अध्यापक बालक को समस्याओं को हल करके बता दे, वरन् समस्या के सम्भव हल को प्राप्त करने के लिए सीखने का उचित वातावरण तैयार करे तथा जब तक विद्यार्थी अपनी सूझ से समस्या का हल ढूँढ न निकालें, उन्हें उसके लिए बराबर प्रोत्साहित करता रहे और उनकी रुचि को समस्या में बनाये रखे। सूझ द्वारा सीखने में अध्यापक दूसरे प्रकार से भी सहायता पहुँचाता है। वह बालकों के समक्ष इस प्रकार से समस्या को प्रस्तुत करता है कि बालकों की जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है और जिज्ञासा पूर्ण करने के लिए बालक उसमें दत्तचित हो जाते हैं, अवधान केन्द्रित करते और सफल होते हैं। यदि विद्यार्थी की जिज्ञासा समाप्त हो जायगी तो वह समस्या का हल ढूँढ ही नहीं सकता। वस्तुत. सूझ का मूल-मन्त्र 'जिज्ञासा' है, और अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह इस प्रकार के सीखने में बालकों में जिज्ञासा और रुचि बनाये रहे।

(C) अनुकरण[2]—अनुकरण का एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में विस्तृत रूप से आगे वर्णन किया जायेगा। अनुकरण में दूसरे व्यक्तियों के द्वारा किये गए कार्यों की पुनरावृत्ति की जाती है। सदैव उस व्यक्ति के कार्यों का अनुकरण किया जाता है जो अनुकरणकर्त्ता से अधिक श्रेष्ठ होता है। अनुकरण प्राय. जान-बूझकर और कभी-कभी अनजान में भी होता है। हम बिना जाने ही अज्ञात रूप से दूसरों का अनुकरण करते हैं। शिक्षा में हम चेतन रूप से सप्रयास अनुकरण करते हैं, जैसे—किसी कौशल को प्राप्त करने में, लिखने में तथा चित्र बनाना सीखने आदि—सभी में चेतन अनुकरण किया जाता है। प्रारम्भिक पाठशालाओं में भाषा की अशुद्धियों को ठीक करना, उच्चारण शुद्ध करना—अनुकरण के ही उदाहरण है। जहाँ पर मॉडल एवं नमूने के द्वारा सिखाया जाता है वहाँ सीखने में अनुकरण का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। अनुकरण नकल करना अथवा प्रतिकृति बनाना मात्र नहीं है, इसमें मौलिकता एवं उपक्रमण की क्षमता सदैव योग देती है। वस्तुतः अनुकरण एक उद्दीपक के समान होना चाहिए जिससे व्यक्ति की समस्या हल करने की शक्ति जाग्रत होकर क्रियाशील हो उठे। ज्ञात एवं अज्ञात अनुकरण के द्वारा ही परम्परागत व्यवहार, समाज के नैतिक सिद्धान्त एवं विचारधारा बालक के चरित्र-निर्माण के तत्त्व बनते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'अनुकरण' शिक्षा के क्षेत्र में एवं सम्पूर्ण जीवन-भर महत्त्वपूर्ण नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक अभिवृत्ति है।

(D) प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखना[3]—बहुत-से मनोवैज्ञानिक 'प्रयत्न एवं त्रुटि

1. The teacher must give sufficient help to obtain success.
2. Imitation. 3. Learning by Trial & Error.

से सीखने' की विधि को 'सफल प्रतिक्रियाओं के चुनाव द्वारा सीखना'[1] भी कहते हैं, वे इस नाम को ही अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एवं समीचीन समझते हैं। इस नियम की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें साधन और साध्य के सम्बन्ध का प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट न होकर अत्यन्त प्रच्छन्न एव नहीं के बराबर होता है।

प्रयत्न एव त्रुटि द्वारा सीखने में वे प्रक्रियाएँ जो सीखने वाले को सफल प्रतीत होती हैं, उसे कार्य के लिए उत्तेजना देने वाली होती हैं, दुहराई जाती हैं तथा जो प्रतिक्रियाएँ असफल होती अथवा बाधा उपस्थित करने वाली होती हैं, वे समाप्त कर दी जाती हैं। जब एक प्रावस्था व्यक्ति को 'तुष्टि' देती है तब सीखने वाला उन प्रतिक्रियाओं से बचना नहीं चाहता। इसके विपरीत, जब कोई प्रतिक्रिया सीखने वाले को कष्ट पहुँचाती है, वह उसे दुहराना नहीं चाहता, उसका संग्रह नहीं करना चाहता। प्रायः ऐसे काम अथवा प्रक्रियाओं की वह परिसमाप्ति ही कर देता है।

उदाहरण के लिए, जैसे यदि कोई बालक कागज का हवाई जहाज बनाता है, उसके इस कार्य के लिए यदि उसकी सराहना की जाती है तो वह इस कार्य की पुनरावृत्ति करेगा, उसमें सुधार करेगा। इसके विपरीत, यदि उसे दूसरों से प्रोत्साहन नहीं मिलेगा और न उसकी आलोचना ही कोई करता है तो वह इस कार्य को छोड़ देगा तथा दूसरे कार्यों के करने में रुचि लेगा।

प्रयत्न और त्रुटि द्वारा सीखने में विद्यार्थी जब यह जानता है कि समस्या की क्या आवश्यकता है तो वह अपने गन्तव्य के बारे में भलीभाँति समझ जाता है, किन्तु उसे कैसे प्राप्त किया जाय, इसे वह नहीं जानता। इसलिए समस्या को सुलझाने के लिए, उस परिस्थति सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है। जब वह उन प्रयासों में सफल अथवा असफल होता है तो कार्य-प्रणाली की यह दिशा निश्चित हो जाती है कि असफल प्रयासों को छोड़ दिया जाये और सफल की पुनरावृत्ति करके समस्या के हल को प्राप्त किया जाये। बाह्य दर्शक की दृष्टि में सीखने वाले प्रयास भले ही क्रमहीन एवं असम्बद्ध हों, वस्तुतः प्रयासों की पुनरावृत्ति सीखने वाले के द्वारा अत्यन्त सोच-विचार कर और समस्या की परिस्थितियों के अनुकूल एवं उसके हल करने के प्रयोजन से की जाती है, इसलिए उन प्रयासों की आवृत्ति के प्रकार में परिवर्तन होता रहता है जो उन प्रयासों की सफलता पर निर्भर रहता है।

प्रयत्न और त्रुटि से सीखने की विधि व्यर्थ की विधि नहीं है, वरन् सुधार की विधि है। जब कभी भी सीखने वाले के समक्ष अपने लक्ष्य-प्राप्ति में कोई समस्या उठ खड़ी होती है और उसका निदान वह नहीं जानता तो उसे यही विधि अपनानी होगी। उसे समस्या को हल करने की दिशा में प्रयोग के तौर पर कुछ प्रयास करने होंगे। जो प्रयास सफल होंगे, उनकी आवृत्ति करनी होगी, और जो असफल होंगे उन्हें या तो छोड़ देना होगा अथवा उनमें सुधार करना होगा। इस प्रकार सफल एवं सुधरे हुए प्रयासों द्वारा वह अपनी समस्या को हल कर लेगा।

1. Learning by Selection of the Successful Variation.

सम्पूर्ण अध्यापक वर्ग के लिए, विशेष रूप से उन शिक्षकों के लिए जो विज्ञान, गणित एवं समाज-विज्ञान की शिक्षा देते हैं, यह आवश्यक है कि वे केवल प्रयत्न एवं त्रुटि की विधि की जानकारी मात्र न रखें वरन् अपने विद्यार्थियों को इस विधि को अपनाने और प्रयोग में लाने पर बल दें। उन्हें विद्यार्थियों को ऐसी समस्याएँ एवं प्रश्न हल करने के लिए देने चाहिए, जिनको हल करने की प्रणाली उन्हें मालूम न हो। इस प्रकार विद्यार्थियों को अपना लक्ष्य तो मालूम होगा किन्तु उसे प्राप्त करने की विधि नहीं। इस प्रकार अध्यापक प्रयास और त्रुटि की विधि द्वारा विद्यालयों में मौलिकता एवं आत्म-निर्भरता का विकास जाग्रत कर देंगे और वे जीवन में आने वाली उन परिस्थितियों एवं समस्याओं का सरलतापूर्वक हल कर सकेंगे जिनका लक्ष्य तो उन्हें मालूम होगा किन्तु प्राप्त करने का रास्ता नहीं। इस प्रकार प्रयत्न एवं त्रुटि द्वारा सीखने की विधि विद्यार्थी को बहुत सहायता पहुँचाती है।

अध्यापक को यह भी देखना चाहिए कि विद्यार्थी किसी समस्या के हल करने में शुभारम्भ करता है अथवा नहीं। यदि उसका कदम गलत होगा तो विद्यार्थी के निराश हो जाने की सम्भावना है, यदि सही होगा तो उसे सही कदम से प्रेरणा मिलेगी। विद्यार्थी के लिए ऐसी सीखने की परिस्थितियाँ भी पैदा करनी चाहिए जिससे वह समस्या को हल करने के लिए प्रारम्भिक प्रयासों के शुभअवसर प्राप्त कर सके और पुराने अनुभवों के आधार पर परिणामों की परीक्षा कर सके तथा अपनी सफल प्रतिक्रियाओं की पुनरावृत्ति कर सके।

शिक्षण और सीखने के प्रकार[1]

शैक्षिक प्रक्रिया में जिसे 'सीखना' कहा जाता है उसमें ज्ञान, कौशल प्रवृत्तियाँ और विवेचन-शक्ति एवं रसास्वादन—सभी आते हैं। वस्तुतः ये सभी वस्तुएँ सीखने से ही उत्पन्न होती हैं और सीखने की प्रक्रिया का परिणाम मात्र होती हैं। किन्तु सीखने की प्रक्रिया में सभी को एक ही समय में अपना लक्ष्य बनाकर हम प्राप्त नहीं कर सकते। इन विभिन्न प्रकार के लक्ष्यों को प्राप्त करने एवं सीखने की विभिन्न विधियों को अपनाना पड़ता है। परम्परागत एवं पुरानी चली आ रही सीखने की विधियों से ही सभी विषयों को नहीं सीखा जा सकता। इसी कारण विद्वानों ने सीखने की विभिन्न नवीन प्रणालियों का निर्माण किया है। आजकल की शिक्षा में पढ़ाने की प्राचीन पद्धति को त्यागकर नवीन विधि एवं प्रयोग किए गए। शिक्षक नवीन शिक्षण सामग्री जुटाकर, पहले कार्य एवं की सुनिश्चित योजना बनाकर, पढ़ाने पर बल दिया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी विदेशी भाषा को पढ़ाते समय प्रारम्भिक अवस्था में 'श्रवण और अनुकरण' की शैली को अवश्य ही अपनाना होगा। प्रारम्भ में शब्दोच्चारण का प्रयोग, क्रमबद्ध पुनरावृत्ति इत्यादि शिक्षण की विधियाँ ही उपयुक्त

1 Teaching & Types of Learning

रहेंगी। विदेशी भाषा के शिक्षण में जब हम यह भूल जाते हैं कि भाषा का सीखना ज्ञानेन्द्रिय और गतिवाही तन्तुओं पर आश्रित रहता है जिसमें अनुकरण और प्रेरणात्मक दुहराना अत्यन्त उपयोगी होता है तो उसका प्रतिफल वही होता है जो आजकल पुराने ढर्रे पर चलने वाली पाठशालाओं में विदेशी भाषाओं के सिखाने में दिखाई पड़ता है।

दूसरी तरफ गणित और प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा में 'प्रत्यय ज्ञान और पदार्थों में सामान्यीकरण' की विधि पर अधिक बल देना चाहिए क्योंकि उसमें प्रत्यय-ज्ञान की प्रधानता रहती है और अनुकरण का महत्त्व बहुत ही कम होता है, जो केवल उन्हीं स्थानों पर जहाँ नैतिक प्रतिक्रियाओं का दुहराना मात्र अभिप्रेत होता हो, आवश्यक होता है। इस प्रकार के शिक्षण में 'समस्या-हल' की विधि ही प्रमुख होती है, अतः उसे अपनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण हम 'तर्क' नामक अध्याय में देंगे।

अतः हम इस निर्णय पर आते हैं कि शिक्षण में विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय सीखने का प्रकार सर्वाधिक उपयुक्त वही होगा जो इच्छित फल की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता हो, अतः शिक्षण का प्रकार विषयों के अनुकूल बदलते रहना चाहिए।

सीखने के कुछ अन्य सिद्धान्त[1]

१. क्षेत्रीय सिद्धान्त[2]

हमने अवयवीवाद का कुछ वर्णन पीछे किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस स्थिति का हम अनुभव करते हैं, वह सदैव संगठित तथा रचनाकार[3] होती है और यह रचना उन अवयवों से अधिक स्थायी होती है जिन पर कि वह स्थिति आधारित होती है। इस संगठन में कोई एक तत्त्व ऐसा होता है जो स्थिति को पूर्ण रूप से अपने प्रभुत्व में कर लेता है। जब हम स्थिति का अनुभव करते हैं तो संगठन या रचना पहले हमारे अनुभवों में आती है, इसके पश्चात् ब्यौरे की ओर ध्यान जाता है। यह रचना हमारे अनुभवों में तब भी स्थायी रहती है, जबकि ब्यौरे में परिवर्तन भी हो जाता है। इस प्रकार सम्बन्धों का एक रचना के रूप में प्रत्यक्ष होना व्यवहार का स्पष्टीकरण करता है। सीखना सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण करना ही है। सीखने में हम समस्या जिसको हल करना एवं जो समस्या हल करने की विधि है, उन्हें एक रचना के रूप में देखते हैं। जब हम शब्दकोश को देखना सीख लेते हैं तो हम उसके सम्बन्ध में दृढ़ रचना[4] बना लेते हैं। जब ऐसा हो जाता, तब कोई भी अज्ञात शब्द के आते ही हम शब्दकोश का प्रयोग समस्या-हल के लिए कर लेते हैं। सीखना इसी प्रकार की दृढ़ रचना बनाने की क्रिया है।

---

1. Other Theories of Learning 2. Field Theory 3. Structured 4. Compact Structure.

लेविन का क्षेत्रीय सिद्धांत समग्राकृति की भाँति ही है, किन्तु यह
इस रूप में है कि यह अनुभव के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्त्व
प्रेरणाओं आदि का अधिक प्रयोग करता है।

लेविन 'जीवन-स्थल (Life-space) के आधार पर व्यक्ति के
व्याख्या करता है। एक व्यक्ति का जीवन-स्थल मनोवैज्ञानिक शक्तियों
होता है। इसको समझने के लिए नीचे दिए हुए चित्र की ओर ध्यान देना
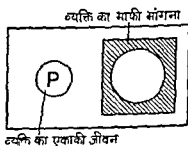
उपर्युक्त चित्र जो लेविन के सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग
है। यह दिखाता है कि 'P' एक व्यक्ति है जो अपने सहयोगियों से आदर
किन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त करने से पहले उसे माफी माँगनी पड़ेगी। मा
एक अवरोधक या रुकावट है जो चित्र में आकर्षण रहित क्षेत्र है।

जिस प्रकार ऊपर का चित्र एक शक्ति को एक व्यक्ति के ऊपर ग
हुआ दिखाता है, इसी प्रकार व्यक्ति पर अनेक शक्तियों के समूह या प्रतिरू
दिखाया जा सकता है, जो किसी समय में उस पर सक्रिय होते हैं।
समूह अपने को एक प्रतिरूप[1] में संगठित कर लेते हैं और यही प्रतिरूप
वाले व्यवहार का निर्धारक होता है।

लेविन महोदय के सिद्धान्त में भर्त्सना[2], लक्ष्य[3] एवं अवरोधक[4] मुख्य
एक व्यक्ति जो कोई लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है, उसे अवरोधक को प
होगा। अवरोधक मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक हो सकता है।

व्यक्ति के जीवन-स्थल में अवरोधक के मनोवैज्ञानिक रूप में परिवर्त
कारण सदैव नव-निर्माण होता रहता है।

लेविन महोदय के विचारानुसार सीखना कोई एक अनोखी क्रिया
सीखने की क्रिया को समझने के लिए हमें केवल यह समझना होता है कि
स्थल का नवगठन किस प्रकार होता है तथा मनोवैज्ञानिक संसार की

1. Pattern. 2. Threat. 3. Goal 4. Barrier.

किस प्रकार होती है। अतएव हम जीवन-स्थल के संगठन या संरचना सम्बंधी नियमों का हल निकाल लें तो हम सीखने के सम्बन्ध में सब कुछ समझ जायेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेविन मनोवैज्ञानिक तथा शास्त्रीय समग्राकृतिवादी सीखने को उस सामान्य समस्या का एक भाग मानते हैं जो इस सम्बन्ध में है कि हम कैसे संसार का इस रूप में अनुभव करते हैं, जैसा कि हमें अनुभव होता है। यदि हम संसार का अनुभव विभिन्न प्रकार से करते तो विभिन्न ढंग से ही व्यवहार करते। अतएव सीखना हमारे अनुभवों या जीवन-स्थल की संरचना में परिवर्तन लाने से होता है।

२. गुथरी का प्रतिस्थापन का सिद्धान्त[1]

गुथरी द्वारा प्रतिपादित प्रतिस्थापन का सिद्धान्त अनुबंधवाद की चरम सीमा का सिद्धान्त समझा जा सकता है। यह सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि यदि एक प्राणी कोई कार्य कर रहा है उस समय जबकि कोई उत्तेजक उस पर क्रियाशील होता है, तब भविष्य में भी वही उत्तेजक उसी क्रिया को दोहराने वाला होगा। उदाहरण के लिए, जब एक कुत्ता दौड रहा है और सीटी बजाई जाती है तो भविष्य में भी जब सीटी बजेगी, कुत्ता दौड़ने लगेगा। यह प्रवृत्ति जिस साधारण ढङ्ग से बनती है उसी ढङ्ग से समाप्त भी हो सकती है। सीटी सुनने पर जब कुत्ता दौड़ नहीं पाता, तब यह प्रवृत्ति क्षीण पड जाती है।

दूसरा सिद्धान्त जिसका हम यहाँ वर्णन करना चाहेंगे, परिणाम का सिद्धान्त[2] है। यह सिद्धान्त किसी क्रिया के होने के पश्चात् परिणामों के महत्व पर बल डालता है। इसके सम्बन्ध में हम थॉर्नडाइक के नियमों का वर्णन करते समय वर्णन कर चुके हैं।

प्रतिस्थापन एवं परिणाम एक-दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में वह एक-दूसरे के पूरक ही हैं।

सीखने की क्रिया में प्रतिस्थापन सीखने के प्रारम्भ की अच्छे प्रकार से व्याख्या कर देता है, जबकि परिणाम सीखने की अन्तिम अवस्थाओं का उपयुक्त वर्णन करता है।

३. हल का प्रबलन का सिद्धान्त[3]

परिणाम एवं प्रतिस्थापन के सिद्धान्तों को एक पूर्ण सिद्धान्त के रूप में रखने का प्रयास हल महोदय ने अपने प्रबलन के सिद्धान्त में किया। इस सिद्धान्त में किसी आवश्यकता को दूर करना मुख्य तत्त्व है। यदि हमको किसी स्थिति में कोई आवश्यकता प्रतीत होती है जिसको दूर करना है तो जो कुछ भी हम उस क्षण से पहले

1. *Guthrie's Theory of Substitution*. 2. Theory of Effect. 3. Hull's Theory of Reinforcement.

अनुभव कर रहे हैं, यह गन्ध हमारी प्रतिक्रियाओं से सम्बन्धित हो जाता
जलने की गन्ध आ रही है और जहाँ हम बैठे हैं, वहाँ के पास से धुआँ
हमारा आग लगने का भय जिसके कारण हम काँपने लगते हैं और ग
प्रकार से सूँघने की प्रतिक्रिया, गन्ध एवं धुएँ से सम्बन्धित हो जाती
सम्बन्ध पहले ही बना हुआ है तो यह अधिक दृढ़ हो जाता है।

मानव और पशु अपने को ऐसी स्थितियों में पाते हैं, जहाँ
आवश्यकता होती है . (a) S—R बन्धन जो बने हुए हैं, उन्हें मजबू
और (b) बिलकुल नये S—R बन्धन बनाने की। S—R बन्धन जै
त्रुटि एवं प्रयास द्वारा सीखने में वर्णन किया है, परिणाम के नियम के
बूत होते हैं और नये S—R बन्धन अनुबन्धन द्वारा बनते हैं। एक अ
क्रिया उस समय होती है, जब बालक या पशु आवश्यकता प्रतीत करता
वह भूखा या प्यासा होता है। परिणाम का नियम यह भी बताता है कि
प्रतिक्रिया होती है तो आवश्यकता या अभिप्रेरणा सन्तुष्ट हो जाती है
जाती है।

हल के मुख्य सिद्धान्त के अनुसार "एक आवश्यकता में कमी, S-
जो कमी के समय स्थित होते हैं उनको पुष्ट कर देते हैं। इस प्रकार
वह परिणाम का नियम और अनुबन्धन के नियम—दोनों को मिला
नये बन्धन में स्थापित बन्धनों को पुष्ट करने की विशिष्ट दशा देखता है
इस सिद्धान्त के अनुसार इसी प्रकार का स्थित S—R बन्धन का भेदात्
है[1] (परिणाम द्वारा सीखना) और नये बन्धनों का बनाना है (अनुबन्धन द्वारा
हम हल के प्रारम्भिक प्रयतन सिद्धान्त को सरल रूप में इस प्रकार रख
"जब भी एक प्रतिक्रिया (R) शीघ्रता से एक उत्तेजक (S) का अनुसरण
और यह S और R का बन्धन समय के विचार से निकटतम ढंग से आव
कमी से सम्बन्धित है तो भविष्य में S—R बन्धन के दुबारा होने की
जायेगी।"[2]

हल अपने सिद्धान्त का उदाहरण एक प्रयोग द्वारा देता है। एक
के एक खाने में एक चूहा रखा गया। दूसरे खाने में जाने का रास्ता विभा
वाली दीवार के सबसे ऊपर एक सूराख में था। जिस खाने की जमीन पर
था उसमें और बीच की दीवार में विद्युत धारा प्रवेश की गई। इस उत्तेज
चूहा अनेक प्रकार से प्रक्रिया करने लगा। वह पिंजरे की छड़ों को काटने

1. Differential reinforcement.

2. "Whenever a response (R) follows quickly upon a
(S) and this conjunction of S and R is closely associated
with the diminution of a need, there will be an increased t
of that S—R to recur on later occasions."

उछल-कूद करने लगा। अन्त में वह छेद के द्वारा दूसरे खाने में कूद गया। फिर दूसरे खाने में विद्युत धारा बहाई गई। ऐसा तब तक दोहराया गया जब तक चूहे ने दूसरे खाने में तुरन्त कूदना न सीख लिया। इस प्रकार का सीखना जैसा कि स्पष्ट है, परिणाम के नियम के कारण हुआ।

दूसरे प्रयोग में बिजली का धक्का देने से दो सैकिण्ड पहले एक घंटी बजायी गई। चूहा शीघ्र घंटी आवाज को सुनकर कूदना सीख गया। वह विद्युत के प्रवाह से पहले ही कूदने लगा। यह सीखना अनुबंधन के कारण हुआ। इस प्रकार के सीखने को हम निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं .
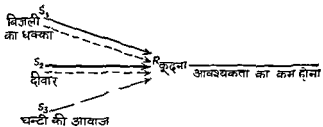
[घण्टी की आवाज और धक्के के बीच थोड़ा-सा समय]

बिन्दु. रेखाएँ नये बन्धन का बनना या पुराने के प्रबलन का संकेत देती हैं।

हल का सिद्धान्त काफी समग्र है। यह प्रारम्भिक प्रबलन से आगे और कई विचार प्रतिपादित करता है। यहाँ हम संक्षेप में उनका वर्णन करेंगे।

हल ने अनेक परीक्षणों के आधार पर यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया कि यदि उत्तेजक और आवश्यकता के कम होने में अधिक समय लगता है तो प्रतिक्रिया की आदत कम होने लगती है। यदि घंटी बजने और धक्के से बचने के समय में काफी अन्तर हो जाता है तो कूदने की प्रतिक्रिया जो घण्टी के साथ प्रारम्भ हो जाती है, धीमी पड़ने लगती है। हमने पवलव के कुत्ते पर प्रयोग के सम्बन्ध में इस प्रकार से प्रतिक्रिया के लुप्त होने का उदाहरण पीछे दिया है। हल इस प्रकार से प्रतिक्रिया में कमी को निसार प्रबलन[1] कहता है। शिक्षा में निसार प्रबलन का निहित महत्त्व बहुत है। जब एक छोटा बालक अपने अभ्यास की कापी दिखाता है तो वह तुरन्त प्रशंसा की आशा करता है। यदि उसकी इस आवश्यकता की पूर्ति में समय लगता है तो अभ्यास की कापी दिखाने से कतराने लगता है।

हल द्वितीयक प्रबलन[2] का सिद्धान्त भी प्रतिपादित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, "S—R बन्धन जो प्रारम्भिक आवश्यकता की कमी से पुष्ट हो चुके हैं, अपने लिए किसी भी सामीप्य या तत्कालीन पूर्वाङ्ग S—R बन्धन को पुष्ट करने

1. Gradient reinforcement 2. Secondary reinforcement

को शक्ति अर्जित कर लेते हैं।[1] और यह S—R बन्धन किसी अन्य सा
तत्कालीन पूर्वोक्त S—R बन्धन को पुष्ट कर देते हैं। इस सिद्धान्त के
लिए पवलव ने कुत्ते पर किया गया एक अन्य प्रयोग ध्यान देने योग्य है
के पास एक टिक-टिक करने वाला मेट्रोनोम[2] रख दिया गया जिसकी
सुन सकता था। कुत्ते को टिक-टिक सुनने के ३० सैकिण्ड बाद खाना दिया
प्रयोग तब तक दोहराया गया जब तक कुत्ता केवल आवाज से लार न टप
इस प्रकार S—R बन्धन (टिक-टिक—लार टपकाना) खाना देने से (आ
कभी) पुष्ट हो गया। यह प्रारम्भिक पुनर्बलन हुआ। इसके पश्चात् एक
कुत्ते के सामने १० सैकिण्ड तक रखा गया और फिर हटा लिया गया,
सैकिण्ड बाद मेट्रोनाम ३० सैकिण्ड तक बजाया गया—कोई खाना न दि
कुछ समय बाद केवल काला वर्ग प्रस्तुत किया गया और कुत्ते की लार टप
इस प्रकार मेट्रोनोम ने न केवल लार टपकाने की क्षमता बढ़ा दी वरन् ए
की क्षमता भी प्राप्त कर ली।

हल के सिद्धान्त में उत्तेजक का सामान्यीकरण[3], प्रयोगात्मक
इत्यादि के सिद्धान्त भी सम्मिलित हैं। अनुबंधन द्वारा सीखने में पीछे हम
संक्षेप में वर्णन किया है। यह सिद्धान्त अत्यन्त जटिल है और इस कारण ह
विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं कर रहे हैं। हमने सरल रूप से इसे समझाने की
चेष्टा की है।

हल का सिद्धान्त सीखने का एक ग्राह्य सिद्धान्त है। यह बहुत कुछ
शिक्षण का वर्णन कर देता है। किन्तु इसका मुख्य दोष यह है कि यह स
प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखने की विधियों तक ही सीमित रहता है।

हल के सिद्धान्त की दूसरी सीमा यह है कि सकारात्मक प्रेरणा प
न देकर निषेधात्मक प्रेरणा पर बल देता है। बालक विद्यालयों में इस का
जाते कि उन्हें जाना ही है, वह वहाँ कुछ सीखने जाते हैं। कुछ कौतूहल औ
के वशीभूत होकर जाते हैं।

४. स्किनर का प्रबलन का सिद्धान्त[5]

बी० एफ० स्किनर महोदय अत्यधिक शुद्ध सिद्धान्तों में विश्वास नहीं
हैं। वह प्रदत्त सामग्री के निकट ही रहना चाहते हैं और इस कारण इस प्र
विचार जैसे बन्धन, जीवन-स्थल, ज्ञान इत्यादि का प्रयोग कम से कम
चाहते हैं।

---

1. The S—R connection which has been reinforced by
primary need reduction acquires itself the power to reinforce
other contiguous or immediately antecedent S—R connec
2. Metranome. 3. Generalisation of Stimuls. 4. Experime
-xtinction 5. Skinner's Reinforcement Theory.

स्किनर महोदय चूहे सम्बन्धी प्रयोग की एक सरल व्याख्या करते हैं। एक समस्यात्मक बक्स मे जिसे स्किनर बक्स कहते हैं, एक चूहा रख दिया जाता है, वह भूखा होता है और जब वह बक्स मे एक लीवर दबाता है तो उसे खाना मिल जाता है। लीवर के दबाने की प्रतिक्रिया किस स्थिति के कारण होती है, हम स्पष्ट रूप से नही जानते। अधिकतर अनुबधवाद के प्रवर्तक चूहे के बक्स मे होने की स्थिति को चूहे की प्रतिक्रिया का कारण बताते हैं। किन्तु स्किनर इसमे विश्वास नही करते। वह तो यह कहते हैं कि हमे केवल एक प्रतिक्रिया दिखाई पडती है। हमे इसका कारण न खोजकर इसे यही छोड देना चाहिए और हमे इस प्रतिक्रिया को उत्सर्जन प्रतिक्रिया[1] कहना चाहिए।

इस प्रकार की प्रतिक्रिया मे जो सीखना होता है उसका कारण स्किनर केवल यह देता है कि कोई भी प्रतिक्रिया जो पुष्टिकरण करती है, मजबूत हो जाती है। यह एक सामान्य प्रवृत्ति है कि प्रतिक्रिया की पुष्टि की जाय। स्किनर के विचार मे यह केवल R है जो मजबूत होती है, न कि S—R बन्धन। यही हल और स्किनर के विचार मे अन्तर है। क्योंकि लीवर दबाने से चूहे को खाना मिलता है, इसलिए चूहे मे दुबारा लीवर को दबाने की प्रवृत्ति होगी। यह होता है कि जब लीवर दबाने की प्रतिक्रिया का प्रबलन हो जाता है तो चूहा खाना मिलने के बाद भी लीवर दबाता रहता है। स्किनर के अनुसार ऐसा इस कारण होता है कि प्रत्येक प्रबलन प्रतिक्रियाओं को संचय कर लेता है, जैसे पानी का प्रत्येक गैलन का एक जलाशय मे जल-संचय करने मे सहायता देता है और यह प्रतिक्रियाएँ जो सचय की हुई हैं, उस समय तक बाहर निकलती रहती हैं जब तक जलाशय खाली न हो जाये, चाहे जलाशय मे पानी का और प्रबलन न भी हो।

अतएव स्किनर के सिद्धान्तों मे उत्सर्जन प्रतिक्रियाएँ मुख्य हैं। किस प्रकार सीखने मे यह क्रियाएँ प्रभावित होती हैं, इसकी व्याख्या करने मे स्किनर प्रबलन के विचार पर बल देता है।

५. प्रयोजनमूलक मनोविज्ञान के आधार पर टॉलमैन का सिद्धान्त[2]

टॉलमैन महोदय के सिद्धान्त को हम मनोविज्ञान के प्रयोजनमूलक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार लक्ष्य का मुख्य महत्व सीखने की क्रिया मे है। कुत्ता सीटी सुनकर दौडना इसलिए सीख लेता है कि वह जानता है कि दौडने से उसे शीघ्र खाना मिल जायेगा और सीटी बजना इस बात का संकेत है कि खाना तैयार है। अतएव खाना जो लक्ष्य है वह उसे जो कुछ भी ज्ञात है उसको प्रयोग करने की प्रेरणा देता है। अतएव उसका दौडना यान्त्रिक नही है वरन् उसके कुछ ज्ञान के आधार पर है। यदि कुत्ता भूखा नही होगा तो वह सीटी की आवाज सुनकर नही दौडेगा।

---

1. Emitted Response. 2. Tolman's Theory based on Purposivism.

टॉलमैन के सिद्धान्त को प्रतीक सीखना[1] भी कहते हैं। वह यह मानते हैं सीखना ज्ञानात्मक मानचित्र बनाना है।[2] एक चूहा जब प्रतिक्रियाएँ करता है उसे अपने मार्ग का पता है, वह एक निश्चित व्यवहार के ढंग प्रबलन द्वारा न सीखता। टॉलमैन के अनुसार पुरस्कार, दण्ड एवं अनुबंधन वह प्रतीक हैं जो को यह बताते हैं कि अमुक रास्ता चुने, अमुक नहीं। वह ऐसे एजेन्ट नहीं हैं जो उन सम्बन्धित कार्यों को करा दें या उन्हें रोक दें।

टॉलमैन और हल के सिद्धान्त मे मुख्य अन्तर यह है कि टॉलमैन के अनुसार एक उद्देश्य को प्राप्त करने मे सीखने वाला प्रतीकों का अनुसरण करता है और व अर्थ सीखता है जबकि हल क्रिया सीखने पर बल देते हैं।

कक्षा के वातावरण मे टॉलमैन का सिद्धान्त अधिक अच्छा प्रतीत होता है जब बालक कोई गणित का प्रश्न हल कर रहा है या साधारण कौशल सीख रहा तो वह यह सब आत्म-संगठित क्रिया के कारण ही कर रहा होता है। यदि शिक्षक विद्यार्थी के व्यवहार मे निरर्थक क्रियाएँ देखता है और उसे प्रयास एवं त्रुटि करते देखना है तो वह यह जानता है कि कुछ न कुछ दोषपूर्ण अवश्य है। बालक शारी ग्रस्त हो या पिछड़ा हुआ हो सकता है जो इस प्रकार की प्रक्रियाएँ करता है। प्रारम्भिक स्तरो के पश्चात् कक्षा सीखने की मुख्य विशेषता यही रही कि इस सीखने मे आत्म-संगठित क्रियाएँ होनी हैं।

अन्त मे, हम कह सकते है कि टॉलमैन के सीखने का सिद्धान्त प्रारम्भिक सीखने मे, और कक्षा मे जटिल सीखने मे एक पुल की भाँति है।

सीखने के विभिन्न सिद्धान्तो का मूल्यांकन[3]

हमने अब तक सीखने के कई सिद्धान्तों का वर्णन किया है। यह सब सिद्धान्त सीखने की क्रिया का स्पष्टीकरण करने की चेष्टा करते हैं, और इस ओर भी संकेत करते हैं कि बालको को समुचित ढंग से सिखाने के लिए किस प्रकार की और कौन सी क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाये। यहाँ हम इन सिद्धान्तों का तथा इनके साथ जो वर्तमान समय मे नये सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं, उनका मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे। यह प्रयास केवल इस दृष्टिकोण से होगा कि शिक्षा प्रदान करने में उनका प्रयोग किस सीमा तक किया जा सकता है।

सीखना हमारे व्यवहार का केवल एक रूप है। इस रूप की ओर मनोविज्ञान के कुछ सम्प्रदाय[4] बहुत बल देते हैं जबकि दूसरे इसको साधारण महत्व ही प्रदान करते हैं। अवयवीवाद जिसमे हम लेविन[5] महोदय के क्षेत्रीय सिद्धान्त[6] को भी रखते हैं, सीखने को कोई विशेष महत्व नहीं देता है। सम्बंधवाद[7] एवं प्रयोजनमूलकवाद[8] इसको अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं।

---

1. Sign learning. 2 Learning consists of the formation cognitive maps. 3. An Evaluation of Different Theories Learning. 4. Schools of Psychology. 5. Lewin 6. The Field Theor 7. Connectionism. 8 Purposivism.

इन सिद्धान्तों के मूल्यांकन द्वारा यह पता लगता है कि यह सब कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं की ओर एक निश्चित दृष्टिकोण पर आधारित हैं। जैसे, हल एवं गुथरी यह मानकर चलते हैं कि स्नायुमंडल[1] सीखने की क्रिया में महत्त्वपूर्ण है। टॉलमैन एवं लेविन इसे कोई महत्त्व नहीं देते। हल महोदय प्रेरणा पर बहुत बल देते हैं जबकि टॉलमैन या गुथरी इसका केवल संकेत करते हैं। इसी प्रकार अन्य समस्याओं पर भी मतभेद है।

एक शिक्षक को इन मतभेदों के बीच कौनसा रास्ता अपनाना चाहिए, कहना कठिन है। यहाँ यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि वह खुले मन से इन सिद्धान्तों को अपनाये और प्रत्येक के महत्त्व को समझे। जब तक भविष्य के अनुसन्धान सीखने की क्रिया का पूर्ण विश्लेषण नहीं कर लेते और एक सर्वमान्य सिद्धान्त जो वैज्ञानिक रूप से सत्य हो, निर्माण नहीं कर लेते, उसे इन विभिन्न मतों को समझकर अपना स्वयं का रास्ता ढूँढना ही होगा।

एक बात की ओर यहाँ शिक्षक का ध्यान दिलाना आवश्यक है। वह यह कि साधारण सीखने की प्रक्रिया में किस प्रकार का सीखना दूसरों से पहले होता है। यहाँ यदि हम परिणाम के नियम और अनुबन्धन के सिद्धान्त की तुलना करें तो यह अधिक सम्भव लगता है कि प्रारम्भिक सीखना अनुबंधन द्वारा होता है, क्योंकि इस स्तर पर बालक को पता नहीं होता कि वह प्रतिक्रिया सफलता की ओर ले जायेगी या असफलता की ओर। अनुबंधन में यह जानने की आवश्यकता नहीं होती। बालक शिक्षक को स्वीकार कर लेता है और उसकी स्वीकृति प्राप्त करने में रुचि लेता है। बालक जब प्रारम्भ में १, २, ३, ४ इत्यादि गिनती सीखता है तो त्रुटि इत्यादि पर कोई ध्यान नहीं देता, वह तो शिक्षक की शाबासी से अधिक सावधान होता है। कुछ समय पश्चात् जब बालक के अनुभव पर्याप्त हो जाते हैं तब वह अपनी सफलता और असफलता को जान जाता है, और अब उसके सीखने में परिणाम का नियम अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

सीखने की कम जटिल क्रियाओं में हल का प्रवलन या सिद्धान्त भी उपयुक्त प्रतीत होता है। हल का सिद्धान्त आवश्यकता की सन्तुष्टि और कमी पर बल देता है। 'प्रेरणा' के अध्याय में हम देख चुके हैं कि कैसे यह कमी सीखने में महत्त्वपूर्ण है और आत्म-आवेष्टन को जन्म देती है।

एक साधारण बालक शीघ्र ही सीखने के उस स्तर पर पहुँच जाता है जिसकी व्याख्या हल के सिद्धान्त के द्वारा की जाती है। एक युवा सीखने वाला अपना मार्ग जानने में तथा अर्थ सीखने में सक्रिय हो जाता है। वह अब भी आवश्यकता की कमी से प्रेरित होता है, किन्तु यह आदत के प्रवलन के तुलनात्मक अब अन्तर्दृष्टि के लिए अधिक प्रेरणादायक होती है।

अब हम यहाँ एक चार्ट दे रहे हैं जो इन सिद्धान्तों के सीखने में महत्त्व को संक्षेप में दिखायेगा। इस चार्ट के तीसरे खाने में सीखने में अन्तरण सिद्धान्त का भी वर्णन है। इस सम्बन्ध में हम अन्तरण वाले अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

---

1. Nervous System.

सीखने के आधुनिक सिद्धान्त तथा शिक्षा के लिए उनका महत्त्व[1]

I सीखने का सिद्धान्त		II मनोवैज्ञानिक तंत्र अथवा दृष्टिकोण[2]	सीखने के अन्तरण का आधार[3]	शिक्षण में बल[4]	मुख्य प्रवर्तक[5]	वर्तम प्रवर्त
	S–R बन्धन	सम्बन्धवाद	समानतत्त्व-सिद्धान्त[7]	वांछित S-R बन्धन को प्राप्त करने को प्रोत्साहित करना	थार्नडाइक[8]	गेट्स स्टीफे
अनुबन्धन सिद्धान्त S–R उत्तेजक प्रतिक्रिया साहचर्य परिवार से	अनुबन्धन बिना प्रबलन के	व्यवहारवाद	अनुबन्धन प्रतिक्रियाएँ अथवा सहज-क्रियाएँ[10]	वांछित प्रतिक्रियाओं का उचित उत्तेजकों से सम्बन्ध स्थापित करने को प्रोत्साहन देना	वाटसन[11]	गुथरी
	प्रबलन एवं अनुबन्धन	प्रबलन	प्रबलन अथवा अनुबन्धित प्रतिक्रियाएँ[13]	प्राणी के पर्यावरण में क्रमानुसार तथा व्यवस्थित परिवर्तन लाना ताकि वांछित प्रतिक्रियाओं की सम्भाविता बढ़ जाय	हल[14]	बी० एफ स्किनर स्पेन्स[1

1. Recent Theories of Learning and their Importance for Education. 2. Psychological system or outlook. 3 Basis for transfer of learning 4. Emphasis in teaching. 5. Main exponents 6. Contemporary components. 7. Identical elements. 8. Thorndike 9. Gates and Stephens. 10. Conditioned responses or reflexes. 11 Watson. 12. Guthre. 13. Reinforced or conditioned response 14. Hull. 15. B. F. Skinner and Spence.

	अन्तर्दृष्टि	गेस्टाल्ट अथवा सम-ग्राहिवाद	अन्तर्दृष्टि[1] का प्रेषण	अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने को प्रोत्साहन	वर्दीमीमर व कोफ्का[2]	कोहलर[3]
संज्ञानात्मक सिद्धान्त जो गेस्टाल्ट परिवार के हैं	उद्देश्य अन्तर्दृष्टि	संरूपण[4]	परीक्षण की हुई अन्तर्दृष्टि[5]	विद्यार्थियों को उच्च स्तर की अन्तर्दृष्टि विकसित करने में सहायता देना	बोड, व्हीलर[6]	बायल्स[7]
	संज्ञानात्मक क्षेत्र	क्षेत्रीय मनोविज्ञान	जीवन-स्थल, अनुभवों या अन्तर्दृष्टि का निरन्तर रहना[8]	विद्यार्थियों को अपने जीवन-स्थल का सब-निर्माण करने तथा समकालीन स्थितियों में नई अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायता देना	लेविन, टॉलमैन[9]	बार-कर, बिग, कॉम्ब, रायट[10]

सारांश

सीखने के सिद्धान्त साहचर्य के नियमों से प्रारम्भ होते हैं। दूसरा सिद्धान्त उत्तेजक प्रतिक्रिया सिद्धान्त है। यह थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित है।

थॉर्नडाइक के तीन मुख्य नियम हैं—(१) तत्परता का नियम, (२) अभ्यास का नियम, तथा (३) परिणाम का नियम। इनके अतिरिक्त पाँच गौण नियम और उसके द्वारा दिये गये हैं। थॉर्नडाइक के अनुसार सीखना एक क्रिया है, जिसमें उत्तेजक और प्रतिक्रिया को सम्बन्धित कर दिया जाता है। थॉर्नडाइक के सिद्धान्तों की

1. Transportation of Insight. 2. Wertheimer, Koffka. 3. Kohler. 4. Configuration. 5. Tested Insight. 6 Bode, Wheeler. 7. Bayles. 8. Continuity of life Spaces, experience or ins' [illegible] Tolman. 10. Barker, Bigge, Combs,

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. अनुबंधित अथवा सम्बद्ध सीखने से आप क्या समझते हैं ? सीखने का यह रूप एक अध्यापक के लिए पाठशाला के सीखने की दशाओं मे उन्नति करने के लिए कहाँ तक उपयोगी हो सकता है ?

२ गेस्टाल्टवाद का सीखने का क्या सिद्धान्त है ? किसी समस्या को सम्पूर्ण क्यो उपस्थित करना चाहिए ?

३ थॉर्नडाइक के सीखने के क्या नियम है, उनकी आलोचना किस आधार पर की गई है ? आप उनकी आलोचना से कहाँ तक सहमत हैं ?

४ सीखने की विभिन्न कौन-कौनसी सीमाएँ हैं ? उनमें से प्रत्येक के हानि या लाभ पर प्रकाश डालिए।

५ इस तथ्य की आलोचना कीजिए—"हम पानी में तैरना जाडो मे सीखते हैं और ग्रीष्म काल मे बर्फ पर स्केट करना।"

६ प्रयोगात्मक प्रमाण देते हुए प्रयास एव त्रुटि तथा अन्तर्दृष्टि के द्वारा सीखने मे अन्तर स्पष्ट कीजिए। सीखने मे समग्राकृतिवाद मत की क्या महत्ता है ?

७ इस कथन का मूल्याङ्कन कीजिए—"सीखना रचना का निर्माण करना है।"

८. निम्न कथनों की शिक्षा-मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से आलोचना कीजिए अथवा समर्थन कीजिए

(i) आप एक घोडे को पानी के पास ले जा सकते हैं किन्तु आप उसे पानी नही पिला सकते।

(ii) अभ्यास पारंगत बनाता है।

(iii) आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

(iv) आप एक बूढे कुत्ते को नई तरकीबें नहीं सिखा सकते।

(v) आप मानव-प्रकृति नही बदल सकते।

(vi) जब तर्क व्यक्ति के विरुद्ध है तो वह शीघ्र तर्क के विरुद्ध हो जायेगा।

१५ स्मृति तथा विस्मृति
MEMORY & FORGETTING

आपने मनुष्यों को एक बालक या तरुण के विषय में यह कहते हुए सुना होगा कि वह अच्छी स्मरण-शक्ति रखता है। इस बात के कहने से उनका स्पष्ट तात्पर्य क्या है, यह विचारने योग्य है। हम इस बात को सुनकर यह समझने लगते हैं कि बालक या तरुण बड़ी सुगमता से किसी वस्तु को सीख लेता है, या वह उसे लम्बी अवधि तक स्मरण रख सकता है, अथवा जिस वस्तु को उसने सीखा है, उसका बड़ी आसानी से पुनर्स्मरण कर सकता है। अतएव अच्छी स्मरण-शक्ति से हमारा अर्थ सीखना, याद करना अथवा पुनर्स्मरण है।

अब हम कुछ विस्तार से स्मृति की प्रकृति का अध्ययन करेंगे।

स्मृति की प्रकृति

प्रत्येक व्यक्ति इस बात को बड़ी आसानी से समझ सकता है कि स्मृति का क्या तात्पर्य है। परन्तु बहुत-से मनोवैज्ञानिको द्वारा यथारीतिवत् दी गई इसकी परिभाषाएँ एक-दूसरे से मेल नहीं खाती। स्टाउट इसकी परिभाषा देते हुए कहता है कि यह "एक आदर्श पुनर्स्मरण है—उस सीमा तक जहाँ तक कि यह आदर्श पुनर्स्मरण हमारे पूर्व अनुभवों को यथासम्भव उसी रूप और क्रम में पुन याद करता है जिसमें कि उनका पहले अनुभव किया गया था।"[1] वुडवर्थ कहता है कि "स्मृति उस वस्तु को जिसे कि पहले सीखा गया है, स्मरण रखने से सम्बन्धित होती है।"[2] वह स्मृति के अन्तर्गत सीखने, धारण करने की शक्ति, पुनर्स्मरण करने और पहचानने की

1. Stout defines memory, "as the ideal revival so far as ideal revival is merely reproductive in which the object of past experience are reinstated as for as possible in the order and manner of their original occurence."

2. Memory consists in remembering what has previously learned." —*Woodworth*

शक्ति को समझता है। प्रो० स्पीयरमैन अपना विचार प्रकट करता हुआ कहता है— "ज्ञानात्मक अनुभूतिपूर्ण घटनाएँ हस्तान्तरित होने पर ऐसे संस्कारों की स्थापना करती हैं जो उन घटनाओं को पुन: स्मरण करने में सरलता प्रदान करते हैं।"[1]

हम स्मृति की कोई भी यथारीतिपूर्ण परिभाषा नहीं देना चाहते। फिर हम कह सकते हैं कि स्मृति यथावत् प्राप्त पूर्व अनुभवों को उसी क्रम से पुन: याद करने से सम्बन्ध रखती है। यह एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमे संस्कारो का स्थापित करना, उनका धारण करना और उन अनुभवो को पुन: स्मरण करना जो हस्तांतरित हो चुके हैं, होता है। इस प्रकार स्मृति को समझने के लिए यह अच्छा होगा कि यदि स्मृति-प्रवृत्ति के अन्तर्गत आये खण्डो को समझ लिया जाय। अब हम यहाँ उन खण्डो का अध्ययन करेंगे।

स्मृति के खण्ड[2]

उपर्युक्त परिभाषाओ के द्वारा हम बडी आसानी से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि स्मृति के अन्तर्गत चार मुख्य खण्ड हैं—सीखना, धारण, पुनर्स्मरण, और पहचानना। इन चारो मे से प्रत्येक समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। किसी भी घटना, अनुभव या क्रिया का पहले बोध होता है, फिर इसको मस्तिष्क में इसी या अन्य रूप में धारण किया जाता है। स्मृति का तृतीय खड 'पुनर्स्मरण' है, जिसके अन्तर्गत भविष्य में किसी भी अवसर पर किसी घटना या अनुभव इत्यादि का तुरन्त स्मरण कर लिया जाता है। अन्तिम खड उसी अनुभव इत्यादि को, जिसे सीखा या धारण किया जाता है, पहचान लेने से सम्बन्धित है। सीखने का सरल उदाहरण, किसी व्यक्ति के नाम द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। जब आप किसी व्यक्त से रास्ते मे मिलते हैं और पहचानते हैं कि उसका नाम मोहन है, तब आपको स्मृति की चारो प्रवृतियो के अन्तर्गत कार्य करना पडता है। इस व्यक्ति का नाम आपके द्वारा पहले 'सीखा' जाता है और तब 'धारण' किया जाता है। फिर उससे दुबारा मिलने के समय आप उसके नाम को 'स्मरण' करते हैं, और इस प्रकार स्मरण करने से आप 'पहचान' जाते हैं कि उस विशेष व्यक्ति का नाम, जिससे आप मिल चुके हैं, मोहन है।

हम प्रथम खण्ड 'सीखने' के विषय में पिछले तीन अध्यायो में विवेचन कर चुके हैं। अब हम यहाँ संक्षेप में अन्य तीन खण्डो के विषय मे अध्ययन करेंगे।

धारण

स्मृति बहुत बडी मात्रा मे, धारण करने की शक्ति पर निर्भर रहती है। किसी चीज को सीखने के पश्चात् उसे मस्तिष्क मे धारण कर लिया जाता है। धारण करने

1. "Cognitive e[illegible] occu[illegible]stablish dispositions which facilitate [illegible] —*Spearman.*

(स) रुचि—जिस घटना या अनुभव में आप रुचि रखते हैं, उसे स्मरण रखते हैं। लेकिन जिस पाठ में आप अरुचि लेते हैं, उसे अच्छी तरह सीख नहीं सकते। इस प्रकार उचित धारण-शक्ति के लिए अध्यापक को बालक की रुचि के प्रति ध्यान रखना चाहिए।

(द) विचार तथा तर्क—धारण-शक्ति के अन्तर्गत विचार का उतना ही महत्त्व है, जितना कि रुचि का। जब हम किसी समस्या पर विचार करते हैं, तो हम उसे अच्छी तरह सीख लेते हैं, और यह हमारे मस्तिष्क द्वारा अच्छी प्रकार धारण कर ली जाती है।

धारण-शक्ति के प्रमाण— धारण-शक्ति को तीन विधियों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है—(१) जब हम किसी परीक्षा को दे रहे हैं, तो पाठ के मुख्य तत्त्वों का स्मरण करते हैं। जब लेख के प्रकार की परीक्षा में कोई प्रश्न पूछा जाता है तो तुरन्त एक प्रकार का उत्तेजक बहुत जल्दी सीखे हुए उत्तर का स्मरण कराता है। लेकिन यह स्मरण करने की क्रिया उसी समय सम्भव है जब मस्तिष्क के अन्दर उस पाठ को धारण कर लिया गया हो। (२) वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में हमसे उन उत्तरों के सामने 'स' लिखने के लिए कहा जाता है जो सही हैं, और 'म' उनके सामने जो मिथ्या हैं। इसे करते हुए हम सीखे हुए पाठ से लिये गए विवरण को पहचानते हैं और उन विवरणों में से जो पाठ के अन्दर नहीं हैं, उनको अलग करते हैं जो पाठ के अन्दर हैं। यह पहचानने का कार्य तभी तक सम्भव है जब तक कि सीखा गया पाठ मस्तिष्क के अन्दर धारण किया हुआ है। और अन्त में (३) किसी पुस्तक के उस अंश को, जिसे बिलकुल भुला दिया गया है, दुबारा सीखने में हम समय की बचत करते हैं। यह समय की बचत केवल इसी आधार पर कि जो कुछ भी सीखा गया है, मस्तिष्क के अन्दर किसी न किसी रूप में धारण कर लिया गया है, व्यक्त की जा सकती है। इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि धारण-शक्ति मनुष्य के अन्दर विद्यमान है।

पुनस्मरण

पुनस्मरण उन अनुभवों की मानसिक चेतना-प्राप्ति है, जिन्हें सीखा जा चुका है। यह धारण-शक्ति पर निर्भर रहता है। यह स्मृति-चिन्हों का याद करना होता है। यदि किसी वस्तु को अच्छी तरह सीखा गया है और उचित रूप से धारण कर लिया गया है तो इसे बड़ी आसानी से स्मरण किया जा सकता है। परन्तु प्रायः ऐसा होता है कि जिस विचार को पूर्णतः अच्छी प्रकार से धारण कर लिया गया है, किसी विशेष समय पर उसे स्मरण करना सम्भव नहीं होता। ऐसा कभी-कभी संवेगात्मक तनाव की वजह से होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक बच्चा अध्यापक से डरता है तो वह किसी भी प्रकार अपने पाठ को अच्छी तरह सीख तो लेता है, लेकिन जब अध्यापक इस पाठ के विषय में कक्षा के अन्दर कोई प्रश्न पूछता है, तो वह उसे पुनस्मरण करने में असमर्थ रहता है। कभी-कभी परीक्षा के मध्य हम सम्पूर्ण उत्तर को पुनस्मरण करने में असफल रहते हैं, यद्यपि हमारा मस्तिष्क सदैव इस बात को कहता

है कि हम इस उत्तर को जिसे हमने सीखा है, अच्छी तरह जानते हैं। यह सब परीक्षा से आत्मविश्वास होने की वजह से है।

पुनर्स्मरण दो प्रकार का होता है—(i) स्वभावोत्पन्न[1], और (ii) विमर्शपूर्ण[2]। स्वाभावोत्पन्न पुनर्स्मरण, ख्याली पुलाव[3] की स्थिति में, जब हम अपने विचारों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर देते हैं, देखा जा सकता है। सोने के समय या खाना खाने के पश्चात् हम ऐसे प्रत्ययो[4] और विचारो से भर जाते हैं, जो भूतकाल के अनुभवों से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार ऐसा पुनर्स्मरण जिसके लिए हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, स्वाभावोत्पन्न कहलाता है। ऐसा पुनर्स्मरण, जिसके अन्तर्गत हमें अनुभव इत्यादि को याद रखने के लिए चैतन्य होकर प्रयास करना पड़ता है, विमर्शपूर्ण पुनर्स्मरण कहलाता है। परीक्षा के समय जब हम किसी प्रश्न के उत्तर को स्मरण करने के लिए प्रयास करते हैं तो यह विमर्शपूर्ण पुनर्स्मरण होता है।

पुनर्स्मरण, प्रत्ययों के सम्बन्ध पर भी अवलम्बित रहता है। यहाँ हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि प्रत्ययों के सम्बन्ध से हमारा क्या तात्पर्य है?

प्रत्ययों का साहचर्य[5]

प्रत्ययो के परस्पर सम्बन्ध पर ही हम इस बात का कारण आधारित कर सकते हैं कि हमारा एक प्रत्यय दूसरे प्रत्यय को क्यों स्थान देता है, और वह दूसरा प्रत्यय किसी तीसरे प्रत्यय को क्यों स्थान देता है? जब हम तुलसीदास के नाम को स्मरण करते हैं, तो हमें तुरन्त ही 'रामायण' का स्मरण हो आता है या जब हम ताजमहल के विषय में बात करते हैं, तो यह स्मरण हो आता है कि वह संगमरमर का बना है। यह इसी तथ्य की वजह से है कि ये प्रत्यय एक-दूसरे से दृढ़तापूर्वक सम्बद्ध रहते हैं। जब हम ताज के विषय में बात करते हैं तो उस संगमरमर की चर्चा भी चलाते हैं जिसका यह बना हुआ है, और जब कभी भी भविष्य में ताज का नाम हमारे सम्मुख आता है, हमें तुरन्त संगमरमर का स्मरण हो आता है। इसी प्रकार वह विचार जो दूसरों के विरुद्ध है, स्मरण करने से उसके विरोधी विचार हमारे मस्तिष्क में उभर आते हैं। उदाहरण के लिए, किसी बहुत लम्बे आदमी को देखकर हमें एक छोटे कद के आदमी का स्मरण हो आता है।

प्रत्ययों के साहचर्य पर नियन्त्रण रखने वाले बहुत-से नियम हैं। उन सब में (i) साम्य-नियम[6], (ii) वैषम्य-नियम[7], तथा (iii) संनिधि-नियम[8] प्रमुख हैं।

(i) **साम्य-नियम**—यह इस बात की व्याख्या करता है कि किसी एक वस्तु को देखकर हमें उसी के अनुरूप दूसरी वस्तु का स्मरण क्यों हो आता है?

---

1. Spontaneous. 2. Deliberate 3. Reverie. 4. Ideas. 5. Association of Ideas. 6 Law of Similarity. 7. Law of Contrast 8. Law of Contiguity.

उदाहरणार्थ, एक भाई का चेहरा देखकर, जो अपने दूसरे भाई के लगभग अनुरूप सा है, दूसरे भाई को अपने मस्तिष्क में स्मरण कर लेने के पश्चात् आप उससे पूछते हैं—"क्या आप अमुक व्यक्ति के भाई हैं ?" या "आपका भाई कहाँ है ?"

(ii) वैषम्य-नियम—जिस प्रकार समान वस्तुएँ हमें एक-दूसरे का ध्यान दिलाती हैं उसी प्रकार वे वस्तुएँ जो एक-दूसरे के विपरीत हैं, हमे एक वस्तु का स्मरण कराती हैं, जबकि दूसरी हमारे सम्मुख है। उदाहरणार्थ, किसी सुन्दर वस्तु को देखकर हमें एक कुरूप चेहरे का स्मरण आ जाता है।

(iii) संनिधि-नियम—जब हम दो अनुभवों को एक साथ ही या एक-दूसरे के अत्यन्त समीप प्राप्त करते हैं तो एक का ध्यान करने में हमें दूसरा स्मरण हो आता है। इसका कारण अनुभवों की समीपता है। यह एक अनुभव के पुनर्स्मरण होने पर दूसरे अनुभव की याद की प्राप्ति समय या स्थान के अन्दर अनुभवों की समीपता के कारण होती है। उदाहरणार्थ, जब कभी भी मैं ताजमहल को देखने जाता हूँ, मैं एक चपरासी विशेष को दरवाजे पर खड़ा हुआ पाता हूँ। अत अब जब भी मुझे ताज का ध्यान दिलाया जायगा, मुझे वह चपरासी स्मरण हो आयेगा। जब भी मैं ताज को जाता हूँ, मैं उसे देखता हूँ, और इस प्रकार ये दोनो वस्तुएँ एक साथ ही एक विशेष स्थान पर प्राप्त होने की वजह से मेरे मस्तिष्क में सम्मिलित हो जाती हैं। यही कारण है कि एक वस्तु दूसरी का स्मरण कराती है।

आप इस बात का निरीक्षण करते हैं कि १० बजे मिस्टर एक्स रोज दफ्तर के लिए जाते हैं। जिस दिन १० बजे आप उन्हें जाता हुआ नहीं देखेंगे, आपको तुरन्त उनका ध्यान हो आयगा। यह सब इसी सम्पर्कता की वजह है, जो मिस्टर एक्स और समय-विशेष के मध्य स्थापित हो गई।

एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि साम्य और संनिधि के नियम ही आवश्यक हैं, वैषम्य का नियम तो समानता के नियम के अन्दर ही निहित रहता है। अत. इस प्रकार उसे अलग नियम नहीं समझना चाहिए।

उपर्युक्त तीन महत्त्वपूर्ण नियमों के अतिरिक्त, अन्य भी बहुत-से नियम हैं जो सम्मेलन की दृढ़ता को शक्ति प्रदान करने और परिणामत. स्मरण करने की क्रिया को विकसित करने के उत्तरदायी हैं। वे निम्नलिखित हैं

(i) आसन्नकाल-नियम[1]—"एक प्रत्यय दूसरे प्रत्यय का, जिसके साथ वह अत्यन्त नवीन रूप से सम्बन्धित रहता है, स्मरण कराता है।" 'उपन्यास' शब्द हमे एक ऐसे विशेष उपन्यास का ध्यान दिलाता है, जिसे हमने अभी हाल ही में पढ़ा है।

(ii) आवृत्ति का नियम[2]—"एक प्रत्यय दूसरे प्रत्यय को, जिसके साथ वह पूर्वकाल में बहुधा बारम्बार सम्बन्धित रहता है, स्मरण कराता है।" दूध सफेद

1. Law of Recency. 2. Law of Frequency.

दिखाई पड़ता है, अतः जितनी बार भी हम पुष्प के विषय में ध्यान करते हैं, हमें उसके सौन्दर्य का स्मरण हो आता है।

(iii) प्राथमिकता का नियम[1]—प्राथमिक प्रभाव तथा अनुभव काफी अवधि तक रह जाते हैं और उन्हें आसानी से स्मरण किया जा सकता है। हम शिक्षक या व्यक्ति के पहले दिन को अच्छी तरह याद रखते हैं और उसे आसानी से स्मरण कर सकते हैं।

(iv) रुचि की तीव्रता या सजीवता का नियम[2]—अधिक स्पष्ट प्रभाव या सजा-संवार, अपने वातावरण को अधिक सजीव रखता है और अत्यन्त आसानी से इसे स्मरण किया जा सकता है। मुझे अब तक बहुत-से विद्यार्थियों के साथ महात्मा गांधी जी से हुई मुलाकात का, जबकि वे आगरा से होकर गुजर रहे थे, अच्छी तरह स्मरण है यद्यपि इसे बहुत समय गुजर चुका है। इसका एकमात्र कारण प्रभाव की सजीवता और रुचि की तीव्रता है, जिसको मैंने 'राष्ट्र-पिता' के साथ हुई उस मुलाकात में अनुभव किया।

इन नियमों में कौन किस समय-विशेष पर सक्रिय होते हैं, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। मानसिक प्रकृति जटिल है, इसलिए यह आसान नहीं कि हम एक विशेष नियम का चुनाव कर लें, जो यह बता सके कि इन परिस्थितियों में ये नियम लागू होते हैं। प्रायः इनमें से बहुत-से नियम एक ही समय सक्रिय हो सकते हैं। अध्यापक को बालक के सीखने की क्रिया-प्रणालियों का संगठन करने के लिए इन सभी नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

पहचानना

पहचानना, उस वस्तु या उद्देश्य का जानना होता है जिसे पूर्व समय में धारण कर लिया गया है। पहचानने में एक प्रकार की चेतना होती है, जिसके द्वारा जिस चीज को पहले जाना जा चुका है, उसे फिर जान लिया जाता है। पहचानना, सामान्यतः की अनिदिष्ट भावना के रूप में हो सकता है, किन्तु वस्तु को देखकर आपके मन में यह विचार उठता है कि आपने इस वस्तु को, जब आप इसे नहीं जानते थे, कहीं देखा है और इसे जाना है, या पहचानना किसी वस्तु का पूर्व-निश्चित परिचय पाना हो सकता है। आप किसी व्यक्ति से मिलते हैं और अपने एक गहरे दोस्त की तरह उसे पहचानते हैं। मैक्डूगल उपलक्षित[3] तथा स्पष्ट[4] पहचानने में अन्तर बताता है। उपलक्षित मौलिक होता है, क्योंकि यह निम्नवर्गीय प्राणियों की मानसिक क्रिया-दक्षताओं को विशिष्टता प्रदान करता है। स्पष्ट पहचानना मानसिक उद्भव की उच्च श्रेणी को प्रस्तुत करता है, क्योंकि यह उच्चवर्गीय प्राणियों की मानसिक क्रियाओं को विशिष्ट बनाता है।

---

1. Law of Primacy, 2. Law of Vividness or the Intensity Interest 3. Implicit, 4. Explicit.

पहचानने और स्मरण करने की दोनों प्रवृत्तियों में भिन्नता है। पहचानने के अन्तर्गत अनुरूप अनुभव के भाव-बोध द्वारा उद्देश्य की सहायता मिलती है, पर स्मरण करने में नहीं। पहचानना किसी वर्तमान वस्तु का स्मरण करना, तथा जैसे आपने पहले इस वस्तु को कहीं देखा है, पूरी तरह समझना होता है। खूब अच्छी तरह पहचाना, पूर्व बोधों की परिस्थितियों के स्मरण करने को अन्तर्ग्रस्त करता है।

अनुरूपता की भावना पहचानने की शक्ति का अवलम्बन है, और पहचानने के कार्य में एक आवश्यक भाग लेती है। लेकिन इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि अनुरूपता की इस भावना की अपेक्षा, पहचानने का कार्य अधिक है। यह तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि पहचानी हुई वस्तु को हमारे भूत-अनुभव के अन्दर स्थापित नहीं कर दिया जाता।

स्मृति के प्रकार[1]

'स्मृति', बर्गसन[2] के अनुसार, दो प्रकार की होती है (१) वास्तविक स्मृति,[3] और (२) आदतजन्य स्मृति[4]। आदतजन्य स्मृति केवल रटी हुई वस्तुओं पर अवलम्बित होती है, और वास्तविक स्मृति अनाश्रित-स्मरणों पर निर्भर रहती है। इसके अन्तर्गत भूत-स्थितियों की मानसिक तस्वीरें या प्रतिबिम्ब आते हैं, जबकि आदतजन्य स्मृति में इसके लिए कोई स्थान नहीं होता है। यह रटने द्वारा किसी वस्तु को सीखना मात्र होती है, इसलिए आदतजन्य स्मृति बहुत-से अवसरों पर 'रटने की स्मृति' कहलाती है।

बर्गसन ने इस विभेद का निर्णय करने में यह विचार किया है कि आदतजन्य स्मृति शारीरिक, तथा वास्तविक स्मृति मानसिक प्रवृत्ति होती है। आदतजन्य स्मृति यान्त्रिक होती है। यह वह स्मृति है जिसका विकास समान वस्तु को प्रत्येक बार दुहराने से होता है, और इस प्रकार वस्तु इतनी अच्छी तरह याद हो जाती है कि इसका स्मरण बिना किसी प्रयास के किया जा सकता है। इस प्रकार की स्मृति बौद्धिक योजना से सम्बन्धित नहीं होती। सूझ और समझने के लिए इसके अन्तर्गत कोई स्थान नहीं होता। यान्त्रिक पुनरावृत्ति, बिना समझने के सक्रिय होती है। इस प्रकार की स्मृति के उदाहरण अङ्कगणित के रूप की अनुक्रमणिका का सीखना, कविताओं का हार्दिक सीखना या गद्य की किताबों की पूर्ण रूप से पुनरावृत्ति मात्र है। इस प्रकार की स्मृति पर प्राचीन समय में बहुत बल दिया जाता था। परन्तु आजकल यद्यपि उसकी कुछ उपयोगिताएँ 'सीखने' के अन्तर्गत हैं, फिर भी इसको कम महत्त्व दिया जाता है। उदाहरणार्थ, वाद-विवाद या व्याख्या में इस प्रकार की स्मृति बहुत सहायक होती है। एक बालक ने यदि पूर्ण रूप से वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिए निश्चित विषयों को याद कर लिया है, तो वह प्रतियोगिता के समय बड़ी आसानी से बिना किसी हिचकिचाहट के बोलता चला जायगा। इस प्रकार की स्मृति समय की

1. Kinds of Memory. 2. Bergson. 3. True Memory. 4. Habit Memory.

भी बचत करती है क्योंकि कोई भी वस्तु, जिसे रटने के द्वारा पूर्णरूपेण सीख लिया गया है, बड़ी आसानी से पुनस्मरण की जा सकती है। परन्तु इसकी उपयोगिता सीमित है। यह विशिष्ट होती है और मस्तिष्क के विकास में सहायक नहीं होती। इसका प्रयोग उस समय उपयोगी हो सकता है जबकि जिस वस्तु को सीखा गया है, उसको समझ कर रटा जाय।

दूसरी ओर प्रतिभा-संयुक्त स्मृति, जो वास्तविक स्मृति कहलाती है, उस प्रकार की स्मृति है जिसका कि महान् उपयोग है। यह यांत्रिक पुनरावृत्ति मात्र नहीं होती। इस प्रकार की स्मृति का विकास करने के लिए सम्मेलन के नियमों का उपयोग किया जाता है। मस्तिष्क में स्मृति-चिह्नों का निर्माण होता है और ये इन्हें स्थायी बना देते हैं। इस प्रकार की स्मृति में रुचि का अंश बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। ऐसी स्मृति में शिक्षा का स्थानान्तरण सम्भव है और इस प्रकार मस्तिष्क के विकास में यह सहायक होता है।

ऊपर वर्णन किया हुआ स्मृति का विभाग अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। पर नॅन महोदय इसका विरोध करते हैं। वह कहते हैं कि "बर्गसन का विभाजन शरीर और मन को पृथक करता है। वह कहते हैं कि बर्गसन के दृष्टिकोण के अनुसार यान्त्रिक सम्मेलन शारीरिक है, यह विशेषतया नाड़ी-मण्डल के प्रभाव के कारण है, जबकि वास्तविक स्मृति आत्मिक शक्तियों की क्रियाशीलता है जो इस शारीरिक यांत्रिकता को अपने उद्देश्य के लिए प्रयोग में लाती है।" इसका तात्पर्य है कि यान्त्रिक सम्मेलन 'मृतक शरीर' से सम्बन्धित होता है, जबकि वास्तविक स्मृति 'मृतक शरीर' में निहित प्रेत से संयुक्त होती है।"[1] उनके अनुसार यह स्थिति शरीर और मन को पृथक करती है, और इस प्रकार के दृष्टिकोण से वह सहमत नहीं हैं। इस दृष्टिकोण के सम्बन्ध में रोस महोदय निर्देश करते हैं कि इन दोनों प्रकार की स्मृति में भिन्नता उनकी स्थित मात्रा में है, न कि उनके प्रकार में। जब हम किसी वस्तु के द्वारा याद कर रहे हैं, तब भी हमारे अन्दर वास्तविक सीखने का स्मरण हो सकता है, और सम्भवत ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी आदतजन्य स्मृति अपने प्रारम्भिक काल में प्रतिबिम्ब रहित नहीं होती है।

रटने के द्वारा सीखने के प्रयोग

'रटने के द्वारा सीखने' पर पिछली शताब्दी के अन्त में जर्मन मनोवैज्ञानिक एबिंगहौस[2] द्वारा कुछ प्रयोग किये गये। एबिंगहौस के अधिकांश प्रयोग उसके स्वयं के आचरण से सम्बन्धित हैं। वह पदार्थ जिसे इन प्रयोगों में स्मरण किया गया, अनर्गल सार्थहीन शब्दांशों से सम्बन्धित था। उदाहरण के लिए, ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया, जैसे—लोम[3], बफ[4], सेब[5], गार[6] इत्यादि। इनका निर्माण जहाँ तक

---

1. "Mechanical association belonging to the corps and true memory to the ghost in the corpse." —Nunn

2. Ebbinghaus 3. Lom. 4. Buf. 5. Seb. 6. Gar.

प्रम्भव हुआ था, वास्तविक शब्दों की समरूपता को हटाने के लिए किया गया था। एबिगहौस के अधिकांश कार्य मुख्यतया शैक्षिक उपयोग ही रखते हैं न कि व्यावहारिक, क्योंकि अनर्गल वार्तापूर्ण शब्दांशों का स्मरण जीवन की किसी भी वास्तविक क्रिया से सम्बन्धित नहीं होता है। इन प्रयोगों द्वारा जो मुख्य तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं, वह निम्न हैं

(i) जिस प्रकार आशा की जाती है, स्मरण करने की सरलता पदार्थ की अर्थपूर्णता के साथ सीधा अनुपात रखती है। कविता की एक कड़ी के सीखने में कम समय लगेगा, जबकि अनर्गल वार्तापूर्ण शब्दांशों की समान संख्या के सीखने में उससे दस गुने के लगभग दोहराना पड़ेगा।

(ii) विस्मृति, सर्वप्रथम सीखने के पश्चात् तुरन्त ही बड़ी द्रुतगामी होती है और इसके पश्चात् मन्द पड़ जाती है।

(iii) तीसरी बात जो एबिगहौस के पश्चात् के अन्वेषकों द्वारा बताई गई वह यह है कि वे व्यक्ति जो अनर्गल वार्तापूर्ण शब्दांशों अथवा इसी प्रकार के निरर्थक पदार्थों को याद करना चाहते हैं, अव्यवस्थापूर्ण शब्दांशों इत्यादि के अन्दर प्रायः सदैव एक प्रकार की व्यवस्था का निर्माण करते हैं जो सीखने के कार्य को सुगमता प्रदान करती है। यदि कोई शब्दांश (कितना ही अलग से) एक वास्तविक शब्द की समरूपता रखता है, तो यह समरूपता अधिकृत कर ली जाती है, और वह शब्दांश तालिका के अन्दर महत्वपूर्ण बन जाता है। कुछ विशेष शब्दांश जोर देकर बोले जाते हैं और उनको ताल या लयपूर्ण प्रतिकृति में सक्रिय किया जाता है। संक्षेप में, सदैव यह चेष्टा की जाती है कि जो कुछ हम याद करें, उसमें किसी प्रकार की व्यवस्था हो या उसके कुछ अर्थ हों या कम-से-कम उसका समझ में आने वाला रूप हो।

तात्कालिक तथा अधिक समय तक अनवरत रहने वाली स्मृति[1]

तात्कालिक स्मृति तथा अधिक समय तक स्थिर रहने वाली स्मृति (जो कभी-कभी स्थायी स्मृति भी कहलाती है) में स्मृति का एक दूसरा विभेद भी किया जा सकता है। तात्कालिक स्मृति के विषय में कहा जाता है कि यह उम्र के साथ विकसित होती है। मैनमर्न[2] ने पता लगाया कि किशोरावस्था के अन्तर्गत अधिकांशतः ११ तथा १७ वर्ष के मध्य में तात्कालिक स्मृति का विकास बड़ी तेजी से होता है। एक व्यक्ति में २४ वर्ष की उम्र पर इस स्मृति का विकास पूर्ण हो जाता है। तात्कालिक स्मृति से तात्पर्य किसी वस्तु को सीखने के पश्चात् तुरन्त उसकी प्रतिकृति बनाने से है, और स्थायी स्मृति का तात्पर्य निश्चित समय के व्यतीत होने के पश्चात् सीखे हुए पदार्थ की प्रतिकृति बनाना है। तात्कालिक स्मृति का परीक्षण उन शब्दों

---

1. Immediate & Prolonged Memory. 2. Meumann.

या आकृतियों की शृङ्खलाओं से किया जा सकता है, जो परीक्षण की बिने प्रकार[1] मे प्रयोग किये जाते हैं। उदाहरणार्थ—

२ ६ ४
३ ८ २ ५
६ ७ ४ ८ ६
१ ५ ७ ६ ३ ४
२ ८ ७ १ ६ ५ ३

ऐसा देखा गया है कि बालक को ४ संख्याओं की पढ़ाई हुई (एक संख्या को एक सैकिण्ड की दर से) प्रतिलिपि ५ वर्ष की औसत आयु वाले शिष्यों द्वारा यदि पुन: दोहरा दी जाती है तो यह उनकी तत्कालीन स्मृति की उत्तमता का संकेत करती है। इसी प्रकार ५ संख्या वाली ६ वर्ष की आयु वालों तथा ७ संख्या वाली ११ तथा १२ वर्ष की आयु के बालकों द्वारा पुन: दोहरा देना तात्कालिक स्मृति का उचित परीक्षण है।

इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि विभिन्न व्यक्तियों का कार्य-सम्पादन भिन्न-भिन्न होता है। एक बालक तात्कालिक स्मृति मे अशक्त हो सकता है, परन्तु स्थायी स्मृति के दृष्टिकोण से उसकी बुद्धि मे सबलता हो सकती है। दूसरी तरफ एक बालक किसी सीखी हुई वस्तु को समय की अधिक अवधि तक स्मरण रखने मे असफल हो सकता है, जबकि तत्काल ही उस वस्तु की प्रतिलिपि वह बड़ी आसानी से बना सकता है। यही कारण है कि कुछ लड़के परीक्षा से ठीक पूर्व एक ही दिन व रात में पढ़कर परीक्षा मे अच्छी प्रकार से सफल होते हैं। दूसरी ओर बहुत-से ऐसे लड़के हैं, जो इस प्रकार पढ़ने से बड़ी बुरी तरह असफल होते हैं। उन्हें सीखने के लिए समय की लम्बी अवधि की आवश्यकता होती है।

अच्छी स्मृति के लक्षण[2]

अच्छी स्मृति के बहुत-से लक्षण हैं। उनमे से कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जो निम्न हैं :

(i) अच्छी धारणा-शक्ति—यदि एक बालक अपने पाठ को बहुत समय तक स्मरण रख सकता है, तो वह उस बालक की अपेक्षा जिसकी धारण-शक्ति कम है, अधिक बुद्धिमान समझा जायगा। इसका तात्पर्य यह है कि बालक को अच्छी स्थायी स्मृति रखनी चाहिए। इस प्रकार का बालक परीक्षा मे अच्छी तरह उत्तीर्ण होगा।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि धारण-शक्ति तथा तात्कालिक स्मृति मे महान् व्यक्तिगत विभिन्नताएँ होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यदि हम प्रयोग को ६ वर्ष की आयु वाले १,००० लड़कों के मध्य करें, जिसमें कुछ अङ्कों की श्रेणी को पढ़ा जाय तो बहुमत उनमें से ५ अङ्कों की प्रतिलिपि दोहराने के योग्य होगा। कुछ बच्चे तो उनमें से केवल ३ अङ्कों की प्रतिलिपि दोहराने के ही योग्य होंगे, जबकि

1. Binet Type 2. Marks of Good Memory.

कुछ ६ अङ्कों की प्रतिलिपि बना सकेंगे। विद्यार्थियों के एक समुदाय में यह पाया गया है कि निरर्थक शब्दों की एक शृङ्खला को, एक तेज सीखने वाला ८ बार में याद कर सकता है, जबकि मन्द सीखने तथा याद करने वाला इसको ३७ बार में याद करेगा।

(ii) शीघ्र पुनर्स्मरण—अच्छी स्मृति का दूसरा लक्षण अति शीघ्र पुनर्स्मरण है। यदि आप एक वस्तु को बडी शीघ्र पुनर्स्मरण कर सकते हैं, तो आप एक घटना या अनुभव को भी बड़ी अच्छी प्रकार समझने के योग्य हो जायेंगे। एक अध्यापक जिसका पुनर्स्मरण अच्छा है, व्याख्यान देने में फलीभूत होगा।

(iii) शीघ्र पहचानना—शीघ्र पुनर्स्मरण ही पर्याप्त नहीं है, शीघ्र पहचानना भी अच्छी स्मृति के लिए आवश्यक है। जब तक आप उस विचार को जिसका आपके मस्तिष्क में पुनर्स्मरण कर लिया गया है, पहचान नहीं लेते, स्थिति की अच्छी तरह जानकारी प्राप्त नहीं करते, तो आप उस कार्य के करने में असफल होंगे। उदाहरणार्थ, परीक्षा के समय एक प्रश्न का उत्तर देने के लिए आपके मस्तिष्क में बहुत-से उत्तर आते हैं। जब तक आप इस बात को शीघ्र नहीं पहचान लेंगे कि कौनसा विचार उचित है, आप ठीक उत्तर नियत समय के अन्दर लिखने में असफल रहेंगे।

(iv) स्पष्ट पहचानना—चौथा खण्ड, तीसरे से सम्बन्धित-सा है। एक विचार का स्पष्ट पहचानना उतना ही आवश्यक है, जितना कि अति शीघ्र पहचानना। अतः एक मनुष्य को उचित तथा आवश्यक वस्तुओं का स्मरण रखना चाहिए।

स्मरण करने के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ

(i) रुचि—अच्छी प्रकार स्मरण करने के लिए वस्तु या लक्ष्य के प्रति रुचि का होना आवश्यक है। अतः बालकों को सावधानी से और विषय को रुचिकर बना कर पढ़ाना चाहिए।

(ii) प्रेरणा—सीखने में प्रेरणा का होना भी आवश्यक है। प्रेरणा, रुचि का जनन करती है। इस प्रकार स्मरण करने में प्रेरणा उचित स्थिति को उत्पन्न करती है।

(iii) अनुबन्धन—अनुबन्धन के नियमों द्वारा स्मृति को बढ़ाना चाहिए। यदि सम्बद्धता का उचित ध्यान दिया गया तो पुनर्स्मरण सुगमतर हो जायगा।

(iv) सीखना—स्मृति को सुन्दर व शक्तिशाली बनाने के लिए सीखने की उपयुक्त विधियों को अपनाना चाहिए। इन विधियों में से कुछ का विवेचन हम बाद में करेंगे।

(v) मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य—अच्छी प्रकार सीखने के लिए अच्छे मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है। एक व्यक्ति जो थका हुआ तथा बीमार है, उस व्यक्ति की अपेक्षा कम स्मरण करेगा जिसका स्वास्थ्य अच्छा है।

(vi) शान्तिपूर्ण वातावरण—अच्छी स्मृति के लिए शान्तिपूर्ण वातावरण की भी आवश्यकता है। यदि कहीं पर शोर तथा हलचल है तो स्मरण करने की मात्रा कम हो जाती है। कार्य की अच्छी परिस्थितियाँ स्मरण करने में बहुत अधिक सहायक होती हैं।

स्मृति में प्रगति[1]

प्रायः मनोवैज्ञानिकों से इस प्रश्न को पूछा जाता है कि "क्या निर्बल स्मृति का विकास सम्भव है?" इस प्रश्न का उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है। यह यह है कि इसके विकास की सम्भावनाएँ सीमित हैं। अतएव स्मृति, उन विषयों के अतिरिक्त जहाँ सीखने या याद करने की त्रुटिपूर्ण विधियों का अनुकरण किया जाता है, प्राकृतिक दण्डों पर पूर्णतः अवलम्बित रहती है। "पुनः स्मरण को सुनने का कार्य उच्च रूप से बुद्धि से सम्बन्धित है, जबकि धारण-शक्ति केवल जैविक स्थितियों[2] पर अवलम्बित होती है, जिनको बदला नहीं जा सकता।" उपर्युक्त स्मरण करने की विधियों के अनुसार यदि सीखा जाये तो पर्याप्त सीमा तक विकास सम्भव है।

यदि एक विद्यार्थी एकाग्रचित्त से अपना कार्य करता है, तो स्मृति की प्रगति की जा सकती है। इस बात से कोई फायदा नहीं कि केवल किताब खोल ली और इर्द-गिर्द अनेक विचारों के साथ पढ़ने बैठ गये। इसमें कोई संदेह नहीं कि पढ़ने के लिए किसी न किसी योजना की आवश्यकता है, परन्तु ६ घण्टे बैठकर पढ़ने से जबकि वास्तव में किसी प्रकार की एकाग्रचित्तता नहीं हो, ज्ञान की प्राप्ति में कोई लाभ नहीं। थोड़ी देर कार्य करना, परन्तु पूर्ण एकाग्रचित्तता से, सदैव उत्तम होता है।

स्मरण करने के लिए सीखने की क्रिया भी सक्रिय होनी चाहिए, निष्क्रिय नहीं। सक्रिय सीखने के लिए निश्चित उद्देश्य का ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार यह सदैव अच्छा होता है कि हम किसी निश्चित उद्देश्य के साथ अपने कार्य का प्रारम्भ करें। किसी निश्चित उद्देश्य के साथ जब हम काम करते हैं तो उस समय की अपेक्षा, जब हम निर्धारित समय के लिए बिना किसी स्पष्ट उद्देश्य के कार्य करते हुए बैठे रहते हैं, अधिक स्मरण कर सकते हैं।

दूसरी वस्तु, जो स्मृति का विकास होने के लिए आवश्यक है, उस सामग्री की अभिव्यक्ति है, जिसे हमें स्मरण करना है। अतएव विद्यार्थी को उस सामग्री को जिसे वह पूर्णतः याद करना चाहता है, अच्छी तरह पढ़ना चाहिए और तब उसे उसके प्रमुख तथ्यों की प्रतिलिपि या लिखित सारांश को तैयार करना चाहिए, अथवा पूरी तरह याद करने के पश्चात् जो भी उसने पढ़ा है, उसके विषय में उसे स्वयं से प्रश्न पूछना चाहिए। ये सब वस्तुएँ एक व्यक्ति की स्मृति में वृद्धि नहीं कर सकतीं, परन्तु ये निश्चित रूप से उस व्यक्ति को इस योग्य बनायेंगी कि जो कुछ भी उसने सीखा है, उसका पूर्ण स्मरण कर सके।

1. Improvement of Memory. 2 Organic Conditions.

स्मृति पर कुछ परीक्षणात्मक अन्वेषण[1]

सन् १८५८ में स्मृति की माप के लिए एबिंगहौस ने कुछ प्रयोग किये। उसके पश्चात् दूसरे मनोवैज्ञानिकों के द्वारा भी अन्य बहुत-से प्रयोग स्मृति की माप तथा उसका विस्तार ज्ञात करने के लिए किए गए। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं .

स्मृति-विस्तार[2]—किसी वस्तु को स्मरण करने के पश्चात् जितनी मात्रा में तुरन्त ही उसकी पुनरावृत्ति करने पर वह वस्तु पुनर्स्मरण की जा सकती है, वह एक व्यक्ति का 'स्मृति-विस्तार' कहलाता है। इस प्रकार की पुनरावृत्ति में भूलने का अवसर उपस्थित नहीं होता है। इसकी माप के लिए निरर्थक शब्दों की शृंखला का उपयोग किया जाता है, जिसे कर्त्ता को प्रदान करते हैं। एक बार पढ़ने के ठीक पश्चात् कर्त्ता से कहा जाता है कि शृंखला की प्रतिलिपि बनाये। जितनी मात्रा में वह उसकी बिलकुल ही प्रतिलिपि बना लेता है, वही उस व्यक्ति का स्मृति-विस्तार होता है। यह स्थायी स्मृति से भिन्न, तात्कालिक स्मृति होती है, जिसका विवेचन हम पहले ही कर चुके हैं।

स्मृति की माप के लिए साधारणतः निम्न यथोचित विधियों को प्रयोग में लाया जाता है :

(१) याद करने तथा बचाने की विधि[3]—इस विधि पर आधारित प्रयोग के कर्त्ता से निर्धारित तथा एक-रूप गति से निरर्थक शब्दों की एक शृंखला को पढ़वाया जाता है। ऐसा करने के लिए एक बेलनाकार वस्तु पर शब्दों की शृंखला को लपेट दिया जाता है, जिसे निश्चित गति से घुमाने के लिए प्रबन्ध होता है और उन्हें एक खिड़की द्वारा बालकों को प्रस्तुत किया जाता है। केवल एक या दो शब्द-क्रम आवश्यकतानुसार एक समय में दिखाये जाते हैं। साधारणतया एक शृंखला में शब्दों के क्रमों की संख्या ८ होती है। प्रत्येक बार उनके प्रस्तुत करने के पश्चात् कर्त्ता को उनकी प्रतिलिपि बनानी पड़ती है। प्राथमिक ठीक प्रतिलिपि के लिए बेलनाकार वस्तु को जितनी बार घुमाने की आवश्यकता होती है, उसका निरीक्षण कर लिया जाता है। इसके पश्चात् बचाने की विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक बार सीखने के बीच में अवकाश दे दिया जाता है और अब ठीक प्रतिलिपि के लिए जितनी बार बेलनाकार वस्तु को घुमाया जाता है, उनकी संख्या ज्ञात कर ली जाती है।

(२) उकसाने की विधि[4]—इसके अन्दर वही रीति है, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। लेकिन इसमें कर्त्ता को जिस अक्षर पर वह भूला था, उसमें आगे का अक्षर बताकर स्फूर्तिमय बनाया जाता है। जितनी बार कर्त्ता को, जब तक कि

1. Some Experimental Investigation on Memory. 2. Memory-Span. 3. Learning & Saving Method. 4. Prompting Method.

प्राथमिक ठीक प्रतिलिपि नहीं बन जाती, स्फूर्ति प्रदान की जाती है, उसे लिख लिया जाता है। यह विधि दोषपूर्ण पदार्थों में भी प्रयोग की जाती है।

(३) गिनने की विधि[1]—श्रेणी-क्रम में अक्षरों को कई बार दोहराने को दिया जाता है। श्रेणी को पूर्ण रूप से याद करने से पहले ही उसका दोहराना छोड़ दिया जाता है। याद करते समय कर्त्ता क्रमों को एक ही साथ लय में जोर से पढ़ता है। इसलिए श्रेणी-क्रम को दो-दो शब्दों के जोड़ों[2] के अन्तर्गत विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक जोड़े के अक्षरों को साथ ही साथ याद किया जाता है। प्रत्येक बार दोहराने के पश्चात् प्रतिलिपि की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन ८ या १० बार दोहराने के पश्चात् कर्त्ता को प्रतिलिपि बनाने को कहा जाता है। यह उस समय किया जाता है जब श्रेणी-क्रम को अपूर्ण रूप से याद कर लिया हो और एक छोटा मध्यान्तर दे दिया गया हो। याद करने और प्रतिलिपि बनाने के बीच कर्त्ता को इस बात की स्वीकृति प्रदान नहीं की जाती कि सम्पूर्ण श्रेणी-क्रम की प्रतिलिपि बना ले, वरन् उसे प्रत्येक जोड़े का पहला अक्षर दे दिया जाता है और उससे कहा जाता है कि वह उसी जोड़े का दूसरा शब्द, यदि जानता है तो, बताये। जहाँ तक जोड़ों की व्याख्या का सम्बन्ध है, जोड़ों का व्यतिक्रम[3] किया जा सकता है। लेकिन जोड़े के दोनों अक्षरों को उचित स्थिति में रखना चाहिए। सही प्रतिलिपियों की संख्या बालक के याद रखने की क्षमता की गणना करती है।

विस्मृति[4]

यह देखा जाता है कि हम किसी वस्तु को चाहे कितनी ही गहराई से क्यों न याद करें, उसे एक दिन अवश्य ही भूल जाते हैं। हम विस्मृति को जीवन का एक तथ्य मानते हैं। कोई भी इस बात से चिन्तित नहीं होता है कि वह अपनी जिन्दगी में घटित हुई प्रत्येक वस्तु को याद नहीं रख पाता है। लेकिन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार विस्मृति की प्रकृति और उसके कारणों को जानना सीखने की क्रिया के लिए परम आवश्यक है। इसीलिए इस क्रिया के विस्तारों का पता लगाने के लिए अनेक अध्ययन व प्रयोग किए गए। इसका प्रारम्भ एबिंगहौस[5] (१८८६) द्वारा किया गया।

एबिंगहौस का प्रयोग—एबिंगहौस ने पता लगाया कि विस्मृति बहुत बड़े अंश में याद करने की क्रिया के पूर्ण होने के ठीक पश्चात् ही हो जाती है। पहले आधे घण्टे में याद की हुई वस्तु का ½ भाग, ८ घण्टों से लेकर एक दिन तक ⅔ भाग, लगभग ६ दिनों में ¾ भाग और एक महीने में ⅘ भाग विस्मृत हो जाता है। इसलिए किसी पाठ को दुहराने का उचित समय याद करने के पश्चात् तुरन्त ही है। परन्तु याद किए हुए पदार्थ का आदर्श दुहराना उस समय होता है, जबकि वह प्रायः भूल जाने को है। इस प्रकार एक कविता के दुहराने का सबसे अच्छा समय आधे दिन

1. Scoring Method. 2. Pairs. 3. Deranged. 4. Forgetting. 5. Ebbinghaus.

के मध्यान्तर के पश्चात्, फिर अगले दिन के पश्चात् और फिर एक दिन के पश्चात् इसी क्रम मे बढ़ता हुआ है।

विस्मृति का रेखाचित्र
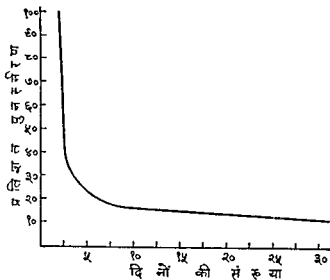
ऊपर दिया गया विस्मृति का रेखाचित्र निरर्थक शब्दो के साथ याद करने के विषय मे, विस्मृति की दर को लगभग व्यक्त करता है। अर्थपूर्ण पदार्थों के साथ इसका रूप भिन्न होता है। एक कविता के याद करने मे विस्मरण मन्द गति से होता है। परन्तु फिर भी इसकी तीव्रता याद करने के पश्चात् ही बहुत होती है। यह दूसरी बात है कि निरर्थक शब्दो की तुलना मे यह तीव्रता कम होती है। यह भी यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि रेखाचित्र पहले तेजी से नीचे गिरता है। फिर धीरे-धीरे गिरकर कम होने लगता है। यह कभी भी समय की रेखा को नही छू पाता। कुछ समय बाद वह समय की रेखा के समान्तर चलने लगता है। रैडोमविजेविट्स[1] ने पता लगाया कि ६ घण्टे बाद ४७% तथा पहले और दूसरे दिन के पश्चात् क्रमशः ६८% तथा ६१% याद की हुई वस्तु को ही याद रखा जाता है। बैलार्ड[2] द्वारा एक परीक्षण मे १९ विद्यार्थियो को 'लौस ऑफ रॉयल जौज' कविता याद करने को दी गई। याद करने के पश्चात् ही परीक्षा लेने पर तथा दो दिन का मध्यान्तर देने के

1. Radossawijewitsch. 2. Ballard.

उसे भूल चुके हैं। यह सब किसी प्रकार की रुकावट के कारण ही होता है जो आपके स्मरण रखने की क्रिया में उपस्थित हो जाती है। इस प्रकार भूलने में आपका स्मृति-चिह्न पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुआ है। कहने का मतलब यह है कि मस्तिष्क में स्मृति विद्यमान है, लेकिन कोई चीज ऐसी होती है जो बीच में ही आकर बाधा उपस्थित करती है और आप भूल जाते हैं। इस रुकावट के निम्नलिखित मुख्य कारण होते हैं :

(अ) अन्य समान स्मृतियों द्वारा बाधा उपस्थित करना—रुकावट वहीं पर होती है जहाँ एक ही प्रकार की दो स्मृतियाँ परस्पर टकराती हैं। उदाहरण के लिए, आप जिस नाम को याद करना चाहते हैं, वह 'ब्रजेश' है। लेकिन 'विजेन्द्र' नाम आपके मस्तिष्क में आता रहेगा। परिणाम यह होगा कि आप सही नाम याद नहीं कर सकेंगे। आदतजन्य स्मृति में भी इसी प्रकार की बात पाई जाती है, जैसे—जब आप टेनिस के स्थान पर बेडमिन्टन खेलना आरम्भ करते हैं तो टेनिस खेलने की आपकी आदत बेडमिन्टन खेलने में बाधा उत्पन्न कर देती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब दो समान वस्तुएँ मस्तिष्क के अन्दर प्रविष्ट होती हैं तो उस वस्तु के अनुसार ही कार्य किया जाता है, जो बार-बार वर्तमान काल में दोहराई गई है या पूर्वकाल में उसका पूर्ण रुचि के साथ अभ्यास किया गया है।

जब स्मृतियों पर इस प्रकार के अवरोध हों तो हमारी सारी चेष्टाएँ याद करने के वास्ते व्यर्थ होंगी। हमें तो यह चाहिए कि उस समय हम याद करने की चेष्टा ही छोड़ दें और किसी दूसरे कार्य में अपने आप को संलग्न कर दें। थोड़ी देर पश्चात् यह बात जो अवरोध के कारण अभी हम भूले हुए हैं, एकदम से हमें याद आ जायगी। बहुधा यह ऐसे समय होता है जबकि हमें उसकी कोई आशा नहीं रहती।

(ब) पूर्वलक्षी अवरोध[1]—रुकावट, पूर्वलक्षी निरोध के कारण भी उपस्थित होती है। विस्मृति पर कई प्रयोग किये गये हैं जिनसे पता चला कि विस्मृति उस समय सबसे कम होती है जब सीखने के फौरन बाद में एक ऐसा अवकाश दे दिया जाता है जिसमें मस्तिष्क क्रियाशील नहीं होता है। सीखने के फौरन बाद यदि कोई कार्य किया जाये तो स्मृति कम होगी। इसी कारण रात के समय में दिन की अपेक्षा विस्मृति की मात्रा कम पाई जाती है। जब हम किसी बात को सीखने के बाद मस्तिष्क को दूसरे कार्य में लगा दें जिससे वह क्रियाशील रहे, तब निश्चय है कि हमारे सीखने में अवश्य ही बाधा उपस्थित होगी। यह बाधा अधिक मात्रा में होगी यदि दोनों कार्यों में समानता है। यही सिद्धान्त पूर्वलक्षी अवरोध कहलाता है। यदि दो प्रतिज्ञाएँ एक के बाद एक की जाती हैं तब पूर्व की प्रतिज्ञा बाद की प्रतिज्ञा का विरोध करती है। इस प्रकार यदि गद्य का एक भाग एक घण्टे में तथा दूसरा

---

1. Retroactive Inhibition.

भाग दूसरे पाठ में पढ़ाया जाता है तब विस्मृति की अवस्था आती है। दूसरे पाठ में पढ़ाये हुए पाठ ने दूसरे भाग को सीखना कठिन हो जाता है।

प्रतिगामी विरोधन का कारण यह बताया जाता है कि मस्तिष्क में चिह्न धीरे-धीरे बनते हैं और जिस प्रकार पिघले हुए मोम के तल पर यदि कोई चिह्न बना दिया जाय और फिर किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाई जाय, उसे मिटाने का प्रयत्न न किया जाय तो वह स्थायी हो जाता है, उसी प्रकार मस्तिष्क में चिह्न बिना बाधा स्थायी हो जाते हैं। परन्तु यदि मोम के तल पर बने चिह्न पर मोम के जमने से पहले ही कोई अन्य चिह्न अङ्कित कर दिया जायेगा तो दोनों का रूप बिगड़ जायेगा। इसी प्रकार दो स्मृति-चिह्न एक-दूसरे को दूषित कर देंगे, यदि वह शीघ्रता से एक-दूसरे पर थोप दिए जायें। यद्यपि यह कारण काल्पनिक कहा जा सकता है, लेकिन फिर भी कई प्रकार की चोट लगने पर स्मृति पर किये गये अध्ययन इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हमारा यह विचार सत्य है। उदाहरण के लिए, वुडवर्थ[1] एक नवयुवक का वर्णन करता है जिसके सिर में पेड़ से गिर जाने के कारण जोर की चोट लग जाती है और जो गिरने के कारण अचेत हो जाता है। यह व्यक्ति कुछ काल बाद इस दशा में आ जाता है कि वह घर पहुँचने के लायक हो जाता है; पर अर्द्ध-बेहोशी की दशा में वह घर पहुँचता है। जब वह पूर्ण रूप से ठीक हो जाता है, तब उसे न तो चोट का ही ध्यान है और न घर तक आने का, और गिरने से १५ मिनट पहले की घटनाओं का उसे ध्यान रहता है। इस प्रकार की विस्मृति का कारण यही दिया जा सकता है कि सिर की चोट ने उसके स्मृति-चिन्हों को मस्तिष्क में दृढ़ होने से रोक दिया। इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

(स) रुकावट के संवेगात्मक कारण[2]—रुकावट के कारण प्रायः संवेगात्मक ही हुआ करते हैं, न कि ज्ञानात्मक। भय, व्याकुलता अथवा उत्तेजना स्मृति में बाधक होती हैं (हम इसके विषय में 'संवेग' के अध्याय में विस्तृत रूप से विचार कर चुके हैं), बहुत कुछ रुकावट अवरोध क्रिया के कारण होती है। अवरोध क्रिया के कारण ही हम एक बहुत अच्छी तरह से जानी हुई बात को पुन. याद नहीं कर पाते। हमारा अचेतन मन शायद इस बात को पुनर्स्मरण नहीं करना चाहता है।

(द) साक्षी[3]—यद्यपि हम इसे रुकावट के कारणों के अन्दर नहीं गिन सकते हैं, फिर भी हम इसे रुकावट के निकट सम्बन्धी वस्तु के रूप में ही मानकर वर्णन कर लेते हैं। हमने प्राय अदालतों के अन्दर देखा है कि गवाह अपने सबूत पेश करता है जो उसे पूर्ण विश्वसनीय दिखाई देते हैं। लेकिन निर्णयकर्त्ता के सामने यह प्रश्न होता है कि क्या गवाह को सब वारदात के सम्बन्ध याद हैं या वह कुछ भूल गया है, जिसका जानना मुकदमे के सच्चे निर्णय के लिए आवश्यक है? गवाहों को यदि ईमानदार भी मान लिया जाय; फिर भी यह पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा

1. Woodworth, 2. Emotional Causes of Blocking. 3. Testimony.

सकता है कि वह सही बात ही कह रहा है या गवाह द्वारा दिए गये सबूत बिलकुल सत्य हैं, क्योंकि गवाह का अचेतन मन बहुधा ऐसे तथ्यों को जोड़ या घटा देता है जो उसकी रुचि या आकांक्षा के अनुसार होते हैं। अतएव बहुधा वह अपने सबूत में ऐसे तत्त्व रख देता है जो सत्य नहीं होते। यह उसकी अपनी रुचि के कारण जोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार बहुत-सा झूठा सबूत निर्णयकर्त्ता के समक्ष पहुँच जाता है जिससे उसे निर्णय करने में बहुत कठिनाई होती है। पर इस सब का वास्तविक कारण यह है कि हम बहुत कुछ वह भूल जाते हैं जो हमारी रुचि के अनुसार नहीं होता है, और वह सब याद रखते हैं जो रुचि, आकांक्षा इत्यादि के अनुसार होता है।

सारांश

स्मृति यथावत् प्राप्त पूर्व अनुभवों को उसी क्रम में पुनः याद करने की प्रक्रिया है। स्मृति के अन्तर्गत चार मुख्य खण्ड हैं। वह हैं—(१) सीखना, (२) धारण, (३) पुनर्स्मरण, और (४) पहचानना। यह चारों खंड समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। जब किसी वस्तु को सीख लिया जाता है तो वह मस्तिष्क में धारण कर ली जाती है। धारण होने का कारण जो शरीरशास्त्र के दृष्टिकोण से दिया जाता है, वह है—मस्तिष्क में स्मृति-चिह्न का बनाना। धारण करने की शक्ति (अ) मस्तिष्क, (ब) स्वास्थ्य, (स) रुचि, (द) विचार तथा तर्क पर निर्भर है। धारण-शक्ति के प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। जब हम परीक्षा में बैठते हैं तो याद किये हुए उत्तर हमें पुनर्स्मरण हो जाते हैं, और यदि परीक्षा सत्यासत्य प्रकार की है तो हम सत्य और मिथ्या, पढ़े हुए पाठ के आधार पर, छांटने में सफल होते हैं। इसके अतिरिक्त एक भूला हुआ पाठ हम कम समय में दुबारा याद कर लेते हैं।

पुनर्स्मरण उन अनुभवों की मानसिक चेतना-प्राप्ति है, जिन्हें सीखा जा चुका है। यह दो प्रकार का होता है—(i) स्वभावोत्पन्न, तथा (ii) विमर्शपूर्ण। ऐसा पुनर्स्मरण जिसके अन्तर्गत हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, स्वभावोत्पन्न कहलाता है। ऐसा पुनर्स्मरण जिसके अन्तर्गत हमें अनुभव इत्यादि को याद रखने के लिए चैतन्य होकर प्रयास करना पड़ता है, विमर्शपूर्ण पुनर्स्मरण कहलाता है।

पुनर्स्मरण प्रत्ययों की सम्बद्धता पर नियन्त्रण रखने वाले प्रमुख नियम हैं—(१) साम्य-नियम, (२) वैषम्य-नियम, और (३) संनिधि-नियम। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य नियम हैं—(i) आसन्नकाल-नियम, (ii) आवृत्ति-नियम, (iii) प्राथमिकता नियम तथा (iv) रुचि की तीव्रता या सजीवता का नियम।

पहचानने में एक प्रकार की चेतनता होती है, जिसके द्वारा जिस चीज को पहले जाना जा चुका है, उसे फिर जान लिया जाता है। अनुरूपता की भावना पहचानने के कार्य में एक आवश्यक भाग लेती है।

स्मृति, बर्गसन के अनुसार, दो प्रकार की होती है—(१) वास्तविक स्मृति, और (२) आदतजन्य स्मृति। 'आवश्यकता स्मृति' केवल रटी हुई वस्तुओं पर

५. आप 'प्रतिगामी निरोधन' से क्या समझते हैं ? शिक्षा पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है ?

६. उच्चारण करना, धारण का सबसे अच्छा ढङ्ग है—पुष्टि कीजिए।

७ आप अपने बालकों के भूलने की गति को कैसे नियन्त्रित करेंगे ? भूलने की गति को रोकने के लिए उपायों की सूची तैयार कीजिए।

८. A और B दो सूची कुछ कथनों की दी गई हैं। आप A सूची के सामने B सूची के उन कथनों को छाँटकर लिखें जो दोनों सूचियों के कथनों को मिलाकर बने वाक्य में सही सूचना दें।

A	B
(i) स्मृति के खण्ड हैं	(i) मस्तिष्क, विचार, रुचि तथा स्वास्थ्य। (iii)
(ii) विस्मृति के मुख्य कारण हैं ·	(ii) सन्निधि, वैषम्य, साम्य, आसन्नकाल।
	(iii) सीखना, धारण, पुनर्स्मरण, पहचानना। (i)
(iii) धारण करने की शक्ति इन पर निर्भर रहती है ·	(iv) वास्तविक, आदतजन्य, तात्कालिक, अनवरत।
(iv) प्रत्ययों के साहचर्य पर नियंत्रण रखने वाले नियम हैं।	(v) प्रेरणा, रटना, निष्क्रिय सीखना, उत्तेजनात्मक वातावरण।
	(vi) क्षीणता, रुकावट, पूर्व-लक्षी अवरोध, संवेग। (ii)

१६ सीखने की विधियाँ एवं सीखने के वक्र
METHODS OF LEARNING & LEARNING CURVES

हमने पिछले अध्यायों में सीखने की प्रकृति, इसको निबद्ध करने वाले तत्व, इसके नियमों एवं सिद्धान्तों पर ध्यान दिया है। स्मृति और विस्मृति का भी विरे पणात्मक वर्णन किया है। एक शिक्षक के लिए केवल यह जान लेना कि सीखना क्या है इत्यादि पर्याप्त नहीं। उसकी तो मुख्य समस्या कक्षा-शिक्षण की है। वह यह जानना चाहता है कि किस प्रकार वह विद्यार्थियों को अच्छा शिक्षण दे? कैसे वह कक्षा में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे कि विद्यार्थी शीघ्रता से सीखें—और जो सीख लें उसे धारण कर लें? अतएव शिक्षक तो सीखने की ऐसी विधियों को जानना चाहता है जो उसे उसके शिक्षण के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता दें। हमने पिछले अध्यायों में सिद्धान्तों इत्यादि के साथ-साथ शिक्षक को अनेक सुझाव भी अपना शिक्षण उत्तम बनाने के लिए दिये हैं। प्रस्तुत अध्याय में उन सुझावों के, जो सीखने के मनोविज्ञान पर ही आधारित किये गये है, अनुरूप ही हम सीखने की विधियों का वर्णन करेंगे। इनके अतिरिक्त हम सीखने में उन्नति प्राप्त करने के लिए कुछ सामान्य सुझाव भी देंगे। पिछले अध्यायों से उनका वर्णन अलग-अलग ढंग से सिद्धान्त, नियम अथवा तत्त्वों के साथ किया गया है। यहाँ उनका संकलन करके इस प्रकार रख दिया गया है कि शिक्षक उनको अपने कक्षा-शिक्षण में समग्र रूप से अपना सकता है।

सीखने में विद्यार्थी जिस ढंग से कुशलता प्राप्त करते हैं उसका चित्र प्रदर्शन भी किया जा सकता है। यह चित्र जो सीखने के वक्र कहलाते हैं, सीखने की प्रक्रिया में निहित अनेक तत्त्वों को स्पष्ट कर देते हैं जिनकी जानकारी भी एक अच्छे शिक्षण को सम्भव बनाती है। इस अध्याय में हम इनका भी वर्णन करेंगे।

स्मरण करने और सीखने की विधियाँ[1]

स्मरण करना एक मानसिक प्रवृत्ति है। यदि इसको उचित रूप से कार्यान्वित किया जाय तो समय और शक्ति, दोनों की बचत की जा सकती है। सीखने की

1. Methods of Memorizing & Learning.

निम्नलिखित विभिन्न विधियाँ हैं जो स्मरण करने में लाघव और मितव्ययता के लिए उत्तरदायी हैं। यथा—

(i) पूर्णाधिगम अथवा समग्र एवं खण्डशः अधिगम[1]—एक पाठ को या तो समग्र रूप से या खण्डों में याद किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कविता को याद करना है, तो या तो इसे समग्र रूप से याद किया जा सकता है, या तीन अथवा चार पंक्तियों को पहले याद करने के पश्चात् फिर आगे की तीन या चार पंक्तियाँ याद कर ली जा सकती हैं, और इसी प्रकार यह क्रम तब तक आगे बढ़ता है, जब तक कि पूरी कविता याद नहीं हो जाती। अब प्रश्न उठता है कि इन दोनों में कौनसी विधि उत्तम है।

साधारणतया पूर्णाधिगम विधि उत्तम समझी जाती है। इस दिशा में एबलिंग[2] ा किया गया प्रयोग ध्यान में रखने योग्य है। याद करने की दोनों विधियों द्वारा ना की २४० पंक्तियों को याद करने में एक-दूसरे से तुलना की गई। पहली विधि अन्तर्गत प्रतिदिन एक ही बार में ३० पंक्तियों को याद किया जाता था। दूसरी धि में एक दिन में तीन समयों पर २४० पंक्तियों को एक साथ पढ़ना था। जब न्हीं दो पद्य-खण्डों को भलीभाँति पढ़ा गया तो यह पाया गया है कि प्रथम विधि ण्डशः सीखना) द्वारा याद करने के लिए १२ दिन (या ४३१ मिनट) लगते हैं, कि दूसरी विधि द्वारा केवल १० दिन (या ३४८ मिनट) याद करने के लिए पेक्षित हैं। इस प्रकार सीखने का लगभग पाँचवाँ हिस्सा, समग्र रूप से याद करने विधि द्वारा, बचत रूप में प्राप्त हो जाता है।

खण्डशः विधि के उपयुक्त न होने के बहुत-से कारण हैं :

(क) खण्डशः विधि में कविता के भाव या गहराई याद करने तक पूर्ण स्पष्ट ही होती, जबकि समग्र विधि में सभी भाग स्पष्ट होकर अर्थमय बन जाते हैं।

(ख) खण्डशः विधि में खण्ड इकाइयों की तरह पृथक से होते हैं और उन्हें क साथ जोड़ने में कुछ कठिनाई हो सकती है। यही कारण है कि खण्डशः विधि में धारणतः प्रत्येक खण्ड की कई पुनरावृत्ति करनी पड़ती है। इस प्रकार प्राप्त हुई म्बद्धता प्रत्येक खण्ड के अन्त और उसी खण्ड के प्रारम्भ में होती है, जबकि यह ांछनीय है कि पहले खंड के अन्त तथा दूसरे खंड के आरम्भ में यह सम्बद्धता हो।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पूर्णाधिगम विधि के अन्तर्गत त्रुटियों के लिए कोई स्थान नहीं होता। खंडशः विधि कभी-कभी उस समय अत्यन्त लाभदायक होती है, जब याद करने वाला अनुभवहीन या आत्मविश्वासी न हो, तथा याद किया जाने वाला विषय प्रतिकूल एवं जटिल हो। पिनर और सिंडर[3] द्वारा किये गये प्रयोगों से यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि समग्र रूप से याद करने की विधि २४० पंक्तियों की कविता के लिए अत्यन्त प्रभावकारी है। इससे लम्बी कविताओं को उचित

---

1. Whole & Part Learning. 2. Avelrg. 3. Pyner & Synder.

पुनरावृत्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक हो जाती है, (ii) इसमें पूर्णाधिगम विधि की अपेक्षा अधिक समय की आवश्यकता होती है। विंच[1] ने मालूम किया कि उन कविताओं के अतिरिक्त, जिनमें विचारों की पूर्ण एकता है, पूर्णाधिगम विधि १२ वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए 'खण्ड सम्बन्धी' से श्रेष्ठ नहीं है। १२ वर्ष की आयु से बड़े बालकों व बालिकाओं के लिए पूर्णाधिगम विधि लाभदायक होती है।

(iii) **सस्वर पठन विधि[2]**—अलापने की क्रिया, मितव्यय-स्मरण को सहायता प्रदान करती है। गेट्स ने १६ असंगत वार्तापूर्ण शब्दांशों और ५ संक्षिप्त जीवनीयुक्त रेखाचित्रों, जिनमें लगभग १७० शब्द थे, के साथ एक प्रयोग किया। उसने दो साधारण विधियों का प्रयोग किया। पहली विधि में पुस्तक से बिना अपना सर ऊपर उठाये हुए विषय को पढ़कर फिर दुबारा बार-बार पढ़ना था। दूसरी विधि में पढ़ने के पश्चात् बिना पुस्तक को देखे हुए उसका पुनर्स्मरण करना तथा उसे सुनाना था। गेट्स का कहना है कि शीघ्रातिशीघ्र उन प्रतिक्रियाओं का, जिन्हें अन्तिम रूप से हमें याद करना है, अभ्यास करना मितव्ययता से याद करने के किसी भी स्वीकृत अन्य साधन से, अच्छे परिणाम वाला होता है। इस प्रकार पढ़कर सुनाने की यह विधि पढ़ने या बार-बार दुबारा पढ़ने की विधि की अपेक्षा अधिक उत्तम होती है।

इसके प्रमुख लाभ हैं—(अ) निर्बल सम्बन्धों को पहचान लेने के पश्चात् उन पर एकाग्रचित्त से अवधान केन्द्रित किया जाता है। (ब) पूर्ण करने की सामान्य भावना आगे के प्रयासों को तीव्रता प्रदान करती है। (स) गलत प्राथमिक प्रभावों की त्रुटियों को खोज लिया जाता है और उसकी स्थापना से पूर्व ही उन्हें हटा दिया जाता है, और (द) चूँकि पाठ्य-विषय को उस रूप में सीखा जाता है जिसमें उपयोग किया जाता है, अतः पाठ के अन्तिम दोहराने में जब वह याद हो जाता है, उसको प्रयोग करने के रूप में स्थानान्तरण करने की आवश्यकता नहीं रहती।

प्रयोगात्मक परीक्षण बताते हैं कि अध्ययन के समय का ⅘ भाग सस्वर पठन विधि में लगाना लाभप्रद हो सकता है। इस बात को भी मालूम किया गया है कि सीखने को पढ़कर सुनाने की विधि (अ) दोनों ही तात्कालिक तथा विलम्बित पुनर्स्मरण, और (ब) तर्क-युक्त तथा असंगत वार्तापूर्ण विषयों के लिए भी अति उत्तम होती है।

स्मरण करने की विधियाँ जो ऊपर बताई जा चुकी हैं, समयानुसार गद्य या पद्य के अंश को याद करने को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार हम देख चुके हैं कि स्मरण करने की विधियाँ इस प्रकार का उत्तर देने का प्रयास करती हैं—"किस प्रकार अध्ययन करें, जिससे (i) समय की मितव्ययता, (ii) वस्तु का पूर्ण ज्ञान, और (iii) जो कुछ भी सीखा गया है उसको धारण कर लेने के प्रयास द्वारा, किसी वस्तु को याद कर लिया जाय?" उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त, स्मरण करने तथा समय एवं

---

1. Winch. 2. Recitation Method

कुछ परीक्षाओं तथा जीवन की दशाओं में रटना ठीक होता है। लेकिन जहाँ पर वास्तविक स्थायित्व की आवश्यकता पड़ती है, वहाँ रटने की क्रिया का बहुत कम महत्त्व होता है।

सीखने में उन्नति के सम्बन्ध में कुछ सामान्य सुझाव[1]

उपर्युक्त सीखने की विधियों एवं सीखने के मनोविज्ञान के मुख्य तत्त्वों को ध्यान में रखकर शिक्षक को बालकों के सीखने में सुधार और उन्नति लाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं। यह सुझाव शिक्षण विधियों को अधिक सफल बनाने में सहायक होंगे। एक शिक्षक को इन सुझावों को सीखने में उन्नति लाने वाली विधियों के रूप में ही समझना चाहिए।

(१) **सीखने के लिए इच्छा होनी आवश्यक है**—एक व्यक्ति तब ही सीखने में उन्नति प्राप्त कर सकता है जब उसमें सीखने की इच्छा हो। एक मनोवैज्ञानिक द्वारा एक परीक्षण किया गया जिसमें व्यक्तियों से यह पूछा गया कि वह एक छोटे कागज पर अक्षर ० की गिनती करें। ० अक्षर दूसरे अक्षरों के साथ रंगीन कागज पर रंगा हुआ ही छपा था। जब गिनती कर ली गई तब विषयों से पूछा गया कि ० के अतिरिक्त और कौनसे अक्षर उस पृष्ठ पर थे ? उनका क्या रंग था और कागज का क्या रंग था ? यह पता चला कि उन्होंने दूसरे अक्षरों अथवा रंगों के सम्बन्ध में बहुत कम जाना। इसका कारण समझना आसान ही था। व्यक्तियों ने वही सीखा जिसे सीखने की उन्हें इच्छा थी, ० का गिनना। जो आकस्मिक सीखना था वह बहुत कम था, अतएव शिक्षक को सर्वप्रथम बालकों में सीखने की इच्छा जाग्रत करनी चाहिए।

(२) **सीखना आनन्दमय होना चाहिए**—व्यक्ति वह बात याद रखते हैं जो उनके अनुभवों में आनन्द देने वाली होती है। जो बात कष्टदायक होती है उसे भूलना चाहते हैं। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध भी हो चुका है।

(३) **कोई तटस्थता नहीं होनी चाहिए**—यदि कोई विद्यार्थी किसी बात को सीखने के लिए तटस्थ रहता है तो वह कुछ नहीं सीख पायेगा। दोनों आनन्द देने वाले और कष्ट देने वाले अनुभव उन अनुभवों के तुलनात्मक जिनमें हम तटस्थ रहते हैं, पुनः स्मरण किये जा सकते हैं।

(४) **प्रतिद्विन्द्वता सीखने में सहायक हो सकती है**—बहुधा सीखने में प्रतिद्वन्द्विता सहायता देती है। यह देखा गया कि जिन बालकों को जोड़ने की समस्याएँ दी गई थीं उन्होंने उस समय अच्छा कार्य किया जब उनको एक दूसरे से स्पर्द्धा करने को कहा गया। किन्तु यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि प्रतिद्वन्द्विता हानिकारक भी हो सकती है। कुछ व्यक्तियों पर यह वाछित प्रभाव उत्पन्न कर सकती है किन्तु अनेक के लिए यह उनके कार्य में अवरोधक के रूप में हो सकती है। ऐसे व्यक्ति हारने के भय

---

1. Some general suggestions for improvement in Learning.

से अथवा किन्ही अन्य संवेगात्मक कारणों से अपना आत्मविश्वास खो देते हैं और फिर उनका सीखना रुक जाता है।

एक प्रकार की स्पर्द्धा जिसका दूषित प्रभाव नहीं है, वह है अपने पिछले अर्जन से ही अपने वर्तमान के अर्जन की तुलना करना। शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों को बढावा दें कि वह पिछले समय से इस समय और अच्छा कार्य करें।

(५) विस्तृत चित्रीकरण भी सीखने मे सहायक होते हैं—यदि चित्रीकरण विस्तृत है तो इसे बाद मे सरलता से पुन स्मरण कर लिया जायेगा। एक विद्यार्थी जो किसी ऐतिहासिक घटना को चलचित्र मे देखता है उसे वह कहीं अच्छे ढङ्ग से याद रख सकता है, बजाय इसके कि उसके बारे मे उसने इतिहास की पुस्तक में पढ़ा है।

(६) पढ़ने की समय-सूची सीखने में उन्नति करने मे एवं टालमटोल की रोक थाम करने मे सहायक होती है—एक समय-सूची का बनाना तथा उसके अनुसार कार्य करना कुशलतापूर्वक सीखने मे सहायक होता है। किन्तु इस समय-सूची मे यह ध्यान रखना चाहिए कि अध्ययन के घण्टो और मनोरंजन के समय को एक-दूसरे के बीच मे डाल देना चाहिए। इस प्रकार पूर्वलक्षी अवरोध[१] को रोक दिया जाता है।

(७) लगातार अभ्यास सीखने मे सहायक होता है—जब किसी कार्य का बार-बार अभ्यास किया जाता है तो वह अच्छे प्रकार से सीख लिया जाता है। यह याद रखना चाहिए कि यदि त्रुटिपूर्ण अभ्यास को बार-बार दोहराया जाये तो वह भी सीख लिया जाता है। इस कारण अभ्यास सही वस्तु एवं सही ढङ्ग से करना आवश्यक है। जो व्यक्ति केवल दो उँगली से टाइप करना सीखता है वह फिर इस आदत को कठिनता से तोड़ पाता है।

(८) उन्नति का ज्ञान कुशल सीखने के लिए आवश्यक है—इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये गये हैं। इन पर हम अध्याय १२ में प्रकाश डाल चुके हैं। शिक्षक को समय-समय पर बालक जो उन्नति कर रहा है उस सम्बन्ध मे ज्ञान देना चाहिए।

(९) त्रुटिपूर्ण सीखना विस्मरण कर देना चाहिए—त्रुटिपूर्ण सीखना यदि दोहराया न जाये और उसका पुनरावलोकन न किया जाये तो वह विस्मरण सरलता से किया जा सकता है। दूसरी विधि जो विस्मरण करने की है वह यह है कि जिस सीखने को भूलना है उसके स्थान पर नई प्रतिक्रिया का अभ्यास किया जाये।

(१०) सीखने में प्रथम तथा आसप्रदान के अनुभव महत्त्वपूर्ण होते हैं—शिक्षक को नये पाठ पढ़ाने मे तथा प्रथम दिन पढ़ाने में सावधानी बरतनी चाहिए। जिस ढङ्ग से नये पाठ का प्रवेश करेगा वही बहुत कुछ विद्यार्थियों के आगे के सीखने को निर्धारित करेगा।

(११) कुछ पाठ्यवस्तु को अत्यधिगम[1] करना चाहिए—अत्यधिगम की गई पाठ्य-वस्तु कम विस्मृत होती है। इस कारण कुछ पाठो को अत्यधिगम करना आवश्यक है, विशेष रूप से गणित या विज्ञान के सूत्रो को।

(१२) यह चेष्टा करनी चाहिए कि सीखी हुई सामग्री का अधिगमातरण[2] एक स्थिति से दूसरी मे हो जाये। इसके लिए एकसे तत्व, विधि एवं सिद्धान्त निकाल लेने चाहिए जो विभिन्न स्थितियों मे प्रयोग किये जा सकें। इस सम्बन्ध मे हम अगले अध्याय मे और प्रकाश डालेंगे।

(१३) जो सामग्री सीखी जाये वह समझ ली जाये—उस सामग्री का धारण अच्छा होता है जो समझ ली जाती है। विद्यार्थी को पाठ्य-पुस्तक की सामग्री को सामान्य रूप से समझ लेना चाहिए। यह आवश्यक नही है कि वह एक-एक शब्द पर ध्यान लगाये रहे। शब्दो पर ध्यान लगाना सूत्र, तारीख अथवा अन्य तात्त्विक सामग्री[3] के लिए आवश्यक है।

(१४) अध्ययन की अवधि मे सातराल[4] होना चाहिए—एक विद्यार्थी से यह नही आशा करनी चाहिए कि वह एक लम्बी अवधि तक लगातार पढकर अधिक सीख लेगा।

(१५) प्रत्येक सत्र को जो अध्ययन का हो, अवधि पर्याप्त होनी चाहिए—बहुधा कार्य प्रारम्भ करने मे देर लगती है। यदि अध्ययन के सत्र की अवधि बहुत कम है तो कोई भी सीखना अच्छे ढङ्ग से नही होगा।

उपर्युक्त सुझाव सब प्रकार के सीखने मे महत्त्वपूर्ण हैं। पठन[5] के लिए कुछ अन्य सुझावो पर ध्यान देना भी आवश्यक है। पठन की आदत यदि अच्छे ढङ्ग से पड जाती है तो विद्यार्थी बहुत कुछ सीख लेता है अन्यथा उसके सीखने मे सदैव कुछ-न-कुछ त्रुटि रहती है।

अच्छी पठन की आदत डालने के लिए निम्न पदो की ओर ध्यान देना चाहिए

१. पठन का अभ्यास सरल तथा रोचक सामग्री पर करना चाहिए। कठिन सामग्री का पठन बाद मे होना चाहिए जब सीखने की कलाओ मे परिपक्वता आ जाये।
२. नियमित रूप से थोडी अवधि के लिए अभ्यास करना चाहिए।
३. तीव्र गति से पढने का अभ्यास करना चाहिए। तेजी से पढने मे शब्दो के समूह को एक साथ पढ़ा जाता है और इस कारण सामग्री को आसानी से समझ लिया जाता है। दूसरी ओर यदि सीखना धीमी गति मे होता है तो वाक्य मे जो विचार निहित होता है वह सरलता से समझ मे नहीं आता।

---

1. Overlearn. 2. Transfer of learning. 3. Factual Material 4. Spaced. 5. Reading.

४. पठन एक अवरोध को सामने रखकर होना चाहिए। जब एक अवरोध समय या मात्रा का सामने रखकर पठन होता है तो पठन की गति बढ़ जाती है। कुछ समय नियत कर लें कि इसमे इतने शब्द या वाक्य पढ़ लिये जायेंगे।
५. पठन प्रत्येक समय पर विचारो के लिए होना चाहिए। एक या दो पृष्ठ पढ़ने के बाद कुछ सैकिण्ड के लिए रुक जायें और यह स्मरण करने की चेष्टा करें कि क्या पढ़ा गया।
६. पठन के साथ शब्द-भण्डार मे भी उन्नति होनी चाहिए।
७ आँखो को उल्टा चलने से रोकना चाहिए। जब आँखें उल्टी चलती हैं तो यह पठन के दोष की सूचक हैं। जब ऐसा होता है तो दूषित पठन के कारणो का पता लगाना चाहिए।
८. आँखो को एक लाइन के अन्त मे ठहर जाने नही देना चाहिए।
९. स्वरोच्चारण कर पठन नहीं करना चाहिए। वह व्यक्ति जिनके पढ़ने के समय होंठ चलते है, स्वरोच्चारण करते हैं। ऐसा करने से पठन की गति धीमी पड़ जाती है।
१०. उन्नति का लेखा रखना चाहिए। यह अच्छे पठन के लिए प्रेरणादायक होता है।

सीखने के वक्र[1]

सीखने मे की हुई उन्नति को हम अभ्यास या सीखने के वक्र द्वारा चित्रांकित कर सकते हैं। सीखने की स्थिति मे हम तथ्यो को इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि सीखने के वक्र से उन्नति स्पष्ट हो जाती है या व्यवहार-परिवर्तन इसे देखने से परिलक्षित होता है। साधारणतया सीखने की क्रिया के वक्र मे हम किये गए प्रयत्नो के अङ्को या समय की माप को अक्ष[2] पर प्रकट करते हैं। प्रगति के प्राप्त अङ्को (तीव्रता, त्रुटियाँ आदि) को कोटि[3] पर प्रदर्शित करते हैं।

जहाँ तक मानवीय सीखने का सम्बन्ध है, सम्पूर्ण सीखने के वक्र संवेदनात्मक गतिवाही[4] प्रकार के होते हैं, जैसे—टेलीग्राफी, टाइप-राइटिंग और सीखना (याद करना), धारण करना (या भूल जाना), निरर्थक सामग्री को याद करना आदि; और यह सामग्री खण्डो मे बाँटी जा सकती है एवं संख्यात्मक व्याख्या[5] के भी योग्य है।

सीखने के वक्र की सीमाएँ

सभी प्रकार के वक्रों मे संख्यात्मक व्याख्या का गुण होता है। ज्ञान के प्राप्त करने मे प्रगति के वक्र कुछ सीमा तक विश्वासपूर्ण नही हो सकते हैं, क्योंकि निश्चित

1. Learning Curves, 2. Abscissa. 3. Ordinate. 4 Sensory Motor Types of Learning. 5. Quantitative Expression.

अङ्कों का होना, उस प्रकार की सामग्री में क्रियात्मक रूप से असम्भव है। इसी कारण हम इस प्रकार के विषयों, जैसे—भाषा, इतिहास, भूगोल और पाठशाला के अन्य साधारण विषय आदि; के विश्वासपूर्ण वक्र नहीं बना सकते। यहाँ तक कि यदि वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ,[1] मापक और दूसरे सहायक यन्त्र[2] हमें ज्ञान को नापने की उचित विधि प्रदान करें, फिर भी हम इन विषयों के वक्र उचित रूप से चित्रित करने में असफल रहेंगे।

दूसरी सीमा जिससे सीखने का वक्र सीमित होता है, यह है कि मिश्रित प्राप्य वक्र जो कई व्यक्तियों के सीखने को एक ही वक्र पर प्रदर्शित करते हैं, मानवीय सीखने और मानवीय विभिन्नताओं की ओर ध्यान नहीं देते, जो उस विशेष परिस्थिति में पायी जाती हैं जिसमें सीखना होता है।

तीसरी सीमा यह है जिस सामग्री का हम अध्ययन करते हैं, उसमें की हुई उन्नति को सीखने के वक्र पर बताते समय सम्पूर्ण सामग्री को बराबर एकसी कठिनाई की समझते हैं। परन्तु ऐसा बहुत ही कम अवसरों पर सम्भव है। इस प्रकार सीखने के वक्र बिलकुल सही ढङ्ग से उन्नति को प्रकट नहीं कर सकते हैं, क्योंकि कभी समय के किसी भाग में कार्य आसान हो सकता है और कभी कठिन भी।

वक्र के प्रकार[3]

सीखने में कुशलता को प्राप्त करने का हम जब चित्रांकित प्रदर्शन[4] करते हैं तो यह कई प्रकार का होता है—(i) सरल रेखीय वक्र[5]—यह वक्र सीखने की प्रगति को स्थायी रूप से उन्नत करता हुआ व्यक्त करता है। यह वक्र बहुत कम दशाओं

वक्र के प्रकार
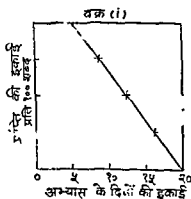
1. Objective Tests. 2. Instruments. 3. Types of Curves 4. Graphically Plotted 5. Straight-line Curve.
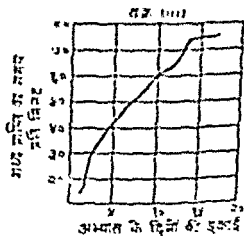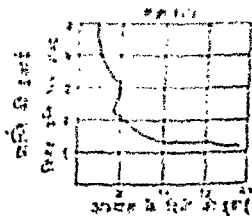
1. Convex Curve. 2. Concave Curve. 3. Combination Type Curve.
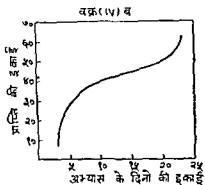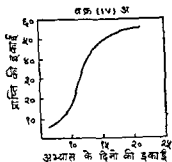
हमे यह याद रखना चाहिए कि विकास का कोई एक विशेष प्रकार का वक्र नहीं है। वक्र का रूप उसके रचना करने के ढंग पर निर्भर है। कुछ सीमा तक वक्र का रूप, कार्य की प्रकृति और कुछ सीमा तक सीखने वाले की कार्य करने की योग्यता, कार्य करने का ढङ्ग, पहले की शिक्षा और परिस्थितियाँ जिनमे वह कार्य करता है, वक्र के प्रकार को प्रभावित करती हैं।

सीखने के वक्र की विशेषताएँ[1]

(1) सीखने के वक्रो का विशेष अध्ययन हमारे सम्मुख यह स्पष्ट करेगा कि आमतौर से (यद्यपि आवश्यक नहीं है) सीखने में अभ्यास द्वारा जो आरम्भ मे तीव्र विकास होता है, वह धीरे-धीरे कम हो जाता है। यह उन वक्रों से जो कला-कौशल

---

1. Characteristics of Learning Curve.

प्राप्त करने को प्रदर्शित करते हैं, विशेष रूप से देखा जाता है। यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जब सीखने के आरम्भ में दीर्घ विकास लक्षित होता है तो उससे कभी यह स्पष्ट नहीं समझना चाहिए कि सीखना आरम्भ में बहुत अच्छा होता है। वक्र द्वारा प्रकट की हुई आरम्भ में किसी कार्य को करने में उन्नति कार्य-संलग्नता के कारण भी हो सकती है या सीखने का संगठन इस प्रकार का हो गया हो कि सीखने के सरल भाग को शीघ्रता से सीख लिया गया हो या पुराने अनुभव का नये सीखने में अच्छा उपयोग हो गया हो या कार्य को विस्तृत आधार पर समझ लिया गया हो, जिसके गुण या कठिन रूप को बाद में समझना हो। सीखने के वक्र इस प्रकार के भी हो सकते हैं जो देखने में नतोदर प्रकार के होते हैं और विकास को धीमे स्तर पर बनाते हैं। यद्यपि इस प्रकार के वक्र साधारण रूप में प्राप्त नहीं होते लेकिन फिर भी कभी-कभी ऐसे वक्र भी मिलते हैं। यह प्रारम्भ में धीमी उन्नति व्यक्त करते हैं। प्रारम्भ में यह धीमी उन्नति इस कारण हो सकती है कि कार्य करने में बालक को कठिनाई होती है, या ऐसी प्रतिक्रियाओं को जो उस कार्य से सम्बन्धित हैं, बालक को सीखने में कठिनाई होती हो। इस प्रकार उसके सीखने की प्रगति कम हो जाती है। धीरे-धीरे जब वह उस कार्य को समझ लेता है तो प्रगति करने लगता है। इस प्रकार के वक्र इन विषयों, जैसे—इतिहास, गणित आदि, में उन्नति प्रदर्शित करते हैं।

(ii) दूसरी विशेषता जो हम सीखने के वक्रों में पाते हैं, वह है कि व्यक्ति के सीखने में किन्हीं स्थानों पर यह वक्र बड़ी कम उन्नति प्रकट करते हैं। यह उन्नति को न दिखाने वाले स्थान सीखने के पठार[1] कहलाते हैं।

(iii) सीखने के वक्रों में सीखना कभी-कभी बड़ी तीव्र गति से भी प्रदर्शित होता है। यह स्थिति हमारे दैनिक जीवन में भी दिखाई पड़ती है। प्रायः जब एक टेनिस का खिलाड़ी खेल के मैदान में अधिक समय तक अभ्यास करता है और अचानक ही वह यह सीख लेता है कि किस प्रकार अच्छी सर्विस की जाय जिससे उसका प्रतिद्वन्दी गेंद उठा ही न सके तो इसके पश्चात् उसकी टेनिस खेलने की प्रगति बहुत ही तीव्र हो जाती है। अक्सर यह सीखने में "अचानक तीव्र सीखना" सीखने के पठार के बाद लक्षित होता है।

(iv) अधिकतर सीखने के सभी वक्रों में यह देखा जा सकता है कि सीखने में प्रगति अनियमित रूप से होती है। सीखने में कभी प्रगति तीव्र और कभी बहुत धीमी होती है। सीखने की यह प्रतिक्रिया लगभग व्यापी है। सीखने के वातावरण, सीखने की सामग्री जिसे सीखना है, और उस व्यक्ति में जो सीखता, है, दिन-प्रतिदिन परिवर्तन होता रहता है। यही परिवर्तन उसकी सीखने की उन्नति को प्रभावित करता रहता है। उदाहरण के लिए, यदि सीखने वाला बीमार है या ऊब जाता है या उसे

1 Plateus of Learning.

असफलता मिलती है तो उससे सीखना बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित होता है। जिस वातावरण मे वह सीख रहा है, वह उसके सीखने की इच्छा पर अनोखा प्रभाव डालता है जिससे भी *उसका सीखना रुक सकता है। सप्ताह के सभी दिनों में वह हमेशा एक* ही मानसिक स्थिति में नही होता और परिणामत उसके सीखने मे उतार-चढ़ाव रहता है।

(v) सीखने के वक्र यह भी प्रकट करते हैं कि एक सीमा ऐसी आ जाती है, जिसके बाद कोई भी उन्नति सम्भव नही है। कुछ कार्यों में विकास की यह सीमाएँ सीखने वाले के स्वयं के स्वभाव के कारण या उस कार्य के प्रकार के कारण जिसे वह कर रहा है, निर्धारित हो जाती हैं। अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि बालक के सीखने मे उस पर बहुत अधिक भार तो नही है। शिक्षा उन सीमाओ के अनुसार जहाँ तक कि वह उन्नति कर सकता है, दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, हाथ से लिखना एक सीमा तक तीव्र हो सकता है और इस सीमा के बाहर चाहे जितनी भी चेष्टा क्यो न की जाये, उसकी उँगलियाँ नही चल सकती हैं। यह अध्यापक तथा बालक, दोनो के लिए युक्तिसंगत है कि इस सीमा से अधिक प्रगति के लिए प्रयत्न न करें।

उपर्युक्त सीखने के वक्रों की पाँच विशेषताएँ हैं। इनमें से दो को हम कुछ विस्तार में नीचे स्पष्ट करेंगे—(१) सीखने के पठार, और (२) सीखने की शारीरिक सीमाएँ।

१. सीखने के पठार

हम देख चुके हैं कि सीखने मे ऐसे समय आते हैं जब हमारी कोई प्रगति नही होती। *इन्ही को हम सीखने के पठार के द्वारा प्रकट करते हैं। अध्यापक और बालक* चाहे कितने भी प्रयत्न क्यो न करें, यह पठार फिर भी मिलते हैं। अक्सर बालक पठार को सीखने की सीमा मानते हैं और उस स्थिति पर सीखना बन्द कर देते हैं। वे यह विश्वास करते हैं कि उनके सीखने मे अब अधिक उन्नति सम्भव नहीं हो सकती, फलतः वे निरुत्साहित ही हो जाते है और कार्य को छोड़ देते हैं। इसलिए शिक्षा-मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह इन पठारों की रचना के कारण समझ ले।

पठार के बनने के कारण—पठार के बनने के कई कारण होते हैं। रुचि की कमी, हतोत्साह, कठिन विषय, कोई खराब आदत, सीखने का त्रुटिपूर्ण ढंग (जैसे—पेन्सिल को त्रुटिपूर्ण ढङ्ग से पकड़ना आसानी से रेखा खींचने में बाधा डालता है) पठार के कारण होते हैं। शारीरिक दशा, जैसे—थकान, नेत्र-कष्ट आदि, भी पठार का कारण हो सकते हैं।

एक पठार जो रुचि की कमी के कारण बनता है, बालक की कार्य-सम्बन्धी रुचि को बढ़ाकर उचित रूप से दूर किया जा सकता है। बालक की इस रुचि को

वक्र रेखा द्वारा पठार का चित्र
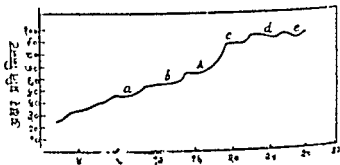
[उपर्युक्त वक्र एक विशेष प्रकार का वक्र है जो टेलीग्राफी के सिखाने को दिखाता है। 'A' पठार की मुख्य दशा प्रकट करता है, a, b, c, d, e छोटे पठार हैं, यह वक्र बायरन और हार्टर के अध्ययन पर आधारित है।]

बढ़ाने के लिए उत्तेजक दिए जा सकते हैं। हमे याद रखना चाहिए कि बहुधा रुचि मे कमी किसी अन्य मुख्य कारण पर निर्भर रहती है। उदाहरण के लिए, एक बालक एक कार्य करने मे जबकि वह बीमार पड़ता है या ऊब जाता है, कोई रुचि नहीं रखता, अतएव सीखने मे उसकी प्रगति रुक जाती है। यहाँ रुचि की कमी का कारण बालक का स्वास्थ्य है।

दूसरा सम्भावित कारण पठार के लिए यह है कि बालक के लिए पठन-सामग्री इतनी कठिन हो जाए कि वह उसको सीखने मे असमर्थ हो जाए। एक विद्यार्थी जो अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ करता है, उसकी कुछ समय तक के लिए प्रगति सन्तोषजनक रहती है। किन्तु यदि उसका कार्य कठिन है और उससे यह आशा की जाती है कि वह उतनी प्रगति दिखाये जितनी कि वह नही कर सकता तो पठार बन जाता है। इसी प्रकार यदि बालक को एक नई पुस्तक प्रारम्भ कराई जाती है जो उसे दूसरे ढङ्ग से पढ़ना सिखाती है, बजाय उसके जो उसने पहले सीखा है, तो भी सीखने मे पठार बन जाता है। इस प्रकार के पठारो को पुस्तक के उचित संगठन द्वारा रोका जा सकता है या कठिन कार्यों के न देने से रोका जा सकता है।

बुरी आदतो के कारण जो पठार उत्पन्न होते हैं उन्हे भी दूर किया जा सकता है। एक बालक जो अङ्को को उँगली द्वारा गिनकर जोड़ता है, उस समय पठार को बना लेता है जबकि कोई कठिन प्रश्न उसे करने को दिया जाता है, जिसमे उँगली पर गिनकर जोड़ने मे कठिनाई होती है। इस दशा मे सीखने के उचित ढङ्ग का प्रयोग करने मे पठार को दूर किया जा सकता है। अत यदि हमे सीखने के पठार को दूर करना है तो बालक जो गलत ढङ्ग से पेन्सिल का प्रयोग करता है, उसे

पेन्सिल को उचित ढङ्ग से पकड़ना बताना चाहिए, अथवा सीखने के अन्य वांछित ढङ्ग प्रयोग करने चाहिए।

पठार ऐसी दशा मे भी उत्पन्न हो सकते हैं, जहाँ बालक नवीन ढङ्ग को समझने में असमर्थ है या मुख्य नियमो को नही समझ सकता। दशमलव आदि की भिन्नो को हल करने में बालक कठिनाई का अनुभव कर सकता है, जब तक कि उसके सामने उचित ढङ्ग मे उनका सिद्धान्त स्पष्ट नही किया जाता है तथा उसे उचित उदाहरण नही दिये जाते।

बहुत-से पठार वृहत् रूप से आदतों के सगठनो के न होने के कारण भी उत्पन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक बालक जो टाइप-राइटिंग सीख रहा है, ऐसी सीमा पर काफी समय के लिए रुकता है जहाँ वह कोई प्रगति नही करता। वहाँ पर वह तब तक रुका रहता है जब तक कि वह स्वत.संचालित पूर्ण शब्द का अनुकरण नही करता और जब कि बिना शब्द-व्याख्या चेतन रूप से किये हुए उसकी उँगलियाँ उपयुक्त शब्द को स्वयं स्वचालित रूप से टाइप कर देती हैं। ऐसी अवस्था मे जब बालक प्रगति नही दिखाता, सम्भवत शब्दों की आदत का संगठन उसमे अवचेतन रूप से हो रहा होता है। अतएव बाहर से देखने में उसके कार्य मे कोई प्रगति नहीं प्रतीत होती। इस प्रकार से पठार अवसर आवश्यक हैं, परन्तु बहुत कुछ इनको भी आरम्भ मे उचित आदत उत्पन्न कर देने पर रोका जा सकता है।

उपर्युक्त कारण के अनुसार ही वर्तमान समय मे सीखने के पुराने ढङ्ग जिनमे वर्णमाला से पढ़ना सिखाया जाता था, त्रुटिपूर्ण माने जाते हैं। अक्षरो द्वारा सिखाने मे पहले बालको को अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है, फिर शब्द-विन्यास द्वारा शब्दो का ज्ञान दिया जाता है। परन्तु इस प्रकार के सीखने में बालक उस समय तक कोई प्रगति नही कर पाता जब तक कि शब्दों को इकाई के रूप मे नहीं पहचानने लगता है। अनएव इस समय मे सीखने मे पठार उत्पन्न हो जाते हैं। यह पठार तब तक दूर नही होते जब तक कि वह शब्दों को अच्छी व पूर्ण प्रकार से नही पहचानने लगता है। नवीन पद्धति मे बालक शब्दों से पढना आरम्भ करता है और वाक्य तक जल्दी पढ़ लेता है। इस प्रकार सीखने का पठार दूर हो जाता है। शब्दों की आदत उसके सीखने मे पठार को दूर करती है। इस प्रकार एक विदेशी भाषा, जैसे अंग्रेजी, के अध्यापन के समय बालकों को एक वाक्य का अर्थ उसके व्याकरण के विश्लेषण के पश्चात् नहीं बताना चाहिए। उसे अंग्रेजी वाक्य को आरम्भ से पढ़ाना चाहिए और बाद मे उसे व्याकरण-सम्बन्धी व्याख्या बतानी चाहिए।

दूसरे और भी कारण हैं जो पठार बनाते हैं, वे बालक के कार्य करने के ढङ्ग पर आधारित हैं। यदि कार्य के किसी एक भाग पर अनुचित ध्यान दिया जाता है और दूसरों को छोड़ दिया जाता है तो उचित सम्बन्धित प्रतिक्रिया नहीं हो सकती और फलत पठार बन जाता है। इसी प्रकार यदि त्रुटि-परिवर्तन भी एक भाग मे

दूसरे मे हो जाता है या एक पाठ के विभिन्न भागो मे कोई समन्वय नहीं होता तो भी पठारो की रचना हो जाती है।

अध्यापक को स्मरण रखना चाहिए कि पठारो को दूर किया जा सकता है। यहाँ तक कि उच्च आदतो के संगठित होने मे भी जो कठिनाई होती है, उसके द्वारा बने हुए पठार को भी दूर किया जा सकता है।

२. सीखने में शारीरिक सीमा[1]

सीखने के कारणो के सम्बन्ध मे हमने यह बताया था कि एक निश्चित शारीरिक सीमा तक ही हम सीख सकते हैं। किसी वस्तु या कार्य को सीखने की निश्चित सीमा सम्भव है, किन्तु साधारणतया हम उस सीमा तक नहीं पहुँच पाते। गेट्स इत्यादि का कहना है कि "शारीरिक सीमा वह योग्यता की मात्रा है जिसका एक व्यक्ति उल्लघन नहीं कर सकता क्योंकि जन्म से प्राप्त गतिवाहो या मानसिक प्रतिक्रियाओ की गति की सीमाएँ निश्चित होती हैं।"[2] किसी भी विषय में कार्य करने की क्षमता और गति, जैसे टाइप-राइटिंग आदि, हमारी स्नायविक मांसपेशिक यन्त्र[3] पर निर्भर होती है, और साथ ही साथ हमारी प्रतिक्रियाओ के साधारण नियन्त्रण पर भी। ज्ञान बढ़ाने के विषय मे भी एक व्यक्ति जन्मजात शक्तियों पर ही निर्भर रहता है जो एक औसत बालक मे १५ से २५ वर्ष के अन्दर अपने पूर्ण विकास पर पहुँच जाती

इस प्रकार की क्रियाओं मे हमारी शारीरिक सीमाएँ, जैसे १०० गज दौड, कूदना, जो आधार रूप मे हमारी मांसपेशिक शक्ति और गति पर निर्भर रहें, बहुधा पहुँच जाती है। लेकिन बहुत कम दशाओ मे हम इस प्रकार की क्रियाओं मे, जैसे—टाइपिंग, ड्राइङ्ग तथा प्यानो का बजाना आदि कार्यों को करने में, इस सीमा तक पहुँचते हैं। कानून, औषधि, इतिहास आदि मे कोई शारीरिक सीमा नहीं है बल्कि इनमें हमेशा अधिक सीखने की सम्भावना है, यद्यपि इनमें भी गति की एक निश्चित सीमा होती है, जिस तक कि हम पहुँच सकते हैं।

केवल कुछ ही व्यक्ति शारीरिक सीमा तक पहुँच पाते हैं। यह सीमा क्रियात्मक कार्यों के करने वालों मे पहुँचना अधिक सम्भव है अपेक्षाकृत उनमे जो बौद्धिक कार्य करते हैं।

सीखने के वक्रों के प्रयोग[4] या उपयोगिता

सीखने मे पथ-प्रदर्शन के लिए सीखने के वक्रो का बहुत महत्त्व है। हम वक्रो की इस उपयोगिता को अग्रांकित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :

---

1. Physiological limit in learning 2. Gates & Others : "The physiological limit is that degree of ability which a particular person cannot surpass because of inherited limits in the speed of complexity of motor or mental responses." 3. Neuro-muscular Mechanism 4. The Use of Learning Curves.

(i) सीखने के वक्रों का उपयोग हम सीखने में सामान्य प्रगति का क्या रूप है, इसे जानने के लिए कर सकते हैं। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि यह वक्र हमें इस बात की कोई विशेष सूचना नहीं देते कि सीखने का ढङ्ग किस प्रकार का हो। फिर भी एक अध्यापक के लिए इनका महान् उपयोग है क्योंकि वह अपने बालकों की प्रगति को इन वक्रों के द्वारा देख सकता है। साथ ही साथ वह बालक के विकास की समानताओं तथा असमानताओं को भी मालूम कर सकता है और प्रगति का सम्बन्ध भी उस सामग्री से मालूम कर सकता है जिसे वह प्रयोग में लाता है।

(ii) अध्यापक को यह सूचना मिलती है कि यदि वह सीखने में उचित ढङ्गों का प्रयोग करे, सीखने की सामग्री का उचित संगठन करे और बालकों को उचित प्रोत्साहन दे तो पठारों के बनने को रोका जा सकता है।

(iii) यह मुख्य रूप से आवश्यक है कि त्रुटियों को आरम्भ में ही अलग कर दिया जाय, नहीं तो इनकी उपस्थिति से बालक की प्रगति रुक जायेगी और बाद में उनका दूर होना भी प्रायः कठिन हो जाता है। सीखने के वक्र इस प्रकार की त्रुटियों को रोकने में सहायक होते हैं। जब कभी पठार बनने लगते हैं तो अध्यापक सीखने की विधि का अवलोकन कर सकता है और बालकों को उस उचित विधि से कार्य करने की प्रेरणा दे सकता है, जिससे उनकी त्रुटियाँ दूर हो जायें और पठार न बनें।

सारांश

सीखने के मनोविज्ञान का अध्ययन हमें कुछ ऐसी सीखने की विधियों से अवगत कराता है जिनका प्रयोग करके शिक्षक बालकों के सीखने में उन्नति ला सकता है। जो विधियाँ सीखने में तथा स्मरण करने में लाघव मितव्ययता के लिए उत्तरदायी हैं वह हैं (१) पूर्णाधिगम एवं खण्ड अधिगम—बहुधा पूर्णाधिगम विधि अच्छी समझी जाती है किन्तु जब सीखने वाला अनुभवहीन या आत्म-विश्वासी न हो तथा याद किये जाने वाला विषय जटिल हो तो खण्ड विधि उत्तम है। (२) अंशाधिगम प्रगतिशील विधि—इसमें कठिन पाठ को पहले कण्ठस्थ कर लिया जाता है। पूर्णाधिगम विधि का रूपान्तर ही प्रगतिशील विधि है। इसमें पाठ को खण्डों में विभाजित कर लिया जाता है और १, १, २, १, २, ३, इत्यादि प्रकार से याद किया जाता है। (३) सस्वर पाठ—सस्वर पाठ स्मरण में सहायक होता है। इसमें पढ़ने के पश्चात् उसका पुनर्स्मरण किया जाता है। इन विधियों के अतिरिक्त सीखने के समय इत्यादि के सम्बन्ध में भी कुछ विधियों का वर्णन किया जा सकता है : (i) अभ्यास-काल की लम्बाई—पाठ के अनुसार तथा रुचि के अनुसार इसका निर्धारण करना चाहिए। (ii) सान्तराल अधिगम—सीखने में अवकाश देकर सीखना चाहिए। (iii) अत्यधिगम—कुछ विषयों का अत्यधिगम करना आवश्यक है।

सीखने में उन्नति के सम्बन्ध में कुछ सामान्य सुझाव दिये जा सकते हैं। इसी प्रकार पढ़ने की अच्छी आदतें डालने के लिए कुछ पदों का अनुसरण करना आवश्यक है।

सीखने में प्रगति को बहुधा सीखने के वक्र द्वारा प्रकट करते हैं। यह वक्र रचनात्मक या कौशल-सम्बन्धी क्रियाओं को बौद्धिक क्रियाओं के तुलनात्मक अधिक सरलता से प्रदर्शित करते हैं। यह वक्र कई प्रकार के होते हैं : (१) सरल रेखीय वक्र, (२) उन्नतोदर वक्र, (३) नतोदर वक्र, तथा (४) नतो-उन्नतोदर वक्र। सीखने के वक्र की कुछ विशेषताएँ होती हैं, जैसे—आरम्भ में शीघ्रता से ऊपर बढ़ना और फिर प्रगति का धीमा होना। सीखने में पठार का बनना इत्यादि। ऐसे समय, जब हमारे सीखने में कोई उन्नति नहीं होती है, सीखने के वक्र में, सीखने के पठार द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। इन पठारों के बनने के कई कारण होते हैं, जैसे—रुचि की कमी, हतोत्साहन, सीखने के त्रुटिपूर्ण ढंग या शारीरिक थकान, कष्ट इत्यादि। पठारों को बनने से रोकने के हेतु नवीन शिक्षा-प्रणाली के शब्द तथा वाक्य-ज्ञान, अक्षर-ज्ञान से पहले देना अच्छा समझा जाता है। अध्यापक पठारों के बनने के उचित कारणों को जानकर उनको बालकों में बनने से रोक सकता है। सीखने के वक्र द्वारा हम एक और निष्कर्ष पर आते हैं, वह यह कि सीखने में एक शारीरिक सीमा होती है जिसके आगे हम चाहे कितना ही प्रयत्न करें, उन्नति सम्भव नहीं। सीखने की क्रिया में वक्रों की काफी उपयोगिता है। परन्तु यह वक्र हमें सीखने के ढङ्ग के सम्बन्ध में कुछ भी बताने में असमर्थ हैं।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. आप किन विधियों का प्रयोग करके एक बालक को (अ) छोटी कविता, (ब) लम्बी कविता, (स) गणित के पहाड़े, याद करायेंगे ?

२. सीखने के पठार से आप क्या समझते हैं ? विभिन्न प्रकार के सीखने के विभिन्न प्रकार के पठारों का उदाहरण दीजिए। शिक्षण में उनका प्रयोग कैसे किया जा सकता है ?

३. शिक्षण देने में किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए ताकि अच्छा सीखना हो और समय एवं शक्ति दोनों की मितव्ययता हो ?

४. पठार बनने के कौन-कौनसे मुख्य कारण होते हैं ? आप उनको बनने से किस प्रकार रोक सकते हैं ?

५. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

(i) गइशः विधि कभी-कभी उस समय अत्यन्त लाभदायक होती जब स्मरण करने वाला ''''''हो तथा याद किया जाने वाला विषय ''''''हो।

(ii) प्रयोगात्मक परीक्षण बताते हैं कि अध्ययन के समय का''''भाग सस्वर पठन विधि में लगाना लाभप्रद हो सकता है।

(iii) प्रतिद्वन्द्विता सीखने में''''''हो सकती है।

(iv) पाठन का अभ्यास'''' '''' सामग्री पर करना चाहिए।

(v) सीखने में'''' '' का प्रयोग करें, सीखने की सामग्री का उचित ''''''करें और बालकों को उचित '''''' दें तो पठारों के बनने को रोका जा सकता है।

१७ प्रशिक्षण का स्थानान्तरण अथवा अधिगमान्तरण
TRANSFER OF TRAINING

विद्यालयो मे अध्यापक प्राय: छात्रो से यह कहते हुए सुने जाते हैं कि अमुक विषय का अध्ययन दूसरे अन्य विषय के अध्ययन से अधिक महत्त्वपूर्ण है, अथवा अमुक विषय दूसरे विषय मे अधिक उपयोगी है। प्राय यह बात अंग्रेजी और गणित के शिक्षक ही अधिक कहते हैं। यही नही, इन विषयों पर विशेष बल भी देते हैं और छात्रो के अभिभावक-गण भी अपने बच्चों की निपुणता का अनुमान इन्ही विषयों मे पारंगत होने पर लगाते हैं। जो विद्यार्थी अंग्रेजी या गणित आदि विषयो मे योग्य होता है उसी को 'काबिल' की पदवी दी जाती है। शायद इन अध्यापको के मस्तिष्क मे यह विचार घर किये हुए है कि गणित अथवा अंग्रेजी के अध्ययन मे उनके बच्चों का मस्तिष्क विकसित होता है और वे निपुण बनते हैं—जैसा कि इतिहास तथा नागरिक-शास्त्र आदि विषयों के अध्ययन से सम्भव नही है। लेखक के हृदय-पटल पर उन अतीत के कुछ दिनो की स्मृति सजीव हो उठती है जबकि अंग्रेजी भाषा मे निपुण व्यक्ति ही सर्वाधिक योग्य व्यक्ति समझा जाता था। वह उस समय की भी याद करता है जब बालको मे शब्दकोश के 'A' से लेकर 'Z' तक समस्त शब्दो के कंठाग्र करने की होड़ थी।

इस प्रकार की कंठस्थता का तात्पर्य भी यही था कि इस प्रणाली द्वारा बालकों का मस्तिष्क एक प्रकार के साँचे मे ढल जाय, अर्थात् वह मानसिक रूप से अनुशासित हो जाय। यह तो नितान्त सत्य है कि एक विद्यार्थी चाहे शब्दकोश के सब शब्दों को स्मरण कर ले, फिर भी केवल कुछ ही शब्द जीवन भर उसके द्वारा उपयोग किये जायेंगे। अन्य शब्द केवल मस्तिष्क में ज्ञान का भण्डार ही बनकर रहेंगे जिनका व्यक्ति के जीवन मे कोई उपयोग न होगा। परन्तु फिर भी बहुत-से अध्यापक इस प्रकार के शिक्षण पर जोर देते हैं, यद्यपि यह विधि आधुनिक शिक्षण-प्रणाली से मेल नहीं खाती है। प्राचीन अध्यापक और आजकल भी कुछ अध्यापक ऐसे मिल जायेंगे जो कुछ विषयों को बालक की शिक्षा मे इस कारण उच्च स्थान देते हैं कि वह विषय मस्तिष्क का प्रशिक्षण या अनुशासन दूसरे विषयों मे अच्छी प्रकार से कर सकते हैं।

वर्तमान काल में अधिगम को प्रोत्साहित अथवा अनुप्राणित करने का दृढ़ प्रयत्न रहा है, परन्तु प्रत्येक शिक्षक को इस बात की अच्छी तरह जानना चाहिए, कौनसा सिद्धान्त अमान्य हो रहा है, और कौनसा सिद्धान्त उसके स्थान पर आता जा रहा है। यह समझना आवश्यक भी है, क्योंकि पाठ्यक्रम का निर्माण इन अधिगमान्तरण सिद्धान्त के दृष्टिकोण पर आधारित है। इसके अतिरिक्त शिक्षण प्रणाली का निर्माण भी अपनाना चाहिए, शिक्षक को भी इसी बात पर विचार करना कि स्थानान्तरण के लिए सिद्धान्त न कम आवश्यक रहते हैं? कौनसा सिद्धान्त हमारे लिए उपयोगी है? अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम विभिन्न अधिगमान्तरण सिद्धान्त का अध्ययन करें।

अधिगमान्तरण के विभिन्न सिद्धान्त[1]

१ मानसिक शक्ति-सिद्धान्त और औपचारिक अथवा मानसिक अनुशासन अवधारणा[2]

मानसिक शक्ति-सिद्धान्त अत्यन्त पुरातन है जिसकी पुरातनता आज भी परिलक्षित होती है। इस सिद्धान्तानुसार सामान्य रूप से स्मृति, कल्पना, अवधान, इच्छा-शक्ति व भाव आदि मस्तिष्क की शक्तियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, और यह भी माना जाता है कि इनमें से प्रत्येक सुनिश्चित इकाई के रूप में है। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व भी इन शक्तियों के एक प्रकार के सहसम्बन्ध का परिणाम ही है। मानसिक शक्ति-सिद्धान्त मस्तिष्क को विभिन्न शक्तियों के रूप में समझता है और यह प्रतिपादित करता है कि यह शक्तियाँ कम या अधिक मात्रा में एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहकर ही सक्रिय होती हैं।

इस सिद्धान्त के पक्षपाती इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मानसिक शक्ति एक शक्ति है, क्षमता है अथवा व्यक्तिगत गुण है—जो समग्र रूप से शिक्षित की जा सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि हम स्मृति, कल्पना या इच्छा-शक्ति को शिक्षित करना चाहते हैं तो हमें इस प्रकार की शिक्षण-विधि चुननी चाहिए, जो इस कार्य को मितव्ययता और निपुणता से सम्पन्न कर सके। इस सिद्धान्तानुसार किसी विशिष्ट विषय के शिक्षण से जो बालक के लिए तत्कालीन उपयोगिता का है, इन शक्तियों का प्रशिक्षण कहीं अधिक उपयोगी समझा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि स्मृति को प्रशिक्षित किया जाता है तो उन शब्दों को कंठाग्र कर लेना भी आवश्यक समझा जाता है, जिनकी उस समय स्मरणकर्त्ता के लिए कोई उपयोगिता नहीं होती। इससे तात्पर्य यही है कि शिक्षण प्रदान करने में मानसिक शक्ति का शिक्षण ही सबसे महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, हालाँकि इस प्रकार की शिक्षा का बालक के वर्तमान जीवन में कोई भी महत्त्व नहीं होता है।

---

1. Various Theories of Transfer. 2. Faculty Theory of Mind & Concept of Formal Discipline.

औपचारिक[1] अनुशासन के पक्षपाती इस बात को अधिकृत रूप से मानते हैं कि क्रियात्मक विषयों अथवा उपयोगी विषयों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि कुछ चुने हुए विषयों का अध्ययन जो अनुशासनीय उपयोगिता रखते हैं, बालक को जीवन की समस्त परिस्थितियों का सामना करने योग्य बना देता है।

१९वीं सदी के सब विद्यालयों में और २०वी सदी के आरम्भकाल में भी बहुत-से विद्यालयों में धातुकला, काष्ठकला आदि विषयों का परीक्षण किसी प्रकार के व्यावसायिक मूल्य के दृष्टिकोण से नहीं दिया जाता था, और न उसका कोई आर्थिक महत्त्व ही था, वरन् प्रत्यक्षीकरण के प्रशिक्षण तथा बालकों के तुलनात्मक भावों इत्यादि की शक्ति को शिक्षित करना ही उसका मुख्य उद्देश्य था।

परन्तु आधुनिक शिक्षाशास्त्री इस प्रकार के मानसिक प्रशिक्षण के विरुद्ध हैं। आधुनिक पाठ्क्रम मानसिक शक्ति के दूषित पक्ष पर आधारित नही है। इस समय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत जो भी विषय हैं वे सुनिश्चित हैं और उनका महत्त्व सामाजिक एवं व्यावहारिक, दोनों ही रूपों में है। विभिन्न प्रकार की योग्यताओं और निपुणताओं की शिक्षा इस समय प्रत्यक्ष रूप से दी जाती है, क्योंकि अब यह माना जाता है कि यह अप्रत्यक्ष रूप से स्थानान्तरण के द्वारा नहीं पढ़ाई जा सकती। इस सम्बन्ध में सारेन्सन[2] महोदय ने कहा भी है कि शिक्षाशास्त्री और मनोवैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि जीवन की परिस्थितियाँ अनेक प्रकार के कार्यों की ओर आह्वान करती हैं जिनका अलग-अलग सीखना आवश्यक है। सामान्य प्रशिक्षण सब प्रकार की क्रियाओं के लिए पर्याप्त नहीं है। इसी कारण हमारे पाठ्यक्रम में अनेक विषय होते हैं। अनेक विषयों का पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना प्रमुखत इस तथ्य के कारण भी है कि विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न योग्यता तथा रुचि होती है और हम चाहते हैं कि पाठ्यक्रम को व्यक्तियों की योग्यतानुसार एवं रुचि के अनुसार बनायें।

२ समान तत्त्व सिद्धान्त[3]

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए थ्रो महोदय कहते हैं—"आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ता इस तथ्य पर आश्वस्त हैं कि मानसिक क्रियाएँ; जैसे—विचार करना, अवधान, स्मृति और तर्क आदि, अलग-अलग अपना अस्तित्व नहीं रखती हैं। परन्तु किसी भी स्थिति में ये सब मानसिक क्रियाएँ एक-दूसरे से मिलकर क्रियाशील होती हैं।" इस विचारधारा ने मनोवैज्ञानिक विचार-प्रवाह और उसकी क्रिया में पर्याप्त परिवर्तन ला दिया है। इस समय मानसिक प्रशिक्षण का प्रश्न नही है, परन्तु यह पता लगाना है कि एक विशिष्ट परिस्थिति में अर्जित किया ज्ञान विद्यार्थी की दूसरी परिस्थिति में कहाँ तक सहायक होता है। शिक्षा के स्थानान्तरण पर जो परीक्षण किये

---

1. Formal. 2 Sorenson 3. The Theory of Identical Elements or Components.

साधारण क्रिया से जो जटिल होती है, स्थानान्तरण हो सकता है। इसलिए वुडव
ने सुझाव दिया कि 'तत्व' शब्द के स्थान पर 'संघटक' शब्द का प्रयोग होना चाहिए
इससे उसकी संदिग्धता दूर होगी। अतः यह सिद्धान्त आजकल प्राय 'समान संघट
का सिद्धान्त कहा जाता है।

समान तत्व सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई कार्य-प्रणाली अथ
प्रवृत्ति जो एक विशिष्ट परिस्थिति में सीखी गई है, दूसरी समान परिस्थिति में
सम्भवतः प्रयोग हो सकती है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो क्रिकेट खेलने सम
अपने बल्ले से गेंद को चतुरता से मारकर अपनी आँख को प्रशिक्षित करता है, अप
टाँगों को सफल रूप से घुमाता है, स्थान का परिवर्तन समुचित रीति से करता
वह इन सभी विशेषताओं को होंगी और फुटबाल खेलते समय स्थानान्तरित कर ले
है। किन्तु क्रिकेट खेलने की कुछ विधियाँ, जैसे—बल्ले से गेंद मारने का कौश
फुटबाल में पैर से गेंद मारने में किंचित् भी स्थानान्तरित नहीं हो सकता और प्रथ
परिस्थिति का कौशल दूसरी परिस्थिति में कुछ भी सहायता प्रदान नहीं करता
अत. यह भी सम्भव है क्रिकेट का एक अच्छा खिलाड़ी होंगे या फुटबाल का अच
खिलाड़ी न हो।

३ सामान्यीकरण का सिद्धान्त[1]

स्थानान्तरण की तृतीय प्रणाली के प्रणेता चार्ल्स जंड[2] महोदय हैं। इन्हों
स्थानान्तरण और सामान्यीकरण के सिद्धान्तों को एक-दूसरे का पर्यायवाची माना है

*"इस सिद्धान्तानुसार विशिष्ट निपुणता का विकास, विशेष तथ्यों पर पूण
धिकार, एक स्थिति में विशेष आदत या मनोवृत्ति का प्राप्य दूसरी स्थिति में स्थान
न्तरण की दृष्टि से बहुत थोड़ा महत्व रखता है—जब तक कि निपुणता, तथ्य औ
आदत क्रमबद्ध नहीं हो जाते और उन दूसरी परिस्थितियों से सम्बन्धित नहीं हो
हैं, जिनमे उनका प्रयोग किया जा सके।"*[3]

इसका तात्पर्य यह हुआ कि शिक्षा में प्रशिक्षण का स्थानान्तरण उसी सम
सम्भव है जबकि एक विशिष्ट परिस्थिति में ही नहीं, वरन् विभिन्न परिस्थितियों में
उचित व्यवहार करने की शिक्षा दी जाय। उदाहरण के लिए, एक बालक को शिक्ष
के प्रति व्यवहार करने में सत्य बोलने की ओर शिक्षा दी जाती है किन्तु यह पर्या
नहीं है। जीवन के जिस क्षेत्र में भी बालक जाये, वहाँ सारी परिस्थितियों में सभी
साथ उसका सत्य व्यवहार हो, तभी उसकी शिक्षा सार्थक है। उसे साधारणतया अ

---

1. The Theo... of G...

3. "... the mastery ... attitudes in ... have a little transfer value unless tl skills, facts, habits are systematized and related to other situatio in which they can be utilized."

मित्रों, सहपाठियों, अभिभावकों आदि—सभी के साथ व्यवहार करने में सफलता मिलनी चाहिए।

अध्ययन और कार्य करने की आदत, कार्य-प्रणाली की रीति तथा अन्य घटनाओं का ज्ञान जो औपचारिक शिक्षण-काल में संचित किया जाये, एक व्यक्ति के लिए उसी समय लाभप्रद हो सकता है, जबकि वह उन्हें समझे तथा उनके द्वारा अपने व्यक्तित्व में संपरिवर्तन लाये और वह अपने सामान्यीकृत अनुभवों का जीवन की विशिष्ट परिस्थितियों में प्रयोग कर सके।

सामान्यीकरण के अनेक प्रकार या रूपान्तर—गेस्टाल्ट मतावलम्बी इस पर विश्वास करते हैं कि पूर्ण आकार अथवा अर्थपूर्ण संग्रह का ज्ञान एक ऐसा सं है जो ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ प्राणी के जीवन में संपरिवर्तन भी लाता है। सीखने एक विशिष्ट परिस्थिति में भाग लेने के फलस्वरूप प्रतिक्रियाओं का संगठित रू प्राप्त हो जाता है जो सम्पूर्ण अथवा एक विशेष संग्रह के रूप में उन दूसरी प स्थितियों में दुहराया जा सकता है जिनमें वह विशिष्ट प्रतिक्रिया प्रयुक्त हो सं यदि परिचित सम्पूर्ण प्रतिक्रिया से व्यक्ति की तुष्टि नहीं होती है तो उसमें अ व्यावहारिक संपरिवर्तन लाये जा सकते हैं जिससे अधिक प्रभावशाली प्रणालियाँ उ की जायें जो जिज्ञासु के व्यवहार में इष्ट परिवर्तन ला सकती हैं, जिससे वह अ उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

श्री बोड[1] महोदय के अनुसार व्यक्ति अपने गत अनुभवों और प्रतिक्रियाओ के परिणामस्वरूप गूढ़ प्रतिक्रियाओं के तत्वों का संग्रह कर लेता है। उसके सीख के किसी स्तर पर यह अनुभवों का संग्रह किसी नई परिस्थिति के तत्वों को क्या अ प्रदान किये जाएँ, इसे निर्धारित करता है और उसकी प्रतिक्रिया को उसके सगठि अनुभवों के रूप में दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार वह एक नूतन परिस्थिति क संवरण पुरातन संगृहीत एवं सगठित अनुभवों के अर्थों में करता है और स्थानान्तरण हो जाता है।

श्री जॅड के सामान्यीकरण सिद्धान्त के रूपान्तरण में रीडगर[2] और बागले[3] की कृतियों ने पर्याप्त वृद्धि की। इन मनोवैज्ञानिकों ने 'चेतन रूप से आदर्शों' को एक स्थिति से दूसरी स्थिति में स्थानान्तरण करने पर बल दिया।

उपर्युक्त सभी प्रणालियाँ यह निर्देश करती हैं कि शिक्षा का रूपान्तरण भी होता है। लेकिन यह स्थानान्तरण किस प्रकार परिलक्षित होता है, यह विभिन्न प्रणालियों द्वारा पृथक्-पृथक् रूप में प्रदर्शित किया गया है। आगे जो विवरण हम दे रहे हैं, उससे स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें से कोई भी प्रणाली शिक्षा के स्थानान्तरण की सही व ठीक विवेचना नहीं करती है।

प्रशिक्षण के स्थानान्तरण पर अनेक प्रयोग किये गए हैं, जिनके परिणामस्वरूप

1. Bode. 2. Readger. 3. Bagley.

उपर्युक्त कुछ प्रणालियों को स्वीकार किया जाता है और कुछ को नहीं। इस पर भी यह क्षेत्र सभी वैज्ञानिकों के लिए खुला हुआ है। अब हम शिक्षा के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में किये जाने वाले प्रयोगों के विषय में संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

अधिगमांतरण से सम्बन्धित प्रयोग

अधिगमान्तरण पर प्रयोगशालाओं में अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। स्थानान्तरण पर आरम्भ काल में कुछ प्रयोग वही हैं जो प्राय मानसिक अनुशासन के सिद्धान्त की मान्यता का परीक्षण करने के लिए प्रयोगशालाओं में किए गए थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयोग भी किए गए हैं, जो स्पष्टत स्थानान्तरण को उत्पन्न करने वाली दशाओं से सम्बन्धित हैं। अब कुछ अन्य अनुसंधान भी किये जा रहे हैं जो प्रयोगशाला के वातावरण से बिलकुल भिन्न दशाओं में किये जा रहे हैं। यह अनुसंधान यह ज्ञात करने के लिए किए जा रहे हैं कि एक विषय का सीखना दूसरे विषय के सीखने में कैसे सहयोग देता है।

संवेदनात्मक गतिवाही संक्रमण का अध्ययन[1]

विपरीत सह-अंग-शिक्षा[2] (इस प्रकार का प्रशिक्षण जो शरीर के विपरीत सतर्ग से सह-अङ्ग की कार्य-कुशलता को प्रभावित करता है) का प्रयोगशालाओं में अत्यधिक अध्ययन किया गया है। दर्पण की सहायता से स्टार्च[3] महोदय द्वारा किये गये इस प्रकार के प्रयोग सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। स्टार्च ने यह पता लगाने की चेष्टा की कि एक तारे के प्रकार के चित्र को दर्पण में देखकर सीधे हाथ द्वारा खींचा जाता है, उन्हीं दशाओं में बाएँ हाथ द्वारा खींचने में कितनी सरलता एव सुगमता होगी। विषयी[4] से कहा गया कि वह चित्र को अपने बायें हाथ से खींचे और जितने समय में उसने चित्र खींचा उसे लिख लिया गया, फिर विषयी से उसी चित्र को सीधे हाथ द्वारा खींचने को कहा गया। सीधे हाथ से खींचने का अभ्यास १० दिन तक किया गया, १० दिन के पश्चात् उससे तारे को दाएँ हाथ से फिर खींचने को कहा गया। अब यह देखा गया कि वह तारे को पहले की अपेक्षा कम समय में खींच लेता था जो यह सिद्ध करता है कि उसका सीधे हाथ से किया गया अभ्यास स्थानान्तरित हो गया। परन्तु अब मनोवैज्ञानिक यह कहते हैं कि यह प्रयोग, कला का सीधे हाथ से बाएँ की ओर स्थानान्तरण प्रदर्शित नहीं करता है। यह तो मस्तिष्क का दोनों—सीधे तथा बायें—हाथ पर नियन्त्रण के कारण होता है। इसी प्रकार के अध्ययन जो एवर्ट,[5], मन[6] तथा ब्रे[7] द्वारा विपरीत सह-अङ्ग-शिक्षा पर किये गए हमें इस

1. Studies of Sensory-motor Transfer. 2. Cross Education.
3. D Starch : *Psychological Bulletin*
4. Subject.
5. P. H. Evert . *Pedagogical Memory.*
6. N. L. Mun : *Journal of Educational Psychology.*
7. E. W. Bray : *The Journal of Experimental Psychology.*

१४८ पंक्तियाँ 'सेटायर' में चुनी और उन्हें याद किया। उसने पाया कि जब उसे इन पंक्तियों के कंठाग्र करने में अधिक समय लगा उसके तुलनात्मक जो उसे पहले 'सेटायर' की पंक्तियों को याद करने में लगा था। उसने इसी प्रकार कंठाग्र करने की क्षमता ४ और व्यक्तियों पर प्रयोग करके मालूम की। ४ में से ३ ने कंठाग्र करने में कुछ समय की बचत दिखाई जबकि उन्होंने ऐसा किसी और सामग्री को काफी समय तक याद करने के पश्चात् किया, परन्तु चौथे व्यक्ति ने कुछ अधिक समय कंठाग्र करने में लगाया। इन प्रयोगों में नियन्त्रण इस प्रकार से नहीं रखे जा सके जो वैज्ञानिक प्रयोगात्मक विधि के लिए आवश्यक है। अतएव हम इन निष्कर्षों को पूर्णतया मान्य नहीं कह सकते। फिर भी इन परीक्षणों ने मनोवैज्ञानिकों को यह विश्वास दिला दिया कि स्मृति में उन्नति के लिए मानसिक अनुशासन का सिद्धान्त गलत है।

दूसरा प्रयोग जो वस्तुतः स्मरणीय है, स्लाइट[1] का है। उन्होंने पद्य, पहाड़े[2] और गद्य वस्तु को स्मरण करने का प्रभाव, तिथि, निरर्थक शब्द-विन्यास, कविता, गद्य (साहित्यिक), गद्य (भावार्थ) को याद करने की योग्यता पर देखा। इस प्रयोग के फल बहुत कुछ भिन्नता लिये हुए थे। कुछ स्मरण करने वाली वस्तुओं में बिलकुल भी स्थानान्तरण नहीं हुआ। दूसरी वस्तुओं में कुछ छोटी मात्रा में स्वीकारात्मक स्थानान्तरण[3] हुआ, जबकि कुछ और में नकारात्मक स्थानान्तरण[4] हुआ (हम नकारात्मक स्थानान्तरण का वर्णन इस अध्याय में आगे चलकर करेंगे)। स्लाइट ने अपने प्रयोगों के परिणामस्वरूप बहुत-से निष्कर्ष निकाले। उनमें से दो का स्पष्टीकरण हम यहाँ करेंगे, क्योंकि वह मानसिक अनुशासन के सिद्धान्तों के पूर्ण विपक्ष में हैं। इन दोनों का सारांश इस प्रकार है

(१) अभ्यास के परिणामस्वरूप सामान्य स्मृति में किसी प्रकार की प्रगति दृष्टिगोचर नहीं होती और न सामान्य स्मृति-कृत्य[5] की कल्पना का ही कोई प्रामाणिक आधार मिलता है। (२) इसके स्थान पर एक बहुत बड़ी संख्या में सम्बन्धित तथा असम्बन्धित स्मृति-कृत्य जो गूढ़ प्रकार के थे, प्रतीत हुए।

बहुत-से अन्वेषकों ने जिन्होंने स्मृति-पदार्थ पर परीक्षण किया, स्लाइट के प्रयोगों से अधिक अनुकूल संक्रमण पाया। फिर भी उनके परीक्षणों के परिणाम यह बात सिद्ध करने में असफल रहे हैं कि निरन्तर अभ्यास स्मृति में सामान्य रूप से विकास कर देते हैं। स्मृति का कृत्य एक गूढ़ क्रिया है और स्थानान्तरण के फल अधिक उस विशिष्ट क्रिया पर निर्भर होते हैं जिसका अभ्यास किया जाता है और उनके उस स्मृति के कृत्य के सम्बन्ध में जिसमें इसका स्थानान्तरण है।

---

1. Sleight 2. Multiplication Tables. 3. Positive Transfer. 4. Negative Transfer. 5. General Memory Function.

तार्किक पदार्थ[1]

विंच[2] ने अधिगमातरण का एक ही रोचक प्रयोग तार्किक पदार्थों पर किया। उन्होंने स्कूलों के बालको पर यह प्रयोग किया कि गणित की समस्याओं को हल करने की क्षमता का स्थानान्तरण दूसरी तार्किक समस्याओं को हल करने में कितनी मात्रा में होता है। बालको के दो निश्चित समूहों को तार्किक परीक्षण दिये गये। एक समूह को १० सप्ताह तक अंकगणित प्रयोजक प्रश्नों को हल करने की शिक्षा दी गई। दूसरा समूह विद्यालय के साधारण कार्य मे संलग्न रहा, बिना अंकगणित की कोई विशेष शिक्षा के। विंच के अनुसार अंकगणित प्रशिक्षित समूह ने अप्रशिक्षित समूह से ३० प्रतिशत उत्तमतर कार्य किया। अतएव यह माना जा सकता है कि अंकगणित तार्किक प्रशिक्षण का स्थानान्तरण उपयोगी रूप में दूसरी तार्किक समस्याओं के हल करने में किया जा सकता है।

आदर्श[3]

बॉरन के अध्ययन में यह पता लगाने की चेष्टा की गई कि आदर्शों में उन्नति ईसप[4] की चुनी हुई कहानियों द्वारा होती है या नहीं। इस अध्ययन में उसने दो बालकों तथा प्रौढ़ों के प्रयोगात्मक तथा नियन्त्रित समूहों को चुना। प्रथम तथा द्वितीय परीक्षण के मध्य के समय में प्रयोगात्मक समूह ने १२ और २० मिनट तक पाठ पढ़े जिनमें उन्हें विश्लेषण, कल्पनात्मक तथा सामान्यीकरण का प्रशिक्षण दिया गया। इसके फलस्वरूप द्वितीय परीक्षण में प्रयोगात्मक समूह ने नियन्त्रित समूह से अधिक उन्नति प्रदर्शित की।

समस्यात्मक हल पर परीक्षण[5]

मानसिक क्रियाएँ जो समस्यात्मक हल में कार्य में लाई जाती हैं, अत्यन्त गूढ़ होती हैं। इस कारण इस क्षेत्र में स्थानान्तरण पर किये गये परीक्षण हमें उचित निष्कर्ष पर नहीं ला पाते। फिर भी कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण परीक्षण इस क्षेत्र में किये गये हैं, जिनका वर्णन हम यहाँ दे रहे हैं :

प्रथम प्रयोग जिसका विवेचन हम यहाँ करेंगे, ग्रे[6] महोदय का है। उन्होंने अपना प्रयोग संकेत-संग्रह[7] के स्थानान्तरण पर किया। इसमें उन्होंने दो तुलनात्मक समूह लिये। जब दोनों समूहों का संकेत-संग्रह स्थानान्तरण परीक्षण हो गया, तब एक समूह को नया संकेत-संग्रह सिखाया गया—एक ऐसी विधि से जिसमें तार्किक सम्बन्धों पर जोर डाला गया था। इसके पश्चात् उस समूह ने जिसको तार्किक सम्बन्धों का

1. Reasoning Material.
2. W. H. Winch : *"Transfer or Improvement In Reasoning In School Children,"* "British Journal of Psychology.
3. Ideas 4. Aesop 5. Experiment in Problem-solving.
6. S. T. Gray : *"A Comparison of Two Types of Learning by Means of a Substitution Test,"* Journal of Educational Psychology.
7. Code-Substitution.

देखने का प्रशिक्षण मिल गया—दूसरे की तुलना मे २० प्रतिशत कार्य करने की क्षमता मे उन्नति दिखाई।

तार्किक या समस्यात्मक हल के सम्बन्ध मे जो प्रयोग हैं उनमें जॅड[1] महोदय के वह प्रयोग भी सम्मिलित हैं जिनके आधार पर उन्होने स्थानान्तरण मे सामान्यीकरण के सिद्धान्त[2] को निर्मित किया। इनमे से जो सबसे प्रसिद्ध परीक्षण है, वह है जॅड, स्कालोकाउ[3] प्रयोग जिसमें पानी के अन्दर निशाने पर मारना था। यह कार्य साधारण निशाना लगाने से कठिन था क्योकि पानी मे उस वस्तु से जिस पर निशाना लगाया जाता है, प्रकाश या आवर्तन हो जाता है। जॅड ने दो समूह पाँचवी और छठी कक्षा के बालको के बनाये। उसने परीक्षण के समय एक समूह को आवर्तन के नियमो मे प्रशिक्षण दिया जिसे दूसरे समूह को नही दिया गया था। पहले दोनो समूहो के बालको ने लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास किया। लक्ष्य इस समय पानी की सतह से १२ इन्च नीचे था। इस अभ्यास के समय मे जो प्रशिक्षण एक समूह के बालको को दिया गया था, वह उनके लिए उपयोगी सिद्ध न हुआ और उनकी कार्य-क्षमता तथा दूसरे समूह के बालकों की कार्य-क्षमता मे कोई भी अन्तर दिखाई न पडा। परन्तु जब लक्ष्य को पानी की सतह मे ४ इच ऊंचा कर दिया गया तो जिस समूह को पहले प्रशिक्षण दिया जा चुका था, उसने उस समूह की अपेक्षा जिसको प्रकाश के आवर्तन की कोई शिक्षा नहीं दी, अधिक कार्य-क्षमता दिखाई। जॅड के अनुसार दोनो समूहो मे अन्तर इस कारण था, क्योकि एक समूह को विषय मे प्रशिक्षित किया जा चुका था और दूसरे को नही। नई परिस्थिति का सामना करने की योग्यता उनमे इस कारण उत्पन्न हुई कि वह नई और पुरानी स्थिति मे सम्बन्ध स्थापित कर सके थे।

जॅड के द्वारा किए गए दूसरे अध्ययन तथा रियूडिगर[4], मेण्ड्रिक्सन[5] और स्क्रोडर, गेट्स और कटोना आदि के द्वारा किए गए अध्ययनो मे भी हमे जॅड के सिद्धान्तो का प्रभाव देखने को मिलता है। योग्यता सीखने के परिणाम के प्रयोग करने में लगाए गए सामान्यीकृत और सगठनात्मक अनुभव ने नई स्थितियो और नए अनुभवो को सीखने मे सहायता दी।

पाठशाला के विषयों का अधिगमातरण मूल्य[6]

विभिन्न प्रयोगो ने प्रारम्भिक पाठशाला के विषयो के स्थानान्तरण के मूल्य

1. Judd 2. Theory of Generalisation.

3 C H Judd ' *Educational Psychology*.

4 W C. Ruedigear : "*The Indirect Improvement of Mental Functions through Ideals*", Educational Review, 36 : 364-71 (1908).

5. Mendrickson & W. H. Schroeder : "*Transfer of Training in Learning to hit of Submerged Target,*" Journal of Educational Psychology, 32 - 205-213 (1951).

6. Transfer Value of School-Subject.

पर प्रकाश डाला। साधारण व्याकरण की शिक्षा मानसिक अनुशासन के लिए अति उत्तम समझी जाती थी। अन्वेषणकर्त्ता ने इस विश्वास की सत्यता का पता लगाने का प्रयास किया। उसने ५४ मापों द्वारा बालकों की योग्यता नापने का प्रयत्न किया। ७वीं कक्षा के बालकों को दो समूहों में इस प्रकार बाँटा गया कि दोनों समूहों की बुद्धि का स्तर समान था। यह परीक्षाएँ दोनों समूहों के बालकों पर की गई थीं। पुनः समूहों का अध्ययन उस समय किया गया जब एक समूह को तीन महीने व्याकरण की शिक्षा दे दी गई, लेकिन दूसरे समूह के बालकों को भाषा और अक्षरों को मिलाने की शिक्षा दी गई। अब पुनः इन समूहों के ऊपर परीक्षण किया गया। जब पहले समूह को भाषा की शिक्षा दी गई और दूसरे को व्याकरण की तो यह पता गया कि जिस समूह को व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान दिया गया था उसने केवल समानता और असमानता को मालूम करने की योग्यता में उन्नति की और जितनी भी योग्यताएँ नापी गईं वे उनमें नहीं थीं।

विंच[1] द्वारा किया गया एक दूसरा परीक्षण भी यहाँ प्रस्तुत करने के योग्य है। इस प्रयोग में यह मालूम करने का प्रयत्न किया गया कि 'क्या अंकगणित को जोड़ने, घटाने या हल करने का ज्ञान अंकगणित में तर्क की भावना में प्रगति कर सकता है?' विंच ने १० साल की उम्र वाले बालकों के दो समूह लिये जो गणित सम्बन्धी तार्किक समस्याओं के हल करने की योग्यता में लगभग बराबर ही थे। एक समूह ने अंकगणित विषय में जोड़ने इत्यादि का ३० मिनट प्रतिदिन के अनुसार १० दिन तक अभ्यास किया। दूसरे समूह ने ड्राइंग का अभ्यास किया। १० दिन के बाद दोनों समूहों का अध्ययन अंकगणित की तार्किकता के ऊपर किया गया। दोनों ही समूहों ने समान रूप से प्रगति की। इन परिणामों के आधार पर विंच ने यह निष्कर्ष निकाला कि अंकगणित में जोड़ने इत्यादि के अभ्यास वास्तव में अंकगणित में तार्किक तार्किकता का विकास कर सकते हैं, ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

हाई स्कूल के पाठ्यविषयों पर भी अनेक प्रयोग केवल यह मालूम करने के लिए किए गए कि 'हाई स्कूल के विषयों का स्थानान्तरण मूल्य क्या है?' एक प्रयोग में ८,००० से अधिक विद्यार्थी लिये गये। परीक्षक के सामने समस्या यह थी कि 'एक साल के अध्ययन का बालक के मानसिक या बौद्धिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?' इस प्रयत्न के लिए बालकों को एक [illegible] बुद्धि-परीक्षा [illegible] दी गई और इसी परीक्षा का दूसरा रूप उनको साल के अन्त में दिया गया। दूसरी बार में [illegible] परीक्षा में बालकों ने ३३ अंकों को अधिक प्राप्त किया। [illegible] बालकों के [illegible] अनुभव के कारण हुई और [illegible]

1. Winch, W. H. *Further Work on Numerical Accuracy in School Children.* 'Does Improvement in Numerical Accuracy [illegible]'

प्रतिशत उन्नति हाई स्कूल के पाठ्यक्रम का एक साल के अध्ययन के कारण हुई। कुछ विषयों के समूहों में दूसरे विषयों के समूहों के तुलनात्मक अधिक उन्नति दिखाई पड़ी। पहली परीक्षा के समय सबसे अधिक १ प्रतिशत बालक वास्तविक योग्यतापूर्ण थे। उन्होंने २०½ अंक प्राप्त करने में उन्नति की, सबसे कम योग्यता वाले १ प्रतिशत बालकों ने १½ अंकों को प्राप्त करने में ही उन्नति की। इस अध्ययन के आधार पर परीक्षक ने यह निष्कर्ष निकाला कि बालकों की वृद्धि उनके विभिन्न विषयों की शिक्षा में उनकी योग्यता की उन्नति के वास्ते बहुत महत्त्वपूर्ण खण्ड है।

बहुत-से अध्ययन इस बात को मालूम करने के लिए किए गए हैं कि हाई स्कूल के मुख्य विषयों के ज्ञान के स्थानान्तरण का क्या मूल्य है। बहुत-से लोगों का अनुमान है कि गणित आदि के अध्ययन का मानसिक अनुशासन में बहुत बड़ा मूल्य है। एक अध्ययन में यह देखा गया कि विस्तारपूर्ण ज्यॉमिति[1] के अध्ययन ने ३२ प्रतिशत ज्यॉमिति को समझने में सहायता दी और केवल ७ प्रतिशत अन्य विषयों के समझने में।[2]

दूसरा महत्त्वपूर्ण अध्ययन १९२१—२४ के मध्य में किया गया।[3] इसका उद्देश्य लैटिन भाषा के पढ़ने के मूल्य पर विचार करना था। इस सम्बन्ध में दूसरे प्रयोग भी किए गए। इन परीक्षणों ने इस ओर संकेत किया कि लैटिन भाषा का स्थानान्तरण वाचन की योग्यता को बढ़ा देता है। उन बालकों की अपेक्षा जिन्होंने लैटिन नहीं पढ़ी थी, एक वर्ष लैटिन पढ़े हुए बालकों ने वाचन में अधिक अंक प्राप्त किये। यह अध्ययन यह भी प्रमाणित करते हैं कि लगभग १० प्रतिशत उन्नति अंग्रेजी की शिक्षा में उन बालकों में अधिक हुई जिन्होंने लैटिन पढ़ी थी, उन बालकों की तुलना में जिन्होंने लैटिन का अध्ययन नहीं किया था। लैटिन भाषा हमारे अन्दर शब्द-विन्यास की योग्यता बढ़ाती है। जो व्यक्ति लैटिन का अध्ययन कर लेते हैं उन्हें आरम्भ में फ्रेंच या स्पेनिश के अध्ययन में भी सहायता मिलती है। किन्तु कुछ समय बाद ऐसे बालकों की जिन्होंने लैटिन पढ़ी थी और जिन्होंने नहीं पढ़ी थी, उन्नति में कोई अन्तर नहीं रहता।

पाठशाला के विषयों पर थॉर्नडाइक के प्रयोग[4]—इस विवाद का सारांश देने के पहले हमें थॉर्नडाइक द्वारा किये गए अध्ययनों पर भी दृष्टि डालनी चाहिए, क्योंकि यह बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं।

---

1. Descriptive Geometry.

2. *Journal of Educational Psychology*, Vol. II. 5, (1911), 202-71.

3. H. D. Rugg : "Educational Determination of Mental Discipline in School Studies," *Educational Psychology Monograph*.

4. Thorndike's Experiments on School Subjects.

थॉर्नडाइक[1] ने यह मालूम करने का प्रयत्न किया कि हाई स्कूल के प्रत्येक विषय में एक वर्ष की शिक्षा कहाँ तक बालकों की तार्किक शक्ति का विकास सकती है ? लगभग १३,५०० विद्यार्थी १०, ११ और १२वीं कक्षाओं के प्रयोग में सम्मिलित किए गए। अध्ययन इस प्रकार किया गया जिसमें वि पाठशाला के विषयों से सम्बन्धित समूहों का तर्क-शक्ति की योग्यता पर प्रभाव तु त्मक रूप से पता चल सके। परीक्षाओं को बड़ी सावधानी से संगठित किया और उनका प्रयोग भी बड़ी अच्छी प्रकार कार्यान्वित किया गया। खोज के पाये गये निष्कर्षों पर विभिन्न तत्त्वों—मानसिक अवस्था का साधारण विकास, बा और बालिकाओं की ग्रहण-शक्ति का अन्तर, आदि— के प्रभाव को दूर करने का प्रबन्ध किया गया।

नीचे हम दो परीक्षाओं के मिश्रित परिणामों को दे रहे हैं। यह परि तार्किक विकास पर प्रभाव को जो एक वर्ष में पता चला, १० विषयों के अ में स्पष्ट करता है :

विषय-समूह	परीक्षा-सम्बन्धी प्राप्ति का प्र
१. बीजगणित, ज्यॉमिति, त्रिकोणमिति	+२·६६
२. नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, तथा समाजशास्त्र	+२·८६
३. रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, साधारण विज्ञान	+२·७१
४. अंकगणित, लेखा-प्रणाली	+२·६०
५. शारीरिक प्रशिक्षण	+०·८३
६. लैटिन, फ्रेंच	+०·७६
७. अंग्रेजी, इतिहास, व्यापार, कला	०
८. सांकेतिक चिन्ह-प्रणाली, भोजन बनाना, शिल्प-कला	—०·१४
९. जीव-वैज्ञानिक कृषि	—०·४८
१०. व्यापार कला	—०·४८

उपर्युक्त तालिका औसत मात्रा को, जिसके विभिन्न विषयों के मद्धे समूह ७ (अंग्रेजी, इतिहास आदि) से तुलनात्मक उन्नति हुई या अवनति हुई, प्र करती है। इस तालिका से यह देखा जा सकता है कि सामान्य चिन्तन की तर्क स्थानान्तरण में बहुत ही थोड़ी मात्रा में अन्तर है " अनुशासन वाले विषयों, जैसे लैटिन, उच्च गणित और गणित इत्यादि में और प्रयोगात्मक विषयों, जैसे—

1. E. L. Thorndike : "Mental Discipline in High School Studies," *Journal of Educational Psychology.*

शारीरिक शिक्षा, भोजन-कला, ड्राइङ्ग आदि मे । सारांश मे, हमे हॉर्नडाइक द्वारा यह निष्कर्ष मिलता है कि भोजन-कला, शिल्प-कला, शारीरिक शिक्षा और लेखा-प्रणाली आदि ने बालको की सामान्य चिन्तन की शक्ति पर उतना ही प्रभाव डाला जितना कि बीजगणित, नागरिकशास्त्र, भौतिकशास्त्र और लैटिन के अध्ययन ने। वास्तविक रूप मे सभी विषय बराबर महत्ता के हैं। एक विषय उतना ही अच्छा है जितना दूसरा।

प्रयोगात्मक प्रमाण के आधार पर शिक्षा के स्थानान्तरण के निष्कर्षों का संक्षेप

१. प्रयोगात्मक प्रमाणो के आधार पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

(अ) कुछ वस्तुओ को सीखने का दूसरी वस्तु के सीखने मे बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तथा लाभकारी प्रभाव पड़ता है, अर्थात् ज्ञान का अनुकूल संक्रमण हो जाता है। इस प्रकार का स्थानान्तरण बहुत कम मात्रा से लेकर ९२ ६ प्रतिशत तक हो सकता है। ५४ प्रतिशत प्रयोगों के आधार पर यह भी स्पष्ट है स्थानान्तरण की मात्रा विभिन्न दशाओ मे भिन्न हो सकती है क्योंकि जिन अवस्थाओं मे प्रयोग किए जाते हैं, यह उन पर भी निर्भर रहती है।

(ब) कुछ वस्तुओं सम्बन्धी सीखा हुआ ज्ञान कुछ दूसरे विषयो के ज्ञान के अर्जन मे प्रभाव नही डालता। इसका तात्पर्य यह है कि कुछ सीखने की दशाओं मे अधिगमांतरण नही होता है।

(स) कुछ वस्तुओं का सीखना दूसरी वस्तुओं के सीखने मे बाधा उत्पन्न करता है, अर्थात् कभी-कभी कुछ कार्यों को सीखने मे नकारात्मक अन्तरण हो जाता है।

इस प्रकार मुख्य निष्कर्ष यह है कि स्थानान्तरण हो भी सकता है और नही भी। साथ ही साथ जहाँ स्थानान्तरण होता है, वह लाभकारी हो जाता है और हानिकारक भी।

२. एक विस्तृत सीमा तक प्रयोगात्मक प्रमाण यह स्पष्ट कर पाते हैं कि औपचारिक मानसिक अनुशासन तथा सामान्य स्थानान्तरण संभव नहीं है। परन्तु यह प्रयोग किसी भी सिद्धान्त को सर्वमान्य प्रदर्शित करने मे असफल हैं। थोड़े से प्रयोग जिन्होंने थोड़े या बिलकुल स्थानान्तरण न होने के बारे मे बताया है, स्थानान्तरण का अध्ययन किसी विशेष आदत से सम्बन्धित परिस्थिति या यान्त्रिक क्रिया के होने पर, जिनका सामान्यीकरण होना असम्भव नही, किए गए थे। कुछ दशाओं मे स्थानान्तरण समान तत्वों में होता है जबकि पाठक उन्हें पहचान लेता है। इस प्रकार किसी भी विषय का स्थानान्तरण होना केवल उनके प्रसंग पर ही *नहीं, अपितु उनके* प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओ पर भी निर्भर होता है। साधारण योग्यता रखने वाले बालकों मे स्थानान्तरण की मात्रा उन्हें उनके उपस्थित ज्ञान की उपयोगिता को बताकर बढ़ायी जा सकती है।

३. किसी वस्तु के केवल रट लेने का कोई मूल्य नहीं है। यह देखा गया है कि बुद्धि और सूझ तथा सीखने वाले विषय का उपस्थित ज्ञान से सम्बन्ध अधिक स्थानान्तरण में सहायक होता है। इस कारण यह आवश्यक है कि पाठ्य-सामग्री को सीखने वाले के बौद्धिक स्तर पर आधारित करना चाहिए और बालक की रुचि का पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए।

४. साधारणतया प्रसन्न करने वाले व्यवहार, इच्छाएं, आक्रमण करने के ढङ्ग, सच्चाई के आदर्श, सफाई, ईमानदारी और सामाजिक गुण पैदा किये जा सकते हैं और इनको प्रत्येक व्यक्ति अपना भी सकता है। यदि व्यवहारों को संवेगात्मक सहायता मिल जाती है तो उनकी प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है, साथ-साथ यदि पाठक को इनका आन्तरिक मूल्य भी बता दिया जाए तो यह क्रिया सरल हो जाती है।

अधिगमांतरण के विभिन्न सिद्धान्तों पर एक दृष्टि[1]

अब हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि अधिगमान्तरण के इन विभिन्न सिद्धान्तों में से कौनसा सिद्धान्त प्रयोगात्मक परिणामों के आधार पर उचित है? ऊपर हम यह लिख चुके हैं कि मानसिक अनुशासन[2] का सिद्धान्त अविश्वसनीय है। इस प्रकार अब हमारे सामने केवल दो सिद्धान्त रह जाते हैं—(१) समान तत्त्व वाला सिद्धान्त[3], (२) सामान्यीकरण का सिद्धान्त[4]। अब हमें इन्हीं दोनों सिद्धान्तों पर एक दृष्टि डालनी चाहिए :

१. समान तत्त्व वाला सिद्धान्त—एक बड़ी सीमा तक हमें उचित प्रतीत होता है क्योंकि यह स्थानान्तरण की व्याख्या काफी सीमा तक पर्याप्त रूप से दे सकता है। जैसा कि हम ऊपर वर्णन भी कर चुके हैं, लैटिन सीखने के बाद अंग्रेजी सीखना आसान हो जाता है। यही नहीं, लैटिन के ज्ञान से हमारे अंग्रेजी के शब्द-भण्डार में भी वृद्धि होती है। वास्तविक रूप में इसका कारण यह है कि इन दोनों भाषाओं की उत्पत्ति लगभग मिलती-सी है। उदाहरण के लिए, 'Urb' शब्द लैटिन Urbs तथा अंग्रेजी के Urban शब्दों में सम्मिलित है। इस प्रकार जो बालक Urbs का अर्थ समझ जायेगा, वह सरलता से Urban का अर्थ भी समझ लेगा। यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि अनुकूल संक्रमण[5] क्यों होता है? इसका कारण यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि जब सीखने की दो अवस्थाओं में समान तत्त्व होते हैं तभी इस प्रकार संक्रमण सम्भव होता है। इस सम्बन्ध में यह देखा गया कि जिन बालकों ने अंग्रेजी स्कूल में शब्दों की परिभाषा करने के ढङ्ग अच्छी प्रकार सीख लिये थे, वे बालक किसी भी शब्द की बड़ी सरलता और स्पष्टता से परिभाषा कर सकते थे।

---

1. An estimate of various theories of transfer of learning
2. Mental Discipline 3. The Theory of Identical Components
4. The Theory of Generalization. 5. Positive Transfer.

इसके विपरीत, जिन बालकों ने केवल कुछ शब्दों की परिभाषा करना ही सीखा था और परिभाषा करने के ढङ्ग से अवगत नहीं हुए थे, वे दूसरे शब्दों की परिभाषा करने में उन्नति नहीं कर सके थे। यह सिद्धान्त एक अध्यापक को उचित ढङ्ग की योजना बनाने तथा कार्यक्षेत्र आदि के निर्धारण करने में महान् उपयोगी और महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

२. सामान्यीकरण का सिद्धान्त—यह बताता है कि हमारे अन्दर स्थानान्तरण उस सीमा तक हो सकता है जिस सीमा तक हम अपने अनुभवों को सामान्यता दे सकते हैं। यह सिद्धान्त विचारों और संप्रत्यय[1] के स्थानान्तरण के ऊपर पूर्णतया प्रकाश डालता है। विचारों के स्थानान्तरण को समान भागों वाले सिद्धान्त से व्यक्त करना असंगत और त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि हमें सम्पूर्ण परिस्थिति को पूर्ण रूप से देखना चाहिए।

कुछ लेखकों ने 'आदर्श के सिद्धान्त'[2] पर भी बल दिया है। निस्सन्देह यह सिद्धान्त सामाजिक और नैतिक व्यवहारों को भलीभाँति स्पष्ट करता है। एक व्यक्ति जो विश्वासपूर्ण है—ईर्ष्या नहीं रखने वाला है, दान देता है और इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं के द्वारा अपने जीवन के एक भाग को स्पष्ट करता है; परन्तु वह अपने जीवन के दूसरे पहलुओं में बहुत कुछ अनैतिकता प्रदर्शित करता है। उसमें इस प्रकार की नैतिक कमी का कारण यह होता है कि उसने जिन नैतिक गुणों को सीखा है, वह उसने अपने सम्पूर्ण जीवन के नैतिक आदर्श से अलग ही रखे हैं। उन गुणों का विभिन्न परिस्थितियों में अभ्यास तो कर सकता है, परन्तु यह समझने में सर्वथा असमर्थ है कि आदर्शमय जीवन क्या होता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि इनमें कोई भी सिद्धान्त हमें 'अधिगमान्तरण का क्या कारण है?' प्रश्न का पूर्ण उत्तर नहीं देता। इस सिद्धान्तों को यदि व्यक्तिगत रूप में न मानकर समन्वयात्मक रूप में माना जाय तो अधिक उचित है क्योंकि ये कुछ एक-दूसरे के पूरक से प्रतीत होते हैं, और इनमें से कोई भी स्वत. अपने में पूर्ण नहीं है।

नकारात्मक अन्तरण[3]

हमने प्रस्तुत अध्याय में यह बताया है कि स्थानान्तरण लाभदायक या हानिकारक हो सकता है। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि अधिगमान्तरण सकारात्मक या नकारात्मक[4] हो सकता है। गेट्स इत्यादि का कहना है—"नकारात्मक अन्तरण के बहुत-से उदाहरण वास्तव में वह उदाहरण हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि अन्तरण का प्रभाव नकारात्मक है।"[5] वुडवर्थ के अनुसार, "जब एक कार्य किया

1. Concept and Abstraction. 2. Theory of Ideals. 3. Negative Transfer. 4. Positive or Negative Transfer.

5. Gates & Others say, "Most illustrations of supposedly negative transfer are actually instances in which the effect of transfer is negative."

जाता है, किन्तु यह हमें दूसरे कार्य को सीखने से रोकता है तो निस्सन्देह यह सकारात्मक संक्रमण होता है; लेकिन इसका प्रभाव नकारात्मक अन्तरण का ही होता है।"[1]

उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के उन शब्दों के विन्यास में जिनका उच्चारण कुछ और होता है और लिखे कुछ और प्रकार से जाते हैं, एक व्यक्ति उस समय गलती करता है जबकि उसने उच्चारण की विधि से शब्द-विन्यास को सीखा है। इसका कारण यह है कि इसमें सकारात्मक संक्रमण होता है, किन्तु इसका प्रभाव नकारात्मक होता है। सकारात्मक संक्रमण होना तो इस कारण कहा जाता है क्योंकि बालक ने उच्चारण-विधि से शब्द-विन्यास सीख लिया है और नई परिस्थितियों में उसने यह सीखा हुआ ज्ञान उसी दशा में स्थानान्तरित कर दिया, पर इसका प्रभाव यह हुआ कि उसने उन शब्दों का शब्द-विन्यास त्रुटिपूर्ण किया—यह नकारात्मक प्रभाव ही है। अतएव एक विद्यार्थी को किसी अधिगमान्तरण को नकारात्मक अन्तरण कहते समय सजग रहना चाहिए। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि नकारात्मक अन्तरण तभी होता है जब नए कार्यों, मानसिक विन्यास[2], नए विचार आदि वह आते हैं जो उपयुक्त नहीं होते।

अधिगमांतरण और इसका शिक्षा में महत्त्व[3]

अधिगमांतरण की रूपरेखा उपस्थित करने और प्रमाण देने के बाद अब हम इस समस्या के बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक अङ्ग पर विचार करेंगे। हमें अब यह निर्णय करना है कि सीखने की क्रिया में अधिगमांतरण शिक्षा के सिद्धान्तों और अभ्यास पर क्या प्रभाव डालता है? यह वर्णन एक अध्यापक के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा। साथ ही साथ एक शिक्षा-योजक के लिए भी शिक्षा-योजना का निर्माण करते समय सहायक होगा।

अधिगमांतरण और पाठ्यक्रम[4]—वे अध्यापक जो मानसिक अनुशासन के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं, पाठ्यक्रम में इस प्रकार के विषय रखना पसन्द करते जो अनुशासन में योग दे सकें। ऐसे अध्यापक के अनुसार केवल वही विषय महत्त्वपूर्ण होंगे जिनसे मानसिक अनुशासन में सहायता मिलती है। किन्तु एक अध्यापक जो इस सिद्धान्त से सहमत नहीं, विषयों को चुनने का दूसरा दृष्टिकोण रखेगा। वह विषयोपयोगी-दृष्टि से उनका चयन करेगा जो बालक को प्रत्यक्ष रूप में लाभ दे सकें।

---

1. According to Woodworth, "When an act carried over but impedes the learning of a second act, we obviously have positive transfer but a negative transfer effect."

2 Mental Set. 3. Transfer of Training and Its Significance Education. 4. Transfer & Curriculum.

वर्तमान काल की शिक्षा के पोषक इस बात पर अधिक बल
प्रयोगात्मक तथा उपयोगी शिक्षा पर अधिक बल देना चाहिए। वे इस बात
डालते हैं कि पाठशाला के पाठ्यक्रम में हमे सदैव यह बात ध्यान में रख
कि दिन-प्रतिदिन की शिक्षा मे बालको की दिन-प्रतिदिन की समस्याएँ उपरि

ऐसे विषयो की सामग्री का निर्णय और चुनाव, जैसे—शब्द-विन्या
गणित आदि मे उपयोगिता का अंश होना चाहिए और इसका जीवन की
घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि बालक को उन
शब्द-विन्यास सीखना चाहिए जिनकी उसको आवश्यकता हो, और इसी
पढ़ना चाहिए जिसकी उसे आवश्यकता हो, जैसे—धीमा पढना, चुपचाप पढना,
समाचार-पत्र को ग्रहण करने के दृष्टिकोण से पढना, मैगजीन पढना आ
सामग्री के चुनाव मे हमे बालक की उम्र तथा रुचि को नही भूलना चाहिए

हमारे पाठ्यक्रम को किसी न किसी व्यावसायिक रुचि, शारीरिक
स्वास्थ्य, नागरिकता, सामाजिक और आनन्दपूर्ण क्रियाओं आदि के अनु
चाहिए। यही नहीं, बालकों को अपने जीवन मे जिस व्यवहार की आवश
उसकी ओर पाठ्यक्रम को सम्यक् रूप से संकेत करना चाहिए।

अधिगमातरण और शिक्षण-विधि[1]—यह सत्य है कि सीखने की
स्थितियों मे स्थानान्तरण होता है। अनुकूल और उचित स्थानान्तरण
के लिए यह आवश्यक है कि स्थानान्तरण के लिए विशेष शिक्षा देनी चाहि
कोई बालक हिन्दी भाषा के ज्ञान को किसी दूसरी प्रादेशिक भाषा के द्वा
चाहता है, तो किस प्रकार वह अन्य भाषा के ज्ञान को हिन्दी भाषा
स्थानान्तरित करे, यह उसे बताने की आवश्यकता है। यदि कोई बाल
अच्छी स्मृति बनाता चाहता है तो उसे स्मरण करने के ढगो मे सुधार करना

यदि आवश्यकता हो तो अध्यापक को स्थानान्तरण के लिए संकेत
चाहिए। समान रूप वाले शब्दों के मेल पर बल देना चाहिए। उदाहरण
यदि हिन्दी भाषा का ज्ञान किसी अन्य भाषा मे स्थानान्तरित करना है तो
को उन दोनो भाषाओ के ऐसे शब्दो को जो दोनो मे आते हैं, अलग कर
चाहिए।

प्रत्येक अध्यापक को यह जानना आवश्यक है कि वे कौन-कौनसे
जो व्यक्ति के लिए उचित हैं और उसे उन आदर्शो के निर्माण के लिए वे
चाहिए। गणित के ३,००० विद्यार्थियो के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि
वह सब याद कर लेते हैं, जिन्हें अध्यापक कक्षा मे आवश्यक बताता
स्कूल का पाठ्यक्रम ठीक नहीं है या शिक्षा का उचित ढंग नही है, उस स्कू
कभी भी अच्छे नही निकलेंगे। अध्ययनों मे यह भी पता चलता है कि प्र

1. Transfer & Teaching Methods.

लकों को कार्य-भार से दबाए रहना भी अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि इनसे उ
ानान्तरण करने का अवसर नहीं मिल पाता। इस प्रकार जब शिक्षा प्रदान क
बालकों को वस्तुओं में सम्बन्ध, उदाहरणों द्वारा स्थानान्तरण का प्रयोग, इत्या
ाया जाता है तो उनकी योग्यता में शीघ्र ही वृद्धि हो जाती है।

नवीनतम प्रयोग इस बात की ओर संकेत करते हैं कि बालक जिस रूप
ामान्यीकरण का अध्ययन करता है, वह इस बात की सम्भावना बढ़ा देते हैं।
ह नई परिस्थिति में शीघ्र इसको उपयोग करने की आवश्यकता को पहच
गा। हाड्रिक्स[1] का कहना है—"जो बालक यह जानता है कि ६ को ८ बार कर
४८ हो जाता है वह कमरे में ६ और ८ की कतारों में रखी हुई कुर्सियों को शी
; ४८ बता सकता है। बालक को सामान्यीकरण का ज्ञान कैसे करायें, यह अध्याप
लिए कठिन समस्या अवश्य है किन्तु बहुत ही आवश्यक और लाभदायक समस्
जिसका हल करना आवश्यक है।"

अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके बार-बार के हस्तक्षे
ालक को रुष्ट कर देते हैं। बालक को स्वयं ही सामान्यीकरण के लिए अवसर देन
ाहिए। अध्यापक को अनावश्यक सहायता नहीं देनी चाहिए।

इस प्रकार अध्यापक को बालकों का ध्यान सदैव पाठशाला तथा पाठशाल
बाहर की समस्याओं या अनुभवों के बीच में दिग्दर्शित करना चाहिए। आ
समझना और उसका उपयोगी सामान्यीकरण बालकों की शिक्षा के आवश्यक अं
होने चाहिए, बालकों को वर्तमान तथा भविष्य के बारे के विचार करने के लि
सहायता देनी चाहिए, जिससे पाठशाला छोड़ने के बाद वह अपने को उन परिस्थितिय
में व्यवस्थापित कर लें, जो उनके सामने हैं।

सारांश

अधिगमान्तरण के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। इनमें
से मानसिक शक्ति या 'औपचारिक अनुशासन अवधारणा का सिद्धान्त' सबसे प्राचीन
है। इस सिद्धान्तानुसार स्मृति, सतर्कता, कल्पना, अवधान, इच्छा-शक्ति, चित्तवृत्ति
आदि मस्तिष्क की स्वतन्त्र शक्तियाँ हैं और यह एक-दूसरे से स्वतन्त्रतापूर्वक मस्तिष्क
में बनी रहती हैं। इस सिद्धान्त के समर्थक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मान-
सिक शक्ति एक योग्यता है, क्षमता है, अथवा व्यक्तिगत गुण है जो समग्र रूप से
शिक्षित की जा सकती है। परन्तु आधुनिक शिक्षाशास्त्री इस प्रकार के मानसिक
प्रशिक्षण के विरुद्ध हैं।

दूसरा सिद्धान्त 'समान तत्त्व सिद्धान्त' है। इस सिद्धान्तानुसार मानसिक
क्रियाएँ, जैसे—विचार, कल्पना, अवधान, स्मृति और तर्क आदि अलग-अलग अपनी

1. G. Handrix: "A New Clue to Transfer of Learning", *The Elementary School Journal*, No. 48, 1947, pp. 197-208.

न्धा नहीं रखती। परन्तु किसी भी स्थिति में ये सब मानसिक क्रियाएँ एक-दू
से मिलकर क्रियाशील होती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त में भी कुछ दोषों
ओर संकेत किया है।

तीसरा सिद्धान्त 'सामान्यीकरण का सिद्धान्त' है। इस सिद्धान्त के अनुम
शिक्षा में प्रशिक्षण का स्थानान्तरण उसी समय सम्भव है, जबकि एक विशि
परिस्थिति में ही नहीं, वरन् विभिन्न परिस्थितियों में उचित व्यवहार करने की शि
दी जाये।

प्रत्येक सिद्धान्त यह निर्देश करता है कि शिक्षा का स्थानान्तरण होता
परन्तु वह स्थानान्तरण किस प्रकार परिलक्षित होता है, यह विभिन्न सिद्धान्तों द्वा
पृथक-पृथक रूप में प्रदर्शित किया गया है।

अभिगमान्तरण सम्बन्धी बहुत-से प्रयोग किये गये हैं। जो अध्ययन
परीक्षाओं में किया गया, वह (१) संवेदनात्मक गतिवाही अधिगमांतरण के सम्ब
में, (२) प्रत्यक्षात्मक प्रसाधनों के सम्बन्ध में, (३) स्मृति-प्रसाधनों के सम्बन्ध
(४) तार्किक पदार्थों के सम्बन्ध में, (५) आदर्श सम्बन्धी, और (६) समस्यात्मक
सम्बन्धी है।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१. अधिगमान्तरण से आप क्या समझते हैं? क्या अधिगमान्तरण के विभि
सिद्धान्त अध्यापक के लिए उपयोगी हैं? कैसे? विवेचन कीजिए।
२. एक पाठक के लिए संस्कृत के अध्ययन के मूल्य पर निम्न सिद्धान्तों
ध्यान में रखते हुए प्रकाश डालिए—(अ) नियमित अनुशास
(ब) समान तत्व (आइडेन्टीकल कम्पोनेन्ट्स), (स) सामान्यीकरण।
३. प्रशिक्षण विद्यालयों में जिन विषयों को आप पढ़ाते हैं, उनके स्थानान्तर
के मूल्यों पर प्रकाश डालिए। आप किस प्रकार इन विषयों के स्थान
न्तरण के मूल्य को बढ़ा सकते हैं?
४. नियमित अनुशासन के नियम की प्रयोगात्मक आधार पर आलोच
कैसे हो सकती है?
५ "संस्कृत से हिन्दी में, संस्कृत से उर्दू की अपेक्षा अधिक संक्रम
होगा।" व्याख्या कीजिए।
६. आप किन विषयों का हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में पाया जाना आवश्य
समझते हैं? अपने कारणों को देते हुए बताइए कि अधिगमांतरण
दृष्टि से उनका क्या मूल्य है?
७. आप शिक्षा के नकारात्मक अंतरण से क्या समझते हैं? इसका शि
के लिए क्या मूल्य हो सकता है?

८. सत्य अथवा असत्य कथन की छाँट कीजिए :

(i) मानसिक शक्ति सिद्धान्त वर्तमान अधिगमान्तरण के सिद्धा
सबसे महत्वपूर्ण है।

(ii) समान तत्त्वों में अधिगमान्तरण अधिक होता है।

(iii) वेब के प्रयोग में अधिगमान्तरण की मात्रा विभिन्न व्यक्ति
२२ प्रतिशत से ७७ प्रतिशत थी।

(iv) बालकों की बुद्धि उनके विभिन्न विषयों की शिक्षा में
योग्यता की उन्नति के वास्ते बहुत महत्त्वपूर्ण खण्ड है।

(v) ज्ञान का नकारात्मक अंतरण उस समय होता है जब एक
में सीखा हुआ ज्ञान दूसरे विषय के सीखने में सहायक होता

१८ | अवधान और अभिरुचि
ATTENTION & INTEREST

यह प्रत्येक अध्यापक का अनुभव होगा कि कभी-कभी कक्षा के अन्दर विद्या
अपने पाठो के प्रति सतर्क नहीं रहते। उन्होने देखा होगा कि पाठ पढाते समय क
कक्षा के अन्दर एक अस्त-व्यस्तता-सी फैल जाती है। विद्यार्थी ध्यान देना बन्द
देते हैं और अध्यापक असन्तुष्ट हो उठते हैं। वे जानते हैं कि जब तक विद्यार्थी ध्या
पूर्वक अपने पाठो को नही सुनते, उनका पढाना निरर्थक-सा रहेगा। तब फिर
असावधानी के क्या कारण हैं? ध्यान की क्या प्रकृति है? इसे किस प्रकार प्रा
किया जा सकता है? इसी प्रकार के अन्य बहुत-से प्रश्न हैं जो एक अध्यापक के लि
अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस अध्याय मे हम इस प्रकार के प्रश्नो का ही उत्तर देने
चेष्टा करेंगे।

अवधान का सामान्य स्वरूप[1]

अपनी सचेष्ट जिन्दगी के प्रत्येक क्षण मे हम अनेक प्रकार के प्रत्यक्षीकर
विचारों, प्रतिबिम्बो और आवेगो का अनुभव करते हैं, लेकिन उनमे से बहुत क
हमारे मस्तिष्क मे स्थान बना पाते हैं। इन पंक्तियो को लिखते समय मेरी सजग
उन शब्दो की ओर है जिन्हें मैं लिख रहा हूं, परन्तु इसके अतिरिक्त मैं कागज, कल
पंखा, मेज और कुर्सी—जिस पर मैं बैठा हूं, इत्यादि के प्रति भी सजग हूं। मु
अपने लिखने के कार्य मे प्रवृत्त बताया जायगा, जबकि इसी समय अन्य वस्तुएँ
मेरी सजगता के अन्तर्गत हैं। मैं जिस कार्य को कर रहा हूं, वह मेरी प्रमुख सजग
कही जायगी और दूसरी वस्तुएँ मेरी सजगता की सीमा के अन्तर्गत होगी जिनके प्र
मैं अर्द्ध-चेतन से सचेष्ट हूं।

जेम्स चेतना की तुलना एक सोते[2] से करता है जो अनवरत गति से बह
है। हमारे सभी विचार, संवेदनाएँ, भाव तथा वे सभी वस्तुएँ जिनका हम मानसि
अनुभव करते हैं, इस सोते का निर्माण करती हैं। इनमे से कुछ, जैसा कि ऊपर बता

---

1. General Nature of Attention. 2. Stream.

जा चुका है, हमारे ध्यान के केन्द्र में निहित होती हैं और अन्य सजगता की सीमा में। वे वस्तुएँ जो एक विशेष क्षण पर ध्यान के केन्द्र में आती हैं, एक विशिष्ट सजगता का निर्माण करती हैं। लेकिन जो सीमा के अन्दर होती हैं, वे चेतना के ध्यान-केन्द्र में प्रवेश कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि मेरे कलम की स्याही समाप्त हो जाती है तब वह कलम मेरी चेतना के ध्यान-केन्द्र[1] में होगा और मेरे लिखने का कार्य रुककर, चैतन्य की सीमा के अन्तर्गत चला जा सकता है। हमारे मस्तिष्क में यह सामर्थ्य विद्यमान है कि वह वस्तुओं को ध्यान-केन्द्र की सीमा, और सीमा से ध्यान-केन्द्र में नियमित कर सकता है। यह विभिन्न वस्तुओं का चुनाव करता है जो सीमा के अन्दर होती हैं, और फिर उनमें से कुछ को ध्यान-केन्द्र में भेज देता है।

मस्तिष्क की यह चुनाव-प्रक्रिया ही 'अवधान' कहलाती है। अतः अवधान की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—"अवधान मानव चेतना की एक वरण प्रक्रिया है अथवा किसी विचार को मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित करने की प्रक्रिया है। यह एक सतत क्रमबद्ध प्रक्रिया[2] है जो मस्तिष्क में स्थित नाना प्रकार की विभिन्न वस्तुओं[3] में से कभी एक को और कभी दूसरी को चेतना के ध्यान-केन्द्र में लाकर उपस्थित करती है।"

किसी वस्तु की ओर ध्यान देना एक प्रकार की गतिवाही प्रतिक्रिया[4] है जो वस्तु से प्राप्त उत्तेजना[5] को प्रत्येक संभव रूप से ध्यान-केन्द्र में लाने की चेष्टा करती है। ध्यानपूर्ण स्थिति में विशेष रूप से मन की समस्त चित्तवृत्तियाँ एक वस्तु में केन्द्रित हो जाती हैं। मन स्थिर होता है। बिना क्रम के सभी बेचैनी[6] से किये जाने वाले कार्य रुक जाते हैं और सारा शरीर उत्तेजना के उद्गम की ओर झुक जाता है। किसी वक्ता के व्याख्यान को सुनने वाला एक श्रोता एकाग्रचित्त हो जाता है, यथार्थतः वक्ता के शब्दों के सिवाय वह और कुछ नहीं पाता। उसकी आँखें व्याख्यान मंच की ओर सीधी रहती हैं। शारीरिक रूप से सभी श्रोतागण अपनी कुर्सियों के किनारों पर बैठे रहते हैं। इस शारीरिक तनाव की स्थिति के अतिरिक्त ध्यान देने के समय ज्ञानेन्द्रियों का ध्यान किसी वस्तु की ओर भी सामञ्जस्य होता है। यदि यह दृष्टि-सम्बन्धी ध्यान है तो आँखों को केन्द्रित रखकर दृष्टव्य के अनुरूप उन्हें चलाना पड़ता है। यदि यह स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी ध्यान है, तो वस्तु को हाथ से स्पर्श किया जाता है जिससे स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी संवेदनाओं को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सके।

अवधान की दशाएँ[7]

वे दशाएँ, जो एक वस्तु को दूसरी की अपेक्षा अधिक हमारे अवधान का

---

1. Focus. 2. Continued Activity. 3. Content of Mind. 4. Motor Response. 5. Stimulation. 6. Restless. 7. Factors in Attention.

केन्द्र बनाती हैं, दो मुख्य प्रकार की होती हैं : (अ) वस्तुनिष्ठ दशाएँ—वस्तु की प्रकृति पर अवलम्बित रहती हैं, (ब) व्यक्तिगत दशाएँ—जो व्यक्ति रुचियो, इच्छाओ और मानसिक स्थिति पर निर्भर रहती हैं। इन दशाओ का क्रमानुसार वर्णन करेंगे।

(अ) अवधान की वस्तुनिष्ठ दशाएँ[1]

वातावरण सम्बन्धी प्रधान दशाएँ हैं—(१) तीव्रता, (२) आकार, (३) ग (४) दोहराना, (५) व्यवस्थित रूप, और (६) नवीनता।

(१) तीव्रता[2]—तीव्र उद्दीपकता के लिए ध्यान की आवश्यकता है। अत्यन्त तेज प्रकाश, जोर की आवाज और बहुत अच्छी व्यवस्था—मद्धिम प्रक धीमी आवाज और शिथिल व्यवस्था की अपेक्षा अधिक आकर्षित करती हैं।

(२) आकार[3]—एक बडी वस्तु की तरफ हमारा ध्यान छोटी वस्तु की अपे अधिक आकर्षित होता है।

(३) गति[4]—उद्दीपकता मे परिवर्तन हमे आकर्षित करता है और उ अन्दर ध्यान निहित रहता है। यही कारण है कि दुकान की खिडकी मे गतिम कोई वस्तु, गतिहीन वस्तु की अपेक्षा हमारे ध्यान को अधिक आकर्षित करती विद्युत के प्रकाशक जो अपने रंग को बदलते या गतिमान रहते हैं, हमारे ध्यान वडी जल्दी आकर्षित कर लेते हैं।

(४) दोहराना[5]—एक उद्दीपक जब बार-बार संघटित होने वाली पुनरावृ मे दोहराया जाता है तो उसकी तरफ हमारा ध्यान बड़ी जल्दी आकर्षित हो ज है और वह हमारे लिए अधिक परिचित बन जाता है। अनवरत रूप से उ वाली आवाज, एकाध बार उठने वाली आवाज की अपेक्षा हमे अधिक आक करती है।

(५) व्यवस्थित रूप[6]—वे वस्तुएँ, जिनका निश्चित रूप और रेखाचित्र है है, उन वस्तुओं की अपेक्षा जो अनिश्चित और अस्पष्ट हैं, हमारे ध्यान को अ आकर्षित कर लेती हैं।

(६) नवीनता[7]—हमारा ध्यान सदैव अपरिचित वस्तु या असाधारण रू प्रस्तुत की गई परिचित वस्तु की ओर आकर्षित होता है। वर्दी पहने हुए एक मित्र को तैरने के तालाब में देखकर हम इच्छा न होते हुए भी एक बार देख लेंगे।

(ब) अवधान की व्यक्तिगत दशाएँ[8]

अवधान केवल वातावरण सम्बन्धी दशाओ पर ही निर्भर नहीं रहता है,

---

1. Objective Factors in Attention. 2. Intensity. 3. S 4. Movement. 5. Repetition. 6. Systematic Form. 7. Novel 8. Subjective Factors in Attention.

व्यक्तिगत दशाओं पर भी अवलम्बित रहता है। इसका विवेचन नीचे किया जा रहा है :

(१) आवश्यकताएँ, प्रवृत्तियाँ इत्यादि[1]—आवश्यकताएँ, मूलप्रवृत्तियाँ इत्यादि महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक हैं। जिस वस्तु की वजह से हमें मूलप्रवृत्त्यात्मक उत्तेजना मिलती है उस वस्तु की ओर हमारा ध्यान खिंच जाता है। विज्ञापक इस तथ्य से पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। विज्ञापन को सफल बनाने के लिए आत्म-गौरव, जिज्ञासा, भय या काम की प्रवृत्ति की सहायता ली जाती है। बहुत ही सुन्दर लड़कियों की तस्वीरें, किसी असाधारण प्रकार की वस्तु का विज्ञापन करने के लिए अद्भुत ढङ्ग की स्थिति में प्रयोग की जाती हैं। इस प्रकार से तस्वीरें हमारे ध्यान को आकर्षित करती हैं, और इनका वस्तु से कोई भी सम्बन्ध न होते हुए भी वह वस्तु की बिक्री में बहुत बड़ा सहयोग देती है।

(२) संवेग[2]—संवेग भी ध्यान के लिए एक आन्तरिक प्रेरणा है। यह संवेगों के सक्रिय होने के कारण ही है कि हम उन वस्तुओं की तरफ जो सामान्य जिन्दगी में पूर्णरूपेण हमारे ध्यान का केन्द्र बनती हैं, ध्यान लगाते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम प्रसन्न होते हैं, तो दूसरों की त्रुटियों या अवगुणों पर दृष्टिपात नहीं करते। लेकिन यही त्रुटियाँ जब हम क्रुद्ध होते हैं तो हमारे सम्मुख बहुत बड़ी मात्रा में आ खड़ी होती हैं। बहुत-से संघर्षों का यही कारण है। क्रोध या भय में इन आवेगों का हमारे ऊपर पूर्ण अधिकार हो जाता है, और तब इन्हीं के आदेशानुसार हम कार्य करते हैं। हम अँधेरे में भयभीत हो उठते हैं, अतः हमारे आस-पास की गई अत्यन्त मद्धिम आवाज भी हमारे ध्यान को खींच लेती है।

(३) अभिरुचि[3]—साम्राज्य रूपी अवधान में रुचि रूपी एक दूसरा राजा है। कहने का तात्पर्य यह है कि ध्यान के अन्दर रुचि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह पूर्णरूपेण जानी हुई बात है कि विभिन्न मनुष्य, एक ही दृश्य में भिन्न-भिन्न वस्तुओं को देखते हैं। एक किसान, एक कलाकार और एक वनस्पति-विज्ञानवेत्ता एक पहाड़ी पर साथ-साथ खड़े हुए जमीन के ऊपर भिन्न-भिन्न वस्तुओं को देखेंगे। इसका कारण यह है कि वे अपनी रुचि के अनुसार विषयों का अवलोकन करते हैं। इसलिए बच्चों की रुचियों को प्राप्त करना जिससे वे कक्षा के अन्दर ध्यानपूर्वक पढ़ सकें, शिक्षा-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक के लिए बहुत महत्त्व की बात है। इस व्यक्तिगत दशा का अध्ययन हम कुछ विस्तार से करेंगे।

अभिरुचि का अभिप्राय[4]—रुचि को एक प्रेरक शक्ति कहा जा सकता है, जो हमारे ध्यान को व्यक्ति, वस्तु या क्रिया की तरफ उन्मुख करती है या इसे एक प्रभावपूर्ण अनुभव कहा जा सकता है, जो स्वयं अपनी ही सक्रियता से उत्तेजित होता है।

---

1. Instincts. 2. Emotion. 3. Interest. 4. Meaning of Interest.

दूसरे शब्दों में, रुचि किसी सक्रिय या सक्रियता की सहकारिता के परिणाम का कार हो सकती है। हम कह सकते हैं कि हम उन्हीं विषयों की ओर उन्मुख होते हैं, हमारे अन्दर रुचि को उत्पन्न करते हैं।

लैटिन भाषा में 'रुचि' शब्द का तात्पर्य है—'यह आवश्यक होती है' 'यह सम्बन्धित होती है।'[1] अतएव एक वस्तु जो हमारे अन्दर रुचि पैदा करती वह वस्तु है जो हमसे सम्बन्धित है या हमारे लिए आवश्यक है। परन्तु हम एक व्यक्ति के अनुभव का उल्लेख करने के लिए, जब वह कार्य में संलग्न है, 'रुचि' शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। यहाँ पर 'रुचि' व्यक्ति के अनुभव की प्रकार है, और इसका उपयोग व्यक्तिगत अभिप्राय के रूप में है।

रुचियाँ प्रेरणाओं और संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से दृढ़तापूर्वक सम्बन्धि रहती हैं। स्वादिष्ट खाना बनाने में रुचि, अच्छे भोजन की इच्छा का स्तम्भ सकती है। उदाहरण के लिए, वैज्ञानिक खोज, यंत्रविज्ञान या पढ़ाने में रुचि का अस्तित्व हमारी इन विषयों के सम्बन्ध में जिज्ञासा के कारण ही हो सकता है। युव पुरुषों की बाह्य रूप, वेश-भूषा और क्रियाओं के प्रति विपरीत लिंग के सदस्य को आकर्षित करने की एक चैतन्य इच्छा हो सकती है, या समान-लिंगीय प्रतिष्ठि बालिगों के अनुमोदन का प्राप्त करना मात्र हो सकता है। यह शैक्षिक संस्थाओं का उत्तरदायित्व है कि वे बच्चों और युवा पुरुषों के लिए स्वस्थ वातावरण का निर्मा करें, जिससे सीखने वाले की रुचियाँ बहुत-सी वांछित क्रियाओं के प्रति जागरू हो जायें।

अभिरुचि और अवधान[2]—'अभिरुचि' और 'अवधान' एक ही चीज के देख के दो दृष्टिकोण होते हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सत्य तो यह है कि दोन के मानसिक ढाँचे में व्यवस्थित संस्कार हैं। किसी वस्तु में अभिरुचि रखने के लिए य आवश्यक है कि उसके प्रति ध्यान दिया जाय, जबकि ध्यान के द्वारा किसी मानसि आकार की क्रिया का पता चलता है।

मैक्डूगल का कहना है—"अभिरुचि गुप्त अवधान होता है, और अवधान रुचि का क्रियात्मक रूप है।"[3] यह रुचि ही है, जो इस बात की गणना करती है कि ध्या द्वारा क्या संचालित किया गया है। यह ध्यान में प्रयोग करने के लिए पूर्व से विचारी हुई स्थिति है। *किसी वस्तु के साथ ध्यान लगाने के कार्य में रुचि ध्यान दे* की प्रवृत्ति के अन्दर निहित रहती है। दूसरी तरफ रुचि का संचरणशील पहलू 'ध्यान है। किसी विशेष वस्तु की ओर हमारा ध्यान, जैसे किताब पढ़ने में, इस कारण से कि शिक्षा-मनोविज्ञान में हम रुचि रखते हैं।

इस प्रकार किसी वस्तु में ध्यान लगाने तथा रुचि रखने में घनिष्ठ सम्बन्ध

1. It matters or it concerns. 2 Interest & Attention. 3 "In terest *is latent attention and attention is interest in action.*"

हम अपनी प्रत्येक रुचि को इस रूप में देख सकते हैं कि वह हमें सदैव इस ब लिए तत्पर कर देती है कि हम विशेष उद्दीपकों की ओर अपना अवधान केन्द्रित दें। यहाँ यह याद रखना भी महत्त्वपूर्ण है कि जब हम उन उद्दीपकों में से किसी को भी ध्यान में नहीं ला रहे हैं, तब भी हमारी रुचि अपना अस्तित्व रखती है सिद्धान्त[1] के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि प्रायः हमें उन विषयों की ओर उ होना पड़ता है जिनमें हम रुचि नहीं रखते। यह सत्य है परन्तु यदि हम व्यवहार की ओर अधिक जानकारी प्राप्त करते हैं तो हमें पता चलता है कि वस्तु की ओर हमारा ध्यान लगाने की प्रेरणा 'रुचि' ही है। हमें जिस विषय की ध्यानशील होना पड़ता है, उसमें हमारी रुचि नहीं प्रतीत होती है। परन्तु हमारी किसी दूसरे ऐसे विषय में होगी जो केवल उसी विषय की ओर ध्यान लगाने से सन्तुष्ट की जा सकती है, जिसकी ओर अपना अवधान केन्द्रित करने के लिए हम ब होते हैं। जब हम इस विषय की ओर ध्यान लगाते हैं तो हमारी रुचि और ध्य की सम्पर्कता अप्रत्यक्ष रूप में होती है, परन्तु इसमें वास्तविकता की कोई कमी न होती। जैसे, हमें परीक्षा के विषयों की ओर मन मारकर भी ध्यान लगाना पड़ता क्योंकि हम परीक्षा के परिणाम में रुचि रखते हैं।

(४) **स्वभाव, आदत और रुझान**[2]—उपर्युक्त ध्यान की तीन महत्त्वपू व्यक्तिगत दशाओं के अतिरिक्त, कुछ अन्य भी व्यक्तिगत दशाएँ हैं जो अधिक महत्त्वपू नहीं हैं और इन तीनों पर ही अवलम्बित है, परन्तु तब भी इनका पृथक रूप वर्णन किया जा सकता है। वे स्वभाव, आदत और रुझान है। विभिन्न प्रकृति वा मनुष्यों का ध्यान विभिन्न वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। उदाहरणार्थ, भक्त को मन्दिर के अन्दर स्थापित ईश्वर की वेश-भूषा में कोई भी परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है, जबकि एक नास्तिक का इस ओर कभी ध्यान भी नहीं जायगा।

अपनी जिन्दगी के बहुत प्रारम्भ से ही हम किसी विशेष वस्तु के साथ कार्य करने के अभ्यस्त हो जाते हैं, जबकि दूसरी वस्तुओं के प्रति हम उपेक्षा रखते हैं। एक मनुष्य जो सङ्गीत की योग्यता रखता है, उस व्यक्ति की अपेक्षा जो यह योग्यता नहीं रखता, अधिक योग्यतापूर्ण और उचित रीति से संगीत का सम्पादन कर सकता है।

इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि आप एक विशेष प्रकार की वस्तु के प्रति अवधान केन्द्रित करने की आदत और दूसरी वस्तुओं के प्रति उपेक्षा की आदत का निर्माण कर सकते हैं। ये आदतें रुचि, इच्छा इत्यादि तत्त्वों के आधार पर बनाई जा सकती हैं, परन्तु एक बार स्थापित हो जाने पर वे ध्यान का संचालन करने में अत्यन्त शक्तिशाली सिद्ध होती हैं। इस प्रकार एक वनस्पति-विज्ञान-वेत्ता बाग के

1. Theory. 2. Temperament, Habit and Aptitude.

भन्दर प्रत्येक पौधे के प्रति ध्यान लगाने की आदत का विकास कर सकता है, एव ंगीतज्ञ पद्यको तथा सुर-माधुर्य की तालों की आदत बना सकता है।

अवधान के महत्वपूर्ण लक्षण[1]

अवधान एक चलायमान प्रक्रिया है। किसी वस्तु की ओर एक लम्बी अवधि तक ध्यान लगाना असम्भव है। अधिकांश वस्तुएँ जटिल होती हैं, और ध्यान की शीघ्र गतिशील अस्थिर प्रवृत्ति, समय के छोटे भागों के लिए ही उस वस्तु के एक गुण के प्रति ध्यान लगा पाती है और तब ध्यान उसके दूसरे गुणों के प्रति लग जाता है। एक समय मे एक ही विशेषता या वस्तु की ओर ध्यान दिया जा सकता है। एक ही समय में बहुत-सी वस्तुओं को ध्यान में लाने के अधिकांश उदाहरण जो हमारे सम्मुख आते हैं, वह इस बात पर निर्भर रहते हैं कि ध्यान एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर तेजी से गतिशीलता प्राप्त कर लेता है। ध्यान के विस्तार की एक सीमा होती है।

अवधान विस्तृति[2]

इस प्रश्न का उत्तर कि 'एक ही समय में चेतना के ध्यान-केन्द्र में कितनी वस्तुओं को सुरक्षित रखा जा सकता है' एक व्यक्ति के ध्यान के विस्तार को बताता है। परन्तु इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर रहता है कि हम पृथक वस्तुओं से क्या समझते हैं? उदाहरण के लिए अव्यवस्थित बिन्दुओं का निम्न रूप—

स्थिर नक्षत्रों के समूह की भाँति जो सप्त-ऋषि कहलाते हैं, प्रस्तुत करके बड़ी सुगमता से ध्यान में लाया जा सकता है। लेकिन वे इस प्रकार वास्तव में एक एकता का निर्माण करते हैं और एक वस्तु हो जाते हैं। यदि देखने वाला नक्षत्रों के इस समूह से परिचित नहीं है और ये बिन्दु[3] पर्दे पर केवल ½ वें सैकिण्ड तक दिखाए जाते हैं, तो वह उन सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखने में सफल नहीं हो सकता है, क्योंकि उसे उसी क्षण उन पर अलग-अलग ध्यान लगाना पड़ेगा और बिन्दुओं में एकता न देखकर वह उन्हें अलग-अलग समझने की चेष्टा करेगा।

दृश्यमान अवधान के विस्तार का निरीक्षण टैकिसटॉसकोप[4] द्वारा किया जाता है। यह एक उपकरण होता है, जो संक्षिप्त समय के लिए वस्तुओं का दिग्दर्शन करने के हितार्थ प्रयुक्त किया जाता है। एक विषयी को बिन्दुओं या अक्षरों के एक अव्यवस्थित समूह को ½ सैकिण्ड से ₁₀₀ सैकिण्ड तक दिखाया जाता है और यह पूछा जाता है कि उसने कितने बिन्दुओं या अक्षरों का निरीक्षण किया?

1. Important Features of Attention. 2. The Span of Attention. 3 Dots. 4. Tachistoscope.

किए गए निरीक्षणों के परिणाम इस बात पर पहुँचते हैं कि यदि एक समू की इकाइयाँ व्यवस्थित रखी हुई हैं तो अवधान का सामान्य विस्तार प्रायः चा या पाँच की संख्या तक होता है। इस संख्या के पश्चात् त्रुटियाँ बार-बार संगठि होने लगती हैं और सही प्रत्युत्तर मिलना अधिकांश रूप में संयोगवश हो जाता है यदि किसी प्रकार इकाइयाँ व्यवस्थित होती हैं, यदि बिन्दियाँ एक आकार का प अक्षर एक शब्द अथवा मुहावरे का निर्माण करते हैं, तो एक बहुत अधिक सम्ब संख्या को भी सही रूप से ध्यान में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, लोग बड़ी आसानी से अपने ध्यान के विस्तार में नीचे दी गई अनेक बिन्दियों को रख सकते हैं, उन्हें इसमें कोई भी कठिनाई नहीं होती है :

⁝ ⁝
‥ ⁝

लेकिन इस प्रकार के विषयों में अवधान-विस्तार की वृद्धि नहीं कही जा सकती है। वस्तुओं का निरीक्षण समग्र रूप से तथा एक 'समूह' की तरह किया जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में विषयी ने १२ पृथक इकाइयों का भेद नहीं किया है, परन्तु उसने ४ जटिल इकाइयों को देखा तथा गणना के द्वारा १२ का योग प्राप्त किया।

श्रवण से सम्बन्धित विषयों के लिए भी ध्यान के विस्तार की माप की जा सकती है। यदि विभिन्न प्रकार की ठोकने की आवाज़ की तेजी से गणना करने के लिए कहा जाय तो साधारण तौर पर ५ या ६ ध्वनियों में सही रूप से अन्तर पहिचाना जा सकता है, यद्यपि यहाँ अवधान के विस्तार की संख्या बड़े रूप से वृद्धि हो सकती, यदि ठोकने की ध्वनियाँ लयपूर्ण नमूने का निर्माण करें।

ध्यान के विस्तार में व्यक्तियों की विभिन्नताएँ भी महत्व रखती हैं। प्रोफेसर बिने ने टैकिसटॉसकोप के साथ अव्यवस्थित बिन्दुओं के रूप को दिखाकर बच्चों के साथ अनेक प्रयोग किये और पता लगाया कि बालकों में महान् व्यक्तिगत भिन्नता होती है। एक बच्चा साधारण रूप से एक बार में ५ या ६ व्यवस्थित बिन्दुओं का, जबकि वे सामान्य समुदाय के रूप में होते हैं, निरीक्षण कर सकता है। लेकिन उसी समय दूसरा बच्चा एक दर्जन बिन्दुओं को, चाहे वे कितने ही अव्यवस्थित रूप में रखे हों, ध्यान में रख सकता है।

अवधान का विभाजन[1]

बहुत-से ऐसे लोग होते हैं, जो एक साथ ही दो या तीन कार्यों के करने में प्रवृत्त हो सकते हैं। इस प्रकार के विषयों में उठने वाला प्रश्न यह है कि *'क्या वे अपनी चेतना के ध्यान-केन्द्र में दो से अधिक वस्तुओं को रख सकते हैं, या नहीं ?'* नेपोलियन एक ही बार में बहुत-से पत्र लिखवाता था। प्रख्यात क्रान्तिकारी लाला

1. Division of Attention.

हरदयाल कई कार्य, जैसे—पत्र लिखवाना, शतरंज के मोहरों की चाल बनाना त
ब्रिज के खेल में ताश के पत्तों की चाल बताना, एक ही समय में करते थे। अब प्रश्न
यह है कि 'क्या ये व्यक्ति सदैव अपनी चेतना के ध्यान-केन्द्र में इन कार्यों का अस्ति
रखते थे, या नहीं ?'

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हम एक समय में दो कार्य नहीं कर सक
हैं, क्योंकि एक समय में एक ही तरफ ध्यान लगाया जा सकता है। एक
समय दो कार्यों में ध्यान का विभाजन नहीं हो सकता। फिर भी यदि हम
कार्य एक समय में कर सकते हैं तो ऐसा निम्नलिखित तीन सम्भावनाओं के कार
हो सकता है :

(i) दो कार्यों को एक साथ ही पूरा करने में उन दो क्रियाओं में से एक
लिए किसी भी ध्यान की आवश्यकता नहीं होती। वे चतुर बुनने वाली स्त्रियाँ
एक ही समय पर बुन एवं पढ़ सकती हैं, इस प्रकार बुनने को अभ्यास द्वारा सीख
हैं कि उसकी तरफ बिना कोई ध्यान लगाये हुए वे बुनती चली जाती हैं। जब बुन
को ध्यान की आवश्यकता होती है, उदाहरणार्थ, यदि फंदा गलत जाता है तो पढ़ा
को स्थायी रूप से रोक देना पड़ता है।

(ii) दूसरी सम्भावना यह है कि ध्यान एक कार्य से दूसरे कार्य की ओर तेज
से परिवर्तित हो जाता है। कुछ मनुष्यों में ध्यान के परिवर्तित होने की यह श
अत्यन्त त्वरित होती है। इस प्रकार नेपोलियन का ध्यान एक पत्र से दूसरे को आ
आदेश देने में तेजी से परिवर्तित हो जाता था, ठीक इसी तरह जब हम रेलगाड़ी
यात्रा करते हैं तो हम दृश्यों के देखने में साथ-साथ अपने साथियों की बातों पर भ
जो बिलकुल ही भिन्न वस्तुओं के विषय में होती हैं, ध्यान देते हैं।

ऐसे ध्यान की माप प्रयोग द्वारा की जा सकती है। दो कार्यों को एक व्यक्ति
को किसी निश्चित समय के अन्तर्गत पूरा करने के लिए दिया जाता है, और फि
जितनी देर में वह उन्हें पूरा करता है, उसे लिख लिया जाता है, इसके पश्चा
दोनों कार्यों को एक साथ करने के लिए दिया जाता है और कार्य-अवधि को लि
लिया जाता है। एक साथ कार्य करने में परिणाम बुरा निकलता है। "व्यक्तिग
परिणामों के भिन्न होने के बावजूद भी जो औसत प्राप्त हुआ है वह यह है कि द
कार्यों को एक साथ ही पूर्ण करने में प्रत्येक के अन्तर्गत लगभग ४० प्रतिशत कार्य
क्षमता की हानि होती है।"

(iii) तीसरी सम्भावना जो दिखाई पड़ती है, वह यह है कि हम विभि
वस्तुओं की संख्या के साथ नहीं वरन् एक साधारण संयुक्त वस्तु के साथ कार्य करते
हुए प्रतीत होते हैं। कई वस्तुएँ या कई कार्य हमें कई के रूप में न प्रतीत होकर एक
इकाई के रूप में हमारे ध्यान को खींच लेते हैं। यदि तीन मोटरें एक साथ बराब
चली हैं तो वे वास्तव में एक मोटर के भागों की तरह समान आकार के आलम

केन कुछ ऐसे व्यक्ति भी पाये जाते हैं जो किसी प्रकार की बाधा को सहन नहीं क
रते। थोड़ी-सी बाधा उन्हें क्रोधित बना डालती है। वे तनिक-सी आवाज
राज हो जाते हैं, चाहे भले ही नाममात्र को उनके चारों ओर शोर हो रहा हो।

प्रायः यह भी देखा गया है कि कुछ व्यक्तियों की इस अवस्था में कार्य-क्षम
वृद्धि हो जाती है। इसका शायद यही कारण है कि ये व्यक्ति अपने अन्दर का
त्रा में शक्ति एकत्रित रखते हैं जिसका वह विघ्नपूर्ण परिस्थितियों में उपयोग क
और इस प्रकार जो कार्य कर रहे हैं, उसमे संलग्न रहते हैं।

इन विघ्न डालने वाली अवस्थाओं पर कई प्रकार से विजय प्राप्त की
कती है। सबसे अच्छी और साधारण विधि यह है कि कार्य में अधिक शक्ति
योग किया जाय। यह शक्ति कार्य में तभी अधिक मात्रा में प्रयोग की जा सकती
बकि उस कार्य को करने में रुचि उत्पन्न हो जाय। यदि यह सम्भव नहीं तब स
च्छा यही होगा कि प्रेरणा को बढ़ाया जाय, जिसको कृत्रिम साधनों की सहायता
किया जा सकता है, जैसे—इनाम, बोनस आदि। इसके अतिरिक्त दूसरा ढङ्ग जिस
वारा इस पर विजय प्राप्त की जा सकती है, वह है—इस प्रकार की आदतों
निर्माण जो बाधा डालने वाले उत्तेजकों की ओर ध्यान न देने से सम्बन्धित हो। ऐ
आदतें उन लोगों में बन जाती हैं जो रेलवे स्टेशन के पास रहते हैं। शोर या सी
की आवाज इत्यादि उन लोगों की शान्ति को भंग नहीं करती।

रुचि और अवधान तथा शिक्षा में उनकी उपयोगिता[1]

हम यह बात अच्छी तरह देख चुके हैं कि रुचि और ध्यान किसी तरह ए
दूसरे से सम्बन्धित हैं। ध्यान के लिए यह आवश्यक है कि शिष्यों में पाठ के प्रति र
उत्पन्न की जाय। अब हमारे सामने यह समस्या उठ खड़ी होती है कि यह रुचि कि
प्रकार उत्पन्न की जाय? यदि विद्यार्थियों में रुचि होगी तो ध्यान न देने की समस
स्वतः ही हल हो जायेगी। हम नीचे कुछ बातों का वर्णन करते हैं जिनकी सहाय
से बालकों में रुचि उत्पन्न की जा सकती है। यथा—

(१) छोटे बालकों की रुचि आवश्यकता-केन्द्रित होती है। अनियमित ढ
में इसका अधिक प्रयोग होता है। अतएव पढ़ाते समय आवश्यकता द्वारा रुचि
उत्पन्न करना परम आवश्यक होता है। हम बहुत-से गणित के प्रश्न रचनात्मक प्रवृ
के कारण रुचि उत्पन्न करके हल करा सकते हैं। इसी प्रकार दूसरी आवश्यकता
को सक्रिय करके बालकों में कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

लेकिन यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि जब भी मूल-प्रेरणात्मक
उत्पन्न की जाय, उस समय उन निषेधात्मक प्रेरणाओं व रुचियों को, जो भय आदि
कारण उत्पन्न हो जाती हैं, ध्यान में लाया जाय। बालकों में रचना, उत्सुकता
आत्म-सम्मान आदि की प्रवृत्तियों द्वारा रुचि जाग्रत करनी चाहिए।

1. Interest & Attention, and their Educational Implicatio

(२) बालक के विकास के भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचियाँ पाई जाती हैं। अध्यापक को बालकों की रुचियों से अच्छी तरह परिचित होना चाहिए और बालक के मस्तिष्क के विकास के अनुकूल ही उन्हें कार्य का प्रबंध करना चाहिए। उदाहरण के लिए, किशोरावस्था में बालक की रुचि वासनात्मक प्रवृत्ति की अधिक होती है। अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों को अच्छे प्रकार से रहने-सहने के ढंग को अपनाने तथा खेल-कूद आदि की तरफ प्रोत्साहित करे ताकि उनकी रुचि अच्छी बातों की ओर लग जाय।

(३) किसी भी विषय में बालकों की रुचि में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि जो विषय बालकों को पढ़ाया जाय, वह न अधिक आसान हो और न अधिक कठिन ही। वह ऐसा हो जिसे वे समझ सकें। विषय इतना कठिन न होना चाहिए कि बालक उसे न समझने के कारण उसमें अपनी रुचि खो बैठें। बहुत छोटे बालकों के लिए ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा उपयुक्त होती है। मॉन्टेसरी तथा किंडरगार्टेन प्रणाली बालकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए ही उन्हें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा देने के सिद्धान्त को अपनाती है। बड़े बालकों की रुचि किसी कार्य में लगी रह सकती है, जब उनकी कल्पना, तर्क इत्यादि को यह रुचि प्रोत्साहित करे।

(४) बालक प्रायः उन वस्तुओं में अधिक रुचि नहीं रखते, जिनमें उद्देश्य को वे समझ नहीं पाते। इसलिए पढ़ाते समय उद्देश्य को सदैव बालकों के समक्ष
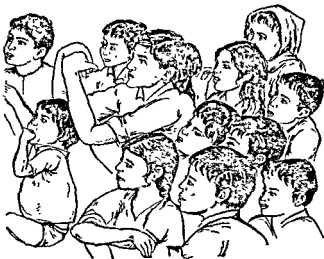
[श्रव्य-दृष्टि सामग्री का प्रयोग बालकों के अवधान को शीघ्र खींच लेता है। इस चित्र में ग्राम के बालक एक चलचित्र देख रहे हैं।]

स्पष्ट रखना चाहिए। प्रत्येक कार्य उद्देश्यमय होना चाहिए, जिससे बालक उसे प्राप्त करना चाहे। प्रत्येक विषय अथवा पाठ का आरम्भ किसी-न-किसी प्रकार की उत्सुकता के साथ होना चाहिए।

(५) बालक की रुचि उस पाठ मे बनी रहती है जिसमे उस नये ज्ञान जिसे वह सीखना चाहता है और पुराने ज्ञान का, जिसे वह सीख चुका है, मिश्रण है। जब बालक देखता है कि जो कुछ भी उसने सीखा है और जो अब सीखने जा रहा है, उसमे कुछ न कुछ सम्बन्ध है, तब स्वभावत. वह उसमे रुचि रखने लगता है।

(६) अध्यापक को अपना पाठ रसहीन नहीं बनाना चाहिए। उसे एक ही वस्तु बार-बार नहीं दोहरानी चाहिए। उसके पाठ मे कुछ-न-कुछ नवीनता अवश्य हो।

(७) शिक्षक को फुर्तीलापन दिखाने की आवश्यकता है। उसकी अरोचकता व सुस्त प्रकृति विद्यार्थियो मे से रुचि की भावना का नाश कर देती है। एक अध्यापक जो उत्साह के साथ बालको को पढाता है, निश्चयपूर्वक उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

(८) अध्यापक को चाहिए कि वह बालको के लिए चलचित्र, तस्वीरें, टेलीविजन आदि का प्रयोग करे जिससे उनमे पाठ के प्रति रुचि उत्पन्न हो सके। इस प्रकार की सहायक सामग्रियाँ विद्यार्थियो मे निस्सन्देह रुचि उत्पन्न करती हैं।

सारांश

'अवधान' एक क्रमशील प्रक्रिया है जो मस्तिष्क के भण्डार मे से कभी एक वस्तु को, कभी दूसरी को चेतना के केन्द्र मे ले आती है। अवधान की दो दशाएँ दो मुख्य प्रकार की होती हैं . (अ) वस्तुनिष्ठ दशाएँ—जो वस्तु की प्रकृति पर अवलम्बित रहती हैं, (ब) व्यक्तिगत दशाएँ—जो व्यक्ति की रुचियो, इच्छाओं और मानसिक स्थिति पर निर्भर रहती हैं। अवधान की वस्तुनिष्ठ दशाएँ हैं—(१) तीव्रता, (२) आकार, (३) गति, (४) दोहराना, (५) व्यवस्थित रूप, और (६) नवीनता। अवधान की व्यक्तिगत दशाएँ हैं—(१) आवश्यकता, (२) संवेग, (३) रुचि, (४) स्वभाव, आदत और रुझान।

रुचि को एक प्रेरक-शक्ति कहा जा सकता है जो हमारे ध्यान को एक व्यक्ति, वस्तु या क्रिया की तरफ उन्मुख करती है। 'रुचि' गुप्त अवधान होता है और 'अवधान' रुचि का क्रियात्मक रूप है। हम अपनी प्रत्येक रुचि को इस रूप मे देख सकते हैं। वह हमे सदैव इस बात के लिए तत्पर कर देती है कि हम विशेष उद्दीपको की ओर अपना अवधान केन्द्रित करें।

एक समय मे चेतना के ध्यान-केन्द्र मे जितनी वस्तुओ को सुरक्षित रखा जा सकता है, वह 'अवधान का विस्तार' कहलाता है। अवधान के विस्तार मे व्यक्तिगत विभिन्नता होती है। परन्तु अवधान-विस्तार एक व्यक्ति मे उस समय बढ़ जाता है जब वस्तुएँ व्यवस्थित रूप मे होती हैं।

अवधान का विभाजन सम्भव नहीं है। जब हमें अवधान का विभाजन होता हुआ प्रतीत होता है उस समय वास्तव में अवधान एक कार्य से दूसरे कार्य की ओर शीघ्रता से परिवर्तित हो जाता है, या दूसरी सम्भावना यह होती है कि जिन कार्यों में विभाजन प्रतीत होता है, उनमें एक के ऊपर कोई भी ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती है। तीसरी सम्भावना यह भी है कि हम विभिन्न कार्यों या वस्तुओं को एक संयुक्त रूप में ग्रहण कर कार्य करते हैं।

अवधान के तीन प्रकार होते हैं—(१) अनियन्त्रित अवधान—यह छोटे बालकों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, (२) नियन्त्रित अवधान—बाह्य प्रेरणाओं के कारण होकर अवधान किसी वस्तु इत्यादि की ओर लगा दिया जाता है, और (३) स्वैच्छिक अवधान—आन्तरिक रुचि के कारण विकसित होता है।

अवधान की नियन्त्रित अवस्था में ध्यान लगाने में बाधा उत्पन्न हो जाती है। यह उन उद्दीपकों के कारण होता है जिनसे ऐसे अवरोध होते हैं जो ध्यान को उस कार्य से जो वह कर रहा है, हटा कर दूसरी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इस अवस्था पर कार्य में अधिक शक्ति लगाकर विजय प्राप्त की जा सकती है। अच्छी आदतों के निर्माण द्वारा ध्यान को अनेक बाधाओं के बीच केन्द्रित करने में भी व्यक्ति सफल हो सकता है।

शिक्षा में रुचि तथा अवधान की अनेक उपयोगिताएँ हैं। बालकों की रुचि का उपयोग करके हम उन्हें उचित शिक्षा प्रदान करते हैं। इसके लिए हमें चाहिए कि निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखें—(१) छोटे बालकों में आवश्यकताओं के कारण रुचि उत्पन्न होती है। आवश्यकताओं द्वारा ही रुचि जाग्रत करके उन्हें शिक्षा देनी चाहिए, (२) बालक के विकास के विभिन्न स्तरों पर जो विभिन्न रुचियाँ पाई जाती हैं, उनका शिक्षा में उपयोग करना चाहिए, (३) बालकों की रुचि को जाग्रत रखने के लिए यह चाहिए कि उन्हें न अधिक कठिन और न अधिक सरल कार्य करने को दिया जाय, (४) बालकों के सम्मुख जो कार्य उन्हें करने को दिया जाये, उसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से रखा जाये, (५) नये ज्ञान का जो बालकों को देना है, उस ज्ञान से जो उन्हें प्राप्त हो चुका है, समन्वय स्थापित करना चाहिए, (६) अध्यापकों को पाठ में नवीनता रखनी चाहिए, (७) अध्यापक को उत्साह के साथ पढ़ाना चाहिए, (८) सहायक सामग्रियों का उपयोग करना चाहिए।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. अवधान से आप क्या समझते हैं? कक्षा में अधिक अवधान उत्पन्न करने के लिए कौन-कौनसी मुख्य दशाएँ हैं?

२. अवधान तथा रुचि में क्या सम्बन्ध है? उन ढङ्गों की एक सूची तैयार कीजिए जिनसे आप कक्षा के बालकों में रुचि उत्पन्न कर सकें।

३. क्या यह सम्भव है कि हम समाज द्वारा अस्वीकृत रुचि को साम इच्छित रुचि मे परिवर्तित कर सकते हैं ? यदि हाँ तो किस प्रकार इसे प्राप्त करेंगे ?

४. अवधान के केन्द्रीकरण से आप क्या समझते हैं ? अवधान को भिन्न करने वाले तत्वो पर प्रकाश डालिए।

५. "शिक्षालय-रुचि सदैव शिक्षा मे निहित है।" व्याख्या करके ब कि यह कहाँ तक उचित है।

६. रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए -

   (i) ···गुप्त·······होता है और ·······रुचि का क्रियात्मक रू

   (ii) हम एक समय मे ······ ··नही कर सकते क्योकि एक सम एक ही ओर ······लगाया जा सकता है।

   (iii) अवधान के · ···प्रकार हैं—अनियमित, ·· , · ··· ।

   (iv) छोटे बालकों की रुचि · ····केन्द्रित होती है।

   (v) बालक के विकास के·······स्तरो पर···· ·प्रकार की रु पाई जाती है।

१६ प्रत्यक्षीकरण एवं सीखना
PERCEPTION & LEARNING

बाह्य जगत् सम्बन्धी वस्तुओं तथा अपने विषय का सम्पूर्ण ज्ञान हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करते हैं। इनके द्वारा ही हम अपने चारों ओर की वस्तुओं से दृष्टि, ध्वनि, स्पर्श, स्वाद तथा गंध का अनुभव करते हैं। ज्ञानेन्द्रियों से जो प्रभाव हम प्राप्त करते हैं, उसे 'संवेदन' कहते हैं।

लेकिन अधिकतर जीवन के प्रारम्भ से ही हमारी संवेदनाएँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम अपने सम्मुख नारंगी देखते हैं तो हम अपने पूर्व-अनुभव से यह जानते हैं कि इसका स्वाद किस प्रकार का होगा ? इसका स्पर्श कैसा होगा ? तथा इसका सामीप्य भार क्या होगा ? दूसरे शब्दों में, नारंगी के विषय में हमारे सभी पूर्व-अनुभव, हमारी संवेदना, जिसे हम उसी क्षण अनुभव करते हैं, प्रत्यक्ष करते हैं। इसको हम 'प्रत्यक्षीकरण' कहते हैं।

अब हम संवेदन और प्रत्यक्षीकरण के बारे में विचार करेंगे और देखेंगे कि सीखने में उनका क्या महत्त्व है।

संवेदन[1]

यह सबसे अधिक प्रारम्भिक प्रक्रिया है जो परिचायकता के लिए आवश्यक है। ज्ञानेन्द्रियों की व्याख्या "आत्मा के वातायन अथवा ज्ञान के प्रमुख दरवाजों"[2] के रूप में की जाती है। एक विशेष ज्ञानेन्द्रिय द्वारा ही संवेदना चेतन मस्तिष्क तक आती है, संवेदना किसी उद्दीपक से उत्पन्न होती है।

1. Sensation. 2. "Windows of the Soul" or the "Gateways of Knowledge."

"संवेदन ज्ञानेन्द्रिय की प्रतिक्रिया है, जो उत्तेजित होने पर मस्तिष्क :
नाड़ी-मंडल के केन्द्र में स्नायविक धाराएँ भेजती है। इस प्रकार मस्तिष्क का प्र
प्रत्युत्तर ही संवेदन है।"[1]

संवेदन मस्तिष्क की एक सामान्य तथा सरलतम प्रक्रिया है। इसे और अ
सरल व सामान्य नहीं बनाया जा सकता। मस्तिष्क की इस प्रारम्भिक एवं सरल
प्रक्रिया—संवेदना—का सम्यक् विश्लेषण नहीं किया जा सकता। शुद्ध संवेदना
होना प्रायः असम्भव है। एक नवयुवक व्यावहारिक रूप से शुद्ध संवेदना कभी
प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि जैसे ही हम संवेदना प्राप्त करते हैं, हम अपने
अनुभवों पर आधारित अर्थ को चेतन अथवा अचेतन रूप से इसमें लगाने
प्रयास करते हैं। बाल्यावस्था के प्रारम्भ में जब बच्चे के सम्पूर्ण अनुभव अ
होते हैं, उस समय ही यह कहा जा सकता है कि उसे कुछ प्रारम्भिक संवेदना प्र
होती है।

वैज्ञानिकों ने संवेदनाओं का वर्गीकरण पाँच ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर
प्रकार से किया है—(१) चाक्षुष-संवेदना[2], (२) ध्वनि-संवेदना[3], (३) घ्राण-संवेद
(४) स्पर्श-संवेदना[5], और (५) स्वाद-संवेदना[6]।

मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार गति सम्बन्धी संवेदना प्रारम्भिक प्रकार की
है। यह संवेदना गति तथा स्थिति[7] के सम्बन्ध में होती है। स्पर्शेन्द्रिय संवेदना
तीन भागों में विभक्त किया जाता है—उष्णता[8], शीतलता[9] तथा दबाव[10]। वि
व्यक्तियों में संवेदनाओं की किसी भी दिशा में विभिन्नता होती है। कुछ में
सम्बन्धी तथा कुछ में घ्राण सम्बन्धी या किसी और प्रकार की संवेदना अधिक
में विकसित होती है।

संवेदन के विधायक तत्त्व[11]

प्रत्येक संवेदना में एक या सम्पूर्ण निम्नलिखित भाग पाये जाते
(१) गुण[12], (२) तीव्रता[13], (३) काल[14], (४) विस्तार[15]।

(१) गुण—एक संवेदना की प्रकृति दूसरी से भिन्न होती है। दृष्टि सम्ब
संवेदना आपस में एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। इनकी भिन्नता वस्तु की प्रकृ
विशेष पर ही आधारित होती है। दृष्टि सम्बन्धी संवेदना के अनुसार एक ही
रंग में विभिन्न छायाएँ मानी जा सकती हैं, जैसे—गहरा नीला, हलका नीला, अ
मानी, इत्यादि।

---

1. "A sensation is an act of the sense-organ which, wh
stimulated, sends nerve currents to the sensory centres of the br
and the first response of the brain is a sensation."

2 Visual 3. Auditory. 4. Olfactory. 5 Tactual. 6. Tas
7. Position 8. Heat. 9 Cold 10. Pressure. 11. Components
Sensations. 12. Quality. 13. Intensity. 14. Duration. 15. Extensi

(२) तीव्रता—इसका तात्पर्य संवेदन की मात्रा से है। अगर हम दो नीले रंग की एक ही प्रकार की छाया को लें, तो हम एक को दूसरे से अधिक चमकीला भाषित करते हैं। यह विभिन्नता एक रंग की सम्वेदना की तीव्रता को दर्शाती है। जैसे, आसमानी रंग में ही एक चमकीला आसमानी रंग हो सकता है और दूसरा धुँधला, गन्दा आसमानी रंग।

(३) काल—संवेदना जितने समय तक रहती है, वह 'सम्वेदन का काल' कहलाता है। एक ही ध्वनि जब हमारे कानों में अधिक समय तक स्थिर रहती है, एक भिन्न गुंजन पैदा करती है—अपेक्षाकृत उस ध्वनि के जो बहुत कम समय तक स्थिर रहती है।

(४) विस्तार—यह कुछ संवेदनों का लक्षण है, परन्तु सभी का नहीं। इसका अभिप्राय स्थान के विस्तार से होता है। नाक के टोने को छूने से जो संवेदना होती है, वह नाक के ऊपरी भाग को छूने से होने वाली संवेदना से भिन्न होती है।

सम्वेदन की विस्तृतता का तात्पर्य उसकी विस्तीर्णता[1] से भी समझा जा सकता है। इस आधार पर विस्तार में जो अन्तर है, वह निश्चित रूप से गुण की अपेक्षा से होता है। एक चिल्लाते हुए मेढक की आवाज सीटी के कर्कश स्वर में भी कटु हुआ करती है।

प्रत्यक्षीकरण[2]

प्रत्यक्षीकरण में संवेदन मानसिक क्रियाओं की आधारभूत समझी जाती है। संवेदन एक उद्दीपक का प्रत्युत्तर है और प्रत्यक्षीकरण एक प्राणी की संवेदन के पश्चात् द्वितीय प्रत्युत्तर है जो संवेदन से सम्बन्धित होता है। हम एक उद्दीपक प्राप्त करते हैं, जो एक संवेदनात्मक प्रत्युत्तर को उत्तर देता है और जो सर्वप्रथम संवेदन तथा प्रत्यक्षीकरण के रूप में प्रस्तुत होता है। इस प्रकार वुडवर्थ के अनुसार प्रत्यक्षीकरण में "बाह्य उद्दीपक के प्रति मस्तिष्क की प्रथम क्रिया संवेदन होती है। प्रत्यक्षीकरण का क्रम संवेदन के बाद आता है।" लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी प्रकार की क्रिया में यह परिवर्तन केवल सैद्धान्तिक महत्त्व का होता है। क्रियात्मक रूप में संवेदन तथा प्रत्यक्षीकरण आपस में इस प्रकार समाविष्ट होते हैं कि हम नहीं कह सकते कि कब संवेदन की समाप्ति होती है, और कब प्रत्यक्षीकरण की उत्पत्ति। जब कभी हम किसी उद्देश्य को लेते हैं तो सर्वप्रथम हम उसकी किसी स्थिति को समझने का प्रयास करते हैं और इस तरह हम इसको संवेदन न कहकर प्रत्यक्षीकरण कहेंगे।

मनुष्य सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों के सहारे ही संसार की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को समझने की चेष्टा करता है। जो प्रथम प्रतिक्रियाएँ ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजना प्रदान करने से मिलती हैं, उन्हें ही सम्वेदन कहते हैं। शिशु जैसे ही बड़ा होने लगता है,

1. Voluminousness. 2. Perception.

उसकी विभिन्न संवेदनाएँ एक-दूसरे से मिलने लगती हैं, और इस प्रकार वह
अभिप्राय तक पहुँचता है। उदाहरणार्थ, बालक 'पापा' शब्द की ध्वनि पि
दृष्टि से सम्बोधित कर देते हैं और इस प्रकार उनकी संवेदनाओं को अर्थ प्रद
जाता है। जैसे ही संवेदनात्मक ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी प्रतिक्रिया आरम्भ करती
इसके फलस्वरूप हमें अपने पूर्व-ज्ञान के आधार पर किसी नवीन बात का सुग
बोध होता है। अतः हमारी वर्तमान संवेदनाएँ पूर्व-ज्ञान से मिल जाती हैं औ
तुरन्त ही प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

कोई भी संवेदनात्मक स्थिति प्रत्यक्षीकरण का आधार बन सकती है। अ
तर मनुष्यों के विचार से प्रत्यक्षीकरण का अर्थ किसी भी वस्तु को प्रत्यक्ष
देखने का होना है। परन्तु प्रत्यक्षीकरण केवल दृष्टि की ज्ञानेन्द्रिय से सम्बनि
होकर किसी भी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा हो सकता है। किसी भी वार्तालाप को
तैयार किये जाने वाले भोजन की गन्ध, भोजन का स्वाद लेना, स्थान का ता
मालूम करना, अथवा किसी भी चित्र का अवलोकन करना तथा पुस्तक का अ
करना—ये सब प्रत्यक्षीकरण की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। इस प्रकार हम कह स
कि स्वाद, गन्ध, स्पर्श तथा तापक्रम इत्यादि सम्बन्धी सम्मिलित संवेदनाएँ प्र
करण की भी प्रतिक्रियाएँ हैं।

संवेदना के संगठित लक्षण हमारे पूर्वज्ञान पर आधारित होते हैं
विदेशी भाषा प्रारम्भ में ध्वनियों की मिलावट मात्र ही होती है। परन्तु जै
इन्हीं ध्वनियों को प्रत्येक मनुष्य अपने अनुभव द्वारा सीखता जाता है, वह उनसे
चित हो जाता है। धीरे-धीरे ध्वनि का रूप उसके अनुभवों में बदल जाता है
वह ध्वनियाँ केवल उल्टी-सीधी ध्वनियों की मिलावट मात्र न रहकर अर्थपू
जाती हैं।

प्रत्यक्षीकरण में हम संवेदनात्मक अनुभव में कुछ और जोड़ देते हैं, ज
अनुभव में उपस्थित नहीं होता। हम एक नारंगी को साधारण तौर पर देखने
पहले हमें केवल उसमें रंग इत्यादि का विचार आता है, और जब हम इसी
को प्रत्यक्ष दृष्टि से ध्यानपूर्वक देखते हैं तो हमें अपने पूर्वज्ञान द्वारा उसके स्वा
अनुभव भी होता है क्योंकि उसे देखकर हमारे सम्मुख उसका वह स्वाद आ
है, जिसका आनन्द हम पहले उठा चुके हैं।

प्रत्यक्षीकरण की साधारण त्रुटियाँ[1]—भ्रान्ति[2]

प्रत्यक्षीकरण की त्रुटियाँ बहुत साधारण हैं। कभी-कभी किसी वस्तु को
प्रकार समझने में व्यक्ति को भ्रम हो जाता है। क्योंकि प्रत्यक्षीकरण इस प्रक
कई तत्त्वों पर निर्भर रहता है, जैसे—व्यक्ति का पूर्वज्ञान, प्रत्यक्षीकरण के
उसकी मानसिक स्थिति, वस्तु के विशेष गुण जिनकी ओर अवधान केन्द्रित

1. Common Errors in Perception. 2. Illusion.

का यह कर्तव्य है कि वह बालकों को प्रत्यक्षीकरण के विषय मे इस प्रकार की शिक्षा दे, जो भ्रान्तियो से मुक्त हो।

ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा[1]

गुणकारी शिक्षा के लिए ज्ञानेन्द्रियो की शिक्षा बहुत आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन बच्चो को जिनकी ज्ञानेन्द्रियां मे कुछ दोप है, साधारण ज्ञानेन्द्रियो वाले बच्चो से अलग रखा जाए। उदाहरण के लिए, एक अन्धा या बहिरा बच्चा उस स्कूल मे जिसमे साधारण ज्ञानेन्द्रियो वाले बच्चे अध्ययन करते व सीखते है, ज्ञानेन्द्रियो की उचित शिक्षा नही पा सकता। अत. ऐसे बच्चो की शिक्षा के लिए जिनकी ज्ञानेन्द्रियो मे कुछ दोप हैं, यह सावधानी बरतनी चाहिए कि उनकी आवश्यकताओं के प्रति ध्यान रखा जाए। दूपित ज्ञानेन्द्रियों वाले बालकों की शिक्षा के विषय में हम "विशिष्ट बालक" नामक अध्याय के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे।

बहुत-से बालको मे जिनमे किसी प्रकार के शारीरिक दोप नही होते हैं, बहुधा दोपपूर्ण शिक्षा के कारण इसका विकास हो जाता है। यदि एक बालक चार-पाँच वर्ष की उम्र मे भी अपने सोने के बिस्तर पर पेशाब कर देता है तो यह उसकी ज्ञानेन्द्रियो की गलत शिक्षा के कारण ही होता है। एक प्रयोग[2] के विषय मे यहाँ हम वर्णन करेंगे। यह प्रयोग एक शिशु के साथ किया गया। जिस गद्दी पर शिशु को सुलाया गया था, उसे इस ढङ्ग से रखा गया कि जब भी वह गीली हो, एक बिजली का चक्र पूरा हो जाए और एक घंटी बजने लगे जिसकी ध्वनि से बालक जाग जाए। जब बालक कुछ दिनो तक इस प्रकार जगाया गया तो उसके पश्चात् वही बालक केवल पेशाब के लगने पर ही बिना घंटी की ध्वनि के स्वतः जागने लगा। इस प्रकार शिशु एक अच्छी आदत से अनुबन्धित हो गया। हमारे समस्त जीवन मे इस प्रकार के अनुबन्धन बनते रहते हैं। यदि माँ अथवा धाय बालक को अच्छी-अच्छी बातें सिखाती है तो बालक अवश्य ही उनका प्रयोग बार-बार करने से उनका आदी हो जाता है।[3]

अतएव ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा, शिक्षा की एक समस्या है। ड्रेवर के अनुसार ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा का उद्देश्य "बालक को विशेष तथा आवश्यक प्रत्यक्ष अनुभवों का ज्ञान कराना और प्रतिदिन के जीवन के अविच्छिन्न अनुभवों को ठीक व क्रमानुसार सही

---

1. Sense Training.

2. Morgan John J. B. & Francis J. Winter : "Treatment of Enuresis by the Conditioned Reaction-Technique", *Journal of Genetic Psychology*.

3. Monster O. H. & W. H. Mowrer : "Enuresis—A ... for Its Study & Treatment", *American Journal of Orthopsychology*.

रूप में व्यवस्थित करना ही होता है।"[1] ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा का प्रमुख ध्येय मस्तिः को शिक्षित करना होता है। जिन वस्तुओं को ज्ञानेन्द्रियाँ अनुभव करती हैं, उन विषय में जानकारी प्राप्त कराने का कार्य ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा करती है। यह कि विशेष ज्ञान-तन्तु का ही अध्ययन नहीं कराती, वरन् उसकी शिक्षा के द्वारा मस्तिष्क को भी शिक्षित बनाती हैं।

मैडम मॉन्टेसरी ने ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा पर अधिक जोर दिया है। उनका शिशु को पढ़ाने का ढंग इसी पर आधारित है। उनके शिक्षोपकरण[2] में लकड़ी के टुक होते हैं जो भार, ऊँचाई, मोटाई, चौड़ाई तथा आकार इत्यादि को सिखाने के का होते हैं, और रंगीन रेशम होता है जो रंगों का ज्ञान देने में उपयोगी होता है। उपकरण बालक में बोध-ज्ञान की वृद्धि करते हैं। मॉन्टेसरी का कहना है कि शिक्षोपकरणों द्वारा बालक प्रसन्नता के साथ समस्त वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त क सकता है। उसमें ललित-कलाओं के प्रति सौन्दर्यानुभूति का भाव जाग्रत हो जाता और उसके प्रत्यक्षीकरण शुद्धता को प्राप्त कर लेते हैं।

बहुत-से मनोवैज्ञानिक मॉन्टेसरी के मत को नहीं मानते हैं। उनका कहना कि मॉन्टेसरी की प्रणाली द्वारा बच्चों में संवेदनाओं को अनुभव करना, उनमें अन्त ज्ञात करना तथा उनको अर्थ प्रदान करने की शक्ति का ही विकास हो सकता है, कि उनको प्राप्त करने की शक्ति का। इसके अतिरिक्त बालक के लिए संवेदनाओं भेद इत्यादि करना स्वयं में रुचिकर नहीं होता। इस प्रकार की शिक्षा उस भारस्वरूप प्रतीत होने लगती है।

मॉन्टेसरी की प्रणाली के विपक्ष में कितने ही मत क्यों न हो, फिर भी य कहा जा सकता है कि उसकी अपनी उपयोगिता है। ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा द्वारा बाल अधिक वस्तुओं के विषय में उचित व ठीक ज्ञान प्राप्त करता है। जितने प्रत्यक्षीकरण ठीक होंगे, उतना ही ज्ञान भी उत्तम होगा। लेकिन दूसरे विरोध उत्तर में यह आवश्यक है कि बालक को ज्ञानेन्द्रियों द्वारा दिए गए अनुभव विभि तथा अधिक मात्रा में हों और जो उद्दीपक उसे दिए जाएँ उनका कुछ उद्देश्य हो ता उनका अर्थ बालक की समझ में आये। अतएव ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा बालक की प स्थितियों व अनुभवों को ध्यान में रखकर दी जानी चाहिए।

बालक में उचित प्रत्यक्षीकरण के निर्माण करने वाले माता-पिता अथ

1. "The sense training is the giving of the child necessa and typical perceptual experiences, the correcting, supplimentir and systematizing of the unsystematic sense experience of his eve day life." —*Derve*

2. Didactic Apparatus.

अध्यापक ही हुआ करते हैं। जब प्रत्यक्षीकरण का उद्गम-स्थान संवेदना ही है तब यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के व उचित एवं ठीक अनुभव ही बालकों को प्रदान किए जाने चाहिए, जिससे उनमें उचित व ठीक संवेदना का ही विकास हो सके। गलत अनुभव अथवा संवेदना, गलत दृष्टिकोण अथवा प्रत्यक्षीकरण का ही सृजन करेगी।

यदि बालक संसार का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, तब उसके लिए अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस कार्य में विद्यालय विभिन्न प्रकार की योजनाओं द्वारा सहायता पहुँचा सकता है। बालकों को पुरातत्त्व संग्रहालय, ऐतिहासिक इमारतों तथा आनन्द-भ्रमण इत्यादि को ले जाकर उनकी ज्ञानेन्द्रियों को उचित शिक्षा दी जा सकती है।

बालकों का प्रत्यक्ष ज्ञान[1]

बच्चों का ज्ञान स्पष्ट नहीं होता है। जैसा कि जेम्स कहता है, बच्चों के लिए संसार एक चहल-पहलमय व ध्वनि मात्र ही होता है। बालक जिसे वे देख नहीं सकते हैं, उसकी कल्पना कर लेते हैं, आगे जो कुछ वे कहते हैं, वह हमें अत्यन्त गलत प्रतीत होता है। यह सब उनके संवेदन के अनुभव अविकसित होने के कारण ही होता है।

जन्म के समय बालक अपनी आँखों को भी एक स्थान पर केन्द्रित नहीं कर पाता है और न अपने चारों ओर के वातावरण को ही पहचान पाता है। लेकिन जन्म के कुछ महीने पश्चात् ही बालक में संवेदनाओं को ग्रहण करने की क्षमता बहुत अधिक बढ़ जाती है। तीन वर्ष की अवस्था में बालक में संवेदनाओं को ग्रहण करने की शक्ति का बहुत कुछ विकास हो चुका होता है। अब वह अभिप्रायपूर्ण शब्दों का भी अपने अनुभवों के लिए प्रयोग करने लगता है, जो उसके उपयोगी प्रत्यक्षीकरण का रूप धारण कर लेते हैं।

बहुत-से प्रत्यक्षीकरण ऐसे होते हैं, जिन्हें बालक सरलता तथा सुगमता से सीख लेता है। उदाहरण के लिए, बालक नारंगी की शकल, परिमाण, रंग, स्वाद आदि के विषय में आसानी से जानकारी प्राप्त कर लेता है। परन्तु गतिगामी वस्तुओं की चाल आदि के विषय में पूर्ण व ठीक प्रत्यक्षीकरण बालक के लिए आसान नहीं होते हैं। उनके लिए प्रत्येक वस्तु की एक-दूसरे से ठीक-ठीक दूरी जानना कठिन होता है। इनके विषय में ठीक व पूर्ण प्रत्यक्षीकरण करने के लिए दीर्घकालीन अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। समय के साथ उचित शिक्षा भी आवश्यक होती है, अन्यथा इन वस्तुओं के सम्बन्ध में बालक द्वारा किया गया उत्तर हमें असत्य ही प्रतीत होगा। प्रत्येक बालक का दूरी के सम्बन्ध में अनुमान अपने-अपने अनुभव के अनुसार ही होगा जिसे उसने अपने वातावरण से ही प्राप्त किया है। इस कारण यदि उसे

---

1. Children's Percept.

अन्य परिस्थितियों मे रखा जाय तब उसका ज्ञान गलत सिद्ध होगा, क्योंकि
,दूरी इत्यादि का अनुमान अपने ही अनुभव के अनुसार करेगा।

यह शिक्षा का ही कार्य है कि वह बालक मे, उसके प्रारम्भिक क
प्रत्यक्ष अनुभवो मे वृद्धि करे जिससे प्रत्यक्षीकरण मे वृद्धि के साथ-स
स्पष्टता तथा सत्यता भी आ जाए। प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही विचारों को
मिलता है, इसलिए उसकी शुद्धता परम आवश्यक है। इस प्रकार के उदाहर
बालक पक्षपात एवं पूर्व-धारणाओं से अपनी रक्षा करना सीख लेता है। ब
समझा देना चाहिए कि एक पतला व्यक्ति मोटे व्यक्ति से अधिक लम्बा दि
है जबकि वास्तव मे दोनों की लम्बाई बराबर होती है, अतएव वह ऐसे दो
की लम्बाई के आकलन मे त्रुटि न करे। इसी प्रकार वह यह समझ ले कि
वाले व्यक्ति को लम्बा प्रतीत होने के लिए ऊँची एडी, ऊँचा टोप, आदि
श्यकता होती है। बालक को इस प्रकार की त्रुटि से भी अवगत करा देना च
बडी वस्तुओ की छोटी वस्तुओ की अपेक्षा चाल मे अन्तर दिखाई पडता
समय भी जबकि दोनों की चाल एक-समान ही होती है। अतः अध्यापक क
कि जहाँ विषय विवादास्पद हो, वहाँ उदाहरण देकर बालको के स्पष्ट प्रत्
को प्रोत्साहित करे।

सारांश

'संवेदन' सबसे अधिक प्रारम्भिक प्रक्रिया है। संवेदना का वर्गीक
ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर होता है। वह वर्गीकरण है—(१) दृष्टि-संवेद
ध्वनि-संवेदना, (३) घ्राण-संवेदना, (४) स्पर्श-संवेदना, तथा (५) स्वाद-
प्रत्येक संवेदना मे एक या उससे अधिक यह भाग पाये जाते हैं—(१)
तीव्रता, (३) काल, तथा (४) विस्तार।

'संवेदन' एक उद्दीपक का प्रथम प्रत्युत्तर है और 'प्रत्यक्षीकरण'
का संवेदना देने के पश्चात् का द्वितीय प्रत्युत्तर है। प्रत्यक्षीकरण करने मे व
व्यक्ति को भ्रान्ति हो जाती है। भ्रान्ति का अस्तित्व कुछ इन खण्डो पर
होता है—(१) बाह्य संसार में अनियमित स्थिति, (२) संवेदनात्मक इन्द्रियों
(३) स्थापित आदतें, (४) पूर्वज्ञान या वर्तमान रुचि या रुझान, तथा (
या निर्देश।

उचित शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि बालकों को प्रारम्भ मे
की शिक्षा दी जाये। ज्ञानेन्द्रियो की शिक्षा का मुख्य ध्येय मस्तिष्क को
करना है। मैडम मॉन्टेसरी इस ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा पर बहुत बल देती हैं।

शिक्षा द्वारा बालको मे प्रारम्भिक काल मे ही प्रत्यक्ष अनुभव में वृ
चाहिए जिसके द्वारा प्रत्यक्षीकरण मे वृद्धि तथा स्पष्टता आ जाये।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. संवेदन से आप क्या समझते हैं ? संवेदन तथा प्रत्यक्षीकरण मे क्या अन्तर है ? स्पष्ट समझाइए।

२. ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा का क्या तात्पर्य है ? किस सीमा तक शिशु के इन्द्रिय-ज्ञान को शिक्षित किया जा सकता है ?

३ भ्रान्ति के कुछ उदाहरण दीजिए। बालकों को आप भ्रान्ति को दूर करने की शिक्षा किस प्रकार दे सकते हैं ?

४. संवेदना को कितनी श्रेणियों मे बाँटा जा सकता है ? इस विभाजन के आधार पर प्रकाश डालिए।

५. बालकों को प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार के होते हैं ? शिक्षा द्वारा बालकों के प्रत्यक्षीकरण मे कैसे वृद्धि की जा सकती है, और उन्हें स्पष्ट एवं सुगम कैसे बनाया जा सकता है ?

२० चिन्तन, तर्क और समस्या का हल
THINKING, REASONING & PROBLEM-SOL

भाषा तथा कल्पना[1]

यह कहा जाता है कि वह व्यक्ति जिनमें विचार करने की शक्ति है, प्राय जीवन की गूढ़ स्थितियों का सामना करने मे बुरी तरह से असफ यदि कोई व्यक्ति जीवन मे सफलता प्राप्त करना चाहता है तो यह आव उसमे स्पष्ट रूप से विचार प्रकट करने की क्षमता हो। यदि आप किसी मनुष्य की चाहे वह किसी भी व्यवसाय में लगा हो, योग्यताओं का विश्ले तब आपको पता चलेगा कि उसमे स्पष्ट रूप से विचार प्रकट करने की यो ही बड़ी मात्रा में विद्यमान है। अब प्रश्न यह उठता है कि चिन्तन तात्पर्य क्या है ?

चिन्तन क्या है ?[2]

चिन्तन प्रत्यक्षीकरण और कल्पना की भाँति ही एक सज्ञानात्मक है। परन्तु यह प्रत्यक्षीकरण और स्मृति, दोनों पर ही निर्भर रहता है। जो वर्तमान में हमारे विचार में विद्यमान है, जिसे हमने पहले कभी देख अब उसकी स्मृति हमारे मस्तिष्क मे रह गई है। उदाहरण के लिए, जिस "शब्द-वर्ग"[4] या पहेली का हल निकालने का प्रयत्न करते हैं, तो भिन हलों का आपके मस्तिष्क में तांता-सा बँध जाता है। आप हल के सम्बन्ध करते हैं तो इस क्रिया मे वे शब्द ही, जिनका प्रत्यक्षीकरण आपमे पहले आपके मस्तिष्क मे आते हैं। अतएव प्रत्यक्षीकरण और कल्पना, दोनो क्रिया में मिश्रण होता है। यह याद रखना चाहिए कि चिन्तन उस घ अनुभव के सम्बन्ध मे भी हो सकता है, जो न कभी घटी और न जिसे

1. Language and Imagination. 2. What is thi
3. Congnitive process. 4. Crossword Puzzle

सम्भावना हो सकती है । परियों, भूत-प्रेतों, नागों आदि के विचार इसके उदाहरण हैं । साधारण तौर पर चिन्तन निरीक्षण के क्षेत्र में वृद्धि करता है और अनुसन्धान तथा उन क्रियाओं के करने में सहायक होता है जिनका होना, यदि चिन्तन प्रत्यक्षीकरण की वास्तविक परिधि से आगे न बढ़े, असम्भव हो जाय ।

चिन्तन के भेद[1]

चिन्तन कई प्रकार का होता है, जैसे—मानसिक कल्पना, नियमित विचार, तर्क, प्रत्ययात्मक विचार, दिवा-स्वप्न, रात्रि-स्वप्न, सृजनात्मक विचार, आदि । यह चिन्तन के विविध प्रकार आपस में एकदम भिन्न और विरोधी नहीं, परन्तु परस्पर मिले-जुले होते हैं । सभी प्रकार के चिन्तनों में एक ही प्रकार की प्रदत्त सामग्री होती है । अतएव यह सम्भव नहीं कि चिन्तन की सामग्री की भिन्नता के आधार पर प्रकारों में भेद मालूम किया जा सके । यह सम्भव हो सकता है कि विभिन्न चिन्तन की क्रियाओं में उस विधि के आधार पर जिसमें विषय वस्तु का उपयोग किया गया है, भेद स्पष्ट किया जा सके । अतएव चिन्तन में दो ढंगों से भिन्नता पाई जाती है :

१. चिन्तन करने वाले मनुष्य के विचारों पर नियन्त्रण रखने की मात्रा तथा प्रकार में ।

२. मूल अनुभव तथा इस समय के विचार में उस अनुभव के रूप में, समानता की मात्रा में ।

हमें सर्वप्रथम नियन्त्रण की मात्रा को लेना चाहिए और उसमें विभिन्न प्रकार के चिन्तन के उदाहरणों को लेकर देखना चाहिए कि नियन्त्रण की मात्रा के पैमाने पर कौन चिन्तन किस स्थान पर आता है । दिवा-स्वप्न, रात्रि के स्वप्न, मानसिक कल्पना आदि ऐसे चिन्तन के उदाहरण हैं, जिसमें बहुत कम नियन्त्रण की मात्रा पाई जाती है । इसके विपरीत, दूसरे सिरे पर उच्च ढंग से नियन्त्रित चिन्तन के प्रकार; जैसे—तर्क, सृजनात्मक कल्पना आदि, आते हैं । इनके मध्य में अन्य प्रकार के चिन्तन भी आते हैं जो न तो इतने अधिक नियन्त्रित होते हैं और न इतने कम ।

दूसरा जो भिन्नता प्रकट करने वाला ढंग है वह, वह स्तर है, जिस तक विचार पूर्व-अनुभव का पुनस्मरण है, या वह स्तर है जिस तक विचार और पूर्वानुभव के मध्य में समानता है । जैसा कि हमने प्रथम अनियमित राशि के साथ देखा है, चिन्तन के विभिन्न ढंग, नियन्त्रण के पैमाने पर विभिन्न चिन्हों तक पहुँचते हैं । इसी प्रकार इस अनियमित राशि में भी हमें ऐसे चिन्तन मिल जायँगे, जो किसी भी अतिशयता[2] पर हैं, कम से कम या अधिक से अधिक, या इन दोनों के कहीं मध्य में । विचार पूर्वानुभवों को साकार करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है । स्मृति या पूर्वानुभवों की याद पूर्णतः पूर्व अनुभवों के पुनस्मरण से हो सकती है, परन्तु कभी-कभी इसमें भी त्रुटियाँ निकल आती हैं और हम कुछ-न-कुछ भूल जाते हैं । नाम,

1. Kinds of Thinking. 2. Extreme.

न नवम्र, तिथि, मूल्य इत्यादि मे हमारी स्मृति पूर्णरूपेण पूर्व अनुभव
हो सकती है। इस अनियमित राशि के पैमाने पर यह विचार अतिश
अतिशयता भी है, जिसे हम बहुधा कल्पना-पुनस्मंरण कहते हैं। यह
पना मे जो विचार पुनस्मंरण कर लिये जाते हैं, वह पूर्व-अनुभव के
, परन्तु उनमे समय तथा स्थान का प्रबन्ध वास्तविक अनुभव से
है।

हम इस अध्याय के अन्तर्गत उच्च चिन्तन के प्रकार 'तर्क तथा
सम्बन्ध मे अध्ययन करेंगे और 'कल्पना तथा उसकी शिक्षा मे उपयो
र मे भी प्रकाश डालेंगे।

(के साधन[1]

गहरे चिन्तन के लिए यह आवश्यक है कि हमारे मस्तिष्क के अ
ों के सम्बन्ध मे जिनके विषय मे हम चिन्तन कर रहे हैं, स्पष्ट प्र
विचारधाराएँ, और हमे मुख्य प्रयोग मे आने वाले शब्दों की
हो।

अब हम दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण चिन्तन के साधनो की विवेचना क
य[2] तथा भाषा हैं। पूर्ण और सही सप्रत्यय बिना चिन्तन सम्भव न
भाषा की सहायता के चिन्तन नहीं हो सकता है।

ों सप्रत्यय का निर्माण[3]

जब पूर्ण अर्थ किसी शब्द के साथ एकाकार हो जाता है, या उसमें
जाता है तथा व्यक्ति को उसका ज्ञान हो जाता है, तो उसके प्रति एक
क सामान्यीकरण का निर्माण हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है
र किस प्रकार हम सामान्य प्रत्यय के निर्माण की क्षमता उत्पन्न हो ज
सीमा तक सामान्य प्रतिमाओं को बनाने में, मस्तिष्क व्यक्तिगत प्रति
न, विशिष्ट को निकाल कर, उनमे जो कुछ भी सामान्य निहित होता
र देता है। इस प्रकार विभिन्न कुत्तो को देखकर उनके विशिष्ट गुण
जाते हैं और फिर जो इन विशिष्ट गुणों मे सामान्य होता है उसे मिल
ान्य कुत्ते की प्रतिमा का निर्माण कर लिया जाता है।

सप्रत्यय को हम नमूनों, योजनाओं या मानसिक श्रेणियों के रूप मे
जो हमारे विचार की वस्तु को—चाहे वह प्रत्यक्षीकरण के रूप में हो
प मे—अर्थ प्रदान करने के योग्य बनाते हैं, उनको हम सक्रिय सामान्य
क सकते हैं जो हमारी समझ का निर्देशन तथा नियन्त्रण करते हैं। एक
भिन्न व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार से दिखाई देना, उन मनुष्यों के मस्तिष्क

1. Tools of Thought. 2. Concept. 3. Formation of
ncept.

वस्तु के प्रति बने हुए संप्रत्यय पर ही अवलम्बित है। मस्तिष्क वस्तुओं का विश्लेषण करता है और उनमें जो सामान्य है, उसको मिलाता है और वह जो विशेष है, उसे छोड़ देता है। गणित के अन्दर यह विश्लेषणात्मक संश्लेषण कार्य-पद्धति[1] बड़ी मात्रा में प्रयोग की जाती है। संप्रत्यय सारपूर्ण होती है जो विशिष्टताओं को एक समझने योग्य सम्पूर्णता में बांध देता है।

संप्रत्यय की रचना में सामान्यीकरण और पृथक्करण[2] का बहुत महत्व होता है। बालक के संप्रत्यय में अपरिपक्व सामान्यता का ही प्रदर्शन होना है जिसे विभिन्नता के ज्ञान द्वारा ठीक किया जा सकता है। लेखक का बालक जब २ से ५ माह का था तब वह घर से बाहर जाने के लिए 'बज्जी' शब्द का प्रयोग करता था। जब कभी भी वह बाजार जाता था—तब यही कहता था कि 'मैं बज्जी जा रहा हूँ', लेकिन वास्तव में वह सदैव बाजार नहीं जाता था। कई बार वह खिलौने आदि खरीदने के लिए बाजार भी ले जाया गया, परन्तु कभी-कभी वह लेखक के मित्रों आदि के घर पर भी ले जाया गया था। कुछ समय पश्चात् जैसे ही लेखक बालकों को अन्य स्थानों पर ले जाने लगता था, वह रोने लगता था और कहता था कि 'वहाँ नहीं, बज्जी'। इस प्रकार उसमें 'बज्जी' के संप्रत्यय का विकास हो गया। उसके मस्तिष्क में 'बाजार संप्रत्यय' की रचना हो गई। बालक धीरे-धीरे बाजार के विषय में समझने लगा, उसकी समझ में बज्जी और दूसरे स्थानों का अन्तर आने लगा। यह सब पृथक्करण क्रिया द्वारा ही धीरे-धीरे सम्भव होता है। बाजार की विभिन्नताएँ दूसरे स्थानों में उसे स्पष्ट रूप में समझ में आने लगी।

अपरिपक्वता के सामान्यीकरण के अतिरिक्त उच्च सामान्यीकरण भी होता है जिसमें उन वस्तुओं में जो पहले भिन्न दिखाई देती हैं, सामान्यता का पता लगाया जाता है। व्यक्ति यह जानने का प्रयत्न करता है कि मनुष्य, गाय, भैंस तथा कुत्ते में क्या समानता है? तत्पश्चात् उनका नामकरण स्तनपोषी[3] करता है, और उनमें और चिड़ियों व रेंगने वाले जानवरों आदि में विभिन्नता ज्ञात करता है। यही उच्च स्तर पर संप्रत्यय का निर्माण करता है। उच्च सामान्यीकरण में यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत वस्तुओं में समान विशेषताएँ देख ली जायें। उपर्युक्त उदाहरण में अपनी "सन्तान को दूध पिलाने" की विशेषता को अलग किया जाता है और इस प्रकार प्राप्त इस विशेषता के संप्रत्यय को स्वयं ही निर्मित कर दिया जाता है। इस प्रकार जब भी हम कहते हैं कि कुत्ते, गाय, मनुष्य स्तनपोषी सदस्य हैं तो हम इन प्राणियों की एक या बहुत कम विशेषताओं को देखते हैं, और अन्य सभी समानता तथा असमानता की विशेषताओं को जो दो पशुओं या उनसे भी अधिक पशुओं में पाई जाती हैं, छोड़ देते हैं।

---

1. Analytico-synthetic Procedure. 2. Differentiation. 3. Mammals

संप्रत्यय और चिन्तन का संयोग

चिन्तन की क्रिया, केवल अलग-अलग संप्रत्यय के द्वारा ही सहायता संरक्षण प्राप्त नहीं करती, वरन् बहुत तरह से सम्बन्धित सकल्पो द्वारा भी इस सचालन होता है। उदाहरणार्थ, आपने ज्यॉमिति में पढा है कि दो सन्निकट[1] के का योग जब दो समकोणो के बराबर होता है, तब सीधी रेखा का निर्माण होता आपने सीधी रेखा के सप्रत्यय को समकोणों के सप्रत्यय के साथ पाया है, और सम्बन्ध आपके लिए उस हल[2] का निर्माण करता है, जो अन्य बहुत-सी ज्यॉमि प्रमेयों मे आपके लिए लाभदायक सिद्ध होता है। गणित, सडक तथा खेल के नि संप्रत्ययों के सयोग ही हैं जो हमारे कार्यों तथा विचारों का पथ-प्रदर्शन क हैं। इन नियमों, कानूनो इत्यादि को 'सिद्धान्त' कहा जा सकता है। एक सिद्ध का विश्लेषण करने से पता चलेगा कि इसमे दो या अधिक संप्रत्ययों संयोग है।

प्रत्यय और सिद्धान्त हमारे चिन्तन का सचालन करते हैं। लेकिन आवश्यक नही कि वे सदैव उचित तरीके से ही उसका सचालन करते हैं। प्रत या व्यक्तिगत भावनाओं का गलत प्रबन्ध हमारे विचारों को झूठा तथा निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण बना सकता है। इसलिए एक अध्यापक के लिए दोषरहित निरीक्षणो त शुद्ध चिन्तन का बहुत अच्छी मात्रा में अभ्यास कराना अत्यन्त आवश्यक है।

संप्रत्यय-निर्माण पर प्रयोग[3]

सामान्यीकरण या सप्रत्यय का निर्माण किस प्रकार होता है ? इसको स रूप मे समझने के लिए यहाँ हम एक प्रयोग का वर्णन कर रहे हैं, जो हल[4] महो द्वारा किया गया।

हल महोदय के प्रयोग मे चीनी भाषा के कुछ चिह्नों का प्रयोग इस बात प्रमाण निकालने के लिए किया गया कि सामान्यीकरण बहुत-सी विशिष्ट स्थितियों जो सामान्य तत्त्व है, उसकी पहचान करके तथा इस सामान्य तत्त्व को नाम प्र करके किया जाता है। चीनी भाषा के जो चिह्न उपयोग किये गए, वह छोटे- चित्रो, जिन्हे रेडिकल्स[5] कहते हैं, के योग थे। एक ही रेडिकल को विभिन्न तत्वों साथ मिला दिया गया था और विषयी का कार्य यह था कि इस सामान्य रेडि को सब तत्त्वों में से निकाल कर उसे एक नाम दे दे। यह चिह्न एक वयस्क वि को विभिन्न प्रकार से दिये गये ताकि कुछ विशिष्ट सही का जो सामान्यीकरण क्रिया से सम्बन्धित हैं, अध्ययन किया जा सके। इस प्रयोग के फल द्वारा सबसे प्र यह पता चला कि जब सामान्य तत्त्व को सरल चिह्नों मे सम्मिलित करके विषयी दिया गया तो उसने अधिक सरलता से सामान्यीकरण कर लिया, उस दशा

1. Adjacent. 2. Solution. 3. Experiment on Conce Formation. 4. Hull. 5. Radicals.

तुलनात्मक जबकि सामान्य तत्व को कठिन चिन्हों के साथ मिलाकर प्रस्तुत किया गया। दूसरा निष्कर्ष जो इस प्रयोग से निकला, वह यह था कि बहुत-सी वास्तविक वस्तुओं से पर्याप्त मात्रा में जानकारी अधिक लाभदायक होती है, इसके तुलनात्मक कि केवल कुछ ही वस्तुओं का गहन रूप से अध्ययन किया जाय। तीसरे, यह देखा गया कि सामान्य तत्व को अलग से दिखाने मे कोई लाभ नही होता।

तात्पर्य यह कि यदि विषयी उस तत्व को जो सामान्य है, अलग से पहचानता भी है, तब भी इस बात का कोई निश्चय नही है कि वह गूढ़ चीनी चिह्नों में भी इसे पहचान ही लेगा। चौथा निष्कर्ष यह निकला कि सामान्यीकरण के उभर उठने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता है। कुछ विषयी के साथ यह देखा गया कि सामान्यीकरण प्रक्रिया धीरे-धीरे हुई जबकि कुछ दूसरे व्यक्तियों के साथ यह प्रक्रिया आरम्भ में सीखने के काफी देर तक पठार बने रहने के पश्चात् सहसा हुई। अन्तिम निष्कर्ष यह निकला कि एक व्यक्ति सामान्यीकरण का निर्माण बिना इसको शब्द प्रदान किये हुए कर सकता है।

उपर्युक्त प्रयोग के जो निष्कर्ष हैं उनका शिक्षा में बहुत महत्व है। एक शिक्षक को जो बालकों में समुचित संप्रत्यय का निर्माण कराना चाहता है, चाहिए कि अपने आरम्भ के पाठों में बालक को ऐसी सम्पूर्ण परिस्थितियाँ प्रदान करे जिसमें वह विशेषता जिसको सामान्य करके निकलना है, सरलतम रूप में प्रस्तुत की गई हो। दूसरे, एक स्पष्ट संप्रत्यय के लिए बालक को विस्तृत अनुभव प्रदान करने चाहिए। और तीसरे, आरम्भ में सीखना वास्तविकता लिये हुए होना चाहिए।

त्रुटिपूर्ण संप्रत्यय[1]

संप्रत्यय का प्रभावशाली प्रयोग व्यक्ति को जिस संसार में वह रहता है उसे समझने के योग्य बनाता है। चिन्तन तथा समस्या-समाधान में संप्रत्यय उसे वह साधन प्रदान करते हैं जिनके द्वारा वह अनेक वस्तुओं एवं अनुभवों को मौलिक रूप से प्रयोग में ला सकता है। वह अपने अनुभवों को उनका सक्षेपीकरण करके चिन्हों द्वारा नई पीढ़ी को संक्रमण कर सकता है। इस प्रकार वह संप्रत्यय मानव अभिवृद्धि में सहयोग देते हैं।

किन्तु यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि कभी-कभी संप्रत्यय त्रुटिपूर्ण ढङ्ग से बन जाते हैं। व्यक्ति पर्याप्त पृथक्करण स्थापित करने में असफल हो जाता है। इसके फलस्वरूप वह अत्यधिक रूप से सामान्यीकरण कर देता है। वह बालक जिसे एक कुत्ते ने काटा है, सब कुत्तों से डरने लगता है चाहे उनका कैसा ही रंग हो, सगन्ध हो अथवा शारीरिक विकास हो। वह एक नये कुत्ते के व्यवहार का पूर्व-निर्धारण केवल एक कुत्ते के व्यवहार के आधार पर करता है। वह विभिन्न कुत्तों में

1. Faulty Concepts.

विभेद नहीं कर पाता। इस प्रकार से बनाये हुए सामान्यीकरण त्रुटिपूर्ण होते बहुधा यह संवेगात्मक तनाव उत्पन्न कर देते हैं। हमारे अन्धविश्वास बहुत इसी प्रकार बनते हैं। कभी-कभी यह इस प्रकार की पूर्व-धारणाएँ बना देते हैं कि उन्हें अन्तिम सत्य मान लेते हैं और उस सम्बन्ध मे किसी प्रकार की खोज आगे करना चाहते हैं। इस प्रकार एक संप्रत्यय जो त्रुटिपूर्ण ढंग से बन जाता है समस्या-समाधान एवं और अधिक सीखने मे गम्भीर रूप से बाधक होता है।

बालको के तुतलाने का कारण भी कभी-कभी गलत ढङ्ग से संप्रत्यय लेने पर निर्भर होता है। विद्यालय मे जाने की आयु से छोटे बालक औसतन ए चार अक्षर, शब्द अथवा वाक्य दोहरा सकते हैं। साधारण रूप से इस पर प्रौढ़ व्य कोई ध्यान नहीं देते। किन्तु कभी ऐसे माता-पिता अथवा शिक्षक जो वाणी शुद्धता के सम्बन्ध मे उच्च स्तर रखते हैं, बालकों की वाणी की जरा सी कमी को दूर करने की चेष्टा करते हैं। फल यह होता है कि जब उनके द्वारा गये सुधारों को बालक नहीं अपनाता तो वह उसे तुतलाने वाला कहने लगते हैं वैसा ही उसके साथ व्यवहार करने लगते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि प्रकार का तुतलेपन का निदान आम तौर से साधारण वाणी और तुतलाने की मात्राओ को समझने की असफलता के कारण अथवा बालको के विभिन्न स्तरो वृद्धि एव विकास के सम्बन्ध मे जानकारी न होने के कारण होता है। ऐसा देखा है कि इस प्रकार से बालक को हकला बता देना उसके लिए बहुत हानिकारक है। *यह जैसा कि* वेण्डल जोनसन[1] महोदय का विचार है, *वास्तविक हकलेपन* प्रारम्भिक कारण हो जाता है। वेण्डल महोदय ने पाया कि जितने अध्ययन गए उन सब मे वह बालक जो तुतलाते थे, अनिवार्य रूप से सामान्य थे। माता अ पिता, *शिक्षक या अन्य प्रौढ़ो के प्रभाव के कारण ही* उनमे तुतलाना विकसित गया था।

तुतलाने के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक व्यक्ति बिना अच्छी तरह से समझे-बूझे कि शब्द की परिभाषा क्या है, उस शब्द का प्र निदान करने मे नहीं करना चाहिए। बहुत-से शब्दो का जैसे स्नायुक, जड़, अन्त इत्यादि का प्रयोग हम बिना सोचे-विचारे करने लगते हैं। यह ठीक नहीं है।

रूढ़ियुक्तियाँ[2]

गलत ढङ्ग से संप्रत्यय बनने के कुप्रभाव को समझने के लिए एक धारणा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यह धारणा रूढ़ियुक्ति की है। रूढ़ि

1. W. Johnson (ed) . *Stuttering in Children and Ad* Minneapolis : University of Minnesota Press, 1955, pp. 10-11
2. Stereotypes

एक इस प्रकार का संप्रत्यय है जो अनुकूल और प्रतिकूल भावना से भरा रहता है। जैसे, जब एक मुसलमान एक हिन्दू को काफिर कहता है या जब एक अमरीकन नीग्रो को 'निगर' कहता है तो वह अपनी प्रतिकूल भावनाओं का प्रदर्शन ही करता है।

लिपमैन महोदय के अनुसार हमारे मस्तिष्क में प्रत्यक्षीकरण की हुई प्रतिमाएँ दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में होती हैं। हम कभी-कभी ऐसे शब्दों इत्यादि का प्रयोग करते हैं जो विभिन्न परिस्थितियों या विभिन्न व्यक्तियों या वस्तुओं को एक ही प्रकार से वर्णन करते हैं। जैसे, कहा जाता है कि भोनीर या शिकारपुर के व्यक्ति मूर्ख होते हैं। तब चाहे इन स्थानों का कोई भी व्यक्ति हो, उसे 'मूर्ख' की संज्ञा दे दी जाती है। वास्तव में यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती। परीक्षा की कसौटी पर इस धारणा को हम समुचित सिद्ध नहीं कर सकते। व्यक्ति अपनी इस धारणा को प्रयोग इन स्थानों में रहने वाले निवासियों के साथ लागू करने में पहले यह नहीं सोचता कि वह कोई गलत बात कह रहा है। वहाँ के निवासी बहुत बड़े साहित्यकार या अन्य प्रतिभा वाले हो सकते हैं। किन्तु फिर भी जब भी उनके लिए कोई शब्द उपयोग किये जाते हैं, वह उनकी मूर्खता को सिद्ध करने के लिए होते हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि रूढ़ियुक्ति बिना विभिन्नता की ओर ध्यान दिये हुए, बिना तर्कयुक्ति के, किन्हीं परिस्थितियों में बनी हुई किन्हीं धारणाओं के आधार पर विकसित हो जाती है।

किम्बाल यंग के अनुसार रूढ़ियुक्ति की सबसे अच्छी परिभाषा है कि "यह एक मिथ्या वर्गीकरण करने वाला संप्रत्यय है जिसके साथ नियमानुसार हमारी तीव्र संवेगात्मक भावनाएँ, हमारी रुचि तथा अरुचि, हमारी स्वीकृति तथा अस्वीकृति जुड़ी रहती है।"[1]

रूढ़ियुक्तियाँ जो वर्गीकरण या सामान्यीकरण करती हैं वह बिना किसी तर्क की सत्यता की जाँच किये हुए स्थापित हो जाता है। एक बार रूढ़ियुक्तियाँ बन जायें तो इनमें परिवर्तन लाना बहुत कठिन है। यह बहुधा बाल्यपन में ही बन जाती हैं। चाहे एक हिन्दू या मुसलमान आपस में बहुत पक्के दोस्त हों फिर भी यदि हिन्दू या मुसलमान की रूढ़ियुक्ति एक-दूसरे के प्रति वैमनस्य की बन गई है तो वह उन स्थायी रहेगी। हिन्दू कह सकता है कि यह मुसलमान मेरा मित्र तो है किन्तु मुसल मान सब होते तो साम्प्रदायिकता-परस्त ही हैं, और मुसलमान कह सकता है कि

1. "...... it is best defined as a false classificatory concep to which as a rule strong emotional feeling tone of like or dislike approval or disapproval is attached."—K. Young : *A Hand Book o Social Psychology*, p. 275.

यह हिन्दू अच्छा तो है परन्तु हिन्दू धर्म मे विश्वास करने वाले आखिर तो का
ही हैं। उनकी इस रूढ़ियुक्ति मे परिवर्तन लाना अत्यन्त कठिन है।

एक शिक्षक को इस प्रकार के संप्रत्यय बनने की ओर सचेत रहना चा
जो समाज के लिए हानिकारक हैं। रूढ़ियुक्तियाँ सूचना के अभाव के कारण, ज्ञान
कमी तथा दूसरों की पूर्व-धारणाओं पर यथातथ्य विश्वास करने से बनती हैं। शि
को पूर्ण सूचना तथा सम्यक् ज्ञान देकर रूढ़ियुक्तियों के बनने को रोक देना चाहि
किन्तु सब रूढ़ियुक्तियाँ हानिकारक ही हो ऐसा नहीं है। कभी-कभी रूढ़ियुक्तियो
समाज को लाभ भी होता है। जैसे, यह कुछ वाक्य या विश्वासों को हमारे सम्
रखकर हमे एक निश्चित प्रकार से व्यवहार करने को बाध्य करती हैं। कहा जात
कि—"अपना कर्त्तव्य पूरा किये जाओ, फल की चिन्ता मत करो", "सन्तोष मे व
करो," "देश की मिट्टी के लिए मर मिटो"—इत्यादि। यह सब वचन या विश्
हमारे व्यवहार को निश्चित दिशा मे मोड देते हैं।

भाषा एवं चिन्तन[1]

भाषा के बिना संप्रत्यय[2] की रचना होना कठिन है। यह चिन्तन का प्र
साधन है। भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विचारों को एक व्यक्ति से दूसरे व्य
तक पहुँचाना होता है। विस्तृत रूप से एक देश का चित्र, तस्वीर आदि भाषा के
ज्वलन्त उदाहरण हैं। विचार-विमर्श के लिए तथा विशेष वस्तु के लिए खास
अथवा चिन्ह का प्रयोग किया जाता है।

शब्द ही भाषा के आधार होते हैं। उन्हीं के द्वारा विचारों को प्रकट कि
जाता है। असभ्य व्यक्ति को किसी वस्तु व उसके नाम को जानने मे बडी कठि
होगी। बालक अजनबी को प्राय नाम बताने मे सकोच करते हैं। हमे यह प्रतीत
होता है कि यदि व्यक्ति हमारा नाम जान लेते हैं तो किसी न किसी रूप मे वे
पर शासित हो जाते हैं।

प्रत्येक शिक्षक इस बात को अच्छी तरह जानता है कि जब तक वह प्र
विद्यार्थी के नाम को नहीं जानेगा, तब तक कभी भी कक्षा के विषय मे वास्त
ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेगा, और इसी कारण प्रत्येक शिक्षक का यह पहला क
होना चाहिए कि वह पाठ पढाने से पहले ही कक्षा के समस्त विद्यार्थियों के विषय
जान ले।

संप्रत्य-चिन्तन के लिए भाषा का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। जब
किसी संप्रत्यय का निर्माण अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के विश्लेषण के आधार पर क

1. Language and Thinking. 2. Concept.

हैं तब शब्दों की सहायता से ही उसको व्यक्त कर सकते हैं। हम उसके महत्त्व को बढ़ाने के लिए भाषा का ही प्रयोग करते हैं। बिना भाषा के हम स्वतन्त्रता, न्याय, अच्छाई आदि का अर्थ स्पष्ट नहीं करते हैं। इस प्रकार से भाषा केवल हमारे चिंतन के परिणाम को बताती ही नहीं, वरन् उसे विस्तृत भी बनाती है। यही एक साधन है जिसके द्वारा चिन्तन मे विस्तार किया जा सकता है।

भाषा विचारो को प्रकट करने का प्रमुख साधन है, लेकिन कभी-कभी यही भाषा हमें कठिनाई मे डालने का कारण भी बनती है। कभी-कभी शब्द-जाल के चक्कर मे पडकर हम वास्तविक बात को भुला बैठते हैं अथवा अपने विचारो को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते। यदि हमारा शब्द-भण्डार कम है तो शब्दो की कमी के कारण हम अपने विचारो को प्रकट नही कर सकते। हम बहुत-से रंगों के विषय मे जानते है, परन्तु उनके व्यक्त करने के शब्दो के न होने के कारण नाम नही जानते। इसलिए हम कह सकते हैं कि सप्रत्यय का भाषा में गहरा सम्बन्ध होता है। जिस वस्तु के लिए खास चिन्ह अथवा शब्द हम जानते हैं, उसे हम आसानी से समझ और व्यक्त कर सकते हैं।

भाषा के दो पक्ष बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक महत्त्व के हैं। एक तो यह संगठित होती है और इसका विधान[1] होता है, दूसरे, यह अपने से बाहर की वस्तुओं की ओर इंगित करती है। इसका अर्थ होता है। अतएव जब हम भाषा के मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं तो हम विधान तथा अर्थ के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को सबसे महत्त्वपूर्ण पाते हैं।

भाषा के विधान मे मनोवैज्ञानिक इस कारण रुचि लेते हैं क्योंकि वे इसमे मानव के चिन्तन की संरचना के अंश पाते हैं। यद्यपि भाषा चिन्तन के सम्बन्ध में अपर्याप्त ज्ञान देती है, फिर भी चिन्तन का सबसे अच्छा अध्ययन इसी के द्वारा हो पाता है।

भाषा का संगठन[2]—सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य भाषा के संगठन में यह है कि कुछ शब्द दूसरे शब्दो से अधिक संख्या मे प्रयोग किए जाते हैं। ई० एल० थॉर्नडाइक तथा आई० लॉर्ज[3] महोदय ने कई वर्ष उन शब्दो की गणना करने में लगाये जो प्रसिद्ध पत्रिकाओं में, बालको की पुस्तको इत्यादि में प्रयोग किये जाते थे। उनके अध्ययन के द्वारा पता लगा कि अमरीकन अंग्रेजी के शब्दों मे 'I' का प्रचलन सबसे अधिक था। यह शब्द Titular शब्द के तुलनात्मक २०,००० बार प्रयोग किया गया। नीचे तालिका मे शब्दो के प्रयोग की गणना दी हुई है। यह लगभग २०,०००,००० शब्दों के अध्ययन से चुनी गई है। प्रत्येक शब्द के पाये जाने की गणना प्रति १,०००,००० शब्दों के पाये जाने की संख्या के अनुसार है।

---

1. Structure. 2. Organization of Language. 3. E. L. Thorndike and I. Lorge.

यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि थोड़ा चिन्तन भाषा के बिना भी हो सकता है। चिन्तन और शब्दों का उदय मस्तिष्क में एक साथ ही नहीं होता है। कभी-कभी हम किसी विचार को व्यक्त करने के लिए सही शब्द नहीं ढूँढ पाते हैं, चाहे भले ही वह हमारे मस्तिष्क में विद्यमान क्यों न हो और हम उस विचार के लिए अशुद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं, जबकि उसका अर्थ भिन्न होता है।

अतएव हम भाषा के निम्नलिखित कार्यों का वर्णन कर सकते हैं :

१. दूसरों तक विचार पहुँचाने का यह प्रमुख साधन है।
२. यह संप्रत्यय की रचना में सहायता पहुँचाती है।
३. यह गूढ़ सम्पूर्ण विचार, वस्तु इत्यादि के विश्लेषण में भी सहायक होती है। उदाहरण के लिए, यदि एक बालक को मेज, तख्ता अथवा लकड़ी के टुकड़ों द्वारा वर्ग समझा दिया जाता है, तब वह उसकी शक्ल के विषय में विचार करता है और अन्य विचारों से उसका अन्तर स्पष्ट कर पाता है।
४ यह उन विचारों की ओर ध्यान को केन्द्रित करने में सहायक होती है जो इसके बिना कठिनाई से मस्तिष्क में रह सकते हैं।

अतएव यदि बालकों में शुद्ध ज्ञान उत्पन्न करना है, तब हमें उनके व्यक्तिगत अनुभव व शब्द-भण्डार को विस्तृत बनाना होगा जिससे सामान्य संप्रत्यय की विशेष रूप से रचना हो सके। इस सम्बन्ध में हम अध्याय ७ में भाषा-विकास के सम्बन्ध में संकेत दे चुके हैं।

तर्क तथा समस्या-समाधान[1]

'तर्क' चिन्तन का वह रूप है जो उस समय होता है जब व्यक्ति को किसी समस्या का सामना करना पड़ता है, जिसका हल उसे निकालना पड़ता है। 'समस्या' उस परिस्थिति को कहते हैं जिसके लिए मनुष्य के पास पहले से तैयार कोई प्रक्रिया नहीं होती है,[2] उसे तुरन्त ही उस परिस्थिति का सामना करने के लिए साधन जुटाने पड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति बहुत-सी बातों को करने की सोचता है। कभी वह भ्रम में पड़ जाने के कारण यही सोचता रहता है कि यह समस्या नहीं है और वह कुछ भी नहीं करता। कभी वह समस्या के विषय में कुछ भी नहीं समझ पाता है और उसे हल करने के लिए पर्याप्त समय तक एक के बाद एक हल के विषय में सोचता है और वह उस समय तक अपना मन उसी वस्तु में लगाये रहता है, जब

1. Reasoning & Problem-Solving. 2. A problem is a situation for which the individual has no readymade solution.

तक कि कुछ न कुछ उस समस्या का हल नहीं निकाल लेता। जहाँ स्पष्ट सम
सामने होती है और उसका हल ढूँढना पड़ता है वहाँ तर्क, प्रभावित चिन्तन[1]
रूप ग्रहण कर लेता है।

कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का ढङ्ग या समस्याओं का जो आवश
ताओं की पूर्ति में बाधा पहुँचाती हैं, हल ही समस्या का समाधान कहलाता
समस्या के समाधान की विधि में समस्या की कठिनाई के अनुसार परिवर्तन
जाता है। इसके अतिरिक्त समस्या के हल-कर्त्ता की योग्यतानुसार भी सम
समाधान के तरीके में परिवर्तन आ जाता है।

तर्क-शक्ति की योग्यता में व्यक्तिगत भिन्नताएँ[2]

सभी व्यक्तियों में तर्क-शक्ति विद्यमान रहती है। अन्तर केवल इतना
कि किसी में यह कम मात्रा में होती है और किसी में अधिक मात्रा में। तर्क-
की मात्रा में ही भिन्नता पाई जाती है। कुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा कठिन समस
को हल कर लेते हैं, कुछ व्यक्ति दिये हुए समय में ही कई समस्याओं को हल
लेते हैं। ऐसे व्यक्ति भी देखने में मिलते हैं जो किसी विशेष क्षेत्र के अन्तर्गत
वाली समस्याओं को अन्य क्षेत्र वाली समस्याओं की अपेक्षा बहुत अच्छी तरह
कर लिया करते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें ऐसी समस्याओं को सुलझा
लिए विशेष योग्यता हुआ करती है। कुछ व्यक्ति किसी समस्या को आसानी से
इस कारण कर लेते हैं कि उन्हें समस्या-समाधान करने के अच्छे ढङ्ग आते हैं।

मनुष्य के अतिरिक्त जानवरों को भी कभी-कभी समस्याओं का सामना
पड़ता है। वे भी उनको हल करते हैं, परन्तु उनका हल करने का ढङ्ग 'प्रयास
त्रुटि'[3] का ही होता है।

पशुओं द्वारा समस्या का समाधान[4]

(१) बिना सीखे हुए एवं आदत के अनुसार ही समस्या का समाधान
कुछ निम्न कोटि के पशु अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति यान्त्रिक विधि[5] द्वारा
हैं। उनकी पूर्ति का ढङ्ग वातावरण की दशा पर आधारित न होकर, उनमें स्व
जन्मजात प्रवृत्तियों पर ही निर्भर होता है। पशु किसी स्थिति में अपने बिना
निश्चित ढङ्ग में ही कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ मधुमक्खियों के
की आवश्यकता फूलों की सुगन्धि की प्राकृतिक प्रतिक्रिया द्वारा ही पूरी होन
उनकी खतरों से बचाव की आवश्यकता की पूर्ति एक निश्चित ढङ्ग से ही जात
शत्रु को डङ्क मारकर, जिसमें कभी-कभी उनकी ... जाया करती

1. Reflective T... ... in
soning Ability. ... 4. Pro
Solving at ... itual Pro
S...

अपनी रक्षा करती है। ये मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रियाएँ कठिनाइयों का सामना करने मे तभी तक सफल होती हैं जब तक कि कठिनाइयाँ साधारण हुआ करती हैं, लेकिन जब वे जटिल हो जाती है, तब ये प्रतिक्रियाएँ विफल हो जाती हैं। कुछ जानवरो मे आदतजन्य व्यवहार पाया जाता है। इसी प्रकार के व्यवहार पर इन जानवरो की आदतें किसी हद तक निश्चित-सी होती हैं, इसलिए उनकी समस्या के हल के लिए उपयोगिता भी सीमित होती है। कुछ भी हो, आदतजन्य बिना सीखे समस्या का हल निकालने का उपयोग जाति को जीवित रखने के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता है, *यद्यपि प्राणी-विशेष के लिए उस समय उसकी कुछ भी उपयोगिता नहीं होती* जबकि समस्या का रूप उस प्रकार से बिलकुल भिन्न होता है जिसके सम्बन्ध मे उन्हे समस्या का हल आता है।

(२) 'त्रुटि एवं प्रयास विधि' द्वारा समस्या का हल[1]—थॉर्नडाइक ने जानवरो की समस्या के सुलझाव की प्रकृति का अध्ययन करने के लिए भूखी बिल्ली को पिंजड़े मे बन्द करके अपना प्रयोग किया। उसने खाद्य-सामग्री से भरी हुई एक तश्तरी पिंजड़े के बाहर पास मे ही रख दी। बिल्ली पिंजड़े के दरवाजे मे होकर ही बाहर आ सकती थी, जो पिंजड़े के अन्दर एक रस्सी के खींचने से खुलता था। इस उदाहरण मे प्रमुख उद्देश्य भूख-शान्ति था। बाहर रखी हुई खाद्य-सामग्री को प्राप्त करना ही लक्ष्य था और इसका उपाय (समस्या का हल) रस्सी खींचकर दरवाजा खोलना था।

बिल्ली ने सभी प्रकार से उस खाद्य-सामग्री को प्राप्त करने की कोशिश की। उसने पिंजड़े की छड़ों से बाहर निकलना चाहा, पंजों से छड़ों को नष्ट करना चाहा, और भी अनेक उपाय उसने उस भोजन को प्राप्त करने के लिए किए। अन्त में वह रस्सी को खींचकर दरवाजे को खोलने मे सफल हुई और भोजन तक पहुँचकर अपनी भूख को शान्त किया।

यह जानने के लिए कि बिल्ली ने बाहर निकलने का तरीका सीख लिया अथवा नहीं, उसे दुबारा पिंजड़े मे बन्द कर दिया गया। अब की बार वह पहले से शीघ्र बाहर निकल आई। कई बार उसे पिंजड़े मे बन्द किया गया और हर बार वह कुछ शीघ्रता ही दिखाती गई। अन्त मे, बिल्ली ने अन्दर जाते ही रस्सी खींची और बाहर आ गई।

यह प्रयोग इस बात की पुष्टि करता है कि बिल्ली व अन्य जानवर 'त्रुटि एवं प्रयास विधि' से ही समस्या का हल खोजते हैं।

मनुष्य भी जानवरों की भाँति ही कई स्थानों पर इस प्रकार के समस्या-[illegible] के तरीके को प्रयोग मे लाता है। जब कोई व्यक्ति यांत्रिक समस्या को [illegible] का प्रारम्भ करता है तब वह कभी इस ढङ्ग से, कभी उस ढङ्ग से समस्या

[1] [illegible] l and Error Problem-Solving Behaviour.

पर प्रहार करता है और अन्त मे बहुत समय बाद वह उस समस्या को सु
पाता है।

(२) अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ द्वारा समस्या का हल[1]—दूसरा तरीका
प्राणी समस्या-हल के समय प्रयोग मे लाते हैं, 'अन्तर्दृष्टि' द्वारा होता है। इ
सिद्ध करने के लिए चिम्पाजी के साथ कोहलर महोदय ने प्रयोग किया। एक प्र
मे पिजडे की छत से एक केला इस प्रकार लटका दिया गया कि वह जानवर की
से बाहर था। चिम्पांजी ने प्रयोग के समय एक के ऊपर एक करके चार बक्सों
को रख दिया और केले तक पहुँच गया। दूसरे प्रयोग मे केले को पिजडे से
इस प्रकार रख दिया गया कि चिम्पाजी का पंजा वहाँ तक नही पहुँच सकता
दो छडें भी पिंजडे के अन्दर रख दी जो अलग-अलग केले तक नही पहुँच सकती
चिम्पाजी पहले बक्स पर जो पिंजडे मे रख दिया गया था, बैठा रहा। फिर वह
और दोनो छडों को उठा लिया, बक्स पर फिर बैठ गया और उनसे असावधानी
खेलता रहा। ऐसा करने मे एक समय उसने दोनो छडों को एक-एक हाथ मे
और इस प्रकार मिलाया कि वह एक सरल रेखा मे हो गई। उसने पतली छ
थोडा-सा मोटी छड के छिद्र मे धक्का दिया। इसके पश्चात् वह कूदा और पिंज
छडों के पास पहुँचकर दोनों मिली छडों के द्वारा केला खीचने लगा। कोहल
कहना है कि यह उसकी आन्तरिक सूझ ही थी जिसके कारण वह उस केले को
कर सका।

यह प्रयोग इस बात को स्पष्ट कर देते है कि पशु या तो 'प्रयास और
द्वारा अथवा 'आतरिक सूझ' द्वारा समस्या को सुलझाते हैं। जो ढग समस्या-ह
वह अपनाते हैं वह उनकी बुद्धि के स्तर पर ही निर्भर रहता है, तथा सूझ का उ
वह तब करते हैं जब साध्य तथा साधन मे सम्बन्ध व बौद्धयात्मक रूप मे प्र
करण कर लेते हैं। परन्तु जब उन्हे इस सम्बन्ध का पता नहीं होता, त
अन्धाधुन्ध ही कार्य करते हैं।

तर्क और मानवीय स्तर पर समस्या का हल[2]

'तर्क' भी 'प्रयास और त्रुटि' की भाँति होता है। लेकिन इसमे गनि
अन्वेषण के स्थान पर मस्तिष्क की सहायता से अन्वेषण किया जाता है, अतएव
द्वारा मेहनत तथा समय की बचत होती है। इसलिए तर्क, युक्तिसगत तथा नि
चिन्तन का रूप है जिसकी सामग्री भूतकालीन पुनर्स्मरण किये हुए अनुभव है।
और 'सीखने' मे परस्पर [illegible] सुलम
साधन हैं।

[illegible] ही होत

lving

अचानक ही इसका प्रादुर्भाव नहीं होता। बालक समस्याओं को स्कूल जाने की आयु से पहले की अवस्था में सुलझा सकने की क्षमता युक्त हो जाते हैं। परन्तु उनके समस्या-समाधान तथा वयस्क के समस्या-समाधान में यह अन्तर है कि वयस्क वहीं उनसे अधिक शीघ्रता से उसी समस्या को सुलझा सकते हैं और नियमित रूप से निर्धारित अनुमान द्वारा सरलता से समस्या को सुलझा सकते हैं। इसलिए बालक और वयस्क के समस्या-समाधान में विशेष रूप से केवल मात्रा का अन्तर पाया जाता है, न कि ढंग का।

समस्या-हल के विभिन्न स्तर[1]

डेवी[2] ने पूर्ण चिन्तन का तर्कपूर्ण विश्लेषण किया। उसके अनुसार एक तर्कपूर्ण चिन्तन के निम्नलिखित स्तर होते हैं :

१. कठिनाई अनुभव करना[3]—समस्या से परिचित होना।
२. कठिनाई की व्यवस्था करना तथा उसका निर्धारण करना[4]—समस्या को समझना।
३. सूचना को ढूँढना व व्यवस्थित करना, उसका मूल्य निर्धारित करना, और प्रदत्त सामग्री का वर्गीकरण करना[5]—सम्बन्धों की खोज करना—अनुमान को व्यवस्थित करना।
४. प्राक्कल्पना का मूल्य निर्धारित करना[6]—अनुमान को स्वीकार करना या न करना।
५. हल को प्रयोग में लाना[7]—निर्णय को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना।

यद्यपि ये स्तर जिनके विषय में ऊपर बताया गया है, एक पूर्ण चिन्तन में प्रयोग में आते हैं, फिर भी यह निश्चित रूप से समस्या-समाधान के ही स्तर हैं। इन विभिन्न स्तरों की विवेचना अब हम करेंगे, यथा—

(१) **समस्या से परिचित होना**—तर्क के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि कोई न कोई समस्या हो—व्यक्ति उसे समझता हो। जब तक वह कठिनाई के विषय में ही न समझेगा, तब तक समस्या का प्रश्न उसके सामने ही न आयेगा। जब मनुष्य कठिनाई महसूस करता है, तभी समस्या का जन्म होता है।

समस्या कई प्रकार की हो सकती है। यह व्यावहारिक भी हो सकती है; जैसे—एक नये शहर में रास्ते की खोज करना, एक नाव के निर्माण की समस्या, और कमरे में कहीं 'पर्स' को रखकर भूल जाने पर खोजने की समस्या, आदि। दूसरे प्रकार

1. Steps in Problem-Solving 2. Dewey. 3. A Felt Difficulty. ...ate & Define Difficulty. 5. Locate, Evaluate and Organize ...lassifying Data. 6. Evaluation of Hypothesis. 7. Apply ...ution.

की समस्याएँ जो तर्क-उत्पादक होती हैं, वे मनुष्य में अपने कार्यों को उचित
सम्बन्धी होती हैं। यहाँ समस्या-समाधान की क्रिया सयुक्तिकीकरण[1] ही हो
मुझे एक कार्य करना है, परन्तु एक अच्छा सिनेमा आया हुआ है, जिसे देखने मैं
चाहता हूँ। यह एक सरल कार्य है कि मैं सिनेमा जिन कारणों वश जाना चा
उनको अधिक महत्व दे दूँ और अपने इस व्यवहार का कारणारोपण कर दूँ
प्रकार अपने मन को सन्तुष्ट कर दूँ।

समस्याओं की संख्या जिनसे हम परिचित हैं, और गम्भीरता जिस
हम उनकी ओर ध्यान देते हैं, हमारी उस क्षेत्र में सूचना तथा अनुभव की
के ऊपर ही निर्भर होती है। समस्या की जटिलता जिसे एक प्रशिक्षित होने
छात्र कक्षा के अन्दर पढ़ाने के अभ्यास में अनुभव करता है, उन व्यक्तियों द्वा
समझी जा सकती, जो ट्रेनिंग कॉलेज में कभी नहीं रहे। ज्यों-ज्यों एक प्रशिक्षि
वाला छात्र पढ़ाने के अभ्यास में रुचि बढ़ाता है, समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। ज
पढ़ाने का अभ्यास शुरू करता है तो अधिकांशत. उसका यही उद्देश्य होता है
अपनी पाठ-योजना के अनुसार पढ़ाये और उचित अनुशासन रखे, लेकिन जैसे
कक्षा में आता है तो छात्रों की प्रत्युत्तर की समस्या, रुचि को उत्पन्न करने की
तथा पिछड़े बालकों की समस्या उसके सामने खड़ी हो जाती हैं। इस प्रकार
अनुभवों के बढ़ने से समस्याओं की संज्ञाशीलता को उत्तेजित किया जा सक
विद्यालयों के अन्दर उद्देश्यपूर्ण क्रिया-कलापों का व्यापक रूप उत्पन्न करने तथ
की तीव्रता को प्रोत्साहन देने के द्वारा किया जा सकता है।

यह अध्यापक का कार्य है कि वह सीखने वालों को सीखने की कि
स्थिति में समस्या से परिचित कराये। विचार-शक्ति को बढ़ाने वाले प्रश्न पू
द्वारा इसे बड़े ही अच्छे ढङ्ग से किया जा सकता है। बालक से केवल ऐसे प्र
नहीं पूछने चाहिए जिससे उसने जो कुछ भी सीखा है, उसे रटकर सुना दे,
बालक को विचारने में और अपने अनुभवों के द्वारा इस विषय में कोई नया
के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। सीखने वाले की आवश्यकता समस्या से प
होने में सहायता प्रदान करती है। अध्यापक को सीखने वाले की चिन्तन-श
संचालन करना चाहिए और फिर उसे समस्या से परिचित कराना चाहिए।

जब कभी भी यह प्रश्न उठे कि चिन्तन को उत्तेजना किस प्रकार
करनी चाहिए, तब सीखने वाले की समझने की शक्ति तथा अनुभव के
अनुसार ही प्रश्न पूछा जाना चाहिए। युवा बच्चों के लिए यह प्रश्न अ
साधारण होना चाहिए और वास्तविक स्थिति से सम्बन्धित होना चाहिए।

(२) समस्या को समझना—समस्या से परिचित हो जाने पर, प्र
लिए यह आवश्यक है कि उसे भलीभाँति समझें भी। उसको अन्य समस्य

1. Rationalization.

अलग कर सके, उसकी व्याख्या कर सके, और उसे भलीभाँति समझ सके। इसके लिए—(१) भूतकालीन सम्बन्धित अनुभवों का पुनःस्मरण करने की योग्यता, एवं (२) बाधाओं पर विजय प्राप्त करने का स्वभाव बनाना आवश्यक होता है। यदि कोई व्यक्ति समस्या को समझ लेता है, तब यह स्वाभाविक ही है कि वह अपनी पूर्ण योग्यता से उस समस्या को हल करने में जुट जाये। जैसे-जैसे व्यक्ति उस समस्या को समझता चला जाता है, वैसे ही वैसे वह अधिक लाभदायक उपायों का प्रयोग उस समस्या के हल के लिए करता है।

किसी समस्या के विषय में पूर्ण रूप से समझने की योग्यता, अच्छे चिन्तन की जन्मदात्री होती है। समस्या के महत्वपूर्ण अवयवों के विषयों में जानकारी रखना, सफल चिन्तन की कुञ्जी है। समस्या को भलीभाँति समझने से समस्या के सुलझाने के उपायों को शक्ति मिलती है।

समस्या-हल की प्रकृति सदैव चुनी हुई होती है। दूसरे, जितनी अच्छी तरह व पूर्णता से समस्या की व्याख्या कर दी जाती है, उतना ही अच्छा दृष्टिकोण उस कर्त्ता (समस्या को सुलझाने वाले) का हो जाता है, जिसे समस्या को उचित ढङ्ग से सुलझाना पड़ता है। उसी के आधार पर वह विचारों की स्थापना करता है। अतएव एक शिक्षक यदि एक बालक के पढ़ना सीखने के दोषों को दूर करना चाहता है तो उसे बालक की विशिष्ट कठिनाइयों को समझना और उन्हें दूर करने के साधनों से अवगत होना होगा।

दूसरी बात जो शिक्षकों को याद रखनी चाहिए, यह है कि यदि वे 'समस्या ढङ्ग' का प्रयोग करना चाहते हैं, तो उन्हें बालकों को समस्या के सन्निकट रहने के लिए बाध्य करना चाहिए। यदि वे उससे दूर रहते हैं, तब समस्याएँ स्वतः ही जटिल बन जाती हैं। वाद-विवाद आदि के समय बोलने वाले व्यक्तियों द्वारा यह गलतियाँ बहुत होती हैं। वे बहुत-सी बातें ऐसी कह जाते हैं जो यथार्थ में विषय से सम्बन्धित नहीं होतीं। एक अच्छा अध्यक्ष उस समय व्याख्यान देने वालों को इन व्यर्थ की बातों को कहने से रोक देता है जो समस्या को सुलझाने के स्थान पर अधिक जटिल बना देते हैं।

(३) (अ) सूचना को ढूँढना, व्यवस्थित करना तथा उसका मूल्य निर्धारित करना—प्राक्कल्पना को नियमित करने या समस्या का अस्थायी हल निकालने के लिए आधार प्रदान करने को, कभी-कभी यह आवश्यक होता है कि मनुष्य के पास पर्याप्त मात्रा में सूचना हो। *कठिनाइयों को हल करने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकताएँ* होती हैं। इसलिए यदि व्यक्ति के पास पर्याप्त मात्रा में प्रदत्त जानकारी नहीं है, तब उसे चाहिए कि वह उस समय तक अपनी खोज जारी रखे जब तक कि आवश्यक तथ्यों की खोज न कर ले। इन तथ्यों का मूल्य-निर्धारण व श्रेणीबद्ध होना भी आवश्यक होता है। निर्णय का ठीक या गलत होना, उन तथ्यों के प्रयोग या तरीकों पर ही आधारित होता है। चिन्तन में प्रायः प्रदत्तों की कमी के कारण ही त्रुटि होती है।

प्रदत्तों के पर्याप्त मात्रा में न होने के कारण चिन्तन आडम्बर हो जाता है
निर्णय विभिन्न त्रुटियों से युक्त होते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष क्षेत्र में प
जानकारी रखता है, तब हम उसके निर्णय को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।
कारण केवल यही है कि हमें यह विश्वास है कि वह समस्या से सम्बन्धित प्रद
पूर्ण परिचित है और उसके निर्णय ठीक सूचना पर आधारित हैं।

शिक्षकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब वे किसी कठिन स
को विद्यार्थियों के सामने रखें, तो यह भी देख लें कि उस समस्या के हल के
पूर्ण प्रदत्त मिल भी सकते हैं अथवा नहीं, क्योंकि उस समस्या के हल के लिए
श्यक प्रदत्तों का मिलना परम आवश्यक है।

प्रदत्तों की पूर्ति कई प्रकार से हो सकती है। किताबों, तस्वीरों, रे
व्याख्यान आदि के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षकों को स्वयं इ
का ज्ञान होना चाहिए कि कहाँ से प्रदत्तों का संकलन किया जा सकता है।

पुस्तकों आदि के प्रयोग द्वारा प्रदत्तों की प्राप्ति हो सकती है। लेकि
उदाहरणों से चिन्तन सीमित होता है जहाँ कि ज्ञान दूसरों की सहायता से
होता है। ऐसा चिन्तन प्रायः दूसरों के विचारों पर ही आधारित होता है
लेखकों, कलाकारों, चित्रकारों, आलोचकों, शिक्षकों आदि द्वारा सीमित कर
जाता है। प्रदत्त अपने निजी अनुभव या अन्वेषण द्वारा भी प्राप्त किये जा सक
परन्तु ऐसी स्थिति में प्रदत्तों का ठीक या गलत होना व्यक्तिगत योग्यता पर
होता है और उस साधन पर, जिसकी सहायता से ये प्रदत्त इकट्ठे किए गए हैं

साधन निर्धारित करना व उनसे ज्ञान (सूचना) प्राप्त करना ही पर्याप्
होना, इन साधनों की सत्यता और असत्यता की जाँच कर लेना भी परम आ
है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह उन साधनों की जिनके आधा
प्रदत्तों का संकलन किया गया है, सत्यता और असत्यता पर पूर्ण रूप से
कर ले।

जब प्रदत्त, जिनकी समस्या के हल के लिए अत्यधिक आवश्यकता हो
पुस्तकों आदि में भी नहीं मिलते, तब विद्यार्थियों को उन्हें विभिन्न स्थानों से ए
करने में पर्याप्त अनुभव की प्राप्ति होती है। इस प्रणाली द्वारा वह केवल यह
सीखता कि किसे विश्वसनीय या सत्य ज्ञान कहा जा सकता है, परन्तु वह
सीखता है कि किस प्रकार उस ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। इसका मतल
होता है कि वह यह सीख जाता है कि किस प्रकार ज्ञान (सूचना) प्राप्त किया
है, किस प्रकार अन्य वस्तुओं से उसे अलग किया जाता है, और किस प्रकार
किया जाता है।

सूचनाओं को व्यवस्थित व एकत्रित करने में जिस योग्यता की आव
होती है, वह भी सीखी जा सकती है। जैसे, यह तो ठीक है कि कठिनाई और अ
में पूर्ण समस्याओं का हल मात्र, प्राप्त-कर्ता की योग्यता पर ही निर्भर हो

लेकिन फिर भी हम विद्यार्थियों के मस्तिष्क को निश्चित रूप से कार्य करने वाला बना सकते हैं, और सब के बिना पथ प्रदर्शन के ही कार्य कर सकते हैं।

(ब) सम्बन्धों की खोज तथा प्राक्कल्पना का निर्माण—समस्या का ज्ञान और प्रदत्तों का विश्लेषण आगामी अनुमान को जन्म देता है। ये प्रकल्प, प्रदत्तों के अन्दर पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। प्रत्ययोत्पादक चिन्तन प्रणाली में समस्या की परिभाषा पूर्ण नहीं होती और चिन्तन समाप्त नहीं होता, जब तक कि समस्या-हल सम्बन्धी कोई प्रकल्प नहीं बना लिया जाता। ये दोनों ही कार्य—प्रदत्त-संकलन तथा प्रकल्प बनाना - साथ-साथ चलते हैं।

प्रकल्पों की रचना करना आसान नहीं है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण अभी तक अच्छी तरह मालूम नहीं हो पाया है। तथ्यों व सिद्धान्तों का चाहे किसी भी प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध हो, वह निष्कर्ष तक पहुँचाने में सहायक नहीं हो सकता। इसके लिए तो विशेष प्रकार के सम्बन्ध ही चाहिए, जो लाभदायक होते हैं और सदैव समस्या की पुकार द्वारा निश्चित किए जाते हैं, अथवा उस प्रश्न द्वारा जिसका हल निकालना है। लेकिन ये सम्बन्ध किस प्रकार ज्ञात किए जाते हैं, यह अभी तक रहस्य ही बना हुआ है। कुछ भी हो, पर्याप्त एवं सही सूचना ही ठीक निष्कर्ष के लिए आधार होती है। मस्तिष्क को पूर्ण रूप से समस्या के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना भी उत्तम व ठीक प्रकल्प के लिए आवश्यक होता है। चिन्तनकर्ता (विचारक) यदि कार्य करने में दृढ़ता और तथ्यों की खोज में उत्साह का प्रदर्शन करता है तो इससे यह पता चलता है कि वह ठीक प्रकल्प तक पहुँच जायेगा। वह पढ़ेगा और उस समस्या के सम्बन्ध में विचार करेगा, फिर उसके बाद जब तक उचित प्रकल्प को प्राप्त नहीं कर लेगा, तब तक प्रयत्न करता ही रहेगा। बहुत-सी मिथ्या क्रियाएँ, अनुरूप प्रदत्त के सावधानी पूर्ण विचार द्वारा दूर की जा सकती हैं।

कभी-कभी किसी कठिन समस्या पर कुछ समय तक काम कर लेने के पश्चात् उसे छोड़कर कुछ अन्य कार्य करना फलदायक होता है। दूसरे कार्य को करने के पश्चात् यह सम्भव हो जाता है कि फिर जब हम उस समस्या पर आयें तो उन उपयोगी बातों पर ध्यान दें, जिन्हें हमने पहले छोड़ दिया है। कुछ लेखक यह विश्वास करते हैं कि जटिल समस्या के बाद कुछ समय तक कार्य न करने की आवश्यकता होती है क्योंकि इस समय में नए सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। समय के अवकाश से केवल यही नहीं होता कि समस्या की ओर नया दृष्टिकोण बनता है, वरन् उस समय में अचेतन मन समस्या के ऊपर कार्य करता रहता है।

मानसिक विन्यास भी हमारे चिन्तन की प्रक्रिया को सम्बद्ध करता है। विचार की आदतों का विकास होना चाहिए, परन्तु वह हर दशा में एक ही प्रकार से [illegible] करने के रूप में तथा लचीलापन रहित नहीं होना चाहिए। उदाहरण के

लिए, यदि हम किसी व्यक्ति को—'मैकहैनरी'[1] शब्द का उच्चारण 'मैक' औ
के रूप में करने के लिए कहते हैं और बाद में 'मशीनरी'[2] का उच्चारण उस
चाहते हैं, तब यह निश्चित है कि वह पहले 'मैकहैनरी' ही उच्चारण करेग
'मशीनरी' अथवा उससे यह पूछा जाए कि वह कौनसा वाक्य सही है—'
सात ग्यारह होता है'[3] अथवा 'तीन और सात ग्यारह होते हैं'[4]—वह भ
जायेगा। वह कर्ता और *क्रिया का ही अनुमान लगायेगा और वाक्य में*
त्रुटि की ओर ध्यान नहीं देगा। इस प्रकार के चिन्तन की अवस्था को ह
की प्रक्रिया का 'वातावरण का प्रभाव'[5] कहकर पुकारते हैं। हमारे प्र
चिन्तन में बहुत-सी वास्तविक स्थितियों में वातावरण का प्रभाव परिल
है। उदाहरण के लिए, हम बिना तर्क किए हुए ही उस निष्कर्ष को मान ले
हमारे उन विचारों के साथ रखा जाता है, जिनसे हम पहले से ही सहमत
वरण के प्रभाव का सिद्धान्त हमें इस बात के लिए प्रेरित करता है *कि हमें*
विद्यार्थियों को इस बात की शिक्षा देनी चाहिए कि वे परिस्थिति का
अध्ययन करके ही निष्कर्ष निकालें। वे सामान्य धारणा को ही बिना स
अध्ययन के लिए स्वीकार न कर लें, जो गलत रास्ता बता सकती है। उ
चनात्मक प्रवृत्ति को ही अपनाना चाहिए। केवल सामान्य विचारों पर
स्वयं के तर्कयुक्त विचार पर ही चलकर ठीक व उचित निर्णय अथवा निष्क
जा सकता है।

(४) **प्राक्कल्पना का मूल्य-निर्धारण करना**[6]—गेट्स तथा अन्य मनं
मूल्य-निर्धारण करने वाले प्राक्कल्पों में तीन बातों का निर्देश करते है।
है कि *व्यक्ति को इस बात की गणना करनी चाहिए कि क्या निष्कर्ष* द्वार
का हल पूर्ण रूप से हो जाता है? दूसरे, एक व्यक्ति को पता लगाना
क्या यह दूसरे तथ्यों या सिद्धान्तों के जो अच्छी तरह स्थापित किए ज
अनुकूल ही है? तीसरी, एक व्यक्ति को उन नकारात्मक उदाहरणों की स
चाहिए जो निष्कर्ष पर संदेह डाल सकते हैं। ये कार्य-प्रणालियाँ केवल
कार्यकारी रूप से स्थापित करने व संगठित करने की योग्यता द्वारा ही
नहीं होतीं, अपितु अधूरे निर्णय और आलोचनापूर्ण मूल्य-निर्धारण को प्र
इसमें सहायक होती हैं।

हमारा चिन्तन हमें स्थापित नमूनों के अनुकरण की ओर उन्मुख क
अतएव हमें *उस प्रवृत्ति के विरुद्ध रक्षा की आवश्यकता होती है, जो चिन्त*
आदतों की ओर तीव्रता से आकर्षित होती है, जो व्यक्तिगत रुचि और

---

1. MacHenry. 2. M-a-c-h-i-n-e-r-y 3. Seven & eleven 4. Seven & three are eleven. 5. Atmosphere 6. Evaluating Hypothesis.

सम्बन्धित होती हैं। एक आलोचनापूर्ण चिन्तन करने वाला इस बात को समझता है कि एक हल के सभी सम्भव पहलुओं पर विचार करना चाहिए। यद्यपि एक व्यक्ति मानसिक रूप से एक प्रकल्प को स्वीकार करने की ओर तत्पर हो, पर फिर भी अन्य सम्भव निर्देशों या प्रकल्पों की योग्यता का ध्यानपूर्वक परीक्षण एवं तुलना करनी चाहिए। प्रत्येक अनुमान इत्यादि का क्रम से विचार किया जाना चाहिए। जो उपयुक्त दिखाई नहीं देते, उन्हें छोड़ देना चाहिए।

एक समस्या को ढूँढने में एक व्यक्ति के समक्ष प्रायः अपने मानसिक मेल द्वारा भी बाधा प्रस्तुत हो जाती है। एक शिक्षक को बालक की अपनी चिन्तन की बुराइयों, पक्षपातों तथा अन्य सीमाओं को पहचानने में सहायता प्रदान करनी चाहिए। जब एक प्रवृत्ति इतनी तीव्र होती है कि वह प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय-निर्धारण और निर्णय बिगाड़ देती है, तब व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने इन अवगुणों को हटाना चाहिए और प्रकल्प की ओर लक्ष्यपूर्वक अग्रसर होना चाहिए।

प्रयोग[1]—विचार के पूर्ण कार्य में अन्तिम बात, हल[2] का प्रयोग है। यदि समस्या एक प्रयोगात्मक प्रकार की है, जैसे—रेडियो की संरचना या पंखे की मरम्मत, तो साधारणतः हल को कार्य-रूप में परिणत कर दिया जाता है। लेकिन शुद्ध मानसिक समस्या का निष्कर्ष प्रायः इतने निश्चित रूप से प्रयोग में परिणत नहीं किया जा सकता। शुद्ध रूप से मानसिक समस्याओं से सम्बन्धित निष्कर्षों को विशिष्ट स्थितियों में प्रयुक्त करना चाहिए, जिससे हल ही में प्रत्ययों की सत्यता का अवलोकन हो जाय।

एक विशेष स्थिति में एक सामान्य सिद्धान्त को प्रयुक्त करने की योग्यता जिस प्रकार स्वयं सिद्धान्त की परीक्षा है, उसी प्रकार व्यक्ति के लिए सिद्धान्त की उपयोगिता की भी परीक्षा है। भावपूर्ण चिन्तन के उत्पादनीय अङ्गों की उपयोगिता तब होती है जबकि यह प्रवृत्तियों, आदतों पर—जो पूर्व ही निर्मित हो चुकी हैं, उचित प्रभाव डाले। अध्यापक को समस्या के हल के प्रयोग के विषय में आलोचनात्मक प्रवृत्ति को बढ़ाना चाहिए ताकि इससे पहले कि वे हल सही निष्कर्षों की तरह स्वीकार किये जायें, उनका आलोचनात्मक रूप से मूल्य-निर्धारण एवं परीक्षण हो जाये।

समस्या-हल की विधियाँ[3]

हम कह सकते हैं कि समस्या-हल उन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की क्रिया है, जो उद्देश्य की प्राप्ति में बाधक प्रतीत होती हैं।

समस्या-हल की विभिन्न विधियाँ (जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है) साधारण तौर पर निम्न वर्ग-स्तर[4] श्रेणियों में बाँटी जा सकती हैं :

(i) जन्मजात और आदतजन्य व्यवहार[5], (ii) अन्ध त्रुटि एवं प्रयास-

1. Application 2. Solution. 3. Methods of Problem-Solving
4. Graded 5 Unlearned and habitual behaviour.

व्यवहार[1], (iii) सूझ का व्यवहार[2], (iv) प्रतिस्थानिक व्यवहार[3], (v) व
जो 'वैज्ञानिक विधि' के नाम द्वारा जाना[4] जाता है।

जहाँ मानव जाति पाँचो विधियों का प्रयोग करती है, वहाँ पशु ती
का ही प्रयोग समस्याओं के हल में करते हैं। साधारणतः जिस समस्या को
है उसकी कठिनाई इस बात को बताती है कि समस्या-हल की कौनसी वि
करनी चाहिए। *अत्यन्त कठिन समस्याएँ केवल 'वैज्ञानिक विधि' द्वारा*
जा सकती हैं।

शिक्षा में समस्या-समाधान विधि[5]

हम देख चुके हैं कि 'वैज्ञानिक विधि' वह विधि है, जिसके द्वारा म
की जटिल समस्याओं को हल किया जाता है। अब हमारे समक्ष यह प्र
''क्या समस्या-हल की शिक्षा, शिक्षा के क्षेत्र में बालकों को दी जा सकती
इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चिन्तन तथा समस्याओं के हल की
सामर्थ्य पूर्णतः प्रशिक्षण द्वारा नहीं बढ़ाई जा सकती है। यद्यपि एक सीम
बौद्धिक विकास शिक्षा द्वारा सम्भव नहीं है, फिर भी यदि एक व्यक्ति क
दिया जाय तो उसमें अधिक समस्या-हल करने की योग्यता विकसित हो
तुलनात्मक जिसे यह प्रशिक्षण नहीं दिया गया, उस समय जबकि दोनों की
स्तर बराबर है।

निम्नलिखित खण्डों को यदि सही तौर पर लिया जाय, तो समस्य
बालकों को उचित शिक्षा प्रदान करेंगे :

(१) समस्या-हल की वैज्ञानिक विधि में अध्यापक को पूर्ण शि
चाहिए। केवल यही एक विधि है, जिसके द्वारा वे सीखने वालों को चिन
विकास की ओर उन्मुख करने योग्य हो सकेंगे—जो बिलकुल सही, स्पष्ट अ
पूर्ण है।

(२) बालकों को ऐसी समस्याएँ हल करने के लिए देनी चाहि
प्रयोगात्मक उपयोगिता है। इस प्रकार की समस्याएँ, जैसे—"९ बिन्दु
प्रकार प्रबन्धित करो कि उनकी ३ पंक्तियाँ बन जायें और प्रत्येक पंक्ति
हो। अब बिना पेंसिल को उठाए हुए ४ सीधी पंक्तियाँ खींचो, जो प्रत्येक
सम्बन्धित हों।" एक बालक को शिक्षित करने के अर्थ में, जिसमें व
वर्षों में बड़े ही कार्यकारी रूप में जीवन की यथार्थ समस्याओं का हल कर
कम मूल्यवान सिद्ध होती है। शिक्षा में यह अभ्यास अत्यन्त उत्तम है
बालों के वास्तविक जीवन की समस्याएँ रखकर उनकी समस्या सुलझाने

---

1. Blind trial and error behaviour 2. Insight be
3. Vicarious behaviour. 4 Behaviour designated as the
Method. 5. Problem-Solving Method in Education.

का विकास कर दे। यदि बालकों का उचित संरक्षण किया जाए तो वे आत्मनिरीक्षण करने की भावना तथा महत्त्व की स्थितियों के प्रति अनुराग न रखें, गड़बड़ देखने एवं निरीक्षण करने की योग्यता का विकास करें। जितनी ही ये समस्याएँ सीखने वाले की निजी आवश्यकताओं, उद्देश्यों और रुचियों से अधिक प्रगाढ़ रूप से सम्बन्धित होंगी, उतनी ही अधिक वह शिक्षा में उपयोगी होंगी।

(३) विधियों, पद्धतियों और समस्या हल के गुणों को बहुत से विभिन्न क्षेत्रों में सीखा जाना चाहिए। वैज्ञानिक विधि को जिस प्रकार गणित, विज्ञान तथा भाषाओं की समस्याएँ हल करने से सीखा जा सकता है—उसी प्रकार कला, संगीत या सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समस्याएँ हल करने के द्वारा भी उसे सीखा जा सकता है।

(४) बालक को जीवन की उन प्रयोगात्मक समस्याओं को हल करने को देना चाहिए जो वर्तमान से सम्बन्धित और महत्त्वपूर्ण हों। उसे भविष्य में महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हल करने के लिए नहीं देना चाहिए। शिक्षा के अन्दर प्रगतिशील विधियों का यह अवलम्बन है।

शिक्षा के अन्दर योजना-विधियाँ[1] और क्रियात्मक विधियाँ[2]—सभी सही दिशा की ओर ले जाने वाली हैं। सीखने वाले की आयु के अनुसार यह विधियाँ उचित शिक्षा देने पर बल देती हैं। इन्हीं विधियों का परिणाम है कि विद्यार्थी अपने करने के द्वारा ही किसी वस्तु को सीखता है। एक सफल अध्यापक का यह प्रमुख कार्य होता है कि वह बालक को क्रियात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने या समस्या-हलों की ओर उन्मुख करे। वह विद्यार्थियों को सिखाये कि किस प्रकार समस्याएँ हल की जाती हैं। उसे ऐसा करने में की गई त्रुटियों का निरीक्षण करना पड़ेगा तथा बार-बार प्रयास करना पड़ेगा। इस प्रकार सीखने में विद्यार्थीगण अपने समय को नष्ट कर सकते हैं। फिर भी वे यह सीख जाते हैं कि किस प्रकार समस्याएँ हल की जाती हैं।

(५) भारतवर्ष हाल ही में स्वतन्त्र हुआ है। उसका विधान प्रजातन्त्रीय है। चुनाव की विधि गुप्त मत है। लेकिन जनता अब भी सही रूप से चैतन्य नहीं है। केवल कुछ ही मनुष्य इस मत की शक्ति से परिचित हैं। वे इस बात को नहीं समझते कि मत के अन्दर अपार शक्ति है। यह गुप्त मत द्वारा ही सम्भव है कि वह 'अपने भाग्य का मालिक' स्वयं है। इस प्रकार कार्य-साधक प्रजातन्त्रीय नागरिकता के लिए मत देने की बुद्धिमता आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि उन सदस्यों एवं योजनाओं के लिए मत प्रदान किये जाएँ, जो देश तथा समाज के लिए कल्याणकारी हों।

हम कह सकते हैं, भारतीय नागरिकता में मत देने के अधिकार की व्यापकता इस बात को व्यक्त करती है कि मत प्रदान करने वाला राज्य की समस्याओं को कार्य-

1. Project Method. 2. Activity Method.

कारी रूप से हल करने के योग्य है। एक चुनाव, साधारण तौर से, किसी समस
दो या अधिक हलो मे से किसी एक उपयुक्त हल को निर्णीत करने की वि
प्रजातन्त्रीय राज्य के ढाँचे मे एक साधारण व्यक्ति के अन्दर समस्या-ह
योग्यता होना, किसी अन्य प्रकार की सरकार के ढाँचे की अपेक्षा,
महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार हमारे देश के लिए नागरिकता की शिक्षा समस्याओ
करने की ही शिक्षा है। इस देश के प्रजातन्त्रीय नागरिक को इस सम्बन्ध मे
करना चाहिए कि वह अपने बारे मे विचारने के योग्य हो सके। उसे पढाना
कि किस प्रकार विचार किया जाता है ? इसका तात्पर्य यह है कि इस देश के
लयो मे 'वैज्ञानिक प्रवृत्ति' और 'वैज्ञानिक विधि' को प्रोत्साहन देना चाहिए।
हमारा देश पिछड़ा हुआ देश है, अधिकाशत अन्धविश्वासपूर्ण रीति-रिवाजो से
है, अधिकाश व्यक्तियो के अन्दर वैज्ञानिक विधि द्वारा विचार करने की सामर
है; अधिकतर कुछ व्यक्तियो के मन के आधार पर ही वह अपना मत बनाते
शक्तिशाली दल के विरुद्ध कुछ भी मत देने से भय खाते हैं, इस सब का यह प
है कि कुछ व्यक्ति देश के लिए प्रजातन्त्र सरकार को संशयपूर्ण दृष्टि से देख
लेकिन उनका यह विचार गलत है। सबसे उचित यह है कि नागरिको को
शिक्षा दी जाये।

लडकों और लडकियो को शिक्षा देने की जिम्मेदारी, जैसे—किस
कार्यकारी रूप मे समस्याओं को हल किया जाय और किस प्रकार इस ज्ञान का
नागरिकता की समस्याओ मे किया जाय, निश्चित रूप से शैक्षिक व्यवस्था क
है। समस्याओं को हल करने की विधियों तथा आदतो को भी स्कूलो मे
करना चाहिए। समस्या-हल की विधि सभी विषयो तथा सभी स्तरो मे प्रयुक्त
चाहिए जिससे बालक अपने जीवन की बहुत उच्च समस्याओ को हल कर
योग्यता का प्रयोग करना सीख जायें।

कल्पना[1]

'कल्पना' हमको वैयक्तिक अनुभव[2] के परे ले जाती है। यह सत्य
कल्पना की सामग्री अन्य चिन्तन की भाँति अनुभव का पुनर्स्मरण चाहती है।
कल्पना को पृथक करने वाला लक्षण नया संसर्ग है जिसमे पुनर्स्मृति के तथ
स्थान प्राप्त होता है। कल्पना, पूर्व-अनुभव से प्राप्त किये गये तत्वों को एक
मे रखकर एक नये तत्व की रचना करती है।

स्मृति[3] और कल्पना के बीच मे कोई बहुत बडा भेद नही है। पूर्व-घ
और अनुभवों के पुनर्स्मरण मे ऐसे तत्त्व भी प्राप्त होते हैं जिनका मौलिक
मे कोई सम्बन्ध नही होता। इस प्रकार उसमे कुछ घटनाओं को जोड भी दिया

1. Imagination. 2. Personal Experience 3. Memo

है। यह पुनर्जीवित अनुभव ही 'स्मृति' कहलाते हैं जो वास्तव में कल्पना होती है क्योंकि पुनर्जीवित यथार्थ घटनाओं के उचित व बिल्कुल सही प्रतिरूप नहीं होते हैं। यह बात इस तथ्य से बच्चों के माध्यम से स्पष्टतया देखी जा सकती है। वस्तुतः स्मृति और स्मृति तथा कल्पना में कोई मूल अन्तर नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष में हम इस पर अच्छी प्रकार से विचार कर चुके हैं जहाँ हमने लिखा है कि वस्तुतः [illegible], मनःमूर्ति व पूर्व-अनुभव पर स्पष्ट रूप से आधारित नहीं होने के कारण होते हैं।

सभी कल्पनायें व्यक्तिगत अनुभवों पर निर्भर होती हैं। कल्पना के सभी तत्त्व वास्तविक अनुभवों के होने चाहिए। कल्पना की समृद्धता, यथार्थता और अनुभव द्वारा इकट्ठे किए गए प्रदत्तों पर निर्भर रहती है। मौलिकता या रचनात्मक चिन्तन प्रदत्तों के इकट्ठा न करने या सीखने के नियमों का विरोध करने पर आधारित नहीं है। यह प्रदत्त इन पर ही निर्भर होता है।

चिन्तन और कल्पना[1]

चिन्तन और कल्पना अति निकट से सम्बन्धित हैं। हम वास्तव में इनको अलग करने के लिए कोई नियम नहीं बना सकते हैं। 'क्रिया, जिसे हम चिन्तन कहते हैं, कल्पना के द्वारा स्पष्ट कर दी जाती है, और क्रिया जिसे हम कल्पना कहते हैं, विचारों से सहायता प्राप्त करके की जाती है। चिन्तन की अत्यधिक रचनात्मक अवस्था कल्पना को सम्मिलित करती है तथा कल्पना चिन्तन को सम्मिलित करती है। किसी समस्या के पूर्ण समाधान के लिए दोनों की आवश्यकता पड़ती है। एक की अनुपस्थिति में दूसरा पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है। चिन्तन और कल्पना में अन्तर, सम्भवतया स्वयं क्रिया की अपेक्षा क्रिया के उद्देश्य में निहित रहता है। जब हम सोचते हैं तो हमारा उद्देश्य किसी ऐसे उपसंहार पर पहुँचने का होता है जिसे हम सत्य समझें तथा उस पर काम करने में हम अपने को सुरक्षित समझें। जब हम कल्पना करते हैं तो हमारा उद्देश्य एक कलात्मक रचना पर पहुँचने का होता है। हम साहित्य अथवा सङ्गीत में उच्च स्तर की सामग्री को कल्पना द्वारा ही पाते हैं। परन्तु चिन्तन की सामग्री जो उच्च स्तर पर होती है, वह है अच्छा तर्कपूर्ण विवाद।[2]

कल्पना के प्रकार[3]

कल्पना को सर्वप्रथम हम दो महत्त्वपूर्ण प्रकार से विभाजित कर सकते हैं। वे हैं—(१) आदानात्मक अथवा ग्रहणात्मक कल्पना[4], और (२) सृजनात्मक कल्पना[5]। सृजनात्मक कल्पना को फिर दो उपभागों में विभाजित कर सकते हैं—कार्य-साधक कल्पना[6] और रसात्मक कल्पना[7]। रसात्मक कल्पना के और भी उपभेद किये जा

---

1 Thinking & Imagination. 2. Logical Argument. 3. Kinds [illegible] Imagination 4 Imitative or Receptive Imagination. 5. Creative [Ima]gination. 6 Pragmatic Imagination. 7. Aesthetic Imagination.

सकते हैं। वे हैं—तारंगिक कल्पना[1] और कलात्मक[2] कल्पना। कार्य-साधक कल्पना को भी दो उपभेदों में बाँटा जा सकता है। वे हैं—सैद्धान्तिक कल्पना[3] और व्यावहारिक कल्पना[4]। इस प्रकार कल्पना के प्रकारों को हम निम्नलिखित प्रकार प्रकट कर सकते हैं :
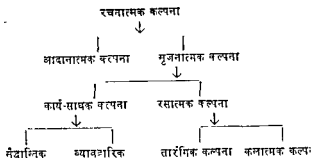
अब हम इन प्रकारों पर व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से विचार करेंगे .

१. आदानात्मक या अनुकरणात्मक कल्पना

जब हम किसी उपन्यास को पढ़ रहे हैं या किसी दृश्य के वर्णन या न के अद्भुत कार्यों को पढ़ते हैं, हमको नायक के चरित्र अथवा दृश्य की प्रतिमा प्र होती है। इस प्रकार की कल्पनाओं को जिनमें हम एक दी हुई प्रतिमा की रच करते हैं, हम आदानात्मक या अनुकरणात्मक कल्पना कहते हैं। यह एक निम्न की कल्पना है जो अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिए प्रयोग जाती है।

२ सृजनात्मक कल्पना अथवा चिन्तन[5]

डूमर के अनुसार रचनात्मक कल्पना ग्रहणात्मक कल्पना से उच्च स्त होती है। यह एक प्रकार की कल्पना है, जिसमें नये प्रकार के विचारों स्थान दिया जाता है जो मानव-जाति की उन्नति के लिए अति आवश्यक रचनात्मक चिन्तन तथ्यों, विचारों, निरीक्षणों को पुनः जोड़ने का इस प्रकार का है कि इसके द्वारा जो परिणाम निकलता है वह पूर्व-ज्ञान का प्रतिरूप मात्र न हो उससे अधिक कुछ बड़ा हुआ होता है। अन्वेषण और रचनात्मक चिन्तन पुराने अनु के आधार पर ही निर्मित होते हैं।

समस्याएँ, विचार करने के नये प्रकारों को जन्म देती हैं। वस्तुओं के

1. Fantastic Imagination 2. Artistic Imagination 3. Theoretical Imagination. 4. Practical Imagination. 5. Creative Imagination or Thinking.

(iii) उद्भासन[1]—इस स्तर पर स्पष्ट संप्रत्यय समस्या के हल का
आता है। व्यक्ति का सब प्रारम्भ का अध्ययन, विचारों को पल
इत्यादि एक हल द्वारा पारितोषित होता है। यह हल उपयुक्त
होता है।

(iv) सत्यापन[2]—यह वह स्तर है जिस पर समस्या का खोजा हुआ
दूसरी स्थितियों में प्रयोग किया जाता है। प्रयोग करने के द्वार
त्रुटियाँ अथवा कमियाँ हल में पता लगती हैं उन्हें दूर किया जा
और हल को अधिक उत्तम बनाया जाता है।

जैसा हमने अभी कहा है, सृजनात्मक चिन्तन के चार पद समस्या-हल के
पदों से (जिनका वर्णन पहले किया गया) भिन्न नहीं हैं। प्रस्तावना में समस
परिचित हुआ जाता है, इसे समझा जाता है। कुछ अध्ययन होता है और प्राक्क
बना ली जाती हैं। इनको फिर मस्तिष्क में विचरने दिया जाता है उस समय
जब तक उपयुक्त हल दिखाई नहीं पड़ता। उपयुक्त हल समझ में आता है उद्भ
के स्तर पर और फिर इसका प्रयोग होता है।

सृजनात्मक कल्पना के प्रकार[3]

(१) कार्य-साधक कल्पना[4]—यह कल्पना एक वैज्ञानिक और अन्वेष
कल्पना है। रेलवे, टेलीफोन, टेलीविजन आदि इसी प्रकार की कल्पना से उत्पन्
हैं। इस प्रकार की कल्पना के निम्न लक्षण हैं :

(अ) यह बाह्य नियन्त्रण द्वारा शासित होती है। तात्पर्य यह है कि
इंजीनियर को जो एक नदी पर पुल बनाने की कल्पना कर रहा है, उप
सामान के आधार पर अपनी कल्पना को सीमित करना पड़ेगा और इस बात प
ध्यान देना पड़ेगा कि पुल रेलवे या किसी अन्य परिवहन के लिए किस प्रका
उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार के बाह्य नियन्त्रण के साथ उसको
कल्पना को सीमित करना पड़ेगा और सीमाओं के अन्तर्गत अपनी कल्पना का
करना पड़ेगा।

(ब) इस प्रकार की कल्पना में कार्य के बाद आनन्द प्राप्त होता है। जब
बन जायेगा, उस समय इंजीनियर आनन्द का अनुभव करेगा। जब आप गणित
एक समस्या को हल कर लेते हैं, उस समय आपको अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति
है। जब आप उसको हल करने में लगे हैं, उस समय आपका आनन्द सीमाब
होता है।

यह कल्पना एक अन्वेषक, विचारक और एक वैज्ञानिक की होती है,
समस्या के समाधान के समय स्पष्ट परिलक्षित होती है जबकि उचित तथा विर

1. Illumination. 2. Verification. 3. Kinds of Creative Im
nation. 4. Pragmatic Imagination.

प्रदत्तों से अनुमान[1] निर्धारित किए जाते हैं और उनका परीक्षण तथा प्रयोग किया जाता है।

यह कल्पना सैद्धान्तिक या व्यावहारिक भी हो सकती है। सैद्धान्तिक कल्पना सैद्धान्तिक वैज्ञानिक की होती है और गणितज्ञ अथवा समस्या-समाधक की, जो सैद्धान्तिक पक्ष से ही सम्बन्धित है, न कि प्रयोगात्मक पक्ष से। व्यावहारिक कल्पना प्रक्रियात्मक वैज्ञानिक की होती है, जैसे—इंजीनियर की जो मकान, इमारत तथा नहर का निर्माण करते हैं।

क्योंकि सिद्धान्त और सामान्यीकरण हमारी प्रतिक्रियाओं में सूक्ष्मता लाने के लिए आवश्यक होते हैं, और व्यावहारिक प्रयोग सामान्यीकरण तक पहुँचने के लिए आवश्यक होते हैं, इसलिए बच्चे को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक कल्पना की शिक्षा देनी चाहिए। यह उसी समय सम्भव है जबकि बच्चों में अच्छे प्रकार की प्रतिमा और समस्या के लिए उचित समाधान करने की क्षमता को विकसित किया जाये।

(२) रसात्मक कल्पना[2]—कार्यसाधक कल्पना की भाँति रसात्मक कल्पना में बाह्य नियन्त्रण नहीं होते हैं। इस प्रकार की कल्पना कवि और उपन्यासकार की होती है। कवि को कविता लिखते समय आनन्द का अनुभव होता है, और उसी समय वास्तव में प्रेरणाएँ मिलती हैं।

रसात्मक कल्पना के दो उप-प्रकार ऊपर दिए जा चुके हैं, वे (अ) कलात्मक कल्पना,[3] और (ब) तारंगिक कल्पना[4] हैं।

(i) कलात्मक कल्पना में व्यक्ति द्वारा स्वयं कुछ नियन्त्रण प्रयोग में लाये जाते हैं। उपन्यासकार जो उपन्यास लिख रहा है, उसमें प्रत्येक वस्तु को समाहित नहीं कर सकता है। उसको अपने चिन्तन पर नियन्त्रण करना पड़ेगा। उसको विचारना पड़ेगा कि जो कुछ वह लिख चुका है, अच्छी कहानी है, उसके चरित्र सजीव हैं और उनमें वे सब लक्षण हैं जिनको वह दिखाना चाहता है।

इस प्रकार नियन्त्रण उसकी कल्पना के ऊपर ही होते हैं किन्तु वे उसको और कलात्मक कार्य के लिए प्रभावित करते हैं।

(ii) तारंगिक कल्पना में किसी प्रकार का कोई भी नियन्त्रण नहीं होता है। इस प्रकार की कल्पना दिवा-स्वप्न में स्पष्ट परिलक्षित होती है। व्यक्ति अपने विचारों को स्वतन्त्र रखता है। वे बिना किसी नियन्त्रण के इधर-उधर विचरण करते हैं। हवा में महल बनाना इस प्रकार की कल्पना का उदाहरण है। आप दिवा स्वप्न[5] में कल्पना करते हैं कि मेरे पास १,००,००० रुपया है और आप विचार करते जाते हैं कि मैं इसका क्या उपयोग करूँगा। यह इस प्रकार की कल्पना का श्रेष्ठ उदाहरण है।

1. Hypothesis. 2. Aesthetic Imagination. 3. Artistic Imagination. 4. Fantastic Imagination. 5. Day dreaming.

[उपर्युक्त चित्र एक १३ वर्ष के बालक द्वारा बनाया गया है। इस
स्पष्ट करते हैं कि बालक सृजनात्मक चिंतन में ऊँचे स्तर पर है। वह
की चन्द्र की सतह पर कल्पना करता है। यह उस समय बनाया
विजय का अभियान प्रारम्भ हुआ था। तीन अमरीकी ऐस्ट्रोनोट अ
की ओर उड रहे थे।]

कल्पना और शिक्षा[1]

सृजनात्मक कल्पना एक स्वाभाविक लक्षण नहीं है। वस्तुत
की आदत है जिसको प्राप्त किया जा सकता है। विद्यार्थियों में
आदत को शिक्षा द्वारा विकसित करना चाहिए।

बच्चों में कार्य-साधक तथा रसात्मक, दोनों प्रकार की कल्पन
होना चाहिए। बच्चों को मॉडल इत्यादि देकर उन्हें शिक्षा ग्रहण
प्रोत्साहित करना चाहिए और व्यावहारिक समस्या प्रदान करके
निर्माण करवाना चाहिए। वैज्ञानिक अनुसन्धानशाला और कारखान
साधक कल्पना के विकास में अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। विद्यार्थि
वैज्ञानिक विषयों के अतिरिक्त गणित के विषयों में भी इस प्रकार देने
वे कार्य करना सीखें। साहित्य में भी 'करने' का तत्त्व ही मुख
नैतिक शिक्षा में 'करने' के द्वारा, जिससे तात्पर्य है उचित परिस्थि
करा के ही संकल्प उचित अवस्थाओं में प्राप्त हो सकता है।

तार्किक कल्पना के विकास के बारे में मॉन्टेसरी अपना एक
इस प्रकार की कल्पना को बच्चों में विकसित नहीं होने देना चाहि

1. Imagination & Education.

और परियों की कहानी के विरुद्ध हैं तथा उनको बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती हैं। उनका विचार है कि परियों की कहानियों और कल्पित कथा बच्चों को *काल्पनिक संसार में रहने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।* वे *वास्तविक संसार की* समस्याओं से इस प्रकार की कहानियाँ इत्यादि पढ़ने से दूर हो जाते हैं।

मॉन्टेसरी का उपर्युक्त विचार उचित नहीं है। सीमित दिवा-स्वप्न का लाभप्रद प्रभाव होता है। यह उन प्रवृत्तियों के लिए रोचक है, जिनको प्रत्यक्ष रूप से दृष्टि-गोचर होने का अवसर नहीं मिलता। इसलिए मॉन्टेसरी का निर्णय गलत है। रस्क[1] महोदय के अनुसार परियों की कहानियाँ मानव की साहित्यिक वंश-परम्परा को बनाती है और इस प्रकार उनको जानना अवश्य चाहिए। इन कहानियों को जानने के लिए बचपन की अवस्था सबसे अच्छी है, जबकि विश्व की समस्याएँ उनको अत्य-धिक प्रभावित नहीं कर पाती हैं। मॉन्टेसरी का यह कथन कि बच्चा हर समय अलौकिक की ओर ही देखता है, अतिशयोक्तिपूर्ण है, क्योंकि बच्चा विश्व और भ्रान्ति में अपने जीवन के प्रारम्भ काल में ही अन्तर स्पष्ट कर लेता है। तारंगिक कल्पना के प्रभाव में हम उन अनेक प्रकार की कलात्मक कल्पनाओं से वंचित रह जाएँगे जिनको हम जानते हैं।

मॉन्टेसरी के अनुसार कल्पनात्मक क्रियाएँ सत्य और यथार्थ पर आधारित होनी चाहिए जिससे सक्रिय विज्ञान में उचित सामग्री प्राप्त हो सके। किन्तु किसी भी विस्तृत शिक्षा-योजना में ललित कल्पना का स्थान होना आवश्यक है। इस प्रकार यथार्थ कल्पना को तारंगिक, और तारङ्गिक को यथार्थ कल्पना द्वारा ठीक कर देना चाहिए।

यह ध्यान में रखना चाहिए वे कहानियाँ जो भय उत्पन्न करती हैं, बच्चों को नहीं सुनानी चाहिए। इस प्रकार की कहानियाँ बालकों को कुछ वस्तुओं और अवस्थाओं से जीवन भर के लिए भीरु बना देती हैं। विद्यार्थियों की उचित वृद्धि के लिए अच्छी कहानी सुनाना आवश्यक है।

बालकों में कलात्मक कल्पना के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उनकी साहित्य और संगीत में रुचि पैदा की जाय। बच्चों में साहित्य की रसानुभूति की योग्यता को बढ़ाना चाहिए। कविता अथवा संगीत पढ़ाते समय अध्यापक को अर्थ और सारांश की अपेक्षा सौन्दर्यानुभूति पर अधिक बल देना चाहिए।

सारांश

'चिन्तन' एक ज्ञानात्मक क्रिया है जो प्रत्यक्षीकरण और स्मृति, दोनों पर ही निर्भर रहती है। चिन्तन में दो दृष्टियों से भिन्नता पाई जाती है—(१) *चिन्तन करने वाले मनुष्य के विचारों पर नियन्त्रण रखने की मात्रा तथा प्रकार में,* और (२) पूर्व-अनुभव तथा विचार द्वारा अनुभव में समानता की मात्रा में।

चिन्तन के दो महत्त्वपूर्ण साधन हैं—'संकल्पना' तथा 'भाषा'। संकल्पना में मस्तिष्क वस्तुओं का विश्लेषण करता है और उनमें जो सामान्य है, उसको मिलाता

। वह जो विशेष है, उसे छोड़ देता है। संकल्पना की रचना मे सामान्यीकरण
मूर्तकरण का बहुत महत्व होता है।

'भाषा' चिन्तन का मुख्य साधन है। भाषा द्वारा हमारा चिन्तन विस्तृ
नता है। भाषा (१) दूसरो तक विचार पहुँचाने का प्रमुख साधन है, (२) सं
ति रचना मे सहायता पहुँचाती है, (३) गूढ़ सम्पूर्ण विचार, वस्तु इत्यादि के विष
। सहायक होती है, तथा (४) उन विचारो व ध्यान को केन्द्रित करने मे स
ोती है जो इसके बिना कठिनाई मे मस्तिष्क मे रह सकते हैं।

कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने का ढंग या समस्याओं का जो आव
ाओं की पूर्ति मे बाधा पहुँचाती हैं, हल ही *समस्या का समाधान कहलाता है*।
समस्याओं का समाधान 'त्रुटि एवं प्रयास' की विधि द्वारा निकालते हैं या
रीसे आदतजन्य ढंग' से। समस्या का समाधान सूझ द्वारा भी होता है। मा
तर पर समस्या के हल मे तर्क का उच्च स्थान है। इस स्तर पर समस्या-
विभिन्न स्तर डेवी के अनुसार हैं—(१) कठिनाई महसूस करना, (२) कठिन
व्याख्या करना तथा उसका निरीक्षण करना, (३) सूचना को ढूँढ़ना व व्यव
करना और उसका मूल्य निर्धारित करना, (४) अनुमान का मूल्य निर्धारित क
तथा (५) हल को प्रयोग मे लाना।

शिक्षा मे 'समस्या-समाधान विधि' बहुत उपयोगी है। यदि निम्न
को ध्यान मे रखा जाय तो इस विधि द्वारा बालको को उचित शिक्षा मिल सके

(१) समस्या-हल की वैज्ञानिक विधि मे अध्यापक को पूर्ण दीक्षित
चाहिए। (२) *बालको को ऐसी समस्याएँ हल करने के लिए देनी चाहिए*, ि
प्रयोगात्मक उपयोगिता हो। (३) समस्या-हल के मूल्यो को विभिन्न क्षेत्रो से
जाना चाहिए। (४) बालको को जीवन की उन प्रयोगात्मक समस्याओं को हल
को देना चाहिए जो वर्तमान मे सम्बन्धित और महत्त्वपूर्ण हो। (५) बाल
नागरिकता सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने का प्रशिक्षण देना चाहिए।

कल्पना मे अनुभव का पुनस्मरण किया जाता है, परन्तु उसको एक नये
मे रख दिया जाता है। कल्पना की समृद्धि यथार्थता और अनुभव के इकट्ठे
गए प्रदत्तो पर निर्भर करती है। चिन्तन और कल्पना तथा स्मृति और कल
कोई विशेष अन्तर नहीं है।

कल्पना को दो प्रकार मे विभाजित कर सकते हैं—आदानात्मक तथा
त्मक। सृजनात्मक कल्पना के दो उपभाग हैं—रसात्मक कल्पना तथा कार्य-
कल्पना। रसात्मक कल्पना के भी दो उपभेद किए जा सकते हैं। वह हैं—
कल्पना तथा कलात्मक कल्पना। इसी प्रकार कार्य-साधक कल्पना के दो उपभेद
सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक।

सृजनात्मक कल्पना का विकास बालको मे उचित शिक्षा द्वारा करना च
कार्य-साधक तथा रसात्मक, दोनो प्रकार की कल्पनाओं का विकास करना आ

है, परन्तु मॉन्टेसरी तारंगिक कल्पना के विरुद्ध हैं। उनका कहना है कि इस प्रकार की कल्पना को शिक्षक को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। परन्तु अन्य मनोवैज्ञानिक इस धारणा के विरुद्ध हैं।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१. एक प्रजातन्त्र राज्य में समस्या-समाधान तथा तर्क की शिक्षा में क्या उपयोगिता हो सकती है ? स्पष्टीकरण दीजिए।

२. एक सूची बनाइए जिसमें दोषपूर्ण चिन्तन में जितनी त्रुटियाँ हो सकती हैं, उन सबका संकलन हो।

३. सप्रत्यय से आप क्या समझते हैं ? बालकों में आप उचित संप्रत्यय का निर्माण किस प्रकार कर सकते हैं ?

४. एक पहेली को हल करने में किस प्रकार के चिन्तन की आवश्यकता है ? प्रकाश डालिए।

५. अध्यापक समस्या-समाधान का जो शिक्षा में उपयोग कर सकता है, उसका वर्णन कीजिए।

६. एक समस्या कब कठिन और कब सरल होती है ? यह अन्तर किस कारण होता है ?

७. कल्पना के प्रकार क्या-क्या हैं ? प्रत्येक की शिक्षा में क्या उपयोगिता है ? स्पष्ट कीजिए।

८. आप बालकों में सृजनात्मक कल्पना का विकास किस प्रकार कर सकते हैं ? उदाहरण देकर समझाइए।

९. तारंगिक कल्पना के सम्बन्ध में आप मॉन्टेसरी के मत से कहाँ तक सहमत हैं ? स्पष्ट कीजिए। अपने दृष्टिकोण के कारणों पर प्रकाश डालिए।

१०. परिभाषा दें : सप्रत्यय, सृजनात्मक चिंतन, कल्पना।

११. सत्य, असत्य कथनों को छाँटें :

(i) चिंतन एक सृजनात्मक प्रक्रिया है। हाँ/नहीं

(ii) भाषा और चिंतन में कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ/नहीं

(iii) समस्या उस परिस्थिति को कहते हैं जिसके लिए मनुष्य के पास पहले से तैयार प्रक्रिया होती है। हाँ/नहीं

(iv) समस्या-हल के विभिन्न स्तर और सृजनात्मक चिन्तन के विभिन्न पदों में समानता है। हाँ/नहीं

(v) बालकों में तारंगिक कल्पना को शिक्षण द्वारा बहुत अधिक प्रोत्साहित करना चाहिए। हाँ/नहीं

भाग ४

व्यक्तित्व-समायोजन
तथा
मानसिक स्वास्थ्य

[PERSONALITY-ADJUSTMENT & MENTAL HEALTH

२१ | व्यक्तित्व—व्यक्तित्व का स्वरूप, विकास और निर्धारण

PERSONALITY—ITS NATURE, DEVELOPMEN[illegible] AND ASSESSMENT

चरित्र[1]

यद्यपि साधारणत: व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व मे अन्तर न[illegible]
किन्तु इनमे फिर भी कुछ विभेद वर्णन किये जाते हैं। यह विभेद स्पष्ट कर[illegible]
वुडवर्थ महोदय ने कहा है—"मुख्यत: चरित्र हमारे उस व्यवहारगत पह[illegible]
सम्बन्धित है, जिसे हम अच्छा अथवा बुरा कह सकते हैं और यह हमारे समाज[illegible]
कृलित स्तर के अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकता है। व्यक्तित्व से तात्पर्य [illegible]
ऐसे व्यवहार से है जो आवश्यक रूप मे उचित अथवा अनुचित न होने पर भी [illegible]
करने वाला या दूसरों को बुरा लगने वाला होता है तथा अपने सम्पर्क के [illegible]
व्यक्तियों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकता है ... ।"[2] पुन व्यक्तित्व पर [illegible]
करते हुए वुडवर्थ का मत है कि यह अन्तर अधिक महत्त्वपूर्ण नही है। इस अ[illegible]
मे हम व्यक्तित्व एवं चरित्र की सामान्य धारणा का वर्णन करेंगे और व्यक्तित्व-[illegible]
की विधियों पर ध्यान देंगे।

व्यक्तित्व—उसका स्वरूप एव उसकी सामान्य धारणा[3]

यद्यपि 'व्यक्तित्व' शब्द बहुत व्यापक है और 'व्यक्तित्व' शब्द का प्रयो[illegible]

1. Character.

2. "Character refers mostly to conduct that can be c[illegible] right or wrong, that meets or fails to meet the accepted s[illegible] standard. Personality refers to behaviour which, though [illegible] necessarily right or wrong is pleasing or offensive to other pe[illegible] favourable or unfavourable to the individual's standing wit[illegible] fellows." —Woodworth : *Psychology*, p.[illegible]

3. Personality—Its Nature & Concept.

[लिंकन के दो चित्र—एक में दाढ़ी है, दूसरे में नहीं है। देखिए, केवल दाढ़ी बढ़ाने से व्यक्तित्व प्रभावशाली प्रतीत होने लगा। किन्तु व्यक्तित्व केवल शा रिक सौन्दर्य पर निर्भर नहीं होता यद्यपि साधारण व्यक्ति इसको ही व्यक्ति आंकने में महत्त्व देते हैं। हम लिंकन को महान उनके शारीरिक व्यक्तित्व कारण नहीं वरन् उनके विचार, व्यवहार एवं कार्यों के कारण मानते हैं

व्यक्तित्व की परिभाषा[1]

व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए बहुत-से प्रयत्न किये गये हैं, किन्तु उनमे जो महत्त्वपूर्ण हैं और आवश्यक परिभाषाएँ हैं उनका हम यहाँ विवेचन कर रहे हैं :

१ वारेन की व्याख्या[2]—"व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है।" वारेन का यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि व्यक्ति की रचना ऐसे समूहो, भागो और संगठनों मे नहीं होती जो कुछ मानसिक और कुछ शारीरिक होते हैं। किन्तु इसके विपरीत व्यक्ति की क्रिया बडी ही उलझी हुई है और वातावरण मे घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है। यह परिभाषा मानसिक और शारीरिक संगठन को एक-दूसरे से अलग कर देती है, अतः यह स्थिति हमें स्वीकार नहीं है।

२. रैक्स रॉक की व्याख्या[3]—"व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का सन्तुलन है।" यह परिभाषा भी उपयुक्त नहीं है, जैसा कि परिभाषा के विश्लेषण द्वारा हमे पता लगता है। यह परिभाषा हमारे सामने "एक व्यक्तित्व" का मत उपस्थित करती है। यह "व्यक्तित्व" हमे उसी समान प्रतीत होता है; जैसे—एक व्यक्ति एक सिर रखता है, एक हाथ रखता है तथा एक व्यक्तित्व रखता है। परन्तु सिर, हाथ अथवा किसी अंग इत्यादि की तरह व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व नहीं होता। अतएव यह परिभाषा हमे मान्य नही हो सकती। इस प्रकार यह परिभाषा न केवल व्यक्तित्व को अत्यन्त सरल रूप दे देती है, वरन् इसका निर्धारण द्वन्द्वात्मक अथवा द्विअर्थी हो जाता है।

३. डेशील की निम्न व्याख्या हमें उपयुक्त प्रतीत होती है। इस परिभाषा के अनुसार व्यक्ति का व्यक्तित्व "सम्पूर्ण रूप से उसकी प्रतिक्रियाओं को, और प्रतिक्रियाओं की आवश्यकताओं की उस ढङ्ग की व्यवस्था है जिस ढङ्ग से वह सामाजिक प्राणियों द्वारा आंकी जाती है। यह व्यक्ति के व्यवहारों का एक समायोजित संकलन है जो व्यक्ति अपने सामाजिक व्यवस्थापन के लिए करता है।"[4] इस प्रकार यह परिभाषा व्यक्तित्व की प्रतिक्रियाओं और व्यवहारों का ढङ्ग

1. Definition of Personality.

2. Definition of Warren, H. C. : *Elements of Psychology*—"Personality is the entire mental organization of a human being at *any stage of his development*."

3. Definition given by Rex Rock—"The balance between socially approved and disapproved traits..."

4. Dashiell, J. E. : *Fundamentals of Objective Psychology*, Boston, Hougton, 1929, p. 55—"*Individual's personality* is defined as, "*His system of reactions and reaction-possibilities into as viewed* by fellow members of society. It is the sum-total of behaviour trends manifested in his social adjustment."

ताती है। साथ ही साथ इसमे व्यक्ति को ही महत्त्वपूर्ण नही समझा गया है, रिवेश के अन्य प्राणियों को भी सम्मिलित किया गया है। अत. इस परिभ ाम संगत कह सकते हैं क्योंकि यह व्यक्तित्व पर पूर्णरूपेण प्रकाश डालती है। वि ूर्ण ढङ्ग से भी यह सत्य है कि मानव-व्यक्तित्व तभी समझा जा सकता है जब अन्य प्राणियों के सम्पर्क मे आकर प्रतिक्रिया और प्रत्युत्तर करता है।

४. गार्डन ऑलपोर्ट (१९३७) की व्यक्तित्व सम्बन्धी परिभाषा : लगभग ५० परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर की गई है, यहाँ प्रस्तुत योग्य है। ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए संकेत किया है कि "व्य व्यक्ति के साथ उन मनो-शारीरिक संस्थान का गतिशील संगठन है जो वाता उसका अद्वितीय समायोजन निर्धारित करते हैं।"[1] यह परिभाषा इस बात पर देती है कि व्यक्तित्व का विकास, उसकी व्यवस्थापन क्रिया पर आधारित है प्रकार व्यक्तित्व की आवश्यकताएँ उसके व्यवहार को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने प्रेरक होती हैं। लक्ष्य-प्राप्ति मे यदि एक-दो बार भी प्राणी को उसके व्यव असफलता मिलती है तो उसके व्यक्तित्व के सम्यक् विकास मे बाधा पड़ती उसका व्यक्तित्व तब तक व्यवस्थित नही होता है जब तक कि उसकी इच्छा दिशा बदल कर उन्हें सन्तुष्ट न कर दिया जाय। यह परिभाषा भी सन्तोषज क्योंकि यह स्पष्ट रूप मे व्यक्तित्व को प्रकट करती और उस पर प्रकाश डाल

वे परिभाषाएँ जो व्यक्तित्व की स्पष्ट और सही रूप मे व्याख्या क व्यक्तित्व को सक्रियशील बनाती हैं और व्यवस्थित[2] व्यवहार की ओर इंगित हैं तथा व्यक्ति के वंशानुक्रमित और वातावरण[3] द्वारा गृहीत गुणो के महत्त्व हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

व्यक्तित्व एवं चरित्र[4]

अभी हमने व्यक्तित्व की परिभाषाएँ दी हैं। जितना कठिन व्यक्ति परिभाषा देना है उतना ही कठिन चरित्र की परिभाषा देना भी है। साधार से हम एक व्यक्ति के चरित्र की परिभाषा उसकी आदतो एवं व्यवहार के इतने शाली होने के रूप मे दे सकते हैं, जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक, दोनो रूप मे

---

1. "Personality is the dynamic organization with individual of those psycho-physical systems that determin unique adjustments to his environment."—Allport, H. W. : " *nality : A Psychological Introduction*," 1937, Henry Holt, N p. 46.

2. Integrated. 3. Inherited and Environmental Potenti 4. Character & Personality.

सम्भावनाओं की पूर्ति को सफल बनायें।[1] इस प्रकार 'चरित्र' मे दूर के उद्देश्यों की ओर अनवरत रूप से कार्य करना निहित है। इसमे वर्तमान के उद्देश्य इतने महत्त्व-पूर्ण नही होते। चरित्र से तात्पर्य उस क्षमता से भी है जो सामाजिक मॉंगो की पूर्ति की ओर हो एवं व्यक्ति अपने व्यक्तिगत उद्देश्यो का तादात्म्य दूसरे व्यक्तियों के उद्देश्यो से कर ले। जब हम किसी व्यक्ति को दृढ चरित्र का कहते हैं तब हमारा तात्पर्य न केवल उसकी नैतिक स्थितियो से सामना करने की क्षमता है, वरन् इससे भी कि एक निश्चित संगठन का-सा नमूना विभिन्न स्थितियो मे उसकी प्रतिक्रियाओ मे पाया जाता है।

व्यक्तित्व व्यक्ति एव समूह के आपसी सम्बन्धो पर निर्भर रहता है। हम सब एक-दूसरे के व्यक्तित्व के विकास मे सहयोग देते है। आजकल मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को "सामाजिक प्रेरक मूल्य"[2] कहना पसन्द करते हैं। इससे तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व हमारे दूसरो के साथ सम्बन्धो के आधार पर विकसित होता है, न कि हमारी कुछ मूल्य विशेषताओ पर। वास्तव मे व्यक्तित्व वह संगठन है जो बालक अपने जीवन-काल मे निर्मित करता है। अपनी कलाओ, योग्यताओ, मनोवृत्तियो एवं अनुभवो के आधार पर व्यक्तित्व परिवर्तित होने वाला संगठन है जिसमे एक निश्चित क्रमशीलता हमारे शारीरिक एव मनोवैज्ञानिक जीवन के चारो ओर अनुभवो के जमाव के कारण होती है।

चरित्र का मूल्याकन नैतिक मूल्यो के आधारो पर तथा समाज के नियमो पर होता है। एक विद्यार्थी का चरित्र उस समय अच्छा समझा जाता है जबकि वह नैतिक स्तरो के अनुरूप कार्य करता है और विद्यालय के नियमो का पालन करता है एवं जो व्यवहार वह आगे चलकर अपनाता है, वह नैतिक मूल्यों से ही प्रेरित होता है।

किन्तु यहाँ यह याद रखना चाहिए कि चरित्र-विकास एवं व्यक्तित्व-समन्वय को प्रतिदिन के व्यवहार मे विलग रूप से समझना व्यावहारिक नही होगा। वास्तव मे बालकों को वाछनीय स्तरो के अनुरूप ढालना एवं उनमे नैतिक गुणो का प्रादुर्भाव करना व्यक्तित्व संगठन मे सम्बन्धित होना चाहिए। नैतिक विकास एवं व्यक्तित्व समन्वय साथ-साथ चलने चाहिए। जैसा कि शोबेन[3] महोदय कहते हैं—हमें एक चोर, डाकू या अपराधी को एक समन्वित व्यक्तित्व वाला नही समझना चाहिए—चाहे वह अपनी सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता हो और उसे अपना व्यवहार कितना ही तार्किक प्रतीत होता है। नैतिक मूल्यो के अभाव मे व्यक्तित्व-समन्वय का अर्थ

1. We may define a person's character as the effectiveness of his habits and behaviour in fulfilling his own potentialities, both individually and as a member of society.

2. Social stimulus value. 3. Shoben.

स्पष्ट नहीं होता। इस प्रकार हम चरित्र को व्यक्तित्व-समन्वय से अलग नहीं कर सकते।

चरित्र मनुष्य की निर्बलता या सबलता, उच्चता या नीचता पर निर्भर नहीं होता, वरन् व्यक्ति के आत्म-संयम—चाहे वह कमजोर या बलवान है, उच्च वर्ग या निम्न वर्ग का है—पर निर्भर होता है। वही व्यक्ति उच्च चरित्र वाला है जो अपने वर्तमान सुख को महान् आदर्श अथवा उज्ज्वल भविष्य के लिए त्याग देता है। अब हम दृढ़ तथा उच्च चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं।

दृढ़ चरित्र के गुण[1]

दृढ़ चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

(१) विश्वसनीयता[2]—जब व्यक्ति किसी आदर्श अथवा नियम के अनुसार कार्य करता है, न कि उस समय की विचारधारा के अनुसार जिस समय वह कार्य कर रहा है, तो उसके चरित्र में विश्वस्तता स्पष्ट दिखाई देने लगती है। एक विश्वसनीय व्यक्ति के व्यवहार के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है—'वह समान परिस्थितियों में समान व्यवहार करेगा।'

(२) कार्य में दृढ़ता[3]—एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति कार्य में उस समय तक संलग्न रहता है, जब तक कि उसे पूरा नहीं कर लेता। चाहे भले ही कार्य अच्छा न हो फिर भी ऐसे व्यक्ति के समक्ष उस कार्य को पूरा करना ही सबसे श्रेष्ठ व महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। ई० वेब[4] विभिन्न प्रकार के चरित्र और गुणों के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि चरित्र में एक सामान्य खण्ड प्रतीत होता है जो ऐसे गुणों, जैसे—कठिनाइयों के समय अध्ययनशीलता, दयालुता, सत्यता, सदाचार तथा दूरदर्शिता, में प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है। वेब ने इस सामान्य खण्ड को 'सिद्धान्त की दृढ़ता' अथवा 'कार्य की दृढ़ता' जो आरम्भ में इच्छा मात्र ही होती है, कहकर पुकारा है। वे व्यक्ति जो जल्दी क्रोधित हो जाते हैं तथा प्रशंसा के इच्छुक होते हैं, इस खण्ड के अन्दर नहीं आते हैं।

(३) उद्यम तथा अध्ययनशीलता[5]—उद्यम तथा अध्ययनशीलता भी उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों के लिए आवश्यक है। वे भी उच्च चरित्र के ही अङ्ग हैं। एक व्यक्ति अध्यवसायी तथा मेहनती है तो उस समय भी काम करता रहेगा, जबकि कोई उसका निरीक्षण करने वाला भी न हो।

(४) प्रसन्नता,[6] आशावादिता,[7] और साहसिकता[8]—आगे बढ़ने व देखने की प्रवृत्ति वास्तव में दृढ़ चरित्र की द्योतक है। परन्तु यह भी देखा जाता है कि कभी-कभी व्यक्ति व्यवहार में कायरता दिखाता है, उस समय उसमें साहस का संचार किसी

1. Traits of Character. 2. Reliabity. 3. Persistences of Action 4. E. Webbes 5 Industry & Conscientiousness. 6. Cheerfulness. 7. Optimism 8. Courage.

प्रकार भी नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को हम दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति नहीं कह सकते—भले ही वह भविष्य का ध्यान रखता हो, अपने वर्तमान गुण का किंचित् मात्र भी ध्यान नहीं रखता हो। दृढ़ चरित्र अथवा चरित्र के लिए प्रसन्नता, आशावादिता और साहसिकता की आवश्यकता आवश्यक होती है। उपर्युक्त गुणों वाला व्यक्ति अपने को कहीं अधिक उज्ज्वल बना लेगा अपेक्षाकृत एक भयभीत व्यक्ति के, तथा वह उससे अधिक अच्छी तरह अपनी सुरक्षा कर सकेगा।

व्यक्तित्व का विकास[1]

नवजात शिशु अपने साथ वंशार्जित शक्तियों को लेकर आता है, जिनके द्वारा उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। इस नवजात शिशु का कोई भी स्पष्ट व्यक्तित्व नहीं होता। शिशु एक प्राणी है और प्राणीत्व को विकसित करने के लिए जैसे ही वह अपने व दूसरे के व्यवहारों के प्रभावों को समझना आरम्भ करता है, उसका व्यक्तित्व उद्‌विकसित हो उठता है। और ज्यों ही दूसरे प्राणी उसके लिए व्यक्त हो जाते हैं, वे उसके लिए केवल पर्यावरण की वस्तु नहीं रहते, त्यों ही शिशु के व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

व्यक्तित्व निश्चित और चिरस्थायी नहीं है। इसका तात्पर्य है कि वंश-परम्परा का व्यक्तित्व के विकास में बहुत ही थोड़ा भाग होता है। प्रायः व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन के अनुभव, वातावरण का प्रभाव जिसमें व्यक्ति विकसित हो चुका है, और वे सभी सुविधाएँ और अवसर जो उसे दिए जाते हैं, उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं। बालक दिन के प्रत्येक क्षण में अपने व्यक्तित्व को विकसित करता है। व्यक्तित्व के विकास में नाना प्रकार के प्रभाव व्यक्ति के ऊपर पड़ते हैं। यहाँ पर हम इनको निम्न चार स्तम्भों में बाँट सकते हैं—(अ) शरीर[2], (ब) ग्रन्थि-रचना[3], (स) वातावरण के तत्त्व[4], और (द) सीखना[5]।

(अ) शरीर

यद्यपि शरीर का वाह्य रूप, शक्ति, सुसंगठित रचना, माप, उचित अनुपात आदि व्यक्तित्व के स्पष्ट संकेत नहीं हैं, किन्तु फिर भी ये स्पष्ट रूप से व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। एक ठिगने कद का बालक, जिसके अन्य साथी उसके ठिगनेपन पर उसका मजाक उड़ाते हैं और फलतः उसके अन्दर यह विचार आ जाता है कि उसका ठिगनापन उसमें एक बड़ा दोष है, कद और माप को अधिक महत्ता देने लगता है जबकि इतनी अधिक महत्ता की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार एक मोटा बालक या बालिका मोटेपन को एक भारी अभिशाप समझते हैं, यदि इस सम्बन्ध में उनकी हँसी उड़ाई जाती है। इस प्रकार उस बालक अथवा बालिका में संवेगात्मक असंतुलन

1. Development of Personality. 2. Physique 3. Chemique. 4. Environmental Factors. 5. Learning.

के कारण एक अलग व्यक्तित्व का विकास हो जाता है, जबकि साधारण रूप में उसके व्यक्तित्व का विकास दूसरी प्रकार से होता। इस प्रकार शारीरिक रचना का अस्पष्ट रूप मे व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है, यद्यपि स्पष्ट रूप मे शारीरिक रचना का कोई प्रभाव लक्षित नही होता जो व्यक्तित्व पर प्रभाव डालता हो। एक व्यक्ति के प्रति जो व्यवहार उसके साथियों द्वारा किये जाते हैं और उनका आधार व्यक्ति की शारीरिक रचना होती है, वे सब उसके उन गुणो के समूह पर प्रभाव डालते हैं जो उसके व्यक्तित्व का अङ्ग होते हैं।

व्यक्तित्व-विकास पर शारीरिक, मानसिक एव संवेगात्मक प्रभावो के बारे मे हम इस पुस्तक के भाग २ मे बहुत कुछ कह चुके हैं।

(ब) ग्रन्थि-रचना[1]

ग्रन्थि-रचना से हमारा तात्पर्य यह है कि आन्तरिक ग्रन्थि-स्राव का व्यक्तित्व-विकास पर क्या प्रभाव पडता है। अध्ययन से प्रतीत होता है कि जब तक ये ग्रन्थियाँ अपने उचित रूप मे कार्य करती रहती हैं, व्यक्तित्व पर उनका बहुत ही अल्प प्रभाव पड़ता है। लेकिन जब कभी इनमे से कोई भी ग्रन्थि अपने उचित रूप मे कार्य नहीं कर पाती, तब अस्पष्ट रूप से उनका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहारो और व्यक्तित्व पर पडता है। अगले पृष्ठ पर अङ्कित चित्र मे कुछ आवश्यक ग्रन्थियाँ तथा उनकी स्थिति स्पष्ट की गई है।

ये ग्रन्थियाँ जैसा कि विदित है, सीधे रूप से अपने स्राव को रक्त में मिश्रित कर देती हैं। यह मिश्रण एक विशिष्ट आनुपातिक ढङ्ग से ही होना चाहिए। इन ग्रन्थियो का थोड़ा या अधिक स्राव, अर्थात् जो आनुपातिक माप का नहीं होता, व्यक्ति के विकास पर भयानक प्रभाव डालता है और परिणामत व्यक्तित्व भी प्रभावित हो जाता है। ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्ति की वृद्धि, शक्ति-सचयन, भोजन-मिश्रण और अधिक रूप मे स्वास्थ्य पर पडता है। यह ग्रन्थियाँ संवेगात्मक ग्रन्थियो या व्यक्तित्व ग्रन्थियो के नाम से भी पुकारी जाती हैं।

(i) प्रस्तुत चित्र मे आप यह देखेंगे कि गुर्दों के ऊपर एक छोटी-सी ग्रन्थि है जिसे हम एड्रिनल-ग्रन्थि[2]—कहते हैं। यह छोटी होती है और पीलापन लिये हुए होती है। इस ग्रन्थि से एड्रिनिन[3] नामक स्राव प्रवाहित होता है। यह वह शक्तिशाली रासायनिक पदार्थ है जो रक्त-चीनी[4] को जिगर में उत्तेजित करके स्वतन्त्र कराता है, जिससे व्यक्ति को अधिक शक्ति प्राप्त होती है। एड्रिनिन-स्राव हृदय को भी उत्तेजना प्रदान करता है, मुख्यत: उस अवस्था मे जबकि यह द्रुतगति से प्रवाहित होता है और शरीर को वेगमय बनाने में भी सहायता प्रदान करता है। परिणामत:

---

1. Chemique. 2. Adrenal Gland. 3. Adrenine. 4. Blood-Sugar.
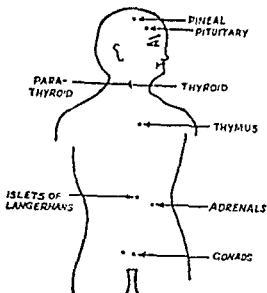
यह अतिरिक्त शक्ति जो व्यक्ति के अन्दर पैदा होती है—उसे अपने विशेष गौरव
शक्ति को प्रस्तुत करने में सहायक होती है। एक हॉकी या फुटबाल का खिलाड़ी
जीतने का पक्का इरादा कर लेता है, खेलने के समय उसके जिगर से रक्त-
स्रवित होती है और रक्त में मिलकर उसके शक्ति-वर्द्धन में विशेष सहायक होती है

(ii) गोनाड्स[1]—ये लिंग-सम्बन्धी ग्रन्थियाँ[2] होती हैं। लिङ्ग-उत्तेजना इ
ग्रन्थियों के स्राव के कारण होती है। इन ग्रन्थियों को हम प्रजनन-ग्रन्थियाँ भी
सकते हैं। पुरुष की प्रजनन-ग्रन्थियाँ शुक्र-ग्रन्थियाँ[3] तथा स्त्रियों की प्रजनन-ग्रन्थि
डिम्ब-ग्रन्थियाँ[4] हैं। शारीरिक उत्पत्ति और व्यक्तित्व-विकास के दृष्टिकोण से
ग्रन्थियाँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं। पुरुष और स्त्रियों की प्रजनन ग्रन्थियों का स्राव नर
मादा के गुणों की उत्पत्ति और विकास में महत्वपूर्ण होता है और यही नहीं,
स्राव नर और मादा के गुणों में अन्तर भी स्पष्ट करता है। मान लीजिए कि य
युवक की प्रजनन-ग्रन्थियाँ अलग कर दी जाती हैं, तो परिणामस्वरूप उसके अन्द
सामंजस्य नष्ट हो जाता है और वह व्यक्ति बहुत ही मोटा हो जाता है और उसम
एक विपरीत व्यक्तित्व—स्त्री के समान—उत्पन्न हो जाता है। उसके अन्दर पुरु
जैसा स्वर उत्पन्न नहीं होता। साथ ही साथ उसके मुखमण्डल व शरीर पर या तो
बाल उगते ही नहीं अथवा बहुत ही छोटे-छोटे बाल उगते हैं। इसके ठीक विपरीत

1. Gonads. 2. Sex-Glands. 3. Testis. 4. Ovaries.

यदि एक बालिका की प्रजनन-ग्रन्थियाँ उचित रूप से कार्य नहीं करती, अथवा वे ग्रन्थियाँ असमर्थ होती हैं तो बालिका के अन्दर पुरुष जैसा व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाता है। इतना ही नहीं, ये ग्रन्थियाँ हमारे अन्दर गुवा-लैङ्गिक-गुण[1] उत्पन्न करती हैं।

काम-प्रवृत्ति[2] का हमारे जीवन में बहुत ही महत्त्व है। यह प्रवृत्ति हमारे मानवीय व्यवहारों की महान् सचालिका[3] है। हमारे बहुत-से व्यवहार, रुचि, संवेग आदि काम-प्रेरणा[4] पर आधारित होते हैं। इस प्रकार इन सब का प्रभाव हमारे व्यक्तित्व पर भी पड़ता है। एक बालक जिसे आरम्भ से ही लैंगिक घृणा[5] से भर दिया गया है, ऐसे व्यक्तित्व को विकसित करता है जो बेढंगा, दबा हुआ और असन्तुलित होता है।[6] अथवा ऐसा व्यक्तित्व भी सम्भव है जो स्पष्ट रूप में एक अनोखे प्रकार का हो तथा अन्य पुरुषों के व्यक्तित्व से भिन्न हो और स्त्री-रूप में पुरुष[7] या पुरुष-रूप में स्त्री[8] के समान हो।

(iii) थायरॉयड ग्रन्थियाँ[9]—थायरॉयड ग्रन्थि की रचना दो छोटे गोल भागों से होती है जो श्वास-नली के इधर-उधर होते हैं। जो स्राव इस ग्रन्थि से होता है, वह रक्त-पात्रों[10] द्वारा सोख लिया जाता है। जब कभी इस ग्रन्थि के स्राव की मात्रा अधिक हो जाती है, तो व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, उसे बेचैनी का अनुभव होता है और वह घेंघा[11] हो जाता है। साथ ही साथ इस ग्रन्थि-रस के अभाव में व्यक्ति के अन्दर सुस्ती तथा आलस्य आ जाता है, और वह हर समय ऊँघता-सा रहता है।

थायरॉयड ग्रन्थि का बुद्धि और व्यक्तित्व से घनिष्ट सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए, यदि एक बालक के बचपन से उसकी थायरॉयड ग्रन्थि उचित व आनुपातिक मात्रा में रस नहीं देती है तो वह साधारण रूप से विकसित नहीं हो सकता, और उसके अन्दर मानसिक और शारीरिक विकास परिपूर्ण नहीं हो पाता। इस प्रकार यदि किसी बालक में यह रस बहुत ही थोड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है तो यह बालक वामन[12] हो जाते हैं। मानसिक विकास के अनुसार ऐसे बालक मूर्ख या मन्द-बुद्धि कहलाते हैं। उनका पेट कुछ बड़ा और अनुपात में टाँगें छोटी और अविकसित हो जाती हैं। यदि बचपन में बालक को थायरॉयड एक्सट्रैक्ट[13] दे दिया जाय तो बालक का विकास साधारण रूप से हो जायगा। किन्तु ऐसा करते समय किसी सुयोग्य डाक्टर से जो उस विषय का विशेषज्ञ हो, सलाह लेना परम आवश्यक है।

थायरॉयड स्राव के आधिक्य वाले व्यक्तियों[14] के रक्त में आधिक्य रस का

---

1. Seconary Sexual Characteristics. 2. Sex. 3. Great Controller. 4. Sex-Urge. 5. Sex-hatred 6. Obsessed, repressed and maladjusted. 7. Masculine-woman 8. Famınine-man. 9. Thyroid Glands. 10. Blood-vessals. 11. Exophthalmicgoitre. 12. Cretins. 13. Thyroid Extract 14. Hyperthyroid.

मिश्रण होता है और इन आधिक्य रस वाले व्यक्तियों के हृदय की धड़कन तीव्र होती है, और क्योंकि थायरॉयड रस के कारण भोजन शीघ्र जल जाता है परिणामतः वह हतोत्साहित हो जाता है और शीघ्र ही संवेग के वश में आता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि थायरॉयड ग्रन्थि का स्राव व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। अध्यापक को चाहिए कि अपने बालकों के अन्दर थायरॉयड ग्रन्थि के स्राव की कमी को जानने का प्रयास करे। यदि एक बालक कक्षा में निरुत्तर रहता है, स्वप्नों में भूला रहता है तो अध्यापक को समझ लेना चाहिए कि थायरॉयड ग्रंथि-स्राव प्रचुर मात्रा में उत्पन्न नहीं होता। इसके विपरीत, यदि कोई बालक बहुत अक्लमन्द, शक्तिवान, अधिक समझदार है तो उस बालक के अन्दर थायरॉयड ग्रन्थि-स्राव अधिक मात्रा में होता है।

(iv) थायरॉयड ग्रन्थि के पास ही में उप-थायरॉयड या उपचुल्लिका[1] ग्रन्थियाँ स्थित होती हैं। इन ग्रन्थियों से एक स्राव की उत्पत्ति होती है जो शरीर को शक्तिवान बनाता है। यदि उप-चुल्लिका ग्रन्थि को अलग कर दिया जाय अथवा ग्रन्थि में अस्वस्थता हो तो इसके स्राव के अभाव के कारण सम्पूर्ण शरीर का अनुपात नष्ट हो जाता है और ऐंठन तथा मरोड़ पैदा हो जाती है जिससे मृत्यु तक हो जाती है।

(v) छोटे-छोटे कोष जो भागों में बँटे होते हैं, एक आन्तरिक स्राव की उत्पत्ति करते हैं जिसे 'इन्सुलीन'[2] कहते हैं। वह ग्रन्थियाँ जिनसे यह स्राव होता है, लैंगरहैन्स के आइलेट्स[3] नाम से पुकारी जाती हैं। यदि यह स्राव प्रचुर मात्रा में रक्त में मिश्रित नहीं होता तो मधुमेह[4] का रोग हो जाता है।

ये ग्रन्थियाँ व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी कि दूसरी हैं। किन्तु फिर भी इस ग्रन्थि-रस-अभाव के कारण सुस्ती व बीमारी उत्पन्न हो जाती है जो व्यक्तित्व को साधारण रूप में नहीं पनपने देती। व्यक्ति के अन्दर अनेकानेक संवेगात्मक विचार भी उत्पन्न हो जाते है। फलतः इस हालत में विकसित व्यक्तित्व उस अवस्था से बिलकुल भिन्न होगा, जबकि उसमें यह कमी भी नहीं होती अथवा उसकी चिकित्सा कर दी जाती है।

(vi) पिट्यूटरी ग्रन्थि[5]—यह बड़ी ही महत्वपूर्ण ग्रन्थि है। यह दो गोलार्द्धों[6] में बँटी होती है और खोपड़ी के आधार पर स्थित होती है। इस ग्रन्थि-रस के कारण अन्य ग्रन्थि-रस भी विकसित होते है। यह रस अन्य ग्रन्थि-रसों में अनुपात भी पैदा करता है, और शरीर में एक रासायनिक आनुपातिक योग्यता[7] का निर्माण करता है, किन्तु इस रस के अभाव में यह सम्भव नहीं होता।

इस ग्रन्थि का अर्द्ध-गोलार्द्ध शारीरिक वृद्धि को उत्तेजित करता है। इस

---

1. Para Thyroid 2. Insulin. 3. Islets of Langerhans. 4. Diabetes. 5. Pitutary Gland. 6. The lobes. 7. Chemical Equilibrium.

गोनाडों के स्राव की अधिकता बालक के लक्षण उत्पन्न कर देती है। जो व्यक्ति ८ या ९ फीट लम्बा होता है तो स्पष्ट है कि उसकी यह वृद्धि इस रस-प्रवाह की अधिकता के कारण ही सम्भव हुई है। इसके ठीक विपरीत, यदि इस रस का प्रवाह कम होता है तो परिणामतः शारीरिक और मानसिक विकास[1] परिपूर्ण रूप में नहीं होता। इसके कारण बौनापन[2] या बालकता[3] उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार इस स्राव की अधिकता या कमी, दोनों ही भयानक दोष उत्पन्न करने वाली होती हैं। इससे व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की अनेकता उत्पन्न हो जाती है और अन्ततः मानव-व्यवहार मानव-व्यक्तित्व पर अस्पष्ट रूप से विघ्नपूर्ण प्रभाव डालता है।

(vi) थाइमस तथा पीनियल ग्रन्थियाँ यद्यपि इन ग्रन्थियों के कार्य तथा प्रयोजन के बारे में अभी कोई निश्चित मत नहीं है, फिर भी यह विचार किया जाता है कि थाइमस ग्रन्थि का मानसिक विकास[4] और मानसिक उत्पत्ति[5] में महान् योग होता है। जब तक बालक युवा नहीं होता, यह ग्रन्थि अपना कार्य सुचारु रूप से करती है किन्तु युवावस्था आते ही यह अपना कार्य मन्द कर देती है। पीनियल ग्रन्थि भी शारीरिक विकास और मानसिक विकास में अपने स्राव के द्वारा योग देती है।

अन्त में, हम कह सकते हैं कि यद्यपि अभी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण खोज की आवश्यकता है, फिर भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो चुकी है, जो इन ग्रन्थियों का व्यक्तित्व व मानव-व्यवहार पर होने वाले प्रभाव को बताती है। पिट्यूटरी, पीनियल, थायरॉयड और लिंग-ग्रन्थियों के स्राव शारीरिक वृद्धि व विकास को रोक सकते हैं और इस प्रकार अस्पष्ट रूप में मानव-व्यक्तित्व व मानव-व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं। थायरॉयड, एड्रिनल और 'आइलेट्स ऑफ लैंगरहैन्स' शारीरिक बनावट या सम-वृत्त[6] शारीरिक भोजन का प्रयोग जिसे हम खाते हैं आदि पर प्रभाव डालती हैं, और इस प्रकार हमारे कल्याण में सहयोग प्रदान करती हैं।

(स) वातावरण का प्रभाव[7]

सामाजिक अथवा वातावरण सम्बन्धी तत्त्व भी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं। हमने व्यक्तित्व की परिभाषाओं का विवेचन करते हुए स्पष्ट रूप में संकेत किया है कि हम उस परिभाषा को पूर्ण अथवा शुद्ध समझते हैं जिसमें पर्यावरण में रहने वाले अन्य मानवों पर भी विचार किया गया हो जो व्यक्ति के चारों ओर होते हैं। इस परिभाषा ने पूर्णरूपेण पर्यावरण अथवा वातावरण पर बल दिया है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर पर्यावरण जिसमें व्यक्ति रहता है और वह अनुभव जो दूसरों के सम्पर्क के कारण उसमें उत्पन्न होते हैं, अपना [illegible] प्रभाव डालते हैं।

---

1. Bodily [illegible] Infanti-
lism. [illegible] lism
7. [illegible]

सामाजिक अथवा वातावरण के तत्त्व एक युवक के व्यक्तित्व तक को प्रभावित कर देते हैं। यह परिवर्तन दूसरों के व्यवहार के अध्ययन से सम्भव होता है, जैसी कि व्यवहार सम्बन्धी जो खोजें की गई हैं, वह हमें बताती हैं। व्यावहारिक प्रतिक्रिया-सम्बन्धी की गई खोजें जिनमें चिन्तना, नकारात्मकता, ईर्ष्या, चिड़चिड़ापन और प्रभाव-प्रकृति, इत्यादि का अध्ययन किया गया, इस ओर संकेत करती हैं कि जैविक तथा वातावरण सम्बन्धी तत्त्व एक शिशु की व्यक्तित्व-धारणाओं के उत्तरदायी होते हैं।

व्यक्ति एक विशेष प्रकार का व्यक्तित्व अपने उस सामाजिक वातावरण जिसमें उसका लालन-पालन होता है, अपने सामाजिक अनुभव जो वह अपने विकास की अवस्था में अर्जित करता है, के कारण बना लेता है—अर्थात् सामाजिक वातावरण और तत्कालीन अनुभव उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए उत्तरदायी हैं। वह परिवार जिसमें वह बड़ा होता है, उस विद्यालय के अध्यापक जिसमें वह विद्यारम्भ करता है, उसके समुदाय के लोग जिनके सम्पर्क में वह आता है, उसके साथी—वास्तव में वे सब जो उसके सम्पर्क में आते हैं, अपने अमिट प्रभाव उसके ऊपर छोड़ देते हैं।

(१) कुटुम्ब के प्रभाव—कुछ ऐसे सामाजिक सम्पर्क हैं, जो व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इस दृष्टि से ही कौटुम्बिक प्रभावों का मूल्य है। माता व पिता का बालक के प्रति व्यवहार, माँ-बाप का एक-दूसरे के प्रति व्यवहार, दूसरों के प्रति व्यवहार, घटनाएँ और उद्देश्य आदि सभी बालक के विकासमय व्यक्तित्व पर छाप डालते हैं। स्काट[1] का ग्राम्य क्षेत्र नेबरास्का[2] के किशोरों के ऊपर किया गया अध्ययन पारिवारिक जीवन के प्रभावों के ऊपर भली प्रकार प्रकाश डालता है। ये किशोर हाई स्कूल श्रेणी के थे। कुछ तत्त्व, जैसे—पारिवारिक, सामूहिक जीवन, कुछ अल्प कार्य जो माँ से दूर किये गये थे, दण्ड, संवेगात्मक नियन्त्रण[3], माता-पिता का स्वास्थ्य आदि ने किशोरों के सामाजिक अनुकूलन[4] पर आशाजनक प्रभाव उत्पन्न किया।

(२) पाठशाला का वातावरण—परिवार के प्रभावों के समान ही पाठशाला का वातावरण भी बालक के विकासोन्मुख[5] व्यक्तित्व पर प्रभाव डालता है। यदि पाठशाला में योग्य शिक्षक हैं, सन्तोषजनक फर्नीचर है तथा अच्छी कक्षाओं की व्यवस्था है, अच्छा क्रीडास्थल है तो यह सम्भावना की जा सकती है कि बालक अपने व्यक्तित्व का यथासम्भव विकास कर सकता है। यदि पाठशाला में रुचिपूर्ण विषयों का प्रबन्ध नहीं है तो यह सम्भव है कि बालक के व्यक्तित्व-विकास पर गहरा बुरा प्रभाव पड़े। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यालय के वातावरण सम्बन्धी तत्त्वों के समुचित प्रबन्ध की ओर से सचेत रहे।

---

1. Scott 2. Nebraska. 3. Emotional Control. 4. Social Adjustment. 5. Developmental.

(ड) सीखना

इसमे सन्देह नही कि मानवीय शिक्षण या सीखना जीवन-पर्यन्त चलता रहता है, क्योंकि हमारे पग-पग पर हमें अनुभव होते हैं, ये संचित भी होते रहते हैं और व्यक्तित्व पर प्रभाव भी डालते हैं। यही नहीं, प्रत्येक अनुभव के बाद व्यक्ति की मूल अवस्था से वर्तमान मे परिवर्तन भी होता है। सच है कि यह परिवर्तन की मात्रा उस अनुभव के प्रकार पर निर्भर होती है जो अनुभव किया जाता है। इस प्रकार व्यक्ति के सीखने पर उन अनुभवों का प्रभाव पड़ता है जिनके सम्पर्क मे वह आता है। कुछ दशाओं मे एक किताब, आलोचना, चलचित्र आदि या और किसी प्रकार का अनुभव व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन उपस्थित कर सकता है।

आत्म-संप्रत्यय[1]

अभी हमने व्यक्तित्व-विकास पर जो विभिन्न प्रभाव पड़ते है उनका वर्णन किया। इन्ही प्रभावो के मध्य व्यक्ति में अपनी आत्मा का विचार स्पष्ट होता जाता है। क्योंकि व्यक्तित्व तथा चरित्र दोनो ही व्यक्ति की अपनी आत्म-सम्बन्धी अवधारणा पर निर्भर होते हैं, यहाँ हम इस ओर ध्यान देंगे कि व्यक्ति मे आत्म-संप्रत्यय किस प्रकार विकसित होता है।

एक व्यक्ति जिस प्रकार से अपना प्रत्यक्षीकरण करता है अथवा जिस ढङ्ग से अपने को देखता है उसे ही हम उस व्यक्ति का आत्म-संप्रत्यय कहते हैं। उस वातावरण के भाग को जिसमे वह सम्मिलित रहता है, हम प्रत्यक्ष आत्म[2] कहते हैं और बाकी के वातावरण को जिसके सम्बन्ध मे वह जानता है अथवा जिसके प्रति वह प्रतिक्रिया करता है, प्रत्यक्ष वातावरण[3] कहते हैं। निम्न चित्र इसको स्पष्ट करता है
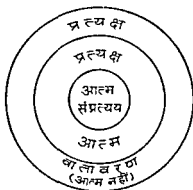
[आत्म-संरचना का चित्र]

1. Self-Concept. 2. Phenomenal self. 3. Phenomenal environment.

आत्म-संप्रत्यय वह है जैसा कि व्यक्ति वास्तव में अपने सम्बन्ध में विचार रखता है। यह "मैं" है। प्रत्यक्ष आत्म में आत्म-संप्रत्यय और वातावरण के वह पक्ष होते हैं जिन्हें व्यक्ति अपने से आत्मसात् करता है—'मेरा परिवार', 'मेरा विद्यालय', 'मेरा घर' इत्यादि। दोनों आत्म-संप्रत्यय और प्रत्यक्ष आत्म, प्रत्यक्ष वातावरण में सम्मिलित होते हैं। इसको व्यक्ति का आत्म क्षेत्र[1] भी कहा जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिक इसको मनोवैज्ञानिक क्षेत्र[2] "जीवन स्थल"[3] कहते हैं।

एक शिशु के प्रारम्भ के संवेदन अस्पष्ट तथा अव्यवस्थित होते हैं। आयु के साथ इनमें भेद होने लगता है और बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, वह एक आत्म-संरचना कर लेता है। वह एक आत्म-संप्रत्यय बनाता है, प्रत्यक्ष आत्म बनाता है, और प्रत्यक्ष वातावरण की अवधारणा ग्रहण करता है।

एक व्यक्ति के लिए उसका प्रत्यक्ष क्षेत्र अथवा निजी संसार ही यथार्थ होता है। *अतएव वह उस संसार के प्रति प्रतिक्रिया करता है, जैसा कि वह प्रत्यक्षीकरण* करता है, न कि उस संसार के प्रति, जैसा कि अन्य व्यक्तियों द्वारा देखा जाता है। अब जो कुछ एक व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता और जिस प्रकार से यह प्रत्यक्षीकरण होता है, वह उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से अनुबंधित होता है। यही कारण है कि एक बालक अपनी माता को छोड़ना ही नहीं चाहता चाहे दूसरी स्त्री उसे कितने ही खिलौने इत्यादि दिखाये। उसकी आवश्यकता प्रेम की है जिसकी पूर्ति वह अपनी माता से ही कर सकता है।

अपने सम्बन्ध में प्रत्यक्षीकरण परिपक्वता के साथ बदलते रहते हैं। हमने कहा है कि बालकों का व्यवहार अपने तथा अपने चारों ओर के संसार के प्रत्यक्षीकरण से निर्धारित होता है। जैसे ही उनका प्रत्यक्षीकरण बदल जाता है, व्यवहार भी उसी प्रकार बदल जाता है। *शिक्षक सीधे बालकों के संप्रत्यय को विकसित नहीं कर सकते* तो वह यह नहीं कह सकते कि वह अधिक परिपक्व और यथार्थ अपनी अभिवृत्तियों में हो जायें। उन्हें उस समय तक इन्तजार करना पड़ेगा जब तक बालक परिपक्व नहीं हो जाए। बालकों की बहुत-सी दुश्चिन्ताएँ एवं विफलताएँ दूर की जा सकती हैं यदि प्रौढ़ उनके भाव और प्रत्यक्षीकरण को समझ कर उनके साथ व्यवहार करें।

व्यक्तित्व के गुण[4]

व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से वर्णन करने के पहले हमें उसके गुणों को समझना चाहिए। मनोवैज्ञानिकों का गुण से तात्पर्य 'व्यवहार करने के ढङ्ग से है।' वुडवर्थ ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—"व्यक्तित्व के गुण हमारे व्यवहार का एक मुख्य प्रकार का ढङ्ग है, जैसे—प्रसन्नता या आत्म-विश्वास आदि, जो कुछ समय तक तो हमारे व्यवहार के गुण ही होते हैं किन्तु कुछ दिनों बाद हमारे जीवन के एक

1. Personal field 2. Psychological field. 3. Life Space. 4. Personality Traits

आवश्यक अङ्ग बन जाते हैं।" वुडवर्थ व्यक्तित्व को इन्हीं गुणों का योग बता
लेकिन इसके साथ ही साथ वह आगे यह भी बताता है कि व्यक्तित्व का तात्
योग से कुछ अधिक भी है, अर्थात् केवल योग ही व्यक्तित्व नहीं है वरन् व्यक्ति
कुछ और भी गुण सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति जो प्रसन्न और
विश्वासी है या दुःखी है, इसका तात्पर्य केवल यही नहीं है कि वह इस प्र
आत्म-विश्वास या दुःख का ही योग है, वरन् वास्तव में वह इससे भी
अधिक है।

गॉर्डन ऑलपोर्ट महोदय ने व्यक्तित्व के सङ्गठन पर जैविक शारीरिक
से विचार किया है और उनका विश्वास है कि "गुण हमारे परिवर्तित ह
वाले सक्रिय संस्कार हैं। *ये संस्कार कम से कम अंशतः हमारी विशिष्ट अ*
उत्पन्न होते हैं और ये हमारे वातावरण में व्यवस्थापन के ढङ्ग को बताते हैं।

इस परिभाषा से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का व्यवहार उसी आ
भावनाओं और वाह्य वातावरण के प्रभाव के द्वारा संचालित होता है। एक
परिश्रम करने वाले व्यक्ति से आशा की जा सकती है कि वह सदैव कठिन
करेगा, और इसी प्रकार एक सहानुभूति दिखाने वाले से आशा की जा सकती
वह सहानुभूति को सदैव अपने अन्दर रखेगा। यही गुणों के सङ्गठन का
सिद्धान्त है।

व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व के लेखकों तथा विख्यात मनोविज्ञान के पोषकों[2] ने व्यक्ति
विभिन्न प्रकार के वर्णन द्वारा हमारे सम्मुख उपस्थित करने का प्रयत्न किया
वर्णन में इन्होंने स्पष्टतः सम्पूर्ण व्यक्तित्व को किसी मुख्य विशेषता पर अधि
दिया है और इसके अन्य निहित गुणों की अवहेलना की है। इनमें से कुछ
प्राचीन समय से हैं :

१. चार प्रकार के स्वभाव—*हिप्पोक्रेट्स*[3] (४०० ईसा-पूर्व) और उस
गॉलिन (१५० ई०) ने शारीरिक द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण
इसके अनुसार चार प्रकार के समूह इस प्रकार हैं

(अ) मन्द[4]—वे लोग जो धीमे, निर्बल और निरुत्तेजित होते हैं।

(ब) खिन्न[5]—वे लोग जो निराशावादी हैं।

(स) क्रोधी[6]—वे लोग जो शीघ्र ही क्रोधित हो जाते हैं।

(द) आशामय[7]—वे लोग जो बहुत ही शीघ्र कार्य करते हैं और
रहते हैं।

1. *Bio-Physical.* 2. *Popular Psychologists.* 3. *Hippo*
(400 B. C.) and Galen 4. The Phelgmatic. 5. The Melanc
6. The Choleric. 7. Sanguine.

वास्तव में इस सिद्धान्त पर अधिक समय तक विश्वास न किया जा सका, और हम इस प्रकार के व्यक्तियों के वर्गों को स्वीकार नहीं करते हैं।

२. शारीरिक प्रकार— क्रेचमर[1] ने ४०० व्यक्तियों के अध्ययन के ऊपर जो मानसिक दोषयुक्त थे, व्यक्तियों को चार समूहों में उनकी शारीरिक रूपरेखा के अनुसार विभक्त किया :

(अ) पुष्टकाय[2]— वे जो शक्तिवान होते हैं और इच्छानुसार व्यवस्थापन कर लेते हैं, कार्य में रुचि लेते हैं और दूसरी वस्तुओं की चिन्ता बहुत थोड़ी करते हैं।

(ब) लंबकाय[3]— इस प्रकार के व्यक्ति लम्बे और पतले होते हैं, दूसरों की निन्दा करते हैं। किन्तु अपनी निन्दा के प्रति सजग होते हैं।

(स) गोलकाय[4]— इस प्रकार के लोग मजबूत तथा छोटे होते हैं और दूसरे लोगों के साथ सरलता से मिल जाते हैं।

(द) डायसप्लास्टिक[5]— इस प्रकार के लोगों का शरीर साधारण होता है।

३. शारीरिक गुणों पर आधारित वर्गीकरण[6]— यह वर्गीकरण शैल्डन[7] ने भी शारीरिक गुणों के आधार पर किया है। इस वर्गीकरण का आधार शैल्डन का शरीर-विज्ञान तथा शरीर-विकास विज्ञान[8] के आधार पर ४०० व्यक्तियों का अध्ययन है। यथा—

(अ) कोमल तथा गोलाकार[9]— इस प्रकार के व्यक्ति अत्यन्त कोमल किन्तु देखने में मोटे लगते हैं और इनका व्यवहार उनकी आँतों के आन्तरिक शक्तिशाली पाचन पर निर्भर होता है।

(ब) आयताकार[10]— यह वे लोग होते हैं जो पूर्ण रूप से शक्तिवान् होते हैं, इनका शरीर भारी व मजबूत होता है और खाल पतली होती है।

(स) लम्बाकार[11]— इस श्रेणी के व्यक्ति शक्तिहीन होते हैं किन्तु इनमे उत्तेजनशीलता अधिक होती है, जिसके कारण बाह्य जगत में वे अपनी क्रियाओं को शीघ्रता से करते हैं।

---

1. E. Kretchner : *Physique & Character*, Harcourt, Brace & Co., N. Y., 1925.

2. Athletic. 3. Aesthemic. 4 Pyknic. 5. Dysplastic. 6. Somatypes. 7. Sheldon. 8. Morphology. 9. Endomorphic. 10. Mesomorphic. 11. Ectomorphic.

शैल्डन[1] का मत है कि शरीर के गुणों पर आधारित वर्गीकरण के व्यक्ति विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएँ रखते और विभिन्न प्रकार के व्यवहार को भी पसन्द करते हैं। यदि हम चाहते हैं कि उनके सामाजिक व्यवस्थापन मे कोई बाधा न पडे तो उन्हे इसी प्रकार के व्यवहार को देना चाहिए। साथ ही साथ इस प्रकार के नवीन शिक्षा के ढग, अनुशासन के ढग आदि को भी सोचना चाहिए जिससे इस प्रकार के व्यक्तियो को व्यवस्थापित करने मे आपत्ति न पडे।

व्यक्तित्व के वर्गीकरण के कुछ अन्य भी आधार हैं, जैसे—अंतःस्रावी प्रकार,[2] जैविक प्रकार,[3] फ्रॉयडन[4] प्रकार। हम इनका वर्णन यहाँ पर नही करेंगे, क्योंकि वह हमारे लिए अधिक आवश्यक नही है। अब हम युग द्वारा किये वर्गीकरण पर जो महत्वपूर्ण है, विचार करेंगे

४. अन्तर्मुखी,[5] विकासोन्मुख,[6] बहिर्मुखी[7]—युग के अनुसार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम सम्पूर्ण व्यक्तियो को दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं—(अ) बहिर्मुखी, और (ब) अन्तर्मुखी। इन दो भागो के साथ तीसरा प्रकार भी बाद मे जोड दिया गया, क्योंकि सम्पूर्ण मानव-जाति इन दो भागो के अन्दर नही आ सकती थी।

(अ) बहिर्मुखी व्यक्तियों की मुख्य विशेषताएँ[8]—बहिर्मुखी वे व्यक्ति होते हैं जिनकी रुचि बाह्य जगत में होती है। बहिर्मुखी व्यक्ति की विशेषताओ को हम निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं

१. *कार्य करने की दृढ इच्छा और बहादुरी के कार्यों मे रुचि रखते हैं।*
२. शासन करने का स्वभाव, शीघ्र न घबराने वाले।
३ शान्त और आशावादी, परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुकूल अपने को व्यवस्थित करने वाले।
४. उनका ध्यान सदैव बाह्य समाज की ओर लगा रहा है, इसलिए आन्तरिक जीवन कष्टमय होता है। अपने शासकीय स्वभाव के कारण बाह्य क्रियाओ को अधिक महत्त्व देते हैं।
५. वातावरण के प्रभाव मे शीघ्र प्रभावित होते हैं। बहिर्मुखी के जीवन का उद्देश्य अपने को वातावरण की आवश्यकताओ के अनुसार व्यवस्थापित करना होता है। उनके विचार स्वतन्त्र नही होते, किन्तु बहुत-से लोगो के विचारो के ही अनुसार वह अपने विचारो का निर्माण करता है।

---

1. W. H Sheldon (etal) : *The Varieties of Human Physique* Harper, N Y., 1940.

2. Endocrine Types 3. Biological Types 4 Freudian Types 5. Introvert 6 Ambivert 7. Extrovert Types. 8. Characteristics of Extroverts

६. आक्रामक, अहंवादी और अनियन्त्रित होते हैं।
७. उन गुणों को जानते हैं जिन्हें संसार में प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है तथा उन्हें अपनाते हैं।
८. धारा-प्रवाह बोलने वाले और मित्रों जैसा व्यवहार करने वाले होते हैं।
९. चिन्तामुक्त होते हैं।
१०. प्रायः रूढ़िवादी।
११. स्वयं की अवस्था, पीड़ा आदि की चिन्ता नहीं करते हैं।

(ब) अन्तर्मुखी व्यक्तियों की मुख्य विशेषताएँ[1]—अन्तर्मुखी व्यक्ति वे व्यक्ति हैं जिनकी रुचि स्वयं में होती है और स्वयं के जीवन की ओर आन्तरिक रूप में मुड़ी होती है। अन्तर्मुखी व्यक्तियों की विशेषताओं को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :

१. यह लोग कम बोलने वाले, लज्जाशील और पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने में रुचि लेते हैं।
२. इनका व्यवहार आज्ञाकारी होता है, शीघ्र ही घबराने वाले होते हैं।
३. शान्त स्वभाव के नहीं होते हैं। इनके अन्दर लचीलापन नहीं होता है।
४. इनके अन्दर आत्म-चिन्तन होता है। यह बहुत चिन्तन करते हैं।
५. अपने भावों को अपने तक सीमित रखते है।
६. आज्ञाकारी, स्वयं के लिए चिन्तित, सन्देही एवं सावधान होते है।
७. अधिक लोकप्रिय नहीं होते।
८. अच्छे लेखक होते हैं, लेकिन अच्छे वक्ता नहीं होते और चुपचाप रहते हैं।
९. चिन्ता-ग्रस्त रहते हैं।
१०. वे प्रायः प्रतिक्रियावादी होते हैं। अपने विचारों को वास्तविकता के अनुकूल बनाने में कोई श्रद्धा नहीं रखते और वास्तविकता को अपने स्वभावानुसार मोड़ने का प्रयत्न करते हैं।
११. अपनी वस्तुओं तथा कष्टों के प्रति सजग होते हैं।

स्पष्टतः कुछ ही इस प्रकार के व्यक्ति होते हैं जो पूर्णतया अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी होते हैं। बहुत-से लोग इस प्रकार के होते हैं जिनमें दोनों का मिश्रण होता है और वे जीवन की आवश्यकताओं के लिए स्पष्ट निर्णय रखते हैं। बहुत-से लोग इसी प्रकार के होते हैं, इसलिए उन्हें हम 'विकासोन्मुखी' कहते हैं। विकासोन्मुखी व्यक्ति एक स्थिति में अन्तर्मुखी धारणाओं को विचार में ला सकता है, और दूसरी स्थिति में बहिर्मुखी विचारों को अपनी क्रियाओं में स्थान दे सकता है। उदाहरण के लिए,

1 Characteristics of Introverts.

एक व्यक्ति अच्छा लेखक तथा वक्ता, दोनों हो सकता है। वह मित्रतापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित कर सकता है, किन्तु कार्य करना अकेले ही पसन्द करता है। हम में से बहुत से विकासोन्मुख प्रकार के ही होते हैं।

सत्य ही कहा है कि हरएक व्यक्ति शासन करने की इच्छा रखता है किन्तु समुदाय के भय के कारण, या हम कह सकते हैं कि समुदाय की इच्छा के कारण, वह अपनी इच्छा को कुचल कर रखते हैं। यदि व्यक्ति इन दोनों में—अपनी इच्छा तथा समाज की इच्छा में—सामंजस्य की भावना से कार्य करने की विचारधारा रखता है तो निस्संदेह उसका व्यक्तित्व अच्छा होगा। यदि वह सामंजस्य को प्राप्त नहीं करता तो निश्चय ही उसका जीवन असामान्य हो जाता है।

एक बहिर्मुखी का जो समुदाय की इच्छा से कार्य नहीं करता, व्यक्तित्व अनुचित प्रकार का होता है। वह अपने अन्दर सामाजिक दोष; जैसे—क्रूरता, नशा आदि, को स्थान देता है।

अन्तर्मुखी में सामाजिक रुचि नहीं होती। जब सामाजिक समस्याएँ उसके जीवन के साथ मेल करने को आती हैं, वह उनसे पलायन करने की सोचता है। इसी कारण बहुधा नाड़ी-विकार[1] से पीड़ित होता है।

इन वर्गीकरणों का मूल्य या उपयोगिता—ऊपर वर्णन किये हुए प्रत्येक प्रकार के वर्गीकरण की हम आलोचना कर सकते हैं। यह बहुत ही कठिन है कि एक व्यक्ति को हम एक ही समूह में सम्मिलित कर सकें। मानवीय गुण इतने अधिक हैं कि उन्हें वर्गीकृत करना असम्भव है, क्योंकि सभी गुण स्पष्ट नहीं होते। किन्तु फिर भी इन वर्गीकरणों की हमारे लिए यह उपयोगिता है कि हम व्यक्तित्व के दोषों सम्बन्धी उपचार सरलता से कर सकते हैं।

व्यक्तित्व की माप[2]

व्यक्तित्व को मापना और निर्धारण करना, एक बहुत ही प्राचीन समस्या है। शताब्दियों से मनुष्य ने अपने तथा दूसरों के व्यक्तित्व और चरित्र की माप करने की विधियों का पता लगाने की चेष्टा की। उन्होंने ऐसी विधि या साधन को चुना जो आज तक हमारी प्रत्येक संस्कृति[3] में कुछ महत्त्व रखते हैं। यह साधन कपाल विद्या[4], आकृति विद्या[5], आलेखिय विद्या[6], हस्तरेखा विद्या[7] आदि हैं। इन्हीं के द्वारा चरित्र के पढ़ने का प्रयास या चरित्र के बारे में बताने का प्रयत्न किया जाता है। मनोवैज्ञानिक इन सिद्धान्तों तथा ज्योतिषशास्त्र में विश्वास नहीं रखते। व्यक्तित्व के निर्धारण तथा व्यक्तित्व के गुणों को प्रकट करने के लिए मनोवैज्ञानिक कसौटियों का प्रतिपादन कर रहे हैं। इनमें से कुछ पर जो मुख्य हैं, हम यहाँ विचार करेंगे।

---

1. Neurosis. 2. Assessment of Personality. 3. Culture 4. Phrenology. 5. Physiognomy. 6. Graphology. 7. Palmistry.

व्यक्तित्व के मापने में वैज्ञानिक रूप से बहुत-सी बाधाएँ हैं। एक व्यक्तित्व के गुण को हम लम्बाई, तापक्रम या आयतन आदि की तरह वैज्ञानिक रीति से नहीं माप सकते— क्योंकि यह कोई स्थिर या मापानुरूप वस्तु नहीं है। जोन्स के अनुसार भी व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए हम इन ढङ्गों को नहीं अपना सकते, क्योंकि (१) इसमें मापन आरम्भ करने के लिए कोई भी शून्य अंक नहीं है, (२) मापन इकाइयों में कोई समानता नहीं होती, (३) मापन के सम्बन्ध में जो मुख्य शब्द प्रयोग किए जाते हैं उनके सम्बन्ध में कोई एक-सा मत नहीं है, (४) इन्हें मापने के लिए उपयुक्त साधन तथा यन्त्र उपलब्ध नहीं।[1]

किसी वस्तु के मूल्यांकन से तात्पर्य है— उस वस्तु-सम्बन्धी किसी प्रकार का वर्णन। जब हम मापते हैं, तो वर्णन का सहारा लेते हैं किन्तु यह वर्णन गुणनात्मक और साधारण अंक-सम्बन्धी होते हैं अर्थात् यह माप सदैव अंकों में होती है जो कम या अधिक हो सकती है। वास्तविक रूप से यह माप पूरे या एक अंश होती है, वह पूरी माप नहीं हो सकती। जब हम किसी वस्तु को मापते हैं तो कोई भी एक गुण या एक से अधिक गुण उस वस्तु का मापते हैं, जैसे—लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, ऊँचाई, भार, चिकनापन या कठोरता आदि। किन्तु विशेष बात यह है कि कभी भी हम उस वस्तु के सब गुण एक मापन द्वारा नहीं माप सकते। यह बात जब भौतिक वस्तुओं के लिए सत्य है तो व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो वस्तु नहीं है, हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि कोई भी एक मापक हमें पूर्ण रूप से इसका पूरा चित्र नहीं दे सकता।

व्यक्तित्व को मापने की विविध विधियाँ[2]

व्यक्तित्व की विशेषताओं को मापने की तीन मुख्य विधियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) व्यक्तिगत विधि[3], (२) वस्तुनिष्ठ विधि[4], (३) प्रक्षेपी प्रविधि[5]।

१. व्यक्तिगत विधि

इस प्रकार की विधि में हम व्यक्ति-सम्बन्धी सूचना या तो व्यक्ति से ही स्वयं लेते हैं या उसके मित्रों या सम्बन्धियों से भी प्राप्त करते हैं। इसको क्रियान्वित करने के चार ढङ्ग हैं :

(अ) जीवन-कथा या उसका स्वयं का इतिहास[6]

(ब) व्यक्तिगत इतिहास[7]

(स) साक्षात्कार विधि[8]

(द) अभिज्ञापक प्रश्नावली[9]

---

1. A. J. Jones : *Principle of Guidance* (3rd Edition : 1945), p. 179.

2. Various Methods of Personality Measurement. 3. Subjective Method. 4. Objective Method. 5. Projective Method. 6. Biography or Self-history. 7. Individual History. 8. Interview Method. 9. Inventory Technique.

(अ) जीवन-कथा अथवा व्यक्ति का स्वयं का इतिहास

इस विधि के अनुसार जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करना होता है मनोवैज्ञानिक कुछ मोटी बातों के आधार पर व्यक्तित्व को कुछ शीर्षकों में बाँट देत है और फिर उस व्यक्ति से अपना व्यक्तिगत इतिहास लिखने को कहता है। इस सूची के आधार पर वह व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में कुछ निश्चित निष्क निकालता है।

इस विधि मे यह कठिनाई है कि भूलने के कारण व्यक्ति अपनी कुछ मुख्य घटनाओ को भूल जाता है, और उनको सविस्तार एव सही-सही लिख नही पाता इस विधि के द्वारा कुछ अचेतनावस्था मे पडी हुई इच्छा या आवश्यकताओ का भं हम अनुमान नहीं लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के व्यवहार या रुझान[1] आदि का भी सत्य रूप मे कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस विधि को हा अन्य विधियों का पूरक कह सकते है। यह अकेली विधि व्यक्तित्व के बारे में हं कोई निश्चित या सत्य तथ्य नही दे सकती।

(ब) व्यक्तिगत इतिहास

इस विधि के अन्दर हम बाल्य वातावरण के उन तत्वो तथा वंशानुगत तत्वं का अध्ययन करते हैं जो व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। व्यक्ति की मानसि रचना को हम उसके परिवार के इतिहास, रीति-रिवाज, धारणाएँ, जन्म लेने क क्रम आदि का सहारा लेकर समझने का प्रयत्न करते हैं।

इस विधि को प्राय. मानसिक चिकित्सक अपनाते हैं। मुख्य रूप मे साधारण तथा जन्म से सम्बन्धित, जन्म से पूर्व की परिस्थितियो, माता-पिता का बालक प्रति व्यवहार, व्यक्ति की बीमारी की घटनाओं का इतिहास, आदि का सहार मानसिक चिकित्सा के लिए लेते हैं।

(स) साक्षात्कार विधि[2]

जिन मुख्य बातो को हम व्यक्ति के इतिहास से पता नहीं लगा पाते, उनक इस विधि के द्वारा अध्ययन किया जाता है। इस विधि के अनुसार मनोवैज्ञानिक विषयं का साक्षात्कार[3] करता है। यदि साक्षात्कार करने वाला एक योग्य व्यक्ति है त साक्षात्कार के साथ-साथ वह सब अनिवार्य सूचनाओ को लिख लेता है। वह व्यक्ति के अन्दर पहले अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह व्यक्ति की समस्याओ को समझने मे सहयोग प्रकट करता है, साथ हं साथ उसके उत्तरदायित्व को भी समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार जितनं भी सूचनाएँ वह प्राप्त करता है, वे व्यक्ति की व्यक्तित्व-सम्बन्धी विशेषताओ कं समझने तथा निर्णय करने मे सहायक होती हैं।

साक्षात् करने मे साक्षात्कार करने वाले को कभी भी अपूर्ण निर्णय नहीं देन

1. Inclination. 2. Interview Method. 3. Interview.

चाहिए। उस व्यक्ति सम्बन्धी अपनी पूर्व-धारणा के आधार पर कोई विचार नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इन विचारों से कभी-कभी बहुत भारी त्रुटि हो जाती है। अपना निर्णय देने से पहले उस व्यक्ति को पूर्ण अवसर देना चाहिए, जिससे वह अपने इतिहास को पुनः दोहरा सके। यों तो साक्षात्कार बड़ी ही अच्छी विधि है, किन्तु यह बहुत ही व्ययपूर्ण है। साथ ही इसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्तिगत विधि है, इसलिए हम इस पर अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

(द) अभिज्ञापक प्रश्नावली[1]

इस विधि मे हम प्रश्नो की एक प्रश्नावली बनाते हैं और व्यक्ति से स्वयं इसे भरने का अनुरोध करते हैं। यह प्रश्नावली विभिन्न प्रकार की होती है। यह प्रश्नावली उनको दे देते हैं जिनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना है।

प्रश्न-प्रश्नावली[2] मे साधारणतया प्रश्नों की एक सूची होती है, जिसका व्यक्ति को लिखित या 'हाँ' या 'ना' मे उत्तर देना होता है। यह प्रश्न इस प्रकार तैयार किये जाते हैं कि उनमे इच्छित जानकारी प्राप्त हो जाती है। व्यक्ति की आरम्भ की परीक्षाओ मे वुडवर्थ की 'साइकोन्यूरेटिक इन्वेन्टरी'[3] है। इसमे ११५ प्रश्न व्यक्तियो के जीवन से सम्बन्धित उन विभिन्न अनुभवों के हैं जिन्हे व्यक्ति जब वह दूसरे के साथ होता है, प्रत्युत्तर स्वरूप करता है। साथ ही साथ उसके अनुभव भी इसमे सम्मिलित रहते हैं। विभिन्न व्यक्तित्व-प्रश्नावली मे दिये हुए प्रश्न निम्न प्रकार के होते हैं :

१. क्या आप अपने परिवार के सदस्यो से झगडा करते हैं ?—(हाँ, नहीं)

२. क्या आप अक्सर रात को जागते हैं ?—(हाँ, नहीं)

३. क्या आप चिन्ता करते है—(अक्सर, कभी-कभी, कदाचित्)

या दूसरे प्रकार के प्रश्न होते है, जैसे—

४. क्या आप अपने वैवाहिक सम्बन्ध से सन्तुष्ट हैं ? (पूर्ण रूप से, थोड़े रूप मे, बिलकुल नहीं)

विषयी से उस अंश को चिन्ह लगाने के लिए कहा जाता है जो करीब-करीब ठीक हो।

प्रश्नावली बहुत-से व्यक्तित्व-गुणो, जैसे—दु:ख, प्रभुत्व, सामाजिकता, अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी आदि मालूम करने या उनकी परीक्षा करने के लिए बनायी जाती है। इन परीक्षाओ द्वारा व्यक्ति की रुचि की सीमा भी मालूम हो सकती है, यदि प्रश्नावली मे इस प्रकार के विभिन्न प्रश्नो को सम्मिलित कर दिया जाये जो व्यक्ति की रुचि या अरुचि के सम्बन्ध मे हो। इस प्रकार व्यवसाय आदि के चुनने या उसके बारे मे रुचि जानने मे भी यह प्रश्नावली सहायक होती है। इस प्रश्नावली-विधि के अनुसार

1. Inventory Technique. 2. Questionnaire. 3. Psychoneurotic Inventory.

हम व्यक्ति के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक या मौलिक विचारों आदि का भी पता लगाने मे सफल हो सकते हैं।

यह ढङ्ग बड़ा ही उपयोगी है और दुःख आदि जानने वाली प्रश्नावली आदि मे पर्याप्त मात्रा मे विश्वसनीयता[1] है, किन्तु इसकी वैधता[2] कम होती है। उच्च विश्वसनीयता से हमारा तात्पर्य यह है कि किसी दूसरी परीक्षा मे भी वे ही या उसी प्रकार के उत्तर प्राप्त हों। ऐसा कुछ विशेष प्रकार की प्रश्नावलियों में पाया जाता है। परन्तु इस प्रश्नावली विधि द्वारा सदैव व्यक्ति से सत्य उत्तर प्राप्त नहीं किये जा सके। अक्सर व्यक्ति सत्यता को छिपा लेते हैं या झूठा उत्तर दे देते हैं; अतएव उनकी वैधता निम्न होती है।

वैधता और विश्वसनीयता से हमारा क्या तात्पर्य है ?

विश्वसनीयता और वैधता के बारे मे हम थोड़ा-सा वर्णन ऊपर भी कर चुके हैं। ज्ञान-वर्द्धन हेतु शेष तथ्य निम्न भाँति हैं .

१. मापने का यन्त्र तभी वैध कहा जाता है, जबकि प्राप्त सूचनाएँ सत्य हों।
२ मापने का यन्त्र विश्वसनीय तभी हो सकता है यदि प्राप्त सूचनाएँ उसी प्रकार की किसी दूसरी परीक्षा मे भी प्राप्त हों या उसी प्रकार की हो।

इसका तात्पर्य यह है कि प्रश्नावली आदि के समान किसी विधि की मान्यता तभी हो सकती है जबकि वह उन सभी गुणों को सत्य सूचना दे जिसके लिए उसको तैयार किया गया है। उदाहरण के लिए, यदि प्रश्न संख्या-पत्र का उद्देश्य यह मापन करना है कि व्यक्ति आत्म-केन्द्रित[3], चिन्तित या उत्सुक है तो यदि यह इसको सत्य रूप मे नापता है, अर्थात् व्यक्ति के अन्दर उतनी ही मात्रा मे चिन्ता है जितनी कि प्रश्नावली द्वारा पता चलता है, तो हम कह सकते हैं कि यह प्रश्नावली माननीय है। एक विश्वसनीय यन्त्र से तात्पर्य यह है कि एक अवसर पर प्रश्नावली मे दिए गए उत्तर एक दूसरी दी गई प्रश्नावली या उस प्रकार की प्रश्नावली में दूसरे अवसर पर भी समान हों। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति कहता है कि वह अक्सर चिन्तित रहता है और उसी प्रकार के प्रश्नो मे उसी प्रकार के उत्तर दूसरे अवसर पर भी देता है तो इस प्रकार का यन्त्र विश्वसनीय कहा जायेगा।

व्यक्तिगत विधि के दोष[4]

व्यक्तिगत विधि मे बहुत-से दोष हैं। इनमें से मुख्य इस प्रकार हैं :

(i) वे विषयीगत होती हैं[5]—अर्थात् उस व्यक्ति पर निर्भर होती हैं, जिसके

1. Reliability. 2. Validity. 3. Self-centred. 4. Defects of Subjective Technique. 5. They are subjective.

व्यक्तित्व का अध्ययन किया जा रहा है, और वह व्यक्ति कुछ तथ्यों को
सकता है।

(ii) ये अविश्वसनीय होती हैं[1]—अर्थात् व्यक्ति सामान्य रूप से समान
को नहीं देते। वे एक समय एक बात को कहते हैं और दूसरे समय पर दूसरी
करते हैं।

(iii) उनमें वैधता कम होती है—अर्थात् जो भी सूचना हम व्यक्ति
सहायता से प्राप्त करते हैं, वह हमेशा सत्य नहीं होती। वे तथ्य बात को छिपा
हैं और उत्तर में उन उत्तरों को देते हैं जो सामाजिक रूप से मान्य हों
उदाहरण के लिए, बहुत थोड़े लोग इस बात को स्वीकार करेंगे कि उनमें समलैं
भावनाएँ[2] जीवन में किसी भी अवसर पर थीं।

(iv) ये चेतन मस्तिष्क की बातें बताती हैं—यह विधियाँ व्यक्ति के अ
मस्तिष्क के बारे में कोई भी बात नहीं बताती, जबकि व्यक्ति के मस्तिष्क का
भाग अचेतन है और व्यक्ति पर गहरा प्रभाव डालता है।

इस प्रकार यह विधियाँ व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से मापने में असमर्थ हैं
अपूर्ण भी हैं।

२. वस्तुनिष्ठ विधियाँ[3]

वस्तुनिष्ठ विधियाँ व्यक्ति के बाह्य व्यवहार पर आधारित होती हैं। ये व
के स्वयं वर्णन पर मुख्य रूप से आधारित नहीं होती हैं। ये वैज्ञानिक होती हैं
इनमें वस्तुनिष्ठता[4] होती है।

वस्तुनिष्ठ विधियों में (i) नियन्त्रित निरीक्षण[5], (ii) व्यक्तिगत
का मूल्य निर्धारण[6] या अन्य व्यक्ति के द्वारा, अनुमानांकन मापदण्ड द्वारा व्यक्ति
व्यवहारों का निराकरण या व्यवहार के लिए अन्य पूर्व-कारणों की प्रस्तुति, (
शारीरिक परिवर्तन जो व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं, और (iv) मौखिक व्यव
द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन[7] आते हैं। ये सब विधियाँ पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं हैं
जैसे—निर्धारण मापनी[8] को कभी-कभी हम व्यक्तिगत विधियों में भी सम्मिलित
लेते हैं किन्तु उचित सावधानी बरतने से उनमें वस्तुनिष्ठता भी आ जाती है।
इस विवाद के आधार पर यहाँ हम उन्हें वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में सम्मिलित करते

अब हमें इन परीक्षाओं पर क्रमानुसार विचार करना चाहिए :

१. नियंत्रित निरीक्षण

इस विधि का सफल प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में हो सकता है।

---

1. They are unreliable. 2 Homo-Sexual. 3 Objective Te
niques. 4. Objectivity 5. Controlled Observation. 6. Appraisal
Personal Qualities. 7. Study of personality through verbal behavio
8. Rating Scale.

विधि मे प्रयोगशाला की नियन्त्रित परिस्थितियों के मध्य एक कुशल मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहारो का अध्ययन करता है।

इस विधि को भी पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं कह सकते, क्योंकि बहुत सी कठिनाइयाँ हैं जो विश्वसनीयता पर प्रभाव डालती हैं। उनमे से कुछ इस प्रकार हैं—(i) निरीक्षण के समय की लम्बाई, (ii) निरीक्षण की संख्या, (iii) उस सीमा का ज्ञान जिस तक परीक्षक व्यक्तित्व के उस गुण का स्पष्ट ज्ञान कर सके, (iv) परिस्थिति के बाह्य तत्त्व बीच मे बाधा डालते हैं, (v) यह सत्य है कि निरीक्षण एक विशेष परिस्थिति मे एक विशेष गुण की कार्यशीलता को स्पष्ट करता है।

२. निर्धारण-मापनी[1]

वास्तविक रूप मे यह व्यक्तित्व-मापन का वस्तुनिष्ठ ढंग सही है। निर्धारण-मापनी वह विधि है जो व्यक्तित्व के गुणों का अनुमान लगाने के लिए है, जो कम रूप मे व्यक्तिगत है और साधारण ढङ्गों से अधिक सही है। यह व्यक्तित्व का जैसा कहा जा चुका है, व्यक्तिगत ढङ्ग से अध्ययन करती है।

लगभग सभी व्यक्तित्व की विशेषताएँ निर्धारण-मापनी द्वारा पता लगाई जा सकती हैं। किन्तु इसमें गुणों को प्रदर्शित करने की एक सीमा भी होती है, जिससे इस मापनी की विश्वसनीयता मे अन्तर न पड सके।

सबसे अधिक साधारण रूप से मापन 'हाँ, नहीं' के उत्तरो के रूप मे होता है, जैसे यह प्रश्न हैं—*क्या आप उसे कंजूस समझते हैं? क्या वह अपने मित्रों को प्यार करता है?*

इस मापनी पर प्राप्तांको को हम प्रतिशत मे प्रकट कर सकते हैं। सबसे अधिक प्रसन्नता वाले व्यक्ति १०० प्रतिशत प्रसन्न कहे जाते हैं, साधारण व्यक्ति ५० प्रतिशत, निम्न ० प्रतिशत। अधिकतर जिस मापनी को हम व्यक्तित्व के गुणों को मालूम करने के लिए प्रयोग करते हैं, उसमे ५ से १० तक खण्ड होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यह मापनी एक विशेष गुण को ५ खण्डो मे ० से ५; या ० से १० तक १० खण्डों में विभक्त करती है। जिस मापनी मे ५ विभाग होते हैं, उसमें ० और ५ बहुत ही तीव्र दशाओं का वर्णन करते हैं, १ और ४ निम्न या उच्च, २ उनके लिए जो औसत से कम और ३ जो औसत से ऊपर हैं।

इस प्रकार की निर्धारण-मापनी का एक उदाहरण नीचे दिया गया है :

उत्तम	औसत से अधिक	औसत	औसत से कम	बहुत कम	अपने मूल्यकरण को इस वर्ग मे रखिए।
(बहुत ईमानदार)	(ईमानदार)	(समय पर ईमानदार)	(बेईमान)	(बिलकुल बेईमान)	☐

1. Rating Scale.

दूसरे प्रकार के मापन को अधिक उपयोगी होता है और सुविधाजनक भी है, यह रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित मापन[1] होता है। क्षैतिज रेखा द्वारा बिन्दु या निशान उस जगह के लिए स्थान में लगा देता है जो मापन में उस गुण के लिए छोड़ा जाता है। कभी-कभी रेखा को हम विभिन्न इकाइयों में बाँट देते हैं और गुण का निर्धारण वर्णन के अनुसार करते हैं और तब उसी के अनुसार रेखा में निशान लगाते हैं। एक अंश का चार वाले गुणवर्णन के नीचे उदाहरणस्वरूप दिया जा रहा है जो कार्य करने वाले कर्ता की कार्य-शक्ति को प्रदर्शित करते हैं।

↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑

मन्द उदासीन औसत कठिन परिश्रमी शक्तिवान्

औसत व्यक्ति, किसी भी गुण में रेखा के मध्य पर होता है। कभी-कभी मापनी निर्धारक[2] अपनी उदारता की त्रुटि[3] के कारण या परिचयात्मक सम्बन्ध के कारण, औसत में ही व्यक्तियों को रखना पसन्द करते हैं। कभी-कभी एक मापन-निर्धारक दूसरे से अधिक उदार होता है तब और भी अधिक समस्या हो जाती है। किन्तु इस त्रुटि को दूर करने के लिए हम सांख्यिकी के नियमों[4] का प्रयोग कर सकते हैं।

दूसरी त्रुटि को हम परिवेश प्रभाव[5] कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी तीव्र बुद्धि के कारण एक गुण प्रदर्शित करने में निर्धारण-मापन को प्रभावित कर लेता है तो वह उसे बिना सोचे ही दूसरे गुणों में सबसे उच्च स्थान देने का प्रयत्न करेगा। यदि उसने एक समय में अनुचित घृणा प्राप्त की है तो उस प्रभाव को दूर करना निर्धारण-मापक के लिए कठिन हो जाता है, जबकि वह दूसरे गुणों का निर्धारण कर रहा हो।

इस प्रकार के मापदण्ड के प्रयोग से लाभ यह है कि हम व्यक्ति के गुणों के माध्यमिक अंशों को अधिक अच्छी प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं जितना कि शब्दों द्वारा नहीं हो सकता है। साथ ही साथ दो या दो से अधिक मापन-निर्धारकों के नियमों का हम औसत भी निकाल सकते हैं। कोई विशेष निर्धारक ईर्ष्यालु भी हो सकता है, या एक-पक्षीय हो सकता है, किन्तु विभिन्न निर्धारकों की ईर्ष्याएँ विभिन्न दिशाओं में हो सकती हैं और यह एक-दूसरे को नष्ट कर देती हैं, और इस प्रकार केवल उचित रूप, निष्पक्ष और ईर्ष्या-रहित औसत निर्धारक माप हमें मिल जाता है।

इन विधियों की वैधता हम सरलता से पता नहीं लगा सकते। निरीक्षक का पक्षपात, ईर्ष्या आदि अन्तिम निष्कर्ष में अनुचित प्रभाव डालती हैं। निरीक्षक अपने ही व्यक्तित्व के आधार पर दूसरे व्यक्तित्व को देखने का प्रयत्न करता है।

---

1. Graphic Rating Scale. 2. Raters. 3. Generosity Error. 4. Statistical Method. 5. Halo Effect.

यदि हम विभिन्न निरीक्षकों के मत को एक साथ संगठित कर दें, जो वास्तव में एक-दूसरे से स्वतन्त्र हों, तो हमें हमारे निष्कर्षों में अधिक वैधता प्राप्त हो सकती है।

निर्धारकों[1] की विश्वसनीयता को भी हम विभिन्न निरीक्षकों के स्वतन्त्र कार्य को देखकर निर्धारित कर सकते हैं। विश्वसनीयता को प्राप्त करने के लिए हमें निर्धारक-मापदण्ड को बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए। साथ ही साथ निर्धारकों तथा निर्णायकों को भी पूर्ण शिक्षित तथा व्यक्तित्व के ज्ञान आदि में पूर्ण कुशल होना चाहिए।

३. शारीरिक परिवर्तन : व्यक्तित्व के संकेतक के रूप में[2]

व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं को हम अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के व्यवहार को देखकर अध्ययन कर सकते हैं। व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मुख्य तत्त्व 'संवेग' है। संवेग को प्रदर्शित करने वाले मुख्य शारीरिक संकेतक—हृदय की गति और रचना, रक्त-परिमाण[3], रक्त-भार[4], श्वसन के परिवर्तन, मनोविद्युत अनुक्रिया[5] और त्वचिगत परिवर्तन आदि हैं। इन शारीरिक परिवर्तनों की माप के द्वारा हम एक सीमा के अन्दर झूठ या धोखे की माप एक व्यक्ति के अन्दर करने में सफल होते हैं।

४. मौखिक व्यवहार द्वारा व्यक्तित्व का अध्ययन

व्यक्तित्व की विशेषताओं का लिखित या मौखिक प्रत्युत्तरों के द्वारा अध्ययन करने में यह समझा जाता है कि यह व्यक्तित्व के मुख्य गुणों का संकेतक है। बहुत-सी व्यक्तित्व परीक्षाएँ मौखिक व्यवहारों का प्रयोग करती हैं। इनमें से मुख्य साहचर्य परीक्षा, प्रक्षेपी प्रविधि, प्रश्न-उत्तर परीक्षा[6], अभिवृत्ति-मापनी तथा ज्ञान की परीक्षाएँ और सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों की परीक्षाएँ[7] हैं।

साहचर्य परीक्षाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षाएँ वे हैं, जिनमें परीक्ष्य लगातार बोलता रहता है उस समय तक, जब तक आगे बोलने में असमर्थ हो जाता है। इसका प्रयोग मनो-विश्लेषक किसी भावना का पता लगाने के लिए करते हैं।

दूसरे प्रकार की साहचर्य परीक्षा में हम विषयी को एक उत्तेजक शब्द दे देते हैं और इसके प्रत्युत्तर में विषयी के मस्तिष्क में जो भी आता है, वह बोलता है। इन परीक्षाओं को हम विषयी की संवेगात्मक कठिनाइयों का पता लगाने के लिए प्रयोग करते हैं। इन साहचर्य परीक्षाओं को हम संवेगात्मक ग्रन्थियों के रूप में प्रयोग

1. Ratings. 2. Physiological changes as personality indicators. 3. Blood-volume 4. Blood-pressure. 5. Psycho-galvanic Reflex. 6 Association Test, Projective Test, Question-answer Test. 7. Attitude scales and tests of knowledge and judgment of social and ethical values.

करते हैं। यह हमे अपराध, मानसिक अस्वस्थता, रुचि आदि के बारे में भी बताती हैं।

३. प्रक्षेपी प्रविधि[1]

तीसरे प्रकार की विधि जिसे हम व्यक्तित्व को मापने के लिए उपयोग करते हैं, 'प्रक्षेपी प्रविधि' है। व्यक्तिगत या वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन नही करतीं। प्रत्येक व्यक्ति मे प्रेरणाएँ इच्छाएँ, रुचि, संवेग, विश्वास आदि होते हैं जो वास्तव मे दूसरों को दिखाई नही देते, किन्तु वह उस व्यक्ति के ही अङ्ग होते हैं। व्यक्ति स्वय भी इनके बारे मे चेतन नही होता। इस प्रकार बिना इन अचेतन प्रेरणाओ, ऐषणाओं को विचार में रखते हुए हम व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से व्यक्त नही कर सकते, अन्यथा हमे व्यक्तित्व का एकांगी चित्र ही मिल पाता है। अब तक व्यक्तित्व को मापने के लिए जितनी भी विधियाँ या ढंग प्रस्तुत किए जा चुके हैं, उनमे स्वतन्त्र साहचर्य और नियन्त्रित साहचर्य को छोड़कर कोई भी अचेतन मन को स्थान नही देता। इसके लिए हमे नवीन विधियो की आवश्यकता है जो हमे व्यक्ति के अचेतन के सम्बन्ध मे भी ज्ञान दें। प्रक्षेपी प्रविधियाँ इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक उपयोगी तथा उचित हैं।

प्रक्षेपण से क्या तात्पर्य है ?[2]

मनोविश्लेपक प्रक्षेपण को एक रक्षायुक्ति[3] कहते हैं, जिससे तात्पर्य यह है कि यह इस प्रकार की प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति अपनी दबी हुई इच्छाओ को जो किसी परिस्थिति का सामना करने मे असफलता के कारण अचेतन मन मे संकलित हो जाती हैं, किसी नई वस्तु की ओर परिवर्तित करके प्रकट करता है। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार एक हैड क्लर्क अपने ऑफीसर द्वारा डाँटे जाने पर अपने अधीन दूसरे सहायक क्लर्कों को डाँटता है और अपने अचेतन मन को झुँझलाहट को अपनी पत्नी को फटकारने के द्वारा व्यक्त करता है। इसी प्रकार एक अध्यापक भी जिसकी पत्नी कर्कशा है और वह स्वयं पत्नी-भक्त[4] है, अपने दबे क्रोध को अपनी कक्षा के बालको को पीटने के द्वारा प्रकट करने का प्रयास करता है।

मनस्तापी[5] की इच्छाएँ, विचार, ऐषणाएँ आदि उसको वास्तविकता से दूर ले जाती हैं। इस प्रकार का व्यक्ति अपने ही भ्रमपूर्ण विचारो के प्रकाश मे दूसरे व्यक्तियो के व्यवहार को गलत समझता है। उदाहरण के लिए, जब मनस्तापी अपने सम्पर्क मे आने वाले सभी व्यक्तियों को नीच समझता है, तब वास्तव मे वह अपनी दबी हुई इच्छाओं का प्रक्षेपण ही करता है।

मुख्य विचार जिसके ऊपर यह प्रक्षेपी विधि आधारित है, यह है कि कोई भी दो व्यक्ति बाह्य वस्तु को एक ही विचार से नही देखते। उनके विचारों मे अन्तर

1. Projection Technique 2. What Projection Means ? 3. Defence Mechanism. 4. Henpacked. 5. Neurotic Person.

उनके व्यक्तित्व के कारण होता है। इस प्रकार प्रक्षेपी विधि में हम विषयी को किसी बाह्य पदार्थ के सहारे अपने विचार प्रक्षेप करने को कहते हैं। इस प्रकार उस व्यक्ति द्वारा अपने विचार का प्रक्षेपण हमें उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में सहायता देता है।

इन विधियों में हम विषयी से स्याही के धब्बों को देखकर एक कहानी या उसका अर्थ लिखने को कहते हैं। इस प्रकार उसका आन्तरिक आत्म[1] उसके दिये गए प्रक्षेपण के विचारों के द्वारा बाहर की ओर खींचा जाता है। ये विधियाँ उन्हीं दशाओं में सफल होती हैं, जब व्यक्ति के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता है।

विभिन्न प्रक्षेपी प्रविधियों की निम्न विशेषताएँ होती हैं

(i) जिस वस्तु को हम उत्तेजक के रूप में लेते हैं, वह अस्पष्ट और बिना पहचानी हुई होती है। विषयी में हम उसका अर्थ बनाने के लिए कहते हैं। इस प्रकार की क्रिया द्वारा उसका सही व्यक्तित्व निरीक्षण-कर्त्ता के सामने आ जाता है और उसका वैज्ञानिक अध्ययन कर लिया जाता है।

(ii) प्रक्षेपी विधि में वास्तविकता से अधिक हम मनोवैज्ञानिक सत्य पर जोर देते हैं। व्यक्ति के जीवन का इतिहास इतना आवश्यक नहीं जितने कि उसके विचार, उद्देश्य आदि। इन वस्तुओं की ओर प्रक्षेपण हमारा ध्यान केन्द्रित कर देता है।

(iii) इन विधियों का हम दुरुपयोग भी कर सकते हैं, क्योंकि परीक्षक भी अपने विचारों और मत आदि का प्रक्षेपण कर सकता है। यह मनोवैज्ञानिक ज्ञान में बाधक हो सकता है। इस प्रकार व्यक्तित्व का निराकरण परीक्षक के विचारों आदि पर भी आश्रित हो सकता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण विचार बनने की सम्भावना बनी रहती है।

प्रमुख प्रक्षेपी प्रविधियाँ इस प्रकार हैं :[2]

१. रोर्शाक परीक्षा[3]	२. थेमेटिक एपरसेप्शन परीक्षा[4]
३. प्ले टेकनीक[5]	४. शब्द-साहचर्य परीक्षा[6]
५. चित्र-साहचर्य परीक्षा[7]	६. अभिनय-प्रदर्शन परीक्षा[8]

१. रोर्शाक परीक्षा

यह परीक्षा हरमैन रोर्शाक द्वारा बनाई गई है। इसमें हम स्याही के धब्बों को एक सफेद कागज पर गिरा देते हैं और फिर कागज को धब्बे के बीच से मोड़ देते हैं।

1. Internal Self. 2 The Main Projective Techniques are . 3. Rorschach-Test. 4. Thematic Apperception Test. 5 Play Technique. 6. Word-Association Test. 7. Picture-Association Test. 8. Dramatic Production Test.

थोड़ी देर बाद दबाकर, हम कागज को खोल देते हैं, परिणामस्वरूप जो चित्र दिखाई दे मालूम आता है, वह स्याही के धब्बों के द्वारा बना चित्र होता है। इसका एक उदाहरण दिया हुआ निम्न चित्र है,

[रोर्शा परीक्षा-चित्र]

रोर्शा परीक्षा में इस प्रकार १० स्याही के धब्बे प्रयोग किए जाते हैं। इनमें से कुछ को हम सफेद कागज पर बनाकर दिखाते हैं, और कुछ को रंगीन कागज पर बनाकर विषयी के सम्मुख उपस्थित करते हैं। यह रंग गहरे फूके रंग से आरम्भ होते हैं और लाल या नीले के बीच रहते हैं। १० चित्र इस प्रकार बनाये जाते हैं जिनमें से अन्तिम तक उनमें जटिलता बढ़ती जाती है। यह धब्बे इस प्रकार के होते हैं कि विषयी को इनमें कुछ वस्तु प्रतीत होती है।

धब्बों के इस समुदाय को हम विषयी को इस प्रकार दिखाते हैं कि एक समय में उसके सामने एक ही चित्र रहता है और वह बताता है कि वह क्या देख रहा है। *विषयी उसी धब्बे में एक के बाद दूसरी वस्तु का अनुभव करता है।* विषयी की प्रतिक्रियाओं को अंकों के रूप में रखने के लिए परीक्षक इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर पर अंक प्रदान करता है :

(i) कितनी बार विषयी ने आदमी का चित्र देखा ? कितनी बार जानवरों का चित्र देखा ? कितनी बार पौधे और भूमि-चित्र[1] आदि को देखा ?

(ii) क्या उसने सम्पूर्ण चित्र को देखा या विस्तृत रूप में देखा है ? जिन चित्रों को उसने देखा, वे कितने सुन्दर थे ?

(iii) उसकी कल्पनाओं में कितनी वास्तविकता या अस्वाभाविकता है ?

इन विभिन्न विस्तारों के आधार पर परीक्षक बहुत-से आश्चर्यजनक परिणाम निकालता है। धब्बे को पूर्ण रूप में देखने से तात्पर्य यह है कि उस विषयी के अन्दर

1. Land-scape.

सहृदय और संकलन योग्यता है, जबकि व्याख्यात्मक वर्णन उसके अन्दर वास्तविकता की भावना को व्यक्त करता है। इसी प्रकार विभिन्न जानवरों को देखने से तात्पर्य यह है कि उसकी शृङ्खला दृढ़ है। स्वच्छ एवं अच्छे चित्रों को देखने से तात्पर्य यह है कि विषयी का नियन्त्रण अच्छा है। जब इन सभी व्याख्याओं को परीक्षक मिला देते हैं तभी विषयी का व्यक्तित्व किस प्रकार का है, यह पता चल जाता है।

इस विधि की वैधता का पता हम इस प्रकार लगा सकते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को रोर्शाक के परिणामों द्वारा मापें और फिर दूसरी विधियों द्वारा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी से इसकी तुलना करें। यदि इस तुलना में रोर्शाक द्वारा मापित व्यक्तित्व की धारणा अन्य विधियों द्वारा मापित व्यक्तित्व की धारणा के समान ही है तो 'रोर्शाक परीक्षा' वैध सिद्ध हो जायगी।

इस परीक्षा की विश्वसनीयता को ज्ञात करने के लिए हम लगातार इस परीक्षा को ६ से १२ महीने तक देते हैं। यह देखा गया है कि एक वर्ष बाद औसतन २५ या ३० प्रतिशत प्रत्युत्तर एकसे होते हैं। इसी परीक्षा को फिर पाँच वर्ष बाद दोहराया जाता है, जबकि विषयी सभी प्रतिक्रियाएँ भूल जाता है, तब यदि विषयी का मापा हुआ व्यक्तित्व पहले माप हुए व्यक्तित्व से मेल खाता हो तो रोर्शाक परीक्षा को विश्वसनीय समझा जा सकता है।

२ थेमेटिक एपरसेप्सन टेस्ट[1]

चित्र-कहानी परीक्षा—इस परीक्षा में चित्रों की शृङ्खला विषयी को दिखाई जाती है और उससे उन्हें देखकर एक कहानी बनाने को कहते हैं, जो इस प्रकार के प्रश्नों के आधार पर होती है—चित्र में पात्र क्या कर रहा है ? वह क्या महसूस कर रहा है ? इसका क्या परिणाम होगा ?—इत्यादि। इस प्रकार विषयी द्वारा बनाई हुई कहानी व्यक्तिगत होती है। यह विधि अत्यन्त उपयोगी है, हालांकि शुद्ध मूल्या-कन इसमें सम्भव नहीं है।

व्यक्तित्व की कुछ महत्त्वपूर्ण परीक्षाएँ[2]

अब हम उन परीक्षाओं का वर्णन करेंगे जो महत्त्वपूर्ण हैं और जिनका वर्णन *अभी तक ऊपर नहीं किया गया है, यथा—*

(१) वुडवर्थ की 'साइको-न्यूरोटिक इन्वेन्टरी'[3]—इसमें १०० से अधिक प्रश्न होते हैं, इन प्रश्नों का उत्तर विषयी 'हाँ' या 'नहीं' में देता है।

(२) प्रेसी की 'कास-आउट' परीक्षा[4]—यह परीक्षा व्यक्ति की संवेगात्मक विशेषताओं को मापने के लिए प्रयोग की जाती है। इसमें विषयी से कहा जाता है

1. The Thematic Apperception Test. 2. Some of the important Personality Tests. 3. Woodworth's Psycho-neurotic Inventory. 4. Pressey's Cross-out Test.

कि वह दिये हुए शब्दों में न अच्छे लगने वाले शब्दों को या जिन्हें वह त्रुटिपूर्ण समझता है उनको या जिन वस्तुओं के बारे में वह चिन्तित है, उन्हें काट दे।

(३) लेयर्ड, मेरिस्टोन और होड्रेडर[1] ने अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी परीक्षा को बनाया।

(४) ऑलपोर्ट और ऑलपोर्ट ने एक परीक्षा बनाई। इस परीक्षा द्वारा उन्होंने व्यक्ति को गौरव या प्रभुत्व तथा हीनता की भावनाओं का पता लगाने की चेष्टा की। यह भावनाएँ व्यक्ति में नेता बनने सम्बन्धी गुण हैं या नहीं, इससे अवगत कराती हैं।

(५) मिनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनेलिटी इन्वेन्टरी[2]—इस परीक्षा में ५०० कथन अलग-अलग कार्डों पर लिखे होते हैं। परीक्ष्य इन कथनों को पढ़ता है और सोचता है कि क्या यह उसके अनुकूल हैं या नहीं। परीक्षा के उत्तर द्वारा भली प्रकार उसको साधारण मनोवैज्ञानिक वर्गों में रख सकते हैं, जैसे—हिस्टीरिया, सिजोफ्रेनिया आदि।

(६) आलपोर्ट द्वारा मूल्यों का अध्ययन[3]—इस परीक्षा द्वारा परीक्ष्य का कल्पनात्मक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक क्षेत्रों में मूल्य प्रदर्शित हो जाता है।

मूल्य-निर्धारण विधियों की उपयोगिता

यह मूल्य-निर्धारण विधियाँ एक विस्तृत सीमा तक हमें व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में सूचना देती हैं, किन्तु इन्हें बड़ी सावधानी से प्रयोग करना चाहिए। जब हम सामान्यीकरण करना चाहें तो हमें वह सूचनाएँ, जो व्यक्तिगत हों या समूहगत हों, एक से अधिक विधियों द्वारा भी जाँच लेनी चाहिए ताकि हम वैधता और विश्वसनीयता को अपने निष्कर्षों में अपना लें।

विद्यालय और व्यक्तित्व-विकास[4]

सभ्य देशों में आजकल बालक के उपर विद्यालय का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। बालक अपना अधिकतर समय विद्यालय में ही व्यतीत करते हैं, अतः यह स्वाभाविक है कि बालक के व्यक्तित्व-विकास में विद्यालय का प्रभाव पड़े। हमें विद्यालय के जीवन के विभिन्न अंगों पर विचार करना चाहिए, जो बालक के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने तथा प्रभाव बताते हैं, जैसे—

(१) मित्रता और सम्बन्ध जो बालक आपस में बनाते हैं, बालकों के व्यक्तित्व को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करते हैं।

---

1. Laird, Mariston and Heidreder. 2. Minnesota Multiphesic Personality Inventory. 3. Allport's Study of Value 4. School & Personality Development.

(२) विद्यालय तथा पाठ्यक्रम भी बालकों के आदत सम्बन्धी प्रत्युत्तरों पर प्रभाव डालता है। यदि हम सब लिखना-पढ़ना, चित्राङ्कन आदि न सीखें तो हमारा व्यक्तित्व भिन्न हो जायेगा।

(३) एकमा निश्चित पाठ्यक्रम प्रत्येक प्रकार के बालकों के लिए यदि होता है तो बालकों के अन्दर बहुत-सी परेशान करने वाली आदतें पैदा हो जाती हैं, इसलिए यह अच्छा हो कि पाठ्यक्रम में लचक हो या जो घट-बढ़ सके। जिस प्रकार के बालक की जैसी आवश्यकता हो, रुचि हो उसी प्रकार का पाठ्यक्रम उसे दिया जाये। फलत. बालक के व्यक्तित्व का विकास उचित मार्ग पर हो सकेगा। नहीं तो बहुत-से बालक जो उच्च बुद्धि के होते हैं, अपने अन्दर समय व्यर्थ नष्ट करने की, सुस्त बैठने की आदतों को पैदा कर लेंगे। यह क्रम भी जो एक विद्यार्थी के लिए बनाया गया है, उन्हें बाध्य करेगा कि वह बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़े। इसी प्रकार मन्द बुद्धि बालक अपने अन्दर हीनता की ग्रन्थि[1] पैदा कर लेते हैं और अपना भला असामाजिक कार्यों को करने में सोचते हैं।

(४) परीक्षा का ढङ्ग भी बालकों के अन्दर ऐसी आदतें पैदा कर देता है जो बुरी होती हैं। बालक परीक्षा से डरते हैं और उनके अन्दर संवेगात्मक विचार उत्पन्न हो जाते हैं। इस ढंग में सुधार की महान आवश्यकता है।

शिक्षक और व्यक्तित्व-विकास[2]

विद्यालय में अध्यापक सबसे मुख्य व्यक्ति है जो बालक के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता प्रदान करता है। अधिकतर बालकों के अन्दर अध्यापक उनकी मुख्य आवश्यकता तथा रुचि के अनुसार ही परिवर्तन लाने की सोचता है जिससे प्रत्येक बालक एक निश्चित तथा उचित ढंग के अन्दर कार्य कर सके और अपने अन्दर उसी प्रकार के परिवर्तन को उत्पन्न कर सके। विकमैन[3], बॉयटन तथा मेकग्रो[4] आदि द्वारा किए गए अध्ययन भी इस ओर संकेत करते हैं। विकमैन के अध्ययनों में अध्यापकों ने उन बालकों को समस्यात्मक समझा जिनके अन्दर बारम्बार फुसफुसाने, काम में लापरवाही, बातचीत, कक्षा में अनुचित ढंगों का प्रयोग, पढ़ने में असफलता, दिवा-स्वप्न, रुचि की कमी आदि की आदतें पड़ गई थीं। बॉयटन और मेकग्रो ने यह पाया कि एक औसत अध्यापक ने जिन कारणों के आधार पर बालकों का

---

1. Inferiority Complex 2. Teacher and Personality Development.

3. Wickman, E. K : *Children's & Teacher's Attitudes*, N. Y., The Commonwealth Fund, 1928

4. Boynton Paul, L. & B. H McGraw . "Characteristics of Problem Children', *Journal of Juvenile Research*, Vol XVIII, (1934) 215-222.

मनोवैज्ञानिक अन्वेषण किया, वह कारण है—(i) अध्यापक के प्रति भय रखना, (ii) तानाशाही, (iii) कार्य करने में अरुचि, (iv) पढ़ने में अरुचि, (v) बोलचाल करने वाला कक्षा का वातावरण, (vi) गुटबन्दी, (vii) कक्षा में अनुशासनहीनता। दूसरे शब्दों में, यह अध्यापक और कार्यक्रम तथा पाठशाला-वातावरण को बालक की रुचियों के पूर्ण विकास तथा प्रतिक्रियात्मक भावनाओं में वृद्धि इत्यादि के तुलनात्मक अधिक महत्त्व देते थे।

अतः अब हम निःसंदेह यह कह सकते हैं कि अध्यापक का स्वयं का व्यक्तित्व बालक के व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है। मेकन[1] द्वारा किए गए अध्ययनों के अनुसार यदि अध्यापकों में भय, चिन्ता, अवसन्नता, आत्म-दया, आत्म-चेतना, मनोविकार दुर्गुण आदि हैं तो बालकों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है कि उन पर अध्यापक से अधिक मनोरोगात्मक लक्षण देखने को मिलते हैं। यह भी देखा गया है कि अध्यापक बहुत ही प्रभावशाली निदर्शक होते हैं और बालकों पर इसका लाभप्रद प्रभाव भी पड़ता है। इस प्रकार एक अध्यापक, बालक को उत्तेजित करने का सबसे अधिक शक्तिशाली साधन है। यदि उसके अन्दर उचित रूप में सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार होते हैं तो उनका प्रभाव उसके विद्यार्थियों पर अवश्य ही अच्छा पड़ेगा।

विद्यालय एवं चरित्र-निर्माण

हमने अभी व्यक्तित्व-विकास में विद्यालय किस प्रकार योगदान दे सकता है, इसका वर्णन किया है। यहाँ हम विद्यालय के चरित्र-निर्माण सम्बन्धी उत्तरदायित्व का वर्णन करेंगे। किन्तु यह याद रखना आवश्यक है कि व्यक्तित्व-विकास सम्बन्धी जो विद्यालय के प्रभाव का वर्णन है, वह चरित्र-विकास से अलग नहीं है। विद्यालय में बालक के व्यक्तित्व का समन्वय होता है। यह समन्वय नैतिक मूल्यों के आधार पर ही प्राप्त किया जाता है, अतएव हम कह सकते हैं कि चरित्र-निर्माण एवं व्यक्तित्व-समन्वय साथ-साथ चलता है।

चरित्र-निर्माण ऐसे आन्तरिक नियन्त्रणों के विकास पर निर्भर होता है जो उस समय भी सक्रिय होते हैं, जबकि व्यक्ति के व्यवहार को कोई देखने वाला भी नहीं होता है। यह आन्तरिक नियन्त्रण कुछ शक्तियों के कारण विकसित होते हैं। इनमें से अधिकतर शक्तियाँ घर के वातावरण में पाई जाती हैं। माता-पिता का प्यार शक्तिशाली आन्तरिक नियन्त्रणों को विकसित करता है। किन्तु सजा देने पर यह नियन्त्रण विकसित होते हुए नहीं पाये जाते। माता-पिता का प्रेम ही बालकों में अच्छे गुणों को बढ़ावा देता है।

आन्तरिक नियन्त्रण के विकास में विद्यालय दूसरे साधनों के तुलनात्मक अधिक

1. Mechan George, P. : *A Study of Emotional Stability of* *...achers & their Pupils*—Peabody Contributions to Edn., 1940.

कठिनाई का सामना करता है। बालक जब विद्यालय में आता है तो व्यक्तित्व एवं चरित्र-विकास की दिशा से बहुत कुछ हो चुका होता है। विद्यालय केवल कुछ अच्छे गुणों का पुष्टिकरण करने में ही सफल हो पाता है। विद्यालय में चरित्र-विकास में सबसे महत्वपूर्ण स्थान 'शिक्षक' का है। शिक्षक प्रेम एवं स्वीकृति का वातावरण स्थापित करके बालकों में अच्छे गुणों में तादात्म्य स्थापित कर सकता है। यदि शिक्षक एक आदर्श उपस्थित करता है और उसका व्यवहार बालकों द्वारा पसन्द किया जाता है तब वह बहुत कुछ चरित्र-निर्माण में सफल हो जाता है। इतिहास तथा संस्कृति के उदाहरण लेकर भी शिक्षक अच्छे आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

विद्यालय नैतिक प्रत्ययों को विकसित कर सकता है। इस विकास के लिए विद्यालय को धनी बालकों को धनी एवं विभिन्न क्षेत्रों से सम्यक् अनुभव प्रदान करने चाहिए। कक्षा में कुछ निहित नैतिक स्थितियाँ होती हैं, उनका अभ्यास कराना चाहिए, जैसे—ईमानदारी से विद्यालय का कार्य करना तथा कठिनाई में दूसरों की सहायता करना।

कभी-कभी शिक्षक ऐसी स्थितियों को भी कृत्रिम रूप से प्रस्तुत कर सकता है जिसमें नैतिक अवबोधन हो सके। ऐसी स्थितियाँ साहस, संयम एवं विशाल हृदय-सम्बन्धी हो सकती हैं। वह एक ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत कर सकता है जिसमें कठिनाई धीरे-धीरे बढ़ती है और बालक प्रलोभन से बचाव सीखता है। यह प्रत्यक्ष प्रशिक्षण[1] के प्रयास होते हैं और उसी समय सफल होते हैं जबकि विशिष्ट अनुभव विद्यालय के सामान्य कार्यक्रम में प्रासंगिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

चरित्र-सम्बन्धी प्रत्यक्ष शिक्षण का बहुत विरोध भी किया जाता है। सर हर्बर्ट रीड[2] का कहना है कि वास्तविक नैतिकता स्वतः चालित होनी चाहिए। उनका कहने का साराश यह है कि जो दायाँ हाथ करता है, वह बायें हाथ तक को पता नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत, पियाजे[3] नैतिक निर्णय के अवबोधन पर बल देता है। उसका कहना है कि वास्तविक नैतिक स्थिति में व्यक्ति को स्वयं विभिन्न नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेना चाहिए और ऐसा करने में उसे अपने एक नैतिक व्यक्ति के होने के विचार से प्रभावित होना चाहिए।

अधिकतर व्यक्ति दोनों दृष्टिकोणों में कुछ न कुछ मूल्य देखते हैं। वह कहते हैं कि कुछ दशाओं में बिना विचारे स्वतः संचालित नैतिक कार्य बहुत अच्छे होते हैं। जब व्यक्ति हर कार्य पर सोचने-विचारने लगे तो हम उसे नैतिक नहीं कहते। जैसे, जब एक व्यक्ति रेल दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों के प्रति संवेदना व्यक्त करता है तो उसमें नैतिक निर्णय की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि नैतिक निर्णय देर में लिया जाता है तो इसमें स्वार्थ का भाव आ जाता है। जो व्यक्ति यह विचार करके दान देता है कि इस दान से उसे क्या लाभ होगा, वह उच्च नैतिक चरित्र का नहीं कहलायेगा।

1. Direct Training. 2. Sir Herbert Read. 3. Piaget.

इसके विपरीत, कुछ दशाओं मे स्वचालित नैतिक कार्य दोषपूर्ण होंगे। कुछ ऐसी दशाएँ होती हैं जिनमे हम नैतिक निर्णय पर बहुत चिन्तन के बाद ही पहुँच सकते हैं। जैसे, एक व्यक्ति प्रेम-विवाह करना चाहता है, जबकि उसके माता-पिता ऐसा नही चाहते। इस दशा मे उसे चिन्तन करना पडेगा अथवा कोई संस्था दान चाहती है, इस दशा मे व्यक्ति को देखना होगा कि संस्था किस कार्य के लिए दान चाहती है।

इस कठिनाई को कुछ अशो तक इस प्रकार दूर किया जा सकता है कि बालक को प्रारम्भिक वर्षों मे उन नैतिक कार्यों पर स्वतः संचालित कार्य करने की प्रेरणा देनी चाहिए जो विरोधाभास रहित हैं। इसके पश्चात् ही उसमे नैतिक निर्णय की क्षमता बढाने की चेष्टा करनी चाहिए। बाल्यपन मे बालक नैतिकता अप्रत्यक्ष रूप मे ही सीखता है। वह अपने अभिभावकों का अनुकरण करता है। उसके कार्य बड़ों की स्वीकृति एवं अस्वीकृति पर निर्भर होते हैं। जब वह बड़ा हो जाता है तब वह अव-बोधन एवं उचित प्रत्यय-निर्माण के लिए तैयार होता है। अ उसे ऐसी समस्याओं पर निर्णय लेने को कहना चाहिए, जैसे—जनता का भला अथवा व्यक्तिगत लाभ।

प्रत्यक्ष प्रयास उस समय अधिक सफल होते हैं जबकि कक्षा की मनःस्थिति उच्च होती है तथा प्रत्येक विद्यार्थी का व्यक्तिगत अनुकूलन एक अच्छे स्तर पर होता है। इनके अतिरिक्त विद्यार्थी के अन्दर व्यवहार मे रूपान्तर लाने की तत्परता भी होनी चाहिए। विद्यार्थियों के आत्म-सम्प्रत्यय ऐसे होने चाहिए कि वह अपने को एक योग्य व्यक्ति समझें जो मनोवृत्ति बदलने को तत्पर हो।

अब हम और स्पष्ट रूप से इस बात का वर्णन करेंगे कि विद्यालयों मे नैतिक शिक्षा किस प्रकार देनी चाहिए

नैतिक शिक्षा—आजकल चारित्रिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है। घर के अतिरिक्त स्कूल ही ऐसी संस्था है जहाँ बालक के चरित्र का निर्माण हो सकता है, और स्कूल मे यह आशा की जाती है कि अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। हेविगहर्स्ट[1] ने भी इस पर अपना मत प्रकट किया है। वे कहते हैं कि **"बालक की शिक्षा में चरित्र का विकास सबसे महत्वशाली व सर्वप्रथम ध्यान देने योग्य विषय है।"**

आधुनिक कार्य-प्रणाली मे स्कूलों से उन सभी उत्तरदायित्वों के पूर्ण होने की आशा की जाती है, जिनका प्रारम्भ घर से होता है। चारित्रिक शिक्षा व नैतिक ।, दोनो ही आजकल विद्यालयो के लिए महत्त्व के विषय समझे जाते हैं। अब ।म इस बात पर अपने विचार प्रकट करेंगे कि किस प्रकार उपर्युक्त सिद्धान्तों की मे विद्यालय पूर्ण रूप मे बालकों को शिक्षा देकर व चरित्र का विकास करके अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं। यथा—

1. Havighurst.

(१) एक शिक्षक को बालकों के अन्दर मूल्यवान नैतिक भावों के विकास के लिए चेष्टा करनी चाहिए। हमने यह पहले ही बता दिया है कि वह यह कार्य, बड़े-बड़े नायकों व नेताओं के जीवन व कार्यों के विषय में बताकर, इतिहास व साहित्य के पाठ पढ़ाकर, स्वयं के प्रति आदर की भावना का सृजन करके, देशभक्ति की भावना उत्पन्न करके कर सकता है। शिक्षक को सर्वप्रथम इन गुणों का विकास स्वयं में करना चाहिए और तब विद्यार्थियों को अपना अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

(२) अध्यापक को चाहिए कि वह प्रत्येक विद्यार्थी को बोलने का अवसर प्रदान करे। प्रत्येक विद्यार्थी के प्रति आदर-भाव रखे जिससे प्रत्येक विद्यार्थी अध्यापक के द्वारा बताये मार्ग को अच्छी तरह से समझ जाये। उसे यह देखना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी में आत्म-सम्मान का विकास होता है अथवा नहीं, क्योंकि जब आत्म-सम्मान ही नष्ट हो गया या इसका अवसर प्रदान नहीं किया गया, तब चरित्र का विकास सम्भव नहीं होगा। एक व्यक्ति जिसमें आत्म-सम्मान की भावना का विकास नहीं हुआ है, बहुत कमजोर चरित्र वाला होगा और दृढ़ संकल्प वाला भी न होगा।

(३) विद्यालय में वहाँ के नियम, सहयोगी जीवन, खेल के नियम आदि सभी विद्यार्थी के चरित्र के विकास में सहायक होते हैं। बालक के अन्दर उच्च नैतिक विकास के लिए ये सभी बातें अत्यन्त महत्वशाली हैं।

(४) शिक्षकों को प्रत्यक्ष साधनों को अपना कर नैतिक शिक्षा बड़े बालकों को देनी चाहिए।

हम कुछ बातों पर नीचे विचार करते हैं जिन्हें बालक को नैतिक शिक्षा देते समय ध्यान में रखना चाहिए—(१) बालक को शैशव तथा बाल्यकाल से ही नैतिक शिक्षा देनी चाहिए। इस समय माता-पिता बालक को सदाचरण और अच्छा रास्ता बता सकते हैं। (२) इससे आगे बालक के कुछ बड़े होने पर उसे ऐसे व्यक्तियों के प्रति आदर व सत्कार की भावना रखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जो ईमानदार और सच्चरित्र हैं तथा जो बालक का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति अध्यापक स्वयं ही हो सकते हैं। (३) अन्तिम स्तर उस समय होता है, जब सच्चरित्र व्यक्ति के स्थान पर उन गुणों पर बल दिया जाने लगता है, जिनका वह उपदेश देता है व अभ्यास करता है और बालकों का ध्यान उस व्यक्ति पर केन्द्रित न होकर उसके गुणों पर केन्द्रित हो जाता है।

सारांश

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न विचार हैं। इसकी परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी जाती है। हमें व्यक्तित्व की वह परिभाषा उपयुक्त *प्रतीत होती है जो व्यक्तित्व को गतिशील बताती है, अन्तर-प्रेरित व्यवहार की ओर*

इङ्गित करती है और व्यक्तित्व के वंशानुक्रम और पर्यावरण में प्रतिक्रिया की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

व्यक्तित्व एवं चरित्र में विभेद किया जाता है किन्तु वास्तव में यह दोनों घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

व्यक्तित्व के विकास में यह चार तत्त्व मुख्य रूप से प्रभावशाली होते हैं :

(१) शरीर, (२) ग्रन्थि-रचना, (३) वातावरण, (४) सीखना। ग्रन्थियों में जो सबसे अधिक प्रभावशाली हैं, वह हैं—एड्रिनल ग्रन्थि, गोनाड्स, थायरॉयड ग्रन्थियाँ तथा पिट्यूटरी-ग्रन्थि। परिवार सम्बन्धी तत्त्वों में प्रमुख हैं—परिवार का प्रभाव तथा विद्यालय का वातावरण।

गार्डन ऑलपोर्ट महोदय व्यक्तित्व के गुणों को सक्रिय परिवर्तित हो जाने वाले संस्कार समझते हैं जो कम से कम अंशतः रूप में विशिष्ट आदतों से उत्पन्न होते हैं और वातावरण में व्यवस्थापन के ढङ्ग को बताते हैं। यह गुण वातावरण के प्रभाव से बदलते हैं।

व्यक्तित्व के कई प्रकार बताये जाते हैं। जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं—बहिर्मुखी, अन्तर्मुखी तथा विकासोन्मुख। बहिर्मुखी वे व्यक्ति होते हैं जिनकी रुचि बाह्य जगत में होती है। अन्तर्मुखी वह व्यक्ति हैं जिनकी रुचि स्वयं में निहित होती है। विकासोन्मुख वह व्यक्ति हैं जिनमें दोनों का मिश्रण होता है, और वह जीवन की आवश्यकताओं के लिए स्पष्ट निर्णय लेते हैं।

व्यक्तित्व के निर्धारण की नवीन विधियों का आजकल विकास हो रहा है। यह विधियाँ तीन प्रकार की हैं—(१) व्यक्तिगत विधि, (२) वस्तुनिष्ठ विधि, तथा (३) प्रक्षेपण विधि।

१. व्यक्तिगत विधियाँ चार ढंग से क्रियान्वित की जा सकती हैं—(अ) जीवन-कथा, (ब) व्यक्तिगत इतिहास, (स) साक्षात्कार विधि, (द) अभिज्ञापक प्रश्नावली। व्यक्तिगत विधि में बहुत-से दोष हैं जिनमें से मुख्य हैं - (१) वह स्वयं व्यक्ति पर निर्भर होती है। (२) वह अविश्वसनीय होती है। (३) उसमें वैधता कम होती है, (४) उसके द्वारा केवल चेतन मस्तिष्क के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

२. वस्तुनिष्ठ विधियाँ व्यक्ति के बाह्य व्यवहारों पर आश्रित होती हैं। यह भी चार प्रकार की होती हैं : (१) नियन्त्रित निरीक्षण, (२) निर्धारण-मापनी, (३) शारीरिक परिवर्तन, (४) मौखिक व्यवहार।

३ प्रक्षेपी विधियों में व्यक्ति अपने विचारों, इच्छाओं इत्यादि को किसी बाह्य वस्तु की ओर प्रक्षेप कर देता है। यह विधियाँ व्यक्ति के मन पर भी प्रकाश डालती हैं। मुख्य प्रक्षेपण विधियाँ हैं—(१) रोर्शाक परीक्षा, (२) थेमेटिक एपरसेप्सन टेस्ट, (३) प्ले-टेक्नीक, (४) शब्द-साहचर्य, (५) चित्र-साहचर्य परीक्षा, (६) अभिनय-प्रदर्शन परीक्षा।

विद्यालय का प्रभाव व्यक्तित्व पर बहुत पड़ता है, अतएव उचित व्यक्तित्व के विकास के लिए हमें चाहिए कि पाठशाला में (१) बालक दूसरे बालकों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करें, (२) पाठ्यक्रम उचित हो, (३) परीक्षा का ढंग अच्छा हो, (४) अध्यापक का व्यक्तित्व सुसंगठित हो, और वह बालकों की रुचि इत्यादि को उचित मोड़ देने में समर्थ हो।

अध्ययन में चरित्र-विकास की ओर भी ठोस कदम उठाये जा सकते हैं। चरित्र-विकास का प्रशिक्षण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, दोनों रूप से दिया जा सकता है।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. आप व्यक्तित्व से क्या समझते हैं ? इसकी मुख्य विभिन्न परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए और प्रत्येक के सम्बन्ध में अपना मत दीजिए।

२. व्यक्तित्व के गुण से आप क्या समझते हैं ? कौनसे गुण आप एक बालक में विकसित करने की चेष्टा करेंगे ?

३. ग्रन्थियों का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ? विभिन्न महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों का वर्णन कीजिए।

४. क्या आप व्यक्तित्व को माप कर सकते हैं ? यदि हाँ, तो आप एक ऐसी विधि का वर्णन कीजिए जिसे आप अपनी कक्षा के एक शैतान बालक के व्यक्तित्व की माप के लिए अपनायेंगे।

५. प्रक्षेपी प्रविधियों की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

६. इस पाठ के पढ़ने से आपको जो चरित्र-सम्बन्धी ज्ञान मिला है, उसका उपयोग आप किस प्रकार कर सकते हैं ?

७. चरित्र क्या है ? चरित्र तथा व्यक्तित्व में क्या सम्बन्ध है ? दृढ़ चरित्र के गुणों का वर्णन करें।

८. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

(i) व्यक्तित्व व्यक्ति एवं·········के आपसी सम्बन्धों पर निर्भर रहता है।

(ii) चरित्र मनुष्य के·······पर निर्भर होता है।

(iii) दृढ़ चरित्र के गुण हैं : (अ) विश्वसनीयता, (ब) ··· ···(स)··· ।

(iv) थायरॉयड ग्रन्थि का बुद्धि और ·······से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(v) व्यक्तित्व का युंग के द्वारा वर्गीकरण इसके प्रकार बनाता है। यह प्रकार हैं······।

९. सत्य, असत्य कथन की छाँट करें :

(i) व्यक्तित्व-मापन के लिए प्रक्षेपी प्रविधियाँ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। हाँ/नहीं

२२ मानसिक आरोग्य-विज्ञान, द्वन्द्व एवं व्यक्तित्व-कुसमायोजन
MENTAL HYGIENE, CONFLICTS AND PERSONALITY MALADJUSTMENT

आप मे से सभी लोग शारीरिक स्वास्थ्य के बारे मे जानते हैं, और यह भी जानते हैं कि किन-किन तत्त्वो से अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य बनता है। मनोवैज्ञानिक आजकल एक नवीन शब्द का प्रयोग करते हैं जिसे हम 'मानसिक स्वास्थ्य' कहते है और इसका सम्बन्ध 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान' से है। आजकल शारीरिक स्वास्थ्य के बारे मे बहुत-से सिद्धान्त हमारे सामने हैं। लेकिन मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्त अभी इतने विकसित नहीं हो पाए हैं, यद्यपि मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान-वेत्ता[1] इस ओर बड़े प्रयत्नशील हैं और इस समस्या का विभिन्न प्रकार से अध्ययन करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का विकास वर्तमान समय का ही है। एक २४ वर्ष के व्यक्ति क्लिफोर्ड बीयर्स[2] ने १९वी सदी मे फाँसी लगाकर आत्महत्या का प्रयत्न किया, जिसका कारण उसकी परेशान मानसिक अवस्था थी। लगभग ३ वर्ष तक उसे विभिन्न मानसिक अस्पतालों में रखा गया। इन अस्पतालों से निकलने के बाद उसने अपनी आत्मकथा लिखी, जिसमे उसने बताया कि मानसिक अस्वस्थ (पागल) का कितनी बुरी तरह से इलाज किया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि इस पुस्तक ने पागलों के प्रति अच्छा इलाज करने की चेतना दी। एडॉल्फ मेयर[3] ने बीयर्स की इस दशा मे बहुत सहायता की। मेयर को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसने सर्वप्रथम 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान' शब्द को प्रयोग करने की सलाह दी। बहुत-से कुशाग्र बुद्धि वाले लोगों ने मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी आन्दोलनों मे सहयोग दिया, जिसने तात्पर्य उस

1. Psychiatrists

2. W. Clifford Bears : *A mind that found itsef*, (7th ed), Double Day & Co., N. Y., 1948.

3. Adolph Meyer.

है कि मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण कृत्य है।"[1] हमारे अन्दर बहुत-सी ऐषणाएँ, लालसाएँ, उत्तेजक धारणाएँ, रुचियाँ, व्यवहार आदि हैं—इनमे से कुछ वंशानुगत हैं और कुछ अर्जित हैं। जब हम इन सब को उचित रूप मे पूर्ण विकसित होने का अवसर दे देते हैं तथा सुसंगठित होने की चेष्टा करते हैं, तभी मानव व्यक्तित्व विकसित होता है। इन मूल प्रेरणाओ तथा सस्कारो (जो वंशानुगत तथा अर्जित हैं) का संगठन तभी संभव है जब हम उन्हे किसी सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशित कर देते हैं। अतः हैडफील्ड स्वास्थ्य के लिए तीन मुख्य बातें सामने रखता है—(i) पूर्ण अभिव्यक्ति[2], (ii) संगतिकरण[3], और (iii) मूल तथा अर्जित प्रेरणाओ का सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशन।

(i) पूर्ण अभिव्यक्ति—जीवन मे शारीरिक अनुकूलन के लिए, दृढ़ इच्छा-शक्ति के लिए, और चरित्र के लिए पूर्ण अभिव्यक्ति बहुत आवश्यक है। यदि हम अपनी मूल इच्छाओ आदि को दबा देते हैं तो व्यक्तित्व विकृत हो जाता है। व्यक्ति अशक्तिवान, कमजोर इच्छा-शक्ति वाला और दुश्चरित्र बन जाता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए हमें मूल-आवश्यकताओं, प्रवृत्तियो एवं आवेगों के दमन को रोकना चाहिए, नहीं तो यह अवदमन स्नायविक रोग तथा अव्यवस्था को उत्पन्न कर देता है और व्यक्ति का व्यवहार असाधारण हो जाता है।

(ii) संगतिकरण—मूल प्रेरणाओं इत्यादि के विभिन्न उद्देश्य और कार्य होते है जिनमे एक-दूसरे से बहुधा द्वन्द्विता भी रहती है। उदाहरण के लिए, काम की भावना का द्वन्द्व 'क्रोध' से, इच्छा का द्वन्द्व 'भय' से होता रहता है। यह भावनाएँ चाहे क्रोध की हो, काम सम्बन्धी हो या इच्छा सम्बन्धी हो, यदि पूर्ण रूप से स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती हैं, बिना इस ओर कोई ध्यान दिए हुए कि व्यक्तित्व के उद्देश्य क्या हैं, तो परिणामस्वरूप वे मानसिक स्वास्थ्य को न बढ़ाकर मानसिक अशान्ति को पैदा कर देती हैं जिससे व्यक्तित्व का ह्रास हो जाता है और मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अत इन सब प्रेरणाओं, इच्छादि का एकीकरण मानसिक स्वास्थ्यवर्द्धन के लिए आवश्यक है।

शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समानता को ध्यान मे रखते हुए हमे यह नहीं कहना चाहिए कि वह व्यक्ति स्वस्थ है जिसके शरीर के अंग पूर्ण रूप से कार्य कर रहे हैं, किन्तु जब प्रत्येक अपने कार्य का दूसरे अंगो के साथ संगतिकरण करके इस प्रकार करता है, जैसे—हृदय रक्त वाहन कर रहा है, फेफड़े अच्छी प्रकार श्वसन-क्रिया कर रहे हैं, त्वचा से पसीना निकलता है, माँसपेशियाँ खिची हुई हैं—तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण शरीर को ध्यान मे रखते हुए जिस व्यक्ति के अंग उपर्युक्त

1. "In general terms we may say that mental health is the harmonious functioning of the whole Personality."—*Headfield.*

2. Full Expression. 3. Harmonization.

एकात्मक सङ्गठन नही हो सकता है। हो सकता है कि परीक्षाफल के समय हमे प्रसन्नता हो, किन्तु इस प्रकार जो व्यक्ति केवल पास होने के लिए पढ़ते हैं वे बाद मे कष्ट भी उठा सकते हैं, क्योंकि जब वही ज्ञान क्रियात्मक समस्याओं को हल करने मे भावी जीवन मे प्रयोग होता है तब वह असफल रह जाते हैं। इसका कारण यही है कि उनके व्यक्तित्व का विकास इस लक्ष्य को लेकर नही हुआ।

यहाँ पर हम पुन हैडफील्ड की इस बात से सहमत हो सकते हैं कि "सामान्य उद्देश्य जो हरएक प्राणी को प्रेरणा देते हैं, पूर्णता की प्रेरणा ही है।"[1] हम सभी अपनी पूर्णता को चाहते है। जीवनपर्यन्त हम पूर्णता को प्राप्त करने का प्रयास करते रहते हैं किन्तु अपनी स्वयं की कमी के कारण असफल रह जाते हैं। दर्शनशास्त्र और धार्मिक दृष्टि से यह भावना हमारे अन्दर होती है कि हम ईश्वर की सत्ता का ज्ञान प्राप्त करें जिससे हम उसकी उपस्थिति का अनुमान लगा सकें, क्योंकि वह पूर्ण है, और इस प्रकार हम ईश्वर के बारे मे विचार करने लगते हैं। हिन्दू दर्शनशास्त्र मे हम इसी विचारधारा को दो सिद्धान्तो के रूप मे देखते हैं— (१) हम सब ईश्वर की छाया[2] हैं। वह एक पूर्ण वस्तु है और हम प्रयत्न करते हैं कि उसी दिव्य ज्योति को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करें। (२) हम लोग उस ईश्वर के ही अंश हैं और जब यह अंश रूप जीव उस सम्पूर्ण मे मिल जाता है, तभी हम मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ये धारणाएँ हमे यह बताती हैं कि जीव के रूप मे हम लोग अपूर्ण हैं और इस अपूर्णता को दूर कर, पूर्णता की प्राप्ति हमारे जीवन का चरम उद्देश्य है। दार्शनिक मतानुसार हमारी पूर्णता से तात्पर्य दूसरे संसार से है, किन्तु मनोवैज्ञानिक विचारानुसार हम इस विचार को इसी जीवन की विभिन्न क्रियाओ मे पूर्णता प्राप्त करने से लेते हैं। जब हम इसी पूर्णता के लिए प्रयत्न करते हैं तो हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस ओर अग्रसर होता है। यह विचार जीवन की साध्य वस्तुओ को प्राप्त करने की ओर संकेत करता है और यह प्रयत्न हम चेतनावस्था मे करते हैं। परन्तु कभी-कभी अचेतन रूप से भी हमारा यही प्रयत्न रहता है कि हम सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त कर, पूर्ण व्यक्ति बन सकें।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से हम मानसिक स्वस्थ उसी को कह सकते हैं जिसके सम्पूर्ण अर्जित या वशानुगत गुण पूर्ण रूप मे विकसित होते हैं तथा जो उद्देश्य को सामने रखते हुए इनका अन्य वस्तुओ के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।

इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य एक अस्थिर और चल तत्त्व है जो सम्पूर्ण अङ्गों की क्रियाशीलता से बनता है। यही नहीं, यह हमारे सभी क्रिया-कलापों में सगतिकरण की भावना को भी स्थापित करता है, और इस प्रकार पूर्णता को प्राप्त करना ही हम अपने जीवन का उद्देश्य समझते हैं।

---

1. "The common end motivation in every organism is true urge for the completeness." —*Headfield.*

2. Reflection of God.

वैयक्तिक भेद और मानसिक स्वास्थ्य[1]

मानसिक स्वास्थ्य को यों तो हम सैद्धान्तिक रूप मे प्रत्येक व्यक्ति पर लागू कर सकते हैं, किन्तु हम लोग विभिन्नता को लेकर उत्पन्न हुए हैं और अपने कार्य सम्पन्न करने मे विभिन्न अगो का अनुकरण करते हैं। हमारे व्यवहार भी भिन्न हैं, परिणामत. हमारा मानसिक स्वास्थ्य भी आपस के क्रियात्मक रूप मे दूसरे व्यक्तियों से भिन्न है। मानसिक स्वास्थ्य के कुछ सिद्धान्त जो एक व्यक्ति के लिए अच्छे हो सकते हैं, दूसरे के लिए नही भी हो सकते, क्योंकि कुछ व्यक्ति अन्य प्रकार के वातावरण मे पोषित हैं और अलग-अलग गुणों से युक्त है। मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्त साधारण रूप मे निर्धारित नही किये जा सकते, क्योंकि उन्हे लागू करने से पहले हमे यह देखना पडता है कि वह व्यक्ति किस प्रकार का है, और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य के लिए अलग से प्रयत्न करना पडता है।

आप मानसिक स्वस्थ किसको पुकारेंगे ?[2]

हमारे दैनिक जीवन मे मानसिक स्वास्थ्य के बारे मे बहुत-से त्रुटिपूर्ण विचार प्रचलित हैं। साधारण व्यक्तियों का इससे तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से होता है जिसकी शारीरिक रचना सुगठित हो अथवा वह व्यक्ति जो समाज मे बडी सरलता से अपना जीवन व्यतीत करता है या जिसका चरित्र अच्छा है। निस्संदेह ये सब मानसिक स्वास्थ्य के ही अग हैं, परन्तु फिर भी एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार यह आवश्यक नही कि एक कार्यकुशल व्यक्ति या एक कुशल सामाजिक कार्यकर्त्ता अथवा एक उच्च चरित्र वाला व्यक्ति अवश्य ही मानसिक रूप मे स्वस्थ हो। परन्तु यह विश्वास किया जाता है कि एक व्यक्ति जो मानसिक रूप मे स्वस्थ है, सामाजिक, चारित्रिक आदि दृष्टियों से भी कुशल होगा।

ऐसे बहुत-से लोग हैं जो अपने कार्य मे कुशल होते हैं, उनके पास पर्याप्त धन होता है और प्रत्येक दृष्टि मे वह जीवन मे सफल लगते हैं। किन्तु वास्तविक रूप मे इस प्रकार के लोग सदैव मानसिक स्वस्थ नही रहते, क्योंकि वे चिन्ता करते हैं अथवा दुःखी रहते हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि इस प्रकार के व्यक्तियों के अन्दर मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसके ठीक विपरीत, ऐसे व्यक्ति भी हैं जो किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हैं, उनकी इच्छा-शक्ति इतनी शक्तिशाली होती है कि वे विश्वास मे अपने कार्य को करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को हम मानसिक स्वस्थ कहते हैं, क्योंकि उनकी इच्छा-शक्ति इतनी दृढ होती है कि वह जो कुछ कार्य करते हैं, उसमे आत्म-विश्वास झलकता है। इसी प्रकार एक मानसिक स्वस्थ व्यक्ति के अन्दर सामाजिकता होती है, जबकि एक सामाजिक व्यक्ति जो बाह्य दिखावे मे ही लगा रहता है और आन्तरिक रूप से जो कुछ

1. Individual Difference & Mental Health. 2. Whom will you call a mentally healthy ?

वह करता है उसके प्रति अरुचि रखता है, तो हम ऐसे व्यक्ति को मानसिक स्वस्थ नहीं कह सकते। मानसिक स्वस्थ व्यक्ति सामाजिक होता है क्योंकि वह जिस समाज या समुदाय में रहता है उसके नियमों, रीति-रिवाजों आदि सबके अनुसार ही कार्य करता है, और इस प्रकार अपनी इन क्रियाओं द्वारा उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो जाता है, उसे सन्तोष प्राप्त होता है और यह उसकी स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा भाग होता है।

यह भी सत्य है कि ऐसे व्यक्ति जिन्हें हम धार्मिक या चरित्रवान् कहते हैं, कभी-कभी वास्तविक रूप में मानसिक रुग्ण होते हैं। एक व्यक्ति जो सदैव उच्च चरित्र और ब्रह्मचर्य की बात करता है, हो सकता है कि कामेच्छा से पीड़ित हो। इसी प्रकार जिस व्यक्ति को हम अच्छा कहें उसमें नाड़ी-विकार हो सकते हैं। लेकिन इसके ठीक विपरीत, ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं जो अपनी सम्पूर्ण भावनाओं को समाज-स्वीकृत आदर्शों और जीवन-उद्देश्यों के आधार पर निर्देशित करें। निःसन्देह ऐसे व्यक्ति मानसिक स्वस्थ होते हैं, किन्तु हो सकता है कि इन्हें अधिक चरित्रवान् नहीं कहा जा सके।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान के कार्य[1]

संक्षेप में, हम मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के कार्यों को दो अर्थों में ले सकते हैं। एक तो मानसिक विकृति[2] को रोकना, दूसरे उसका उपचार करना। मानसिक आरोग्य-विज्ञान की उपयोगिता केवल मानसिक पीड़ित के लिए नहीं है, किन्तु इसका उद्देश्य हमारे जीवन को उपयोगी बनाना भी है। यह प्रत्येक व्यक्ति की कुशलता भी चाहता है। साथ ही साथ यह व्यक्ति के स्वास्थ्य को विकसित और उसे स्वस्थ दशा में रखने का भी ज्ञान हमें देकर हमारी सहायता करता है।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान से तात्पर्य सन्तुलित एवं व्यवस्थापित व्यक्तित्व का निर्माण करना है। साथ ही साथ यह विज्ञान व्यक्तित्व की अव्यवस्था के मुख्य तत्त्वों को भी मालूम करता है और शीघ्र से शीघ्र उन्हें सुधारने का प्रयत्न भी करता है। यह उन व्यक्तियों को सामान्य स्वास्थ्य-स्तर ग्रहण करने में भी सहायता करता है जो या तो बहुत ही कुसमायोजित या मानसिक रोग से पीड़ित होते हैं।

समायोजन तथा कुसमायोजन से क्या तात्पर्य है ?[3]

व्यक्ति की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते हुए हमें उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर विचार करना पड़ता है। 'पूर्ण व्यक्तित्व' शब्द को हम पहले भी प्रयोग कर चुके हैं। अब समायोजन व कुसमायोजन पर विचार करने से पहले हम इस बात पर विचार करेंगे कि हमारा 'पूर्ण व्यक्तित्व' से क्या तात्पर्य है ?

---

1 Functions of Mental Hygiene. 2. Mental Disorder. 3. What do we mean by Adjustment and Maladjustment ?

हम पिछले अध्यायों में यह विचार कर चुके हैं कि किस प्रकार बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक *व्यक्तित्व का विकास होता है, और वे कौन-कौनसे मुख्य गुण हैं* जो व्यक्तित्व-विकास को प्रभावित करते हैं। हमने कुछ ऐसे भी साधनों का वर्णन किया है जिनसे व्यक्तित्व का उचित विकास होता है, किन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक के विकास में कुछ वस्तुएँ इस मार्ग में विरोधी होती हैं, और कुछ असफलताएँ भी होती हैं जबकि व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है। इस प्रकार इन प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप उसके मस्तिष्क में द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। व्यक्ति के अन्दर बहुत-सी इच्छाएँ होती हैं, कुछ लोग वास्तविकता से समन्वय स्थापित कर लेते हैं किन्तु कुछ ऐसी भी इच्छाएँ शेष रहती हैं जिन्हें वह प्राप्त नहीं कर पाते। यहाँ पर विशेष रूप से इनके सम्बन्ध की आवश्यकता होती है। यदि वह ऐसा व्यक्ति है जो समन्वय कर लेता है तो वह अपने अनुकूलन को शीघ्रता से स्थापित कर लेता है और यदि वह इस समायोजन में असफल रहता है तो मानसिक द्वन्द्व बढ़ जाता है। कुछ व्यक्तियों की यह इच्छा होती है कि उनके पास बहुत-सा धन हो, कुछ चाहते हैं कि वे प्रसिद्ध हों किन्तु बहुत थोड़े ही इनको प्राप्त कर पाते हैं। जो अपनी असफलता को यथार्थ रूप में ले लेते हैं और जो कुछ उनके पास है उसमें सन्तुष्ट हो जाते हैं और परिस्थितियों का साहस से सामना करते हैं, वे व्यक्ति भली प्रकार समायोजित कहे जा सकते हैं। किन्तु वे लोग जो सदैव अपनी असफलताओं के बारे में सोचते रहते हैं, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, धन की पूर्ति के लिए, शक्ति आदि के लिए जो असाधारण ढङ्गों का सहारा लेते है, या बड़े *अभिमानी या हठी हो जाते हैं या कल्पना की अधिकता के कारण दिवा-स्वप्न* देखने लगते हैं, ऐसे व्यक्तियों के व्यक्तित्व को हम "कुसमायोजित व्यक्तित्व" कहते हैं।

हम में से सभी विभिन्न इच्छाओं को रखते हैं, उसमें द्वन्द्व भी होता है जिसका कारण या तो यह होता है कि व्यक्ति के उद्देश्यों में ही विरोध होता है या वह व्यक्ति एक साथ विविध इच्छाओं इत्यादि को समझ नहीं पाता। एक बालक खेलते समय भूखा हो सकता है किन्तु फिर भी खेल बन्द करना नहीं चाहता। एक बालक पढ़ने के समय चलचित्र को देखने की इच्छा कर सकता है। इसी प्रकार अन्य और भी विरुद्ध इच्छाएँ होती हैं, जिन्हें हम सब आए दिन अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते है।

आरम्भ से ही बालक अच्छी और बुरी बातों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेता है और अपने व्यवहार के लिए आदर्शों का भी निर्माण *करता है और यह आदर्श* उसकी प्राकृतिक इच्छाओं से द्वन्द्व भी करते हैं। कुछ व्यक्ति अपने रास्ते को इसी कलह या प्रतिद्वन्द्विता के बीच में चुनते हैं, परन्तु कुछ में ये दोनों विपरीत इच्छाएँ साथ-साथ ध्यान में रहती हैं *जिनके कारण वे स्वयं भी परेशान रहते हैं* और दूसरों को भी परेशान करते हैं।

यह द्वन्द्व वाली स्थिति यदि सामाजिक स्वीकृति के अनुसार होती है तब इसमे संवेगात्मक तनाव पैदा नही होता। यदि यह स्थिति इस प्रकार ठीक नही होती तो प्रतिफल मे दो रास्ते होते हैं—(i) अप्रभावित ढङ्ग[1]—व्यक्ति बहुत-से कार्य करता है, फिर भी उसका द्वन्द्व कम नहीं होता। उसके मानसिक तनाव पर उसके द्वारा तनाव को कम करने के सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं और तनाव में कोई कमी नही आती। (ii) अनिच्छित ढङ्ग[2]—व्यक्ति इस प्रकार प्रतिक्रिया करता है कि बाह्य रूप से तो द्वन्द्व मिटते हुए प्रतीत होते हैं और अस्थायी काल के लिए उसके संवेगात्मक तनाव कम हो जाते हैं, परन्तु उसके ये व्यवहार नैतिक या सामाजिक स्वीकृति के अनुसार नही होते।

अधिकतर व्यक्ति उचित ढङ्ग के ही द्वारा किसी द्वन्द्वात्मक स्थिति का सामना करते हैं। किन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो अपनी प्रतिक्रिया के ढंग को अनिच्छित ढग से प्रकट करते हैं। वे लोग ही जो द्वन्द्व को दूर करने में असमर्थ होते हैं, कुसमायोजित[3] व्यक्ति कहलाते हैं। शारीरिक तत्त्व जैसे—ग्रन्थि असमानुपात[4], पुरानी बीमारी अथवा शारीरिक या मानसिक ग्रस्तता[5] व्यक्तियो के व्यवहार के प्रतिमानो पर प्रभाव डालते हैं। साथ ही साथ ये इस ओर भी संकेत करते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार अपने को समायोजित करेगा। वातावरण के तत्त्व भी व्यक्तित्व के ऊपर प्रभाव डालते हैं। बहुत-से तत्त्व जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं, कुसमायोजन को उत्पन्न कर सकते हैं और इनका निर्माण त्रुटिपूर्ण सीखने के द्वारा होता है।

व्यक्तित्व का कुसमायोजन व्यक्ति के झगडालूपन या आक्रमणकारी[6] रूप मे भी प्रकट हो सकता है या पलायनवादी[7] के रूप मे उसमे नाड़ी-प्रभावोत्पादक आदतें[8] भी पड सकती हैं। कष्ट देना, चोरी करना, आलस्य, अनाज्ञापालन, प्रताडना, नष्ट करना और विकृत स्वभाव, झगडालूपन, आक्रमणकारी व्यवहार इत्यादि के रूप एक कुसमायोजित व्यक्ति मे पाये जा सकते हैं। पलायनवादी वह व्यक्ति है जिसमे ये बातें मिलती है—लज्जा, भय, दिवास्वप्न, असामाजिकता और रहस्यात्मकता आदि। टिक-टिक करना, दाँतो से नाखूनो को काटना, चंचल होना, अँगूठा चूसना आदि कुछ नाडी-प्रभावोत्पादक आदतों के उदाहरण हैं।

केवल एक ही प्रकार के व्यवहार के आधार पर व्यक्तित्व कुसमायोजित नही कहा जा सकता। वास्तविक रूप मे बहुत-से कारण तथा लक्षण होते हैं जो हमे एक व्यक्ति के बारे मे यह बताते हैं कि वह समायोजन क्यों नहीं कर सका।

छोटे-छोटे लक्षण, जैसे—कभी-कभी दिवास्वप्न[9] का देखना, युक्तीकरण,[10]

---

1 Ineffective Method 2. Undesirable Method 3 Maladjusted. 4. Glandular Imbalance. 5 Physical or mental Handicap. 6 Aggressive behaviour. 7. Withdrawing-Type. 8. Nervous habits. 6. Day dreams. 10. Rationalization

सुरक्षा पूर्ति[1] आदि ऐसे लक्षण हैं जो सामान्य व्यक्तियों में भी पाये जाते हैं। किन्तु जब कभी ये धारणाएँ अतिशय हो जाती हैं और व्यक्ति की आदत का रूप धारण कर लेती हैं, तब व्यक्ति के मानसिक संतुलन पर इस प्रकार की धारणाओं से भारी चोट पहुँचती है। बहुत अधिक तीव्र रूप में यह लक्षण मानसिक रोग की ओर संकेत करते हैं और इस प्रकार व्यक्ति की शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि हमें उसे मानसिक अस्पताल की सहायता देनी पड़ती है।

हम यह बता चुके हैं कि परिस्थिति से अनुकूलन प्राप्त करने का परिणाम ही सुसमायोजन होता है, साथ ही साथ द्वन्द्व आदि का कम होना भी इस पर प्रभाव डालता है। अब हमें यह विचार करना चाहिए कि वे कौन-कौनसे ढंग हैं जिनके द्वारा व्यक्ति द्वन्द्व को दूर करता है, तनाव[2] को कम करता है और प्रसन्नता एवं अनुकूलन प्राप्त कर लेता है। हम इसके साथ इस समस्या पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे कि विभिन्न व्यक्ति अपने को समायोजित करने में कब असफल हो सकते हैं।

व्यक्तित्व समायोजन के विभिन्न ढङ्ग जो तनाव को कम करते हैं और अन्तर्द्वन्द्व को सुलझाते हैं[3]

विभिन्न व्यक्तियों द्वारा व्यक्तित्व-समायोजन करने की चेष्टा विविध प्रकार से की जाती है। समायोजन के ढंग अलग-अलग होते हैं और इनका प्रभाव भी अलग-अलग होता है, जिससे द्वन्द्वमय स्थिति द्वारा उत्पन्न तनाव कम हो जाते हैं। साधारण रूप से मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यह पसन्द किया जाता है कि जिन ढंगों से कलह के सम्बन्ध में कुछ हो सके, वे अच्छे हैं—उन ढङ्गों की अपेक्षा जिनमें हम स्थिति से दूर रहना चाहते हैं या हम कलह या द्वन्द्व की उपस्थिति के सम्बन्ध में सोचना भी नहीं चाहते हैं। व्यक्तित्व-समायोजन के कुछ महत्त्वपूर्ण ढंगों का जो तनाव को कम करते हैं, वर्णन हम नीचे कर रहे हैं।

A. तनाव को कम करने तथा अन्तर्द्वन्द्व को सुलझाने के प्रत्यक्ष ढङ्ग जिनसे व्यक्तित्व-समायोजन होता है[4]

तनाव को कम करने के प्रत्यक्ष ढङ्ग वे हैं जिनमें व्यक्ति चैतन्य होकर प्रयत्न करता है, जिससे उसके तनाव कम हो सकें। यह ढंग तर्कयुक्त होते हैं। यथा—

१. रुकावट को नष्ट या दूर करना[5]

वे लक्ष्य जिनकी प्राप्ति में कोई बाधा या रुकावट खड़ी हो जाती है, उनके प्रति सबसे प्रथम हमारी प्रतिक्रिया यह होनी है कि बाधा को नष्ट कर दें। बहुत बार

---

1. *Over compensation.* 2. *Tension* 3. *Varieties of* Personality. Adjustment involved in Tension Reduction and Resolving the Conflicts. 4. *Direct Methods of Tension Reduction* and Availing Personality Adjustments. 5. Destroying or removing the barrier.

प्रत्यक्ष रूप मे व्यक्ति भी प्रतिक्रिया बाधा के प्रस्तुत होने पर उसको नष्ट करने की होती है। उदाहरण के लिए, एक खिलाडी जिसे फुटबाल के खेल मे प्रतिस्पर्धी के कारण भाग लेने से रोका जा रहा है, अपने प्रतिस्पर्धी पर प्रहार करता है और उसे टोली मे से निकल जाने को बाध्य करता है।

२ दूसरा रास्ता निकालना[1]

जब व्यक्ति बाधा को नष्ट नही कर पाता तब वह दूसरा रास्ता निकालता है, जिससे वह अपने लक्ष्य तक पहुँच सके। उदाहरण के लिए, जब फुटबाल का खिलाडी अपने प्रतिस्पर्धी को निकालने मे असफल हो जाता है, तब वह उससे अपने खेल को उच्च प्रकट करने की चेष्टा करता है और इस प्रकार टोली मे स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न करता है, अथवा वह अपने मित्रो की सहायता लेकर अपने प्रतिस्पर्धी को टोली से बाहर निकाल देता है।

३. दूसरे लक्ष्यों का प्रतिस्थापन[2]

यदि वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने के प्रयत्न असफल हो जाते हैं तब उस समय व्यक्ति किसी और लक्ष्य को उसकी जगह प्रतिस्थापित करने का प्रयत्न करता है। यह लक्ष्य तनावो को कम कर सकता है, यदि इसका सम्बन्ध पहले वाले लक्ष्य से होता है और साथ ही साथ उस आवश्यकता को भी पूरा करता हो जिसके लिए इस लक्ष्य की प्रतिस्थापना की गई है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक शाम को टेनिस खेलने के बजाय ताश खेलते हैं, क्योकि ज्यो ही आप टेनिस खेलने के लिए बाहर निकलते हैं तो पानी बरसने लगता है, तो ताश खेलना आपके तनाव को कम कर देगा क्योकि दूसरे लक्ष्य की प्रतिस्थापना आपकी मनोरंजन की आवश्यकता को पूरा कर देती है, किन्तु ऐसी अवस्था मे यह तनाव कम नही करेगी, जब आप टेनिस के एक कुशल खिलाडी बनने के उद्देश्य से इसके अभ्यास के लिए खेल के मैदान मे जाना चाहते हैं।

हम अपने दैनिक जीवन मे लक्ष्यो की प्रतिस्थापना करते रहते हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो कॉलेज मे प्रोफेसर होना चाहता है परन्तु हो नही पाता, इस लक्ष्य को हाई स्कूल का अध्यापक बनने मे प्रतिस्थापित कर लेता है, क्योंकि या तो वह अयोग्य होता है या कॉलेज में उसे नौकरी नही मिल पाती।

हम लक्ष्यो को पूर्णतया या थोडे रूप मे भी प्रतिस्थापित कर सकते हैं, जैसा कि क्रिकेट के खिलाडी के उदाहरण मे प्रदर्शित किया जा सकता है। जो व्यक्ति एक अच्छा क्रिकेट का खिलाडी बनना चाहता है परन्तु बनने मे असफल रहता है, वह केवल विभिन्न प्रकार के बल्लो को खरीद कर—जो अच्छे-अच्छे हिट लगाने के लिए उपयुक्त हैं और जो हिट वह स्वयं कभी नहीं लगा सकता है—अपनी सन्तुष्टि करता है। कभी-कभी आंशिक लक्ष्य का प्रतिस्थापन तनाव को बजाय कम करने के बढ़ा भी

---

1. Seeking another path. 2. Substitution of other Goal

सकता है, जैसे—एक विद्यार्थी जिसने पास करना चाहा होते हुए भी वह अच्छे डिवि नहीं पास सकता, अपनी असफलता पर चिन्तित रहता है और उसका समायोजन और बिगड़ जाता है।

प्रतिस्थापन का समायोजन में मूल्य¹—हमारे कम काम के लिए या अधिक काम के लिए सभी प्रकार के समायोजन में प्रतिस्थापन का मूल्य है, और यह द्वन्द्व हमारे समायोजन में सहायता करता है। स्पष्ट रूप से यह विधि व्यक्तियों द्वारा ऐसी अवस्थाओं में प्रयोग किया जाता है, जब उनके सामने कोई रास्ता नहीं होता।

४. विश्लेषण और निर्णय²

इन तनावों को कम करने का सीधा द्वन्द्व विश्लेषण और उस व्यक्ति का निर्णय है। जब एक व्यक्ति के सामने दो भिन्न विरोधित लक्ष्य होते हैं, तब वह उनमें से एक लक्ष्य का त्याग कर सकता है या वह दोनों लक्ष्यों को छोड़ सकता है या वह दोनों लक्ष्यों के बीच कोई ऐसा रास्ता अपना सकता है जिससे दोनों सन्तुष्ट हो जायें।

इस प्रकार की स्थितियों में व्यक्ति समस्या-समाधान करने के द्वन्द्व को अप-नाता है और निष्कर्षों पर पहुँचने का प्रयत्न करता है अथवा इसके सम्बन्ध में अपने मित्र से चर्चा करता है। इस प्रकार मुँह जबानी स्पष्ट रूप से समस्या को रखने का प्रयत्न करता है और परिणामतः उसे निश्चय करने का प्रयत्न करता है, किन्तु ऐसी दशाओं में किसी निश्चय या परिणाम को प्राप्त करना बड़ा मुश्किल होता है। उदा-हरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को एक-समान दो अच्छी नौकरी मिल जायें तो उसके लिए इन दोनों में से एक को छाँटना बड़ा कठिन हो जायेगा। इस प्रकार का साहित्य या कहानी आपने अवश्य पढ़ी होगी जिसमें नायक के सामने ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जिनमें उनको दो बराबर की चीजों में से एक को छाँटना होता है, और नायक एक को चुनकर जिन्दगी भर पछताता है और सोचता है कि उसने दूसरी को क्यों नहीं चुन लिया। लेखक का एक मित्र जिसने हाई स्कूल पास करके वाणिज्य पाठ्यक्रम को चुना और विज्ञान को छोड़ दिया, अपने वाणिज्य पाठ्यक्रम चुनने के लिए अब तक पछताता है, यद्यपि उसे अच्छी जगह नौकरी मिल गई है। फिर भी, एक लक्ष्य या चुनना दोनों को छोड़ देने से अच्छा है और इससे तनाव कम हो जाता है।

यदि इस प्रकार के दो लक्ष्य हैं जिनका नैतिक महत्त्व है तो व्यक्ति में नैतिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं। यदि ऐसी स्थिति में ऐसे लक्ष्य को चुना जाता है जिसमें नैतिक आदर्श का अभाव है अथवा जिसको समाज स्वीकृति नहीं देता है तो भी तनाव बजाय कम होने के बढ़ जाता है।

कभी-कभी व्यक्ति एक लक्ष्य को अलग करने की और दूसरे को अपनाने की बजाय ऐसी बात को सोचता है जिससे उन दोनों लक्ष्यों में समानता या सुलह या मेल हो सके। यह भी तनाव कम करने में सहायता देता है। उदाहरण के लिए, एक

1. Value of Substitution in Adjustment. 2. Analysis & Decision.

छात्र जिसके पास पढ़ने के लिए पैसा नहीं है ताकि वह अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ा सके, आगे पढ़ने की इच्छा रखता है तो वह कॉलेज का व्यय ट्यूशन करके निकाल सकता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अपने पैसा-उपार्जन के उद्देश्य तथा शिक्षा के उद्देश्य में सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

B. तनाव को कम करने के अप्रत्यक्ष ढङ्ग[1]

तनाव को कम करने के अप्रत्यक्ष ढङ्ग 'यान्त्रिकता'[2] कहलाते हैं। ये विशेष प्रकार से अचेतन होते हैं और पीड़ा या कलह को शीघ्र कम करने के लिए अपनाये जाते हैं। यह ढङ्ग स्थायी रूप से व्यक्तित्व को समायोजित कर भी सकते हैं और नहीं भी। यह हो सकता है कि यान्त्रिकता हमारा तनाव थोड़ी देर के लिए कम कर दे किन्तु बाद में यह समस्या को इतना उलझा दे कि समायोजन को प्राप्त करना कठिन हो जाये।

यहाँ हम कुछ महत्त्वपूर्ण यान्त्रिकताओं का वर्णन करेंगे जो हमारी समायोजन की क्रिया की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, यथा—

१. उदात्तीकरण अथवा शोधन[3]

शोधन का विचार फ्रॉयड द्वारा प्रकट किया गया था। शोधन-क्रिया के अन्दर मूलप्रवृत्त्यात्मक शक्ति या संवेगात्मक शक्ति का रुख उस कृत्रिम पथ की ओर कर दिया जाता है, जो समाज की दृष्टि में सराहनीय है।

उदात्तीकरण सभी तनावों को कम करने के ढङ्गों में श्रेष्ठ ठहराई जाती है। इस *क्रिया द्वारा मूल प्रेरणा-जनित शक्तियों को समाज के कल्याण की ओर प्रेरित* किया जाता है। यह व्यवहार में भी परिवर्तन ला देती है। इस क्रिया द्वारा न तो मूल प्रेरणाओं का दमन ही होता है और न विनाश, वरन्, यह उसे एक नवीन मार्ग दिखाती है। यह मूल प्रेरणाओं की सन्तुष्टि के लिए मनुष्य को उस मार्ग का प्रदर्शन करती है जो समाज द्वारा स्वीकृत है।

फ्रॉयड ने काम-प्रेरणा के विषय में उदात्तीकरण को ही उपयुक्त बताया है। खेल-कूद, अन्य बाहरी खेलों व सामाजिक जीवन में उस मूल प्रेरणात्मक शक्ति का उपयोग हो जाता है जो काम-भावना को शक्तिशाली बनाती है। इस मूल प्रेरणा का शोधन साहित्य में रुचि जाग्रत करके भी किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य प्रेरणाओं का भी शोधन किया जा सकता है।

शिक्षा क्षेत्र में यह परम आवश्यक है कि मूल प्रेरणाओं का उदात्तीकरण किया जाय। मनुष्य जानवर के स्तर से इसी कारण ऊँचा उठ गया है कि वह अपनी मूल प्रेरणाओं में अपनी इच्छानुसार संशोधन कर लेता है, जबकि जानवर ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पाता। उदात्तीकरण से मूल प्रेरणाओं के स्वाभाविक विकास पर

---

1. Indirect Methods of Tension Reduction. 2. Mechanism. 3. *Sublimation*.

अधिकार किया जाता है। इस क्रिया के अनुसार मूल प्रेरणाओं के प्राकृतिक रूप पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। मनुष्य अपने अन्दर अन्तर्दृष्टि का विकास करता है और तर्कपूर्ण ढङ्ग अपनाकर अपनी मूल प्रेरणाओं मे संशोधन करता है तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि संशोधन भी अपनी सीमा के अन्दर ही किया जा सकता है। किसी भी मूल प्रेरणा मे पूर्ण संशोधन करके उसके रूप को बदल देना असम्भव है। एक विशेष सीमा से अधिक किसी भी प्रेरणा मे संशोधन नही किया जा सकता है। यदि इस सीमा का उल्लंघन किया जाता है तब अविच्छिन्न विनाश की तैयारी की जाती है। हम प्राय यह देखते हैं कि समाज मे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी कुछ-न-कुछ चारित्रिक कमजोरियाँ रखते हैं। जब हमको उन कमजोरियो का पता लगता है तब हमारे मन को एक आघात पहुँचता है, हम आश्चर्य मे पड जाते है। लेकिन हमको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह सभी कमजोरियाँ इस कारणवश ही है कि उनकी निम्न कोटि की भावनाओ मे पूर्ण रूप से संशोधन नही हो पाया होगा अथवा उनमे संशोधन किया जाना असम्भव हुआ होगा। जब कभी भी उनकी निम्न भावनाओं के सामने उनका संयम कमजोर पडता है, तभी उनकी यह भावनाएँ हमे दृष्टिगत होने लगती हैं। हमने प्राय यह देखा है कि क्या प्रतिष्ठित व्यक्ति, क्या साहित्यकार—सभी कभी-कभी अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं। उनके परस्पर बात करने, हँसी-मजाक करने मे असभ्यता स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है। उस समय अभद्र व्यवहार को वे केवल सहन नही करते, वरन् सबसे अच्छा समझते हैं। यह सदैव सम्भव नही है कि उदात्तीकरण तनाव को कम ही कर दे।

विनिर्वतित व्यवहार[1]

एक व्यक्ति का वह व्यवहार जो जीवन के अनुभवो मे भाग लेने से पीछे हटता है, 'विनिर्वतित व्यवहार' कहलाता है। बहुत-से लोग—कम-से-कम जीवन की एक स्थिति मे कायर होते है, मुख्य रूप से उस समय जबकि वे उस स्थिति के साथ प्रतिक्रिया करने के लिए तैयार नही होते। विनिर्वतित तभी कुसमायोजित हो सकते हैं, जब उनका व्यवहार सामाजिक रूप धारण कर लेता है। आम-तौर से कायर या लज्जाशील व्यक्ति दूसरो को परेशान नही करते, क्योंकि वे कर्मशील प्रतिद्वन्द्वी नहीं होते, उनका कुसमायोजन अदृश्य रूप से ही रहता है। परन्तु यदि व्यक्ति के अन्दर पीछे हटने की आदत पड जाती है, और वह जीवन-क्रियाओ मे भाग लेने से सदैव पीछे हट जाता है तो वह बहुत शीघ्र निराश हो जाता है और उसका समायोजन बिगड जाता है।

कायर या पीछे हटने वाला बालक कक्षा मे कभी भी क्रोध प्रकट नही करता और अध्यापक भी उसे बहुत पसन्द करते हैं। किन्तु बाद मे यही बालक मानसिक-

1. Withdrawl Behaviour.

वेत्ता[1] के लिए समस्या बन सकता है। लज्जाशील बालक बड़ी कठिनाई से सामान्य विकास प्राप्त कर पाता है। वह बहुत भय महसूस करता है और अपनी कठिनाइयो को दूसरे के साथ सुलभाने में असमर्थ रहता है, क्योकि किसी के साथ वातचीत करने का उसमे साहस ही नही होता।

यह पलायन व्यवहार (अ) प्रतिगमन, तथा (ब) दिवा-स्वप्न के रूप मे भी प्रकट होता है।

(अ) प्रतिगमन[2]

यह भी एक प्रकार से विनिर्वतित है। आधार रूप मे यह जीवन मे समझ न आने वाली समस्या के प्रति की गई प्रतिक्रिया है जो वाल्यपन की प्रतिक्रिया के आधार पर होती है। मानसिक विकृत लोगो में यह देखा जाता है कि वे प्रौढावस्था में होते हुए भी वाल्यावस्था दिखाते हैं। वे कपडे पहनना तक नही जानते, मुँह धोना, नहाना इत्यादि उनके लिए स्वयं संभव नहीं है।

प्रतिगमन के बहुत-से उदाहरण हैं। गेट्स द्वारा दिया गया उदाहरण एक पुरुष चौसी[3] का है। उसकी माँ उसके स्थान पर एक पुत्री चाहती थी लेकिन चौसी के जन्म पर उसने अपनी इच्छा की पूर्ति चौसी को लडकी समझ कर की। यह बालक जब बडा हो गया तब यह अपने आप को लडको के बीच मे समायोजित करने मे असमर्थ था। वह लडकियों की तरफ भी कोई आकर्षण नही रखता था। इस बात ने उसके मस्तिष्क मे लगातार द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया। उसने चिकित्सा-शास्त्र पढने तथा अभिनेता बनने का प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सका और उसने अधिकतर अपना जीवन अपनी माँ के घर के चारों ओर बैठकर व्यतीत किया।

इस प्रकार का समायोजन व्यवहार एक, दो या तीन वर्षीय बालक मे देखा जा सकता है। यदि वह ध्यान जो उसके प्रति दिया जा रहा था, अब उसके छोटे भाई के प्रति दिया जाने लगा है तब वह इस परिवर्तन के लिए क्रोध प्रदर्शित करेगा। यह क्रोध वह अपनी क्रियाओ मे असमर्थता दिखाकर, जैसे—अपने जूते पहनने मे, नहाने आदि में प्रकट करता है। वह स्वयं ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई प्रयत्न नही करता और दूसरे की ओर असहाय दृष्टि से देखता है।

मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से प्रतिगमन उस समय हानिकारक है, जब हम इसे उलझी हुई व्यवस्थापन की समस्याओ के समाधान के लिए प्रयोग करते हैं। किन्तु उन व्यक्तियों में जो कभी-कभी वाल्यपन के मूर्खतापूर्ण कार्यों मे उलझ जाते हैं या जो क्षणमात्र के लिए सुरक्षित वातावरण की ओर प्रतिगमन करते हैं, इस प्रकार का समायोजन हानिकारक नहीं होता। वह बहुधा व्यक्ति को अपनी समस्या से लड़ने के लिए उत्साह तथा शक्ति प्रदान कर देता है।

1. Psychiatrist. 2. Regression. 3. Chaucey.

(घ) दिवा स्वप्न[1]

समय-समय पर बहुत-से सामान्य व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान करते-करते कल्पना की अधिकता में पड़ जाते हैं। ऐसी अवस्था में वे दिवा-स्वप्न बनाने लगते हैं। यह स्वप्न व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालते हैं। जिस व्यक्ति को लगातार असफलता प्राप्त होती है वह काल्पनिक जगत में ही अपने वास्तविक सन्तोष का दर्शन करता है। यदि व्यक्ति को अपने इस प्रकार के व्यवहार से सन्तोष मिल जाता है तो वह दिवा-स्वप्न द्वारा ही अपना समायोजन करने का प्रयत्न करता है। अतएव उसके सब विचार तथा कार्य वास्तविक संसार से परे हो जाते हैं।

दिवा-स्वप्नों में हम समस्याओं को कल्पना में पूरी करते हैं और वास्तविकता से दूर रहते हैं। यह वास्तविक जगत से भिन्न होता है। वास्तविक जगत की समस्याओं को वास्तविकता के रूप में सुलझाना पड़ता है और यह कठिन कार्य है। किन्तु काल्पनिक जगत तथा उसमें सफलता प्राप्त करना, दोनों ही सरल होते हैं।

[मानसिक तनाव कम करने में दिवा-स्वप्न का अपना महत्त्व है, परन्तु एक बालक में इस प्रकार की कल्पना की बहुलता उसे वास्तविक संसार की समस्याओं से दूर ले जाती है।]

दिवा-स्वप्न और समायोजन की समस्या[2]—जैसा कि अव्यवस्था के अन्य रूपों में होता है, इसी प्रकार दिवा-स्वप्न में भी यह होता है कि जितनी ह

1. Day-dreaming. 2. Day-dreams and the Adjustment Problen

समायोजन की चेष्टा करते हैं, उससे उतनी ही दूर चले जाते हैं। जितना ही अधिक व्यक्ति इन स्वप्नों को देखता है, उतना ही वास्तविक समस्याओं का समाधान करना उसके लिए कठिन हो जाता है, और यहाँ तक कि जब उसके समायोजन की समस्या असहनीय हो जाती है तो वह और अधिक अपनी वास्तविक कठिनाइयों को सुलझाने के लिए दिवा-स्वप्नों का सहारा लेने लगता है। इस प्रकार वह काल्पनिक जगत में ही फिरता रहता है।

दिवा-स्वप्नों के प्रकार[1]—कुछ अवस्थाओं में व्यक्ति के दिवा-स्वप्न बड़े ही अव्यवस्थित ढङ्ग से होते हैं और ऐसे विषयों से भी सम्बन्धित हो सकते हैं जो क्षण-भर के लिए उसकी रुचि के अनुसार हों। कुछ व्यक्तियों में दिवा-स्वप्नों को लगातार देखने की आदत पड़ जाती है। पहले तो यह समस्यानुसार ही होते हैं किन्तु बाद में व्यवस्थित ढग से होने लगते हैं। इस प्रकार एक बालक जो खेलने के लिए काल्पनिक साथी रखता है, सभी साहसपूर्ण कार्यों को अपनी कल्पना में उस बालक के साथ करता है और महीनों तक ऐसे अभ्यास के फलस्वरूप यह काल्पनिक सहयोग बालक को एक निश्चित प्रकार का व्यक्तित्व दे सकता है।

बालकों के दिवा-स्वप्न[2]—बालकों के अन्दर साधारणतया तीन प्रकार के दिवा-स्वप्न पाये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं—(i) विजयी बहादुर[3], (ii) दुखी बहादुर[4], (iii) धात्रेय बालक[5]।

(i) **विजयी बहादुर**—इस प्रकार में बालक अपने को एक बहादुर के रूप में देखता है जो युद्ध में सबसे आगे रहता है। वह एक महान् गाने वाला, महान् वक्ता, अच्छा घुड़सवार, हवाई-जहाज चालक, महान् साहसी इत्यादि, जिसने अपने जीवन सम्बन्धी संघर्ष के सभी प्रतिस्पर्द्धियों को जीत लिया है, के रूप में अपने को देखता है।

(ii) **दुखी बहादुर**—इस रूप में बालक अपने को बहुत कष्टपूर्ण और दुख-दायी वातावरण में देखता है। वह जीतने की अपेक्षा हारने में अधिक आनन्द लेता है। इसी प्रकार निर्दयतापूर्ण तथा अनुचित व्यवहार के प्रति भी बालक अपने को एक शहीद की तरह अनुभव करता है।

(iii) **धात्रेय बालक**—एक बालक दिवा-स्वप्न में अपने माँ-बाप के प्रति क्रोध के कारण यह कहता है वह उनका पुत्र या पुत्री नहीं है। वह कल्पना करता है कि उसके वास्तविक माता-पिता बहुत धनवान हैं और सुविख्यात हैं। उसको बचपन में गोद ले लिया गया है। यह कल्पना केवल उसके आत्म-गौरव के भाव को बढ़ाती है और वह माँ-बाप के लिए, जिन्होंने उसे पाला है, एक समस्या बन जाता है। इस प्रकार के दिवा-स्वप्न धात्रेय बालक के दिवा-स्वप्न होते हैं।

---

1. Types of Day-dreams. 2 Day-dreams of Children. 3. Conquering Hero. 4 Suffering Hero. 5. Foster Child.

दिवा-स्वप्नों का मूल्य[1]—दिवा-स्वप्न एक मानसिक क्रिया है और स्वस्थ बालक या किशोरों के लिए भी हानिकारक नहीं है। मानसिक रूप में इधर-उधर घूमना हानिकारक नहीं है। परन्तु जीवन की समस्याओं के सामने होते हुए भी कल्पना की बहुलता में बह जाना हानिकारक है, क्योंकि इस समय हम अपनी समस्याओं का समाधान करने में असफल रहते हैं।

कल्पना का अभ्यास तनाव को कम करता है। कल्पना मे सन्तोष की भावना रहती है। अधिकतर व्यक्ति इसमे आनन्द प्राप्त करते है। परन्तु कल्पना की बहुलता समायोजन को नष्ट कर देती है।

कुछ दिवा-स्वप्न रचनात्मक और समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को हल करते हैं। यदि ये तरंगें या कल्पना कभी-कभी होती हैं और लगातार नहीं होती रहती, तब एक व्यक्ति का समायोजन समुचित हो सकता है।

३. तादात्म्य[2]

जब एक व्यक्ति अपने को दूसरे सफल व्यक्तियों के तादात्म्य अथवा अभिज्ञान करने का प्रयत्न करता है तो वह बहुधा ऐसा अपना समायोजन करने के लिए ही करता है। तादात्म्य द्वारा व्यक्तिगत भाव कम हो जाते हैं। बालिका अपनी माँ के, और बालक अपने पिता के कार्यों को अपने ही कृत्यों के रूप में देखने लगता है।

तादात्म्य की प्रवृत्ति प्रत्येक मानव मे होती है और यह समायोजन की साधारण अवस्था है। चरित्र-विकास की आधारशिला ही तादात्म्य नामक प्रवृत्ति है। व्यक्ति चेतन रूप में अपना तादात्म्य उन व्यक्तियों या स्थितियों से करते हैं जो उनके लिए आदर्श रूप मे होते हैं। बहुत-सी प्रवृत्तियों को सन्तोष अभिज्ञान के द्वारा ही मिलता है। जब व्यक्ति नाटकों के पात्रों, चलचित्र के नायक आदि का अभिनय करता है, तब यह अभिज्ञान के कारण ही होता है। यह अभिनय इत्यादि उसकी दमन प्रेरणाओं को मार्ग प्रदान कर देते हैं। अतएव व्यक्ति का समायोजन उचित हो जाता है।

कभी-कभी तादात्म्य व्यक्ति के अन्दर हीनता की भावना को दूर कर देता है, जबकि वह व्यक्ति तादात्म्य द्वारा अपने को किसी उच्च व्यक्ति के रूप में समझने लगता है। लेखक को भीड़-युक्त रेलगाड़ी की यात्रा याद है जबकि उसे यह यात्रा नौकरों वाले डिब्बे में करनी पड़ी थी, जब हम परतन्त्र थे। उस डिब्बे में एक अंग्रेज कप्तान का नौकर और दूसरा एक हिन्दुस्तानी जिलाधीश का नौकर यात्रा कर रहा था। अंग्रेज का नौकर अपने को इतना अच्छा समझ रहा था मानो वह स्वयं ही अंग्रेज हो और दूसरे व्यक्तियों को कीड़े या मक्खियों की तरह समझ रहा था। जिलाधीश का नौकर भी अपने को दूसरे यात्रियों से उच्च समझ रहा था, किन्तु अंग्रेज के नौकर की तुलना में वह अपने को हीन समझ रहा था। वे दोनों आदमी हिन्दुस्तानी होते हुए भी अपना परिचय अपने मालिकों के द्वारा देना चाहते थे।

---

1. Value of Day-dreaming. 2. Identification.

यद्यपि जिलाधीश का नौकर अपने आप को अन्य व्यक्तियो से बहुत बडा समझ रहा था किन्तु अंग्रेज के नौकर के सामने अपने को हीन ही समझ रहा था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले भारत भर मे यह स्थिति सामान्य थी। एक दफ्तर मे एक भारत-वासी बड़ा अधिकारी (अफसर) होते हुए भी अंग्रेज के सामने स्वय को हीन दृष्टि मे देखता था। यही द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति उस समय नौकरो वाले डिब्बे मे भी दिखाई दे रही थी।

उपर्युक्त उदाहरण यह भली प्रकार स्पष्ट करते हैं कि शक्तिशाली व्यक्ति के रूप मे तादात्म्य शक्ति की भावना उत्पन्न कर देता है। यद्यपि यह भावना थोड़ी देर के लिए होती है, परन्तु फिर भी इसका व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है। जो भी उदाहरण हमने ऊपर दिया, उसमे तादात्म्य उपयुक्त न था, अंग्रेज का नौकर अपने देशवासी के प्रति ही इस प्रकार का व्यवहार कर रहा था जो असहनीय था। उसके व्यवहार को देखकर कोई भी कह सकता था कि उसके व्यक्तित्व को भारी चोट पहुँची है जिसके कारण वह यह व्यवहार अपना रहा है। तादात्म्य वही तक उपयोगी हो सकता है जहाँ तक व्यक्ति के अन्दर से हीनता की भावना को दूर किया जा सकता है। किन्तु जहाँ तादात्म्य से व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारो पर प्रभाव पड़ता है, यह हानिकारक होता है। यही नहीं, वहाँ भी यह हानिकारक है जहाँ व्यक्ति के अन्दर अपने अस्तित्व की भावना ही नष्ट हो जाती है, जैसा कि एक व्यक्ति बहादुर को देखने पर अपनी कमजोरी को भूलकर स्वयं को वैसा ही समझने लगता है।

४. संयुक्तिकीकरण[1]

संयुक्तिकीकरण के अन्तर्गत हम उस प्रकार के सोचने की क्रिया को लेते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति अपने आपको ही धोखा देता है और इसका आधार यह है कि वह व्यक्ति अपने विचारो को स्वयं से छिपाने की चेष्टा करता है।

एक सामान्य संयुक्तिकीकरण व्यवहार 'लोमडी के खट्टे अंगूरो' के ही समान व्यवहार है। यदि कोई व्यक्ति अपने कार्य में असफल हो जाता है तो वह यह कह देता है कि उसके सफल होने की इच्छा ही नही की। आमतौर से वह अपने को नही, दूसरी वस्तु को ही दोष देता है, वह भाग्य पर अपनी असफलता को रख देता है। इस प्रकार वह अपने कृत्यों को तर्कयुक्त व्याख्या द्वारा कारण प्रदान करता है, और अपने समायोजन की चेष्टा करता है।

५. निरोध[2] अथवा दमन[3]

निरोध मे वर्तमान मूल-इच्छा या कामना को, जो संवेगात्मक स्पष्टीकरण

---

1 Rationlization 2. Repression 3. Freudian theory of unconscious and the explanation of some serious manifestations of repression.

चाहती है, दमन कर दिया जाता है क्योंकि यह असामाजिक रूप लिये रहती है। हम दुःखदायी घटनाओं को भूल जाते हैं अथवा उन स्थानों पर जाना नहीं चाहते जो हमारे कष्टदायी अनुभवों से सम्बन्धित होते हैं। यह हम इसलिए ही करते हैं क्योंकि हम उन विचारों का निरोध करना चाहते हैं जो *हमें कष्टदायी अनुभव देते हैं।*

वास्तविक रूप में निरोध समायोजन का एक बहुत ही अप्रभावशाली ढंग है क्योंकि इससे संवेगात्मक तनावों के ऊपर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी निरोध के उपयोग से उत्तेजित करने वाले विचार भी उठते हैं।

यह कहा जाता है कि यह व्यवहार जो जन्मजात प्रेरकों पर आधारित होता है, सदैव समाज का विरोधी हुआ करता है। साथ ही साथ उसमें दैनिक एवं आदर्श चरित्र के विरोधी तत्वों का समावेश रहता है। तब यह निश्चित है कि ऐसे व्यवहार में कुछ परिवर्तन अवश्य किया जाना चाहिए। समाज कभी भी इस *व्यवहार को अच्छा नहीं समझ सकता। वास्तविकता भी यही है कि यदि समाज* की सभी वस्तुओं पर इस मूल-जनित व्यवहार का अधिकार हो जाय तो निश्चयपूर्वक वह समाज खतरे में पड़ जायगा। उदाहरण के लिए, यदि समाज अपने सदस्यों की संग्रह की प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता है, तब प्रत्येक सदस्य दूसरे व्यक्तियों की वस्तुओं को हड़पना चाहेगा। परिणाम यह होगा कि उनमें परस्पर युद्ध छिड़ेंगे, दंगे व फसाद होंगे और समाज आपत्ति में फँस जायगा। समाज इन्हीं आपत्तियों को दूर करने के लिए सम्पत्ति-अधिकार का नियम बनाता है।

दमन के ढंग को समायोजन में प्रयोग करने का परिणाम यह होता है कि मूल प्रेरणाएँ अपने मूल रूप में नहीं रह पाती। उनका दमन कर दिया जाता है। उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर ही प्रदान नहीं किया जाता। जब कभी भी मूल प्रेरणाएँ सक्रिय होती हैं, उनका दमन किया जाता है। जब कभी भी वे मनुष्य को अपनी इच्छानुसार *कार्य करने को प्रेरित करती है, तभी उन मनुष्यों पर प्रतिबन्ध* लगाये जाते हैं। मनुष्य से भी यह आशा की जाती है कि वह इस बात को सोचे कि उसके द्वारा किया हुआ कोई कार्य यदि समाज द्वारा प्रशंसित नहीं होगा तो वह उस कार्य को नहीं करे। इस प्रकार मूल प्रेरणाओं द्वारा संचित शक्ति को यदि प्रयोग में लाने का उपयुक्त अवसर ही न मिलेगा, तब स्वतः ही उसका दमन हो जायगा और शक्ति अपने स्वाभाविक रूप में कार्य न कर सकेगी।

मूल प्रेरणा-जनित शक्ति का दमन समायोजन स्थापित करने का अच्छा ढंग नहीं है। इस ढंग में अनेक दोष हैं, जिनमें से प्रमुख निम्न हैं :

(१) *दमन द्वारा मूल प्रेरणा-जनित शक्ति पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो सकती है।* दमन के कारण वह अचेतन की ओर अग्रसर होती है और उस अवस्था में वह वहीं पर स्थिर हो जाती है। उस समय चेतन रूप से इस शक्ति का लोप हो जाता है। मूल प्रेरणाओं में अपार शक्ति निहित होती है और *यह शक्ति अचेतन अवस्था में*

सीमित रहने लगती है। यह निश्चय है कि जब भी शक्ति की मात्रा अधिक होगी, तब वह अवश्य ही किसी न किसी प्रकार बाहर निकलेगी। जिस प्रकार हम नदी के बहाव को बाँध बनाकर रोक लेते हैं, उसी प्रकार मूल प्रेरणा-जनित शक्ति को भी कुछ बन्धन लगाकर रोका जा सकता है। किन्तु जब बाँध कमजोर पड जाता है और उसमें इकट्ठा किया हुआ पानी यदि तेजी से आगे बढ़ता है तब बाँध टूट जाता है। इस समय पानी के बहाव में बहुत अधिक तीव्रता होती है। जो भी उस समय उसके रास्ते में आता है, वह उसे समाप्त कर देता है। मूल प्रेरणा-जनित शक्ति भी, यदि आवश्यकता से अधिक इकट्ठी हो जाती है, तब बाहर फूट पड़ती है। परिणाम यह होता है कि तब यह शक्ति समाज के नियमों को तहस-नहस करने में लग जाती है। मनुष्य अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो बैठते हैं। उनके कार्य समाज के लिए अहितकर हो जाते हैं। दमन की अधिकता हानिकारक होती है।

(२) यदि दमन की हुई प्रवृत्तियों को बाहर निकलने में बलपूर्वक रोका जाता है तो वे अपना रूप बदल कर चेतन मस्तिष्क में भिन्न प्रकार से आने की चेष्टा करती हैं। अब मनुष्य अपनी स्वाभाविक आवश्यकता की पूर्ति तो करता है, परन्तु वह यह पूर्ति गुप्त रूप से करता है। बाह्य रूप से वह समाज की दृष्टि में अच्छा बना रहता है, परन्तु आन्तरिक रूप से मिथ्याभिमानी हो जाता है। उसकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में अनैतिक व आदर्शहीन कार्यों का मिश्रण होता है। उसके कार्य समाज विरोधी हुआ करते हैं। लेकिन यह सब कार्य समाज को धोखा देकर ही किये जाते हैं जिससे कोई भी व्यक्ति, व्यक्ति-विशेष को दुर्व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता। इस प्रकार समायोजन का ढंग—दमन—किसी प्रकार भी लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता।

(३) दमन का तीसरा बुरा परिणाम यह होता है कि मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति बिलकुल ही रुक जाती है। यदि मनुष्य की मूल प्रेरणा-जनित शक्ति न बाहर ही निकल पाये और न अन्य किसी प्रकार नष्ट हो सके, तब वह उसके मस्तिष्क में ही विद्यमान रहती है और वहीं उसका दमन होता है। इसका परिणाम होता है कि मनुष्य पशु हो जाता है। उसमें गुणों का विकास नहीं हो पाता। यह एक प्रकार से उस पर इस प्रकार का दबाव डालने के ही समान है जिससे जीवन भर वह मानसिक रूप से बौना ही बना रहता है। चीन की एक प्राचीन प्रथा को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। चीन के अन्दर छोटे-छोटे पैर नारी की सुन्दरता के प्रतीक माने जाते थे। छोटे-छोटे पैरों वाली स्त्रियाँ सुन्दर समझी जाती थीं। इसलिए सभी लड़कियाँ अपनी बाल्यावस्था से ही छोटे से जूते पहना करती थीं, जिससे उनके पैर बढ़ नहीं पाते थे और जीवन भर वे आसानी से चल-फिर भी नहीं सकती थीं। यदि मस्तिष्क में ही मूल प्रेरणात्मक शक्ति का दमन उसी प्रकार कर दिया जाता है, तो मस्तिष्क भी विकसित नहीं हो पाता, वह पूर्ण रूप से अविकसित ही रहता है। इस दमन के कारण ही मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति रुक जाती है। दमन का परिणाम

अत्यन्त भयंकर व हानिकारक होता है। इसीलिए अध्यापकों व माता-पिता को इस दमन-क्रिया का प्रयोग बहुत सोच-समझकर करना चाहिए :

दमन-क्रिया मनुष्य की अपनी इच्छा के अनुसार होनी चाहिए। पूर्ण स्वतन्त्रता समाज के लिए हितकर सिद्ध नहीं हो सकती। इसलिए अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे यह देखें कि बालक के दमन या संयम के महत्त्व को समझते हैं अथवा नहीं। ऐसी स्थितियों को बालको को ज्ञान प्रदान किया जाए कि उनकी आत्म-संयम की भावना का विकास हो। वे दमन करने के लिए स्वय तैयार हों।

दमन के दुष्परिणामों को कुछ उदाहरणो द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। यदि बालक की जिज्ञासा प्रवृत्ति का दमन कर दिया जाय तो वह नवीन वस्तुओ से प्राप्त आनन्द को खो बैठता है। हमने बहुत-से माता-पिताओ को अपने लड़कों के विषय मे चिन्तित होते देखा है। वे अपने बच्चो पर, जब वह बात या प्रश्न करता है, चिल्ला उठते हैं। उन्हें चुप रहने के लिए कहते हैं। जब बालक कुछ बात पूछता है तो उसे डाँटते हैं। परिणाम यह होता है कि बालक उदासीन अ निरुत्साहित हो जाते हैं। *वे आत्म-विश्वास खो बैठते हैं। वे वस्तुओं की नवीनत* कोई रुचि नहीं लेते और नई वस्तुओ की ओर मे पूर्णतः उदासीन हो जाते हैं।

इसी प्रकार एक बालक, जिसकी आत्माभिमान की प्रवृत्ति का दमन कि जाता है, के अन्दर अनेक बुरी व घृणित प्रवृत्तियाँ भर जाती हैं। बालक किसी किसी प्रकार अपने व्यक्तित्व को प्रदर्शित करना चाहता है, किन्तु दमन के कारण ऐसा नही कर सकता। तब ऐसे गुणो अथवा अवगुणो की शरण देता है, जिससे दू व्यक्ति आकर्षित होकर उसकी ओर ध्यान दें। उसका व्यवहार असाधारण अथ अमानुषिक बन जाता है। वह बालक *निकम्मा बन जाता है। उसका व्यवह* शरारतपूर्ण हो जाता है, वह दूसरो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लिए क मे देर से आने लगता है और दूसरे बालको से झगड़ा करता है।

फ्रॉयड का अचेतन का सिद्धान्त और दमन के कुछ गम्भीर प्रकाशनों की व्याख्या[1]

हमारे मस्तिष्क का ९/१० भाग अचेतन है और १/१० भाग चेतन है। फ्रॉय के विचार से प्रभावित मनोवैज्ञानिक यह कहते हैं कि चेतना तो केवल हमारे मानसि जीवन की सतह है। हमारे अध्ययन का मुख्य भाग तो अचेतन की गहराई मे छिप हुआ है, अन्तर्दर्शन के द्वारा भी हम इस अचेतन का पता नहीं लगा सकते।

फ्रॉयड ने *अचेतन की एक विस्तृत 'एन्टे' कक्ष*[2] से तुलना की है। इसके पास मे एक छोटा-सा स्वागत-कक्ष है, जिसमें चेतना मे आने वाले विचारो का पहले स्वागत होता है। एन्टे कक्ष मे बडी भीड़ रहती है और प्रत्येक प्रकार की मानसिक

1. Freudian theory of unconscious and the explanation of some serious manifestation of repression. 2 Ante room.

उत्तेजनाएँ रहती हैं जो स्वागत-कक्ष में आने के लिए सदैव इच्छुक रहती हैं, जिससे वे चेतनावस्था में शीघ्र पहुँच सकें। किन्तु इन दोनों कक्षों को मिलाने वाले दरवाजे पर एक दरवान[1] बैठा रहता है, इसका मुख्य कार्य उन प्रवेश पत्रों को देखना तथा निरीक्षण करना होता है जो स्वागत कक्ष में आना चाहते हैं। जो विचार यहाँ आते हैं वह इसकी स्वीकृति द्वारा ही आते हैं, शेष को यह पीछे लौटा देता है। इस प्रकार जिन विचारों को अचेतन में धकेल दिया जाता है, वही दमित हो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी जब यही विचार अपना वेश बदल लेते हैं और दरबान को धोखा दे देते हैं तब यह चेतन कक्ष में चले जाते हैं। इस प्रकार इस विचारधारा के अनुसार अचेतन मन मस्तिष्क का अंग है, जिसमें नाना प्रकार की इच्छाएँ भरी पड़ी हैं, जो चेतन मन[2] में प्रवेश नहीं कर पाती।

उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि दबी हुई इच्छाएँ, स्मृतियाँ, घटनाएँ आदि अचेतन में जाकर वहाँ ठहर जाती हैं। क्योंकि उनकी वर्तमान स्थिति में दरवान उन्हें चेतना में नहीं आने देता, अत. वे अपने वेश को बदल कर अचेतन से बाहर निकलने की चेष्टा करती हैं और इस प्रकार ये व्यक्ति का व्यवहार असामान्य[3] प्रदर्शित करती हैं। निरोधात्मक इच्छाएं इत्यादि उचित प्रकार का स्पष्टीकरण न मिल सकने के कारण व्यक्तित्व को अव्यवस्थित कर देती हैं। व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान या केवल अर्द्ध रूप से व्यवहार प्रतिमान असाधारण हो जाता है। अत्यधिक निरोध के कुछ उदाहरण जो असाधारण व्यवहार को प्रोत्साहित करते हैं, इस प्रकार हैं :

(१) हाथों को लगातार साफ करना[4]—कुछ लोग हाथों को निरन्तर साफ करते हैं, जैसे वह हर समय गन्दे ही हों। स्पष्टतः यह उनकी निरोधित स्मृति का एक प्रतिस्थापन होता है, जिसके चेतनावस्था में आने से उनमें असह्य लज्जा तथा अपराध का भाव उत्पन्न होता है।

(२) स्वप्नों में[5]—निरोधित इच्छाएं आदि स्वप्नों में वेश बदल कर आती हैं। स्वप्नों के बारे में फ्रॉयड तथा युंग द्वारा बहुत-से चिह्न भी बताए गए हैं, जो हमारी इस निरोधात्मक भावना को व्यक्त करते हैं।

(३) सुप्तावस्था में चलना इत्यादि[6]—यह भी निरोध का एक प्रकार है। यह एक स्वप्न-कार्य रूप में होता है। यह सदैव मानसिक द्वन्द्व के कारण होना है।

निरोध के कुछ प्रकाशन[7]

यह हमारे कुछ ऐसे व्यवहारों आदि में दिग्दर्शित होते हैं जिन्हें हम तार्किक दृष्टि से न्याय-संगत नहीं कह सकते, और जो सदैव किसी अन्य वस्तु के संकेत होते हैं। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :

---

1. Censor. 2. Conscious Mind. 3. Abnormal. 4. Incessant washing of the hands 5. In dreams. 6. Somnambulism. 7. Some other manifestations of repression.

(१) हकलाना[1]—कुछ अवस्थाओं में हकलाना पिता के डर के कारण होता है। यह डर वास्तव में निरोधित[2] होता है।

(२) वामहस्तता[3]—कुछ बालकों की वामहस्तता पिता के विरोध में हो सकती है या यह बालक की इस इच्छा के कारण हो सकती है कि वह अपने को दूसरों से भिन्न प्रकट करना चाहे।

(३) खुली अथवा बन्द जगहों का या तेज चाकू का भय[4]—कुछ लोग बन्द जगहों के प्रति असाधारण भय दिखाते है। कुछ लोग खुली जगह में सोने से घबराते हैं। कुछ लोग तेज धार वाले चाकू या कैंची से भी डरते हैं। मनोविश्लेषण के द्वारा इस बात का पता लगाया जा चुका है। इस सब का कारण उनके अचेतन में निरोध की हुई घटना होती है जो बचपन में उनके साथ घटती है। इस घटना में बहुधा उन्हें अत्यधिक भय या दुःख मिला होता है।

(४) फ्रॉयड का मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय यह बताता है कि हमारी भूलें, दुर्घटनाएँ और त्रुटियाँ अचानक नहीं होतीं किन्तु वे हमारे अचेतन के प्रकाशन होते हैं। किसी समय यद्यपि हम बहुत ध्यान से कार्य करते हैं, किन्तु फिर भी दुर्घटना हो जाती है। वास्तविक रूप में स्याही का धब्बा गिराना या किसी वस्तु को गिरा देना हमारी दमन की हुई भावना ग्रन्थियों के कारण होता है। लगातार गन्दगी से कार्य करना अचेतन द्वन्द्वता के कारण हो सकता है। यह अध्यापक के कठोर व्यवहार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हो सकती है।

(५) क्रियात्मक विस्मरण[5]—कभी-कभी हम आवश्यक पत्र लिखना भूल जाते है, तारीख भूल जाते हैं, आदि। वास्तव में कारण यह होता है कि उनका याद रखना ही कष्टदायी होता है या उनका ध्यान हमारे अन्दर कष्टदायी विचार उत्पन्न कर सकता है।

(६) किसी भी दिशा में अनुचित उत्साह[6]—जब व्यक्ति किसी भी दशा में उत्साह की अधिकता प्रकट करता है तो इसका कारण निरोध हो सकता है। इस प्रकार का उत्साह रक्षा प्रतिक्रिया[7] हो सकती है। उदाहरण के लिए, अत्यधिक पाखण्डता का कारण व्यक्ति की दबी हुई या निरोधित रुचि जो कामेच्छा के कारण होती है, हो सकती है।

निरोध का मूल्य[8]—निरोध के उपर्युक्त उदाहरण यह भली प्रकार स्पष्ट कर देते है कि समायोजन में निरोध कितना हानिकारक होता है। यह सत्य है कि निरोध के कारण व्यक्ति अपने कष्टदायी द्वन्द्व को कम कर सकता है और इस प्रकार के व्यवहार का पालन कर सकता है जो नैतिक हो या समाज द्वारा स्वीकृत हो।

---

1. Stammering. 2. Repressed. 3. Left Handedness. 4. Fears of closed or open spaces or sharp knives etc. 5. Active forgetting 6. Unreasonable zeal in any one direction. 7. Defence mechanism. 8. Value of repression.

किन्तु इसकी हानियाँ अत्यधिक हैं। इनमे दो मुख्य इस प्रकार हैं—(१) निरोध द्वारा वास्तविक रूप मे व्यक्ति की समस्या न सुलझ सके और यह अपर्याप्त रूप मे समस्या-समाधान उसे आगे सन्तोषजनक हल ढूँढने से रोके, (२) विपरीत सामाजिक या व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ भी बनाई जा सकती हैं, जो जीवन मे समायोजन को कठिन बना दें।

६ प्रक्षेपण[1]

प्रक्षेपण के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी असफलता का आरोपण दूसरे पर करता है या दूसरे व्यक्ति की असहयोगिता को इसका कारण बताता है। इस प्रकार वह अपने दोषो को दूसरो के सिर मढ देता है और स्वय को दोषी कभी नही समझता।

प्रक्षेपण सयुक्तिकीकरण के ही अनुरूप उस सीमा तक होता है जिस तक कि व्यक्ति अपनी असफलता को दूसरे पर आरोपित कर देता है अथवा उन अयोग्य तत्त्वो पर जो उसके वातावरण मे होते हैं। एक बालक जो देर से कॉलेज मे आता है, यह कहकर क्षमा चाहता है कि बस धीमे-धीमे चली या उसके घर के पास बस अड्डे पर से देर मे आई। एक खिलाडी की त्रुटिपूर्ण हिट लगाने पर वह कहता है कि बल्ला अच्छा नही है।

प्रक्षेपण के द्वारा व्यक्ति मानसिक शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता है और यदि हम प्रक्षेपण की क्रिया का बहुत अधिक प्रयोग नही करते तो यह हानिकारक भी नही है। यदि कोई प्रक्षेपण की निश्चित आदत पड जाती है और हमारा कार्य इस पर आधारित होता है तब हमारे लिए महान् हानिकारक हो सकता है। ऐसी अवस्था मे यह व्यक्तित्व-समायोजन पर प्रभाव डालता है और व्यक्ति मे मानसिक विकृति[2] उत्पन्न हो जाती है।

७ उत्क्रमण रचना[3]

उत्क्रमण रचना इस प्रकार की क्रिया है जिसमे हमारे व्यक्तित्व मे चेतन रूप से ऐसे व्यवहार और रुचियाँ उत्पन्न कर ली जाती हैं जो आंशिक रूप मे निरोधित इच्छाओ के विपरीत होती हैं। विपरीत रचना का कार्य द्वन्द्व को दूर करना है। उदाहरण के लिए, यदि एक माता है जो बालक नहीं चाहती परन्तु जब वह उत्पन्न हो जाता है तो उस पर अत्यधिक लाड-प्यार दर्शाती है और हर समय इसके स्वास्थ्य की ओर चिन्तित रहती है। इस प्रकार बालक पर अत्यधिक ध्यान रखना, उसकी इस इच्छा के विपरीत है कि उसके कोई बच्चा नही है, या बालक के प्रति उसकी घृणा के विपरीत भी हो सकता है।

जब कभी हम समाज द्वारा स्वीकृत गुण की अधिकता किसी व्यक्ति में देखते हैं (सचेत ईमानदारी[4], दूसरों से अधिक सम्बन्ध रखना आदि) तो हम शीघ्र ही

1. Projection 2. Mental disorder. 3. Reversal Formation 4. Scrupulous Honesty

सन्देह करने लगते हैं कि इनमें मानसिक विरोध की भावना इस व्यक्ति के अन्दर होगी। व्यक्तित्व के समायोजन के विचार से उपक्रम रखना बहुमूल्य है, किन्तु इसकी अधिकता हानिकारक होती है।

C. व्यक्तित्व-समायोजन तथा अन्तर्द्वन्द्व सुलझाने के क्षति-पूरक ढंग[1]

क्रो और क्रो के अनुसार क्षति-पूर्ति की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं—क्षति-पूर्ति से तात्पर्य है कि हम अपनी अतिरिक्त शक्ति[2] को अपने गुणों के विकास में प्रयोग करें, जिससे हमारे तनाव कम हो सकें—जो वास्तविक या काल्पनिक असफलता के कारण उत्पन्न होते हैं।"[3] एक व्यक्ति जो हकलाता है, बड़ी कठिनाई से और प्रयत्न से अपनी इस कमी को बहुत सीमा तक पूरा कर सकता है और अन्य लोगों को यह देखने के लिए कि उसकी बोलने की क्रिया में कोई कमी नहीं है, वह जनता में भी बोलने का प्रयत्न कर सकता है। एक और उदाहरण हम एक छोटे कद की लड़की का ले सकते हैं जो ऊँची एड़ी का सैण्डिल पहन कर अपनी ऊँचाई को दिखाने का प्रयत्न करती है।

प्रतिस्थापित क्षतिपूर्ति अथवा इस प्रकार की क्षतिपूर्ति जिसमें किसी दूसरे कार्य की अधिकता होती है, उसकी अपेक्षा जिसमें किसी प्रकार की कमी है, एक प्रकार का प्रतिस्थापन ही है। एक बालक जो पढ़ने में अधिक चतुर नहीं होता, शारीरिक अभ्यास तथा खेल में इस प्रकार मेहनत कर सकता है कि उसकी ओर और लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाए।

कई प्रकार के 'क्षति-पूरक' समायोजन को हानि पहुँचाने वाले कारण भी हो सकते हैं। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक या आर्थिक भावना की हीनता एक व्यक्ति को उनमें अधिक क्षतिपूर्ति के लिए भी बाध्य कर सकती है किन्तु क्षतिपूर्ति को वह बिना किसी आधार के यदि किसी और कार्य में अपनी महानता प्रदर्शित करके दिखाना चाहे तो यह हानिकारक है। सामान्य रूप से समाज-स्वीकृत प्रतिस्थापन के लक्ष्य हमारे चिरस्थायी समायोजन में सहायता देते हैं। किन्तु इस प्रकार की बातें, जैसे—आधिपत्य, डींग मारना आदि, में हमें बहुत हानिकारक परिणाम दे सकते हैं।

उपर्युक्त ढङ्गों के अतिरिक्त समायोजन और भी विभिन्न प्रकार से हो सकता है। इसी प्रकार तनाव को कम करने वाले ढङ्ग भी कोई और प्रकार के हो सकते हैं। इनमें से उल्लेखनीय हैं—नकारात्मक भावना, जिसका तात्पर्य है आज्ञा न पालन

1. Compensatory Methods of Personality Adjustment and resolving of Conflicts. 2. Extra energy.

3. 'Compensation' according to Crow & Crow may be defined as "the utilization of extra energy in the development of a trait or traits to alleviate the tension caused by a real or imagined defect." —Crow & Crow : *Mental Hygiene*

करना या प्रार्थना न स्वीकार करना या जो ठीक है उसके विपरीत कार्य करना, सूक्ष्म रूप मे तनाव को कम करने का ढङ्ग है।

यहाँ हम तनाव को कम करने तथा व्यक्तित्व-समायोजन को प्राप्त करने के दो और ढङ्गो का वर्णन करेंगे। यथा—

१. इच्छित वातावरण[1]

इच्छित वातावरण द्वारा हम व्यक्तियो के तनावो को कम कर सकते है और उन्हे विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करने के लिए स्कूल व घरो के वातावरण को उत्तम बनाना आवश्यक है। समायोजन तभी प्राप्त हो सकता है जबकि उत्तम वातावरण मे व्यक्ति रहे। उदाहरण के लिए, स्कूलो मे यदि प्रत्येक मनुष्य अच्छा व्यवहार करता है, दूसरो के लिए आदर की भावना रखता है, दूसरे व्यक्तियों के विचारो की कदर करता है—तो वहाँ का वातावरण उत्तम कहा जा सकता है। ऐसे वातावरण मे जो भी बालक रखा जायगा, वह स्वत ही उपर्युक्त गुणो को सीख जायगा और भविष्य मे समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ उसके साथ नहीं उठेंगी।

२. भाव-विरेचन अथवा कैथार्सिस[2]

मूल आवश्यकताएँ मनुष्य के लिए हानि का कारण नहीं बनती हैं। वे मनुष्य के लिए कल्याणकारी हुआ करती है। प्रकृति ने हमे मूल प्रेरणाएँ अपने जीवन को सरल तथा सुखमय बनाने के लिए प्रदान की हैं। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक मूल प्रेरणाओ को अत्यन्त सक्रिय समझते हैं, जो मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से लाभ पहुँचाती हैं। मूल प्रेरणा की सक्रियता का सिद्धान्त हमे इस बात का विश्वास दिलाता है कि व्यक्ति को यदि अपने व्यवहार-प्रदर्शन मे स्वतन्त्र कर दिया जाय, तब इस प्रकार उसके मानसिक तनाव कम हो जायेंगे, उसका व्यक्तित्व खराब होने से बच जायगा और उसकी शक्ति का भाव-विरेचन हो जायगा।

भाव-विरेचन से यह तात्पर्य है कि समस्त मूल-प्रेरणात्मक शक्ति या संवेगात्मक शक्ति को स्वतन्त्र प्रकाशन के अवसर मिल जायें। भाव-विरेचन मे शक्ति को अपने स्वाभाविक रूप मे 'विकसित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। न तो इसका मार्गान्तरीकरण ही होता है, और न संशोधन ही। यह कहा जाता है कि मनुष्य गुण और अवगुणो का समूह होता है। यदि बुरी भावनाओ या अवगुणों का दमन कर देते हैं तो एक न एक समय वे अवश्य ही भयङ्कर रूप से प्रकट होंगे। व्यक्ति को अपना सर्वस्व बनाने के लिए यह परम आवश्यक है कि उसे अपने विचारो को कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से प्रकट होने के अवसर प्रदान करने चाहिए, जिससे उसका मस्तिष्क दमन आदि मे मुक्त रह सके।

यह देखा गया है कि भाव-विरेचन के पश्चात् मनुष्य स्वयं को कुछ हलका

1. Desriable Atmosphere. 2. Catharsis.

अनुभव करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक बहुत कम मात्रा अपने लिये प्रयास किया गया है। तनाव को [illegible] कम करना आवश्यक प्रतीत होता माना जाता है। बहुत से व्यक्ति विचार [illegible] लेकिन भावनाओं [illegible] भाव-विरेचन की क्रिया व्यक्त हो सकती है।

भिन्न भिन्न त्यौहार, विविध समारोह व भिन्न भिन्न रीति रिवाज, मनुष्य के तनावों को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, हम हिन्दुओं के होली त्यौहार को ही ले सकते हैं। इस समय व्यक्ति अपने को स्वच्छन्द छोड़ देते हैं। कोई भी व्यक्ति दूसरे का मुँह रंग देता है अथवा कोई और ऐसा ही कार्य करता है परन्तु फिर भी वह बुरा नहीं माना जाता है। इसी प्रकार [illegible] पर [illegible] तथा [illegible] और [illegible] पर कोई [illegible] नहीं करता है। इसी प्रकार [illegible] ऐसे बातों व इनके द्वारा [illegible] भाव विरेचन किया जाता रहता है।

यह सत्य है कि यदि हमारी मूल प्रवृत्तियों को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकाशित होने के अवसर प्रदान हो जाते हैं तो हम इसमें आनन्द का अनुभव होता है, लेकिन यह स्वतन्त्रता सीमित ही होनी चाहिए। होली पर बहुत से अपराध किये जाते हैं, मनुष्य कभी-कभी इतने आनन्द विभोर हो जाते हैं कि उनका व्यवहार उस समय बहुत असभ्यतापूर्ण अथवा अशिष्टतापूर्ण हो जाता है, जिसको हम हतोत्साहित करना चाहिए। भाव-विरेचन हमें तनाव की स्थिति से मुक्ति दिलाकर तनाव को कम करता है, परन्तु भाव-विरेचन की क्रिया कुछ सीमा के अन्दर ही होनी चाहिए।

स्कूलों के अन्दर बालकों के लिए भी 'रंगीन दिन' आदि विभिन्न उत्सवों का प्रबन्ध करके भाव-विरेचन की क्रिया का प्रयोग में लाने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। उनके लिए 'वन भोजन'[1] का प्रबन्ध किया जाना चाहिए, जिससे वे वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक घूम-फिर सकें।

कुसमायोजन के कारण[2]

ऊपर हम यह वर्णन कर चुके हैं कि किस प्रकार विभिन्न अवसरों पर व्यक्ति अपने तनाव को कम करके व्यक्तित्व-समायोजन का प्रयत्न करता है। किन्तु यह देखा गया है कि यदि हम इन नियमों को थोड़ी-सी अधिकता से प्रयोग करें तो अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है और वह कुसमायोजित हो जाता है। अतएव यदि हम उत्पन्न द्वन्द्व को कम नहीं कर पाते तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व को हानि उठानी पड़ती है। ऊपर आपने बहुत-से उदाहरणों को देखा जिनमें व्यक्तित्व कुसमायोजित हो जाता है। यहाँ हम कुसमायोजन के कारणों पर विचार करेंगे। क्योंकि जब तक हम उसके कारणों के बारे में निश्चित न हो जायँ तब

---

1. Picnic 2. Causes of Maladjustment.

तक हम उसके निराकरण या इलाज के बारे में नहीं सोच सकते हैं। कुसमायोजन के लक्षणों को दबाने से ही केवल उनका दूर करना सम्भव नहीं। उदाहरण के लिए, दो बालक धन चुरा लाते हैं। इनमें से एक तो अपने घर के अनुचित वातावरण के कारण घर लेकर भागना चाहता है, दूसरा उन लड़कों के लिए धन चुराता है जिनमें वह प्रेम करता है और उनके लिए कुछ उपहार खरीदना चाहता है, किन्तु उसे यह नहीं मालूम कि धन चुराया नहीं, कमाया जा सकता है। स्पष्टतः इस कुसमायोजन—धन का चुराना—का इलाज दोनों स्थितियों में अलग होगा।

कुसमायोजन के कारणों पर हम अगले अध्याय में सविस्तार विचार करेंगे जहाँ समस्यात्मक बालकों के व्यवहार' पर विचार किया गया है। समस्यात्मक व्यवहार कुसमायोजन के ही कारण होता है। इसका तात्पर्य यह है कि समस्यात्मक व्यवहार का निरीक्षण अव्यवस्था की ओर संकेत करता है। अतः जो कुछ भी समस्यात्मक व्यवहार के कारण होंगे, वे ही कुसमायोजन के भी कारण होंगे।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान की देन'

प्रारम्भिक कुसमायोजन के लक्षणों को पहचानने के द्वारा मानसिक आरोग्य-विज्ञान ने व्यक्ति के उचित समायोजन के सम्बन्ध में महान् सेवा की है। मानसिक आरोग्य-विज्ञान के विचार ने ही मानसिक अस्पतालों के बनने में योगदान दिया है। इस प्रकार अब हमारे सामने कुसमायोजन के सुधारने के लिए बहुत नवीन ढंग भी पर्याप्त रूप से उपलब्ध हैं। सबसे प्रथम मानसिक आरोग्य-विज्ञान यह बता देता है कि अध्यापक तथा अभिभावकों को विशेष प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए, जिससे वे क्षोभ तथा कलह के कारणों को बालकों में से अलग कर सकें।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान की सबसे बड़ी देन यह है कि इसने हमें यह बताया कि समस्यात्मक व्यवहार पर हमें वैज्ञानिक रीति से विचार करना चाहिए। यही नहीं, यह भी बताया कि कुसमायोजित व्यक्ति के साथ हमारा व्यवहार बड़ी ही दयालुता और सहानुभूति का होना चाहिए। हमारा व्यवहार उनके ऊपर आरोप लगाने वाला या उन्हें हतोत्साहित करने वाला न होना चाहिए।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान तथा शिक्षा[3]

प्रत्येक शिक्षा का यह उद्देश्य होता है कि वह बालक को मानसिक रूप से स्वस्थ बनाए। इसका तात्पर्य यह है शिक्षक बालकों [illegible] अवसर दे जिससे वे अपने व्यक्तित्व को विकसित कर सकें। हमें उन्हें [illegible] लिए अवसर देना चाहिए। हमें चाहिए कि उनको [illegible] जायें जिससे वे उचित रूप से अपने [illegible]।

ons of Mental

(१) शिक्षा और मानसिक आरोग्य-विज्ञान का सामान्य उद्देश्य[1]—शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य कभी भी स्पष्टतः निर्देशित नहीं किया जाता। किन्तु इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह होता है कि व्यक्ति के मनो-शारीरिक स्वास्थ्य[2] को पूर्ण प्रकार से विकसित करना है। शिक्षा सामान्य विकास की ओर भी संकेत करती है और मानसिक आरोग्य-विज्ञान का भी यही उद्देश्य होता है। वर्तमान काल में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की योग्यता का विकास करना है, जिससे व्यक्ति समाज की माँग को भली प्रकार पूरा कर सके। मानसिक आरोग्य-विज्ञान तथा शिक्षा, दोनों का लक्ष्य यही है कि हम समाज में उचित प्रकार से जीवन व्यतीत करें और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति सफलतापूर्वक कर सकें।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों की सहायता करना है ताकि वह एक पूर्ण, प्रसन्न, समन्वित तथा प्रभावशाली जीवन व्यतीत कर सकें। जैसा कहा गया, मानसिक आरोग्य-विज्ञान के उद्देश्य वही हैं जो शिक्षा के उद्देश्य हैं। इनका वर्णन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं

१. आत्मसिद्धि के उद्देश्य।
२. मानव-सम्बन्ध के उद्देश्य।
३ आर्थिक कुशलता के उद्देश्य।
४. नागरिक उत्तरदायित्व के उद्देश्य।

(२) शिक्षालयों में मानसिक आरोग्य-विज्ञान[3]—शिक्षालयों में भी मानसिक आरोग्य-विज्ञान का उपयोग होना आवश्यक है। विद्यालय ही ऐसा केन्द्र है जहाँ हम विद्यार्थियों में जीवन की अच्छी आदतें उत्पन्न कर सकते हैं। बाल्यावस्था में कुसमायोजन को रोकने का उपाय भी किया जा सकता है। अच्छे-अच्छे व्यवहार, शरीर का पूर्ण ध्यान रखने की आदत, कार्य को आर्थिक-बौद्धिक रूप से समझने की आदत आदि विद्यालय में सिखाई जा सकती हैं। इनको विकसित करने का शिक्षालयों को बहुत बड़ा अवसर प्राप्त होता है।

(३) शिक्षण आरोग्य-विज्ञान[4]—शिक्षण आरोग्य-विज्ञान इस ओर प्रयत्न करता है कि पाठशाला का कार्य सुखदायी तथा पूर्ण हो। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह सरल शिक्षण[5] को बल देता है। इससे तात्पर्य है—नवीन ढंगों से हमारे व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से विकसित करना, बालकों को जीवन के लिए ऐसी शिक्षा देना जिससे वे रचनात्मक तथा सामाजिक वातावरण में सहयोगात्मक रूप से समायोजन कर सकें। इसके साथ ही साथ बालक की श्रेष्ठ योग्यता का विकास करना तथा व्यक्तित्व के संगतिकरण के लिए साधारण क्रियाओं की सहायता प्राप्त करना भी इसका उद्देश्य है।

1. Common Aim of Mental Hygiene & Education. 2 Psycho-Physical Health. 3 Mental Hygiene in School. 4. The Hygiene of Instruction. 5. Soft Pedagogy.

(४) अनुशासन व मानसिक आरोग्य-विज्ञान[1]—जब हम अनुशासन को नियन्त्रित करते हैं तब बहुत-से लोग असन्तोष प्रकट करते हैं। कभी-कभी अनुशासन का अर्थ हम बहुत ही निम्न प्रकार के दण्ड से लेते हैं। मानसिक आरोग्य-विज्ञान आत्म-अनुशासन[2] तथा आत्म-नियन्त्रण[3] की भावना उत्पन्न करता है। इसका उद्देश्य हमारे अन्दर अन्ध-विश्वास को दूर कर बौद्धिक विकास को उत्पन्न करना है। तात्पर्य यह है कि बालक के सम्मुख इस प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न की जायें, जिससे वह स्वयं अनुशासित हो सके। यदि हमें आत्म की पूर्णता प्राप्त करनी है तो अनुशासन बहुत ही आवश्यक है। वास्तव में यह विचार शिक्षा में नवीन है, किन्तु कभी-कभी इसकी आलोचना अवश्य की गई है। यह सरलतापूर्ण निर्बल विज्ञान भी नहीं है किन्तु बुद्धिगत पूर्ण विज्ञान है। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए स्वतन्त्रता तथा अनुशासन, दोनों ही महान् आवश्यक हैं। बालक अपने गुणों का पूर्ण विकास केवल स्वतन्त्रता से ही करता है, किन्तु यह अनुशासन के द्वारा ही हो सकता है कि उसको चुने हुए उद्देश्यों की ओर निर्देशित करें।

(५) मानसिक आरोग्य-विज्ञान तथा अध्यापक[4]—वर्तमान समय में अध्यापकों को इस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो उन्हें बालक की समस्याओं को समझने तथा सुलझाने में सहायता दे सके। यही नहीं, बल्कि उनको व्यक्तिगत शिक्षण का मूल्य भी बताना है जिससे वे बालकों के व्यवहार के विकास के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रख सकें। अध्यापकों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक समस्याओं आदि को समझ लें, जब तक कि उनको विशेष प्रकार की शिक्षा बालक के व्यक्तित्व के इन विभिन्न खण्डों को समझने के लिए न दी जाय। हम मानसिक आरोग्य-विज्ञान का सही उपयोग तब तक नहीं कर सकते जब तक सम्पूर्ण अध्यापक-वर्ग उन बालकों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित न करे, जिनके साथ वे शिक्षण कार्य करते हैं। अध्यापकों को तीव्र सूझ रखनी चाहिए, पढ़ाने की विधियाँ उचित होनी चाहिए। अधिकारियों का भी यह उत्तरदायित्व है कि वे प्रशिक्षित अध्यापकों[5] को बिना किसी रुकावट के कार्य करने का अवसर दें।

विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य को खतरा[6]

विद्यालय की कुछ पुरानी परिपाटियाँ ऐसी हैं जो बालकों की मूल आवश्यकताओं और संतोष में बाधा उत्पन्न करती हैं। यह उनके मानसिक स्वास्थ्य को दूषित कर देती हैं। हम यहाँ संक्षेप में उनका वर्णन कर रहे हैं

१. मित्रता का अभाव[7]—शिक्षक जब कठोर अनुशासन पर बल देता है तो वह मित्रता के अभाव को विद्यालय में समाप्त कर देता है।

---

1. Discipline & Mental Hygiene. 2. Self-Discipline. 3. Self-Control. 4. Mental Hygiene & Teacher. 5. Trained Teachers. 6 Mental health hazards in the school. 7. Lack of friendliness.

२. प्रतियोगिता[1]—समूह तथा व्यक्तियों में प्रतियोगिता एक प्रोत्साहन के रूप में अच्छी समझी जाती है। यह प्रतियोगिता जिसमें मित्रता तथा सहयोग होता है और जसमें सब एक दूसरा बराबर का होता है, अच्छी होती है। किन्तु प्रतियोगिता एक मानसिक तनाव उस समय बन जाती है जबकि यह असमान व्यक्तियों में की जाती है। उदाहरण के लिए, दैहिक प्रतियोगिताएँ जो धीरे सीखने वाले एवं प्रतिभावान बालकों में होती है, अयोग्यता, हीनता एवं विफलता के भावों को बालकों में जन्म देती है।

३. समान श्रेणियाँ[2]—विद्यालयों में अंक प्रदान करने या ग्रेड देने का नियम ठीक नहीं। प्रत्येक बालक श्रेणीबद्ध, पाठ्य-पुस्तक को समाप्त करने के आधार पर, किया जाता है किन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि कुछ बालकों की स्मृति अच्छी होती है और कुछ की खराब। इसके अतिरिक्त हमारी परीक्षा की पद्धति में शिक्षक वस्तुनिष्ठ ढंग से अंक प्रदान नहीं करता। बहुधा अच्छे विद्यार्थियों को जिन्हें वह अच्छा समझता है, अधिक अङ्क देता है और जिन्हें खराब समझता है, उन्हें कम अंक देता है। इसको हम परिवेश प्रभाव[3] कहते हैं। इस प्रकार का प्रभाव भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए खतरा है।

४. कक्षा पास करने के नियम—हमारे विद्यालयों में कक्षा पास करने के नियम कुछ इस प्रकार से बने हुए हैं कि बहुत-से बालक फेल हो जाते हैं। उनके मन को धक्का लगता है और वे अपने को व्यर्थ समझने हैं जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य दूषित हो जाता है।

५ असफल होने का भय—अनेक विद्यार्थी मानसिक रोगग्रस्त हो जाते हैं क्योंकि उन्हें असफल होने का भय रहता है।

६. गृह-कार्य—जब बालकों को बहुत अधिक गृह-कार्य दिया जाता है जिसे वे नहीं कर पाते तब भी उनका मानसिक स्वास्थ्य दूषित हो जाता है।

सारांश

मानसिक आरोग्य-विज्ञान का महत्त्व आधुनिक काल में बहुत बढ़ रहा है। यह विषय प्रशिक्षण संस्थाओं में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाने लगा है। मानसिक आरोग्य-विज्ञान, हेडफील्ड के अनुसार, मानसिक स्वास्थ्य का संरक्षण तथा मानसिक रोगों से बचाव करने वाला है। मानसिक आरोग्य से हम व्यक्तित्व की समष्टियात्मक क्रिया समझते हैं। इसके लिए तीन मुख्य बातों का होना आवश्यक है—(१) पूर्ण व्याख्या, (२) संगतिकरण, तथा (३) मूल व अर्जित प्रेरणाओं का सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशन। हम मानसिक स्वस्थ व्यक्ति उसी को कह सकते हैं, जिसके सम्पूर्ण अर्जित या वंशानुगत गुण पूर्ण रूप से विकसित होते हैं और उद्देश्य को सामने रखते हुए इनका अन्य वस्तुओं के साथ सामंजस्य स्थापित रहता है।

---

1. Competition. 2 Uniform grades 3. Halo-effects.

मानसिक स्वस्थ व्यक्ति से तात्पर्य—एक आकर्षक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति नहीं, परन्तु वह व्यक्ति मानसिक स्वस्थ कहे जाते हैं, जो सामाजिक हो तथा जिनकी इच्छा-शक्ति दृढ हो और जिनमे आत्म-विश्वास हो।

मानसिक आरोग्य-विज्ञान के दो मुख्य कार्य हैं—(१) मानसिक विकृति को रोकना; और (२) मानसिक विकृति का उपचार करना।

कुसमायोजन मे व्यक्ति के अन्दर मानसिक द्वन्द्व छिड जाते हैं, जिनको हल करने मे व्यक्ति अपने आपको असमर्थ पाता है। वह द्वन्द्व को दूर करने के ढङ्ग अपनाता है। वह ढङ्ग या तो (१) अप्रभावित होने हैं, या (२) अनिश्चित होते हैं। इन ढङ्गो के आधार पर वह परिस्थिति मे अनुकूलन प्राप्त नहीं कर पाता।

व्यक्ति मानसिक तनाव को कम करने के जो ढङ्ग अपनाता है, वह या तो प्रत्यक्ष रूप मे किये जाते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से। तनावो को कम करने के प्रत्यक्ष ढङ्ग ये हैं—(१) बाधा को दूर या नष्ट करना, (२) दूसरा रास्ता निकालना, (३) दूसरे लक्ष्यो का प्रतिस्थापन, (४) विश्लेषण और निर्णय। तनाव को कम करने के अप्रत्यक्ष ढङ्ग ये हैं—(१) उदात्तीकरण, (२) विनिर्वर्तित व्यवहार जो (अ) प्रत्यागमन या (ब) दिवा-स्वप्न के रूप मे प्रकट हो सकता है, (३) तादात्म्य, (४) संयुक्तिकीकरण, (५) निरोध—यह अचेतन मन पर प्रभाव डालता है और इस प्रकार के व्यवहारो मे दृष्टिगोचर हो सकता है, जैसे—हाथो को लगातार साफ करना, स्वप्नो मे, सुप्तावस्था मे चलना तथा हकलाना, वामहस्तता, खुली अथवा बन्द जगहो का भय, भूलें, दुर्घटनाएँ इत्यादि, क्रियात्मक भूलना, किसी भी दिशा मे अनुचित उत्साह, (६) प्रक्षेपण, तथा (७) उत्क्रमण रचना। तनावों को कम करने के तीसरे प्रकार के ढङ्ग क्षतिपूरक ढङ्ग हैं।

व्यक्तित्व-समायोजन मे मानसिक आरोग्य-विज्ञान बहुत सहायता प्रदान करता है। इसका महत्त्व शिक्षा के वास्ते भी बहुत है। शिक्षा और मानसिक आरोग्य-विज्ञान के उद्देश्य समान हैं। विद्यालयो मे बालको मे कुसमायोजन रोकने के [illegible] तथा वहाँ का शिक्षण आनन्ददायक बनाने के लिए भी मानसिक आरोग्य-विज्ञान बहुत सेवा करता है। मानसिक आरोग्य-विज्ञान की सहायता से हम विद्यालय में उचित अनुशासन का अर्थ समझ लेते हैं और उसे अपनाने की चेष्टा करते हैं।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१ मानसिक आरोग्य-विज्ञान से आप क्या समझते हैं ? मानसिक स्वस्थ व्यक्ति आप किसे कहेंगे ?

२. मानसिक द्वन्द्व किसे कहते हैं ? कुछ ऐसे मानसिक द्वन्द्वो के उदाहरण दीजिए जिन्हें आपने स्वयं अनुभव किया हो।

३ एक कुसमायोजित व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व को दूर करने के कौन-कौनसे ढङ्ग अपनाता है ? संक्षेप मे प्रत्येक का वर्णन कीजिए।

४. दमन से आप क्या समझते हैं ? फ्रॉयड के अचेतन मन के सिद्धान्त के अनुसार दमन की क्रिया का वर्णन कीजिए।

५. शिक्षा में मानसिक आरोग्य-विज्ञान की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए। एक विद्यालय का उदाहरण देकर स्पष्ट समझाइए कि मानसिक आरोग्य-विज्ञान उसमें दी जाने वाली शिक्षा को अच्छा कैसे बना सकता है ?

६. व्याख्या कीजिए :

(i) समतिकरण,
(ii) कुसमायोजन,
(iii) प्रतिगमन,
(iv) तादात्म्य,
(v) संपूरकीकरण,
(vi) उत्क्रमण रचना,
(vii) भाव-विरेचन।

७ एक बालक जो कक्षा में बहुत भीरु प्रतीत होता है किन्तु घर पहुँचते ही तोड़-फोड़ में लग जाता है उसके इस व्यवहार के क्या मुख्य कारण हो सकते हैं ? निम्न में से उन कारणों को छाँटो जो उसके व्यवहार का स्पष्टीकरण करते हों

(i) वह विद्यालय से असन्तुष्ट है।
(ii) वह विद्यालय में शिक्षकों से डरता है क्योंकि उस पर मार पड़ती है।
(iii) उसके माता-पिता उसे बहुत मारते हैं।
(iv) उसके माता-पिता उसे अत्यधिक लाड़ देते हैं।
(v) वह विद्यालय में दमन की हुई इच्छाओं की अभिव्यक्ति घर में तोड़-फोड़ के द्वारा करता है।

२३ शिक्षक एवं उसका समायोजन
THE TEACHER AND HIS OWN ADJUSTMENT

हमने इस पुस्तक के प्रथम अध्याय मे ही शिक्षक के महत्व पर बल दिया है। वांछित शिक्षा प्रदान करने के लिए अच्छे शिक्षक की आवश्यकता है जो न केवल अपने विषय का ही ज्ञान रखता हो वरन् बालको के मनोविज्ञान को भी समझता हो। वह अपना स्वयं का उदाहरण देकर बालको का उचित विकास कर सकने योग्य होना चाहिए। शिक्षक ऐसा उसी समय कर सकता है जब वह स्वयं एक प्रभावशाली समायोजित व्यक्तित्व रखता हो। इस अध्याय मे हम शिक्षक के समायोजन के सम्बन्ध मे ही वर्णन करेंगे। यहाँ हमारा विषय शिक्षक है और हमारा उद्देश्य यह है कि शिक्षक यह समझ लें कि वे स्वयं अपना समायोजन किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं।

कितने शिक्षक कुसमायोजित होते हैं ?

भारतीय स्थिति में हमारे पास इसका विवरण नही है कि कितने शिक्षक कुसमायोजित होते हैं किन्तु अमरीका के अनेक अध्ययन इस ओर संकेत करते हैं कि पर्याप्त सख्या मे शिक्षक कुसमायोजित होते हैं। फेंटन एवं हिक[1] महोदय के अनुसार, "२० प्रतिशत शिक्षक ७०० शिक्षको के प्रतिदर्श मे मानसिक आरोग्य-विज्ञान की सहायता की आवश्यकता प्रतीत करते थे। ब्लेयर[2] महोदय ने २०५ अनुभवी शिक्षकों के प्रतिदर्श मे यह पाया कि ८८ प्रतिशत इस सीमा तक कुसमायोजित थे कि उनकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा होनी आवश्यक थी। इसी प्रकार और अनेक अध्ययनो से यह सूचना मिलती है कि ⅓ या अधिक शिक्षकों को मनोवैज्ञानिक सहायता की

---

1. Hicks F. R.: "The mental health of teachers," *Contributions of Education*, No 123, Mashvilla, Tennessee, George Peabody College, 1934.

आवश्यकता होती है अर्थात् सौ में से पाँच मानसिक रोगी होते हैं जिनका उपचार होना आवश्यक होता है। १५% ऐसे शिक्षक होते हैं जो बहुधा विक्षुब्ध रहते हैं। बाकी शिक्षकों में से अधिकतर कुछ छोटी समस्याओं से त्रस्त रहते हैं, जैसे अधिक संवेदनशील होना या शर्मीला होना।

कुसमायोजन की अभिव्यक्ति

शिक्षक का कुसमायोजन इस प्रकार के कार्यों से अभिव्यक्त होता है, जैसे—बालकों में भय का रोपना, बालकों के लात मारना, हकलाने या तुतलाने वाले बालक की नकल करना, बालक को बुरी तरह से मारना, हरएक से लड़ना, दूसरों पर बरस पड़ना, इत्यादि। दुश्चिन्ता से भरे हुए उत्तेजनशील अथवा वे शिक्षक जिन्हें नींद नहीं आती, सब कुसमायोजित होते हैं।

कुसमायोजन के प्रारम्भिक लक्षण[1]

शिक्षक के व्यवहार में जो खतरे के निशान उभर पड़ते हैं और जो कुसमायोजन अथवा संवेगात्मक अपरिपक्वता के सूचक होते हैं उनका उचित प्रकार से निरीक्षण करना चाहिए। इसके लिए निम्न तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए :

१. यदि एक शिक्षक नाराज रहता है और सदैव झुँझलाहट प्रदर्शित करता है तो यह कुसमायोजन का प्रथम लक्षण है। बालकों को बुरा-भला कहना, उनकी हँसी उड़ाना, कठोर दंड देना—यह सभी एक बीमार मन की अभिव्यक्तियाँ हैं।
२. एक शिक्षक जो बहुधा अपने दूसरे साथियों से लड़ता है, व्यक्तिगत सुरक्षा की कमी से पीड़ित होता है। इस कमी का प्रकाशन वह दूसरों की इज्जत उतार कर करना चाहता है।
३. एक शिक्षक जो विद्यार्थियों का साधारण आक्रमण व्यवहार नहीं बर्दाश्त कर सकता वह भी मानसिक रूप से बीमार होता है। ऐसा शिक्षक जो शोर या मामूली बालकों की शैतानी पर उबल पड़े, शिक्षक होने के लायक नहीं।

अध्यापक का मानसिक स्वास्थ्य दूषित होने के कारण[2]

अध्यापक के मानसिक स्वास्थ्य के ऊपर बुरा प्रभाव डालने वाले कुछ तत्त्व यह हैं—उसके वंश में मानसिक विकृति का कोई व्यक्ति रहा हो, उसकी शारीरिक रचना, परिवार, पाठशाला तथा समुदाय के सम्बन्ध में उसके अनुभव जो उसने अपने बचपन के समय प्राप्त किये हैं, बालकों को समझने का ढंग तथा वे तरीके जिनको वह बालकों की व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने में प्रयोग करता है।

---

1. Early Systems of Maladjustment. 2 Causes of disorders of Mental Health of a Teacher.

[अध्यापिका जब स्वयं मानसिक रोग से पीड़ित होगी तो बालकों को क्या शिक्षण देगी ?]

भारत में इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि निम्न वेतन तथा हीन स्तर के कारण वे ही लोग अध्यापन को पसन्द करते हैं, जिनको और कहीं कोई जीवन-यापन का साधन नहीं मिलता। वैज्ञानिक अध्ययन की कमी के कारण हम यह उचित रूप से नहीं बता सकते कि भारत में ऐसे कितने अध्यापक हैं जिन्होंने अध्यापन कार्य को इसलिए ग्रहण कर लिया है, क्योंकि उन्हें इससे अच्छा कोई और जीवन-यापन का कार्य ही नहीं प्राप्त हुआ। लेखक ने अपने प्रशिक्षण विद्यालय[1] में विद्यार्थियों को प्रवेश देते समय इसी बात को पूछा कि वे प्रशिक्षित क्यों होना चाहते हैं तो केवल एक प्रतिशत प्रवेशार्थियों ने यह कहा कि उन्हें शिक्षा-कार्य में वास्तविक रुचि है। बाकी में से अधिकतर ऐसे थे जिनको कहीं कोई नौकरी ही नहीं मिली थी। इसके बाद उन लोगों का नम्बर आता था जो अध्यापक की तरह

1. Training College.

कार्य कर रहे थे किन्तु प्रशिक्षित[1] नही थे और अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए वह शिक्षालय मे प्रवेश करना चाहते थे। वर्ष के अन्त मे भी जब कुछ विद्यार्थी परीक्षा मे नही बैठते हैं और मध्य मे ही किसी नौकरी के मिलने से चले जाते हैं, तब यह बात भी इस कथन को प्रमाणित कर देती है कि इन विद्यार्थियो को अध्यापन कार्य से कोई रुचि नही थी, वह तो समय बिताने का साधन या किसी प्रकार जीविका-उपार्जन के लायक अपने को बनाना चाहते थे। यदि प्रशिक्षण विद्यालय में १०० विद्यार्थी लेकर कक्षा आरम्भ की जाती है तो लगभग ४ या ५ और कभी-कभी १० तक वार्षिक परीक्षा मे सम्मिलित नही होते। लेखक के विद्यालय मे परीक्षा मे न सम्मिलित होने का कारण ऐसी नौकरियाँ मिल जाना था, जैसे—सरकारी लिपिक, रेलवे कर्मचारी, प्राइवेट फर्म मे कर्मचारी आदि। इस प्रकार इन सबसे यह स्पष्ट है कि हमारे देश के अध्यापको मे क्षोभ के बहुत-से कारण हैं। वह व्यक्ति बहुत कम अवस्थाओं मे सन्तुष्ट हो सकता है, जबकि वह अध्यापन को एक व्यवसाय के रूप में ग्रहण करे। परिणामस्वरूप, उसका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

इसके अतिरिक्त सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयो मे अध्यापको की अवस्था बडी ही दयनीय है। उनकी नौकरी की कोई सुरक्षा नही होती और उनकी नौकरी अधिकतर मैनेजर के ऊपर निर्भर रहती है जो स्वय अक्सर पढ़े-लिखे नही होते और शिक्षा के लिए कोई रुचि नही रखते। यही नही, उन्हे वास्तव में पारिश्रमिक मिलता कुछ है और लिखा कहीं अधिक जाता है। उत्तर प्रदेश मे 'माध्यमिक शिक्षा सुधार कानून' के अनुसार कुछ सुरक्षा उत्तर प्रदेश मे अध्यापको की नौकरी की हो गई है। किन्तु प्रत्यक्ष रूप में अभी वैसी ही शोचनीय अवस्था है, जिससे मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं। अध्यापको पर किये गए अध्ययन से यह पाया गया कि १९५५ मे कानपुर शहर मे १३ विद्यालय ऐसे थे, जिनमे से सभी या अधिकतर अध्यापको की नौकरी असुरक्षित थी।[2]

दूसरी दु:खपूर्ण बात यह थी कि वेतन की पुस्तक मे जितने रुपयों पर उनसे हस्ताक्षर लिये जाते थे, वास्तव मे उतने रुपये उनको मिलते नही थे।

तीसरा कारण, जिसमें अध्यापक को असन्तोष मिलता है, अधिक कार्य-भार है। उत्तर प्रदेश के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे अध्यापको से ३६ घण्टे एक सप्ताह मे कार्य लिया जाता है। कभी-कभी विद्यालयो मे ४८ घण्टे तथा ४२ घण्टे भी कार्य करवाया जाता है। इसके अतिरिक्त अक्सर एक अध्यापक छुट्टी भी ले

1. Trained.

2. Mathur, S S. "Administrative Policies Governing Substitute Teachers Serving in Higher Secondary Schools in Major Cities of U. P" (Unpublished) Ph. D. Dissertation, Agra University, Agra

लेता है और उसका कार्य शेष अध्यापकों में बाँट दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अध्यापक कार्यक्रम के खाली घण्टों को बहुत भाग्यशाली समझते हैं। इस प्रकार उन्हें विद्यार्थियों के संशोधन कार्य को समय नहीं मिलता और वह बालकों के साथ पूरा सहयोग नहीं दे सकते। इसका परिणाम यह होता है कि या तो संशोधन करते ही नहीं या बहुत देर तक कार्य करते रहते हैं, किन्तु संशोधन के लिए ये दोनों ही रीतियाँ हानिकारक हैं। कार्य को छोड़ देना शिक्षण-कार्य में बाधक होता है, और अधिक देर तक कार्य करना उनके मानसिक संतुलन पर प्रभाव डालता है।

चौथा कारण उनके कार्य का निरीक्षण है। मुख्याध्यापक निरीक्षण को वस्तुनिष्ठता से नहीं कर पाते हैं। वह अध्यापकों को कोई निर्देश उनके शिक्षण की उन्नति के लिए नहीं देते किन्तु उच्च कुशलता की आशा करते हैं। यही जिला-विद्यालय निरीक्षक भी करते हैं। वे लोग एक या दो साल के बाद आते हैं, कक्षा में जाकर कुछ टिप्पणी लिख देते हैं और वापस जाकर उन्हें विद्यालय में भेज देते हैं, जब उनके निरीक्षण को एक या दो महीने हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि निरीक्षकों को अध्यापक भय से देखते हैं। जब कभी भी अध्यापक निरीक्षण के बारे में सुनते हैं तो उनमें से अनेक में हतोत्साह उत्पन्न हो जाता है। उपर्युक्त अध्ययन में जो लेखक द्वारा किया गया जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, यह पाया गया कि मुख्याध्यापक या जिला विद्यालय निरीक्षक अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं के आधार पर एक अध्यापक को अच्छा या बुरा कह देते हैं। वास्तव में उन लोगों के पास इतना समय नहीं होता कि वे एक दार्शनिक, पथ-प्रदर्शक अथवा मित्रों जैसा व्यवहार अध्यापकों के साथ कर सकें।

पाँचवाँ कारण यह है कि अध्यापकों का पारिवारिक जीवन, उनका वैवाहिक स्तर, उनकी सन्तान की संख्या एवं उनका व्यवहार भी उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। यह कौन नहीं जानता है कि एक अध्यापक जो अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं, पाठशाला में बालकों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर सकता।

अन्तिम कारण मानसिक द्वन्द्व का यह होता है कि अध्यापकों से आशा की जाती है कि वे आदर्श व्यवहार दर्शाएँ, चाहे समाज के और सब सदस्य कैसा ही व्यवहार करें। यदि वह सिगरेट पीते हैं, अनुचित कार्य करते हैं अथवा ऐसा कोई कार्य करते हैं जो समाज द्वारा उनके लिए स्वीकृत नहीं है तो दूसरे व्यक्ति उनसे घृणा करने लगते हैं। परन्तु यही कार्य यदि एक दूसरा मनुष्य करता है तो उसको कुछ भी बुरा नहीं समझा जाता। इस प्रकार अध्यापक को सदैव अपनी इच्छाओं इत्यादि का दमन करना पड़ता है। यही सब बातें मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न कर देती हैं। उनसे उच्च आदर्शों की तो बहुत आशा की जाती है, उनको देवता तुल्य बनने का निर्देश तो दिया जाता है परन्तु उनकी कठिनाइयों की ओर ध्यान अनावश्यक समझा जाता है। इसके परिणामतः बहुत-से अध्यापक असाधारण हो जाते हैं।

इस प्रकार क्षोभ के मुख्य कारण जो मानसिक द्वन्द्व इत्यादि उत्पन्न करते हैं,

अध्यापक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। उनको हम इस प्रकार कह सकते हैं—(१) अपर्याप्त वेतन, (२) काम में अरुचि, (३) नौकरी की अरक्षा, (४) स्वेच्छाचारी प्रबन्ध[1], (५) व्यक्तिगत निरीक्षण, (६) पारिवारिक कठिनाइयाँ, तथा (७) शिक्षक के कार्यों पर बहुत-से सामाजिक प्रतिबन्ध।

शिक्षक को भी यह समझ लेना आवश्यक है कि उसके व्यवसाय में बहुत-सी सन्तोषजनक बातें भी हैं। उसके कार्य को सब महत्त्वपूर्ण समझते हैं, उसके विद्यार्थी उसका आदर करते हैं। उसके व्यवसाय में दुर्घटना के बहुत कम अवसर हैं। उसके कार्य का समय लम्बा है, फिर भी समय का उपयोग वह स्वयं निर्धारित करता है। शिक्षक को वेतन तो कम मिलता है, किन्तु उसको वह आर्थिक सुरक्षा प्राप्त है जो बहुत-से दूसरे व्यवसायों में नहीं है।

निराशाएँ तो प्रत्येक व्यवसाय में होती हैं, शिक्षक के व्यवसाय में भी उनका होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि इन निराशाओं को ठीक से दूर करने की चेष्टा की जाये और सन्तोष की भावना को बढ़ाया जाये।

अतः यह आवश्यक है कि अध्यापन की दशाओं में सुधार किया जाय। यदि हम यह चाहते हैं कि अध्यापक मानसिक रूप से स्वस्थ हों, तो उनको उचित वेतन देना चाहिए और केवल उन्हीं लोगों को प्रशिक्षण विद्यालय में प्रवेश मिलना चाहिए जो अध्यापन को प्रेम करते हैं। उन्हें समाज में उच्च स्थान तथा अपने कार्यक्रमों को बनाने की स्वतन्त्रता जिसमें वे अपने शिक्षण-कार्य को उचित रूप से कर सकें, मिलनी चाहिए। व्यवस्थापक[2] आये दिन उनके कार्य में रोड़ा न अटकायें। निरीक्षण वस्तुनिष्ठ होना चाहिए और उन्हें उचित पथ-प्रदर्शन भी मिलना चाहिए। हमें उनसे देवताओं जैसे कार्य की आशा नहीं करनी चाहिए, समाज के एक सामान्य तथा आदरणीय सदस्य की तरह के व्यवहार की ही उनसे आशा करनी चाहिए।

शिक्षकों को अच्छा मानसिक स्वास्थ्य रखने के लिए सुझाव[3]

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए शिक्षकों को अपनी आवश्यकताओं, उद्देश्यों और प्रेरणाओं को समझना चाहिए। शिक्षक की दो मुख्य आवश्यकताओं का वर्णन किया जा सकता है—(१) शिक्षक अपने विद्यार्थियों द्वारा आदर प्राप्त करना चाहते हैं, एवं (२) शिक्षक यह चाहते हैं कि उनको वृत्तिक रूप से अपने कार्य करने का सन्तोष मिले। पहली आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए शिक्षक को इस बात को जानना चाहिए कि विद्यार्थी उनसे क्या आशा रखते हैं और किस प्रकार के शिक्षकों को वह पसन्द करते हैं। यह ज्ञान उनको विद्यार्थियों के साथ कार्य करने और उनका आदर प्राप्त करने में सहायक होगा। दूसरी आवश्यकता की पूर्ति समाज द्वारा की जा सकती है। उनको समाज में आदर दिया जाए, उनके महत्त्व को समझा जाए

Management 2. Managers. 3. *Suggestions to*

अच्छा वेतन दिया जाए और समाज उनसे ऐसी आशाएँ न रखे जिसकी पूर्ति वे कर ही न सकते हों।

शिक्षक अपनी विफलताओं को कम कर सकता है, यदि वह उनका सामना उचित रूप से करे, जैसे शिक्षक यह अनुभव करता है कि समाज उसको अधिक आदर नहीं देता तो उसे इस तथ्य का सामना करना चाहिए न कि इसको अपने मन में रखकर अपने मानसिक स्वास्थ्य को दूषित करे। उसे चाहिए कि वह उसके उपचार की चेष्टा करे किन्तु यदि वह यह जानता है कि उपचार सम्भव नहीं तो जैसी स्थिति है उसके अनुसार रहना सीखे।

शिक्षकों को अपने प्रशासनिक अधिकारी से अच्छे सम्बन्ध रखने चाहिए। यह वह इस प्रकार से रख सकता है कि उसके अपने उद्देश्य तथा प्रशासन के उद्देश्य में संगति हो। इसमें तात्पर्य यह नहीं है कि उसके उद्देश्य तथा प्रशासन के उद्देश्य एक-समान हों। किन्तु ऐसा अवश्य होना चाहिए कि जब शिक्षक अपने उद्देश्यों की ओर कार्य कर रहा है तो उसे प्रशासन के उद्देश्य को भी अपने सामने रखना चाहिए।

सारांश

शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता इस कारण है कि उसका प्रभाव बालकों पर बहुत अधिक पड़ता है। अनेक अध्ययनों द्वारा यह पता चला है कि विद्यालयों में शिक्षक पर्याप्त मात्रा में मानसिक रोग से पीड़ित होते हैं।

कुसमायोजित शिक्षक बालकों को कठोर दंड देता है, अपने साथियों से लड़ता है और विद्यार्थियों की थोड़ी-सी गलती को भी बर्दाश्त नहीं करता।

शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य को दूषित करने वाले कारण हैं—(i) अपर्याप्त वेतन, (ii) काम में अरुचि, (iii) नौकरी की अरक्षा, (iv) स्वेच्छाचारी प्रबन्ध, (v) व्यक्तिगत निरीक्षण, (vi) पारिवारिक कठिनाइयाँ, तथा (vii) उनके कार्य पर बहुत-से सामाजिक प्रतिबन्ध।

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए शिक्षकों को अपनी आवश्यकताओं आदि को समझना चाहिए। प्रशासन के उद्देश्यों से अपने उद्देश्यों की संगति करनी चाहिए।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्व क्या है? किस प्रकार शिक्षक अपना मानसिक सन्तुलन रख सकता है?

२. शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले कौनसे तत्त्व हैं? उन तत्त्वों का वर्णन करो।

३. भारतीय विद्यालयों में शिक्षक का स्तर निम्न है, एक शिक्षक होने के नाते आप इस सम्बन्ध में क्या प्रयास कर सकते हैं?

२४ विशिष्ट बालकों का समायोजन और शिक्षा
ADJUSTMENT & EDUCATION OF SPECIAL CHILDREN

किसी भी विद्यालय में हमें ऐसे बालक अवश्य देखने को मिल जायेंगे जो शारीरिक, सामाजिक या मानसिक विकास में विशिष्ट होते। हम देखेंगे कि ऐसे बालकों के समायोजन के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करना पड़ेगा। इस पाठ में हम विशिष्ट बालकों के ही सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

विशिष्ट बालकों से हमारा क्या तात्पर्य है ?

जे० ई० वालेन्स वालेन[1] यह संकेत करते हैं कि १००० प्रारम्भिक स्कूल[2] के बालकों के समूह में जो निम्न, साधारण और उच्च आर्थिक[3] और सामाजिक वातावरण से आए हों, ५०० बालकों को विशेष शैक्षिक-मनोवैज्ञानिक, सामाजिक या शारीरिक समायोजन की आवश्यकता होगी—क्योंकि उनकी ज्ञानोपार्जन सम्बन्धी मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक व्यक्तित्व या शारीरिक समस्याएँ विशिष्ट प्रकार की होंगी जिनके कारण वह कुछ विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करेंगे। इन बालकों का १/१० भाग मानसिक या शारीरिक अयोग्यता से पीड़ित होता है जो बहुत ही गम्भीरता को लिये हुए होती है, और इनके लिए विशिष्ट प्रकार की कक्षाओं का आयोजन करना आवश्यक हो जाता है। यह बालक साधारण बालकों की अपेक्षा हीन होते हैं। साधारण बालकों की तुलना में उनके साधारण, शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक तत्त्वों में अन्तर होता है और यह 'असाधारण' या 'विशिष्ट' शब्द उनके लिए प्रयोग किया जा सकता है। हम ऐसे बालकों को भी जो बहुत उच्च बुद्धि के होते हैं, 'असाधारण' कहते हैं।

क्रो व क्रो का कथन है—"अनोखा या असाधारण शब्द ऐसे गुणों या व्यक्ति जिनमें वह गुण हैं, के लिए प्रयोग किया जाता है जो साधारण व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित

---

1. J. E. Wallance Wallin. 2. Elementary School. 3. Inferior, Medium, Superior, Economic and Social Status.

उन्हीं गुणों से इस सीमा तक विभिन्नता लिये होता है जिसके कारण व्यक्ति-विशेष की ओर उसके साथियों को ध्यान देना पड़ता है या दिया जाता है और उसके कारण ही उसकी व्यावहारिक प्रतिक्रियाएँ तथा कार्य प्रभावित हो जाते हैं।"[1] उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर जो असाधारण या विशिष्ट बालकों के लिए दी गई है, हम इस प्रकार के व्यक्तियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं :

१. शारीरिक न्यूनता से ग्रसित अथवा विकलांग बालक[2]—इस प्रकार के बालकों या व्यक्तियों को हम निम्न रूप में विभक्त कर सकते हैं

(अ) अपंग[3]

(ब) सम्पूर्ण और अर्द्ध अन्धे[4]

(स) पूर्ण बधिर और अपूर्ण बधिर[5]

(द) हकलाने या दोषयुक्त वाणी वाले[6]

(य) निर्बल या कोमल।[7]

२ मानसिक न्यूनता से ग्रसित अथवा मंदितमना बालक[8]

३. प्रतिभावान[9]।

१ शारीरिक न्यूनता से ग्रसित अथवा विकलांग बालक

"ऐसे व्यक्ति को जिसमें ऐसा शारीरिक दोष होता है जो किसी भी रूप में उसे साधारण क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है या उसे सीमित रखता है, हम विकलांग व्यक्ति कह सकते हैं।"[10]

यह दोष कम या अधिक गम्भीर रूप धारण कर सकता है। उदाहरण के लिए, दूषित नेत्र वाले सम्पूर्ण अन्धे से लेकर कम दृष्टि वाले, या गूँगे से लेकर असामान्य दशाओं में वाणी दोषयुक्त बालक—सब शारीरिक न्यूनता से ग्रसित बालक ही हैं।

विकलांगों की समस्याएँ

ग्रसितता चाहे थोड़ी हो या अधिक, किन्तु ग्रसित व्यक्ति को अपने समायोजन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिसका कारण उसकी शारीरिक कुरूपता[11] या बेढङ्गापन होता है। ग्रसित साधारणतः इच्छित क्रियाओं में भाग लेने के योग्य नहीं होता, अतः उसे सन्तोषजनक दूसरी रुचियों की आवश्यकता होती है। उसकी अयोग्यता उसकी संवेगात्मक समस्याओं के रूप में विकसित होती है, जैसे—क्रोध और हतोत्साहन। अतएव उसके समायोजन के लिए इन बातों पर विशेष रूप

1. Crow & Crow : *Educational Psychology*, p 501.

2. Physically handicapped. 3. The cripple. 4. The blind and near blind 5 The deaf and hard of hearning 6. The defective in speech. 7. The delicate person 8. Mentally retarded. 9 Gifted

10 Crow & Crow : *Mental Hygiene*, p. 176.

11. Physical Deformity

से ध्यान देना चाहिए। ग्रसित के अन्तर में यह भावना भी जाग्रत हो जाती है कि दूसरे उसके बारे में उसके शारीरिक दोष के कारण बहुत ही हीन विचार रखते हैं। इसी प्रकार के विचार निरन्तर उसके मस्तिष्क में उठा करते हैं और इन्हीं के परिणाम-स्वरूप उसके अन्दर आत्मदैन्य[1] की भावना उत्पन्न हो जाती है।

कभी-कभी दीनता का कारण घर और वातावरण की अवांछित दशाएँ होती हैं या उनको न दी गई या देर से दी गई औषधि भी कारण हो सकती है। ऐसे बालकों की यदि वातावरण सम्बन्धी दशाओं में सुधार कर दिया जाये तो उनके समायोजन[2] की समस्या हल हो सकती है। शारीरिक ग्रसित आवश्यक रूप से मानसिक दोषयुक्त नहीं होते। अधिकतर उदाहरणों में शारीरिक ग्रसित साधारण या उच्च-बुद्धि रखते हैं। इस प्रकार उनकी शारीरिक ग्रसितता को दूर करने या उसे पूरा करने के लिए हमें अपनी मानसिक शक्तियों, बुद्धि इत्यादि का पूरा-पूरा विकास करने में सहायता प्रदान करनी चाहिए।

विकलांग बालक और शिक्षा

केवल उनके शारीरिक दोषों को निकाल कर शारीरिक ग्रसित व्यक्ति साधारण बालक के समान होते हैं। अतः ऐसे बालकों को उन सब शैक्षिक क्रियाओं की सुविधा देनी चाहिए जो एक साधारण बालक को दी जाती हैं। किन्तु हमें उनके शारीरिक दोषों को भी सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

केवल उन व्यक्तियों को छोड़कर जो इस प्रकार के गम्भीर दोष रखते हैं, जो उनके काम में बाधा डाल सकते हैं, बाकी सबको उचित व्यावसायिक शिक्षा का आयोजन होना चाहिए। जो बालक गम्भीर दोषयुक्त है, उनके लिए हमें इस प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए जो वह शारीरिक दोष के होते हुए भी ग्रहण कर सकें। व्यावसायिक समायोजन उनके अन्दर आत्म-सम्मान[3] की भावना उत्पन्न कर देगा और वे अपने जीवन को स्वयं महत्त्वपूर्ण बनाने के योग्य हो जायेंगे। इसके लिए उन्हें उस क्षेत्र में विकसित होने का अवसर दिया जाए जिसके लिए वे मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण से उपयुक्त हैं।

शिक्षा के द्वारा शारीरिक ग्रसितों के सामाजिक समायोजन को भी देखना चाहिए। ग्रसित को हमेशा दोष के प्रति यथार्थ की भावना उत्पन्न करने की प्रेरणा देनी चाहिए। साथ ही किसी कार्य को करने की योग्यता पर भी उसे बल देना चाहिए। ग्रसित को प्रयोगात्मक रूप में कार्य करने का अवसर देना चाहिए जिन्हें वह अपनी पूर्ण शक्ति की सीमानुसार करे जिससे उसका ध्यान शारीरिक ग्रसितता से विचलित हो जाये। उसको इस प्रकार प्रेरणा देनी चाहिए कि वह यह समझे कि वह अपने समूह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

---

1. Self pity. 2. Adjustment. 3. Self-respect.

विशेष दोषयुक्त विकलांग बालक तथा उनकी शिक्षा का ढङ्ग

(अ) अपंग[1]—अपंग व्यक्ति ऐसे दोष-पीड़ित होते हैं जिसके कारण वह साधारण दशाओं में अपनी मांसपेशियों, हड्डी या जोड़ का अभ्यास नहीं कर पाते। वह व्यक्ति या तो (i) उत्पन्न ही दोषयुक्त होते हैं, या (ii) दुर्घटना के परिणामस्वरूप या (iii) किसी बीमारी के प्रभाव के कारण दोषयुक्त हो जाते हैं।

अपंग की मानसिक योग्यता या तो साधारण होती है या तीव्र होती है। अपंग लोग दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और जब वह दूसरों से बात करते हैं तो उनमें अपनी शारीरिक कमी की भावना जाग्रत हो जाती है, और इस कमी के परिणामस्वरूप उनमें निरर्थक तथा हीनता की भावना भी उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार एक शारीरिक न्यूनता से ग्रसित के समायोजन के लिए शिक्षा को उचित रूप से संगठित करना चाहिए। विभिन्न बातें जो अपंग के शिक्षण में ध्यान में रखनी चाहिए, उनमें से कुछ का वर्णन हम नीचे देते हैं.

(१) क्योंकि शारीरिक न्यूनता-ग्रसित साधारण बुद्धि के होते हैं, अतः उन्हें शिक्षा द्वारा मानसिक विकास के लिए पूर्ण अवसर देना चाहिए।

(२) शिक्षा द्वारा उनके अन्दर इस प्रकार की भावना उत्पन्न करनी चाहिए, जिससे वे अपनी दीनता की भावना को कम कर सकें और उपयुक्त व्यवहार को विकसित कर सकें।

(३) उनके भद्देपन को पाठशाला में पूर्णरूपेण व्यवस्थित करने के लिए पूर्ण सामग्री होनी चाहिए। उनके लिए एक विशेष प्रकार की मेज, कुर्सी आदि होनी चाहिए जिससे वह आराम से बैठ सकें और बिना अपने शरीर पर जोर देकर, पढ़ने तथा लिखने का कार्य कर सकें।

(४) ऐसे बालकों के लिए अलग कक्षा के कमरे हो तो अच्छा है, जैसी कि विद्यालय की इमारत में जगह हो, उसी के अनुसार उचित प्रबन्ध करना चाहिए। अलग कमरा होने से ऐसे बालकों को शारीरिक विकास की अधिक सुविधा मिल सकती है, किन्तु उनका सामाजिक विकास उचित रूप से न हो सकेगा।

(५) अपंग बालकों को हमें ऐसी व्यावसायिक शिक्षा देनी चाहिए जो उनकी शारीरिक न्यूनता-ग्रसितता में बाधक न हो। वह एक सिपाही या भट्टी में कोयला डालने वाला नहीं हो सकता किन्तु बैठने वाली नौकरी के योग्य उसे बनाना चाहिए, जिसे वह आसानी से कर सके और सफलता प्राप्त कर सके।

(ब) सम्पूर्ण अन्धे और अर्द्ध-अन्धे[2]—अधिकतर जिन बालकों में दृष्टि-दोष होता है, वे उसे छिपाने का प्रयत्न करते हैं। वे बालक जो लगभग अन्धे होते हैं अथवा दोषयुक्त नेत्र रखते हैं, दूसरों को यह नहीं बताना चाहते हैं कि उनमें यह विशेष

1. Crippled 2. Blind and near Blind.

प्रकार का दोष है। ऐसी अवस्थाओं में अध्यापक को पूर्णरूपेण सचेत रहना चाहिए। उसे अपने बालकों के मध्य यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि किसी मुख्य प्रकार का दोष तो किसी बालक के नेत्रों में नहीं है। जब कभी वह इस प्रकार के दोष देखे, जैसे—पढ़ते समय अधिक झुकना, विशेष प्रकार से पुस्तक को पकड़ना, क्रोधित होना, आँखों को बार-बार मलना, सर तथा शरीर का विशेष स्थिति में होना आदि, तो उसे मालूम करने का प्रयत्न करना चाहिए कि किस विशेष प्रकार के दोष से वह बालक पीड़ित है तथा उसे इलाज के लिए भेजना चाहिए।

सम्पूर्ण अन्धे की स्थिति में या अर्द्ध-अन्धे की स्थिति में शिक्षा का निम्न प्रकार से संगठन उसके समायोजन में सहायता कर सकता है :

(१) *यदि बालक पूर्ण रूप से अन्धा है तो उसे सम्पूर्ण अन्धों के विद्यालय में* भेजना चाहिए जहाँ वह ब्रेल ढंग[1] से पढ़ सकेगा। उसे समायोजन के लिए व्यावसायिक शिक्षा भी दी जायेगी। उसे गाना या कोई हस्त-कला सिखाई जा सकती है। इनमें से कुछ तो गायन-कला इत्यादि में इतने निपुण हो जाते हैं कि सब उन्हें सदैव याद रखते हैं।

(२) *वे बालक जो अर्द्ध-अन्धे हैं या जिनकी निगाह कम है, उन्हें कन्जरवेशन* कक्षाओं[2] में जहाँ बड़े छापे वाली पुस्तकें और इसी प्रकार की सामग्री प्रयोग की जाती है, पढ़ने के लिए भेजना चाहिए।

(३) साधारण विद्यालयों में भी आँखों के दोष से युक्त बालकों में बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है। वहाँ दोषयुक्त नेत्रों के रोग-निराकरण के लिए भी ध्यान देना चाहिए। दूषित दृष्टि-शक्ति *वातावरण के प्रभाव के कारण भी हो जाती है।* इस लिए वातावरण का उचित होना आवश्यक है। इसके लिए—

(a) विद्यालयों में रोशनी का उचित तथा पूर्ण प्रबन्ध तथा स्पष्ट रूप से छपी हुई पुस्तकों का प्रयोग होना चाहिए।

(b) श्यामपटों को पूर्ण रूप से स्वच्छ रखना चाहिए और उन्हें कक्षा में उचित दूरी पर रखना चाहिए।

(c) स्वस्थ रूप में पढ़ने की आदत भी व्यक्ति में विकसित करनी चाहिए।

(ख) पूर्ण बधिर तथा अपूर्ण बधिर[3]—मुख्य रूप से 'बधिर' शब्द ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जिसने कभी कोई चीज सुनी ही न हो, उसने अपने बोलने से पहले ही अपनी श्रवण व्यक्ति को खो दिया हो अथवा जैसे ही उसने बोलना सीखा हो, श्रवण-शक्ति को खो दिया हो, और साथ ही-साथ उसके बोलने की शक्ति भी नष्ट हो गई हो। एक व्यक्ति जिसने बोलना सीख लिया हो और बाद में उसकी

1. Braille System. 2. Conservation Classes. 3. The Deaf and Hard of Hearing.

श्रवण-शक्ति नष्ट हो जाए तो उसे हम सुनने के अयोग्य या अपूर्ण बहरे की संज्ञा दे सकते हैं।

ऐसे बालक का जो बधिर या सुनने मे असमर्थ हो, शिक्षा द्वारा समायोजन निम्न प्रकार से सम्भव हो सकता है

(१) विद्यालय मे इस प्रकार के साधनो का विकास करना चाहिए जिनसे हरे बालकों तथा अध्यापक मे सम्बन्ध स्थापित हो सके—जिससे वे साधारण ालको की तरह ही शिक्षा ग्रहण कर सकें। किन्तु क्योंकि यह समस्या साधारण शालयो मे सम्भव नहीं, इसलिए एक विशेष प्रकार के विद्यालयो की आवश्यकता ; जिनमे गूँगे तथा बहरे लोग शिक्षा प्राप्त कर सकें। इस प्रकार के बालक अच्छी कार सीख सकते हैं, यह हेलेन केलेर[1] के उदाहरण से भली प्रकार सिद्ध होता ; । वह अन्धी तथा बहरी होते हुए भी वर्तमान काल की एक माननीय स्त्री थी। ध्यापक को यह देखना चाहिए कि क्या बहरा बालक दूसरे व्यक्तियों के साथ जो सके समूह मे हो तथा जो दूसरे समूहो मे हो, सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने के ोग्य है।

(२) वह बालक जो हकलाता है या अपूर्ण बधिर है, विशेष प्रकार के वेद्यालयों में अलग नहीं किया जा सकता और उसको साधारण बालको की कक्षा र साथ-साथ पढ़ने का स्थान देना चाहिए। उसे कक्षा मे आगे बैठने के लिए स्थान मेलना चाहिए, जिससे वह अध्यापकों के चलते हुए होठो को देख सके और उसे केसी भी बालक की तरफ मुड़कर देखने की आज्ञा दे देनी चाहिए जो अध्यापक की ात को सुन रहा हो, उसको होठो के चलाने से समझ लेने के ज्ञान को विकसित करना चाहिए। या तो साधारण विद्यालय मे ही यह ज्ञान उसे देना चाहिए या किसी अन्य स्थान पर जहाँ सम्भव हो, इस प्रकार के अध्ययन के लिए उसे भेजना चाहिए।

(३) बधिर या कम बधिर लोग उचित रूप से समायोजन कर सकते हैं। वे लोग दूसरे गुणो मे अच्छे हैं तो अन्वेषण, गणना का कार्य[2] या शिक्षण-कार्य कर सकते हैं।

(द) **हकलाने या दोषयुक्त वाणी वाले बालक**[3]—तुतलापन, हकलाना, धीरे-धीरे बोलना, नाक दबाकर बोलना,[4] मोटी आवाज, कर्कशता आदि दोषयुक्त वाणी के चिह्न हैं। दोषयुक्त वाणी का कारण शारीरिक दोष हो सकता है किन्तु कुछ ऐसे भी वाणी के दोष हैं जो पूर्ण या अपूर्ण रूप में मनोवैज्ञानिक होते हैं। यह मनोवैज्ञानिक दोष अभिभावकों इत्यादि की लापरवाही के कारण विकसित होते हैं और त्रुटिपूर्ण बोलने की आदत पड़ जाती है। त्रुटिपूर्ण बोलने का अनुकरण, उचित आराम की

---

1. Helen Keller, 2. Acturial work, 3. The defective in speech or stammerer. 4. Nasality.

कमी, संवेगात्मक कठिनाइयाँ आदि भी इसमें सहायक होते हैं। अधिक तीव्र गति से बोलना या हिचक से बोलना, धीरे-धीरे बोलना और हकलाने का कारण अधिकतर संवेगात्मक ही होता है। यदि किसी बालक को हम उचित तथा सही प्रकार की उत्तेजना से बोलना सिखाते हैं तो वह इन कमियों को दूर कर देता है। उसको यदि संवेग न उत्पन्न करने वाला वातावरण दे दिया जाय और उसमे तुतलाकर न बोला जाये तो मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न दोष बिलकुल ही समाप्त किये जा सकते है।

इस प्रकार वाणी के दोषों को दूर किया जा सकता है अथवा उनको निम्न प्रकार से कम किया जा सकता है :

१. शारीरिक दोष को हम शल्य क्रिया[1] द्वारा दूर करने की चेष्टा करें।
२. बालक अच्छे बोलने का अनुकरण करे।
३ घर तथा विद्यालय का वातावरण तनाव को कम करने वाला हो।
४. उचित भोजन।
५ विशेष प्रकार की शिक्षा, जो बोलने मे सहायक हो।

विद्यालय भी इस दोष को दूर कर सकते हैं—(१) बालक को अपनी कठिनाई को पहचानने के लिए प्रेरणा देकर, (२) प्रसितता के दोष पर अधिक जोर न देकर, (३) उचित और सही निदान के द्वारा दोष मालूम करके, (४) दोष के अनुसार अभ्यास देकर, (५) चिन्ता को दूर करके, (६) अन्य साथियों के समक्ष ग्रसित को व्याकुल[2] न करके, (७) अध्यापकों को उनके दोष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि प्रसन्न करने वाली, शान्तिपूर्ण वाणी में उनसे बोलें।

(घ) निर्बल या कोमल[3]—कोमल व्यक्तियों से हमारा तात्पर्य ऐसे लोगों से नही है जो किसी बीमारी या रोग से युक्त हैं, वरन् ऐसे लोगों से है जिनकी शारीरिक दशा इस प्रकार की है कि उन्हें अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सदैव सचेत रहना पड़ता है। ऐसे लोग जिनके अन्दर रक्त की कमी है, शक्ति की कमी है, ग्रन्थि-दोष है, इस श्रेणी में गिने जाते हैं।

कोमल व्यक्ति साधारण कार्यों तथा क्रीड़ाओं मे भाग नही ले सकता है। यदि उसका शरीर अधिक अभ्यास में असाधारण प्रकार से थक जाता है तो वह बीमार पड़ जाता है। अधिकतर ऐसे कोमल व्यक्ति उचित भोजन की कमी के कारण होते हैं। इसके साथ ही साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि उनके अन्दर अन्य कोई छूत[4] के रोग हों। यदि विद्यालय अथवा परिवार मे उन्हें विकास का उचित अवसर दिया जाता है तो ऐसे बालकों की कमी को दूर किया जा सकता है।

---

1. Surgical Operation. 2. Embrassing. 3. The delicate person. 4. Infection

विद्यालय में समय-समय पर शारीरिक परीक्षा, शारीरिक कमी की चिकित्सा आदि आवश्यक हैं। भारत में स्वास्थ्य का साधारण स्तर कम है, जिसका कारण यहाँ की आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। यदि पाठशाला में दोपहर के खाने और दूध के लिए स्वेच्छा से प्रबन्ध किया जाये, अर्थात् बालकों को बिना पैसे लिये यह सुविधाएँ दी जायें तो पाठशालाएँ बहुत-कुछ दोष को दूर करने में सहायता प्रदान कर सकती हैं।

२ मंदितमना बालक[1]

साधारण रूप से जिन बालकों की बुद्धि-लब्धि[2] ६० से कम होती है उन्हें हम मानसिक न्यूनता ग्रसितों की श्रेणी में रखते हैं। किन्तु इस श्रेणी मे हम यहाँ सामान्य से नीचे बुद्धि वालों की भी गणना करेंगे (जिनकी बुद्धि-लब्धि ७० और ८५ के बीच में होती है), अत मानसिक ग्रसितो मे ऐसे बालकों को लेंगे जिनकी बुद्धि-लब्धि ० से ८५ है। ० से २४ तक की बुद्धि-लब्धि जड[3] की होती है। २५ से ४६ तक बुद्धि-लब्धि के मूढ[4] होते हैं। ५० से ७० तक की बुद्धि-लब्धि के मूर्ख[5], और जो लोग ८५ से कम बुद्धि-लब्धि रखते हैं, वे मन्द-बुद्धि[6] की श्रेणी मे आते हैं।

बहुत-से अभिभावक इस बात पर विश्वास नहीं करते कि उनके बालक मानसिक रूप से पूर्ण नहीं हैं। उनका विचार यह होता है कि यदि बालक अच्छी प्रकार से अध्ययन नहीं कर पा रहा है तो वह उतनी मेहनत से नहीं पढता, जितनी उसे चाहिए। यदि कोई उनसे कहता है कि उनका बालक मानसिक रूप से अपूर्ण है तो वह उस पर क्रोधित होने लगते हैं। ऐसा बालक साधारण ज्ञान को प्राप्त करने में भी असमर्थ रहता है। अतः अध्यापक का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह अभिभावकों को उनके बालको के मानसिक विकास के सम्बन्ध मे अवगत कराये जिससे वे अपने बालक के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था के बारे में सोच सकें। बालकों की मानसिक योग्यता की परीक्षा होनी चाहिए और अभिभावकों को इसका पूर्ण ज्ञान कराना चाहिए। अत उन्हें बालक को अच्छा बनाने के लिए भरसक प्रयत्न जो वह कर सकते हैं, करना चाहिए। मन्द-बुद्धि वाले बालकों के प्रति अन्याय होगा, यदि उनके अभिभावक उन्हे उनकी शक्ति से अधिक कार्य करने को बाध्य करते हैं। बालक के अन्दर बहुत-सी संवेगात्मक समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी और उसका समायोजन कठिन हो जायेगा।

मंदितमना के समायोजन की समस्या प्रतिभाशाली अथवा साधारण बालकों से बिलकुल भिन्न है। मानसिक न्यूनता ग्रसितो के साथ हमारा व्यवहार बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण तथा धैर्यपूर्ण होना चाहिए। हमे उनके चरित्र का भली प्रकार विकास कर देना चाहिए।

1. Mentally Retarded Children. 2. Intelligence Quotient. 3. Idiots. 4. Imbeciles. 5. Morons. 6. Feeble-minded.

विद्यालय में मूर्ख बालक कम होते हैं, किन्तु अल्प-बुद्धि तो बहुत-से बालक हो सकते हैं। यदि मानसिक न्यूनता-ग्रसित बालक को साधारण पाठशाला में पढ़ाई आरम्भ करवा दी जाती है तो या तो उनकी अल्प-बुद्धि उनके आगे बढ़ने में बाधक होगी अथवा वह निम्न श्रेणियों में ही रहेगा और अधिक समय नष्ट करेगा। विद्यालयों में निम्न-बुद्धि के बालक साधारणतया प्रसन्न नहीं रहते, क्योंकि वे अपने प्रतिभावान साथियों के बराबर शिक्षा में उन्नति नहीं कर पाते। परन्तु उनके अभिभावक इत्यादि सदैव उनसे यह आशा करते हैं कि वे प्रतियोगिता में प्रतिभावान का मुकाबला कर सकते है। इसका परिणाम यह होता है कि वे मानसिक क्षोभ के शिकार हो जाते हैं।

यूनेस्को के एक प्रकाशन[1] मे विद्यालय में विभिन्न श्रेणी के मंदितमना बालकों के अनुपात की तालिका दी है। यह तालिका नीचे दी जा रही है :

विभिन्न श्रेणी के मंदितमना बालकों का अनुमानित अनुपात विद्यालय की जनता मे[2]

मानसिक न्यूनता की श्रेणी	शब्द जो उनके लिए प्रयोग किया जाता है	लगभग बुद्धि-लब्धि स्तर	लगभग प्रतिशत विद्यालय आयु की जनता में	
गम्भीर मंदितमना	जड बुद्धि[3]	०—१९	०·०६	२·५६
साधारण मंदितमना	हीन बुद्धि[4]	२०—४९	०·२४	
मध्यम मंदितमना	दुर्बल बुद्धि[5]	५०—६९	२·२६	
मंद-सामान्य	मद तथा पिछड़ा[6]	७०—८५/९०	१०·००	

इस तालिका से स्पष्ट है कि विद्यालय में लगभग २·५६ प्रतिशत बालक ७० से कम बुद्धि-लब्धि के होंगे। इन बालकों की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

अत यह आवश्यक है कि मंदितमना को विद्यालय मे उचित शिक्षा का अवसर देना चाहिए। उनको साधारण शब्दकोश सिखाना चाहिए। उनके पढ़ने की सामग्री रुचिपूर्ण होनी चाहिए और साधारण रूप से शिक्षा तथा सीखना, दोनों ही साथ-साथ चलने चाहिए।

---

1. Wall, W. D. : *Education & Mental Health*, UNESCO, 1955, Table I, p. 215.

2. Estimated proportion of various grades of mentally subnormal children in the school population. 3. Idiot. 4. Inbecile. 5. Feeble-minded. 6. Dull and backward.

मानसिक न्यूनता-प्रसितों को ऐसी व्यावसायिक शिक्षा भी देनी चाहिए जिसमे वे सफलता प्राप्त कर सकें। उनको औद्योगिक शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे उद्योग में सफल हो सकें और परिणामतः उचित रूप से अपनी जीविका को चला सकें।

जिन बालकों की बुद्धि-लब्धि ५५ से कम है, उनको विशेष प्रकार की पाठशाला मे भेजना चाहिए जिससे वे विशेष प्रकार के अध्यापक के सम्पर्क में रह सकें। इस प्रकार बालक अच्छी प्रकार अपने को नियन्त्रित करना सीख सकते हैं और उचित आदतों को उत्पन्न करना भी सीख सकते हैं। अतः हमे उन्हे ऐसी उत्तेजनाओं को देना चाहिए जो उन्हें नियन्त्रित करने वाली क्रियाओ मे सहायता प्रदान कर सकें। जो लोग मूर्ख हैं, उन्हें इस प्रकार के कार्यों को सिखाना चाहिए जिससे वे अपनी जीवन सम्बन्धी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा कर सकें, यद्यपि वे एक सफल नागरिक के रूप मे विकसित नही किए जा सकते।

मंदितमना अधिकतर सामाजिक रूप से कुसमायोजित रहते हैं। वह उन सामाजिक योजनाओं को सोचने मे असमर्थ होते हैं जो उन्हें सतोष दे सकती हैं।

वह बालक अच्छी प्रकार समाज मे समायोजित हो सकता है जो अपनी सेवाओ को अच्छी सामाजिक योजनाओ मे दे सकता है। इस प्रकार के बालक दूसरे व्यक्तियो का आदर प्राप्त कर सकते हैं, उनके कार्यों की सराहना की जा सकती है, अपने अच्छे स्वभाव के कारण वह अच्छी मित्रता उत्पन्न कर सकते हैं तथा सामाजिक क्रियाओ मे अपनी योजनाओ द्वारा सहयोग भी दे सकते हैं।

३. प्रतिभाशाली बालक[1]

ऐसे बालक जिनकी बुद्धि-लब्धि १२० से ऊपर होती है, प्रतिभाशाली होते हैं। यथार्थ रूप मे २% से अधिक बालक विद्यालय मे इस श्रेणी मे नही होते किन्तु इसमे कुछ बालक ऐसे भी हो सकते हैं, जिनकी बुद्धि-लब्धि १८० और १६० भी हो सकती है। इस योग्यता के बालक भी हमारे सामने एक समस्या का रूप ले सकते हैं, क्योंकि उनकी स्वयं की समस्याएँ बड़ी जटिल होती हैं। साथ ही साथ उनके लिए किस प्रकार के विद्यालय का संगठन तथा प्रबन्ध हो, यह भी एक जटिल प्रश्न है।

इस प्रकार के बालक एक साधारण बालक से बहुत अधिक योग्य होते हैं। वे लोग उस कार्य को बहुत शीघ्र कर सकते हैं जो उन्हे दिया जाता है। एक साधारण बालक उतनी गति से उन्हे समाप्त नहीं कर सकता। कक्षा मे जहाँ उन्हें साधारण बालकों के साथ रखा जाता है अथवा औसत से भी निम्न बालको के साथ, तो कक्षा उनके लिए अरुचिपूर्ण हो जाती है और उन्हें कक्षा के कार्य मे कोई उत्तेजना नहीं मिलती है। ऐसे बालक पाठशाला के कार्य से कोई सम्बन्ध नही रखते और अशोभनीय कार्यों मे पड जाते हैं। उनके अन्दर सुस्ती, बेचैनी और नटखटपन उत्पन्न हो जाता है।

---

1. The Gifted Child.

ऐसे बालकों के समायोजन के लिए जो ढंग बताए जाते हैं, वे ये हैं—(१) उनको शीघ्र उन्नति का अवसर देना चाहिए। (२) उनको नीची कक्षाओं से शीघ्र ऊँची कक्षाओं में उत्तीर्ण होने के अवसर देना चाहिए; किन्तु यहाँ समस्या यह हो जाती है कि ऐसी अवस्थाओं में वे बालक अपने से बहुत बड़े और अधिक उम्र के बालकों के मध्य में पहुँच जाते हैं और उनके साथ वे शारीरिक कार्यों में पूर्णरूपेण भाग नहीं ले पाते। वे नेतृत्व भी नहीं कर पाते, क्योंकि वे केवल अपनी उम्र के ही बालकों को अपनी योग्यताओं से प्रभावित कर सकते हैं, इस प्रकार उनका सामाजिक समायोजन पूर्णरूपेण नहीं हो पाता। अधिक उम्र के बालक उनका मजाक बनाते हैं, क्योंकि वे शारीरिक दृष्टि से छोटे होते हैं। यही कारण है कि प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा के ये तत्त्व अध्यापकों के समक्ष समस्यात्मक रूप में आते हैं।

प्रतिभाशाली बालकों की पहचान[1]—प्रतिभाशाली बालकों को साधारण बालकों में से छाँट लेना भी बहुत कुछ कठिनाई उत्पन्न करता है। बालकों को छाँटने के वास्ते कई प्रकार की चेष्टाएँ की गई, जो निम्नलिखित हैं :

(१) बहुत-से प्रतिभाशाली बालकों का अध्ययन करके यह पता लगाया गया है कि ऐसे बालक जितने असाधारण योग्यता होती है, किस प्रकार के परिवारों में उत्पन्न होते हैं। यह पता लगा कि ऐसे बालक उच्च कुल में अधिक उत्पन्न होते हैं। अधिकतर इनके माता-पिता, व्यापार या किसी स्वतन्त्र जीविका-उपार्जन के पेशे को अपनाए रहते हैं। छोटे पेशे को अपनाने वाले व्यक्तियों की सन्तानों में बहुत ही कम मात्रा में प्रतिभावान बालक होते हैं। प्रतिभावान लड़के और लड़कियाँ बराबर संख्या में पाये जाते हैं।

(२) अध्यापकों का निर्णय भी इस सम्बन्ध में लिया गया, परन्तु वह अधिक उपयोगी तथा लाभदायक सिद्ध न हो सका। उन्होंने कक्षा में सबसे योग्य बालकों को ही प्रतिभावान बताना उचित समझा, बिना इस बात को ध्यान में रखे हुए कि यह अन्य बालकों से कहीं अधिक उम्र के हो सकते हैं। इसी प्रकार परीक्षा का ढंग भी अधिक उपयोगी सिद्ध न हो सका। अध्यापक द्वारा व्यक्तिगत परीक्षा में बहुत-से प्रतिभावान बालक पिछड़ जाते हैं, क्योंकि अध्यापक उनकी प्रतिभा को नहीं पहचान पाते और उनके उत्तरों को त्रुटिपूर्ण समझते हैं।

(३) बुद्धि की वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ, विद्यालय की सूचना सम्बन्धी तथा बुद्धि-सम्बन्धी परीक्षाएँ प्रतिभावान बालकों को सही रूप में स्पष्ट कर सकती हैं और उनके मानसिक नापों को भी ले सकती हैं। अब इस प्रकार की परीक्षाएँ सम्भव हैं और हम प्रतिभावान बालकों को सही प्रकार से पहचान सकते हैं।

प्रतिभावान बालकों की मुख्य विशेषताएँ[2]—अग्रलिखित विशेषताएँ प्रतिभा-

---

1. Identification of gifted pupils. 2. Most notable characteristics of the gifted.

बान बालको मे देखी गई हैं। ये विशेषताएँ टरमैन[1] और होलिंगवर्थ[2] की पुस्तको के अध्ययन के आधार पर हैं, यथा—

(१) इनके माँ-बाप उच्च कुल के होते हैं। ये बालक अच्छी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति वाले परिवार मे अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

(२) शारीरिक गुणो मे अपने साथ के तथा उम्र के अन्य बालकों की तुलना में भी प्रतिभावान उच्च होते हैं। वे पैदा होते समय औसतन दूसरे बालको से अधिक बडे होते हैं, जल्दी ही चलना आरम्भ कर देते हैं, उनकी साधारण स्वास्थ्य की अवस्था अच्छी होती है और उनमें किशोरावस्था के लक्षण शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं।

(३) उनमे से अधिकतर पढाई मे साधारण से अच्छे होते हैं। पढने मे उनकी वास्तविक रुचि होती है, वे ज्ञान प्राप्त करने मे रुचि लेते हैं। इसी प्रकार प्रतिभावान बालक कला, गायन विद्या आदि मे रुचि लेते हुए पाये गये हैं।

(४) वे अमूर्त्त वस्तुओं मे अधिक रुचि लेते हैं और इसी प्रकार कठिन विषयों मे सरल की अपेक्षा अधिक रुचि लेते हैं।

(५) खेल में ये लोग अधिक रुचि नही लेते। वे लोग अपने से अधिक उम्र वाले साथियों के साथ चिन्तन युक्त कार्यों मे अधिक रुचि लेते हैं। वे लोग अपने पाठ्यक्रम से अधिक पढ़ने में रुचि लेते हैं।

(६) व्यक्तित्व को मापने वाली बहुत-सी परीक्षाओं मे ये बालक निश्चित रूप से उत्तम होते हैं। वे बुद्धि मे भी अति उत्तम होते हैं। इनकी श्रेष्ठता का वर्गीकरण इस प्रकार क्रम से किया जा सकता है—(अ) इच्छा-शक्ति सम्बन्धी[3], (ब) संवेगात्मक, (स) चारित्रिक, (द) शारीरिक, (य) सामाजिक।

प्रतिभाशाली बालकों को शिक्षा[4]

(१) प्रतिभावान बालको के लिए अपने को व्यवस्थापित करना कठिन होता है क्योंकि पाठशाला की परिस्थितियाँ एक विशेष प्रकार की होती है। हमे प्रतिभाशाली बालक के पढने की तीव्रगति के लिए व्यवस्था करनी चाहिए। प्रतिभाशाली बालको के लिए शिक्षा के प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर विशेष कक्षाओं[5] का प्रबन्ध भी करना चाहिए।

(२) यद्यपि विशेष कक्षाओं का होना आवश्यक है, फिर भी ऐसे बालको को दूसरों से मिलने का अवसर देना चाहिए जो उनसे कम बुद्धि वाले हैं। जब वे बडे हो जायँगे तो इन्ही लोगों के साथ उन्हें समायोजन करना पडेगा। अत. इस प्रकार समायोजन के लिए पाठशाला के शिक्षा-काल मे ही उन्हे अवसर देना चाहिए।

---

1. Terman, L. M. . *Genetic Studies of Genius*, Stanford Univ.

2. Hollingworth L. S : *Gifted Children, Their Nature & Nurture*, MacMillan & Co., 1926.

3. Volitional. 4. Education of the Gifted. 5. Special Classes.

(३) उन्हें कक्षा के बाहर की उन क्रियाओं में भी भाग लेना चाहिए जो उनकी शिक्षा से सम्बन्धित नहीं होतीं। यह आशा की जा सकती है कि प्रतिभाशाली उनमें नेतृत्व करें। किन्तु अध्यापक को उन्हें नेतृत्व पद अपनी ही इच्छा से नहीं देना चाहिए, नहीं तो दूसरे उनसे क्रोधित हो जायेंगे तथा ईर्ष्या करने लगेंगे।

(४) अध्यापकों को प्रतिभाशाली बालकों के संवेगात्मक सन्तुलन के रखने में सहायता करनी चाहिए। इसके लिए उन्हें अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

(५) अध्यापन में ऐसे अभ्यासों को जो केवल दोहराने के लिए ही होते हैं, या तो कम कर देना चाहिए या हटा ही देना चाहिए।

(६) प्रतिभावान के लिए किसी भी झूठी उत्तेजना की आवश्यकता नहीं होती। यदि विषय-सामग्री को बौद्धिक रूप से उनके समक्ष उपस्थित किया जाता है तब उनमें बौद्धिक उत्सुकता सदैव बनी रहती है।

(७) आम तौर से योजना-विधि प्रतिभाशाली बालकों के लिए अधिक सफल सिद्ध हुई है। उन्हें योजना पर कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, उन्हें नियन्त्रित करने तथा उसके अनुसार कार्य करने के लिए भी कहना चाहिए।

(८) प्रतिभाशाली बालकों को पढ़ाने के लिए विशेष प्रकार से योग्य अध्यापकों की आवश्यकता होती है—जो स्वयं प्रखर बुद्धि के हों, जिन्हें प्रतिभावान बालकों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का पूर्ण ज्ञान हो तथा ईर्ष्या और अन्धविश्वासों आदि मनोवृत्तियों से दूर हों।

हॉलिंगवर्थ[1] का कहना है—"प्रतिभावान बालकों को सभ्य समाज में स्थान देने के लिए हमें विशेष प्रकार से उन्हें संस्कृति का उद्विकास जो अब तक हो चुका है, बताना चाहिए, और क्योंकि ८ अथवा ९ वर्ष तक वे इस संस्कृति की विशेषता को समझने के योग्य नहीं होते, अतः हमें उन्हें संस्कृति सम्बन्धी साधारण वस्तुएँ बतानी चाहिए जिन पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। साधारण वस्तुओं में भोजन, रक्षा, आवागमन और इसी प्रकार की वस्तुएँ सम्मिलित हैं। इस माध्यम से बालक उत्तेजित किये जा सकते हैं और उनके अन्दर की बौद्धिक उत्सुकता को सन्तुष्ट भी किया जा सकता है।

सारांश

विशिष्ट या असाधारण बालक वह हैं जिनमें या तो कुछ शारीरिक दोष होते हैं या मानसिक। वे बालक भी असाधारण बालकों की श्रेणी में माने जाते हैं जिनकी ;द्धि अत्युत्कृष्ट होती है। विकलांग बालक हैं—(१) अपंग, (२) सम्पूर्ण और अपूर्ण

1. L. S. Hollingworth : *An Enriched Curriculum for Rapid* *earners*, p. 500, Teachers College Record, 39 - 269 (Jan., 1932).

अन्धे, (३) पूर्ण बधिर एवं अपूर्ण बधिर, (४) हकलाने या दोषयुक्त वाणी वाले, (५) निर्बल या कोमल।

केवल उनके शारीरिक दोषो को निकाल कर, शारीरिक न्यूनता-ग्रसित बालक उचित रूप से साधारण होते हैं। अत ऐसे बालकों की साधारण बालको के प्रकार से शिक्षा उनके शारीरिक दोषो को ध्यान मे रखकर दी जा सकती है। अपंग बालको की मानसिक योग्यता या तो साधारण होती है या तीव्र होती है, अतएव उन्हे शिक्षा इस प्रकार से दी जानी चाहिए कि उनका मानसिक विकास हो सके और वे किसी *जीविकोपार्जन व्यवसाय को चुन सकें। सम्पूर्ण अन्धो को अलग स्कूलो मे शिक्षा देनी* चाहिए परन्तु अर्द्ध अन्धे या दृष्टिदोषी को साधारण बालकों के स्कूलों मे ही शिक्षा दी जा सकती है, जहां उनके दोषो पर उचित ध्यान देना चाहिए और उन्हे बढने नही देना चाहिए। पूर्ण बधिर बालक के लिए भी अलग स्कूल की आवश्यकता है, परन्तु अपूर्ण बहरे बालक के लिए इसकी आवश्यकता नहीं है, उसे होठ चलने के द्वारा अर्थ समझने की शिक्षा देनी चाहिए। दोषयुक्त वाणी या तो शारीरिक दोषो के कारण या मनोवैज्ञानिक कारणो से हो सकती है। हम मनोवैज्ञानिक कारणो को दूर कर सकते हैं और इस प्रकार के दोषयुक्त बालक का उचित समायोजन हो सकता है। निर्बल बालक के समायोजन मे भी शिक्षा द्वारा सहायता पहुँचाई जा सकती है।

साधारण रूप मे जिन बालको की बुद्धि-लब्धि ७० से कम होती है, उन्हें हम मानसिक न्यूनता-ग्रसितों की श्रेणी में रखते हैं। मानसिक न्यूनता-ग्रसित बालकों के *लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक है, अन्यथा उनका समायोजन बिगड* जाता है। ५५ से कम बुद्धि-लब्धि के बालको के वास्ते विशेष पाठशालाओं का आयोजन आवश्यक है।

ऐसे बालक जिनकी बुद्धि-लब्धि १३० से ऊपर होती है, प्रतिभाशाली कहलाते हैं। ये बालक साधारण से बहुत योग्य होते हैं और इनको उन्नति के उचित अवसर प्रदान करने चाहिए। इनकी पहचान के लिए वस्तुनिष्ठ परीक्षाओ की सहायता लेनी चाहिए। उनकी शिक्षा मे यह ध्यान रखना चाहिए कि वे अपनी मानसिक उन्नति के साथ-साथ सामाजिक उन्नति भी कर सकें, और दोनो प्रकार से उनका समायोजन उचित हो।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१ असाधारण या विशिष्ट बालक से आप क्या समझते हैं? उनकी शिक्षा के लिए आप क्या प्रबन्ध करेंगे?

२ एक अपंग बालक का समायोजन किन कारणो से कठिन हो जाता है? आप इन कारणो को दूर करने के लिए क्या करेंगे?

३. मन्द-बुद्धि बालक कैसे बालक कहलाते हैं? उनकी शिक्षा के सम्बन्ध मे विचार दीजिए।

४. प्रतिभावान बालक विद्यालय में एक समस्या उत्पन्न कर देते हैं। आप इस समस्या के समाधान के लिए क्या विधि अपनायेंगे ?

५. आप अपने सम्पर्क में आने वाले बालकों में से जिन्हें प्रतिभावान समझते हों या मन्द-बुद्धि, उनकी विशेषताओं का निरीक्षण करके एक तालिका के रूप में प्रस्तुत करिए। इस कार्य के लिए बुद्धि-परीक्षा का देना आवश्यक है।

६. हकलाने के मनोवैज्ञानिक क्या कारण हो सकते हैं ? इन कारणों से आप क्या समझते हैं ? आप हकलाने और तुतलाने को कैसे दूर कर सकते हैं ?

७. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर में तीन विकल्प दिये गये हैं। इनमें से एक ही उपयुक्त है। उसको छाँट करें

(i) विकलांग बालकों से हम
- (a) ऐसे बालक समझते हैं जिनकी बुद्धि सामान्य से अधिक हो।
- (b) ऐसे बालक समझते हैं जो पढ़ने में ध्यान नहीं लगाते हैं।
- (c) ऐसे बालक समझते हैं जो शारीरिक दोष रखते हैं।

(ii) हकलाने का मनोवैज्ञानिक कारण
- (a) घर अथवा विद्यालय में तनाव-पूर्ण वातावरण का होना है।
- (b) पाठशाला में दूसरे बालकों के साथ अधिक खेलना है।
- (c) दूसरे बालकों से तुलनात्मक कम गृहकार्य मिलना है।

(iii) मंदितमना बालकों को शिक्षण देने में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह
- (a) परीक्षाएँ पास कर सकें।
- (b) अपनी जीविका-उपार्जन के लिए कुछ व्यवसाय सीख सकें।
- (c) कक्षा में अधिक कार्य करके सामान्य बालकों के बराबर आ जाएँ।

(iv) प्रतिभावान बालकों की पहचान करने के लिए हमें सबसे अधिक महत्त्व
- (a) शिक्षक के निर्णय को देना चाहिए।
- (b) परिवार को जिससे बालक आता है, देना चाहिए।
- (c) वस्तुनिष्ठ परीक्षणों को देना चाहिए।

२५ पिछड़े हुए बालकों, समस्या-बालकों और अपचारी बालकों की शिक्षा

EDUCATION OF BACKWARD, PROBLEMATIC & DELINQUENT CHILDREN

पिछले अध्याय में हम शारीरिक और मानसिक न्यूनता-ग्रसित तथा प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा-समस्या एवं समायोजन-समस्या पर विचार कर चुके हैं। विद्यालयों में ऐसे भी बालक मिलते हैं जिनकी व्यावहारिक समस्याएँ होती हैं और इन्हें हम असाधारण या विशिष्ट बालकों की श्रेणी में रखते हैं। इन बालकों की श्रेणी में हम पिछड़े हुए, समस्या और अपचारी बालकों की गणना करते हैं। यह वर्गीकरण बालकों के व्यवहार के आधार पर है, जबकि पहले वाला वर्गीकरण उनकी बौद्धिक वृद्धि और शारीरिक अयोग्यता के आधार पर था। पिछड़े हुए, समस्या तथा अपचारी बालक मानसिक रूप में बुद्धिहीन, साधारण अथवा प्रतिभाशाली हो सकते हैं। वास्तविक रूप से हम इन बालकों की बुद्धि-लब्धि के आधार पर इनके व्यवहार को देखने का भी प्रयत्न करते हैं। साथ ही साथ व्यवहार-सम्बन्धी समस्याओं को मालूम करने का भी प्रयत्न करते हैं। किन्तु इनके व्यवहार के प्रतिमानों पर प्रकाश डालने के पूर्व हमें इनका अर्थ समझ लेना चाहिए। इसी तात्पर्य से हम पिछड़े, समस्या तथा अपचारी बालकों पर एक-एक करके विचार करेंगे।

पिछड़े हुए बालक[1]

'पिछड़ापन' विद्यालयों में अति गूढ़ एवं जटिल समस्या है। इस समस्या को अधिकतर अध्यापक हल करने का प्रयत्न नहीं करते। वह यह कहकर कि 'बालक पिछड़ा है' समस्या का अन्त कर देते हैं। किन्तु यह उचित ढंग नहीं है। उन्हें पिछड़ेपन के कारणों को जानकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह तो ठीक है कि पिछड़ेपन का कारण बालक की मन्द-बुद्धि हो सकती है, किन्तु यदि हम प्रत्येक पिछड़े बालक की विशेषता मन्द-बुद्धिता ही समझें, तो यह भ्रमात्मक है। पिछड़ेपन के तो अन्य बहुत-से कारण हो सकते हैं।

1 Backward Children.

पिछड़ापन क्या है ?

इससे पहले कि हम पिछड़ेपन के कारणों पर प्रकाश डालें, हमें यह समझना आवश्यक है कि पिछड़ापन क्या है ? बर्ट के अनुसार, "पिछड़ा बालक वह है जो अपने अध्ययन के मध्य काल (१०½ साल के निकट) में अपनी कक्षा का कार्य, जो उसकी आयु के अनुसार एक कक्षा नीचे का है, करने में असमर्थ रहता है।"[1]

इसकी अधिक उपयुक्त परिभाषा शिक्षा-लब्धि[2] के आधार पर दी जा सकती है। शिक्षा-लब्धि इस प्रकार से प्राप्त की जा सकती है—सबसे प्रथम उस स्तर का पता लगाया जावे, जिस स्तर पर कि बालक विद्यालय के मुख्य विषयों में है। (यह ज्ञानोपार्जन-परीक्षा[3] द्वारा पता लगाया जा सकता है)। इसके पश्चात् इसकी तुलना माने हुए औसत मापदण्ड[4] से की जावे और यह पता लगाया जावे कि बालक की मानसिक आयु एक औसत बालक की तुलना में विभिन्न विषयों में क्या है ? विभिन्न विषयों में बालक की मानसिक आयु का फिर औसत लिया जावे, तब शिक्षा-लब्धि[2] को निकालने के लिए औसत मानसिक आयु जिसे 'शिक्षा-आयु' (E. A.) कहते हैं, से वास्तविक आयु से भाग दिया जावे, फिर उसके बाद इसको १०० से गुणा कर दिया जाये। जैसे, एक बालक की वास्तविक आयु १२ साल है, उसकी गणित में मानसिक आयु एक ११ साल के बालक के समान है और पढ़ने में ९ साल के समान है। इन सबका औसत लेने पर यदि यह १० साल के बराबर आती है, तो—

शिक्षा-लब्धि = १०/१२ × १००

= लगभग ८३

बर्ट के अनुसार, "एक बालक जिसकी शिक्षा-लब्धि ८५ से कम है, पिछड़ा बालक कहलाता है।" यह परिभाषा अब सामान्य रूप से मान्य है।

लन्दन और बर्मिंघम में पिछड़ेपन के सम्बन्ध में दो परीक्षाएँ की गईं। इनमें यह पता लगा कि करीब १०% विद्यालयों की जनसंख्या पिछड़ी है। बर्ट ने पूर्ण प्रभाव के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि अधिकतर बड़े क्षेत्रफल वाली जगहों में एक विद्यालय की जनसंख्या में पिछड़े बालकों की संख्या १० और २० प्रतिशत के बीच में होगी। पिछड़े बालक शहरों की अपेक्षा ग्रामों में अधिक मात्रा में होते हैं, विशेष तौर पर उस शहर की तुलना में जहाँ पढ़े-लिखे तथा साफ-सुथरे लोग रहते हैं।

---

1. "A backward child is one who in the middle of his school (*i. e.* about 10 and a half years) is unable to do the work of class below that which is normal for his age." —*Burt.*

2. Educational Quotient. 3. Achievement Test. 4 Known ...e Standards.

पिछड़ेपन के कारण[1]

पिछड़ेपन के अनेक कारण हैं। पिछड़ेपन के कारण प्रत्येक बालक के साथ निजी होते हैं। सामान्य रूप से पिछड़ेपन के कारणों को बताना अत्यन्त कठिन है। 'पिछड़ापन' एक व्यक्तिगत समस्या है और इसके कारणों को हम व्यक्तिगत रूप से ही निर्धारित करते हैं। फिर भी यहाँ पिछड़ेपन के मुख्य तथा सामान्य कारणों[2] पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे जो सामान्य रूप से प्राप्त हैं। यथा—

(१) **सामान्य सहज बुद्धि की कमी[3]**—सामान्य बुद्धि का अभाव पिछड़ेपन का सबसे मुख्य कारण है। बर्ट ने अपने अनुसंधान के अध्ययन में यह पता लगाया कि प्रत्येक ५ पिछड़े बालकों में से ३ मन्द-बुद्धि (बुद्धि-लब्धि ७० के कम) के थे। उसने *यह भी देखा कि ६५%से ऊपर पिछड़े बालकों की बुद्धि साधारण से कम थी।* बर्ट ने पाया कि मन्द-बुद्धि वाले बालकों की बुद्धि स्थायी तथा जन्मजात रूप से कम थी। उसने कहा कि ऐसे बालकों के पिछड़ेपन को दूर नहीं किया जा सकता है। इनके लिए केवल यह कह सकते हैं कि उनके पाठशाला के कार्य को उनकी योग्यता के अनुसार बनाएँ। क्योंकि एक बड़ी प्राइमरी पाठशाला में ८ में से १ बालक सम्पूर्ण स्कूल की जनसंख्या में ऐसा होगा, जिसकी बुद्धि-लब्धि ८५ से कम होगी, इस कारण एक पाठशाला में इतने बालक तो सदैव पिछड़े रहेंगे। यह अङ्क-संख्या बर्ट के अनुसंधान के आधार पर है। भारत में क्या दशा है, इसकी हमें पूर्ण जानकारी नहीं। परन्तु यह कहा जा सकता है कि ऐसे स्थानों में जहाँ अनाक्षरता, गरीबी आदि है, *वहाँ की पाठशाला में पिछड़े बालकों की संख्या उपर्युक्त संख्या से कहीं* अधिक होगी।

उपर्युक्त कथन के अनुसार पिछड़ेपन का पता लगाने के लिए बुद्धि-परीक्षा लेना आवश्यक है। इनके द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि पिछड़ापन (१) मन्द-बुद्धिता के कारण है, अथवा (२) बालकों के पालन-पोषण के कारण, या (३) शिक्षा की कमी के कारण है। मन्दबुद्धिता के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के पिछड़ेपन के कारण दूर किये जा सकते हैं और पिछड़े बालक को सुधारा जा सकता है।

(२) **वातावरण का प्रभाव**—पिछड़ेपन का कारण, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, वातावरण का बुरा प्रभाव भी हो सकता है। यदि वातावरण दूषित होता है *तो उसका बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के वातावरण* में बालकों का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। बर्ट ने देखा कि १२% बालकों के पिछड़ेपन का कारण उनके घर का बुरा वातावरण था और लगभग ८ प्रतिशत बालक पाठशाला के बुरे वातावरण के कारण पिछड़ गये थे। यदि बालक के माँ-बाप दरिद्र हैं तो वे बालक के लिए पर्याप्त पठन-सामग्री नहीं खरीद सकते।

1. Causes of Backwardness. 2 Most General Causes 3. Lack of Native General Intelligence.

इसका परिणाम यह होता है कि बालक पढ़ने में पिछड़ जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें बहुधा घर का भी काम करना पड़ता है, जिसके कारण उन्हें इतना समय नहीं मिलता कि वे अपने पाठ को याद कर सकें।

यदि बालक के माता-पिता उसे प्यार न करें तो भी बालक पिछड़ जाता है। उसमें मनोग्रन्थियाँ बन जाती हैं। इसके अतिरिक्त, अधिक प्यार पाने वाला बालक अथवा इकलौती संतान भी संवेगात्मक समस्याओं का शिकार हो जाती है, जिसके कारण पढ़ने से उसका ध्यान हट जाता है और वह पिछड़ जाता है।

पाठशाला में भी यदि अध्यापक उसके साथ कठोरता के साथ व्यवहार करता है या उसके सहपाठी उसे त्रुटिपूर्ण मार्ग पर ले जाते हैं, तो भी बालक पिछड़ जाता है। बालक का यदि हर समय उपहास किया जाये या उसे आत्म-प्रदर्शन का अवसर न दिया जाये तो भी बालक का पिछड़ जाना सम्भव हो सकता है।

यहाँ पर हमें यह भी याद रखना चाहिए कि दूषित वातावरण का प्रभाव स्वयं पिछड़ेपन का एक कारण हो सकता है, अथवा वह बालक की मन्द-बुद्धिता के साथ मिश्रित होकर पिछड़ेपन को बढ़ा सकता है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, प्रत्येक बालक के पिछड़ेपन के अपने व्यक्तिगत कारण होते हैं जो सामान्य कारणों के किसी भी अनुपात में पाये जा सकते हैं।

(३) स्वभाव-सम्बन्धी दोष[1]—पिछड़ेपन का कारण बालक के स्वभाव-सम्बन्धी दोष भी हो सकते हैं। बर्ट के अनुसार ६ प्रतिशत बालकों के स्वभाव-सम्बन्धी दोष ही पिछड़ेपन के मुख्य कारण थे। ६० प्रतिशत में 'मन्द-बुद्धिता' मुख्य कारण पाई गई थी और इस प्रकार लगभग ७०% बालकों में पिछड़ेपन के कारण मनोवैज्ञानिक थे।

(४) शारीरिक दोष—शारीरिक दोषों के कारण भी बालक पिछड़ जाता है। यदि बालक ऊँचा सुनता है और अथवा दृष्टि-शक्ति क्षीण है या वह हकलाता है तो भी वह बालक पिछड़ जाता है। ६% बालकों में बर्ट ने शारीरिक दोष को ही मुख्य कारण पाया। पिछले अध्याय में हम यह वर्णन कर चुके हैं कि किस प्रकार के शारीरिक दोष बालकों में हो सकते हैं और हम किस प्रकार से दोषपूर्ण बालकों को शिक्षा देकर उनके समायोजन की समस्या को हल कर सकते हैं।

(५) कक्षा से भाग जाना—बहुत-से बालक मन्द-बुद्धि के नहीं होते, फिर भी कक्षा के कार्य में उतने कुशल नहीं होते जितना कि उनको होना चाहिए। इसका एक मुख्य कारण यह है कि वह कक्षा की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते हैं और बहुधा कक्षा से भाग जाते हैं। इस प्रकार भागने के कारण वह उस विषय के कार्य में पिछड़ जाते हैं, जिससे वे भागते हैं। यह देखा गया है कि पाठशाला से अनुपस्थिति,

1. Temperamental Defect.

बीमारी या भाग जाने के कारण लगभग १०% बालकों में मुख्य थी जिसके कारण वे पिछड़ गए थे। बहुधा अपनी अनुपस्थिति के कारण वे कक्षा में पढ़ाये जाने वाले विषय की मुख्य बातें नहीं सीख पाते हैं और उन विषयों में पिछड़ जाते हैं। जैसे, जब कक्षा में भिन्न को सरल करना सिखाया जाता है और बालक भाग जाता है तो आगे जहाँ भी भिन्न को सरल करना आता है तो वह गलती कर देता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह गणित के ज्ञान में पिछड़ जाता है।

(६) विशिष्ट पिछड़ेपन के कारण—किसी एक विषय में पिछड़ेपन का कारण उस विषय में सम्बन्धित विशेष योग्यता की दुर्बलता भी हो सकती है, जैसे—मौखिक[1] या संख्यात्मक[2] योग्यता की कमी। हम इसे पढ़ने के उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। पढ़ने में पिछड़ापन दृष्टि-प्रत्यक्षीकरण[3] या श्रवण-प्रत्यक्षीकरण[4] या दृष्टि तथा श्रवण-रटन्त-स्मृति की अयोग्यता के कारण हो सकता है। यह जानने के लिए कि कौनसी अयोग्यता मुख्य है, हमें विशेषज्ञ द्वारा परीक्षण कराना चाहिए।

पिछड़ेपन का उपचार[5]

पिछड़ापन दो प्रकार का होता है—(१) सामान्य, और (२) विशिष्ट। पिछड़ेपन के उपचार के साधन हमें पिछड़ेपन के प्रकार के अनुसार अपनाने चाहिए।

१. सामान्य पिछड़ापन और उसका उपचार

सामान्य पिछड़ेपन से तात्पर्य है—कक्षा में पढ़ाये जाने वाले सब विषयों में पिछड़ापन। ऐसा पिछड़ा बालक औसत बालक की अपेक्षा प्रत्येक विषय में पिछड़ा होता है। वह कुछ विषयों के पढ़ने में दूसरों से अच्छा हो सकता है। परन्तु जो बालक कक्षा के औसत पर होते हैं उनसे वह सर्वदा पिछड़ा रहता है। ऐसे पिछड़ेपन को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपचार ध्यान देने योग्य हैं

(१) शारीरिक दोष का पता लगाना तथा उसे दूर करना—अध्यापक को चाहिए कि बालक को चिकित्सक के पास भेजकर यह पता लगाए कि बालक में कोई शारीरिक दोष तो नहीं है। यदि कोई दोष है तो उसका उपचार होना चाहिए। जैसा कि हम पिछले अध्याय में वर्णन कर चुके हैं, बालक की शिक्षा का ध्यान तथा संगठन उसके शारीरिक दोष को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

(२) बुद्धि-परीक्षा द्वारा मन्द-बुद्धिता का पता लगाना और उसे दूर करने की चेष्टा करना—यदि बालक मन्द-बुद्धि का है तो उसका उपचार बहुत कठिन है। मन्द-बुद्धि बालक सामान्य से सदैव पिछड़े ही रहेंगे। पिछले अध्याय में उनकी शिक्षा की रूपरेखा के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा चुका है।

(३) वातावरण के कारण जो पिछड़ापन है, उसे वातावरण में सुधार द्वारा सुन्दर तथा दोष रहित बनाकर पिछड़ेपन को दूर करना—(अ) उचित शिक्षा-

1. Verbal. 2. Numerical 3 Visual Perception. 4. Auditary Perception. 5. Remedies for Backwardness.

उपकरणों द्वारा [illegible] वातावरण को अच्छा बनाया जा सकता है। बालकों की रुचि का पता लगाकर [illegible] ही पढ़ाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि [illegible] लिखकर, पढ़कर तथा बोलकर ही [illegible] से ही समझ पाते हैं। [illegible] में बालक के [illegible] के लिए [illegible] चाहिए। इसके लिए [illegible] है। [illegible] को [illegible] आधार पर [illegible] चाहिए। [illegible] और [illegible] करने में सहायता चाहिए। [illegible] द्वारा [illegible] माध्यम से [illegible] करानी चाहिए। [illegible] जैसे— [illegible] द्वारा [illegible] की ओर [illegible] करना चाहिए। (iii) उनकी पुस्तकों के अभाव की पूर्ति करनी चाहिए। (iv) अध्या-पिका को [illegible] पर [illegible] नहीं करना चाहिए, तथा (v) कक्षा में [illegible] तथा अनुपस्थिति को [illegible] चाहिए।

३ विशिष्ट पिछड़ापन और उसका उपचार

जब बालक सब विषयों में ठीक होता है किन्तु किसी विशेष विषय में पिछड़ जाता है तो उसे हम 'विशिष्ट पिछड़ापन' कहते हैं। इस कमी का कारण हमें उसकी रुचि में प्राप्त हो सकता है। कभी-कभी उस विषय में शिक्षण अध्यापक की दोषपूर्ण विधि के कारण भी हो सकता है या अध्यापक की कठोरता तथा अमनोवैज्ञानिक व्यवहार के कारण भी हो सकता है। बहुधा हमारी पाठशालाओं में विद्यार्थी गणित में पिछड़ जाते हैं। अधिकांश अध्यापक गृह-कार्य की एक लम्बी सूची दे देते हैं और काम पूरा न होने पर दंड देते हैं। कभी-कभी तो अध्यापक प्रश्न ही समझाने की चेष्टा नहीं करते और जब दिखाकर बालकों से प्रश्न हल करवाना चाहते हैं।

विशिष्ट पिछड़ेपन के उपचार के लिए निम्न विधियाँ प्रयोग में लानी चाहिए :

(१) शारीरिक दोष का उपचार किया जावे और उस दोष के अनुसार शिक्षा दी जावे।

(२) कक्षा-अध्यापन में अच्छी विधियों को अपनाया जावे।

(३) बालकों की रुचि को पिछड़े हुए विषय की ओर जाग्रत किया जावे, तथा उन्हें सहायक सामग्री की पूर्ण सहायता दी जानी चाहिए।

(४) बालकों की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जावे, और उनकी विशिष्ट कठिनाइयों को दूर किया जावे।

(५) जहाँ पर पाठ बालक की समझ में न आये, शिक्षक को रुककर उसे वहीं समझा देना चाहिए और बाद में आगे बढ़ना चाहिए। बहुधा अध्यापक इस ओर

1. Models. 2. Audio-visual Aids.

ध्यान नही देने और पिछड़ेपन को बढ़ा देते हैं। लेखक के सामने एक इसी प्रकार का बालक लाया गया जो रेखागणित मे कमजोर था। उसके पिछड़ेपन का कारण यह पता लगा कि आरम्भ के एक माह मे जब रेखागणित पढ़ाया गया तो वह कक्षा से अनुपस्थित था। इस प्रकार वह अपने पाठ्यक्रम के प्रारम्भिक प्रमेय को नही समझ सका, किन्तु अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए वह आगे पढाई गई प्रमेय को रटने लगा। इस प्रकार रटन्त के द्वारा उसे आरम्भ मे कठिनाई नही हुई किन्तु बाद मे जब कार्य जटिल हो गया तब वह रटन्त के द्वारा सब प्रमेय इत्यादि को याद न कर सका। वह एक प्रमेय को सिद्ध करने वाली दशाओ को दूसरे प्रमेय को सिद्ध करने वाली दशाओ से मिलाने लगा या उन्हे याद करने मे त्रुटि करने लगा। फल यह हुआ कि वह मुख्य प्रमेय को ही गलत सिद्ध करने लगा और उस पर आधारित प्रश्नो का हल करना तो उसकी शक्ति के बाहर था। इस बालक के अध्यापक ने कभी भी उसकी कठिनाई को जानने की चेष्टा नही की और परिणामत वह गणित मे पिछड़ता ही गया। परन्तु जैसे ही आरम्भ के प्रमेय उसे समझा दिए गए, उसकी प्रगति गणित मे तीव्र हो गई।

अन्त मे, हम यह कह सकते हैं कि अध्यापक को पिछड़ेपन को दूर करने के लिए यह दो तरीके मोटे ढग से अपनाने चाहिए—(१) यदि बालक मन्द-बुद्धि के कारण पिछड़ गया है तो उसे विशेष कक्षा मे स्थान दिया जाये, जहाँ साधारण बालक से धीमी गति से पढ़वाया जाये और उसका पाठ्यक्रम अधिक प्रयोगात्मक तथा वास्तविक बनाया जाये, (२) यदि बालक किसी विशेष विषय मे पिछड़ा हो तो उसे उस विषय मे प्रारम्भ से शिक्षा दी जानी चाहिए।

समस्या-बालक[1]

"समस्या-बालक वे बालक हैं जिनका व्यवहार अथवा व्यक्तित्व गम्भीर रूप से असाधारण होता है।"[2] पिछड़े बालक भी समस्या-बालक होते हैं, परन्तु हम प्रत्येक पिछड़े बालक को समस्या-बालक नही कह सकते, क्योंकि इनमे बहुत-से व्यक्तित्व तथा व्यवहार के दृष्टिकोण से असाधारण नही होते हैं। इसी प्रकार समस्या-बालक पिछड़े होते हैं, परन्तु प्रत्येक समस्या-बालक पिछड़ा हो सकता है—यह कहना त्रुटिपूर्ण होगा, क्योंकि कुछ समस्या-बालकों को कक्षा मे साधारण बालकों के साथ अच्छा कार्य करते हुए पाया गया है। समस्या-व्यवहार के उदाहरण हैं—कक्षा से भाग जाना, चोरी करना, अनुशासन के प्रति महान् असहयोग, क्रोधित होना, घबराना, अत्यधिक कायरपन और स्नायविक दुर्बलता।

---

1. Problem Children.

2. "Problem Childen" is generally used to describe children whose behaviour or personality in something is seriously abnormal." —*Valentine*.

यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि समस्या-बालक कोई विशेष वर्ग या जाति[1] नहीं है। इस प्रकार से सब बालक एक रूप से या दूसरे में, अधिक मात्रा में या कम मात्रा में, समस्या-बालक हैं। यह कहना कि प्रत्येक बालक शत-प्रतिशत साधारण होगा, निर्मूल है। किन्तु फिर भी साधारण बालकों से इस प्रकार के बालकों में इतनी विभिन्नता होती है कि इन्हें हम समस्या-बालकों की श्रेणी में रख देते हैं।

आजकल समस्या-बालकों के सम्बन्ध में पर्याप्त खोज की जा रही है। बहुधा ऐसे बालकों को उपचार के लिए विशेषज्ञों के पास भेजना आवश्यक होता है। किन्तु कुछ सीमा तक अध्यापक तथा अभिभावक भी समस्या-बालकों का उपचार कर सकते हैं और उनके विकसित होने में रोकथाम कर सकते हैं। इस अध्याय में हमारा उद्देश्य यही है कि ऐसे साधनों पर प्रकाश डालें जो अध्यापक तथा अभिभावक समस्या-बालकों की समस्या की रोकथाम तथा उपचार के रूप में अपना सकें।

समस्या-व्यवहार क्या है[2]

यह बताना कि कौनसा व्यवहार समस्या-व्यवहार है और कौनसा नहीं, अति कठिन है। बहुत-से बालकों में कई प्रकार का ऐसा व्यवहार होता है, जिसे हम 'समस्या-व्यवहार' कहने लगते हैं और ऐसे बालकों को 'समस्या-बालक' कहने लगते हैं। परन्तु जब धीरे-धीरे उनकी आयु बढ़ जाती है तब उनके व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है और उनका व्यवहार समस्या नहीं रहता। यह देखा गया है कि बड़ी मात्रा में ऐसे बालक जो बाद में सन्तोषजनक व्यवहार करते हैं, २ से ६ साल के बीच में ऐसे समय से निकलते हैं जब उनका व्यवहार द्रोही तथा नटखट होता है। यह व्यवहार समस्या के ही रूप में होता है, किन्तु बाद में साधारण व्यवहार में परिवर्तित हो जाता है। अतः हमें यह बात जानने की अत्यन्त आवश्यकता है कि कौनसा व्यवहार समस्या समझा जाये और कौनसा व्यवहार समस्या प्रतीत होने पर भी समस्या न समझा जाय।

इस सम्बन्ध में एक अनुसन्धान जीन डी० कमिंग्स[3] ने किया। उन्होंने २३६ विद्यालय के बालकों के याहच्छिक प्रतिदर्श[4] को लिया जिनकी आयु २ से ७ साल के बीच में थी। यह बालक नरसरी तथा शिशु-पाठशाला के थे और इन्हें किसी विशेष आधार पर नहीं चुना गया। श्रीमती कमिंग्स ने देखा कि इस प्रकार का व्यवहार, जैसे—अत्यधिक बेचैनी, कायरता, अधिक देर तक ध्यान केन्द्रित न कर सकना, कार्यशीलता, झगड़ालूपन, बोलने की कमी, अधिक देर तक मूत्र को रोक न पाना, स्नायविक आदतें, निर्दयता, झूठ बोलना तथा चोरी आदि इस आयु के बालकों में बहुत साधारण थे। ध्यान को केन्द्रित न कर सकना उम्र के साथ बढ़ता देखा गया। बालकों में बालिकाओं की अपेक्षा अधिक झगड़ालूपन तथा हठ देखी गई।

इसके बाद इनमें से २४२ बालकों के अनुसरण अध्ययन में यह देखा गया

1. Not a class apart. 2 What is Problem Behaviour? 3. Jean D. Cummings. 4. Random.

कि अधिकतर बालकों मे यह दोष १८ महीने मे धीरे-धीरे दूर होते गए। ७८ बालकों ने उन्नति की, और २६ बालकों ने उन्नति नही की। जो बालक ५ साल से कम थे उनमे से ८७% ने ८ महीने बाद बहुत अधिक उन्नति की, जबकि वे बालक जो ५ साल से अधिक थे उनमे केवल ५६% ने उन्नति की। इन बालकों को कोई मनोवैज्ञानिक चिकित्सा नही दी गई थी। श्रीमती कमिंग्स ने यह भी बताया कि कोई भी ऐसा बालक न था जिसमे केवल एक ही व्यवहार का दोष हो। एक विशेष त्रुटि श्रीमती कमिंग्स के अध्ययन मे यह रह गई कि उन्होने यह नही बताया कि कितने बालकों मे समस्या-व्यवहार नही मिला, किन्तु जो संख्या उन्होंने 'अनुवर्ती अध्ययन'[1] मे दी, उससे यह अनुमान कर सकते हैं कि १७% बालक उस प्रकार के रहे होगे।

इस प्रकार की खोज मे यह दोष भी पाया जाता है कि समस्या-व्यवहार का प्रतीक हम जिस व्यवहार को मानते हैं, वह अन्वेषणकर्ता के बनाए गए निजी स्तर पर होता है। उसमे उन अध्यापकों का मत भी सम्मिलित रहा है जो अन्वेषण में सहयोग प्रदान करते हैं। साधारण रूप से अध्यापक ऐसे व्यवहार को समस्यात्मक मानते हैं जो उनके लिए सबसे अधिक सिर-दर्द करने वाला होता है और वह कायरता, उत्सुकता और आन्तरिक व्यक्तित्व की कठिनाइयों को बहुत कम महत्व देते हैं। किन्तु श्रीमती कमिंग्स के अन्वेषण से हम इस निष्कर्ष पर आ जाते हैं कि बहुत से व्यवहार के प्रकार जो समस्यात्मक रूप मे २ वर्ष से ७ वर्ष के बालकों के मध्य पाए जाते हैं, वास्तव में असाधारण व्यवहार के प्रतीक नहीं होते क्योंकि आगे चलकर यह व्यवहार वांछित रूप ले लेते हैं।

रिचार्ड हेण्डरसन[2] के एक अध्ययन मे यह पता लगाया गया कि चतुर अन्वेषक जो विशेष तथा उच्च रूप से शिक्षित थे, किन-किन लक्षणों को समस्या व्यवहार का सबसे अधिक गम्भीर रूप देते हैं और किनको कम। इन लक्षणों की एक लम्बी सूची जिसमे ३६ लक्षण थे, तैयार की। यह लक्षण वह थे जिन्हे कुछ व्यक्ति असामान्य व्यक्तित्व के विकास का प्रतीक मानते हैं। विशेषज्ञों को इन लक्षणों के अन्दर नम्बर निशान लगाकर बताना था कि व्यक्ति के वह कौनसे लक्षण को अधिक गम्भीर समझते थे और कौनसे को कम। १ का निशान उस गुण के आगे लगाया था जिसे वे अधिक गम्भीर समझते थे और इसके बाद वाले को २,३,४,५ आदि के अनुसार नम्बर देने होते थे। उनके द्वारा समझे हुए गम्भीर लक्षणों की सूची आगे तालिका में दी गई है :

---

1. Follow up study

2 Richard L. Handerson . "A comparison of three methods of organizing and administering Child-study Programme in Rural Twelve Grade Schools," Univ. Chicago, 1949 (Unpublished Ph. D. Thesis, Quoted in Cronbach—*Educational Psychology*).

विशेषज्ञ किस प्रकार के लक्षणों को गम्भीरता देते हैं—

१०—सबसे अधिक गम्भीर	१०—सबसे कम गम्भीर
१—अप्रसन्नता	१—फुसफुसाहट[1]
२—भय	२—अपवित्रता[2]
३—असामाजिक पलायन[3]	३—धूम्रपान
४—क्रूरता[4]; धमकाना[5]	४—विघ्न करना
५—ईर्ष्या	५—धीमापन[6]
६—लज्जा	६—विषमलिङ्गी कामुकता
७—सन्देह[7]	७—हस्त-मैथुन
८—निर्देशन[8]	८—लापरवाही
९—क्रोधी स्वभाव[9]	९—कौतूहल
१०—शासनीय भावनात्मक[10]	१०—विचारहीनता

वह गुण जिसे विशेषज्ञ सबसे अधिक गम्भीर समझते हैं, अप्रसन्नता है। सामान्यत विशेषज्ञ उन लक्षणो को सबसे अधिक गम्भीर समझते हैं जो व्यक्ति के अन्दर आत्म-विश्वास की ओर सकेत करते हैं। पर जब इन्ही ३६ लक्षणो की सूची को अध्यापको को दिया गया तो उन्होंने सबसे अधिक गम्भीर लक्षण कुछ और ही बताये। उनके द्वारा बताये गए लक्षणो की सूची भी नीचे दी जाती है :

अध्यापक कुसमायोजन के लक्षणों का किस प्रकार निर्णय करते हैं—

१०—सबसे अधिक गम्भीर	१०—सबसे कम गम्भीर
१—विषमलिङ्गी कामुकता	१—फुसफुसाना
२—चुराना	२—कल्पनात्मक झूठ[11]
३—कक्षा से भाग जाना[12]	३—कौतूहलपन[13]
४—वस्तुओ की तोड़फोड़[14]	४—बेचैनी[15]
५—हस्त-मैथुन	५—मूर्ख
६—अविश्वसनीयता	६—बकवास करने वाला
७—धोखा देना	७—विचार-रहित
८—अश्लील बात करने वाले[16]	८—बकवादी[17]
९—अनुशासनहीन	९—लज्जाशील
१०—क्रूरता	१०—हठीलापन

---

1. Whispering. 2. Profanity. 3. Unsocial withdrawing 4. Cruelty. 5 Bullying 6. Tardiness. 7. Suspiciousness 8. Suggestiveness. 9. Temper Tantrums 10. Domineering. 11 Imaginative lying. 12 Truancy. 13. Inquisitiveness. 14. Destroying materials. 15. Restlessness. 16. Obscene talk. 17. Tattling.

पीछे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट है कि अध्यापकों ने वे ही लक्षण गम्भीर समझे जो उन्हें सबसे अधिक परेशान करने वाले होते हैं। परन्तु विशेषज्ञ जिन लक्षणों को सबसे अधिक गम्भीर मानते हैं, वे समाज द्वारा अस्वीकृत व्यवहार के प्रतीक होते हैं। उनका कहना है कि अध्यापकों द्वारा दिये गये बहुत-से लक्षण आगे चलकर बालक त्याग देता है, इस कारण वे व्यक्तित्व के गम्भीर लक्षण नहीं होने चाहिए। किन्से[1] आदि का कहना है कि धूम्रपान करना, अश्लीलता या गाली, फुसफुसाहट, कामेच्छा के प्रयोग आदि ऐसे व्यवहार हैं जो बालक एक या दूसरे समय में अपना लेता है और फिर यह समझकर कि यह समाज द्वारा स्वीकृत नहीं है, इसको छोड़ देता है और समाज-स्वीकृत नियमों के अनुसार अपनी प्रतिक्रिया में हेर-फेर ले आता है। अतः बहुत-से लक्षण जिन्हें अध्यापक गम्भीर समझते हैं, वास्तव में इतने गम्भीर नहीं होते। ये दूसरों को असुविधाजनक हो सकते हैं किन्तु यह इस प्रकार के चिन्ह नहीं जो यह बताते हैं कि बालक में मूल रूप से कुछ दोष है।

उपर्युक्त अध्ययन के अनुसार हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि हम उन व्यवहारों को ही समस्यात्मक समझें जो बालक के अनुकूल या समायोजन में बाधक हो और जो विशेषज्ञों के अनुसार गम्भीर रूप धारण कर लें। अध्यापकों को चाहिए कि वे किसी भी बालक को जो उनके लिए कुछ समस्याएँ खड़ी कर दे, समस्या-बालक न समझ लें, अपितु उसी बालक को समस्यात्मक समझें जिसके व्यक्तित्व का अनुकूलन गम्भीर रूप से बिगड़ता हुआ हो और जो संवेगात्मक भार से पीड़ित हो।

मुख्य प्रकार के समस्या-बालक[2]

विभिन्न अन्वेषकों ने विभिन्न प्रकार से समस्या-व्यवहार का विभाजन किया है। हम यहाँ बर्ट द्वारा किये विभाजन को देखेंगे। बर्ट समस्या-बालकों को दो मुख्य भागों में बाँटता है—(अ) झगड़ालू और उत्तेजना युक्त, (ब) अवदमित[3] या हतोत्साहित। किन्तु यह दो मुख्य प्रकार कई प्रकार के व्यवहार में दृष्टिगोचर होते हैं और अन्तिम रूप से जो विभाजन हमारे सामने आता है, वह अधिक विशिष्ट है। जैसे, झगड़ालू का व्यवहार क्रोध या अनुशासनहीनता की ओर स्पष्ट दीखता है और दमित व्यवहार में भय और आज्ञाकारिता मुख्य हैं। किस प्रकार के व्यवहार को उपर्युक्त मुख्य दो प्रकार के बालक अपनायेंगे, यह अधिकतर वातावरण पर निर्भर होगा।

---

1 A. C. Kinsey, W. B Pomersay & C. E Martin : *Behaviour in the human male*, W. B Saunder's Philadelphia, 1948.

2. Main Types of Problem Children 3. Repressed.

समस्या-बालकों के निदान की आवश्यकता[1]

समस्या-बालक ही आगे चलकर गन्दा व्यवहार करने वाले युवकों में बदल जाते हैं। यह तत्त्व सर्वमान्य है कि युवक का व्यवहार उन्हीं व्यवहार-प्रतिमानों पर आधारित होता है जो बाल्यावस्था में व्यक्ति सीख लेता है। अत: युवकों के समायोजन को अच्छा रूप देना है तो बालकों के व्यवहार आदि में सुधार लाना चाहिए।

समस्या-बालकों का पता लगाना कई कारणों से आवश्यक है। इनमें सबसे मुख्य कारण यह है कि ऐसे बालक पाठशाला में, खेल के मैदान में तथा घर में समस्याएँ खड़ी कर देते हैं। यही स्थिति इन बालकों की युवा अवस्था में भी रहती है और इनके कारण व्यक्ति मानसिक रोग में ग्रसित हो जाता है। कुछ और युवक चोरी और डकैती करने वाले समूह के सदस्य बन जाते हैं। वे स्वयं दुःखी होते हैं और समाज पर भी अरक्षा का लाञ्छन लगाते हैं।

किन लक्षणों द्वारा हम समस्या-बालकों का निदान कर सकते हैं, यह पूर्ण विश्वास से कहना कठिन है। वास्तव में लक्षणों की ओर ध्यान न देकर हमें बालकों के व्यवहार की ओर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि लक्षण बालक या बालिका से अलग नहीं होते, और न उनका अस्तित्व ही होता है। यह विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व वाले बालकों में या विभिन्न प्रकार के वातावरण में पाये जाने वाले बालकों में विभिन्न रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी एक बालक में एक से अधिक लक्षण साथ-साथ पाए जा सकते हैं, जैसे—एक बालक जो झगड़ालू है, उसमें अरक्षा की भावना हो सकती है तथा वह अपराधी भी हो सकता है। अतएव एक समस्या-बालक कई प्रकार के व्यवहार दोषों से पीड़ित हो सकता है, जैसे—एक बालक जिसमें चोरी की लत है और कक्षा से भाग जाता है, स्नायविक आदत या स्नायविक विकार से पीड़ित हो सकता है। समस्या-बालकों की जाँच से यह पता लग सकता है कि उनकी एक ही समस्या के अन्तर्गत कई लक्षण हो सकते हैं, जैसे—झगड़ालूपन का लक्षण, दोषपूर्ण महसूस करना, भय, हतोत्साह आदि का अनुभव।

समस्या-बालकों की पहचान सरल नहीं है। उनके व्यवहार के कारणों को जानना अति कठिन है। बहुधा यह कारण उनके अन्दर गुणों और गुप्त चेतन के स्तरों में छिपे रहते हैं, जिनको बाहर निकाल कर समझना एक विशेषज्ञ के लिए ही सम्भव है।

यहाँ हमें असमायोजित व्यवहार के कुछ मुख्य कारणों को समझ लेना चाहिए ताकि उनके उपचार के सम्बन्ध में हम कुछ समझ सकें।

---

1 Necessity of Diagnosis of the Problem-Children.

अपसमायोजित व्यवहार के कारण

कुसमायोजन के कारणो को ढूंढने के लिए हमे यह समझ लेना आवश्यक है कि बालको के ऊपर दो शक्तिशाली शक्तियो का प्रभाव बराबर पड़ता रहता है। वह हैं—वंशानुक्रम तथा वातावरण। प्रत्येक बालक जो ससार मे जन्म लेता है, निश्चित प्रकार की शक्तियाँ लेकर आता है। उसकी बहुत-सी विशेषताएं उसके माँ-बाप के पित्रैको के मिश्रण के आधार पर होती हैं। अत वह एक विशेष प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक सगठन लेकर उत्पन्न होता है जो दूसरो से भिन्न होता है। किन्तु उसके मूल व्यवहार पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है और वह अपने व्यवहार मे वातावरण के अनुकूल परिवर्तन लाता है। कुसमायोजन मे इन्हीं दो शक्तियों का बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहता है।

हम कुसमायोजन के तीन वृहत् कारण दे सकते हैं। बहुत-से छोटे कारण इन्ही मे सम्मिलित हैं। एक बालक का कुसमायोजन एक साथ कई कारणो का फल हो सकता है। तात्पर्य यह है कि किसी समस्या-बालक मे निम्न दिये हुए तीनो मे से एक या दो या तीनो कारण एक साथ पाये जा सकते हैं। यथा—

(i) प्रथम मुख्य कारण यह है कि बालक मे **शारीरिक, सवेदनात्मक या स्नायविक दोष हों।** इनमे तात्पर्य यह है कि बालक का शारीरिक विकास निम्न हो अथवा आयु मे अधिक विकास हो, वह कमजोर दिल का हो, या उसकी वाणी दूषित हो या बीमार हो, इत्यादि।

(ii) कारणो की दूसरी श्रेणी बालक के स्वभाव तथा सवेगात्मक दशाओ से सम्बन्धित है। कुछ बालको मे जन्मजात सुसगठित सवेगात्मकता होती है और कुछ मे नही। यह कारण अधिकतर वशानुगत होते हैं या कमजोरी मे भी होते हैं।

(iii) तीसरे कारण सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी शक्ति से सम्बन्धित हैं जो बालक के ऊपर प्रभाव डालती है। जब घर या पाठशाला का वातावरण दूषित होता है, तब बालको मे समस्या-व्यवहार दृष्टिगोचर होने लगता है।

पहले दो कारणों के सम्बन्ध मे हम पिछले अध्यायो मे वर्णन कर चुके हैं। अध्यापकों के लिए तीसरा कारण अति महत्वपूर्ण है। वे जन्मजात दोषो मे तो कुछ सहायता नही दे सकते, किन्तु वातावरण की दूषितता को कम करने मे सहायता पहुँचा सकते हैं। आगे हम इन्ही कारणो के सम्बन्ध मे प्रकाश डालेंगे।

१. घर का वातावरण[1]—समस्या-व्यवहार का कोई इतना बड़ा कारण नही जितना कि घर का वातावरण है। यदि घर पर बालक की ओर ध्यान दिया जाये अथवा उसको बहुत लाड-प्यार से पाला जाए तो उसका व्यवहार निश्चित रूप से समस्यात्मक हो जाता है। घर मे यदि माता-पिता आपस मे लड़ते-झगड़ते है, परिवार मे सदस्य एक-दूसरे के साथ नोचना का व्यवहार करते हैं तो बालक का समस्यात्मक हो जाना कोई आश्चर्य की घटना नही है।

1. Home Environment.

[माता की परेशानी—एक बालक रो रहा है, दूसरा सो रहा है, तीसरा शैतानी पर लगा हुआ है। माता ऐसी स्थिति में मानसिक संतुलन खो देती है जिसके फलस्वरूप उसके बालकों पर दूषित प्रभाव पड़ता है और वह समस्या-बालक बन जाते हैं।]

केम्ब्रिज अस्पताल[1] के एक अध्ययन में देखा गया कि जितने बालक अस्पताल में भर्ती किये गये, उनमें से ६६% के घर का वातावरण दूषित था। समस्या-बालक अधिकतर टूटे हुए परिवारों[2] में आते हुए पाए गए।

समस्या-व्यवहार ऐसे घर में जहाँ विमाता होती है या घर के वातावरण के बीच जहाँ मनमुटाव होता है, अधिक पाया जाता है। यहाँ हम एक इसी प्रकार के बालक का वर्णन करेंगे जिसकी माता का देहान्त हो गया और पिता दूसरा विवाह करना चाहता था। बालक लगभग ११ वर्ष की आयु का था और उसकी माता का देहान्त एक लम्बी बीमारी के पश्चात् हुआ था। बालक जानता था कि उसके पिता शादी करने जा रहे हैं और वह अप्रत्यक्ष रूप से उसके विपक्ष में था। उसने सुना था और पड़ोस के बालकों के साथ विमाता का व्यवहार देखा भी था कि विमाता का व्यवहार सदैव बालक के साथ क्रूरतापूर्ण होता है। वह नहीं चाहता था कि उसकी

---

1. Bannister and M. Rooder : "The Problem Child and ", *British Journal of Psychology*, Vol XXXIV, Part 1944.
2. Broken homes.

[माता और बालक मे यदि प्रेम होता है, एक दूसरे को समझते हैं और बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तो माता के चेहरे पर संतोष झलकता है और बालकों का व्यक्तित्व अच्छे ढंग से विकसित होता है।]

प्यारी माँ का स्थान और कोई स्त्री ग्रहण करे। अतः वह अपनी चिन्ता और क्रोध को ऐसे व्यवहारों द्वारा प्रदर्शित करने लगा, जैसे—पिता का कहना न मानना, घर से भाग जाना, दूसरे बालकों से लड़ना आदि। अभी हाल के 'अनुवर्ती अध्ययन'[1] से पता चला है कि पिता ने शादी कर ली है, बालक बहुत रोया और यहाँ तक कि उसने पिता को धमकी दी कि वह माता को मार देगा। वह कमरे में बन्द रखा गया। किन्तु भाग्य से उसकी विमाता ऐसी आई जो शिक्षित एवं सुघड़ थी। उसने अपने प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से बालक का मन जीत लिया। यह बालक पाठशाला मे मन लगाकर अध्ययन कर रहा है और माता का आदर करता है, उसके साथ द्वेषपूर्ण व्यवहार नहीं करता।

इसी प्रकार का एक उदाहरण[2] मनोविज्ञानशाला, इलाहाबाद से हमारे समक्ष लाया गया है। एक बालक चोरी करके घर से भाग जाता था, और पिता के पैसे उड़ाने के बाद स्टेशन पहुँचकर जहाँ भी गाड़ी जाती थी, चला जाता था और वहाँ पहुँच

1. Follow up Study. 2. R. G. Misra : *Problem Child* : *Some Case Studies*.

कर दिया गया था और जब दिन समाप्त हो जाते थे तब वह सड़क के किनारे बैठ कर किसी राहगीर से मदद के लिए प्रार्थना करता था और इस प्रकार कोई-कोई उसकी मदद करता था। वह राहगीर उसके पिता का एक मित्र था जो उसे घर ले आया था। इसके समस्या-व्यवहार का कारण पता चला कि उसमें असुरक्षा की भावना थी। इस बालक के विमाता थी, अतः बालक प्रेम का भूखा था और सुरक्षा चाहता था। घर में प्रेम न मिलने पर वह बाहर भटकने लगा और बुरी संगत में पड़ गया। परन्तु उन साथियों तथा पड़ोसियों से भी संवेगात्मक संतोष न मिल सका, इसलिए वह अकेला ही पैसा चुराकर भागने लगा ताकि उसकी संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए।

घर के दूषित वातावरण के कारण समस्या-बालक बन जाने के और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। यहाँ हम आगरा की कुछ पाठशालाओं में किये गए एक अध्ययन का वर्णन करेंगे।[1] इसमें सिनेमा घरों तथा पाठशाला से भाग जाने के सम्बन्ध को मालूम करने की चेष्टा की गई। जो कुछ भी अध्ययन के दोष तथा सीमाएँ हों—ध्यान देने की बात यह है कि बालक जो कक्षा से भाग जाते थे, अधिकतर सिनेमा देखने या आकाशवाणी पर फिल्मी गानों को जलपान-गृहों या पान की दुकानों पर सुनने के लिए गया करते थे। उनके घर के वातावरण के सम्बन्ध में निम्न बातें देखी गईं :

(१) ४८ प्रतिशत बालकों के घर में केवल एक ही कमरा था। २८ प्रतिशत के परिवार के पास दो कमरे, और केवल २४ प्रतिशत के परिवार के पास दो कमरों से अधिक थे। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ५५ प्रतिशत के दो भाई-बहन से अधिक थे। अतः अधिकतर दोषी बालकों के घरों में रहने का स्थानाभाव था। माता-पिता, भाई-बहन मिलकर ६-७ व्यक्तियों के लिए केवल एक ही या दो कमरे—बहुत कम स्थान है। अतः दोषी बालक अधिकतर बाहर ही रहना पसन्द करते हैं। इसके साथ ही काम-सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की गुप्तता ऐसे घरों में न होने से बालक उत्तेजनशील रहते हैं। अध्ययन के अनुसार यह एक कारण भी उनके अधिक चलचित्रों को देखने का हो सकता है।

(२) २५ प्रतिशत ऐसे दोषी बालक थे जो माँ-बाप की इकलौती सन्तान थे। अधिक लाड़-प्यार के कारण ऐसे बालकों में समस्या-व्यवहार उत्पन्न हो गया था। माँ-बाप की अधिक सुरक्षात्मक भावना उनकी ओर होने के कारण उनमें ऐसे अच्छे गुणों का अभाव हो गया था, जैसे—मिल-जुलकर कार्य करना, उच्च आदर्शों का होना इत्यादि।

---

1. R. C. Srivastava : *Study of the Relationship between Picture houses and Truancy amongst the Children of Agra City* (Un-Published M. Ed. Disssertation), W. T. College, Dayalbagh.

(३) ७० प्रतिशत ऐसे बालक थे जिनके माता-पिता को, और ५२ प्रति
ऐसे बालक थे जिनकी माता को चलचित्र देखने की रुचि थी। दोषी बालको में
माँ से अर्जित की गई थी।

(४) ६० प्रतिशत दोषी बालको मे से ३ की सौतेली माताएँ थी। इन
ने *माता का व्यवहार क्रूर बताया था।*

(५) इनके अतिरिक्त २५ प्रतिशत दोषी बालको के माता-पिता बहुत
आशाएँ अपने बालको से रखते थे।

(६) ४० प्रतिशत दोषी बालक अपने माँ-बाप के सबसे बड़े लड़के थे।
पाया गया कि माता-पिता उन्हे छोड़कर छोटे भाई-बहिनो को अधिक प्यार
थे। बड़े बालक इस बात को बहुत महसूस करते हुए पाए गए।

(७) दोषी बालको के परिवारो की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी।
प्रतिशत के माता-पिता की आमदनी १०० रु० से कम थी और ४३ प्रतिशत की
रुपये या इससे अधिक। वर्तमान समय मे १०० रु० मासिक मे काम चलाना
भी परिवार के लिए अत्यन्त कठिन है और जब परिवार बड़ा हो, तब कैसे गृह-
की व्यवस्था होती होगी, यह सोचना कठिन है।

(८) इसके अतिरिक्त अधिकतर दोषी बालको के लिए आमोद-प्रमोद की
सुविधाएँ ही न थीं। उनके परिवार मे बहुत दरिद्रता थी और माता-पिता को
परिवार के प्रति ध्यान देने का अवसर ही न था।

(९) कुछ दोषी बालको की माताएँ भी नौकर थी जिसके कारण उनकी
रेख उचित प्रकार से न हो सकती थी।

उपर्युक्त अध्ययन को एक सीमित क्षेत्र मे किया गया था और इसका उ
समस्या-बालकों का पता लगाना था। फिर भी जो निरीक्षण किए गए वे बहु
स्पष्ट हैं और बहुत कुछ हमारे देश की परिस्थिति के अनुकूल हैं। जो कुछ
सही, यहाँ हम यह पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि दूषित घर का वाता
बहुत बड़ी मात्रा मे समस्यात्मक व्यवहार का कारण होता है। हम इस कथन
सत्यता मे विश्वास रखते हैं कि—"समस्या-बालक नहीं होते, बल्कि समस्या माँ
होते हैं।"

२. घर का अनुशासन—समस्या-व्यवहार के कारणो पर प्रकाश
हुए हमे एक बात को देख लेना चाहिए और वह है "घर का अनुशासन"
समस्या-बालक बहुत बार घर के अनुशासन के कारण भी बन जाते हैं। या तो
बालको के घर का वातावरण बहुत ही कड़ा होता है या बहुत ही नरम। अ
माताएँ बालक के साथ कठोरता बरतना चाहती हैं परन्तु उसके गुस्से के सामने
हो जाती हैं। उसे वे वही कार्य करने देती हैं जिसे वह करना चाहता है। वे इस
को बालक के सामने ही कहती हैं कि उनका बालक उनकी बात नहीं सुनता और
माताएँ तो इस प्रकार कहना अपना गौरव समझती है। कहीं-कहीं पिता बहुत

होते हैं और माताएँ बहुत ही उदार। फलस्वरूप बालक एक-दूसरे को विरोधी समझने लगता है और एक दूसरे के विरुद्ध अवज्ञा की चेष्टा करता है। कभी कभी वह स्वयं अनुशासन के विषय में उदासीनता प्रकट कर देता है।

मैकडाइज़ल के कथनानुसार, यदि बालक के व्यवहार का समायोजन करने के योग्य है तो निम्नलिखित बातों को घर में अनुसरित करना चाहिए।

१. अनुशासन केवल दबाव के रूप में नहीं होना चाहिए। इसका उद्देश्य आत्म-निर्भरता होना चाहिए।
२. व्यवहार का स्तर बहुत उच्च नहीं होना चाहिए।
३. अनुशासन तथा नियम सामाजिक होने चाहिए।
४. माँ-बाप में सद्भावना होनी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो, पाठशाला तथा घर में सहयोग होना चाहिए।
५. अनुशासन तथा उपचार की विधि बालक के साथ इस प्रकार हो कि वह यह न समझे कि उसे कोई प्यार नहीं करता।
६. कभी-कभी पाठशालाओं में शारीरिक दण्ड की आवश्यकता हो सकती है। हमने 'पिछड़ेपन को दूर करने के उपचार' में इसका वर्णन किया है।

'समस्या-बालकों के उपचार के साधनों' पर प्रकाश डालने के पूर्व हम एक विशेष प्रकार के समस्या-बालकों का वर्णन करेंगे, जिन्हें अपचारी बालक[1] कहते हैं।

अपचार[2]

हैडफील्ड[3] के अनुसार अपचार की परिभाषा "असामाजिक व्यवहार की जा सकती है।" एक बालक जो समाज की सुविधाओं का प्रयोग तो करता है किन्तु समाज द्वारा जिस व्यवहार की उससे आशा की जाती है, वह नहीं करता—ऐसे बालक को हम 'बालापराधी' अथवा 'अपचारी' कहते हैं। समाज ऐसे बालक को दण्ड प्रदान करता है, जिसके दो कारण होते हैं—(१) उसके असामाजिक व्यवहार से उसकी रक्षा की जा सके, तथा (२) उसके त्रुटिपूर्ण विचार उचित रूप ले लें। अतएव अपचार एक सामाजिक प्रयोग का शब्द है। इसका तात्पर्य है सामाजिक व्यवहार में असफलता।

किन्तु हम बालापराधी उसी बालक को कहते हैं जिसकी सामाजिक क्रियाएँ इतना गम्भीर रूप धारण कर लेती हैं कि उसे देश के नियमों के अनुसार दण्ड देना पड़ता है। इस अर्थ में बाल-अपराध का तात्पर्य है—किसी नियम का खण्डन। बालापराधी वे बालक होते हैं जो चोरी करते हैं तथा मारपीट करते हैं। कुछ बालापराधी डकैती से लेकर ख़ून तक करते हैं। बालापराध अनैतिक स्तर पर होता है। बहुधा बालापराधी ने सही तथा गलत का अन्तर नहीं सीखा होता है।

---

1. Delinquent. 2. Delinquency. 3. Headfield : Delinquency be denfined as "anti-social behaviour."

कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि सब अपचारी अपने व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते हैं। उनको दण्ड देकर सुधारा जा सकता है। जितना कठोर दण्ड उन्हें दिया जायेगा, उतना ही वह इस ओर कम चेष्टा करेगा कि अपने अपराध को दुबारा करे। परन्तु यह देखा गया है कि दण्ड द्वारा जब कुछ बालापराधियों को सुधारा गया तब दूसरों पर इसका विपरीत ही प्रभाव पड़ा। वह और भी निरंकुश तथा बदमाश हो गये। कुछ और व्यक्तियों के अनुसार बाल-अपराध एक रोग है जिसका उपचार मनोविश्लेषण विधि द्वारा आवश्यक है, अतः बालापराधियों से कैसा व्यवहार किया जाय तथा उनके व्यवहार को कैसे सुधारा जाय, यह एक विवाद-ग्रस्त प्रश्न है। परन्तु इससे पहले कि हम बाल-अपराधीपन के उपचारों पर प्रकाश डालें, हमें बाल-अपराधी होने के कारणों की ओर ध्यान दे लेना चाहिए।

[अध्यापक की दृष्टि बचाकर कक्षा से भाग जाना और सिनेमा देखना एक ऐसा अपराध है जो बाल-अपराधी मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार के बालक के व्यवहार में सुधार होना आवश्यक है।]

अपचार के कारण

हम असन्तुलित व्यवहार के कारणों का पिछले पृष्ठों में अध्ययन कर चुके हैं। वे ही सब कारण अपचार के भी बन जाते हैं। हम संक्षेप में उन सब कारणों का यहाँ वर्णन करेंगे, जो बाल-अपराधीपन को प्रोत्साहित करते हैं।

यह कारण हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—(१) व्यक्तिगत, और (२) सामाजिक अथवा वातावरण सम्बन्धी।

१ व्यक्तिगत कारण

(१) शारीरिक दोष[1]—बालक यदि शारीरिक दोषों से ग्रस्त है तो वह एक प्रकार से अपने में कुछ कमी समझने लगता है। यदि उसके शारीरिक दोष आदि पर व्यंग्य किया जाये तो यह सम्भव है कि वह असामाजिक व्यवहार को अपना ले, क्योंकि उसमें समाज के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया का विकास हो जायेगा। वह चाहेगा कि समाज को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दे। वह अपने दोष का उत्तरदायी समाज को ही समझने लगेगा।

(२) हमने 'शारीरिक विकास' के अध्याय में वर्णन किया है, यदि किसी बालक का विकास उसी आयु के बालक से तीव्र या मन्द गति से चलता है तो उसके समायोजन में भी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। ऐसे बालक अपनी आयु वाले से बड़े या छोटे प्रतीत होते हैं। यह बात उनमें अपने विकास के सम्बन्ध में असन्तोष उत्पन्न कर देती है और यह कभी-कभी उन्हें असामाजिक व्यवहार की ओर धकेल देती है।

(३) इसके अतिरिक्त मन्द-बुद्धिता भी अनैतिक व्यवहार को कभी-कभी प्रोत्साहित करती है। एक बालक जो मन्द-बुद्धि का होता है, उसे अनैतिक व्यवहार की ओर सरलता से और शीघ्रता से खींचा जा सकता है। उसमें यह समझने की शक्ति ही क्षीण होती है कि उच्च सामाजिक व्यवहार क्या है ? उसे प्रलोभन दिए जायें तो वह असामाजिक व्यवहार की ओर शीघ्रता से अग्रसर होने लगता है। बर्ट ने ऐसे २०० बाल-अपराधियों की जिनको न्यायालय से सजा नहीं मिली थी और ४०० अन्य बालक जो अपराधी नहीं थे और लन्दन के उन्हीं क्षेत्रों, घरों तथा जिलों से आए थे, सहायता से बालापराध का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि लगभग $\frac{४}{५}$ बालापराधी मन्द-बुद्धि के थे। उनकी बुद्धि-लब्धि १०० से कम थी। साधारण बालकों में १०० से कम बुद्धि-लब्धि लगभग आधे बालकों में पाई गई।

परन्तु यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि बर्ट के अध्ययन में ८ प्रतिशत ऐसे भी बालक थे जिनकी बुद्धि-लब्धि १०५ या इससे अधिक थी। अतएव केवल मन्द-बुद्धिता ही बाल-अपराध का कारण हो, ऐसा नहीं है।

(४) शारीरिक क्रियाओं[1] में दोष आ जाने से भी अपचार को प्रोत्साहन मिलता है। हैडफील्ड[2] के अनुसार ऐसे अपचार को स्वाभाविक अपचार[3] कहते हैं। स्त्रियों में ऋतु-स्राव[4] के समय अपराधीपन बढ़ जाता है। हैवलोक एलिस[5] का कथन है कि यदि कोई स्त्री दुकान से कोई चीज उठा रही है तो यह सम्भावना है कि उसका ऋतु-स्राव हो रहा है।

1. Physiological Disorders 2. Headfield. 3. Temperamental Delinquency. 4. Menstural Changes. 5. Havelok Ellis.

२. सामाजिक वातावरण सम्बन्धी कारण

इस सम्बन्ध में बहुत कुछ समस्या-बालक के बनने के कारणों का वर्णन करते समय पीछे कहा जा चुका है। यहाँ हम केवल इन कारणों की सूची मात्र ही देंगे, जो निम्नलिखित हैं :

(अ) घर का दूषित वातावरण—

१. घर में विमाता या विपिता होना।
२. माता-पिता के आपसी झगड़े।
३. माता-पिता का बालक के प्रति कम प्यार।
४ माता का या पिता का या दोनों का बालक पर अधिक प्यार।
५ दरिद्रता जिसमे बालक की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति न हो सके।
६. माँ-बाप की बालक के प्रति उच्च आकांक्षा। उनका उसे वास्तविक रूप से उस उच्च स्तर पर देखने की कामना करना जिस तक वह स्वयं नहीं पहुँच पाये हैं।
७ कुटुम्ब के अन्य सदस्यों में झगड़ा।
८. कुटुम्ब के अन्य सदस्यों की तुलना में बालक को हीन बताना। बहुत-से माता-पिता एक बालक की तो बहुत प्रशंसा करते हैं और दूसरे की बुराई। इस प्रकार दूसरा बालक आत्महीनता का अनुभव करने लगता है, और उसे अनैतिक व्यवहार करने की प्रेरणा मिल जाती है।
९ घर में दूषित अनुशासन का होना—या तो सरल या कठिन अनुशासन होना।
१०. माता-पिता का शराबी या जुआखोर होना।
११. माता में काम-सम्बन्धी दोषों का होना। उसका चरित्रहीन होना।
१२. माता या पिता का मानसिक असन्तुलन।
१३. माता या पिता का तलाक दे देना।
१४ माता का नौकरी करना जिससे बालक के ऊपर नियन्त्रण न रह सके और न उसकी आवश्यकताओं की देखभाल हो सके।

(ब) घर के बाहर के वातावरण सम्बन्धी कारण—

१. घर के चारों तरफ दूषित वातावरण का होना; जैसे—वेश्यालय, जुआ-घर आदि।
२. बहुत अधिक चलचित्र देखना जिनमे काम-सम्बन्धी उत्तेजना मिलती है।
३. ऐसे मित्रों का साथ जो स्वयं बालापराधी हों। ये मित्र बालक को अनैतिक कार्य के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसके अतिरिक्त जब बालक

समूह में होता है तो वह अनैतिक व्यवहार करने को शीघ्र तत्पर हो जाता है। वह ऐसे व्यवहार मे अपने दूसरे साथियो का अनुकरण करने लगता है।

४. छोटे बालको का फैक्टरी या अन्य उद्योग-धन्धों में लग जाना। यह कारण हमारे देश में एक मुख्य कारण हो सकता है। अमाक्षरता के कारण बहुत-से बालक तो पाठशाला का मुँह तक नहीं देख पाते। जैसे ही वे कुछ करने के योग्य हो जाते हैं, उन्हे काम पर लगा दिया जाता है। ऐसे बालक आरम्भ से ही बीडी-सिगरेट पीना, चल-चित्र देखना तथा शराब पीना तक आरम्भ कर देते हैं, और इस प्रकार उनमे अनैतिक व्यवहार का सृजन हो जाता है।

५. पाठशाला में अध्यापकों का अनुचित व्यवहार।

६ शिक्षा-विधि तथा शिक्षा-साधनों का अरोचक होना।

७ पाठशाला मे कडा या ढीला-ढाला अनुशासन होना।

८ उचित मनोरंजन के साधनो का अभाव, खेल के मैदान आदि का न होना।

अपचारी तथा समस्या-बालकों का उपचार और रोकने के उपाय[1]

हमने ऊपर अपचार के कारणों का वर्णन किया है। यहाँ हम यह देखेंगे कि अपचार का उपचार किस प्रकार किया जा सकता है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि अध्यापक या अभिभावक ही इसका उपचार कर सकते हैं, गलत है। वास्तव में उपचार के लिए अध्यापक, अभिभावक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, सरकार आदि सब का सहयोग आवश्यक है।

अपचार के उपचार के सम्बन्ध मे हमारे सम्मुख दो प्रश्न आते हैं :

१. बालकों को कैसे अपचारी बनने से रोका जाये? और

२ कैसे उन बालको का उपचार किया जाये जो अपराधी बन गए हैं?

अपचार को रोकने का उपाय

(अ) अभिभावकों द्वारा जो उपाय अपनाये जा सकते हैं, वे निम्नलिखित हैं :

(१) घर में उचित वातावरण का बनाना—अभिभावको को चाहिए कि वे घर मे इस प्रकार का वातावरण बनाएँ जिससे बालको में दूषित मनोवृत्ति न बनने पाए। उन्हे आपस मे बालक के सामने लडना-झगडना नही चाहिए। एक उचित आदर्शमय घर का वातावरण बाल-अपराध को रोकने का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

(२) बालको के प्रति उचित व्यवहार को अपनाना—अभिभावको को न तो अधिक लाड-प्यार और न कठोर व्यवहार ही बालको के साथ करना चाहिए। उन्हें

1. Treatment of Delinquency & Methods of its Prevention.

बालकों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। उनकी समस्याओं का उचित हल प्रदान करना चाहिए। बालक यह समझने लगें कि उन्हें कोई भी कठिनाई होगी तो उनके माता-पिता उसे दूर करने में तत्पर रहेंगे और जो निर्देश वह देंगे, वह उचित ही होंगे।

(३) बालकों की बुरी आदतों के प्रति उचित दृष्टिकोण रखना—शिशु जन्म से ही बुरी आदतों को लेकर उत्पन्न नहीं होता। माता-पिता का कहना न मानना, झगड़ालूपन उसमें जन्मजात नहीं होते हैं। इस प्रकार का व्यवहार तो बालक वातावरण के ही कारण अपना लेता है। बालक की रुचि, आदतें, व्यवहार आदि तो उसके माता-पिता के व्यवहार पर निर्भर होते हैं। अतएव माता-पिता को चाहिए कि वे बालक की बुरी आदतों के प्रति उचित दृष्टिकोण रखें। उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि बालक के दूषित व्यवहार का या अनुचित आदतों का कारण क्या है? बहुधा अभिभावक ऐसा नहीं करते और बालक को मारपीट कर सुधारना चाहते हैं। ऐसा करने से बालकों में भावना-ग्रन्थियाँ बन जाती हैं और वह असामाजिक व्यवहार की ओर अग्रसर हो जाता है। माता-पिता को बालकों के साथ व्यवहार में अपना धैर्य कभी नहीं खोना चाहिए और सहानुभूतिपूर्ण ढंग से चेष्टा करनी चाहिए कि बुरी आदतों को दूर करें।

(४) अभिभावकों को बाल-निर्देशन का ज्ञान होना चाहिए—कोई भी पुरुष पिता या कोई स्त्री माता बनने योग्य नहीं है—जब तक कि उसे बाल-निर्देशन तथा बाल पालन-पोषण की उचित विधियों का ज्ञान नहीं है। अशिक्षित माता-पिता बालकों में अच्छे आचरण और अच्छी आदतों का निर्माण नहीं कर सकते। माता-पिता को शिक्षित होने के साथ-साथ पढ़ने की आदत भी डालनी चाहिए, क्योंकि वे ही बालक के प्रथम तथा मुख्य शिक्षक होंगे।

(५) अभिभावकों को परिवार नियोजन की विधियों[1] से परिचित होना चाहिए—यदि किसी परिवार में बहुत-से बालक हैं तो माता-पिता बालकों पर उचित ध्यान नहीं दे पाते। इसके अतिरिक्त यदि उनकी आय सीमित है तो वह बालकों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते। बालक ऐसे परिवार में असुरक्षा की भावना को अपना लेते हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि परिवार की वृद्धि पर नियन्त्रण रखा जाये। हमारे देश में इस ओर ध्यान देने की परम आवश्यकता है।

(६) बालकों को बहुत अधिक जेब-खर्च नहीं देना चाहिए—यदि जेब-खर्च बहुत अधिक दिया जायेगा तो बालक में बुरी आदतों तथा लतों के पड़ने की सम्भावना है। वह अधिक चल-चित्र देखने लगेगा, धूम्रपान करने लगेगा, और उसी प्रकार की अन्य दूषित आदतों को अपना लेगा। इसके साथ यह भी याद रखना चाहिए कि जेब-खर्च का बिलकुल न देना भी अच्छा नहीं है।

---

1. Family Planning Techniques

(७) अभिभावकों को चाहिए कि बालकों के प्रति अत्यधिक सुरक्षा न दिखायें—यदि बालक को अत्यधिक सुरक्षा मिलती है तो वह स्वयं सीखने-समझने में बेकार हो जाता है और इस प्रकार अपने बुरे मित्रों के दिये गए प्रलोभन में शीघ्र फंस जाता है।

(८) अभिभावकों को बालक के बुरे मित्रों पर भी निगरानी रखनी चाहिए—उन्हें चाहिए कि बालक के मित्रों को घर बुलायें तथा उनकी आदतों आदि के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करें। यदि मित्र अच्छे प्रतीत नहीं होते तो बालक को समझा कर उनका साथ छोड़ने को कहना चाहिए।

(९) अन्त मे यह कहा जा सकता है कि माता-पिता चाहे कितने ही व्यस्त हों, उन्हें बालक की शिक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। उन्हें स्वयं देखना चाहिए कि बालक ने पाठशाला मे क्या सीखा है, और उसकी प्रगति कैसी है?

(ब) पाठशाला द्वारा अपनाये जाने वाले उपाय—पाठशाला के ऊपर इस बात का सबसे अधिक उत्तरदायित्व रहता है कि बालक का आचरण अच्छा बनता है या बुरा। बालक के जीवन का अधिकांश समय पाठशाला मे व्यतीत होता है और वहाँ सीखी हुई बातें ही उसके जीवन मे नए मोड़ उपस्थित कर देती हैं। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि पाठशाला अपने उत्तरदायित्व को सुन्दरता से निभाए और बालकों को बाल-अपराधी बनने से रोके।

जो उपाय पाठशाला द्वारा अपनाये जा सकते हैं, वे इस प्रकार हैं :

(१) पाठशाला मे चरित्रवान, बाल-मनोविज्ञान से परिचित अच्छे अध्यापकों का होना—उन्हे बालकों की समस्याओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से हल करना चाहिए। बालकों की क्या आवश्यकताएँ है? उनकी क्या रुचियां हैं? यह उन्हें पता होना चाहिए। बालकों के प्रति उनका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए।

(२) पाठशाला में प्रत्येक बालक को उसकी रुचि तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा देनी चाहिए—बालकों का विभाजन कक्षाओं मे उनकी योग्यता के अनुसार ही होना चाहिए। उनमे शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। उन्हे काम करके सीखने[1] के लिए अधिक प्रोत्साहित करना चाहिए।

(३) अध्यापकों को शिक्षा देते समय अपने अन्दर आत्म-विश्वास रखना चाहिए और पाठ को रोचक बनाना चाहिए—उन्हे सहायक सामग्री आदि का प्रयोग करना चाहिए। उन्हे बालकों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। विद्यार्थी इस बात को बहुत बुरा मानते हैं कि अध्यापक उनके साथ पक्षपात करता है।

---

1 Learning by Doing.

(४) विद्यार्थियों को पढ़ने को उचित सामग्री मिलनी चाहिए तथा उनमें पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के पढ़ने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिए—यदि पाठशाला में अच्छा पुस्तकालय तथा अच्छा अध्ययन-कक्ष है तो बालक अपना समय व्यर्थ में नष्ट न कर, पढ़ने में व्यतीत करेगा। इस प्रकार उसमें अच्छी आदतों का निर्माण होगा और उसके अवकाश के समय का भी सदुपयोग हो जायेगा। यदि आकर्षित करने वाली पुस्तकें, पत्रिकाएँ आदि बालकों को मिल जायेंगी, जो अच्छी विचारधारा को व्यक्त करती हों तो बालक पाठशाला से नहीं भागेंगे, और न उन्हें गन्दे व्यवहार करने का अवसर ही प्राप्त होगा।

(५) पाठशाला में बालकों के स्वस्थ मनोरंजन के साधन भी होने चाहिए—इनके अभाव में बालक उनको पाठशाला के बाहर ढूँढता है। वह चलचित्र देखने लगता है और इस प्रकार के मनोरंजन में आनन्द लेने लगता है जो उसे असामाजिक व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। इस कारण खेल के अच्छे मैदान, खेल का सुयोग्य अध्यापक तथा खेल की पर्याप्त सामग्री का प्रत्येक बालक के लिए उपलब्ध होना आवश्यक है।

(६) कक्षा में शिक्षा के लिए अध्यापकों को अच्छी पद्धति अपनानी चाहिए—यदि विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण करने की कोई प्रेरणा न मिले या जो पाठ पढ़ाया जाये वह अति रोचक न हो तो बालकों में शिक्षा की ओर से अरुचि उत्पन्न हो जाती है और उन्हें कक्षा से भाग आने में आनन्द आने लगता है तथा वह इस समय का उपयोग अपराध करने में करने लगते हैं।

(७) घर तथा पाठशाला में समन्वय स्थापित करना चाहिए—अध्यापकों को बालकों की समस्याएँ उनके माता-पिता के समक्ष रख देनी चाहिए और उन्हें बालकों के प्रति उचित व्यवहार को करने के लिए बताना आवश्यक है। बाल-अपराध तभी रोका जा सकता है जब दोनों—माता-पिता तथा पाठशाला—इसकी रोक-थाम की ओर ठोस कदम उठाएँ।

(८) बालकों को उचित निर्देशन देने का प्रबन्ध करना चाहिए—यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय में प्रशिक्षित सलाहकार हो, जो बालकों की समस्याओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाए। समस्या तथा अपराधी बालक बनने से रोके जा सकते हैं, यदि उनकी व्यवहार-सम्बन्धी समस्याओं का हल आरम्भ से ही कर दिया जाये। इसके लिए योग्य निर्देशक की आवश्यकता है। ज्यों ही अध्यापक को किसी बालक का व्यवहार त्रुटिपूर्ण मालूम हो, उसे चाहिए कि वह बालक को निर्देशक के पास भेजे, जो कुशलता से उसके व्यवहार के कारण का पता लगाकर उसका उपचार कर सकेगा।

(म) राज्य तथा सामाजिक निधियों[1] द्वारा अपनाए जाने वाले उपाय—बाल-अपराध रोकने में राज्य तथा सामाजिक निधियों को कम महत्व नहीं

1. Social Agencies.

किया जा सकता। बहुत-से ऐसे उपाय हैं जो इन्हीं निधियों के द्वारा उचित
अपनाये जा सकते हैं और बाल-अपराध को रोकने में सबसे अधिक सहायक हो
है। वे उपाय इस प्रकार हैं :

(१) राज्य को चाहिए कि ऐसे पति-पत्नी को जो मानसिक रोगों से पी
हैं, पुनरुत्पादन शक्ति से हीन कर दे; क्योंकि ऐसे माता-पिता की सन्तान निम्न बौ
स्तर पर हो सकती है और यह बालक अपराधों की ओर शीघ्रता से प्रवृ
सकते हैं।

(२) राज्य तथा अन्य सामाजिक निधियों को अच्छे विद्यालयों का प्र
करना चाहिए, जहाँ बालकों को अच्छी शिक्षा मिल सके। हमारे देश में इस बा
अत्यन्त आवश्यकता है कि प्रत्येक बालक को विद्यालय में जाने की व्यवस्था हो।
समय बहुत-से बालक शिक्षा की अनुचित व्यवस्था के ही कारण बाल-अपराध
जाते हैं।

(३) गरीब माता-पिता की सन्तानों के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध ह
चाहिए और ऐसे बालकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए राज्य को स्वयं उत्तर
होना चाहिए।

(४) चल-चित्रों पर नियन्त्रण होना चाहिए जिससे कामेच्छा को जाग्रत क
वाले सस्ते चित्र बालकों के समक्ष न आ सकें। बालकों के लिए शिक्षाप्रद चल-
निर्माण करने का कार्य भी राज्य या अन्य सामाजिक निधियों को लेना चाहिए।

(५) बालकों से भीख मँगाने वालों को कड़ी सजा देनी चाहिए और
बालकों के लिए जिनका कोई अभिभावक नहीं है, रहन-सहन तथा शिक्षा का उ
प्रबन्ध करना चाहिए।

(६) औरस बालकों[6] को घर जैसा वातावरण प्रदान करने की व्यव
होनी चाहिए। उन्हें यह नहीं मालूम होना चाहिए कि वे अवैधानिक हैं। वास्तव
दोष तो उनके माता-पिता का है, न कि उन अबोध बालकों का।

(७) राज्य तथा समाज, दोनों को बालकों के लिए मनोरंजन के साधनों
आयोजन करना चाहिए। सुन्दर बाल-उद्यानों का निर्माण होना चाहिए। इसके अ
रिक्त, बाल-निकेतन, बाल-सदन आदि संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए।

अपचारी तथा समस्या-बालकों के उपचार के उपाय

अपराधी बालकों के व्यवहार विभिन्न प्रकार के होते हैं। इस कारण य
सम्भव नहीं है कि हम कोई निश्चित एक या अधिक साधनों का वर्णन उनके उपच
के लिए कर सकें। उपचार के साधन आवश्यक रूप से बालक की विभिन्नता क
देखकर ही नियत किये जा सकते हैं। हर प्रकार के अपराधी बालक के लिए ए
ही प्रकार के उपचार कभी भी प्रयोग नहीं किये जा सकते हैं।

हैडफील्ड के अनुसार, अपचार कई प्रकार का होता है। यह इस प्रकार है—(i) दयालु अपचार[1], (ii) स्वाभाविक अपचार[2], (iii) साधारण अपचार[3], (iv) प्रतिक्रियात्मक अपचार[4], (v) मनोस्नायविक अपचार।[5] इन सब प्रकार के अपचार का उपचार विभिन्न प्रकार से होना आवश्यक है, यथा—

(१) दयालु अपचार—सामाजिक तथा वैधानिक दृष्टिकोण से अपराध है किन्तु मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यह असाधारण नहीं है। जैसे वर्षा के एक दिन यदि बालक कक्षा से भाग जाते हैं तो विद्यालय के नियमों के तो विरुद्ध है, किन्तु उन बालकों का मानसिक स्वास्थ्य असाधारण नहीं है। वे तो अपनी दृष्टि से इस सुन्दर दिन का उपयोग करने के लिए ऐसा करते हैं। इस प्रकार के अपचार का सरलता से उपचार किया जा सकता है। यदि बालकों को उचित वातावरण दिया जाये और उनकी साहसिक कार्य करने की प्रवृत्तियों को ठीक रूप में उपयोग किया जाये तो वह सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत व्यवहार को अपना लेंगे।

(२) स्वाभाविक अपचार—साधारणतः पाया जाता है। यह शारीरिक क्रियाओं के दोषपूर्ण व्यवहार के कारण होता है। जैसे, कुछ बालिकाएँ ऋतु-स्राव के समय अपराध करती हैं। यह अपराध जो चोरी के रूप में भी होते हैं, शारीरिक क्रियाओं के दोषपूर्ण होने से हमें असन्तुलित कर देते हैं और हमारी भावना-ग्रन्थियों पर अधिकार जमा लेते हैं, जिनको हम साधारण रूप में दमन किये रहते हैं। इस प्रकार के अपचार शारीरिक दोष के उपचार के द्वारा दूर किये जा सकते हैं।

(३) साधारण अपचार—यह असामाजिक व्यवहार है जो वातावरण के प्रत्यक्ष व्यवहार के कारण होता है। यह वैयक्तिक और सामाजिक आवश्यकताओं के द्वन्द्व के कारण होते हैं। अधिकतर अपराध इसी श्रेणी में आते हैं। यह घर के दूषित वातावरण के कारण या दूषित पालन-पोषण के कारण बालक में होते हैं। इस प्रकार के अपचार का उपचार उचित सामाजिक या नैतिक व्यवहार के विकास पर निर्भर होता है। यदि बालक को नया वातावरण दे दिया जाये, नए आदर्श उसके समक्ष रखे जायें, नवीन उद्देश्यों से उसे अवगत कराया जाये तो उसके सुधरने की सम्भावना है। कभी-कभी इस प्रकार का अपचार शारीरिक दंड देने [illegible] ा जा सकता है। किन्तु दण्ड देना [illegible] । दण्ड बहुत ही [illegible]
दूषण, [illegible] न्य सब [illegible] का प्रभाव

[illegible] Delinquency.
[illegible] ycho-

(४) प्रतिक्रियात्मक अपचार—यह भी वातावरण की दशाओं के कारण ही जन्म लेता है। यह बालक की प्रतिक्रिया होती है जो वह समाज या वातावरण के प्रतिकूल करता है, जैसे जब माता-पिता से बालक को दुःख ही दुःख मिलता है तो वह समाज के लिए प्रतिकूल व्यवहार अपना लेता है और समाज के नियमों तथा परम्पराओं को छिन्न-भिन्न करने की चेष्टा करता है।

कुछ प्रतिक्रियात्मक अपचार, काम-प्रवृत्ति को असामाजिक रूप से बाहर निकालने का मार्ग प्रदान करते हैं। एक बालक हस्त-मैथुन इस कारण करने लगता है कि उसे प्यार का अभाव होता है। इस प्रकार के व्यवहार से उसे कुछ सान्त्वना मिलती है। प्यार के अभाव की पूर्ति वह इसी प्रकार करना चाहता है।

ऐसे अपचार का उपचार दण्ड प्रदान करके नहीं किया जा सकता। दण्ड द्वारा तो बालक की असामाजिक प्रतिक्रिया में वृद्धि हो जायेगी। ऐसे बालकों के उपचार के लिए उनकी *असामाजिक प्रतिक्रिया के वास्तविक कारण* का पता लगाना चाहिए और उसे दूर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनके अचेतन मन से अवरोध को दूर करना चाहिए।

(५) मनो-स्नायविक अपचार—दमित[1] प्रवृत्तियों का असामाजिक रूप से संगठन होने के कारण होता है। जैसे, एक बालिका चोरी इस कारण करती है कि उसकी काम-प्रवृत्ति दमित हो गई है और उसका अचेतन मन उसे चोरी करने को बाध्य करता है। वस्तु-विशेष से, जिसे वह चुराती है *उसे कोई लगाव न हो*, परन्तु फिर भी वह उसे चुरा लेती है क्योंकि उसे मना की हुई वस्तु को चुराने में आनन्द का अनुभव होता है या वह उस व्यक्ति की वस्तु होती है जिसके प्रति उसे प्रेम हो और जिस प्रेम को उसने दमित कर लिया है।

बालक या बालिकाओं में चोरी करने की आदत पड़ने का ऊपर वर्णन किया हुआ कारण ही मुख्य है। दूसरे कारण तो वास्तव में स्पष्ट ही होते हैं; जैसे—*दरिद्रता, बुरा संग, दूषित वातावरण आदि*। *किन्तु मनोवैज्ञानिक कारण अचेतन रूप* से प्रेरणात्मक होते हैं, और इस कारण इनका पता लगाना अति कठिन होता है। दिल्ली के एक समाचार-पत्र में कुछ दिन पूर्व ही एक समाचार प्रकाशित किया गया था कि दिल्ली के कनॉट प्लेस (प्रसिद्ध बाजार) में दूकानदार इस बात से बहुत चिन्तित हैं कि बड़े-बड़े अफसरों की पत्नियाँ उनकी दूकानों से छोटी-मोटी चीजें; जैसे—पर्स आदि, उठा ले जाती हैं। यहाँ दरिद्रता का प्रश्न नहीं आता, पर वे ऐसा क्यों करती हैं? यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है, जो शायद इन स्त्रियों के मनो-विश्लेषण द्वारा हल होना सम्भव है।

इस प्रकार के अपराधों का उपचार मनोविश्लेषण द्वारा सम्भव है। अपराधी की अवरुद्ध प्रवृत्तियों का पता लगाए बिना उपचार का अन्य कोई साधन असफल

---

1. Respression.

रहेगा। ऐसे अपराधियो मे आत्म-विश्वास उत्पन्न करने की अति आवश्यकता है जो उनकी अवरुद्ध प्रवृत्तियो के प्रकाशन द्वारा ही किया जा सकता है।

अन्त मे, हम यह सकते हैं कि अपचारी व समस्या-बालको के उपचार के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान मे रखनी चाहिए :

१ माता-पिता को बालक के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार तथा प्रेमपूर्ण बरताव करना चाहिए।

२ अध्यापको को पाठ को रोचक बनाना चाहिए तथा शिक्षा देने की उचित विधियों को अपनाना चाहिए। उनका व्यवहार अपराधी बालक के साथ बदले की भावना से प्रेरित नही होना चाहिए। बालक की समस्याओ को समझकर उन्हे हल करना चाहिए। शारीरिक दण्ड को जहाँ तक सम्भव हो, ऐसे बालको के उपचार मे प्रयोग नही करना चाहिए।

३. अपराधी बालको की चिकित्सक-परीक्षा करानी चाहिए और जो शारीरिक दोष, ग्रन्थियो आदि के कार्यों मे निकलें, उनका उपचार कराना चाहिए।

४ मनोविश्लेषण द्वारा बालको के मानसिक दोषो का पता लगाना चाहिए। उनकी अवरुद्ध प्रवृत्तियों को प्रकाशन का अवसर प्रदान करना चाहिए।

५ बालको के साथ माता-पिता का मनोविश्लेषण भी आवश्यक है, क्योकि दूषित मनोवृत्ति के माता-पिता ही बहुधा बालकों के अपराधीपन के पनपने के कारण होते हैं। यह कहना ठीक है कि हमे 'समस्या-बालक' न कहकर 'समस्या-माता-पिता' कहना चाहिए।

६. सरकार को अपचारी को कठिन दण्ड न देना चाहिए। उनको ऐसे वातावरण मे रखना चाहिए, जहाँ उन्हे स्वस्थ और अच्छी क्रियाओ मे भाग लेने का अवसर मिले। ऐसे बालको के लिए जेल नहीं, पर का प्रबन्ध होना चाहिए, तभी हम उन्हें देश का अच्छा नागरिक बनाने मे सफल होंगे।

७. अपराधी बालको के न्याय के लिए सरकार द्वारा जो न्यायाधीश नियुक्त हो, वे बाल-मनोविज्ञान की जानकारी रखते हो, और उनकी सहायता के लिए मनोवैज्ञानिक भी नियुक्त किये जाने चाहिए।

८ देश भर मे अपराधी तथा समस्या-बालको के उपचार के लिए बाल-पथ-प्रदर्शक चिकित्सालयों[1] का प्रबन्ध होना चाहिए, जहाँ बालकों का मनोवैज्ञानिक रीति से उपचार हो सके।

सारांश

अध्यापक अक्सर पिछड़ेपन की समस्या का समाधान करने की चेष्टा नहीं करते हैं। परन्तु हमे पिछड़ेपन के कारणो को समझ कर इसे दूर करने की चेष्टा

1. Child Guidance Clinics.

करनी चाहिए। बर्ट पिछड़ेपन की परिभाषा "बालक की किसी आयु या उसी आयु के दूसरे बालकों के तुलनात्मक कक्षा-कार्य करने में असमर्थता" के रूप में देता है। पिछड़ेपन की परिभाषा बुद्धि-लब्धि के रूप में भी दी जा सकती है।

पिछड़ेपन के कारण हैं—(१) सामान्य बुद्धि का अभाव, (२) स्वाभाविक दोष, (३) वातावरण का दूषित प्रभाव, (४) शारीरिक दोष, (५) कक्षा से भाग जाना, तथा (६) विशिष्ट पिछड़ापन। पिछड़ापन दो प्रकार का होता है—सामान्य तथा विशिष्ट। विशिष्ट पिछड़ेपन से तात्पर्य है—एक विशेष विषय में पिछड़ापन उस विषय से सम्बन्धित विशिष्ट अयोग्यता के कारण।

सामान्य पिछड़ेपन का उपचार हम (१) शारीरिक दोष का पता लगाकर, (२) बुद्धि-परीक्षा द्वारा मन्द-बुद्धिता का पता लगाकर, (३) वातावरण को स्वस्थ तथा प्रेरणात्मक बनाकर, कर सकते हैं। विशिष्ट पिछड़ेपन का उपचार हम (१) शारीरिक दोष को दूर कर, (२) अध्यापन की अच्छी तथा सरल विधियों द्वारा, (३) विषय-सम्बन्धी रुचि को जगाकर, (४) बालकों की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देकर, और (५) उनकी हर समय तथा स्तर की कठिनाई को दूर करके, कर सकते हैं।

समस्या-बालक—वे बालक कहे जाते है जिनका व्यवहार अथवा व्यक्तित्व गम्भीर रूप से असाधारण हो जाता है। यह बताना कि कौनसा व्यवहार समस्या-जनक है, अति कठिन है। मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षक विभिन्न दृष्टिकोण से समस्या-व्यवहार की पहचान करते हैं और इस प्रकार हम द्विविधा में फँस जाते हैं कि किस व्यवहार को हम समस्या कहें। जो भी हो, हमें समस्या-बालकों का पता लगाने की अति आवश्यकता है। समस्यात्मक व्यवहार को हम मुख्यतया तीन श्रेणियों में रख सकते हैं। वे इस प्रकार हैं

१. बालक के शारीरिक-संवेदनात्मक या स्नायु-दोष (नाड़ी-अवस्था)।
२. बालक के स्वभाव सम्बन्धी दोष तथा संवेगात्मक दशाएँ।
३. सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी तत्त्व। इनमें बहुत ही प्रभावशाली कारण घर का वातावरण तथा घर का अनुशासन है।

हैडफील्ड अपचार की परिभाषा "असामाजिक व्यवहार" के रूप में देता है। अपचार के कारण दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं: (१) व्यक्तिगत, तथा (२) सामाजिक। व्यक्तिगत कारणों में (१) शारीरिक दोष, (२) विकास की गति की तीव्रता या मन्दता, (३) मन्द-बुद्धि, तथा (४) स्वाभाविक दोष हैं। सामाजिक कारणों में (१) घर का वातावरण, और (२) घर के बाहर का दूषित वातावरण है।

अपचार तथा समस्या-व्यवहार को रोकने के उपाय (१) अभिभावकों द्वारा अपनाए जा सकते हैं, (२) पाठशालाओं द्वारा अपनाए जा सकते हैं, (३) राज्य तथा सामाजिक अभिकरणों या संस्थाओं द्वारा अपनाए जा सकते हैं। वास्तव

मे इन तीनो अभिकरणो या संस्थाओ को मिल-जुलकर कार्य करना चाहिए। वे बालक जो अपचारी या समस्या बन गए हैं, उनका उपचार होना भी आवश्यक है। अपचार के उपचार के लिए यह पता लगाना कि किस प्रकार का अपराधीपन है, आवश्यक है। हैडफील्ड के अनुसार, अपचार निम्न प्रकार का हो सकता है—(१) दयालु, (२) स्वभावानुसार, (३) साधारण, (४) प्रतिक्रियात्मक, (५) मनोस्नायविक विकारात्मक।

इन सब प्रकार के समस्या तथा अपचार-व्यवहार का उपचार करने मे इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—(१) अभिभावको का प्रेमपूर्ण व्यवहार, (२) अध्यापक द्वारा पाठ को रोचक बनाना, (३) बालको की चिकित्सक-परीक्षा, (४) अपचारी का मनोविश्लेषण, (५) अभिभावको का मनोविश्लेषण, (६) सरकार द्वारा उचित नियम, (७) सरकार द्वारा योग्य न्यायाधीशो की नियुक्ति, तथा (८) बालक-पथ-प्रदर्शक चिकित्सालयो का खुलना।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१ आप पिछड़ेपन से क्या समझते हैं ? इसको दूर करने के उपायो पर प्रकाश डालिए।

२ समस्या-बालक किन्हे कहते हैं ? उन लक्षणों की एक सूची बनाइए जो समस्या-व्यवहार के प्रतीक कहे जाते हैं।

३. आप विद्यालय मे समस्या-बालको के उपचार के लिए कौन-कौनसे रास्ते अपना सकते हैं ?

४ एक अध्यापक के नाते अपने कर्त्तव्यो पर प्रकाश डालिए जो बालको को समस्या बनने से रोक सकते हैं।

५ 'बालक समस्या नही होते, उनके माता-पिता समस्या होते हैं।' इस कथन पर प्रकाश डालिए और वास्तविक उदाहरण लेकर घर के दूषित वातावरण के प्रभाव के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण रखिए।

६ अपचार क्या है ? इसका किस प्रकार उपचार किया जा सकता है ?

७ आप यदि किसी बालक मे चोरी की आदत पाते हैं तो क्या साधन उसके उपचार के लिए अपनाएँगे ?

८ काम-सम्बन्धी अपराध कैसे कम किये जा सकते हैं ? अपने मत को कारण-सहित दीजिए।

९. क्या हम रास्ता चलती लड़कियो मे छेड़छाड़ की प्रवृत्ति को, जो आजकल भारत के नवयुवकों मे घर कर रही है, सुधार सकते हैं ? यदि हाँ, तो किस प्रकार ?

२६ निर्देशन : शैक्षिक एवं व्यावसायिक
GUIDANCE : EDUCATIONAL & VOCATIONAL

हमने पिछले दो अध्यायों मे विशिष्ट बालकों की शिक्षा किस प्रकार हो यह स्पष्ट किया है। इस अध्याय मे हमारा विषय सामान्य बालक हैं जिनकी ओर यदि विशेष ध्यान न दिया जाय तो वह कुसमायोजित हो जाते हैं। सामान्य बालक कैसे व्यक्तिगत तथा सामाजिक सामायोजन शिक्षण संस्थाओं मे उचित सहायता पाकर कर सकते हैं, इसी पर हमने इस अध्याय मे प्रकाश डाला है।

"व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुसार शिक्षा" आज की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। परन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक इस पर विचार करें तो हमे पता चलेगा कि हम बहुधा व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्तो को मानते हुए भी इस सिद्धान्त का उचित उपयोग शिक्षा मे नहीं कर पाते। भारत के लिए तो इस समय यह बात बिलकुल ठीक है। कुछ माता-पिता यह मानते हुए भी कि बालक एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, यह मानने को तैयार नहीं होते कि उनके बालक मे किसी प्रकार की योग्यता की कमी है। इसी प्रकार अध्यापक प्रत्येक बालक को एक ही लाठी से हाँकते हैं। उन्हें तो यही चाहिए कि उनकी कक्षा के सब विद्यार्थी उनके विषय मे पास हो जायें और यदि कुछ असफल भी हो जायें तो उन्हें गधा या नालायक कहकर छोड़ दिया जाये।

इसके अतिरिक्त बालक भी यह समझने मे असमर्थ रहते हैं कि उनके लिए किस प्रकार की शिक्षा उचित है, और वे किस व्यवसाय के योग्य हैं ? वे तो अपने माता-पिता के कहने पर चलकर जो कुछ उनकी इच्छाएँ होती हैं, उन्हें पूर्ण करने के चेष्टा करते हैं। ऐसा करने मे वह क्यों असफल हो जाते हैं, यह उनकी समझ से बाहर है। ऐसी स्थिति मे यह आवश्यक हो जाता है कि बालक की योग्यता की माप करके उसे उचित निर्देशन दिया जाए। हरएक व्यक्ति हर प्रकार की शिक्षा या हर प्रकार के व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं है। उसकी योग्यतानुसार इनमें चुनाव होना आवश्यक है। अतएव बालक को शिक्षा द्वारा सफल व्यक्ति बनाने का मूलमन्त्र यही है कि उसे उचित शिक्षा तथा व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन दिया जाये।

निर्देशन क्या है ?

'निर्देशन' व्यक्तिगत रूप से वह सहायता है जो एक व्यक्ति को उसके जीवन की समस्याओं को हल करने को दी जाती है। निर्देशन द्वारा व्यक्ति की समस्याएँ सुलझा नहीं दी जाती, परन्तु उन्हें स्वयं सुलझाने मे व्यक्ति को सहायता मिल जाती है। निर्देशन की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—"यह एक क्रिया है जो व्यक्ति को शिक्षा, जीविका, मनोरंजन तथा मानव-क्रियाओं के समाज-सेवा सम्बन्धी कार्यों को चुनने, तैयारी करने, प्रवेश करने तथा वृद्धि करने में सहायता प्रदान करती है।"[1]

'निर्देशन' शब्द मे दो स्पष्ट व्यक्ति सम्बन्धी कार्य निहित हैं—एक वह जो निर्देशन प्राप्त करने वाला है; और दूसरा वह जो निर्देशन देने वाला है। दो प्रकार की सूचना की आवश्यकता भी है। एक तो निर्देशन प्राप्त करने वाले के सम्बन्ध में, और दूसरे उन सामाजिक, शैक्षिक, जीविका-अर्जन सम्बन्धी क्रियाओं के सम्बन्ध मे जिनको करने का निर्देशन बालक को दिया जा सकता है।

निर्देशन एक लगातार होने वाली क्रिया है। निर्देशन केवल उन्हीं बालकों को नहीं दिया जाता जिनकी कुछ विशेष समस्या है, परन्तु यह हरएक बालक को दिया जाना चाहिए—चाहे वह साधारण हो या असाधारण। निर्देशन देते समय हर संस्था या निधि के सहयोग की आवश्यकता है, जैसे परिवार, समाज, विद्यालय, समाज-सेवा संस्थाएँ अथवा राज्य सरकार द्वारा प्रतिपादित संस्थाएँ।

निर्देशन एक सक्रिय एवं लगातार चलने वाली प्रक्रिया[2] है। यह व्यक्ति को आत्मदर्शन करने तथा आत्मशक्ति का समुचित सहयोग करने मे सहायता प्रदान करती है। निर्देशन द्वारा व्यक्ति को अपनी बुद्धि, योग्यता, विशिष्ट योग्यता, अभिरुचि और व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएँ, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार निर्देशन प्राप्त किया हुआ व्यक्ति अपने जीवन को अच्छा बनाता तथा समाज के उपयुक्त हो जाता है।

निर्देशन प्रारम्भ में उन समस्याओं पर केन्द्रित था जो व्यवसाय से सम्बन्धित थी। यद्यपि अब भी निर्देशन मे व्यावसायिक चुनाव पर बहुत बल है फिर भी अब इसका विस्तार बहुत बढ़ चुका है। यह अब पूर्ण व्यक्ति से उसके जीवन के सब रूपों

---

1. "The process of assisting the individual to choose, prepare to enter upon and progress in course of action pertaining to the educational, vocational, recreational and community service."—*A Manual of Education & Vocational Guidance*, Ministry of Education, Govt. of India.

2. Continuous Process.

से सम्बन्ध रखता है, तथा व्यक्ति एवं समाज के अन्त सम्बन्धो से सरोकार रखता है। यह युवाओ को एक ऐसा जीवन प्राप्त करने मे सहायता देता है जो व्यक्तिगत रूप से सन्तोषजनक और सामाजिक रूप से प्रभावशाली हो।

कुछ व्यक्तियो को निर्देशन की आवश्यकता जीवन भर होती है, दूसरो को केवल अपने युवाकाल मे अथवा गम्भीर सकटपूर्ण स्थितियो मे। समाज का निर्देशन प्रदान करने का मुख्य उत्तरदायित्व बालको तथा युवको के प्रति तथा उनके प्रति जो किसी गम्भीर दोष से पीडित हो, है।

निर्देशन, जब भी वरण, चुनने और बुद्धिपूर्ण निर्णय लेने हो, सक्रिय हो जाता है। यह व्यक्ति को अपनी स्थिति समझने और उसे ग्रहण करने मे भी सहायता देने वाला हो सकता है। निर्देशन उस समय भी सक्रिय हो सकता है जबकि व्यक्ति को किसी भी विकल्प को चुनने की चेतना नहीं होती। ऐसे समय मे निर्देशन व्यक्ति का ध्यान उन मार्गों की ओर ले जाता है जो उसके लिए खुले हुए हैं।

विभिन्न प्रकार के निर्देशन[1]

जोन्स के अनुसार, "निर्देशन वह सहायता है जो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को विकल्प चुनने एवं समायोजन प्राप्त करने तथा समस्या-हल करने के लिए दी जाती है।"[2] यह सहायता केवल विद्यालय या परिवार तक ही सीमित नहीं है। यह तो जीवन के सब पक्षो मे पाई जाती है। वास्तव मे यह हर उस जगह उपस्थित रहती है जहाँ व्यक्तियो को सहायता की आवश्यकता है और जहाँ ऐसे व्यक्ति हैं जो सहायता दे सकते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निर्देशन के अनेक रूप अथवा प्रकार हैं। विभिन्न विशेषज्ञों ने इनका वर्णन विभिन्न प्रकार से किया है। जोन्स चार प्रकार के निर्देशन का वर्णन अपनी पुस्तक के १६३४ के संस्करण मे करते हैं। उनके अनुसार निर्देशन के प्रकार हैं

(१) शैक्षिक निर्देशन[3]
(२) व्यावसायिक निर्देशन[4]
(३) अवकाश-कालीन निर्देशन[5]
(४) नेतृत्व निर्देशन[6]

---

1. Different Kinds of Guidance.

2 Jones, Arthur J : *Principles of Guidance*, Fifth edition, McGraw, 1951.

3. Educational Guidance. 4. Vocational Guidance. 5. Leisur-time Guidance. 6. Leadership Guidance.

पेटरसन, श्नेडर एवं विलियमसन[1] पाँच प्रकार के निर्देशन का वर्णन करते हैं। यह हैं :

(१) शैक्षिक निर्देशन
(२) व्यावसायिक निर्देशन
(३) व्यक्तिगत निर्देशन[2] (सामाजिक, संवेगात्मक तथा अवकाशकालीन निर्देशन को मिलाकर)
(४) स्वास्थ्य निर्देशन[3]
(५) आर्थिक निर्देशन[4]

निर्देशन के प्रकारों का वर्णन और भी अलग ढंग से किया गया है। किन्तु ो भी तालिकाएँ दी गई हैं उनमें व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन सब में पाये ाते हैं। इनके अतिरिक्त व्यक्तिगत निर्देशन का वर्णन भी किया जाता है किन्तु धिकतर लेखक व्यक्तिगत निर्देशन न कहकर सामाजिक, संवेगात्मक, अवकाश-ालीन इत्यादि निर्देशन को अलग-अलग प्रकार का निर्देशन कहते हैं। प्रस्तुत स्तक में हम केवल तीन प्रकारों का ही वर्णन करेंगे। व्यक्तिगत निर्देशन में हम ेर सब प्रकार के निर्देशन को सम्मिलित कर रहे हैं। यह ठीक है कि इस सम्बन्ध बहुत मतभेद है फिर भी हम ऐसा केवल इसलिए कर रहे हैं कि निर्देशन के म्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी विद्यार्थी को अच्छे ढंग से प्राप्त हो जावे।

ावसायिक निर्देशन

व्यावसायिक निर्देशन आजकल बहुत अधिक महत्त्व ग्रहण करता जा रहा है। न्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्बन्धी आम सभा में १९४९ में व्यावसायिक निर्देशन की यह परि-ाषा दी गई—"व्यावसायिक निर्देशन एक सहायता है जो एक व्यक्ति को उसकी ावसायिक तथा जीविका में उन्नति सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए सकी व्यक्तिगत विशेषताओं को उसके जीविका-सम्बन्धी अवसरों के सम्बन्ध में ध्यान खते हुए दी जाती है।"[5]

---

1. Donald G Paterson, Gwendolen G. Schneidler and dmund G. Williamson, *Student Guidance Techniques*, N. Y., Mc-iraw, 1938, p .3

2 Individual Guidance 3. Health Guidance. 4. Economic iuidance

5. *The General Conference of International Labour Organiza-on* in 1949, described Vocational Guidance as "Assistance given ɔ an individual in solving problems related to occupational choice nd progress with due regard for the individual's characteristics nd their relation to occupational opportunity."

व्यावसायिक निर्देशन बालक को उसके व्यवसाय को चुनने में सहायता प्रदान करता है। हरएक बालक की विभिन्नता के अनुसार उसे निर्देशन दिया जाता है। सैकड़ों व्यवसाय में से जो व्यक्ति अपना सकता है, जो उचित होते हैं और बालको की योग्यतानुसार होते हैं, उनका निर्देशन बालको दे दिया जाता है।
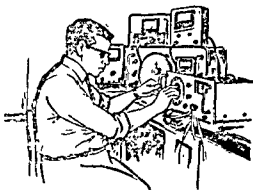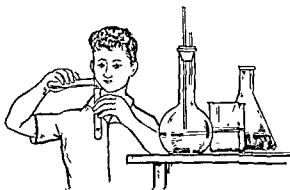
[निर्देशन व्यक्तिगत विभिन्नता पर आधारित होना चाहिए। ऊपर दो चित्र दिये हैं—एक में बालक विज्ञानशाला में कार्य कर रहा है। यही बालक यदि उसे उचित निर्देशन दिया जाये तो प्रौढ़ अवस्था में इंजीनियर या कार्य-कुशल मिस्त्री बन सकता है।]

बालक अपनी सामान्य बुद्धि, विशिष्ट, रुचि तथा स्वभाव आदि में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। दूसरी ओर विभिन्न व्यवसाय के लिए विभिन्न प्रकार का प्रशिक्षण,

योग्यता तथा रुचि आदि की आवश्यकता होती है। निर्देशन का कार्य यह है कि वह बालक की रुचि, योग्यता, रुझान, झुकाव आदि के आधार पर उसे उन सब व्यवसायों में से जो समाज में अपनाये जाते या जा सकते हैं—उनको स्वयं चुनने में सहायता प्रदान करे।

"व्यावसायिक निर्देशन वह सहायता है जो एक व्यावसाय का चयन करने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने और प्रगति करने के लिए दी जाती है।"[1] चाहे निर्देशन का क्षेत्र कितना ही विस्तृत हो गया है, अब भी युवकों के सम्मुख व्यावसायिक निर्णय लेने की समस्या ही मुख्य समस्या है। एक सन्तोषजनक एवं सफल जीवन बहुधा व्यवसाय के बुद्धिमतापूर्ण चुनाव पर तथा उसमें सफलता पर निर्भर होता है।

व्यावसायिक निर्देशन की समस्या यह है कि ऐसे व्यक्ति की सहायता की जाये जिसके पास कुछ अपनी विशेषताएँ तथा योग्यताएँ हैं और जिसके सम्मुख यह सम्भावनाएँ हैं कि वह अनेक व्यवसायों में से उसको चुन सके जो उसके लिए सबसे उपयुक्त है। यदि सब व्यक्ति एक-समान होते तो यह समस्या नहीं उठती क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक व्यावसाय के लिए उपयुक्त होता। यदि सब व्यावसाय भी एक से होते, तात्पर्य यह कि सब व्यवसायों के लिए एक ही व्यावसायिक उद्देश्य होता तब विकल्प चुनने का कोई प्रश्न ही नहीं होता और इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो वर्तमान समय में इस बात को समझ लेने के कारण कि विभिन्न व्यक्तियों की योग्यताएँ विभिन्न होती हैं और विभिन्न व्यावसायों के लिए विशिष्ट योग्यताओं की आवश्यकता होती है, व्यावसायिक निर्देशन की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होने लगी है।

एक बात ध्यान देने की और है। एक बार व्यवसाय चुनने के पश्चात् व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती। व्यवसाय चाहे कितनी बुद्धिमता से चुने जायें, एक बार उनके चुने जाने के बाद उसमें उन्नति करने की विधियाँ भी विभिन्न होती हैं। इन विधियों की ओर भी व्यक्ति का ध्यान खींचना आवश्यक है और उसे इस बात के लिए सहायता चाहिए कि वह अपनी योग्यता के अनुसार उन विधियों को चुन सके जो उसको प्रगति के पथ पर ले जायें। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक निर्देशन एक लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया विद्यालय से प्रारम्भ होकर व्यक्ति के कार्यकाल के अन्त तक चलती रहती है। यह सहायता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए लाभदायक है और दोनों के भले के लिए है।

1. Vocational Guidance is the assistance given in choosing, preparing for, entering upon, and making progress in an occupation."

यद्यपि शिक्षा भी निर्देशन है किन्तु व्यावसायिक निर्देशन एवं शिक्षा मे अन्तर है। व्यावसायिक निर्देशन एक विशिष्ट प्रकार की सहायता है जो व्यवसाय सम्बन्धी विकल्प चुनने इत्यादि के लिए है। यह शैक्षिक कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग तो है किन्तु शैक्षिक कार्यक्रम से विभिन्न है। इसका कार्य शिक्षण तथा विद्यालय की दूसरी क्रियाओं से विभिन्न है। एक कार्य होने के नाते इसके लिए विशिष्ट ज्ञान एवं प्रविधियो की आवश्यकता है। यह सत्य है कि शिक्षको के व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन के सम्बन्ध मे कुछ उत्तरदायित्व हैं, जैसे विद्यालय की अन्य क्रियाओ के सम्बन्ध मे भी होते हैं। किन्तु फिर भी एक विशिष्ट व्यावसायिक निर्देशन सेवा की विद्यालय के लिए आवश्यकता है जिसके लिए विशिष्ट तैयारी चाहिए।

[चित्र मे दिखाया हुआ बालक उचित निर्देशन से उच्च विचारक, दार्शनिक या साहित्यिक बन सकता है।]

विद्यालयों मे निर्देशन उस समय आरम्भ होता है जबकि बालक की वर्तमान क्रियाओं का चुनाव उसके भविष्य के जीवन पर विद्यालय छोड़ने के पश्चात् प्रभावशाली हो जाता है। बालक जो विषय चुनेगा वह आगे चलकर जीविकोपार्जन मे उपयोगी सिद्ध होंगे या नही, यह विषय चुनते समय जानना आवश्यक है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन का आरम्भ उसी समय हो जाता है जबकि बालक पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों मे चुनाव करने लगता है। यह निर्देशन 'शिक्षा-निर्देशन' कहलाता है। अतः हम यह समझ सकते है कि व्यावसायिक निर्देशन, शिक्षा-निर्देशन से अलग नही है। यहाँ हमे यह भी समझ लेना चाहिए कि शिक्षा-निर्देशन है क्या ?

शिक्षा-निर्देशन—यह निर्देशन उन विद्यार्थियो को दिया जाता है जिन्हें कॉलेज या स्कूल आदि संस्थाओ मे पाठ्य-विषय का चुनाव करना है। शिक्षा-निर्देशन इस प्रकार की सहायता है जो विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम तथा अनेक शिक्षा-सम्बन्धी क्रियाओं का चुनाव करने में तथा उनके साथ अनुकूल करने मे दी जाती है।

यहाँ पर भी दो विभिन्नताएँ हमारे समक्ष रहती हैं। एक तो व्यक्तिगत विभिन्नता, दूसरी शिक्षा-सम्बन्धी पाठ्यक्रम तथा अन्य शैक्षिक क्रियाओ की विभिन्नता। एक बालक जब विद्यालय मे आता है तो उसे विषयों के सम्बन्ध मे कुछ पता नहीं होता। धीरे-धीरे वह अपने आपको व्यवस्थित कर लेता है। परन्तु जब उसे माध्यमिक विद्यालय से कॉलेज मे जाना है या माध्यमिक विद्यालय मे ही अपने पढ़ने के लिए विषय चुनने हैं तो वह कोई निर्णय उचित रूप मे नही कर पाता। यहाँ निर्देशन द्वारा उसे सहायता प्रदान की जा सकती है—उन विषयो को चुनने की जो उसकी रुचि के अनुसार हो, और जो विषय उसकी जीविका-उपार्जन मे सहायक हो।

शिक्षा-निर्देशन मे निर्देशक को बालक की रुचि, योग्यता, झुकाव आदि का ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो शिक्षा पाठ्यक्रम और क्रियाओ में उपलब्ध है, उसके सम्बन्ध मे भी जानकारी होनी चाहिए। उसे पता होना चाहिए कि कॉलेज मे किन-किन विषयों की शिक्षा दी जाती है, और कहाँ पर भविष्य मे बालक उस विशिष्ट प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सकेगा जो उसकी रुचि के अनुसार हो।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि अनेक शैक्षिक विकल्प जो विद्यार्थी चुनता है, उसके व्यावसायिक चुनावों से सम्बन्धित होते हैं। विशेष रूप से जब पाठ्यक्रम का चुनाव उच्चतर माध्यमिक शिक्षा अथवा कालेज अथवा किसी कृतिक विद्यालय के लिए किया जाता है तो व्यवसाय सम्बन्धी विचार, चुनाव मे बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। अतएव यह असम्भव है कि हम शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन की स्थितियों को ऐसे चुनावों के समय अलग कर सकें। आमतौर पर किसी एक समय इन दोनों प्रकार के निर्देशन मे से एक अधिक महत्ता रखता है और हम उस समय दी जाने वाली सहायता को उसी के अनुसार शैक्षिक अथवा व्यावसायिक निर्देशन कह देते हैं।

शैक्षिक निर्देशन को संगठित शिक्षा से भ्रमित नहीं करना चाहिए। निर्देशन

तो एक व्यक्ति को इस प्रकार की सहायता देने से सरोकार रखता है जो उसे अपने व्यक्तिगत विकास के लिए सबसे अच्छा वातावरण तलाश करा दे। शिक्षा उसे इस प्रकार की सहायता देती है कि वह उस वातावरण से जिसमें वह एक बार आगया, सबसे अधिक वांछित विकास प्राप्त करा दे। शैक्षिक निर्देशन तो एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को इस बात में सहायता देने की है कि वह अपनी शिक्षा के लिए लगातार अपने को सबसे उचित वातावरण में रख सके। यह शैक्षिक अवसरों एवं आवश्यकताओं के अन्तरों पर तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर भी आधारित होती है। यह व्यक्ति की अपनी शिक्षा सम्बन्धी बुद्धिपूर्ण योजनाएँ बनाने से सरोकार रखती है।

व्यक्तिगत निर्देशन[1]

व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति के सामाजिक, संवेगात्मक तथा अवकाशकालीन विकल्पों के चुनाव में सहायता देने से सरोकार रखता है। यह निर्देशन व्यक्ति को समाज का अच्छा सदस्य बनने में सहायता देने के लिए होता है। इसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों रूपों से व्यक्ति की उन्नति निहित होती है। व्यक्तिगत निर्देशन इस संप्रत्यय पर आधारित है कि व्यक्ति का सतत विकास होता रहे और उसका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा बना रहे। शिक्षक का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से इस प्रकार के निर्देशन के प्रति होता है, किन्तु अब यह उत्तरदायित्व विशेषज्ञों द्वारा भी निबाहा जाना आवश्यक समझा जाता है।

निर्देशन जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है उन व्यक्तियों के लिए जिनको इसकी आवश्यकता होती है। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली सहायता का समय वह होता है जब आदतें, अभिवृत्तियाँ एवं आदर्श बनते हैं और जब आत्म-सहायता की प्रविधियों का विकास होता है। इस समय जो सहायता दी जाती है वह आगे चलकर सहायता की आवश्यकता को बहुत कम कर देती है और इस बात की योग्यता में वृद्धि कर देती है कि व्यावसायिक, नागरिक एवं सामाजिक क्रियाओं को बुद्धिपूर्ण ढंग से प्रौढ़ जीवन में चुनाव करा सकें। माध्यमिक विद्यालयों में जो निरोधक निर्देशन दिया जाता है वह आगे चलकर सुधारात्मक निर्देशन की आवश्यकता को कम कर देता है।

हमारा समाज जो विशिष्ट कार्यों की एक किशोर से आशा करता है वह है एक व्यवसाय का चुनाव करना और विवाह एवं पारिवारिक जीवन के लिए तैयारी करना। यह कार्य महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने की आवश्यकता को प्रस्तुत करते हैं जो विद्यार्थी के जीवन को एक अच्छा रूप दे देते हैं। निर्देशन का कार्य व्यक्ति की प्रसन्नता तथा प्रभावशीलता में वृद्धि करना है। इसे किशोर काल के समय बहुत सक्रिय होना चाहिए।

अनेक विद्यार्थी संवेगात्मक तनावों से पीड़ित हो जाते हैं। शारीरिक विकास, यौन आवेग, प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ने के कारण बढ़ते हुए उत्तरदायित्व संवेगात्मक तनाव उत्पन्न कर देते हैं। यह संवेगात्मक दशाएँ बहुधा कुसमायोजन और अप्रसन्नता

1. Personal Guidance.

पाठ्यक्रम सम्बन्धी निर्देशन—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में पाठ्यक्रम में अनेक विषय सम्मिलित कर दिये गये हैं। माध्यमिक स्तर पर बालकों को वे विषय चुनना जो उसके लिए उपयुक्त हों, अति कठिन है। इसी कारण विद्यालय में शिक्षा-निर्देशन का महत्त्व बहुत है।

शिक्षा तथा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन देते समय आरम्भ में उन बालकों को जो उच्च माध्यमिक स्तर में प्रवेश होने जा रहे हैं, विभिन्न प्रकार के शिक्षा तथा व्यवसाय-सम्बन्धी अवसर जो देश में प्राप्त हैं, से अवगत कराना चाहिए। यह सूचनाएँ उनको अपने पाठ्यक्रम के विषय चुनने तथा भविष्य में व्यवसाय चुनने में सहायक होंगी।

विद्यालय में परामर्श-सेवा का संगठन[1]

विद्यालयों में निर्देशन को संगठित रूप में प्रदान करने के लिए हमें चेष्टा करनी चाहिए। विद्यालय के प्रधान अध्यापक को परामर्श-सेवा का उचित आयोजन करना चाहिए। विद्यालय के समस्त परामर्श सम्बन्धी कार्य-क्षेत्रों का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि हरएक बालक की समस्या का समाधान हो जाये और प्रत्येक बालक को निर्देशन मिल सके। क्योंकि अध्यापकों को निर्देशन-विधियों का ज्ञान कम होता है, इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय में निर्देशक का आयोजन हो, जो प्रत्येक बालक से सम्बन्धित सूचना को एकत्रित करके निर्देशन दे सके।

एक निर्देशक के निम्न कार्य होंगे :

१. मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का देना।
२. बालकों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत प्रदत्त सामग्री को इकट्ठा करना।
३. विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सूचना को बालकों तक पहुँचाना।
४ व्यक्तिगत निर्देशन उन बालकों का करना, जिन्हें पाठ्यक्रम के विषयों का चुनाव करना है या विद्यालय छोड़ने के पश्चात् व्यवसाय चुनना है।
५. बालकों को विभिन्न व्यवसाय दिलाने में दूसरी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।

निर्देशन के सम्बन्ध में हमें यह याद रखना चाहिए कि प्रत्येक विद्यालय में एक वैज्ञानिक, एक चिकित्सक, एक समाज-सेविका, एक मनोविश्लेषक तथा प्रशिक्षित अध्यापकों का होना आवश्यक है।

बालक सम्बन्धी सूचना प्राप्त करना

विद्यालयों में निर्देशन का उद्देश्य यही है कि बालकों को शैक्षिक तथा जैविक उपार्जन की योजना बनाने में सहायता प्रदान की जाये। परन्तु इस योजना

1. Organization of Consultation Service in Schools.

के कारण बन जाती हैं। इसलिए विद्यार्थी को संवेगात्मक परिपक्वता की ओर ले जाने के लिए सहायता की आवश्यकता है। उसे यह सहायता मिलनी चाहिए कि वह अपने संवेगों को ऐसे मार्गों की ओर निर्देशित कर दे जो उसे उन उद्देश्यों को प्राप्त करा दें जो सामाजिक रूप से वांछित हैं और व्यक्तिगत रूप से सन्तोषजनक हैं। इस प्रकार की सहायता व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत आती है।

व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत शारीरिक विकास सम्बन्धी निर्देशन भी आता है। विद्यार्थियों में तेजी से वृद्धि होने के कारण बहुधा शक्ति में कमी, थकावट, सुस्ती इत्यादि पायी जाती है। कभी-कभी विभिन्न अंगों के विकास में समन्वय नहीं होता इस कारण अथवा शरीर में सन्तुलन के अभाव के कारण या शारीरिक की परिपक्वता के कारण उनमें चिन्ता घर कर जाती है। इस कारण उनमें गम्भीर कुसमायोजन के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जिन बालकों को इस प्रकार विकास सम्बन्धी कठिनाइयाँ होती हैं उन्हें सूचना, समझ एवं ऐसे निर्देशन की आवश्यकता है जो उन्हें अपने बदलते हुए शरीर से समायोजन करने में सहायता दे।

विद्यार्थियों को सामाजिक समायोजन के लिए भी निर्देशन देना चाहिए। बहुत से विद्यार्थी भीरु होते हैं। वह दूसरों से मिलने में घबराते हैं। कुछ विद्यार्थी बहुत शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं। वह सदैव लड़ने-झगड़ने में आगे रहते हैं। यह सब विद्यार्थी सामाजिक रूप से असमायोजित होते हैं। इन सब को समझने की और ठीक करने की आवश्यकता होती है ताकि उनका आचरण स्वीकृत न हो। जो वह करते हैं और जो वह विचार करते हैं वह सब इस समाज के अनुसार समझना चाहिए कि क्या शारीरिक और मानसिक परिवर्तन उनमें हो रहे हैं। यह आवश्यकता है कि विद्यार्थी के अन्दर किसी समूह में सम्मिलित होने की भावना होनी चाहिए। उसे यह अनुभव होनी चाहिए कि उसकी आवश्यकता है और उसे चाहा जाता है। उसे इस प्रकार की सहायता देनी चाहिए कि वह विद्यालय, समाज इत्यादि के साथ समायोजन उत्पन्न कर सके। निर्देशन द्वारा उस अपने उत्तरदायित्व समझने की तथा उन्हें [illegible] करने के लिए सहायता देनी आवश्यक है। उसे स्वतन्त्र निर्णय लेने के लिए, आत्म-निर्देशन के लिए भी सहायता देनी चाहिए।

विद्यालय में निर्देशन

वर्तमान समय में विद्यालयों में निर्देशन पर बहुत बल दिया जाता है। विद्यालय का ही यह कार्य समझा जाता है कि बालक को शिक्षा सम्बन्धी एवं व्यवसाय सम्बन्धी उचित निर्देशन दिया जाये।

कक्षा शिक्षक को भी इस निर्देशन में भाग लेना पड़ता है। निर्देशन उस समय दिया जाता है जब प्रत्येक बालक को किसी प्रकार की सहायता दी जाती है जो उसको अपने अनुभवों के आधार पर अपने जीवन के लिए योजनाएँ आदि बनाने में सहायक हो; इस प्रकार का निर्देशन भी अध्यापक द्वारा दिया जा सकता है। अन्ततः इस [illegible] निर्देशन [illegible] विद्यालय में दिया जाता है।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी निर्देशन—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में पाठ्यक्रम में अनेक विषय सम्मिलित कर दिये गये हैं। माध्यमिक स्तर पर बालकों को वे विषय चुनना जो उसके लिए उपयुक्त हो, अति कठिन है। इसी कारण विद्यालय में शिक्षा-निर्देशन का महत्त्व बहुत है।

शिक्षा तथा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन देते समय आरम्भ में उन बालकों को जो उच्च माध्यमिक स्तर में प्रवेश होने जा रहे हैं, विभिन्न प्रकार के शिक्षा तथा व्यवसाय-सम्बन्धी अवसर जो देश में प्राप्त हैं, से अवगत कराना चाहिए। यह सूचनाएँ उनको अपने पाठ्यक्रम के विषय चुनने तथा भविष्य में व्यवसाय चुनने में सहायक होगी।

विद्यालय में परामर्श-सेवा का संगठन[1]

विद्यालयों में निर्देशन को संगठित रूप में प्रदान करने के लिए हमें चेष्टा करनी चाहिए। विद्यालय के प्रधान अध्यापक को परामर्श-सेवा का उचित आयोजन करना चाहिए। विद्यालय के समस्त परामर्श सम्बन्धी कार्य-क्षेत्रों का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि हरएक बालक की समस्या का समाधान हो जाये और प्रत्येक बालक को निर्देशन मिल सके। क्योंकि अध्यापकों को निर्देशन-विधियों का ज्ञान कम होता है, इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय में निर्देशक का आयोजन हो, जो प्रत्येक बालक से सम्बन्धित सूचना को एकत्रित करके निर्देशन दे सके।

एक निर्देशक के निम्न कार्य होंगे :

१. मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का देना।
२. बालकों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत प्रदत्त सामग्री को इकट्ठा करना।
३. विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सूचना को बालकों तक पहुँचाना।
४. व्यक्तिगत निर्देशन उन बालकों का करना, जिन्हें पाठ्यक्रम के विषयों का चुनाव करना है या विद्यालय छोड़ने के पश्चात् व्यवसाय चुनना है।
५. बालकों को विभिन्न व्यवसाय दिलाने में दूसरी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।

निर्देशन के सम्बन्ध में हमें यह याद रखना चाहिए कि प्रत्येक विद्यालय में एक वैज्ञानिक, एक चिकित्सक, एक समाज-सेविका, एक मनोविश्लेषक तथा प्रशिक्षित अध्यापकों का होना आवश्यक है।

बालक सम्बन्धी सूचना प्राप्त करना

विद्यालयों में निर्देशन का उद्देश्य यही है कि बालकों को शैक्षिक तथा जैविक उपार्जन की योजना बनाने में सहायता प्रदान की जाये। परन्तु इस योजना

1. Organization of Consultation Service in Schools.

के समूह मे दिया जाता है। कक्षा का निर्देशन इसका उदाहरण है। वे विधियाँ जो सामूहिक निर्देशन के अन्तर्गत आती हैं, इस प्रकार हैं

(i) कक्षा-व्यवस्थापन या कक्षा में निर्देशन—बालकों को आरम्भ मे देने से वह शिक्षा या जीविका सम्बन्धी विचार करने योग्य हो जाते हैं। कुछ बातें सामान्य रूप से उपयोगी होती है। इनको सामान्य रूप से ही समूह मे बालकों को दिया जा सकता है।

(ii) जीविका-निर्देशन सम्बन्धी बैठकें[1]—यह अधिक उपयोगी होती हैं। इनमे अध्यापक विभिन्न व्यवसाय मे नौकर व्यक्तियो के साथ मिलकर वाद-विवाद या व्याख्यान का आयोजन करते हैं। इस प्रकार बालकों को व्यवसाय सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के उचित अवसर मिल जाते हैं। वह उन व्यक्तियों से बहुत-सी बातें उस व्यवसाय के सम्बन्ध में सीख लेते हैं, जिसमें उन्हे रुचि है।

(iii) चलचित्र, टेलीविजन, पोस्टर आदि—सामूहिक रूप से सूचना प्रदान करते हैं। इनके द्वारा विद्यालय, कॉलेज आदि मे दी जाने वाली शिक्षा तथा विभिन्न व्यवसाय-सम्बन्धी सूचना बालको को प्रदान कर दी जाती है।

(iv) सामूहिक मिलन का प्रयोजन—शिक्षण-संस्थाओं, फैक्टरी आदि मे किया जा सकता है। इनके द्वारा बालक को कारखाने की कार्य-प्रणाली या शिक्षण-संस्था के विभिन्न पाठ्यक्रम का ज्ञान हो जाता है।

(v) प्रश्नावली आदि भी सामूहिक रूप से दी जा सकती हैं—इनके द्वारा विद्यार्थी के सम्बन्ध मे सूचना मिल जाती है।

किन्तु सामूहिक विधियाँ व्यक्तिगत विधियो का स्थान नहीं ले सकतीं।

(ब) व्यक्तिगत निर्देशन—प्रमुख व्यक्तिगत विधियाँ इस प्रकार हैं

(i) साक्षात्कार[2]—परामर्श-सेवा बहुत कुछ साक्षात्कार पर निर्भर रहती है। साक्षात्कार में निर्देशक को सावधानीपूर्वक चलना चाहिए। उसके द्वारा किये हुए साक्षात्कार निर्देशन की जान है। इसके लिए उसके पास अलग से एक परामर्श-कक्ष होना चाहिए, जहाँ का वातावरण शान्त व शीतल हो।

साक्षात्कार एक जटिल प्रक्रिया है। उसमे निर्देशक तथा निर्देशन प्राप्त करने वाले मे आमना-सामना होता है। जो अंग उसको जटिल प्रक्रिया बना देते हैं, वह हैं—निर्देशक का व्यक्तित्व, निर्देशन प्राप्त करने वाले का व्यक्तित्व, इन दोनों का आपसी सम्बन्ध तथा साक्षात्कार के समय का वातावरण।

साक्षात्कार आरम्भ होने से पहले ही बालक को विद्यालय की परामर्श-सेवाओं सम्बन्धी ज्ञान होना आवश्यक है। उसे यह मालूम होना भी आवश्यक है कि निर्देशक का कार्य उसे सहायता प्रदान करना है और इस प्रकार उसे निर्देशक के प्रति उचित मनोवृत्ति बना लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बालक को तत्पर हो जाना चाहिए—अपनी कठिनाइयों और समस्याओं का निर्देशक के सम्मुख बिना झिझके हुए रखने को।

1. Carrier Conference. 2. Interview.

निर्देशक के पास दूसरे स्रोतों द्वारा भी जो प्रदत्त इकट्ठे हो सकें उन्हें साक्षात्कार के पहले इकट्ठा कर लेना चाहिए और इस तरह स्वयं को भी तैयार करना चाहिए।

साक्षात्कार के समय निर्देशक को बालक के साथ आत्मीयता स्थापित करनी चाहिए। उसे बालक में विश्वास बढ़ाना चाहिए तथा स्पष्ट और स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत करनी चाहिए। बालक की आवश्यकताओं की ओर उसे सदैव ध्यान देना चाहिए।

पूछे जाने वाले प्रश्नों का निश्चय निर्देशक को पहले से ही कर लेना चाहिए। यह प्रश्न उस बालक से एकदम नहीं पूछने चाहिए। परन्तु जब आत्मीयता स्थापित हो जाए तो बातचीत के सिलसिले में स्वाभाविक ढंग से पूछे जाने चाहिए।

साक्षात्कार के समय जहाँ तक हो, लेखन क्रिया कम करनी चाहिए। निर्देशक को अपनी स्मरण-शक्ति पर निर्भर रहना पड़ेगा। लिखने से बातचीत का क्रम टूट जाता है और इस प्रकार आत्मीयता की भावना नष्ट हो जाती है।

साक्षात्कार समाप्त होते ही निर्देशक को चाहिए कि प्राप्त तथ्यों का पूर्ण विवरण बना ले। उसे इसके लिए फार्म आदि का प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रकार से साक्षात्कार करने से निर्देशक बालकों को उचित निर्देशन देने में सफल होगा। यदि एक से अधिक साक्षात्कार की आवश्यकता हो जैसा साधारणतया होगी तो निर्देशक को हर साक्षात्कार का पूर्ण विवरण रखना चाहिए।

(ii) बालकों के अभिलेख[1]—व्यक्तिगत निर्देशन में बालकों के अभिलेख की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। जैसा कि हमने ऊपर वर्णन किया है, यह अभिलेख अध्यापकों तथा निर्देशक के समक्ष बालकों के स्वास्थ्य सम्बन्धी, परिवार सम्बन्धी, प्रगति सम्बन्धी, व्यवहार सम्बन्धी, मानसिक प्रौढ़ता सम्बन्धी, व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रदत्तों को स्पष्ट रूप से रख देते हैं। इनको उचित ढंग से रखने का प्रत्येक विद्यालय में प्रबन्ध होना चाहिए।

अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि निर्देशन एक सतत प्रक्रिया है जो बालक की शिक्षा के हर स्तर पर आवश्यक है, प्राइमरी विद्यालयों से कॉलेजों तक या उससे भी आगे शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् भी। इस समय हमारे देश के अधिकांश विद्यालय इस प्रकार की सहायता से वंचित हैं। देश के व्यावसायिक क्षेत्र भी इस ओर उदासीन हैं तथा सरकारी और समाज-सेवा से सम्बन्धित निधियाँ भी कुछ ही अंशों में देश-वासियों के निर्देशन में सफल हैं। इसलिए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि विभिन्न निधियाँ इस क्षेत्र में अपने उत्तरदायित्व को समझें और मिल-जुलकर देश के नागरिकों के लिए उचित निर्देशन-सेवाओं को उपलब्ध करें।

---

1. Record of Students.

सारांश

'निर्देशन' एक व्यक्तिगत सहायता है जो व्यक्ति को स्वय की समस्याओ को सुलझाने के लिए दी जाती है। यह एक सतत प्रक्रिया है जो हरएक बालक के लिए उपलब्ध होती है, न केवल समस्यात्मक बालको के लिए।

व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन—वह निर्देशन होता है जो बालको को अपनी योग्यतानुसार व्यवसाय चुनने मे सहायता प्रदान करता है। यह निर्देशन आवश्यक रूप से शिक्षा-निर्देशन के साथ ही दिया जा सकता है।

शिक्षा-निर्देशन—इससे हमारा तात्पर्य है वह निर्देशन जो बालको को अपने पाठ्य-विषय तथा अन्य शैक्षिक क्रियाओं के चुनाव मे सहायता प्रदान करता है।

निर्देशन सर्वप्रथम अध्यापक द्वारा ही दिया जा सकता है, किन्तु यदि वह निर्देशन की पूर्ण विधियो से अवगत नही होता है तो विशेषज्ञों के द्वारा निर्देशन दिया जाना आवश्यक है।

विद्यालय में परामर्श-सेवा का उचित सगठन होना आवश्यक है। इसके लिए प्रधानाध्यापक को अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिए। प्रत्येक विद्यालय मे एक निर्देशक का आयोजन होना चाहिए जो निर्देशन-विधियो मे प्रशिक्षण प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त एक मनोवैज्ञानिक, एक चिकित्सक, एक समाज-सेविका का होना भी आवश्यक है।

बालक सम्बन्धी सूचना को एकत्र करने के लिए जो प्रदत्त चाहिए, वह हैं—(१) सामान्य प्रदत्त, (२) सामाजिक वातावरण-सम्बन्धी प्रदत्त, (३) स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रदत्त, (४) ज्ञानोपार्जन-सम्बन्धी प्रदत्त, (५) मनोवैज्ञानिक प्रदत्त, तथा (६) बालक की शैक्षिक तथा व्यवसाय-सम्बन्धी योजना।

निर्देशन की विधियाँ दो रूप से अपनायी जा सकती हैं—(अ) सामूहिक, और (ब) व्यक्तिगत। सामूहिक रूप में (१) कक्षा मे व्याख्यान आदि, (२) व्यवसाय-निर्देशन से सम्बन्धित बैठकें, (३) सहायक सामग्री का उपयोग, (४) सामूहिक रूप से शिक्षण-सस्थाओ और कारखानो आदि का मेल, (५) प्रश्नावली आदि, मुख्य हैं। व्यक्तिगत रूप से मुख्य है—(१) साक्षात्कार—साक्षात्कार करने मे निर्देशक को सावधानीपूर्वक कार्य करना चाहिए और आत्मीयता उत्पन्न करके बालको की समस्याएँ समझ कर उन्हे निर्देशन देना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत विधि मे (२) बालको के अभिलेख का भी बहुत महत्त्व है।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. बालक पर प्रभाव डालने वाले तत्वों का संकलन करके एक सूची बनाइए।

२. आप शिक्षा तथा व्यवसाय-निर्देशन से क्या समझते हैं ? व्यक्तिगत भेद के आधार पर इस प्रकार के निर्देशन की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

३. यदि आप एक निर्देशक हैं तो किस प्रकार अपने क्षेत्र के निर्देशन की एक रूपरेखा तैयार करेंगे ? वर्णन कीजिए एवं उन सब तत्वों का वर्णन कीजिए, जिन्हें आप निर्देशन में आवश्यक समझते हैं।

४. एक प्रधानाध्यापक के कर्तव्यों पर प्रकाश डालिए जो उसे निर्देशन के संगठन के लिए करने चाहिए।

५. साक्षात्कार विधि से आप क्या समझते हैं ? साक्षात्कार करते समय किन बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है ?

भाग ५

समूह मनोविज्ञान

[GROUP PSYCHOLOGY]

२७ | सामान्य प्रवृत्तियाँ
GENERAL INNATE TENDENCIES

सहानुभूति,[1] निर्देश,[2] अनुकरण,[3] खेल तथा खेल-प्रणाली[4]

सहानुभूति, निर्देश, अनुकरण तथा खेल—सामान्य प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं। वे इस प्रकार के संस्कार नहीं हैं, जो विशेष परिस्थितियों में विशेष प्रकार के व्यवहारों तक ही सीमित रहें। उनमें वे सब विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं, जो जन्मजात मानसिक संस्कारों में पाई जाती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों का बहुत महत्त्व है, क्योंकि बालक अपने जीवन के बहुत आरम्भ से ही इन प्रवृत्तियों द्वारा प्रेरणा ग्रहण करता है। इस अध्याय के अन्तर्गत हम संक्षेप में सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे और शिक्षा में उनके महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे। यह प्रवृत्तियाँ समूह व्यवहार में महत्वपूर्ण हैं और इसी कारण इनका वर्णन किया जा रहा है।

सहानुभूति

ड्रेवर के अनुसार, "सहानुभूति वह प्रवृत्ति है जो दूसरों के भावों और संवेगों का अनुभव कराती है।"[5] उनके भावों या संवेगों के स्पष्टीकरण के चिन्हों को देखने के तुरन्त पश्चात् यदि किसी व्यक्ति को हँसता हुआ देखते या सुनते हैं, तो स्वयं भी हँसने लगते हैं या हमारे अन्दर कुछ प्रसन्नता का भाव जाग्रत हो जाता है। ठीक इसी प्रकार दुःख, भय या क्रोध के साथ होता है। हमारे अन्दर उसी प्रकार का भाव रूप धारण कर लेता है, जैसा कि हम अन्य व्यक्तियों में देखते या सुनते हैं।

हम सहानुभूति का भाव कभी-कभी उस समय भी प्रदर्शित करते हैं जब हम दूसरों के अन्दर कोई विशेष संवेग क्यों उभर रहा है, इसको भी ठीक प्रकार से नहीं

---

1. Sympathy. 2. Suggestion. 3. Imitation. 4. Play and Play way.

5. Drever defines sympathy as "the tendency to experience the fee[illegible]ons of others immediately on perceiving the [illegible] these feelings of emotions."

समझ पाते। दूसरों को हँसता देखकर हम स्वयं भी हँसने लगते हैं, जबकि हम
समझ पाते कि हम क्यों हँस रहे हैं। रात्रि में जब दो मित्र घूमने निकलते हैं
एक मित्र यदि भय प्रदर्शित करता है, तो दूसरा मित्र भी अपने मित्र के भयभीत ह
के कारण को बिना जाने हुए भयभीत हो जाता है। इस प्रकार सहानुभूति की प्रवृ
के लिए उचित प्रकार से समझना रंचमात्र भी आवश्यक नहीं है।

सहानुभूति दो प्रकार की होती है : (१) निष्क्रिय सहानुभूति[1], और (
सक्रिय सहानुभूति[2]।

१. निष्क्रिय सहानुभूति

इसका तात्पर्य दूसरों के भाव का अपने अन्तर्गत अनुभव करना है। यह दूस
व्यक्तियों में संवेग की अभिव्यक्ति देखकर जाग्रत हो जाती है। ऊपर भय या हँसी
दिये गये निष्क्रिय सहानुभूति के ही उदाहरण हैं।

निष्क्रिय सहानुभूति भी दो प्रकार की होती है—(१) परेशानी, डर या दु
की सहानुभूति,[3] और (२) आनन्द तथा प्रसन्नता की सहानुभूति[4]। ये दोनों प्रका
की सहानुभूतियाँ विभिन्न प्रकार के मनुष्यों में विभिन्न मात्राओं में पाई जाती हैं। कुछ
व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो हमारी प्रसन्नता के साथ तो प्रसन्न होंगे, पर हमारे दुःख का
अनुभव नहीं करेंगे।

एक दूसरे प्रकार की विभिन्नता क्लेश की सहानुभूति में देखी जा सकती है।
कुछ व्यक्ति दूसरे प्रकार के क्लेश में सहानुभूति रखते हैं। उदाहरणार्थ, एक कंजूस
उस व्यक्ति के साथ सहानुभूति रखने की अपेक्षा, जिसकी पत्नी बिछुड़ गई है, उस
व्यक्ति के साथ अधिक सहानुभूति रखेगा, जिसका कि धन लुट गया है। कुछ ऐसे
व्यक्ति भी होते हैं जो क्लेश का उस समय तक अनुभव नहीं करते, जब तक कि
उन्होंने स्वयं उन्हीं परिस्थितियों में उसी प्रकार के क्लेश का अनुभव न किया हो जैसा
कि उस समय अन्य व्यक्ति अनुभव कर रहे हों। जैसे, एक पेट भरा मनुष्य, उस भूखे
व्यक्ति की परेशानी का अनुभव नहीं कर सकता, जिसके जीवन-यापन का कोई साधन
नहीं है।

शिक्षा में उपयोगिता[5]—निष्क्रिय सहानुभूति का शिक्षा में बहुत उपयोग है।
यह अध्यापक द्वारा नैतिक तथा ललित कलाओं की शिक्षा में उपयोग में लायी
जाती है।

हम सभी ने यह देखा होगा कि घृणा या क्रोध का भाव एक व्यक्ति से दूसरे
व्यक्ति में बड़ी सुगमता से स्थानान्तरित हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि आप अपने
किसी सम्बन्धी के विशेष व्यवहार के कारण उससे रुष्ट हैं, तो यह सम्भव है कि

1 Passive Sympathy. 2 Active Sympathy. 3. Sympathy distress, fear and pain. 4. Sympathy with pleasure and joy. 5. Utility in Education.

आपका कोई निकट सम्बन्धी जैसे—पत्नी, माता इत्यादि भी उनसे उसी प्रकार रुष्ट हो जायें। यदि आप उन व्यक्तियों से, जो आपसे नैतिक स्तर में निम्न हैं, घृणा करते हैं अथवा क्रोध प्रदर्शित करते हैं, तो आपके भाई-बहनों में भी उसी प्रकार घृणा या क्रोध का भाव उनके प्रति प्रकट हो जायगा। अतएव आप नैतिक आदर्शों को अपने स्वयं के व्यवहार द्वारा अपने भाई-बहनों इत्यादि में स्थानान्तरित कर देते हैं।

अध्यापक निष्क्रिय सहानुभूति की प्रवृत्ति का उपयोग, काव्य और साहित्य के पाठन में कर सकता है। इन विषयों को पढ़ाते समय अध्यापक द्वारा जो संवेग प्रस्तुत किये जायेंगे, वे बालकों द्वारा सहानुभूतिपूर्ण रूप से ग्रहण किये जा सकते हैं। अतएव यदि एक अध्यापक किसी कविता का पाठन उसमें प्रस्तुत किये गये भावों की उसी गहराई से करता है, जिस गहराई से कवि ने उन्हें प्रस्तुत किया है तो विद्यार्थी उस कविता के भावों से प्रेरणा लेंगे और उसे उसी रूप में ग्रहण करेंगे। वे बालक में कविता के सौन्दर्य की अनुभूति को बढ़ा देंगे। इस प्रकार बालकों में सौन्दर्यानुभूति के विकास के लिए सहानुभूतिपूर्ण आदान-प्रदान का बहुत मूल्य है।

निष्क्रिय सहानुभूति भीड़ या समूह में बड़ी सरलता से विकसित हो जाती है। एक व्यक्ति जब समूह में है तो वह उसी संवेग के प्रति अधिक सहानुभूति रखेगा जिसके प्रति समूह प्रेरित है। यही कारण है कि कविता की शिक्षा व्यक्तिगत रूप में देने की अपेक्षा उस कक्षा में देने से बहुत अच्छी समझी जाती है, जिसमें बहुत-से बालक हैं।

२ सक्रिय सहानुभूति[1]

यह वह प्रवृत्ति है, जिसके कारण हम दूसरों की सहानुभूति को अपने भावों और संवेगों की ओर सक्रियता से खींचते हैं। भिखारी इसी सहानुभूति का उपयोग करके हमसे भिक्षा लेने में सफल हो जाते हैं। इस प्रकार सक्रिय सहानुभूति में सहायता देने या सुरक्षा की भावना बहुत अधिक विद्यमान होती है जो निष्क्रिय सहानुभूति में नहीं पाई जाती।

बालक के प्रति माँ के सुरक्षापूर्ण व्यवहार में सक्रिय सहानुभूति स्पष्ट रूप से व्यंजित रहती है। पिता के अन्दर भी यह पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। यह बाल्यकाल के प्रारम्भ से दिखाई पड़ने लगती है। जिस समय एक व्यक्ति अपने इस उत्तरदायित्व को समझने लगता है कि उसे अपने छोटे भाई-बहनों का संरक्षण करना है, तभी इसका उदय हो जाता है। प्रौढ़ों एवं तरुणों में यह प्रेम की उस भावना को प्रदर्शित करती है, जो विषमलिंगी से सम्बन्धित होता है।

शिक्षा में उपयोगिता—वास्तव में सक्रिय सहानुभूति उच्च नैतिक कार्यों का मुख्य तत्त्व है। अतएव यह अध्यापक के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा वह बालकों में उचित नैतिक विकास करने में सफल हो सकता है। अध्यापक को चाहिए

1. Active Sympathy.

कि वह बालकों के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को प्रोत्साहित करे और स्वार्थ-युक्त तथा दयाहीन कार्यों के प्रति हतोत्साहित करे। वह अपने व्यवहार के उदाहरण द्वारा विद्यार्थियों में अच्छाई और दयालुता के प्रति अनुराग उत्पन्न करे।

अध्यापक बालकों के निरर्थक भय को हटाने के प्रयास में भी इस-प्रवृत्ति का उपयोग कर सकता है। इसका उल्लेख संवेग के अध्याय में 'भय' के अन्तर्गत हमने किया है।

निर्देश[1]

जिस समय आप किसी व्यक्ति को एक विचार, जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिसे वह अपने से उच्च समझता है और उसका आदर करता है, बिना किसी तर्क के स्वीकार करते हुए देखते हैं तो आप निर्देश की स्वाभाविक प्रवृत्ति को क्रियाशील पाते हैं। निर्देश एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को अचेतन रूप से विचार प्रदान करने की अवस्था है। मैक्डूगल निर्देश की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि निर्देश "वह संज्ञापन है जिसके कारण तर्क और औचित्य का बिना विचार किये हुए ही कोई प्रदान किया गया विचार विश्वास के साथ ग्रहण कर लिया जाता है।"[2] शिक्षा के क्षेत्र में इसकी अधिक उपयोगिता इस कारण से है कि व्यक्ति, उन व्यक्तियों के विचारों को जिनका वह आदर करता है, बिना किसी तार्किक आधार के ग्रहण कर लेता है।

निर्देश के सम्बन्ध में जो कुछ भी हमारा ज्ञान है, उसका अधिकांश निर्देश की असाधारण अवस्था[3] में, विशेषतः सम्मोहन स्थिति[4] से प्राप्त है। सम्मोहन की अवस्था में एक व्यक्ति निद्रावस्था या अर्द्ध-निद्रावस्था की स्थिति में होता है। यह दशा शारीरिक शिथिलता लाने के तथा अवधान को एक-स्वरता की ध्वनि या दृष्टि पर केन्द्रित करने से उत्पन्न की जाती है, जैसे—एक घड़ी की टिक-टिक लगातार सुनना या प्रकाश की रेखा देखना—इत्यादि। एक मनुष्य को जिसके अन्दर सम्मोहन की अवस्था उत्पन्न करनी है, सम्मोहनकर्त्ता के प्रति आत्म-समर्पण कर देना चाहिए। सम्मोहनकर्त्ता यह निर्देश करता है कि व्यक्ति शिथिलता का अनुभव करेगा और निद्रावस्था की स्थिति में पहुँच जायेगा। उससे कहा जाता है कि उसे केवल सम्मोहन-कर्त्ता की आवाज को ही सुनना चाहिए। इस प्रकार के निर्देश सम्मोहित होने वाले व्यक्ति को प्रगाढ़ निद्रा में सुला देते हैं। इस अवस्था में सम्मोहनकर्त्ता बहुत-से निर्देश देता है जिन्हें सम्मोहित व्यक्ति ग्रहण करता है और उन्हीं के अनुसार कार्य करता

1. Suggestion.
2. McDougall defines suggestion as "a process of communication resulting in the acceptance with conviction of the communi- proposition in the absence of logically adequate grounds for acceptance."
3. Abnormal suggestibilty. 4. Hypnotism.

दने शक्तिशाली होते हैं कि व्यक्ति निद्रावस्था के पश्चात् भी उन्हीं का
ा है, यद्यपि उसे यह कुछ भी स्मरण नहीं रहता कि सम्मोहन की
क्या-क्या निर्देश दिये गये थे। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति को
वस्था में यह निर्देश दिया गया हो कि एक निश्चित समय पर मान-
हाथ वह सम्मोहनकर्ता के कमरे में से एक वस्तु उठा ले तो वह
ाँ भी बैठा हो, उसी निश्चित समय पर वहाँ से उठकर उस वस्तु को
न्तु यदि उससे ऐसा करने का कारण पूछा जाय तो वह एक मनगढ़न्त
गा। वह कह सकता है कि उसे वह वस्तु अच्छी लगी या वह उसकी
ाना चाहता है। यह सब बातें वह अपने व्यवहार को तर्कपूर्ण सिद्ध
करेगा।

सन्देह नहीं कि सम्मोहन की अवस्था से व्यक्ति की निर्देशिता बढ़ जाती
कुछ व्यक्तियों के साथ जाग्रत-अवस्था में दिया गया निर्देश अधिक
ता है। यहाँ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि कभी-कभी किसी दिशा
उसे निर्देशित किया जाता है, दिये गये निर्देश के विपरीत कार्य करने
दि उस समय सरलता से ग्रहण कर लिया जाता है, जब उसको ग्रहण
व्यक्ति में पूर्व से ही ग्रहण करने योग्य स्थिति होती है। यह निस्सन्देह
की पूर्ण रूप से कोई आवश्यकता नहीं होती, परन्तु यह निर्देशित होने
बढ़ा देती है।

न-योग्यता की माप—एक व्यक्ति में निर्देशन-योग्यता उस समय भी
ब उससे मुख्यापूर्ण प्रश्न किये जाते हैं। आउसेज परीक्षण[1] में बालकों
ग्यता की माप के लिए मुख्यापूर्ण प्रश्नों का ही उपयोग किया जाता है।
विशेष प्रकार का चित्र, जैसे—तैरता हुआ जहाज, राजा का दरबार
ा जाता है और चित्र दिखाने से पूर्व यह कह दिया जाता है कि वे
पूर्वक देखें, क्योंकि उसके ऊपर कुछ प्रश्न किये जायेंगे। जब वे चित्र
ह देख लेते हैं, तो फिर उसे पलट दिया जाता है और उस पर कुछ
ते हैं। कुछ प्रश्न तो उन वस्तुओं से सम्बन्धित होते हैं जो चित्र में
और कुछ प्रश्न इस प्रकार के होते हैं जो चित्र में न होकर, कुछ बातों
हैं। उदाहरणार्थ, ये प्रश्न इस प्रकार के होते हैं—(i) क्या जहाज
(ii) वह किस दिशा में जा रहा है ? (iii) जहाज का कप्तान कहाँ खड़ा
दूरबीन से क्या देख रहा है ? (जबकि दूरबीन कप्तान के हाथ में नहीं
-से बालक इस प्रश्न का उत्तर न देकर कि कप्तान के हाथों में दूरबीन
न कोई वस्तु बता देंगे, जिसकी ओर कप्तान का लक्ष्य है। इसी प्रकार
से प्रश्न, जिनमें से कुछ निर्देश देने वाले तथा कुछ वास्तविकता पर

[1] Aussage Experiment.

आधारित होते हैं, बालकों से पूछे जाते हैं। फिर इन प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर निर्देश की लब्धि निकाल ली जाती है। इसको निकालने का सूत्र यह है—

$$\text{निर्देश-लब्धि}^1 = \frac{\text{स्वीकार किये हुए निर्देशों की संख्या}}{\text{दिये हुए निर्देशों की संख्या}}$$

आमतौर पर निर्देश-लब्धि प्रतिशत में दी जाती है।

निर्देश-योग्यता की माप के लिए एक और प्रयोग किया जाता है, जिसे सीशो परीक्षण[2] कहते हैं। इस परीक्षण में एक तार का टुकड़ा जिसमें विद्युत के परिवाह की व्यवस्था होती है, व्यक्ति के हाथ में दिया जाता है। जब उसमें से होकर बिजली गुजरती है, तो व्यक्ति गरमाहट का अनुभव करता है। साथ ही एक तरफ एक विद्युत बल्ब लगा लिया जाता है जो विद्युत के बहने पर जलने लगता है। स्विच को स्विच न दिखाकर, *बार-बार यह प्रश्न पूछा जाता है कि विद्युत बह रही है या* नहीं ? और व्यक्ति उस समय भी विद्युत का बहना बताता है जबकि स्विच दबा नहीं है और तार में होकर विद्युत नहीं बह रही है, परन्तु दूसरे स्विच द्वारा बल्ब जला दिया गया है।

निर्देश की स्वाभाविक प्रवृत्ति की उपयोगिता—निर्देश की प्रवृत्ति की उपयोगिता उद्योग इत्यादि में बहुत है। किसी वस्तु के विज्ञापन को बार-बार देखने या सुनने से हम उस वस्तु को खरीदने की ओर प्रभावित हो जाते हैं।

शिक्षा में निर्देश की प्रवृत्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि विद्यालय की इमारत सुन्दर है और उसकी अच्छी तरह देखभाल की जाती है, पुस्तकालय साफ-सुथरा है, खेल के मैदान अच्छे हैं, तो बालक स्वयं ही वस्तुओं को स्वच्छ, सुन्दर तथा उचित प्रकार से रखने की अच्छी आदत सीख लेता है। नैतिकता की शिक्षा देने में भी यह प्रवृत्ति बड़ी उपयोगी है। बालक नैतिकता के सिद्धान्तों को बिना इनकी पूर्ण खोज किये हुए मान लेता है। यह निर्विवाद सत्य है कि इस प्रवृत्ति के उपयोग में अन्ध-विश्वासों का भय रहता है, परन्तु एक बुद्धिमान अध्यापक अन्धविश्वासों के बनने पर एक बड़ी मात्रा में रोक लगा सकता है।

वे खण्ड जिन पर निर्देश-योग्यता अवलम्बित है[3]—एक व्यक्ति में निर्देश की योग्यता कई खण्डों पर अवलम्बित रहती है। वे निम्न हैं :

(i) **उम्र**—बालकों में प्रौढ़ों की अपेक्षा अधिक निर्देश-योग्यता होती है। इसका कारण यह है कि उनमें ज्ञान का अभाव होता है, जिसके कारण वे किसी भी निर्देशात्मक विचार को, विचार के आलोचनात्मक पहलू से नहीं देख पाते। दूसरे, बच्चों में निर्देश उनके माता-पिता से मिलते हैं, उनके विचारों को उच्च-दृष्टि से देखना वह प्रारम्भ से ही सीख लेते हैं। उनके विचार को सदैव मान्य समझते हैं।

---

1. Coefficient of Suggestibility. 2. Sea-Shore Experiment. 3. Factors on which Suggestibility depends.

की कहानी इत्यादि से बडी सरलतापूर्वक निर्देश ग्रहण कर लेते हैं,
अन्दर प्रसन्नता का भाव उत्पन्न कर देती हैं और मनुष्य उस समय
क होते हैं, जब वे प्रसन्न-मुद्रा मे होते हैं।
—उन मनुष्यो की जिनमे पर्याप्त ज्ञान होता है और जिनके विश्वास
-योग्यता कम होती है।
केत का उद्‌गम—वे निर्देश, जो हमें किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा मिलते
आदर करते हैं, बहुत शीघ्र मान्य होते हैं। अपने से निम्न व्यक्ति के
आसानी से नही मान लेते। अतएव आप्त-निर्देशन[1] बहुत प्रभाव-

गात्मक दशाएँ—एक व्यक्ति जो प्रसन्न मुद्रा में है, उस व्यक्ति की
न मुद्रा मे है, बहुत अधिक सरलता से निर्देश ग्रहण कर लेता है।
शिक्षा मे उसकी उपयोगिता[2]
यापक जिसका बालक आदर करते हैं, बालको मे उच्चादर्शों और
बनाने मे बहुत सफल होता है। बालक उसके द्वारा दिये गये निर्देश
ग्रहण कर लेते हैं। यह सत्य है कि अध्यापक नैतिक आचरण तर्कपूर्ण
ा सकता है। परन्तु यह विधि एक सीमित मात्रा मे ही प्रभावशाली
हुत-से नैतिक आदर्श तथा धार्मिक विचार ऐसे हैं जिनको तर्क के
नही किया जा सकता है।
व्यक्तियो के विचारो मे भी शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं, जिन्हे
हैं। वह अध्यापक बालको में अच्छी आदतो के निर्माण करने मे
ा है जो उनके अन्दर अपने प्रति प्रेम जाग्रत कर सके।

भी हम किसी दिए हुए निर्देश को इस कारण भी ठुकरा देते हैं कि
हैं कि अपनी सकल्प-शक्ति को हम दूसरो के अधीन कर दें। जब
हैं, तो ऐसे निर्देश को 'विरुद्ध निर्देश'[3] कहते हैं। 'विरुद्ध-निर्देश' ऐसे
हो जाता है जो बालको को अनाकर्षण तथा रूखे-सूखे तौर पर दिए
हो को जब किसी एक विचार को ग्रहण करने के लिए बाध्य किया
उसे ठुकरा देते हैं। इसी कारण अध्यापको को चाहिए कि वे "नही,
। उस समय बहुत अधिक प्रयोग मे न लायें, जिस समय वे बालको
हे हो। प्रत्येक बालक मे यह प्रवृत्ति घर कर लेती है, जब उससे कहा
र मत मचाओ, बातें मत करो," इत्यादि। तब वह इनके विपरीत

---

restige-Suggestion. 2. Prestige-Suggestion and its Utility
n. 3. Contra-Suggestion.

यह निर्देश जो अप्रत्यक्ष रूप से दिये जाते हैं, बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं। अतएव अध्यापक को चाहिए कि वह अपने निर्देशों को अप्रत्यक्ष रूप में ही दे जिससे वे प्रभावशाली बन जायें।

निर्देश की सीमायें[1]—ऊपर हमने निर्देश की उपयोगिता पर विचार कि है। परन्तु हमारा यह विवेचन उस समय तक अपूर्ण है जब तक कि हम निर्देश सीमाओं के विषय में नहीं पढ़ लेते। अत्यधिक निर्देश का दिया जाना भी बालक लिए हानिकारक होता है, वह अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है। इसलिए यह आवश्य है कि अध्यापक अपने स्वयं के विचारों को बालक पर न लादे।

प्राय इतिहास और नागरिकशास्त्र में एक-दूसरे के विरोधी प्रश्न भी उत्प हो जाते हैं। अध्यापक को ऐसे अवसरों पर चाहिए कि वह विद्यार्थियों को इस प्रका पढ़ाये कि वे विरोधी दृष्टिकोण को भी अच्छी तरह समझ जायें। वही शिक्षा उत्त होगी, जिसमें विद्यार्थियों को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी उनकी विचार करने की शक्ति का दमन न किया। उन्हें इस शक्ति को विकसि करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि अध्याप द्वारा दिये गये निर्देशों का उपयोग इस ढङ्ग से किया जाय कि विद्यार्थियों में आलो चना करने की शक्ति को प्रोत्साहन मिले जिससे निर्णय तर्क द्वारा किया जाय।

अनुकरण[2]

पिछले अध्यायों में हमने बालक के मानसिक, शारीरिक तथा संवेगात्मक विकास का वर्णन किया है। उस जगह हमने अनुकरण की प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला है, जो प्रत्येक बालक में विद्यमान रहती हैं। बालक अपने से बड़े व्यक्तियों से जिन शब्दों को सुनता है, उनकी पुनरावृत्ति करता है। माता कहती है—"बेटा, बाबा कहो।" बालक अपनी माता के इन्हीं शब्दों को सुनकर दुहराता है। इसी प्रकार बालक दूसरे व्यक्तियों के कार्यों का अनुकरण करता है। जब आप अपनी जिह्वा को किसी बालक के सामने निकालेंगे तो वह भी आपका अनुकरण करेगा। यह कार्य वह बड़ी तत्परता से करेगा। इस प्रकार बालक अनुकरण द्वारा ही बहुत सीख जाता है। उसके कई बुरे आचरण और आदतें इसी अनुकरण द्वारा सुधर जाते हैं।

अनुकरण की परिभाषा, अब हम इस प्रकार से दे सकते हैं कि 'अनुकरण' "एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो सामूहिक प्राणियों में पाई जाती है, जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरे के द्वारा किये गये कार्यों तथा क्रियाओं को नकल करने का प्रयत्न करता है।"[3]

---

1. Limitations of Suggestion 2. Imitation

3. Imitation may be defined as "an innate tendency possessed by members of gregarious species owing to which an individual attempts to copy in himself the actions and movements that he finds in others."

ार्य इत्यादि की नकल किसी भी व्यक्ति द्वारा सामान्य व स्वाभाविक
त के ही कारण होती है।

वैज्ञानिक, जिसमे थॉर्नडाइक प्रमुख हैं, अनुकरण की प्रवृत्ति मे
ा हैं। थॉर्नडाइक का कहना है कि अनुकरण की क्रियाएँ अनुकरण
। पर आधारित न होकर अनुभव द्वारा सीखने पर निर्भर होती हैं।
र इस दृष्टिकोण के विपक्ष मे हैं। उनका कहना है कि अनुकरण
वृत्ति होती है। उनका कहना है कि बालक दूसरे व्यक्तियों के कार्यों
ा है। बालक का जिह्वा निकाल कर अनुकरण करना, इस बात की
। बालक जिह्वा इस कारण नहीं निकालता है कि उसने इसक
गया है, वरन् वह जिह्वा इस कारण निकालता है कि वह अनुकरण

' या क्रियाओं मे, जिनका बालक अनुकरण करता है, किसी-न-किसी
रुचि होती है। उसकी यह रुचि जिज्ञासा, दैन्य या निर्माण की
प्रवृत्तियों पर आधारित हुआ करती है। बालक की इस रुचि की
ो के कार्यों के अनुकरण करने मे ही होती है।

के प्रकार—ड्रेवर के अनुसार 'अनुकरण' दो प्रकार के होते हैं—
ा[1], (ii) अज्ञात अनुकरण[2]। मैक्डूगल के अनुसार अनुकरण के तीन
(i) सहज अनुकरण[3], (ii) विचारजन्य अनुकरण[4] (iii) विचारा-
। मैक्डूगल के अनुसार दो प्रकार के और गौण अनुकरण हैं, वे हैं—
अनुकरण, तथा (ii) निरर्थक अनुकरण। इस प्रकार मैक्डूगल के
ान तथा दो गौण अनुकरण के प्रकार हैं। पहले हम मैक्डूगल द्वारा
प्रकार के अनुकरण, और तत्पश्चात् ड्रेवर के विभाजन पर विचार-

ातिपादित

ज अनुकरण—जब कोई व्यक्ति अपनी मुट्ठी बन्द करता है, मुस्कराता
। ये प्रतिक्रियाएँ सहानुभूति के कारण दूसरे व्यक्तियों द्वारा भी अपना
रन्तु इस प्रकार के व्यवहार मे अनुकरण की प्रवृत्ति भी क्रियाशील
की प्रतिक्रियाओं को दोहराने मे सहानुभूति तथा अनुकरण, दोनों का
मैक्डूगल इस प्रकार के अनुकरण को 'सहज अनुकरण' की संज्ञा देता
ा अनुकरण अचेतन रूप से होता है, और ड्रेवर द्वारा प्रतिपादित दूसरे
ान ही होता है। इस प्रकार का अनुकरण प्रायः शैशव-काल मे होता है।

---

liberate or Purposive 2. Unconscious Imitation.
tic Imitation. 4. Ideo-motor Imitation. 5. Deliberate

(ii) विचारजन्य अनुकरण—इस प्रकार का अनुकरण स्वतन्त्र, उस समय दृष्टिगोचर होता है जब दर्शक किसी स्पर्धा का खेल देख रहे हों, अखाड़े के चारों ओर कुश्ती देख रहे हों या अन्य कोई खेल देख रहे हों। इस प्रकार के अनुकरण को कुछ भी विचार सम्मिलित हो जाता है, उसका प्रकाशन भी किसी गतिपूर्ण क्रिया द्वारा हो जाता है। जैसे—मान लीजिए, आप कोई कुश्ती प्रतियोगिता देख रहे हैं आपने देखा कि प्रतिद्वन्द्वी ने अपनी मुट्ठी को विशेष प्रकार से बांधा और दूसरे प्रतिद्वन्द्वी पर उसका प्रहार कर दिया। आपका मस्तिष्क इस विचार को ग्रहण करता है और आपकी मुट्ठी भी स्वयं ही बंध जाती है तथा आप उस क्रिया को दुहराने लगते हैं। यही विचार-जन्य अनुकरण कहलाता है।

मैकडूगल के अनुसार बालकों की बहुत-सी क्रियाएँ इसी प्रकार के अनुकरण द्वारा होती हैं। बालक अध्यापक के मुख पर विभिन्न भाव देखता है और उसी का अनुकरण करने लगता है। यदि कोई अध्यापक किसी विशिष्ट मुद्रा में पढ़ाता व आदेश देता है, तो बालक बहुधा उसी मुद्रा का अनुकरण करने लगते हैं।

(iii) विचारपूर्ण अनुकरण—इस प्रकार के अनुकरण में किसी ऐसे व्यक्ति का अनुकरण किया जाता है, जिसे अनुकरण करने वाला आदर्श समझता है। बहुत से युवक अपने प्रिय कलाकार को देखकर उसके व्यवहार, मुद्राओं इत्यादि का अनुकरण करते हैं।

(iv) विचार-रहित अनुकरण[1]—बालक बहुधा उस व्यक्ति का अनुकरण जिसे वे आदर्श समझते हैं, बिना यह सोचे हुए कि एक आदर्श व्यक्ति का अनुकरण कर रहे हैं, करने लगते हैं। अनुकरण का यह प्रकार विचारजन्य अनुकरण तथा विचारपूर्ण अनुकरण के मध्य होता है। बालक अध्यापक के मुख का भाव देखते हैं। वह बिना सोचे-समझे उस भाव का अनुकरण करते हैं। परन्तु इस बात का एकमात्र उत्तर कि वे अध्यापक के ही चेहरे का अनुकरण क्यों करते हैं, अन्य किसी का क्यों नहीं, यह है कि उनके अन्तर्गत अचेतन रूप से अध्यापक को आदर्श मानने की भावना होती है।

(v) निरर्थक अनुकरण[2]—इस प्रकार का अनुकरण शैशव-काल में सुस्पष्ट रूप से दिखाई देता है। छोटे बालकों का अनुकरण न तो विचारपूर्ण होता है, क्योंकि बालक एक आदर्श को नकल समझ कर नहीं करते, और न वह विचारजन्य अनुकरण होता है, क्योंकि छोटे बालक एक विचार को गतिमान क्रिया में परिवर्तित नहीं कर सकते।

ड्रेवर द्वारा प्रतिपादित

(i) अज्ञात अनुकरण—यह इस प्रकार का अनुकरण है, जिसमें व्यक्ति दूसरे के कार्यों की नकल अचेतन रूप से करने लगता है। इस प्रकार का अनुकरण बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी अनुकरण के कारण हम वातावरण से कुछ सीख पाते हैं।

1. Intermediary Imitation. 2. Meaningless Imitation.

) ज्ञात अनुकरण—यह इस प्रकार का अनुकरण है, जिसमे व्यक्ति चेतन
ी आदर्श का अनुकरण करता है।

विभाजन के सम्बन्ध मे ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

क्षा में अनुकरण की उपयोगिता[1]—प्रत्येक प्रकार के अनुकरण का शिक्षा
त्व है। अनुकरण की उपयोगिता शिक्षा के अन्तर्गत निम्न प्रकार से है -

) अज्ञात अनुकरण से बालक बहुत कुछ सीखता है। जिस वातावरण मे
रहा है, यदि वह अच्छा है तब बालक निश्चय ही अच्छी बातों का अनु-
। प्राय. यह देखा गया है कि बालक का जिस घर मे पालन-पोषण होता
स घर मे सभ्यता व अच्छे आचरण का व्यवहार किया जाता है, शान्त
है, अच्छे वस्त्र पहने जाते हैं, तब उस बालक के अन्दर भी इन्ही सब बातों
पाया जाता है। वह बालक भी सभ्यतापूर्ण व्यवहार या आचरण करता
रण है कि बालक मे उचित बातो का विकास करने के लिए स्कूलों व
दर वातावरण की आवश्यकता होती है।

) किसी आदर्श का चेतन मे अनुकरण करना भी शिक्षा के लिए बहुत
ी होता है। बालक चेतन रूप से ही अध्यापक का अनुकरण करके सुन्दर
ा और शुद्ध उच्चारण करना सीख जाता है। अध्यापक लोकसभा की बैठक,
ाव आदि की व्यवस्था कर सकता है जो वास्तविक जीवन मे पाये जाने
नों का सूक्ष्म रूप होते हैं। बालक उन व्यक्तियो की नकल करके, जो
के सदस्य हैं, बहुत कुछ सीख सकता है।

) छोटा बालक अपने से बड़ों का अनुकरण करता है। विद्यालय मे बुरे
को अच्छे विद्यार्थियो का अनुकरण करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

४) अनुकरण ही हमे आविष्कार की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।
अनुकरण वह माध्यम है जो हमें नई वस्तुओ के आविष्कार की ओर ले जाता
पकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी वस्तु या कार्य का
ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, वरन् यह एक माध्यम है जो हमे उद्देश्य की
ाता है। बालक को अंधानुकरण अपने बड़ों का भी नहीं करना चाहिए,
ा करने से उनमें आत्म-विश्वास की कमी रह जाती है। बालकों को इस
ी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए कि वह आत्म-विकास कर सकें।

छ शिक्षक अनुकरण की निन्दा करते हैं। उनका कहना है कि अनुकरण
को नष्ट कर देता है। इसमे बालकों का आत्म-विकास नही हो पाता है।
दृष्टिकोण सर्वमान्य नहीं। मानव-जाति का विकास एकदम से ही नहीं हो
प्रथम पूर्व की वस्तुओं का अनुकरण ही किया जाता है, तभी नवीन चीजों
कार हो पाता है। प्रत्येक आविष्कार के प्राचीन इतिहास का सिंहावलोकन

---

1. Educational Significance of Imitation.

करने से हम कह सकते हैं कि यह आविष्कार पूर्वज्ञान का अनुकरण करने के साथ ही हुआ है। पहले वैज्ञानिक किसी वस्तु या समस्या को पुराने ढंग से सुलझाना सीखता है, तत्पश्चात् उसका ध्यान उसकी त्रुटियों पर जाता है। अन्त में वह नवीन विधि का प्रयोग ले आता है, जो सफलता प्रदान करती है तथा आविष्कार को जन्म देती है।

'अनुकरण आत्म-विश्वास का साधन है। इसे आत्म-प्रदर्शन का मूल-स्रोत समझना चाहिए।

अभी हम निर्देश, अनुकरण तथा सहानुभूति की सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन कर चुके हैं। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति जो उच्च वर्ग के जानवरों में पाई जाती है, खेल की प्रवृत्ति होती है। यह बालक में बहुत ही अल्पायु से दृष्टिगत होने लगती है। शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक यह प्रवृत्ति मनुष्यों में विद्यमान रहती है प्रत्येक व्यक्ति खेलता है। यह बात दूसरी है कि खेल के प्रकार में अन्तर हो जाये। खेल इतने सरल भी हो सकते हैं, जैसे कि एक बिल्ली के बच्चे का दूसरे बच्चे के साथ या एक कुत्ते के पिल्ले का दूसरे पिल्ले के साथ खेलना या यह खेल टीम के खेल स्पर्धा के रूप में बहुत उच्च संगठित प्रकार के हो सकते हैं।

खेल

खेल क्या है ?

खेल एक सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसमें अनुकरण की प्रवृत्ति, युयुत्सा प्रवृत्ति[1], रचनात्मक प्रवृत्ति[2] आदि कई प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण रहता है। परन्तु यह जन्मजात प्रवृत्ति है और इसके लिए किसी भी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

'खेल' की परिभाषा करना आसान कार्य नहीं है। फिर भी यहाँ हम वैलेन्टाइन की परिभाषा दे सकते हैं, जो बहुत कुछ सर्वमान्य है। उसके अनुसार, "खेल वह क्रिया है, जो खेल के ही लिए की जाती है।"[3] परन्तु इस परिभाषा के विषय में निम्नलिखित सन्देह का उदय होना स्वाभाविक है :

१. यदि खेल खेल के लिए ही खेले जायें, तब खेल और उस कार्य में क्या भेद है जो आनन्ददायक है ?
२. कभी-कभी खेल ऐसी क्रिया के रूप में होते हैं, जिनके उद्देश्य गम्भीर होते हैं। क्या बालक, क्या प्रौढ़—सब बहुधा खेलों को काफी गाम्भीर्य के साथ खेलने में ही रुचि लेते हैं।

उपर्युक्त प्रश्नों के हल व शंकाओं के समाधान के लिए हमें खेल और कार्य, दोनों का अर्थ समझना अति आवश्यक है।

---

1. Combative Tendency 2. Constructive Tendency.
3 "It is an activity which is undertaken for its own sake."

और कार्य—खेल और कार्य का अन्तर बिलकुल स्पष्ट है। खेल, खेल के
जाता है, जबकि कार्य किसी न किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया
कार्य मे कोई-न-कोई उद्देश्य-प्राप्ति निहित रहती है, जबकि खेल के लिए
द्देश्य को ध्यान नहीं रखा जाता है। जब क्रिकेट, टैनिस अथवा अन्य
नने के लिए ही खेला जाता है तब वह खेल की परिभाषा मे आता है,
ही खेल जीविकोपार्जन के निमित्त खेला जाता है तब वह खेल न होकर,
रभाषा में चला जाता है।

ई भी क्रिया उद्देश्यहीन नहीं होती है। प्रत्येक क्रिया मे कुछ न कुछ उद्देश्य
निहित रहता है। खेल और कार्य, दोनो मे ही उद्देश्य की मात्रा रहती
ल का उद्देश्य उसी की क्रिया मे निहित है, जबकि कार्य के उद्देश्य मे
रवर्ती वस्तुओ का समावेश होता है। ड्रेवर ने खेल और कार्य की भिन्नता
डालते हुए कहा है कि "खेल में क्रिया का मूल्य व महत्त्व उसी (क्रिया)
हते हैं, जबकि कार्य मे क्रिया का महत्त्व व मूल्य—दोनो ही क्रिया से परे
ों में मिलते हैं।"[1] अर्थात् जब कोई मनुष्य किसी क्रिया को इस कारण
ा है कि वह उस क्रिया के करने मे आनन्द महसूस करता है, तब उसके
िया खेल होगी, और जब वही मनुष्य उस क्रिया को किसी विशेष उद्देश्य
ो ध्यान मे रखकर पूर्ण करता है, तब वही क्रिया उसके लिए खेल न
ं का रूप ग्रहण कर लेती है। बहुत-से व्यक्ति ताश केवल अपने आनन्द
न के लिए ही खेलते हैं, तब वह ताश का खेल उनके लिए 'खेल' है किन्तु
ताश के खेल को जुआरी, जुआ खेलने के उद्देश्य से खेलते हैं, जिससे उन्हें
होता है, तो वही ताश का खेल कार्य का रूप धारण कर लेता है।

ल और कार्य में एक और भिन्नता पाई जाती है। खेल में आनन्द उस समय
है जबकि खेल खेला जा रहा हो। परन्तु कार्य मे आनन्द की प्राप्ति उस
ा है जबकि उस उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय, जिसके लिए यह क्रिया की गई
रण के लिए, पढ़ने मे कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है; परन्तु
ो आनन्द अथवा प्रसन्नता की प्राप्ति उस समय होती है, जब उसका पास
रीक्षा-फल निकलता है। इसलिए पढ़ना विद्यार्थी के लिए खेल न होकर,
। जब वही विद्यार्थी, इसके विपरीत, किसी पुस्तक को अपने मनोरंजन के
ा है, तब वह उसके लिए कार्य न होकर खेल होता है। उपन्यास, दैनिक
ाप्ताहिक पत्रिका, मैगजीन आदि पढ़ने मे उसको आनन्द प्राप्त होता है।

. "In play the value and the significance of the activity is
ı the activity itself, whereas in work, the value and signifi-
the activity are found in an end beyond the activity."
—*Drever*.

तभी विद्यार्थी कुछ समय के लिए नीरस हो जाते हैं, और इसी कारण उन्हें सदा रहता है। इस प्रकार सभी पुस्तकों का पढ़ना उस विद्यार्थी के लिए 'खेल' ही बन जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन से हमारे प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि खेल और कार्य में क्या भेद है? जब कोई कार्य इस ढंग से किया जाए कि कार्य करने की अवस्था में ही आनन्द की प्राप्ति हो, तब वह कार्य 'खेल' हो जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो दोनों में अधिक अन्तर नहीं होता है।

शिक्षा-क्षेत्र में खेल की प्रवृत्ति का बड़ा महत्त्व है। इस प्रवृत्ति के कारण ही काम का संगठन इस प्रकार करना पड़ा कि विद्यार्थी उसे करने में आनन्द प्राप्त कर सकें, वे क्रियाशील बनकर बहुत कुछ सीख जाते हैं। जब किसी कार्य को खेल के ढंग से किया जाय तो अति उत्तम होता है। इस विधि का आधुनिक नवीन पद्धतियों में अधिकतर प्रयोग किया जाता है।

एक दूसरे प्रकार का विरोध जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है, यह है कि कभी-कभी खेल बालकों व प्रौढ़, दोनों ही द्वारा एक गम्भीर कार्य-व्यापार माना जाता है। यह सत्य भी है। जब एक बालक या प्रौढ़ खेल में भाग लेता है तो वह बहुत ही गम्भीर रूप से खेलता है। लेकिन यह गम्भीरता मनुष्य में स्वयं-जनित होती है। इसमें कोई बाहरी नियन्त्रण या आर्थिक आवश्यकता नहीं होती। खेलों में जिन नियन्त्रणों को लगाया जाता है, वे खेलों में प्रसन्नता की मात्रा को बढ़ा देते हैं। आप फुटबाल खेलते समय खेल के नियमों का पालन करते हैं, क्योंकि यदि आप ऐसा नहीं करते तो आपको खेल में आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि कोई भी व्यक्ति गेंद को कहीं भी फेंक सकता है, जिसके फलस्वरूप आपको वह उत्तेजना और प्रसन्नता प्राप्त न होगी जो खेल के अन्दर निहित है। खेलने की क्रिया में आनन्द को प्राप्त करना ही आपका उद्देश्य होता है।

एक दूसरी भिन्नता जो खेल और काम में कूवर द्वारा बताई गई, यह है कि काम के अन्दर निहित उद्देश्य "वास्तविक संसार"[1] से सम्बन्धित होता है, जबकि खेल का उद्देश्य "काल्पनिक संसार"[2] से। एक बालक जो ताशों का घर बनाता है या बालिका जो गुड़ियों से खेलती है, एक 'काल्पनिक संसार' का निर्माण करते हैं। वह अपने ऊपर कुछ नियमों का नियन्त्रण लगा लेते हैं जो पूर्णतः स्वेच्छा से होते हैं और स्वयं ही निर्मित होते हैं। वह नियमों का पालन करता है। परन्तु उन्हें स्वेच्छानुसार बदलने के लिए सदैव स्वतन्त्र रहता है। परन्तु कार्य के नियमों का निर्माण बाह्य संसार द्वारा होता है। व्यक्ति को दास बनकर उसका पालन करना पड़ता है।

आगे हम नन महोदय के साथ कह सकते हैं कि वह क्रिया खेल कहलाती है जो

---

1. Real world. 2. Make believe.

च्छा-शक्ति पर अवलम्बित होती है और उसे जब चाहे हम सक्रिय या निष्क्रिय
ते हैं। इसके अतिरिक्त, हम स्वेच्छा से इसके नियमों इत्यादि में परिवर्तन कर
और वह क्रिया कार्य होती है जो त्याज्य करने वाली आवश्यकता द्वारा
ती है, या वह क्रिया हमें इस कारण पूरी करनी पड़ती है कि हमारे अन्दर
र्तव्य-पालन करने का विचार है। कर्त्तव्य की भावना अथवा व्यावसायिक
ना हमें इस क्रिया को करने के लिए बाध्य करती है। एक खेल, यदि एक
र उस समय कठोरता से लादा जाय या उसे जबरदस्ती खेलने को कहा जाय,
सकी खेलने की इच्छा न हो, तो वह बालक खेल नहीं सकता।

बालकों के खेलों के अन्दर बहुत काल्पनिक तत्त्व पाया जाता है। डाक्टर,
ोगा, चोर, पुलिसमैन इत्यादि की नकल करने वाले खेलों में काल्पनिकता
ात्रा में होती है।

खेल-प्रणाली[1]

हमने इस अध्याय के प्रारम्भ में ही 'खेल' और 'कार्य' की भिन्नता पर प्रकाश
। खेल ऐसी क्रिया है जो स्वयं के लिए की जाती है, जबकि कार्य में कुछ
देश्य निहित होता है। यह उद्देश्य क्रिया से परे होता है। खेल में खेलते समय
की प्राप्ति होती है, जबकि कार्य में उस उद्देश्य की प्राप्ति पर ही आनन्द की
निर्भर रहती है। जब किसी कार्य को करने में प्रसन्नता अथवा आनन्द का अनु-
ता है तब वह कार्य, कार्य न रहकर खेल का रूप ग्रहण कर लेता है। आधुनिक
पद्धतियाँ कार्य को खेल में ही परिणत करने का प्रयत्न करती हैं। ये ही
ाँ अति उत्तम मानी जाती हैं। इन पद्धतियों में शिक्षा प्रदान करने में खेलों से
मय वातावरण का समावेश रहता है। इस वातावरण के द्वारा गम्भीर क्रियाओं
प्रसन्नता का तत्त्व सम्मिलित कर दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि
उसी उत्साह से कार्य सीखते हैं, जिस उत्साह से वे खेल के मैदान में खेल
हैं।

इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि कार्यों में गम्भीरता का बिलकुल ही लोप हो
और कार्य, कार्य न रहकर खेल का रूप ले ले। इन पद्धतियों में खेल की प्रवृत्ति
म्मिश्रण होता है। परन्तु वे बालकों को गम्भीर क्रियाएँ करने के लिए भी प्रेरित
हैं। हमें यहाँ पर यह भी देख लेना है कि खेल तथा कार्य, दोनों में ऐसी
ी क्रियाएँ हैं जो अधिक महत्त्वशाली हैं। कार्य का सम्बन्ध, कठिन से कठिन
आसान से आसान, दोनों प्रकार की क्रियाओं से होता है। खेल का सम्बन्ध भी
ियाओं से होता है जो शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक उपयोगी हैं व उन क्रियाओं
खेल का सम्बन्ध होता है जो अत्यन्त गम्भीर होती हैं। इस तरह उच्च प्रकार
 की क्रियाओं और उच्च प्रकार के कार्यों की क्रियाओं में अधिकांश मात्रा में

1. Play-way.

मानता पाई जाती है। ये प्रायः एकसी ही होती हैं। जो भिन्नता कार्य और खेल में
ई जाती है, वह क्रियाओं के करने के ढङ्ग व भावना पर आधारित होती है।

हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि स्कूल के गम्भीर कार्यों में खेल
चित भी अनुचित नहीं है। यह गम्भीर कार्यों से भिन्न भी नहीं है। इसके विपरीत,
ह प्रसन्नता देने वाला तथा विद्यालय के कार्यों में अरोचकता हटाने वाला है।

हम यह ऊपर ही कह चुके हैं कि खेल में बालक को आत्म-प्रदर्शन के अनेक
वसर मिलते हैं। उसके बहुत-से खेल आत्म-प्रदर्शन के रूप होते हैं। अतः यदि खेल
ो विद्यालय के कार्यों के साथ सम्बन्धित कर दिया जाय तो बालकों को यथेष्ट मात्रा
आत्म-प्रदर्शन करने का अवसर मिले जो एक अपसमायोजित व्यक्तित्व के लिए अनि
वश्यक है। इसी कारण शिक्षा में खेलने की विधियों की नितान्त आवश्यकता है।

आजकल खेलने के ढङ्गों पर अवलम्बित बहुत-सी पद्धतियाँ हैं। उनमें से मुख्य
न्टेसरी, डाल्टन, ह्यूरिस्टिक, ड्रामेटाइजेशन, किंडरगार्टेन इत्यादि हैं। इनके अति-
क्त स्काउटिंग, हेक्रोले प्लान, फ्री डिसिप्लिन मूवमेंट इत्यादि भी खेल के ढङ्गों पर
अवलम्बित हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक वातावरण में सुसंगठित व्यक्तित्व का
कास है।

सारांश

सहानुभूति, अनुकरण, निर्देश तथा खेल—सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं।
वर के अनुसार "सहानुभूति दूसरे संवेगों तथा भावों को अनुभव करने की प्रवृत्ति
।" यह दो प्रकार की होती है—(i) निष्क्रिय सहानुभूति, और (ii) सक्रिय सहानु-
ति। निष्क्रिय सहानुभूति से तात्पर्य दूसरे के भावों को अपने अन्दर अनुभव करने
प्रवृत्ति में है। यह भी दो प्रकार की होती है—(i) वह सहानुभूति जो परेशानी,
ष्ट और दर्द के प्रति होती है, और (ii) वह सहानुभूति जो प्रसन्नता और
नन्द के प्रति होती है। निष्क्रिय सहानुभूति का उपयोग शिक्षा में महत्वपूर्ण है।
ध्यापक इस प्रवृत्ति के द्वारा नैतिक तथा ललित कला सम्बन्धी शिक्षा दे सकता है।
सका उपयोग इतिहास, कविता-पाठन तथा साहित्य की शिक्षा देने में भी किया जा
कता है। सक्रिय सहानुभूति दूसरों की सहानुभूति को अपने भावों तथा संवेगों
ी ओर खीचने की प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप उच्चादर्शों का होना
म्भव है।

मैक्डूगल निर्देश की परिभाषा देता हुआ कहता है—निर्देश "वह संज्ञापन है,
सके कारण तर्कपूर्ण उचित विचारों की बिना कोई मान्यता दिये हुए, कोई प्रदान
या गया विचार सविश्वास ग्रहण कर लिया जाता है।" एक मनुष्य के अन्दर
र्देशिता के विद्यमान होने की मात्रा उसके (i) आयु-स्तर, (ii) ज्ञान, (iii) निर्देशित
रने के साधन, और (iv) संवेगात्मक अवस्था पर निर्भर रहती है। अध्यापक को
· के निर्देशन का उपयोग शिक्षा देने में करना चाहिए और इस बात का ध्यान
चाहिए कि बालक निर्देश के विपरीत कार्य करने की ओर उन्मुख न हों।

क को निर्देश एक सीमा तक ही देना चाहिए, क्योंकि निर्देश को बहुत मात्रा
के लिए हानिप्रद सिद्ध हो सकती है।

अनुकरण वह स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसके कारण एक सामूहिक प्राणी वह
रने का प्रयास करता है, जिसे वह दूसरो द्वारा करते हुए देखता है। मैक्डूगल
ार, अनुकरण के पाँच प्रकार हैं (i) सहज अनुकरण, (ii) विचारजन्य
ण, (iii) विचारपूर्ण अनुकरण, (iv) विचार-रहित अनुकरण, और (v) निरर्थक
ण। शिक्षा के अन्दर प्रत्येक प्रकार के अनुकरण की उपयोगिता है। अचेतन
ण से बालक बहुत कुछ सीखता है। अतः घर और विद्यालय का वातावरण
और अच्छा होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विचारपूर्वक नकल करने से भी
बहुत-सी अच्छी आदतें सीखता है। अध्यापक को चाहिए कि वह अपनी
इत्यादि का आदर्श प्रस्तुत कर बालको को अच्छी आदतो के अनुकरण की
दे। शिक्षा के क्षेत्र में अनुकरण द्वारा ही आगे बढ़ना चाहिए, परन्तु अनुकरण
शिक्षा का उद्देश्य मानना गलत है।

खेल एक सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसकी परिभाषा करना कठिन है।
ौर काम मे यह अन्तर है—(१) काम मे कोई न कोई उद्देश्य-प्राप्ति निहित
है, जबकि खेल के लिए किसी भी उद्देश्य को ध्यान मे नही रखा जाता है,
ेल मे क्रिया का मूल्य व महत्त्व उसी मे निहित रहते हैं, जबकि कार्य मे क्रिया
हत्त्व व मूल्य, दोनो की क्रिया से परे अन्य उद्देश्यो मे मिलते हैं, (३) खेल
नन्द उस समय प्राप्त होता है जबकि खेल खेला जा रहा हो, परन्तु कार्य मे
द की प्राप्ति उस समय होती है जबकि उस उद्देश्य की प्राप्ति हो जाये, जिसके
यह क्रिया की गई है, (४) काम के अन्दर निहित उद्देश्य वास्तविक संसार से
न्धित होता है, जबकि खेल का उद्देश्य काल्पनिक संसार से सम्बन्धित है, (५)
मे जिन नियन्त्रणो को लगाया जाता है वे प्रसन्नता की मात्रा को बढ़ाने के
होते हैं, जबकि काम मे जो नियन्त्रण होते हैं वे ऐसा करने के लिए
होते।

आधुनिक नवीन पद्धतियाँ शिक्षा-कार्य मे खेलो के प्रसन्नतामय वातावरण का
वेश कर देती है। वे बालकों को खेल द्वारा आत्म-प्रदर्शन के अवसर प्रदान करती
इन पद्धतियो मे खेल को विद्यालय के कार्यों के साथ सम्बन्धित कर दिया जाता
खेल पर आधारित मुख्य शिक्षा-प्रणालियाँ हैं—मॉण्टेसरी पद्धति, डाल्टन पद्धति,
चर पद्धति, किण्डरगार्टेन पद्धति तथा प्रोजेक्ट प्रणाली। इन सब मे बालक को
न्त्रता प्रदान की जाती है, परन्तु बिना किसी रोक-टोक के पूर्ण स्वतन्त्रता प्रत्येक
ा-पद्धति मे अमान्य है।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१. बालक के मस्तिष्क के विकास मे सहानुभूति और अनुकरण क्या भाग लेते है ? एक भारतीय बालक की दिनचर्या से कुछ उदाहरण दीजिए।

२. अनुकरण के कितने विभिन्न प्रकार हैं ? शिक्षा में उनकी महत्ता पर प्रकाश डालिए।

३ निर्देश से आप क्या समझते हैं ? अनुकरण के शिक्षा-सम्बन्धी विभिन्न उपयोगों का वर्णन कीजिए।

४. निर्देश से आप क्या समझते हैं ? शिक्षा में निर्देश का क्या महत्व है ? उसके विभिन्न प्रयोगों की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

५ विभिन्न प्रकार के खेलों की एक सूची बनाइए।

६ शिक्षा में खेल के महत्त्व पर प्रकाश डालिए। छोटे बालकों के किसी स्कूल का वर्णन कीजिए जहाँ किसी नवीन पद्धति, जैसे—मॉण्टेसरी या किण्डरगार्टेन, द्वारा शिक्षा दी जाती है।

७. खेल तथा कार्य में क्या अन्तर है ? स्कूल-कार्य खेल में कैसे बदला जा सकता है ?

८. शिक्षा में सहगामी क्रियाओं के महत्त्व का वर्णन कीजिए। ऐसी सहगामी क्रियाओं की एक सूची बनाइए, जिन्हें आप विद्यालय में अपनाना चाहते हैं।

समूह-व्यवहार का मनोविज्ञान एवं समूह-गतिविज्ञान
PSYCHOLOGY OF GROUP BEHAVIOUR & GROUP DYNAMICS

आज एक बालक की शिक्षा केवल उसको ज्ञान देने तक सीमित नही है। इससे कहा जा चुका है, शिक्षा एक गतिगामी प्रक्रिया है जो बालक के व्यवहार न परिवर्तन लाती है। इस प्रक्रिया मे व्यक्तियो की आपसी अन्त क्रिया बहुत र्ण है। हम इस अध्याय की समस्या को इस प्रकार रख सकते हैं · राजीव एक ६-७ साल के लगभग है। वह विद्यालय मे प्रवेश लेता है। देखना यह है कि कार से विद्यालय का वातावरण उस पर प्रभाव डालेगा।

राजीव एक मध्य परिवार-वर्ग से आया है। घर के वातावरण में उसकी चियाँ और मनोवृत्तियाँ विकसित हो गई हैं। वह साधारण बुद्धि का है और माता-पिता, दोनो ने उसे प्यार से कुछ सिखाया है। यह बालक विद्यालय पर अपनी कक्षा के वातावरण, अपने विद्यालय के वातावरण को समझने की रता है और उससे प्रभावित होता है। वह अन्य बालकों से मिलना चाहता का सा व्यवहार करना चाहता है। शिक्षक से वह प्रशसा चाहता है ताकि दूसरे भी उसे अच्छा समझें। इस प्रकार विद्यालय में जो विभिन्न व्यक्ति उसके मे आते हैं, वह सब उस पर प्रभाव डालते हैं। शिक्षा ग्रहण करने मे ा के साथ चलता है, और इस प्रकार उसका व्यवहार रूपान्तरित होता है।

राजीव पर विद्यालय के वातावरण मे जो शक्तियाँ प्रभाव डालती हैं, उनका के व्यवहार के विकास मे बहुत महत्त्व है। पुराने अध्यापक इस महत्त्व के मे उदासीन थे। वह बालक को एक अलग इकाई मानकर शिक्षा देते थे। अब न-से अध्यापक कक्षा को व्यक्तियों का केवल एक झुण्ड मात्र समझते हैं, न क सक्रिय समूह। इस अध्याय में हम समूह-गतिविज्ञान की खोजो के आधार स बात को स्पष्ट करेंगे कि एक शिक्षक किस प्रकार इसका प्रयोग करके बालक शन को अच्छा ... है। वह राजीव के व्यवहार के रूपान्तर होने को

दिशा प्रदान कर सकता है, किन्तु इसके लिए उसे समूह-व्यवहार के मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है।

सीखने में सामाजिकता पर बल[1]

पिछले अध्यायों में हमने जिस प्रकार के सीखने पर बल दिया है, वह व्यक्तिग ही है। सीखने के सिद्धान्तों में इस बात पर बल दिया गया है कि सीखना विभि उत्तेजकों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं में रूपान्तर लाना है। सीखने के सिद्धान्त प या बालक पर प्रयोगशाला में किये हुए अनुसन्धानों के परिणामस्वरूप विकसित हुए हैं और इस प्रकार शिक्षा-मनोविज्ञान में मुख्य बल बालक के व्यक्तिगत रूप से सीखने प दिया गया है।

वर्तमान समाज-मनोविज्ञान के विकास ने अब हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि एक सरल-रेखीय, शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध को समझने के लिए मनोवैज्ञा निक प्रयोगशाला तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। अब ध्यान इस ओर केन्द्रित होना चाहिए कि विद्यार्थी के सीखने की सबसे प्रभावशाली और वांछित स्थितियाँ क्या हैं। अब विद्यार्थी और शिक्षक विद्यालय में एक-से-एक के सम्बन्ध में नहीं हैं, अनेक विद्यार्थी और शिक्षक हैं। सब विद्यार्थी तथा शिक्षक एक-दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करते हैं।

विद्यालयों में कक्षा के कमरे समाज स्थितियाँ[2] कहे जा सकते हैं। कक्षा का *वातावरण सामाजिक शिक्षा प्रदान करता है।* हमने गेस्टाल्ट और *'क्षेत्रीय सिद्धान्त'* में वर्णन किया है कि किस प्रकार बालक के सीखने में सम्पूर्ण वातावरण सक्रिय होता है। यह सिद्धान्त स्पष्ट कर देते हैं कि कक्षा के कमरे को केवल व्यक्तियों का संकलन नहीं समझना चाहिए।

विद्यालय का सामाजिक-संवेगात्मक वातावरण कम से कम निम्न तत्त्वों का परिणाम होता है - (१) शिक्षक तथा विद्यार्थी के सम्बन्ध की प्रकार जो कक्षा कमरे में होगी। (२) सामाजिक अन्तःक्रिया अथवा सम्बन्ध जो विद्यार्थियों में पाये जाते हैं। (३) विद्यालय के शिक्षकों के आपसी सम्बन्ध। (४) कक्षा के कमरे की भौतिक विशेषताएँ, विद्यार्थियों के पहले के अनुभव, विद्यार्थियों के सामाजिक तत्परता, सहयोग तथा प्रतियोगिता पर तुलनात्मक बल, तथा विद्यार्थियों की शिक्षकों की ओर अभिवृत्तियाँ।

जैसा विद्यालय का वातावरण होगा उसी प्रकार से बालकों का व्यवहार होगा। बालकों का सीखना विद्यालय के वातावरण पर बहुत निर्भर रहता है। यदि विद्यालय में शिक्षक एक-दूसरे से लड़ते हैं, विद्यार्थियों के साथ कठोर व्यवहार करते हैं तथा शिक्षक एवं प्रधान अध्यापक में मन-मुटाव होता है तो इसका प्रभाव विद्यार्थियों के शिक्षण पर

---

1. Importance of Socialization in Education. 2. Social

ता है। यही कारण है कि अब शिक्षण देने मे विद्यालय के वातावरण को
र्ण खण्ड समझा जाता है।

देखा गया है कि यदि विद्यालय का वातावरण जनतान्त्रिक है तो विद्या-
वहार अच्छा होता है। यदि वातावरण निरकुश है तो इसका प्रभाव
है। इस सम्बन्ध मे लेविन, लिपिट एव ह्वाइट[1] महोदय के अध्ययन
। एक अन्य अध्ययन भी जो भारतवर्ष के विद्यालय मे माथुर एवं बेदी[2]
या, इस ओर संकेत करता है कि विद्यार्थियो के व्यवहार के प्रतिमानों
क वातावरण[3] का ऊँचा सकारात्मक सम्बन्ध है। इस अध्ययन मे यह
ा कि विद्यार्थियो द्वारा अच्छा व्यवहार जनतान्त्रिक प्रशासनिक वातावरण
किया गया है। अतएव हम यह कह सकते हैं कि विद्यालय के प्रशासनिक
ो जितना जनतान्त्रिक बनाया जाएगा, उतना ही अच्छा विद्यार्थियो का
ा।

ज्ञान[4]

प्रकार समूह सक्रिय होते हैं और किस प्रकार के सम्बन्ध उनमे विकसित
इस सम्बन्ध मे अध्ययन हमें कक्षा मे सामाजिक स्थितियों को समझने
यता देते हैं। एक शिक्षक समूह के मनोविज्ञान को समझकर बहुत कुछ
ा की विधि मे सुधार ला सकता है और सामाजिक सीखने को प्रेरित कर

जी का शब्द "Dynamics" जिसका अर्थ गति है, एक 'ग्रीक' भाषा
निकाला गया है जिसका अर्थ है शक्ति। समूह-गतिविज्ञान उन शक्तियो
ा है जो एक समूह मे सक्रिय होती हैं। उन शक्तियों का अध्ययन समूह-
के अन्वेषण का विषय होता है। यह अन्वेषण उस दिशा मे होते हैं जिससे
जाए कि यह शक्तियाँ किस प्रकार उभरती हैं, किन दशाओ मे यह
य होती हैं, क्या इनके परिणाम होते हैं और किस प्रकार से उनका
या जा सकता है। समूह-गतिविज्ञान का प्रयोग इस ज्ञान का किसी उद्देश्य
योग करना है।

मूह-गतिविज्ञान" शब्दो का प्रयोग केवल पच्चीस वर्षों से ही होना आरम्भ
९४५ में लेविन ने समूह-गतिविज्ञान का एक अनुसधान केन्द्र खोला था
ी गति का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

White R. and Lippit R. : 'Leader behaviour and member
n three social climates." (1953)

Mathur, S; *Bedi, H S* · Impact of administrative
n the general behaviour pattern of the students."

Administrative climate. 4. Group Dynamics.

को अपना निजी योगदान दे। अब कक्षा का कमरा एक ऐसी स्थिति में हो जाता है जहाँ आपसी आदान-प्रदान होता है। वर्तमान अनुसंधान इस ओर संकेत कर रहे हैं कि इस प्रकार के समूह में जिसमे सहयोग के सम्बन्ध होते हैं, उत्पादन बढ़ जाता है।

समूह द्वारा उद्देश्य का निर्धारण, सहायक वातावरण और सहभाग लेने वाली सदस्यता समूह-संगठन की तीन दशाओं का संकेत करते हैं जो अधिक अनुप्रेरणा में बहुत प्रभावशाली हैं और जो प्रभावशाली सीखने में वृद्धि करती हैं।

शिक्षण की विधियाँ और समूह-व्यवहार[1]

शिक्षण-विधियों के सम्बन्ध मे बहुत समय से अनुसन्धान हो रहे हैं। शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त और विशिष्ट विषयों के शिक्षण की विधियों के सम्बन्ध में खोजें हुई हैं। बहुधा यह अध्ययन दूसरे क्षेत्रों के अध्ययन से सम्बन्धित रहे हैं या उन पर केन्द्रित रहे हैं, जैसे—सीखने के मनोविज्ञान पर या मानव-अभिवृद्धि एवं विकास के अध्ययन पर। वर्तमान समय मे समूह-गतिविज्ञान के अध्ययन शिक्षण-विधियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं, किन्तु उनका महत्त्व शिक्षक इत्यादि द्वारा ठीक नहीं समझा गया है। हम यहाँ इस बात पर ही बल देंगे कि समूह-व्यवहार के अध्ययन शिक्षण-विधियों मे किस प्रकार सहायक हैं।

समूह-व्यवहार समूह-गतिविज्ञान तथा समूह क्रियाएँ—सब एक नये अध्ययन-क्षेत्र का वर्णन करते हैं जो आज के कक्षा के शिक्षण मे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जैसा हमने ऊपर कहा, आज अधिकतर शिक्षण समूह स्थिति मे होता है। इसलिए वह समूह-विशेषताएँ जो व्यक्तिगत सीखने पर प्रभाव डालती हैं, एक शिक्षक के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। हमने समूह गतिशीलता के अन्तर्गत यह स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार समूह अध्ययन शिक्षा-मनोविज्ञान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और कैसे वह सीखने की क्रिया मे सहायक होते हैं। यहाँ हम शिक्षण-विधि के लिए महत्त्वपूर्ण शिक्षा-गतिविज्ञान की ७ खोजों का वर्णन कर रहे हैं। पिछले २ निष्कर्ष जिनका हमने वर्णन किया है और इन ७ मे बहुत समानता है। हम दोबारा उन निष्कर्षों को जिनका वर्णन किया जा चुका है, दूसरे ढङ्ग से प्रस्तुत कर रहे हैं। वहाँ हमारा उद्देश्य केवल समूह-गतिविज्ञान की खोजों के महत्त्व की ओर ध्यान दिलाना था। यहाँ हम इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि इन खोजों का शिक्षण विधियों मे किस प्रकार प्रयोग करते हैं और कैसे अच्छा शिक्षण व्यवस्थित किया जा सकता है। अतएव पिछला वर्णन सूचना मात्र था और यहाँ प्रयोग के दृष्टिकोण से वर्णन किया जा रहा है :

(१) कक्षा-शिक्षण मे जो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव है, वह दूसरों के साथ अन्त क्रिया करना है—रिट[2] इत्यादि ने अपने अध्ययनों मे यह देखा कि विद्यालय में

---

1. Methods of Teaching & Group Behaviour.

2. Wright, H. F. (etal) : "Toward a Psychological ecology of the class room," (1951), *J. Ed. Research*, 45 : 187-200,

त घटनाएँ जो एक छोटे बालक के विद्यालय के दिन मे घटित होती हैं, कसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियो के साथ अन्त क्रिया हैं। दूसरो से मिलना, ास मे वृद्धि कर देता है या रुझान उत्पन्न कर देता है। इससे यह स्पष्ट हो क विद्यालय-शिक्षण मे इस प्रकार की अन्त क्रिया मे उन्नति की जानी र दूसरो से सम्पर्क में आने का उपयोग करके प्रभावशाली शिक्षण दिया हुए। ऐसा उस समय सम्भव है जब शिक्षक समूह मे सक्रिय शक्तियो ने और उन शक्तियो को अच्छे ढङ्ग से व्यवस्थित करे। जैसे, वह विद्यार्थियो में मेल-जोल को बढाये और इस मेल को उनके सीखने की क्रिया मे ढङ्ग से प्रयोग करे। जब बालकों को एक प्रोजेक्ट दिया जाता है और वह र उस पर कार्य करते हैं तो इस प्रकार की अन्त क्रिया सीखने में सहायक सीखने मे प्रतिद्वन्द्विता का भी महत्व है, और शिक्षक इसका भी उपयोग है।

२) विद्यार्थियों की प्रगति तथा वह क्या सीखते हैं, उनकी सामाजिक संवेगा-श्यकताओं से प्रभावित होता है—थेलेस[1] के अनुसार कक्षा के समूह अथवा र विद्यार्थी दो प्रकार की समस्याओ का एक ही समय मे सामना करते हैं। (१) व्यक्तिगत सदस्यों की सामाजिक-संवेगात्मक आवश्यकताओ का सामना या (२) सीखने के उद्देश्यो को प्राप्त करना। जैसे, राजीव अपनी कक्षा की सदस्य बनना चाहता है और उसे गणित भी सीखना है। अच्छा सीखना होता है, जब वह टोली का सदस्य हो जाता है और उसकी सामाजिक-क आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। जेन्किन्स[2] का कहना है कि अधिक क्षा मे उस सीमा तक होता है, जिस तक उसकी सामाजिक-संवेगात्मक ताओ की पूर्ति होती है। यदि यह पूर्ति नहीं होती है तो तनाव हो जाते हैं मे बाधा उत्पन्न कर देते हैं।

शिक्षक का कार्य समूह के सदस्यो को इस बात की सहायता देना है ताकि वह के साथ सन्तोषजनक ढङ्ग से रह सकें, उनकी सामाजिक-संवेगात्मक हल हो सकें और उनके सफल ज्ञानोपार्जन का मार्ग साफ हो जाये। जितना क्षक विद्यार्थियो को एक-दूसरे के साथ संवेगात्मक सहयोग से कार्य करना ा, उतने ही शीघ्र वह उनकी शक्ति को विभिन्न समस्याओ के हल की ओर ।

(३) कक्षा में जो सम्बन्धों के प्रतिमान अथवा समूह परिस्थिति होती है वह

1. Thelen, H. A : "Social Environment & Problem-Solving." *ssive Education*, 27 : 152-155

2. Jenkins, D. H. : "Research Group Dynamics," *Social ion*, 12 : 347-450.

सीखने पर गहरा प्रभाव डालती है—बोवार्ड[1] ने कक्षा की अन्तःक्रिया के मनोविज्ञान का अध्ययन दो ढंग से किया। एक तरह से तो उसने समूह-केन्द्रित कक्षा की अन्तःक्रिया का अध्ययन किया, और दूसरे ढंग से शिक्षक-केन्द्रित कक्षा की अन्तःक्रिया का अध्ययन किया। उसने यह पाया कि प्रत्यक्षीकरण, भाव, अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्ध तथा सम्भवतः विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास, सब प्रत्यक्ष रूप से कक्षा में सामाजिक अन्तःक्रिया की मात्रा से सम्बन्धित हैं। जब शिक्षक ने अन्तःक्रिया को विशिष्ट समूह विधियों द्वारा प्रोत्साहित किया—सब विद्यार्थी शान्ति से थे, एकाग्रता तथा सहयोग प्रदर्शित करते थे। उसके अनुसन्धान यह प्रदर्शित करते हैं कि विद्यार्थी के संवेग जो समूह के प्रति होते हैं, कक्षा की स्थिति पर निर्भर होते हैं।

एक प्रजातन्त्रीय वातावरण में विद्यार्थी पहल करते हैं, आत्मनिर्देशित तथा सृजनात्मक होते हैं। एक निरंकुशतापूर्ण वातावरण में सीखना दबाव द्वारा होता है तथा वह दूसरे पर निर्भर रहने वाला और अनुकरणीय होता है। जिस समय कक्षा में एकता नहीं है, आपसी तनाव हैं, द्वन्द्व हैं तो शिक्षक को सावधान हो जाना चाहिए कि अब अच्छा सीखना सम्भव नहीं है। उसे तुरन्त अच्छी परिस्थिति उत्पन्न करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(४) कक्षा में समूह इस प्रकार संगठित हो सकते हैं जो सीखने में या तो सहायता दे सकते हैं या रुकावट डाल सकते हैं—जेनिंग्स[2], मोरेनो[3], ट्राइयोन[4] तथा दूसरे समाजमिति शास्त्रियों ने कक्षा में जो सामाजिक सम्बन्ध होते हैं उन प्रतिमानों का पता लगाया है। जेनिंग्स ने यह दिखाया कि किस प्रकार सम्बन्धों का जाल जो सीखने में महत्त्वपूर्ण है, संचारण के लिए होता है। यह जाल बताता है कि कौन संचारण करेगा और किसके साथ, किस प्रकार विचार और भाव फैलते हैं, किस प्रकार का नेतृत्व होता है, और उसकी क्या स्थिति होती है। व्यक्तिगत व्यवहार अधिकतर छोटे समूहों से नियन्त्रित रहता है। जो गुट इत्यादि होते हैं वह गुट के सदस्यों पर बहुत प्रभाव डालते हैं। इस कारण आवश्यक है कि शिक्षक अपनी शिक्षण-विधियों को कक्षा के गुट अथवा अन्य समूहों को समझ कर निर्धारित करे।

(५) कक्षा एक समूह के प्रकार से कार्य करने के लिए समय तथा सहायता चाहती है—कक्षा एक जटिल अन्तःवैयक्तिक सम्बन्धों का जाल है। यह जाल परिवर्तित होता रहता है। कक्षा के सम्बन्धों में द्वन्द्व, पुष्टिकरण, रुकावट, उद्देश्य-निर्धारण, विफलता, कुशलता, प्रत्याशा तथा उत्पादन का समावेश मिलता है। यह सब सामूहिक भावना के विकास में अवरोध उत्पन्न कर सकते हैं। एक शिक्षक उस समय

1. Bovard F. W. : "Psychology of Class-room Interaction," *J. Edu. Research*, 45 · 215-224.

2. Jennings. 3. Moreno. 4. Tryon.

सकता है जब वह इन प्रभावों पर आधिपत्य प्राप्त कर ले और समूह-
को एक वांछित दिशा प्रदान कर दे। अधिपत्य और दिशा प्रदान करने मे
लगाना आवश्यक है।

६) शिक्षक समूह-सहभागिता का उपयोग बालक के व्यवहार और मनोवृत्ति
न लाने के लिए कर सकता है—हम शिक्षा-मनोविज्ञान के महत्त्व का
ते समय इस बात पर बल दे चुके हैं कि मनोवृत्ति और व्यवहार का
समूह मे परिवर्तन लाने से सरलता से हो जाता है। लेविन ने यह प्रदर्शित
कि जब समूह निर्णय बन जाते है, तब परिवर्तन की व्यग्रता व्यक्तिगत
स्वतन्त्र हो जाती है। अब व्यक्ति मुख्यत समूह के सदस्य की भाँति कार्य

७) शिक्षक समस्या-हल में समूह का प्रयोग कर सकते हैं—शॉ[1] ने व्यक्तियों
योगी समूहो की योग्यता कुछ विशिष्ट प्रकार की समस्याओ को हल करने मे
की। इन्होने पाया कि समूह व्यक्तियो के मुकाबले मे अधिक आत्मविश्वास
रो के प्रति रखते हैं। यद्यपि समूह के सब सदस्य समान रूप से सहयोग नहीं
योंकि गलत विचारो को सामान्य रूप मे छोड दिया जाता है। डे होमार[2]
थलिसबर्गर[3] ने अध्ययनो के वर्णन के आधार पर कहा है कि सामूहिक रूप
लेने में उद्योगों मे उत्पादन बढ जाता है।

इस प्रकार समस्या-हल सामूहिक रूप से अधिक प्रभावशाली ढङ्ग से होत
क अपनी शिक्षण-विधियो मे समूह-प्रक्रिया का उचित ढङ्ग से प्रयोग क
।

ण-कलाओ की आवश्यकता[4]

समूह-व्यवहार एव समूह-गतिविज्ञान के अध्ययनो के निष्कर्ष इस बात क
र देते हैं कि शिक्षण केवल एक व्यक्तिगत प्रक्रिया नहीं है। इकाई योजना
म संगठन तथा वह विधियाँ जो मानव सम्बन्धो के प्रतिमान और प्रतिक्रियाअ
न मे न रखते हुए कक्षा-शिक्षण पर बल देते हैं, उपयुक्त नही हैं। हमे अ

1 Shaw, M E "A comparison of individuals and smal
s in the rational solution of complex problems" in T M. Ne
& E L Hartley (Eds) · *Readings in Social Psychology*, p
315.

2. De Huszar, G. B.: *Practical Aspects of Democrac*
er, 1945.

3. Roethlisberger, F. J. . *Management and Morale*, Harva
Press, 1941.

4. New skills in teaching required.

सामूहिक क्रियाओं की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। व्यक्तिगत बालक के शिक्षण मे उन सामूहिक शक्तियों को ध्यान मे रखना चाहिए जो बालक का उत्पादन और सुरक्षा एक समूह सदस्य के रूप मे बढ़ा देते हैं। कक्षा की बहुत-सी समस्याएँ; जैसे—अनुशासन की, विफलता की, परिवर्तन के विरोध की, समूह क्रियाएँ जो कक्षा मे होती हैं, उन्हें त्रुटिपूर्ण ढङ्ग से समझने अथवा न समझने के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

शिक्षण-विधियों मे हमे आवश्यक परिवर्तन लाना होगा, तभी हम उपर्युक्त समस्याओं का वांछित हल ढूँढ पायेंगे। हमे कुछ कलाओं, मनोवृत्तियों और समझ का पुष्टिकरण करना होगा जो सामूहिक प्रक्रियाओं के आधार पर ही होगा। अब तक शिक्षण-विधियों सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकें इत्यादि ऐसे विषय पर बल देती हैं, जैसे विशिष्ट और सामान्य उद्देश्य, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, कक्षा-नियंत्रण, श्रव्य-दृश्य सामग्री का उपयोग, मूल्यांकन की विधियाँ इत्यादि। इसमे कोई संदेह नहीं कि यह सब आवश्यक हैं, किन्तु इन सबको आधार चाहिए—मानव व्यवहार तथा सामूहिक प्रक्रियाओं का। शिक्षण देने मे उपर्युक्त विषयों को जानने के अतिरिक्त हमे निम्न कलाओं को भी जानना चाहिए

(१) शिक्षक-विद्यार्थी योजना बनाने की कला—ताकि विद्यार्थी उत्तरदायित्व ले सकें। वह उद्देश्य-निर्धारण से लेकर सीखने की क्रिया के मूल्याङ्कन में भाग ले सकें।

(२) समाजमिति[1] तथा दूसरी विधियों को प्रयोग करने की कला—ताकि समूह के सामाजिक सम्बन्धों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

(३) प्रक्षेप[2] विधियों के प्रयोग मे कला—ताकि समूह-प्रक्रिया सम्बन्धी समस्याओं का निदान हो सके और विद्यार्थियों के भाव, मनोवृत्ति इत्यादि का प्रत्यक्षीकरण हो सके।

(४) नेतृत्व के पर्याप्त प्रत्यय का विकास—ताकि शिक्षक प्रभावशाली समूह नेतृत्व प्रदान कर सके और विद्यार्थियों को नेतृत्व ग्रहण करने के लिए तैयार कर सके।

(५) जनतांत्रिक मनोवृत्तियों और व्यवहार में वृद्धि—ताकि एक अच्छा सामाजिक वातावरण बन जाये—जो स्वतन्त्र सचरण, सहयोग, पहल और सृजन को प्रोत्साहित करे।

(६) विद्यार्थियों की अन्त:क्रिया सम्बन्धी लेखा रखने की कला—जिसमे विशिष्ट बालकों सम्बन्धी समझ मे वृद्धि हो जाये।

अन्त मे, हम कह सकते हैं कि हमारे विद्यार्थियों का शिक्षण, समूह के रूप में होना है। हमारी शिक्षण-विधियाँ इसी सत्य पर केन्द्रित होनी चाहिए। हमे समूह-

1 Sociometric. 2. Projective Techniques.

ओ और समूह-गतिविज्ञान सम्बन्धी खोजो को ध्यान मे रखकर शिक्षण देना। किन्तु यहाँ यह कहना आवश्यक है कि केवल समूह-प्रक्रिया का प्रयोग ही शिक्षण-विधियाँ नहीं निर्धारित करेगा। बहुत कुछ जो वर्तमान विधियो मे के ऊपर वर्ग है, वह हमे अपनी शिक्षण-विधियो मे ज्यों का त्यों लेना पडेगा। उद्देश्य तो यह होना चाहिए कि समूह प्रक्रियाओ को ध्यान मे रखकर बालक-के शिक्षण के लिए उपयुक्त विधियाँ निर्धारित करें।

नेतृत्व[1]

मानव के किसी भी प्रकार के सामाजिक वर्ग मे अथवा पशुओं के झुण्ड मे कोई एक ऐसा प्राणी होता है जिसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य । से बहुत अधिक और उच्च कोटि का होता है, जो समुदाय या झुण्ड का नेतृत्व है। मानवीय समुदायों मे नेता प्राय. सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक व्यव-होता है। वह यह भी समझता है कि अमुक साथी से अमुक प्रकार से व्यवहार चाहिए। उसमें सामाजिक भावना का विकास अधिक होता है।

एक छोटे बालक के व्यवहार में नेतृत्व की भावना अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था पायी जाती है। बालक अपनी प्रभावशाली प्रकृति के कारण दूसरे बालको पर र जमाना चाहता है, दूसरों से अपनी आज्ञानुसार कार्य कराना चाहता है। लकों को एक विशेष प्रकार से खडे होने के लिए आदेश देता है अथवा अपने के अनुकूल कार्य करने के लिए उन्हें निर्देश देता है। नेतृत्व की यह भावना वस्था मे बिलकुल प्रारम्भिक दशा में होती है। बालक को अपना लीडर चुनने ं क्षमता इस समय तक नही होती। प्रभावशाली एवं दूसरों पर छा जाने वाला स्वयं उनका नेता बन बैठता है और दूसरे बालको को उसकी आज्ञा का पालन ही पड़ता है, चाहे वह उपयुक्त नेता हो या न हो।

बाल्यावस्था के उत्तरकाल में वही बालक नेता नहीं हो सकता जो निर्देश देता र दूसरो को आज्ञा मानने के लिए बाध्य करता हो वरन् अधिकतर वही है जो शान्तिपूर्वक अपने निर्देशों को उनके समक्ष प्रकट करता है और उन्हे कल्याण तथा सफलता का मार्ग बाध्यता से नहीं, सहानुभूति से सिखाता है। वयं प्रत्यक्ष रूप से बालको को निर्देश नही देता, वरन् किसी दूसरे बालक को सके आदर्श को अक्षरशः मानता हो, नेतृत्व करने के लिए प्रेरित करता है और माध्यम से अपने विचारो को दूसरो से मनवाता है।

के गुण[2]

नेता में अन्य व्यक्तियों से इतर कुछ विशेष गुण होते हैं। इन गुणो का प्रकार वर्ग के ऊपर निर्भर होता है, जिसका वह नेता चुना जाता है तथा ये विशेष-

1. Leadership. 2. Qualities of a Leader.

ताएँ उन परिस्थितियों पर भी आधारित होती हैं जिनमें उनका चुनाव होता है। उदाहरण के लिए, क्रिकेट के कैप्टिन का चुनाव होना है तो बालक उस विद्यार्थी को चुनेंगे जो क्रिकेट खेलने में भी सिद्ध-हस्त हो और साथियों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता हो तथा ईमानदार भी हो। प्रायः यह देखा जाता है कि यदि कॉलिज छात्र-संघ के अध्यक्ष का चुनाव उनकी वाद-विवाद प्रतियोगिता के उपरान्त हुआ हो तो वही अध्यक्ष चुना जाता है जो भाषण-कला में निपुण और योग्य ठहरता है।

प्रायः जो नेता चुना जाता है, वह समुदाय के सामान्य सदस्यों से विशिष्ट होता है। उसका शारीरिक बल और गठन दूसरों से कहीं अधिक पुष्ट होता है। किन्तु यह सिद्धान्त सार्वजनीन नहीं। कक्षा प्रतिनिधि के चुनाव में शारीरिक विशेषताओं पर ध्यान न देकर प्रतिभा और विद्वत्ता आदि गुणों को महत्व दिया जाता है। उस समय कक्षा एक ऐसे बालक को अपना प्रतिनिधि चुनेगी जो प्रत्युत्पन्न मतिधारी हो तथा अपने बौद्धिक वैभव से दूसरों को प्रभावित कर सकता हो एवं अपने साथियों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता हो और उनका ध्यान भी रखता हो।

नेता प्राय उन बालकों में से होता है जो अपने व्यक्तिगत घेरे में ही स्वयं केन्द्रित नहीं रहता, वरन् दूसरे बालकों के हितों का भी ध्यान रखता है। उसके विचारों का केन्द्र दूसरे बालक ही बनते हैं। ऐसे व्यक्ति बहिर्मुखी कहलाते हैं तथा उन व्यक्तियों से बहुत अधिक लाभ उठाते हैं, जो आत्म-केन्द्रित और केवल अपनी ही सुख-सुविधा की कामना करने वाले होते हैं।

जो बालक नेता चुना जाने वाला है, उसमें सामाजिक कार्य करने के प्रति रुचि होनी चाहिए। उसे परिश्रमी होना चाहिए और दूसरों की सहायता के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। बालक किसी भी आलसी और आत्म-केन्द्रित व्यक्ति को अपना नेता बनाना स्वीकार नहीं करेंगे। केवल वे ही व्यक्ति नेता बनने में सफल हो सकते हैं जो कठिन परिश्रमी होते हैं और अनवरत अध्यवसाय में विश्वास रखते हैं। वे सतत प्रयत्नशील होते हैं।

यह भी सम्भव हो सकता है कि जो बालक धनोमानी और सम्पन्न कुल से आते हैं, वे नेता चुन लिये जायँ। जो विद्यार्थी अधिक खर्चीले और धन-सम्पन्न होते हैं, वे गरीब बालकों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाते हैं। वे अपेक्षाकृत सामाजिक परिस्थितियों में अपने को अधिक समायोजित कर लेते हैं, इसीलिए अन्य बालकों द्वारा पसन्द किये जाते हैं। साथ ही गरीब बालकों को धन कमाने की भी आवश्यकता बनी रहती है, अतः वे अपने समय का थोडा भाग ही सामाजिक कार्यों में दे सकते हैं। अधिकतर समय उन्हें अपने अध्ययन और धनोपार्जन में लगाना पडता है, अतः उनके नेता बनने की सम्भावना कम है।

वे सभी विशेषताएँ जिनका वर्णन ऊपर किया गया है, एक नेता के लिए आवश्यक हैं। उन गुणों में अधिकतर; जैसे—बुद्धिमता, आकर्षक व्यक्तित्व

एक क्षेत्र मे सिद्धहस्त होना, बहिर्मुखी होना, कठिन परिश्रमी एव अध्यवसायी, ; और सामाजिक स्तर का उच्च होना आदि गुण प्राय एक अच्छे नेता मे पाए ; । वे प्राय. एक-दूसरे से मिले-जुले रूप मे रहते हैं । जैसे, यदि एक नेता जो शाली और परिश्रमी होता है, उच्च सामाजिक और आर्थिक स्तर का भी है । साथ में वह बहिर्मुखी भी हो सकता है तथा अन्य उपयुक्त गुणो से युक्त भी कता है ।

[इन्दिरा गांधी में नेतृत्व के गुण अपने पिता के सम्पर्क द्वारा ही विकसित हुए तथा पनपे ।]

। में अध्यापक का एक नेता के रूप मे होना[1]

'अध्यापक' कक्षा का एक स्वीकृत नेता माना जाता है । उसके ज्ञान, योग्यता, माण, शक्ति, बुद्धिमता आदि के अधिक विकसित होने से उसे बिना किसी आपत्ति ता मान लिया जाता है । किन्तु बहुत-से अध्यापक अपने दुर्बल व्यक्तिगत, शारीरि ाव और आत्म-संयमी होने के कारण, अपना यह उपयोगी अधिकार छोड़ बैठते

1. Teacher as a Leader in the Class.

हैं। तब कक्षा के अन्य शक्तिशाली एवं ऊर्जस्वित बालक नेता बनने का प्रयास करते हैं। यह अत्यन्त हीन और शोचनीय परिस्थिति होती है तथा अध्यापक को बहुत कष्ट पहुँचाती है। जो अध्यापक अपनी कक्षा के नेतृत्व को खो बैठता है, वह कक्षा का सामना विश्वासपूर्वक और दृढता से नहीं कर सकता। फलस्वरूप, उसकी कक्षा में अनुशासन-हीनता फैलती है और शिक्षा का ध्येय भी समाप्त हो सकता है।

अध्यापकों को अपने नेतृत्व के बारे मे बहुत ही सावधान होना चाहिए। उन्हें अनुशासनहीनता की परिस्थिति को दूर करने के लिए अथवा उसे न आने देने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना चाहिए :

(१) अध्यापक को किसी भी प्रकार की घटना अथवा परिस्थिति के लिए पहले से तैयार रहना चाहिए, जिससे कोई भी घटना असावधानी के कारण न हो; और यदि हो भी, तो उसे अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से सुलझाना चाहिए। आकुलता और उलझन के चिन्ह उसके चेहरे पर दिखाई नहीं देने चाहिए।

(२) कक्षा का स्वाभाविक रूप से एक नेता होता है, जो अध्यापक ही होना चाहिए। उसे बालकों का सहयोग और विश्वास प्रारम्भ से ही प्राप्त कर लेना चाहिए। पहले उसे अनुशासनहीन बालकों के प्रति निरकुश भी होना चाहिए। तदुपरान्त उसे मैत्री और साहचर्य की भावना को अपनाना चाहिए, जिससे बालकों की अध्यापक मे श्रद्धा बढे।

(३) अध्यापक को सदैव इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि बालकों से साहचर्य जैसा भाव प्रदर्शित करते हुए भी उसका व्यवहार एक अध्यापक की तरह ही हो, उसे बालको की तरह व्यवहार नही करना चाहिए जैसा कि बालक बालको मे करते हैं। ऐसा करने से उसका सम्मान कम हो जाता है। उसे बालको मे रहते हुए भी इनसे अलग रहना चाहिए। जो अध्यापक ऐसा नही करते, बालक उन्हे नेता भले ही स्वीकार कर लें किन्तु उनका सम्मान नही करते। ऐसे व्यवहार के द्वारा अध्यापक स्वयं प्रौढ समाज के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

(४) अध्यापक को ऐसे बालको को जो नेता बनने की क्षमता रखते हैं, उपयुक्त अवसर प्रदान करना चाहिए, जिससे वे अपनी इस शक्ति का उचित उपयोग और विकास कर सकें तथा भविष्य मे समाज के लिए अच्छे नेता बन सकें। अध्यापक को चाहिए, ऐसे बालकों को बहुमुखी कार्यों मे लगायें। किसी ऐसे कार्य का नेतृत्व उसे सौंपा जाय जिसके लिए वह सर्वथा योग्य हो, जैसे—फुटबाल या हॉकी के दल का नायक बनाना। इसी प्रकार से जो बालक साहित्यिक रुचि रखता है और कुशल नेता बनने की योग्यता भी उसमे है तो उसे साहित्यिक परिषद् का प्रधान अथवा वादविवाद प्रतियोगिताओं का संयोजक बनाना चाहिए। कभी-कभी अध्यापक को नेता के स्थान पर अनुयायी का भी कार्य करना पड़ता है और नेता का कार्यभार बालक सँभालता है।

(५) अध्यापक को बालक के सुझावों का स्वागत करना चाहिए और उन पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। प्रायः वे सुझाव ठीक भी होते हैं, अतएव अध्यापकों को तदनुकूल ही कार्य करना चाहिए।

यथार्थतः एक अच्छा अध्यापक वही होता है जो कक्षा का नेतृत्व तो सदैव अपने हाथ में रखता है, किन्तु समयानुकूल उसे समर्थ बालकों को भी सौंप देता है और अपने सम्मान एवं पद में किंचित भी कमी किये बिना वह बालकों में साहचर्य की भावना का विकास करता है। अध्यापक को इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए कि दूसरे बालकों को नेतृत्व सौंप देने पर भी वे यही अनुभव करते रहें कि अध्यापक ही उनका नेता है, यद्यपि उस समय उसका स्थान एक तटस्थ द्रष्टा और निर्देशक के रूप में होना चाहिए।

कक्षा के कमरे में शिक्षक का व्यवहार

जैसा हमने अभी कहा, शिक्षण को विद्यार्थियों का नेतृत्व करना चाहिए। किन्तु नेतृत्व से यह तात्पर्य नहीं है कि शिक्षक अपने विचार को जबरदस्ती थोप दे। शिक्षक को कक्षा की क्रियाएँ सामूहिक रूप से संगठित करनी चाहिए। उसे समूह-गति-विज्ञान के अन्वेषणों को ध्यान में रखना चाहिए। उसको इस प्रकार का संज्ञापन विद्यार्थियों से स्थापित करना चाहिए कि वह समूह की क्रियाओं में बराबर के भागीदार अपने को समझ सकें और सब विद्यार्थियों का आपस में आदान-प्रदान हो। नीचे हम एक चार्ट दे रहे हैं जिसमें दिखाया गया है कि शिक्षक कक्षा-शिक्षण में कब सबसे कम प्रभावशाली होगा और कब सबसे अधिक.
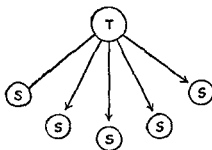
[(१) सबसे कम प्रभावशाली शिक्षक कक्षा के विद्यार्थियों के साथ एक-मार्गीय संज्ञापन रखता है।]
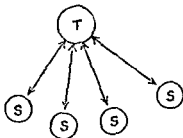
[(२) कुछ कम प्रभावशाली शिक्षक विद्यार्थियों के साथ द्विमार्गीय संज्ञापन रखने की चेष्टा करता है।]
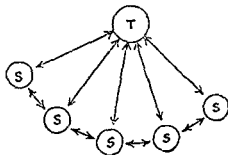
[(३) और अधिक प्रभावशाली शिक्षक द्विमार्गीय संज्ञापन विद्यार्थियों के साथ रखता है तथा कुछ औपचारिक रूप से संज्ञापन विद्यार्थियों में आपस में भी प्रोत्साहित करता है।]
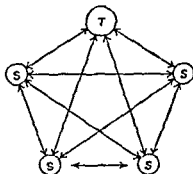
[(४) सबसे अधिक प्रभावशाली शिक्षक समूह में एक सहयोगी बन जाता है और समूह के सारे सदस्यों में अपने को मिलाकर द्विमार्गीय संज्ञापन प्रोत्साहित ... है।]

मित्रता[1]

पिछले अध्यायों में इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि जीवन में कुछ प्रारम्भिक महीनों में बालक दूसरे लोगों में अधिक रुचि नहीं दिखाता। किन्तु प्रथम ६ मास के उपरान्त वह अपनी उम्र के शिशुओं के प्रति उनकी उपस्थिति से सचेत हो जाता है तथा उनकी तरफ अपनी रुचि प्रदर्शित करता है। २ वर्ष की उम्र में वह अपने साथी और मित्र बनाना सीख लेता है, और उसकी यह मैत्री बहुत समय तक चलती रहती है।

मित्र के वरण में प्रभाव डालने वाले तत्त्व[2]

बालक जैसे ही विकसित होता जाता है, उसे अपने लिए कोई साथी अथवा मित्र अवश्य चुनना पड़ता है। उसके चुनावों में बहुत-सी बातों की प्रेरणा हो सकती है। वह बहुत-से प्रयोजन कारकों पर आधारित हो सकता है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

(१) एक-दूसरे से समीपता[3]—जो बालक एक-दूसरे के पड़ोस में रहते हैं, साथ-साथ और एक ही विद्यालय में पढ़ने के लिए जाते हैं तथा एक ही कक्षा में पढ़ते हैं, वे सरलता से आपस में मित्र बन जाते हैं।

(२) समानता[4]—जिन बालकों में आपस में समानता होती है, वे शीघ्र ही एक-दूसरे से मिल-जुल जाते हैं। प्रतिभाशाली बालक दूसरे बुद्धिमान बालक को ही अपना साथी चुनना पसन्द करेगा—मन्दबुद्धि बालक मन्दबुद्धि को, और खुराफाती बालक उसी प्रकार के बालक को अपना मित्र बनाना पसन्द करेगा। प्रायः यह देखा जाता है कि जो बालक कक्षा में पीछे बैठते है, आपस में उनकी रुचि, रुझान और प्रवृत्तियों में बहुत समानता होती है तथा वे एक-दूसरे के मित्र भी बहुत शीघ्र बन जाते हैं।

(३) उम्र[5]—जो बालक उम्र में समान होते है उनमें उन बालकों की अपेक्षा जिनकी उम्र में बहुत अन्तर होता है, आपस में शीघ्र मैत्री स्थापित हो जाती है। यह बात प्रत्येक उम्र के वर्ग के बालकों में देखी जाती है। कैशोर और प्रौढ़ावस्था तक के बालक उन्हीं को अपना मित्र चुनते हैं जो लगभग उनकी उम्र के होते हैं।

(४) समान खेल और मनोरंजन में रुचि[6]—जो बालक एक ही प्रकार का खेल पसन्द करते हैं, जिनकी समान खेल और मनोरंजन के साधनों में रुचि होती है वे एक-दूसरे को पसन्द करने लगते हैं और मित्र बन जाते हैं। उनमें ताश, गप्प, फुटबाल,

---

1. Friendship 2. Factors influencing the choice of Friends. 3. Nearness with each other. 4 Similarity. 5. Age. 6. Same play and recreational interests.

हॉकी आदि के प्रति समान रुचि होने के कारण वे साथ-साथ रहते, साथ-साथ
और एक-दूसरे के मित्र बन जाते हैं।

(५) समान सामाजिक और आर्थिक स्तर[1]—ऐसे मित्रों की सन्तान
सामाजिक स्तर समान होता है, आपस में अत्यन्त शीघ्र मित्र बन जाते हैं।
बालक सदैव धनी बालक का ही साथी बनना पसन्द करेगा, क्योंकि वही उसके
वस्त्र पहन सकता है, वही उसके समान धन व्यय कर सकता है। इसी प्रकार
के गरीब स्तर से आया हुआ बालक भी अपने ही समान फटेहाल और अ
बालक के प्रति आकर्षित होगा, उसे ही अपना मित्र चुनेगा, क्योंकि समान
कारण एक-दूसरे से अपने मन की गाँठ खोल सकता है और अपने मन को हल्का
सकता है। इसी प्रकार जो एक ही धर्म या एक ही प्रकार के सिद्धान्तों में
रखते हैं, उनमें भी मित्रता शीघ्र जुड़ जाती है। अतः आर्थिक-सामाजिक स्तर
समान विश्वास ही मित्रता-स्थापन का मानदण्ड बनते हैं।

मित्रता के मुख्य कारणों का जो ऊपर वर्णन किया गया है, वे बालक के
की प्रत्येक अवस्था में मित्र बनाने के लिए प्रभाव नहीं डालते। बाल्यावस्था के
में सामाजिक और आर्थिक दशा तथा समान धर्म मित्र बनाने के उतने मह
कारक नहीं बनते जितने कि प्रौढ़ावस्था में। बाल्यावस्था में तो खेल और समा
और समान रुचि ही अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

मित्रता में शिक्षा का महत्त्व[2]

अध्यापक बालक के मित्रों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर उसके साम
स्तर का पता बड़ी सरलतापूर्वक लगा सकता है तथा बालक के सामाजिक
की पूर्ण जानकारी भी कर सकता है। उसके मित्र बनाने की क्षमता से भी अ
हो जाता है। इससे अध्यापक को बालक के विकास के प्रति अन्तर्दृष्टि प्राप्त
है। वह उचित निर्देशन एवं मार्ग-प्रदर्शन से बालक में सामाजिक भावना का वि
कर सकता है। अध्यापक बालक की विलक्षणता का और उसके सामाजिक
आर्थिक स्तर का भलीभाँति अध्ययन कर, जो उसके व्यवहार पर अत्यन्त प्र
डालते हैं, उसकी सामाजिकता और समाज-विरोधी कार्यों के मूल कारणों को
भाँति समझ सकता है। यह ज्ञान बालक के यथार्थ सामाजिक जीवन को भली
समझने और फिर उसको उचित निर्देशन एवं मार्ग-प्रदर्शन के द्वारा विकास की
उन्मुख करने में सहायता करता है। समाजमिति विधि का प्रयोग बालकों के
एवं उसकी पसन्द और उसको पसन्द करने वालों का पता देती है। इस विधि
प्राप्त एक आलेख यहाँ दिया जाता है।

---

1. Same Socio-economic Status. 2. *Importance of Educati*
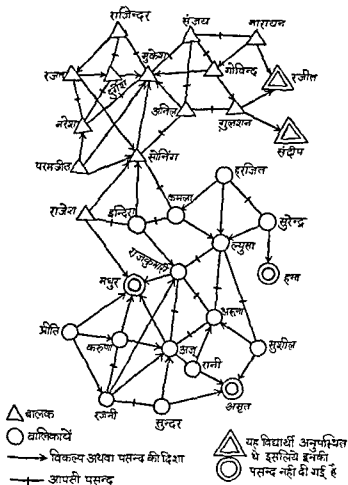
[एक पांचवी कक्षा का समाज आलेख[1] जो इस प्रश्न के उत्तर में था कि कौनसे तीन सहपाठियों को पार्टी में बुलाना आप पसन्द करेंगे।]

ऊपर दिये हुए समाज आलेख में कई बातें ध्यान देने की हैं। कुछ विद्यार्थी ऐसे हैं जो अनेक बालकों अथवा बालिकाओं द्वारा पसन्द किये जाते हैं। मधुर को चार

---

1. Sociogram.

भार सौंपना चाहिए, जिससे बालक में किसी कुमनोवृत्ति का विकास न हो। अध्या
को कभी बालक को ऐसे कार्यों मे नही लगाना चाहिए जिनमें उसकी असफ
निश्चय ही हो। उन्हें बालकों को वास्तविक सफलता के मूल्य को समझने के
प्रोत्साहित करना चाहिए और कभी भी झूठी सफलता एवं निन्दनीय कार्यों की
लता के प्रति आकृष्ट नही होने देना चाहिए। उन्हें समझाना चाहिए कि बुरे
की सफलता का सुख क्षणिक एव समाज-विरोधी होता है जो बालक के समु
विकास के लिए घातक है। उन्हें सत्य और सुन्दर एवं सामाजिक कार्यों के
प्रोत्साहित करना चाहिए।

हमने इस अध्याय मे 'समूह-गतिविज्ञान' शब्दों का बार-बार प्रयोग कि
है। इससे हमारा तात्पर्य ऐसे अध्ययनो से है जो समूह की प्रक्रियाओं, समूह
शक्तियो, सदस्यो के बीच संचार और सम्प्रेषण के प्रकार, समूह-निर्णय इत्यादि
प्रकाश डालते हैं। समूह मे गतिशीलता होती है। यह गतिशीलता उसे उसके सद
से मिलती है। यह सदस्य विभिन्न होते हुए भी समूह मे एक व्यवस्थित ढ
व्यवहार करते हैं। यह व्यवस्थित व्यवहार निर्धारित होता है—समूह के अन्दर
शक्तियो को दिशा प्रदान करने के कारण। समूह-गतिविज्ञान का अध्ययन या स
प्रक्रियाओ का अध्ययन इस गतिशीलता को समझने सम्बन्धी ही होता है। पील
अनुसार, समूह-गतिविज्ञान वह विज्ञान है जो यह अध्ययन करता है कि किस प्र
समूह-संगठन गतिशील शक्तियों के प्रभाव से जो अन्दर या बाहर से प्रभावित क
हैं, परिवर्तित हो जाता है।[1] हमने अध्याय ३ मे 'समाजमिति विधि' का वर्णन कि
है। समूह-गतिविज्ञान के अध्ययनो मे यह विधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सारांश

वर्तमान शिक्षण मे सामाजिक शिक्षण पर बल दिया जाता है। एक कक्षा
ऐसा समूह है, जिसमे अन्त:क्रिया विभिन्न सदस्यो के बीच चलती रहती है। स
गतिविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन हमे यह अन्त क्रिया समझने मे सहायता देते हैं। स
गतिविज्ञान द्वारा प्राप्त निष्कर्ष हमे शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र मे बहुत सहायता
हैं। वह यह स्पष्ट कर देते हैं कि एक शिक्षक को समूह के अन्दर होने वाली प्रक्रि
को बहुत अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। उसे अधिक अनुप्रेरणा देने की चे
करनी चाहिए, ताकि अच्छा सीखना हो सके। बालकों को अधिक प्रेरणा देने के लि
शिक्षक को तीन दशाओ को स्थापित करना चाहिए। यह दशाएँ हैं: (१) उद्देश्य
निर्धारण सहयोग के साथ, (२) सहायक वातावरण, और (३) सहभाग लेने वा
सदस्यता।

---

1. Peel, E. A., *The Psychological Bases of Education*, Oliv
& Boyd, 1962, p 252. "Group dynamics is the science whi
investigates how the Group structure changes under dynamic forc
from within or without."

समूह-व्यवहार के अध्ययन शिक्षण-विधियों में परिवर्तन लाने पर भी बल देते हैं। साथ ही समूह-गतिविज्ञान के निष्कर्ष शिक्षण-विधियों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। एक शिक्षक को इस समय व्यक्तिगत शिक्षण-विधियों को जानने के अतिरिक्त कुछ और विशिष्ट कलाओं को जानना भी आवश्यक है।

'नेतृत्व' सामाजिक व्यवहार का एक प्रकार-विशेष होता है, जो समुदाय के किसी प्रभवी एवं प्रमुख व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता है। वह वर्ग के अन्य प्राणियों की अपेक्षा शारीरिक और मानसिक विकास में अधिक उन्नत होता है। ऐसा व्यक्ति वर्ग के व्यक्तियों को निर्देश एवं आज्ञा देता है और अन्य व्यक्ति उसका अनुसरण करते हैं। एक नेता के लिए कुछ विशिष्ट गुणों की आवश्यकता होती है, जो सर्व-साधारण में नहीं पाये जाते हैं, जैसे—(१) वर्ग के औसत परिमाण से अधिक शारीरिक शक्ति, (२) बहिर्मुखी—जो दूसरों के लाभ का ध्यान रखते है, (३) कठिन परिश्रमी एवं अध्यवसायी, (४) उच्च सामाजिक एवं आर्थिक स्तर से आया हुआ, (५) प्रतिभावान, (६) किसी विशेष कला में निपुण। ये गुण एक नेता में कम या अधिक मात्रा में मिले-जुले रूप में मिलते हैं। उचित शिक्षा के लिए एक अध्यापक को एक कुशल नेता का कार्य करना पड़ता है। उसे कक्षा का नेतृत्व करना पड़ता है। कुशल नेता होने के लिए उसमें निम्नलिखित गुणों की आवश्यकता होती है—(१) किसी भी प्रकार की दुर्घटना का सामना करने के लिए तैयार रहना, (२) अध्यापक को कक्षा के स्वाभाविक नेता का सहयोग प्राप्त करना, (३) अपने पद के सम्मान की रक्षा, (४) कक्षा के योग्य बालकों को नेता बनने का अवसर देना, (५) बालकों के प्रश्न करने एवं प्रतिवाद करने का स्वागत करना तथा उनके सुझावों को स्वीकार करना।

एक बालक दो वर्ष की अवस्था में ही तथा उसके उपरान्त मित्र बनाना प्रारम्भ कर देता है। मित्र के चुनाव में बालक पर निम्नलिखित बातें बहुत प्रभाव डालती हैं—(१) एक-दूसरे की समीपता, (२) रुचि की समानता, (३) उम्र की समानता, (४) समान खेलों एवं मनोरंजन के साधनों में अभिरुचि, (५) समान सामाजिक-आर्थिक स्तर। एक अध्यापक बालकों के मित्रों के प्रकार, उनके मित्र बनाने की क्षमता आदि से उनके सामाजिक विकास के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त कर सकता है, तथा उन्हीं के आधार पर उनमें सामाजिकता ला सकता है।

बालकों में उनकी बाल्यावस्था के प्रारम्भ में ही दूसरों के प्रति स्पर्धा की भावना जाग्रत हो जाती है। इस स्पर्धा अथवा प्रतियोगिता की भावना से वह बहुत लाभान्वित होता है। वह स्पर्धा में विजयी होने के लिए ऐसे कार्यों में भी दत्तचित्त बना रहता है जिनमें उसको बिलकुल रुचि नहीं होती। यह भावना ही व्यक्ति को अधिक से अधिक उन्नति करने के लिए प्रेरणा देती है। सामूहिक कार्यों एवं सामूहिक खेलों में प्रतियोगिता की भावना ही दल के प्रति सहयोग और सामूहिक भावना को जन्म देती है जो सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और लाभदायक है।

अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि बालको की इस स्पर्धा-भावना को रचनात्मक एवं क्रियाशील कार्यों के निर्माण मे लगाए।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. समूह-गतिविज्ञान सम्बन्धी अध्ययनो में शिक्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

२. कक्षा-शिक्षण मे सामूहिक प्रक्रिया का क्या महत्त्व है ? इन प्रक्रियाओ का वर्णन करो।

३. शिक्षक को किन कलाओ को जानने की आवश्यकता है ? समूह-गति-विज्ञान क्या सहयोग दे सकता है ?

४. नेतृत्व के विकास मे शिक्षक क्या सहायता दे सकता है ? कक्षा मे नेतृत्व किस भांति से होना चाहिए ?

५. शिक्षक के नेतृत्व के सम्बन्ध मे अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

६ प्रतियोगिता मे लाभ तथा हानि दोनो हैं, व्याख्या कीजिए।

७. समाजमिति विधि द्वारा आप बालको की भिन्नता के सम्बन्ध मे कैसे जानकारी प्राप्त करेंगे ?

८. सत्य तथा असत्य कथनो की छाँट कीजिए :

(i) शिक्षक को कक्षा मे केवल एक सदस्य की भाँति रहना चाहिए। हाँ/नहीं

(ii) शिक्षक को कक्षा मे नेतृत्व करना चाहिए। हाँ/नहीं

(iii) शिक्षक को विद्यार्थियो के साथ बराबरी का बरताव करना चाहिए। हाँ/नहीं

(iv) शिक्षक को कठोर अनुशासन रखना चाहिए। हाँ/नहीं

(v) शिक्षक को अनुशासन को कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए। हाँ/नहीं

(vi) शिक्षक को बालको को स्वयं अनुशासन रखने को प्रोत्साहित करना चाहिए। हाँ/नहीं

भाग ६

मापन और मूल्यांकन

[MEASUREMENT & EVALUATION]

२६ शिक्षा में मूल्यांकन : क्यों, क्या तथा कैसे ? EVALUATION IN EDUCATION : WHY, WHAT & HOW ?

वर्तमान शिक्षा-पद्धति व्यक्ति के सब प्रकार के अनुकूलन पर बल देती है। शिक्षा द्वारा बालक को न केवल ज्ञान देना ही आवश्यक समझा जाता है परन्तु उसको शारीरिक, संवेगात्मक, मानसिक तथा सामाजिक अनुकूलन प्रदान करना भी अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। व्यक्तित्व का पूर्ण अनुकूलन ही आज की शिक्षा का ध्येय है। परन्तु इसके लिए व्यक्तित्व की विशेषताओं की माप आवश्यक है। किसी-न-किसी रूप में यह माप प्राचीन रूप से चली आ रही है। परन्तु इस शताब्दी के आरम्भ में इस ओर बहुत वृद्धि हुई है। प्राचीन मापदण्ड अविश्वासी तथा त्रुटिपूर्ण थे। उनके स्थान पर अब नए माप, विश्वासी एवं प्रामाणिक मापन-विधियों का निर्माण हो गया है। हम इस अध्याय में विभिन्न मापन-विधियों के सम्बन्ध में ही पढ़ेंगे।

हरएक अध्यापक चाहता है कि वह अपने द्वारा दी गई शिक्षा का किसी-न-किसी प्रकार मापन करे। अतएव किसी-न-किसी रूप में परीक्षा लेना, शिक्षा देने की प्रत्येक प्रणाली—नवीन अथवा प्राचीन—में मान्य है। परन्तु आजकल प्राचीन प्रणाली को अध्यापक दोषपूर्ण समझते हैं और इसके स्थान पर परीक्षा लेने के ढंगों को इस प्रकार से बनाना चाहते हैं जो वस्तुनिष्ठता[1] लिये हुए हों। इस अध्याय में हम योग्यता की माप-सम्बन्धी विविध प्राचीन तथा नवीन प्रकार की परीक्षाओं का वर्णन करेंगे।

मूल्याङ्कन क्यों ?

हम जो कुछ भी शिक्षा देते हैं, उनके कुछ उद्देश्य होते हैं। उद्देश्य जितने स्पष्ट रूप से होते हैं, उतनी ही सफलता हमें शिक्षा देने में मिलती है। इसी प्रकार किसी विषय को पढ़ाने में जो हमारा प्रयोजन होता है, उसे हमें पूर्ण रूप से समझना

1. Objectivity.

आवश्यक होता है। प्रयोजन बनाकर या उद्देश्य समझ कर हम शिक्षा दे सकते हैं, परन्तु उद्देश्य अथवा प्रयोजन किस सीमा तक हम अपने शिक्षण द्वारा प्राप्त करने में सफल होते हैं, इसके लिए विद्यार्थी द्वारा ग्रहण की हुई शिक्षा का मूल्यांकन आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त कक्षा-शिक्षण मे दिये हुए अनुभवों का उचित और अनुचित प्रभाव जानने के लिए भी मूल्यांकन की आवश्यकता है। अतः मूल्यांकन क्यों आवश्यक है? इसका उत्तर हम इस प्रकार दे सकते हैं—

१. मूल्याङ्कन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो चुके हैं, इसका पता लगता है।
२. विभिन्न विषयों मे जो प्रयोजन हमारे सम्मुख आते हैं, उनकी प्राप्त की हुई सीमा भी हमें मूल्याङ्कन द्वारा पता लगती है।
३ कक्षा-शिक्षण मे जो अनुभव प्रदान किये गये—वे कितने प्रभावशाली थे, इसका भी परीक्षण मूल्यांकन द्वारा होता है।

मूल्याङ्कन क्या है ?

मूल्यांकन से तात्पर्य है—यह पता लगाना कि कोई वस्तु मात्रा मे कितनी अधिक या कितनी कम है, कितनी बड़ी है या छोटी। यह बात हर प्रकार के मूल्यांकन के सम्बन्ध मे कही जा सकती है—चाहे आप गेहूँ का एक बोरा तोल रहे हों या कक्षा मे बालकों की योग्यता का मूल्याङ्कन कर रहे हो। गेहूँ का बोरा तो आप मन, सेर, छटाक में तोल लेते हैं, परन्तु योग्यता का मूल्याङ्कन करने के लिए हमें एक परीक्षण मे प्राप्त अंकों की ओर देखना पड़ता है।

थॉर्नडायक का कहना है कि **"जिस वस्तु का भी अस्तित्व है, उसका किसी न किसी मात्रा मे अस्तित्व होता है और जो कुछ भी किसी मात्रा में उपस्थित है, उसे मापा जा सकता है।"**[1] इस कथन से तात्पर्य यही है कि हम किसी न किसी प्रकार हरएक वस्तु की ऐसी माप कर सकते हैं जो किसी न किसी मात्रा मे पाई जाती है। अतएव हम हर प्रकार की योग्यता का मूल्याङ्कन कर सकते हैं। यह बात दूसरी है कि हमारा मूल्याङ्कन योग्यता आदि के सम्बन्ध में पूर्णरूपेण विश्वस्त न हो। परन्तु चूँकि यह मापी जा सकती है, अत. इस ओर प्रयत्न करना हर अध्यापक का कर्त्तव्य है।

हर प्रकार के मूल्यांकन की सत्यता[2] उस वस्तु पर निर्भर रहती है जिसे मापा जा सकता है। कुछ वस्तुएँ सरलता से मापी जाती हैं, जैसे—गेहूँ का बोरा, और कुछ को मापने मे अत्यन्त कठिनता का अनुभव होता है; जैसे—रुचि की माप। कहीं-कहीं हमें बिलकुल विश्वासी माप की आवश्यकता नहीं होती और हमारा मापन जहाँ तक

1. Any thing that exists at all exists in some quantity and that exists in quantity is capable of being measured."
2. Accuracy.

निकटतम सम्भव है, उस वस्तु या विषय आदि की माप कर लेता है। पर कहीं-कहीं इस बात की आवश्यकता पड़ जाती है कि सूक्ष्म तथा सही मापन की विधि को अपनाया जाये, जैसे शिक्षा में ज्ञानोपार्जन की माप[1] विश्वासी और सही ढङ्ग से करने की अति आवश्यकता है—क्योंकि इसके द्वारा ही हमें यह पता लग सकता है कि अध्यापक द्वारा दी हुई शिक्षा कहाँ तक सफल हुई।

विश्वासी मापन-यन्त्र का निर्माण दो तथ्यों पर आधारित है—(१) ठीक रूप में पता लगाने कि क्या मापना है, (२) ऐसे यन्त्र का प्राप्त करना या निर्माण करना जो यह मापन सबसे उचित प्रकार से कर सके। इसी को हम दूसरे प्रकार से कह सकते हैं कि मापन-यन्त्र 'क्या' और 'कैसे' पर निर्भर है। 'क्या मापना है' और 'कैसे वह मापा जा सकता है'—यही निर्धारण करता है कि किस प्रकार का मापन-यन्त्र प्राप्त किया जाये या निर्माण किया जाये ?

क्या मापना है ?

हम परीक्षणों द्वारा क्या माप सकते हैं ? उसका वर्गीकरण करना भी आवश्यक है। हम कह सकते है कि परीक्षण द्वारा हम ज्ञानोपार्जन[2], विशिष्ट अभिक्षमता[3], रुचि,[4] तथा चरित्र[5] और व्यक्तित्व[6] की माप कर सकते हैं। इन्हीं योग्यताओं के मापने के लिए मापन-यन्त्रों या परीक्षाओं की आवश्यकता होती है। इन मापन-यन्त्रों या परीक्षाओं का वर्गीकरण भी हम इन्हीं मापन-योग्यताओं के आधार पर कर सकते हैं। अतएव मापन परीक्षाएँ जो हमारे लिए उपयोगी हैं वे निम्न प्रकार से वर्गीकृत की जा सकती हैं :

१. ज्ञानोपार्जन अथवा उपलब्धि-परीक्षा।
२. बुद्धि-परीक्षा।
३. अभिक्षमता-परीक्षा।
४. अभिरुचि अभिज्ञापक प्रश्नावली।
५. चरित्र अथवा व्यक्तित्व परीक्षा।

यह परीक्षाएँ हमें इस बात से अवगत कराती हैं कि कैसे हम विभिन्न योग्यताओं की माप कर सकते हैं। यहाँ पर अब हम इन सब प्रकार के परीक्षणों का थोड़ा वर्णन करेंगे, जो 'कैसे' के उत्तर में ही होगा।

कैसे मापना है ?

उपलब्धि-परीक्षण

यह परीक्षण एक निश्चित कार्य-क्षेत्र में जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, उसको माप करते हैं। विभिन्न विषयों में अर्जित ज्ञान का मापन तथा वर्तमान योग्यता का

1. Measurement of Achievement. 2. Achievement. 3. Special Aptitude. 4. Interest. 5. Character. 6. Personality.

मापन भी इन्ही के द्वारा होता है। यह दो प्रकार के होते हैं—(अ) सामान्य उपलब्धि-परीक्षण[1], तथा (ब) नैदानिक परीक्षण[2]। परन्तु इन दोनो के मध्य स्पष्ट विभाजन-रेखा नही।

(अ) सामान्य उपलब्धि-परीक्षण—एक व्यक्ति के ज्ञान-क्षेत्र का परीक्षण करते हैं और इस प्रकार उस लब्ध प्राप्ताङ्क[3] को हमारे समक्ष रखते हैं जो व्यक्ति का अर्जित ज्ञान बताता है। (ब) नैदानिक परीक्षण—परीक्षा के विभिन्न क्षेत्रों मे जिनमे वह दिया गया है, व्यक्ति की निर्बलता या सबलता प्रकट करते हैं। नैदानिक परीक्षण अध्यापक को यह जानने मे सहायता देते हैं कि कहाँ पर उसके द्वारा दी गई शिक्षा सफल हुई है, और कहाँ पर विफल।

सामान्य उपलब्धि-परीक्षण के भी बहुत-से रूप होते हैं, जो अध्यापक द्वारा कक्षा आदि मे दिए जाते हैं। परन्तु यह अप्रत्यक्ष रूप से नैदानिक भी हो जाते हैं, क्योंकि किसी विषय मे ज्ञानोपार्जन की कमी यह स्पष्ट कर देती है कि शिक्षक की सफलता उस समय में कम है।

उपलब्धि-परीक्षण चार प्रकार से दिये जा सकते हैं

(१) मौलिक परीक्षाएँ[4]—बालकों को मौलिक प्रश्न दिये जाते हैं और यह जानने की चेष्टा की जाती है कि बालको ने पाठ पढ़ा है अथवा नहीं। इस प्रकार की परीक्षाओं मे मुख्य दोष यह है कि यह परीक्षाएँ विस्तृत रूप एवं दक्षता से विद्यार्थी की जाँच करने मे असफल रहती हैं। यह प्रत्येक विद्यार्थी के लिए समान रूप से न्याय-संगत नही होती और इनमे पक्षपात होना अति सम्भव है। इसके अतिरिक्त छात्रों की ध्वनियाँ चिरस्थायी नहीं होती, पर्यावरण के परिवर्तन से भी उनमे परिवर्तन आ जाता है।

(२) निबन्धात्मक परीक्षाएँ[5]—इन परीक्षाओं मे ऐसे प्रश्न दिए जाते हैं जिनका उत्तर निबन्ध के रूप मे दिया जा सकता है। इस प्रकार की परीक्षाएँ भी बहुत-से दोषों से पूर्ण रहती हैं। हम इनका वर्णन आगे करेंगे।

(३) वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ[6]—इस प्रकार की परीक्षाओं ने २०वीं शताब्दी मे बहुत ही उन्नति की है। निबन्धात्मक परीक्षाओं के स्थान पर इसी प्रकार की परीक्षाओं पर इस समय बल दिया जा रहा है, परन्तु यह भी पूर्णतः दोष-रहित नहीं हैं। हम इनका वर्णन भी आगे करेंगे।

(४) निष्पादन-परीक्षाएँ[7]—यह परीक्षाएँ शिक्षा के क्रियात्मक पहलू द्वारा जाँच करती हैं। इनमे चित्रो आदि का प्रयोग होता है। यह बहुधा व्यावसायिक दशा

---

1. General Achievement Test. 2. Diagnostic Test. 3. Score. 4. Oral Tests. 5. Essay Tests. 6. Objective Tests. 7. Performance

की जाँच करने के लिए प्रयोग की जाती हैं। इन परीक्षाओ मे शाब्दिक योग्यता पर कोई बल नही दिया जाता है।

आजकल बहुत-से ज्ञानोपार्जित परीक्षण उपलब्ध हैं। यह परीक्षण विभिन्न अवस्था के बालको व विभिन्न कक्षा के अनुसार निर्मित किये गये हैं। यह परीक्षण मानकीकृत[1] होते हैं।

इस प्रकार के कुछ उल्लेखनीय परीक्षण हैं—यू एस. ए एफ आई. टेस्ट ऑफ जनरल एजूकेशनल डेवलपमेन्ट[2]—यह परीक्षण युद्ध से लौटे हुए फौजियो के लिए था, यह पता लगाने के लिए कि उनका हाई स्कूल या कॉलेज का ज्ञान कितना है जो उन्होने फौजी जीवन मे तथा उसके पहले जीवन मे अर्जित किया था। यह परीक्षा सामान्य उपलब्धि की माप के लिए की जाती है और उन परीक्षाओ से भिन्न है जो किसी कक्षा मे शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त शिक्षा के साफल्य का पता लगाने के लिए दी जाती हैं।

इस प्रकार के सामान्य उपलब्धि के परीक्षण जो ज्ञानोपार्जन शिक्षा के विस्तृत क्षेत्र मे परीक्षण करते हैं, और बहुत-से हैं। आइवा स्टेट ऑफ एजूकेशनल डेवलपमेन्ट[3]—ज्ञान या क्रियात्मक अर्जन के अतिरिक्त और भी बहुत-सी बातें सामान्य रूप से पता लगाता है जिसमे से मुख्य यह हैं . १ मूल सामाजिक प्रत्यय को समझना, २. चिन्तन करने की योग्यता, ३. सही लिखने की योग्यता, ४. सामान्य विज्ञान की सामान्य योग्यता, ५. सामाजिक शास्त्रो मे शिक्षण-वस्तुओ को अर्थ प्रदान करना, ६. सामान्य विज्ञान मे शैक्षिक वस्तुओ को अर्थ प्रदान करना, ७. साहित्यिक पाठ्य-वस्तु की योग्यता, ८ मुख्य सूचना के उद्गम के उपयोग की उपयोगिता, ९. महत्त्व-पूर्ण शब्दो के अर्थ पहचानने की योग्यता।

विशिष्ट विषयो मे उपलब्धि के परीक्षण के लिए बहुत-से परीक्षण हैं। इनमें से जो बहुत प्रचलित हैं, वे हैं १. स्टेन्डफोर्ड निष्पत्ति-परीक्षण[4], २. भारतीय बालको के लिए सामान्य विज्ञान का एक परीक्षण जो डी० एस० रावत[5] द्वारा निर्मित है। यह "साधारण विज्ञान परीक्षा" इस उद्देश्य से निर्मित की गई है कि इंगलैण्ड के फोर्थ फोर्म के विद्यार्थियो मे तथा भारत के दसवी कक्षा के (औसत आयु १४ वर्ष १० माह) विद्यार्थियो मे कौन सामान्य विज्ञानो में अधिक अच्छे हैं तथा यह भी जानने की चेष्टा की गई कि भारत मे कौनसी कक्षा के विद्यार्थी इगलैण्ड के फोर्थ फार्म[6] के विद्यार्थियो से सामान्य योग्यता मे मिलते-जुलते हैं। इस परीक्षा मे तीन भाग हैं। भाग १ के एक प्रश्न का उदाहरण प्रस्तुत है :

---

1. Standardised. 2 The USAFI Test of General Educational Development 3 Iowa Test of Educational Development. 4 Standford Achievement Test, 5 D S. Rawat. 6. Fourth Form.

निम्नलिखित पदार्थों के अणु के लिए कौनसा रासायनिक सूत्र है—

(अ)

( ) [१] नाइट्रिक ऑक्साइड — (अ) H_2SO_4
( ) [२] अमोनियम क्लोराइड — (आ) $KMnO_4$
( ) [३] नाइट्रस ऑक्साइड — (इ) $NaCl$
( ) [४] शोरे का अम्ल या नाइट्रिक एसिड — (ई) $CaCO_3$
( ) [५] पोटाश — (उ) $(NH_4)_2SO_4$
( ) [६] गन्धक का अम्ल या सल्फ्यूरिक एसिड — (ऊ) HNO_3
( ) [७] हाइड्रोजन सल्फाइड — (ए) NH_4ON
( ) [८] अमोनियम सल्फेट — (ऐ) NH_4Cl
( ) [९] सोडियम क्लोराइड — (ओ) H_2S
(औ) N_2O
(अं) $Ca(OH)_2$
(अ) NO

इसी प्रकार से भाग २, ३, ४ मे प्रश्न हैं जो वस्तुनिष्ठ परीक्षा मे प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के परीक्षणो के आधार पर हैं।

(१) उपलब्धि की परीक्षा—हम दो और प्रकार से भी वर्गीकृत कर सकते हैं—(i) अध्यापक द्वारा निर्मित, और (ii) मानकीकृत किये हुए परीक्षण। ऊपर जो आइवा टेस्ट आदि का वर्णन किया गया है, वे मानकीकृत किये हुए हैं। मानकीकृत परीक्षण से तात्पर्य यह है कि वे परीक्षण जिनमे विभिन्न प्रश्न सावधानीपूर्वक बनाये गए हों, और फिर उनको सावधानीपूर्वक चुने हुए प्रामाणिक समूह मे परीक्षण करके उन प्रश्नो को छाँट लिया जाये जो परीक्षा के लिए उपयुक्त तथा मूल्यवान सिद्ध हों।

(२) बुद्धि-परीक्षण[1]—इस प्रकार की परीक्षाओं के सम्बन्ध मे विस्तृत वर्णन अध्याय ८ मे दिया जा चुका है।

(३) अभिक्षमता-परीक्षण[2]—यह देखा गया है कि बुद्धि-परीक्षाओं का सह-सम्बन्ध ऐसी योग्यताओं; जैसे—गतिगामी यान्त्रिक क्रियाओं मे योग्यता, वादन-वादन मे या कलापूर्ण कृतियो मे योग्यता, से उच्च नही है। इस कारण बहुत-से अभिक्षमता-परीक्षणों का निर्माण किया गया जो विभिन्न क्षेत्रों मे विशिष्ट योग्यता का पता लगाने के लिए है। एक प्रकार से हरएक परीक्षण अभिक्षमता का परीक्षण है, यदि वह किसी विशिष्ट क्षेत्र मे योग्यता बताता है। अभिक्षमता के परीक्षण द्वारा

1. Intelligence Tests. 2. Aptitude Test

किसी व्यक्ति की सफलता का मापन नहीं कर सकते । एक व्यक्ति के किसी अभिक्षमता-परीक्षण मे प्राप्तांक बहुत अधिक हो सकते हैं, परन्तु फिर भी हम नहीं कह सकते कि वह व्यक्ति सफलता ही प्राप्त करेगा । परन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि व्यक्ति कार्य करने योग्य है ।

सामान्य अभिक्षमता के परीक्षण बुद्धि-परीक्षण हैं जो व्यक्ति की सामान्य रूप से सीखने की योग्यता की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित करते हैं । विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण हमारा ध्यान विशिष्ट योग्यताओं की ओर केन्द्रित करते हैं ।

विशिष्ट अभिक्षमता-परीक्षण यांत्रिक क्रियाओं मे योग्यता या गतिगामी क्रियाओं मे योग्यता या गायन-वादन की योग्यता या क्लर्क के काम की योग्यता इत्यादि का परीक्षण करके हमे यह बताने मे सफल होते हैं कि व्यक्ति की योग्यता किस दिशा मे है, और इस प्रकार व्यक्ति को इनके द्वारा यह बताया जा सकता है कि उसको उन्ही क्षेत्रो मे काम करना अच्छा है, जिनमें उसकी योग्यता निहित है । अत: ये परीक्षण व्यवसाय-निर्देशन मे बहुत उपयोगी होते हैं ।

अभिक्षमता-परीक्षण सैनिक शासन द्वारा अपने सैनिको, अफसरों आदि के चुनने मे बहुत उपयोगी होते हैं । हमारे देश मे भी इनका उपयोग अब विभिन्न सेवा आयोगो के लिए व्यक्तियों के चुनाव के लिए होना आरम्भ हो गया है ।

अभिक्षमता भविष्य की सम्भावनाओं की ओर सकेत करती है । यह एक योग्यता नही है किन्तु यह कुछ विशिष्ट योग्यताओ का पूर्वानुमान करने मे सहायता अवश्य देती है । एक अभिक्षमता का परीक्षण योग्यताओ एवं कलाओं को प्रकाशित कर सकता है किन्तु परीक्षण का महत्त्व इस बात मे है कि वह सम्भावित योग्यताओं और कलाओ को प्रकाशित करे ।

इस समय अनेक अभिक्षमता-परीक्षण प्राप्त हैं। जनरल एप्टीट्यूड टेस्ट[1] (GATB) जिसका विकास अमरीका की नियोजन सेवा द्वारा किया गया विभिन्न व्यवसायों एवं कार्यों के क्षेत्रों में सफलता के पूर्वानुमान सम्बन्धी बहुत लाभदायक सूचना देता है । इस परीक्षण मे निम्नलिखित योग्यताओ की माप की जाती है : G—बुद्धि[2], V—मौखिक अभिक्षमता[3], N—संख्या सम्बन्धी अभिक्षमता[4], S—स्थान-विषयक अभिक्षमता[5], P—आकृति प्रत्यक्षीकरण[6], Q—लिपिक प्रत्यक्षीकरण[7], K—गतिगामी समन्वय[8], F—अंगुल कुशलता[9], एवं M—हस्त कुशलता[10] ।

---

1. General Aptitude test battery 2. G. Intelligence. 3. V—Verbal Aptitude. 4. N—Numerical Aptitude. 5 S—Spatia Aptitude. 6 P—Form Perception. 7. Q—Clerical Perception 8. K—Motor Coordination. 9. Finger dexterity. 10 M—Manua dexterity.

एक अन्य अभिक्षमता-परीक्षण मल्टीपल एप्टीट्यूड टेस्ट[1] (MAT) है जिसका प्रकाशन कैलीफोर्निया के परीक्षण ब्यूरो ने किया। यह निम्न योग्यताओं के मापन की ओर ध्यान देता है : मौखिक धारण शक्ति (शाब्दिक अर्थ, अनुच्छेद-अर्थ, भाषा-प्रयोग)[2], प्रत्यक्षीकरण गति (भाषा-प्रयोग, साधारण क्लर्की योग्यता),[3] संख्या तर्क (गणितिज्ञ-तर्क, गणितिज्ञ-संगणना)[4] एवं स्थानीय सन्दर्शन (प्रयोगात्मक विज्ञान, एवं मशीन विज्ञान, स्थान-सम्बन्ध—दो आयाम मे, स्थान-सम्बन्ध—तीन आयाम मे)[5]। MAT का प्रयोग अधिकतर शैक्षिक निर्देशन मे किया जाता है।

बहुत-से अन्य प्रकार के अभिक्षमता-परीक्षण बनाये जा चुके हैं। इनमे से सबसे मुख्य वह हैं जो एक व्यवसाय को चुनने के सम्बन्ध मे हैं।

(४) रुचि-अभिज्ञापक प्रश्नावली[6]—रुचि-अभिज्ञापक प्रश्नावली मे एक व्यक्ति की रुचियों की दूसरे किसी भी व्यवसाय मे सफल व्यक्ति की रुचियो से तुलना की जाती है। इस तुलना द्वारा हमें यह पता लग जाता है कि व्यक्ति की रुचि किस प्रकार के व्यवसाय मे है, और इस प्रकार उसे जीविकोपार्जन सम्बन्धी उचित निर्देशन दे दिया जाता है, जैसे—यदि किसी व्यक्ति की रुचियाँ विज्ञान में रुचि रखने वाले उच्च सहसम्बन्ध प्रदर्शित करती हैं तो हम उस व्यक्ति को वैज्ञानिक बनने का निर्देशन कर सकते हैं। रुचि-अभिज्ञापक प्रश्नावली साधारणतया परीक्षण के रूप मे नही है। उनमे प्रश्नो के दिए गए उत्तरो को भी हम सही अथवा गलत नही कहते। व्यक्ति केवल यह देखता है कि विभिन्न प्रकार की स्थितियो मे उसकी अरुचियाँ और रुचियाँ क्या हैं ?

बिंगहम[7] महोदय कहते हैं कि चार कारणो से हमें एक व्यक्ति की व्यावसायिक रुचियो का पता लगाना चाहिए। व्यावसायिक रुचियो का पता लगाने से हमे यह पता चल जाता है कि (१) क्या मनुष्य एक विशेष प्रकार का कार्य करने मे सन्तुष्ट रहेगा ? (२) क्या वह व्यक्ति उन्हीं वस्तुओं में रुचि रखेगा जिनमें उस व्यवसाय में और दूसरे काम करने वाले रुचि रखते हैं ? तात्पर्य यह है कि क्या उसके सम्बन्ध दूसरे कर्मचारियों से अच्छे रहेंगे ? (३) क्या व्यक्ति की रुचि उस कार्य मे है ? एक व्यक्ति उन्हीं कार्यों मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है, जिनमें उसकी रुचि हो। परन्तु

1. Multiple Aptitude test. 2. Verbal Comprehession (word meaning, paragraph meaning, language usage). 3. Perceptual speed (language usage, routine clerical ability).

4. Numerical Reasoning (arithmatic reasoning, arithmatic computation).

5. Spatial visualization (applied science and machanics, spatial relations-two dimensions, spatial relations—three dimensions.

6. Interest Inventory. 7. Bingham.

यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि एक विषय मे उच्च रुचि सदैव उस विषय मे उच्च सफलता की द्योतक नही है। (४) क्या व्यक्ति का ध्यान उस ओर दिलाया गया है जिस ओर उसकी रुचि है ? रुचि का पता लगाने मे व्यक्ति का ध्यान उन क्रियाओ के क्षेत्र की ओर दिलाया जा सकता है जिनके सम्बन्ध मे उसने कभी कोई विचार न किया हो। तात्पर्य यह है कि उसका ध्यान उस व्यवसाय की ओर केन्द्रित किया जा सकता है जिसकी ओर उसने अपने साधारण जीवन मे कोई ध्यान नही दिया है।

जो रुचि-अभिज्ञापक प्रश्नावली बहुत अधिक प्रयोग मे हैं, वह हैं—(१) स्ट्राग की 'वोकेशनल इन्टेरेस्ट ब्लेन्क'[1], (२) केवल पुरुषों के लिए क्लीटन की 'वोकेशनल इन्टेरेस्ट इन्वेन्टरी'[2], (३) थर्स्टन का 'वाकेशनल इन्टेरेस्ट शिड्यूल'[3], (४) भारतवर्ष मे भी कई रुचि-अभिज्ञापक प्रश्नावलियों का निर्माण हो गया है। इनमे से एक अलीगढ से प्रकाशित की गई है। यह प्रश्नावली अधिकतर दूसरे देशो की प्रश्नावली के ही आधार पर है जो भारतीय बालको के लिए निर्मित की गई है।

(५) व्यक्तित्व का परीक्षण—इस सम्बन्ध मे हम अध्याय २३ मे वर्णन कर चुके हैं।

बुद्धि एवं उपलब्धि[4]

यह विश्वास किया जाता है कि जिसकी बुद्धि-लब्धि अधिक होगी, उसकी उपलब्धि की क्षमता भी अधिक होगी। इसका कारण दो विभिन्न सिद्धान्तो द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रथम सिद्धान्त यह मानता है कि ज्ञान-ग्रहण क्षमता की वास्तविक माप बुद्धि ही है। बुद्धि ही यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति कितना ज्ञान ग्रहण कर सकता है। दूसरा सिद्धान्त यह मानता है कि बुद्धि केवल ज्ञानोपार्जन की बहुत ही सामान्य रूप से माप है। बुद्धि-परीक्षा हमें यह बताती है कि व्यक्ति ने जीवन के विभिन्न पहलुओं से कितना सीखा है और यह सब उसे विद्यालय की शिक्षा मे किस सीमा तक सफल बनायेंगे।

पहला सिद्धान्त : जो बुद्धि को एक क्षमता[5] के रूप मे रखता है, एक अन्य प्रकार की लब्धि के विचार को हमारे समक्ष रखता है जिसे हम उपलब्धि-लब्धि[6] कहते हैं।

उपलब्धि-लब्धि (उ० ल०) अथवा A. Q निकालने के लिए मानसिक आयु[7] एवं शिक्षा आयु[8] की माप की आवश्यकता पड़ती है। इन दोनो के सम्बन्ध मे हमने क्रमशः अध्याय ८ एवं २१ मे वर्णन किया है।

---

1 Strong's Vocational Interest Blank. 2. Clutan's Vocational Interest Inventory. 3. Thurston's Vocational Interest Schedule. 4. Intelligence & Achievement. 5. Capacity. 6 Accomplishment Quotient. 7. M. A. 8. E. A.

गणित में यह '५५ आया और सुलेख मे '०८। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा एवं बुद्धि में बुद्धि एव सुलेख के तुलनात्मक घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह ठीक भी प्रतीत होता है क्योंकि सामान्य आकस्मिक कार्यों में क्षमता भाषा-ज्ञान पर ही अधिक प्रभावशाली हो सकती है, अतएव बुद्धि-परीक्षा मे उच्च श्रेणी पाने वाले बालक के सम्बन्ध मे कुछ सीमा तक यह कहा जा सकता है कि वह वाचन या अन्य भाषा-सम्बन्धी कार्य इत्यादि सीखने मे अधिक सफल हो सकता है।

किन्तु ज्ञानोपार्जन मे सफलता के कुछ संकेत ही बुद्धि-परीक्षा से मिल सकते हैं। आगे चलकर बालक सफल होगा या नही, यह बुद्धि-परीक्षण पर ही केवल निर्भर नहीं है। इसलिए बुद्धि-परीक्षा के आधार पर ही विद्यालय में प्रवेश देना कोई बहुत वैज्ञानिक विधि नही होगी।

एक अन्य तत्व पर यहाँ ध्यान देना आवश्यक है। यह सदैव सही नही होता कि हम किसी बालक की बुद्धि-लब्धि जो भविष्य मे होगी, उसके वर्तमान की बुद्धि-लब्धि से वर्णन कर दें। उन बालको का दो वर्ष के थे और नर्सरी विद्यालयो में पढ रहे थे, बुद्धि-लब्धि विभिन्न पायी गयी जब उन्ही की बुद्धि-लब्धि उस समय निकाली गयी जब वह हाई स्कूल मे पढ रहे थे। हारवर्ड[1] के एक अध्ययन मे यह पाया गया कि सात वर्ष और सोलह वर्ष की आयु मे उन्ही बालको के मानसिक अङ्को मे केवल '५० से कुछ अधिक ही सहसम्बन्ध था।

एक अध्ययन कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय[2] मे बुद्धि-लब्धि की स्थिरता पर किया गया। इस अध्ययन के परिणामो ने यह प्रदर्शित किया कि छ' से अठारह वर्षों के बीच मे लगभग साठ प्रतिशत बालको की बुद्धि-लब्धि मे पन्द्रह या कुछ अधिक का अन्तर आ गया। समूह के एक-तिहाई बालको की बुद्धि-लब्धि मे २० या अधिक परिवर्तन हुआ। नौ प्रतिशत की बुद्धि-लब्धि ३० या अधिक बदली। पन्द्रह प्रतिशत की बुद्धि-लब्धि मे १० से कम परिवर्तन हुआ।

यह देखने की बात है कि कुछ व्यक्तियो की बुद्धि-लब्धि ५० तक घटी-बढी। इन परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धि-लब्धि के एक ही परीक्षण के आधार पर बुद्धि-लब्धि निर्धारित नहीं करनी चाहिए। यह बात इसलिए और ध्यान देने की है कि विद्यालय, अपचार सम्बन्धी न्यायालय तथा मानसिक आरोग्य अस्पताल एक ही मानसिक परीक्षण पर अपनी धारणा केन्द्रित करते हैं। यह याद रखना चाहिए कि

1. Anderson, J. E. "The Prediction of terminal intelligence from Infant and Pre-School Tests", *Intelligence : Its Nature & Nurture*, Part I, Thirty-Ninth Year Book of the National Society study of education, 1940, pp. 385-403.

2. Hoznik, H. P, Macfareane, J. W. etc. : "The stability of test Performance between two and eighteen years," *Journal perimental Education*, Vol 17, 1948, pp. 309-324.

केवल एक बुद्धि-परीक्षण के आधार पर हम विद्यार्थी की विद्यालय में सफलता तथा असफलता को निर्धारित नहीं कर सकते।

विभिन्न प्रकार के परीक्षणों को हम कई प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं। एक प्रकार का वर्गीकरण जो परीक्षा के आधार और रूप पर निर्भर है, इस प्रकार है—(i) मौखिक प्रश्नावली, (ii) निबन्धात्मक परीक्षा, तथा (iii) वस्तुनिष्ठ परीक्षा। हम यहाँ निबन्धात्मक परीक्षा तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षा के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे तथा उनकी तुलना करेंगे। मौखिक प्रश्नों का उपयोग कक्षा में पढ़ाते समय तो बहुत है परन्तु परीक्षा के रूप में जो ज्ञानोपार्जन की योग्यता को बताए, उनका उपयोग बहुत सीमित है।

निबन्धात्मक परीक्षा

निबन्धात्मक परीक्षा में अध्यापक गिने-चुने प्रश्नों को विद्यार्थियों की विवेचना या वर्णन के रूप में हल करने को देता है। यह प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के जो विद्यार्थियों ने परीक्षा होने तक पढ़ा है, प्रतिनिध्यात्मक रूप में होते हैं। परन्तु बहुधा अध्यापक बिना यह ध्यान दिये हुए कि वह सारे पाठ्यक्रम पर आधारित हैं, उन्हें बना देता है और परिणामत. वह सारे पाठ्यक्रम के प्रतिनिधि न होकर किसी एक या एक से अधिक भाग का प्रतिनिधित्व कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी बातें भी हैं जिन पर इस प्रकार की परीक्षाएँ उन पर बहुत अधिक बल देने से उन्हें त्रुटिपूर्ण बना देती हैं, जैसे—भाषा के ज्ञान पर बल, शब्द-कोश के विस्तृत ज्ञान पर तथा लिखने में स्वच्छता एवं सुन्दरता पर विषय के ज्ञान से अधिक बल देना। हमारे देश में यही परीक्षा प्रणाली अपनायी जा रही है, जिसके अन्दर अनेक दोष आ गये हैं, और फलत जो परीक्षाएँ हो रही हैं, वे विद्यार्थियों का उचित मूल्याङ्कन करने में असफल हैं। इस प्रकार की परीक्षाओं के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं .

(१) यह परीक्षाएँ अविश्वासी, अपर्याप्त तथा वैधता रहित होती हैं।

(२) यह व्यक्तिगत होती हैं। वही परीक्षक विभिन्न अंक उन्हीं व्यक्तियों के उन्हीं उत्तरों पर विभिन्न समय पर देता है। एक परीक्षक एक विद्यार्थी के उत्तर पर यदि आज कुछ अंक देता है तो यह बहुत सम्भावित है तथा कई अध्ययनों[1] के आधार पर भी यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि ६ माह बाद वह उसी उत्तर पर विभिन्न अक देगा। भारत में कभी-कभी एक परीक्षक सैकड़ों कॉपियाँ जाँचता है और उसके पास उनको जाँचने का पर्याप्त समय नहीं होता। अतः फल यह होता है कि उत्तरों की जाँच सावधानीपूर्वक नहीं हो पाती।

(३) बहुत-सी अप्रासंगिक बातें निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर में जोड़ दी जाती हैं।

---

1. P. Hartog · *An Examination of Examinations*, MacMillan, 1935.

(४) इस प्रकार की परीक्षाएँ बालकों में अस्वस्थ प्रतियोगिता[1] को प्रोत्साहित करती हैं और स्मरण करने की योग्यता को अधिक मूल्यवान समझती हैं।

(५) इन परीक्षाओं द्वारा विद्यार्थी की योग्यता का मूल्यांकन नहीं होता है। वह सस्ती सहायक पुस्तकें पढ़ता है। प्रश्नोत्तर रूप में बाजार में सस्ते नोट्स का अध्ययन करता है, और यदि उसका रटा हुआ प्रश्न आ जाता है तो वह सबसे बाजी मार ले जाता है। यह परीक्षाएँ जिस रूप में हमारे देश में दी जा रही हैं, उनमें उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से दोष सम्मिलित हो गए हैं। वे इस प्रकार हैं :

(i) परीक्षा बालकों के स्वास्थ्य पर अनुचित प्रभाव डालती है। परीक्षा के दिन नियत होते हैं और उन दिनों में विद्यार्थी १२-१४ घण्टे तक पढ़ता है, फलतः उस पर अधिक भार पड़ता है और अनियमित दिनचर्या उसके स्वास्थ्य को नष्ट कर देती है।

(ii) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत-से बालक जो साधारण हैं, असाधारण हो जाते हैं और उनके व्यक्तित्व का सन्तुलन नष्ट हो जाता है। यह परीक्षा अवसरवादी रूप रखने के कारण बहुत-से विद्यार्थियों के जीवन पर बुरा प्रभाव डालती है और उनमें से बहुत-से स्नायु-दोषी तथा रोगी हो जाते हैं।

(iii) इसके अतिरिक्त विद्यार्थी प्रश्नपत्रों में आने वाले प्रश्नों को अनुचित रूप से जानने की चेष्टा करते हैं और नकल आदि करने को तत्पर रहते हैं।

उपर्युक्त तीन दोष वास्तव में परीक्षा-प्रणाली के दोष हैं, न कि स्पष्ट रूप से निबन्धात्मक परीक्षाओं के।

निबन्धों के गुण के निर्णय पर एक प्रयोग

यहाँ हम अमरीका की एजूकेशनल टेस्टिङ्ग सर्विस डेवलपमेन्ट्स[2] द्वारा किए गए एक प्रयोग का वर्णन कर रहे हैं। अमरीका के तीन पूर्वी कॉलिजों में १५० फ्रेशमेन कक्षा के विद्यार्थियों को "Who should go to College ?" विषय पर निबन्ध लिखने को दिया गया एवं इसी कक्षा के १५० अन्य विद्यार्थियों को एक अन्य विषय "When should teen-agers be treated like adults ?" पर निबन्ध लिखने को कहा गया।

इन ३०० निबन्धों को ५३ निर्णायकों को जाँचने को दिया गया। यह ५३ निर्णायक उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों से थे। इनमें कॉलेज के अंग्रेजी के प्राध्यापक, वैज्ञानिक, लेखक, सम्पादक, वकील, कानून के अध्यापक एवं अधिकारी वर्ग सम्मिलित थे। प्रत्येक ५३ निर्णायक ने सभी ३०० निबन्ध पढ़े तथा प्रत्येक पर ग्रेड

1. Competition.

2. "Judges disagree on qualities that characteriz[e] [w]riting", *Educational Testing Service Developments*, 1961,

दान किये । इसके अतिरिक्त प्रत्येक निबन्ध पर अपना विचार व्यक्त किया कि उसमें उन्होंने क्या पसन्द किया और क्या नापसन्द किया । किसी भी निर्णायक को दूसरे के अङ्क नही दिखाये गये, न ही उन पर दिये हुए विचार । न ही निर्णायकों को कोई तालिका या निर्देश अङ्क देने के सम्बन्ध में दिये गये । ग्रेड १ से ६ तक दिये जा सकते थे ।

यह पाया गया कि १०० निबन्धों में सबसे अधिक असहमति थी । इन निबन्धों में ग्रेड १ से ६ तक दिये गये । दूसरे १०० निबन्धों में ८ ग्रेड के बीच अङ्क दिये गये तथा जिस निबन्ध पर सबने अधिक सहमति थी, वह ५ ग्रेड के विस्तार में थी । इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि निबन्धों के मूल्यांकन पर तथा उनके गुणों पर जो विभिन्न व्यक्ति अच्छे समझते हैं, बहुत मतभेद है । यह मतभेद अध्यापकों में भी उतना ही अधिक था जितना अन्य व्यक्तियों में ।

हम यहाँ यह भी कह सकते हैं कि निबन्धात्मक परीक्षाएँ पूर्ण रूप से त्रुटि-पूर्ण हों—ऐसा नहीं है, उनमे बहुत-से गुण भी हैं । यदि इन परीक्षाओं का निर्माण उचित रूप से किया जाये तो यह परीक्षाएँ अति उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं । इन परीक्षाओं के गुण इस प्रकार हैं :

१ निबंधात्मक प्रश्न-रचना सरल होती है । हर विषय में यह प्रश्न सरलता से बनाये जा सकते हैं ।
२ विद्यार्थियों का परीक्षण करने की इनकी विधि भी सरल होती है ।
३ विद्यार्थियों को निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर देने में स्वतन्त्रता होती है । वे अपने विचार प्रकट कर सकते है और उत्तर बिना किसी संकोच या बन्धनों के लिख सकते हैं ।
४. भाषा के ज्ञान का उचित परीक्षण निबन्धात्मक परीक्षणों में हो जाता है ।

हम निबन्धात्मक परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठता का समावेश कर सकते हैं, यदि प्रश्न-रचना मे सुधार करें और मूल्यांकन के अच्छे ढङ्ग अपनाएँ ।

(अ) प्रश्न-रचना मे सुधार—प्रश्न-रचना मे निम्नलिखित सुधारों को करने से इन परीक्षाओं मे वस्तुनिष्ठता बढ़ जाती है, यथा—

१. प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का ध्यान में रखकर बनाने चाहिए, जिससे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की जाँच सम्भव हो ।
२ प्रश्नपत्रों में प्रश्नों का क्रम इस प्रकार हो कि सरल प्रश्न पहले आएँ और कठिन बाद मे । इस प्रकार प्रत्येक स्तर के विद्यार्थी को प्रश्न हल करने को मिल जायेंगे ।
३. सब प्रश्न अनिवार्य रूप से करवाने चाहिए ।
४. प्रश्नों के निर्माण में मौलिकता तथा रचनात्मक प्रवृत्ति को उभारने पर ध्यान देना चाहिए ।

५. प्रश्न विषय के सम्बन्ध में इस प्रकार से होने चाहिए जो उस प्रकरण के बनाने के ध्येय को प्राप्त करने में सहायक हों।

(ब) मूल्यांकन में सुधार—मूल्यांकन में सुधार के लिए परीक्षक को चाहिए कि प्रथम कुछ उत्तरों को पढ़कर जिनमें कुछ अच्छे और कुछ बुरे ढंग के हों, अपने मापदण्ड को निर्धारित करे। उत्तरों को ५ श्रेणियों में विभाजित करना अच्छा समझा जाता है। यह श्रेणियाँ 'श्रेष्ठ' से आरम्भ होकर 'अधम' तक जाती हैं। उत्तरों की जाँच इसी श्रेणी-क्रम के अनुसार होनी चाहिए।

मूल्याङ्कन में वस्तुनिष्ठता लाने के लिए विद्यार्थी के नाम इत्यादि नहीं लिखे जाने चाहिए। परीक्षक को यह भी चाहिए कि वह जो मुख्य बातें उत्तर में समझता है, दी जायँ—उनको स्पष्ट रूप से समझकर अपने पास लिख ले।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ · अध्यापक-निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ

यह दो प्रकार की होती है। एक तो मानकीकृत वस्तुनिष्ठ परीक्षा[1] तथा दूसरी अध्यापक-निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षा[2]। इन दोनों प्रकार की परीक्षाओं में मूल अन्तर यह है कि एक परीक्षा तो मानकीकरण करके दी जाती है और यह विशेषज्ञों द्वारा निर्मित होती है, जबकि दूसरी का निर्माता अध्यापक स्वयं होता है। पहली का सामान्य रूप से प्रयोग किया जा सकता है, जबकि दूसरी का उपयोग विशेष स्थानों पर विशेष रूप में ही हो सकता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण—१. इनमें अधिक वस्तुनिष्ठता होती है।

२. यह अधिक विश्वासी होती हैं।
३. यह माप सही रूप में करती हैं। इनके द्वारा किया हुआ मूल्याङ्कन मापदण्ड के प्रत्येक बिन्दु पर समान होता है।
४. यह अधिक समग्र रूप[3] से माप करती है।
५. इनको सरलता से बालकों को दिया जा सकता है और इनके उत्तरों की जाँच बहुत शीघ्र हो जाती है जिससे परीक्षक को बहुत कम श्रम करना पड़ता है।
६. इनके द्वारा प्राप्त परिणामों को सरलता से अर्थ प्रदान किया जा सकता है।
७. यह कई रूप में दी जा सकती हैं। तात्पर्य यह है कि इनमें कई प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जा सकता है।

1 Standardized Objective Tests. 2. Teacher-made Objective
3. Comprehensive.

वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में प्रश्नों की शैलियाँ[1]—वस्तुनिष्ठ परीक्षणो मे प्रश्नो की संख्या बहुत अधिक होती है। यह प्रश्न छोटे तथा निश्चित रूप मे ही होते हैं। इनमे कई शैलियों के प्रश्नो का समावेश कर दिया जाता है। मुख्यतः शैलियाँ चार प्रकार के प्रश्नो को प्रदर्शित करती हैं। वे इस प्रकार हैं : (१) रिक्त स्थान-पूर्ति[2], (२) सत्यासत्य विवेचन[3], (३) बहुसंख्य विवेचनात्मक प्रश्न[4], तथा (४) समन्वयात्मक प्रश्न[5]।

(१) रिक्त स्थान-पूर्ति प्रश्न—इस प्रकार की शैली के प्रश्नो मे प्रश्न कथन के रूप मे होता है, जिसमें बीच का कोई स्थान रिक्त छोड़ दिया जाता है, जहाँ पर महत्वपूर्ण शब्द को बालक को भरना होता है, जैसे—

निम्न प्रश्नो मे रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

१. न्यूटन महोदय एक प्रसिद्ध······ थे।

२. एक रुपए मे······पैसे होते हैं।

३. अकबर की मृत्यु के बाद·······शहंशाह हुआ, आदि।

(२) सत्यासत्य विवेचनात्मक प्रश्न—यह प्रश्न सत्यासत्य रूप मे किसी कथन का उत्तर चाहते हैं, जैसे—

निम्न प्रश्नो मे 'अ' या 'स' लिखकर उनको असत्यता (अ), सत्यता (स) से बताना है—

१ आगरे का लाल किला शाहजहाँ ने बनवाया था। ( )

२. $(अ+ब)^2 = अ^2 + २ अ ब + ब^2$ ( )

३. ऑक्सीजन गैस ज्वलनशील है। ( )

इस प्रकार के प्रश्नो के बनाने मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सत्यासत्य प्रश्नावली जितनी बडी होगी, उतनी ही विश्वसनीय होगी। इसमे कथन अध्यापक की अपनी भाषा मे होना आवश्यक है, न कि पुस्तक की भाषा की प्रतिलिपि मे। आधे प्रश्न लगभग सत्य तथा आधे असत्य होने चाहिए।

(३) बहुसंख्य विवेचनात्मक प्रश्न—इनमे एक प्रश्न के उत्तर मे बहुसंख्य वर्णन होते हैं। परीक्षार्थी से कहा जाता है कि जो उत्तर उपयुक्त हो, उन पर चिन्ह लगा दे, जैसे—

निम्नलिखित प्रश्नो मे तीन कारणो मे से एक ही सत्य है, उस पर × का निशान लगा दीजिए :

१. बिजली के बल्ब मे—

(अ) एमोनिया गैस होती है······

(ब) ऑक्सीजन गैस होती है······

(स) निष्क्रिय गैस होती है······

---

1. Items in Objective Tests. 2. Completion Tests. 3. True-false Type. 4. Multiple-choice Items. 5. Matching Items.

२. अजन्ता प्रसिद्ध है—
(अ) चित्रकारी के लिए·······
(ब) मूर्तिकला के लिए·······
(स) भव्य भवनो के लिए·······

३. दिल्ली से दौलताबाद राजधानी उठा ले जाने वाला—
(अ) मुहम्मद गौरी था·······
(ब) मुहम्मद तुगलक था·······
(स) अलाउद्दीन खिलजी था·······

इस प्रकार के प्रश्नो मे यह बात याद रखने योग्य है कि प्रत्येक उत्तर विश्वसनीय लगना चाहिए। वैकल्प उत्तर की लम्बाई प्रत्येक प्रश्न मे समान होनी चाहिए।

(४) समन्वयात्मक प्रश्न—इन प्रश्नो मे दो कथनो को जो एक-दूसरे से समन्वय प्रकट करते हैं, छाँट लेना होता है; जैसे—

निम्नलिखित मे शहरो के नाम तथा उनकी प्रसिद्धि के कारण दिये हुए हैं। शहरो के नाम के आगे वह संख्या अंकित करनी है, जो उससे सम्बन्धित है :

प्रसिद्धि के कारण	शहर	
१. राजधानी	आगरा	( )
२. बन्दरगाह	दिल्ली	( )
३. कपडे के कारखाने	कलकत्ता	( )
४. ताजमहल	सिन्दरी	( )
५. खाद की उद्यानशाला		
६. कागज बनाने के कारखाने		

इन प्रश्नो के बनाने मे यह ध्यान रखना चाहिए कि दोनो पक्षो की सूची मे कम से कम दो का अन्तर आवश्यक है। कथन जहाँ तक सम्भव हो, छोटे होने चाहिए।

एक अच्छी परीक्षा किसे कहेंगे ?[1]

एक अच्छी परीक्षा की विशेषताओ को इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

१. एक अच्छी परीक्षा को वास्तव मे उसी तथ्य का मूल्यांकन करना चाहिए जिसके लिए वह निर्मित की गई है।[2] इसे वैधता[3] कहते हैं।
२. इस प्रकार की परीक्षाओं के मूल्याङ्कन मे स्थायित्व होना चाहिए और यह ठीक होना चाहिए।[4] इसको विश्वसनीयता[5] कहते हैं।
३. यह वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए।[6]

makes a good examination ? 2. A good test must what is supposed to measure. 3. Validity. 4. It ally and consistantly. 5. Reliability. 6. It must

४. इसके द्वारा अच्छे और बुरे विद्यार्थियो मे अन्तर ज्ञात होना चाहिए। इसको विभेदकता[1] कहते हैं।
५. इसमे इतने प्रश्न आदि होने चाहिए कि यह परीक्षा समग्र रूप से मूल्याङ्कन कर सके। इसे हम समग्रता[2] कह सकते हैं।
६. इसका उपयोग सरलता से होना आवश्यक है। इसे हम व्यावहारिकता[3] कह सकते हैं।

अब हम यहाँ संक्षेप मे इन छः विशेषताओ पर प्रकाश डालेंगे; यथा—

(१) वैधता—एक परीक्षा को वैध हम तभी कह सकते हैं जब वह उसी वस्तु या योग्यता को नापती है जिसके लिए वह निर्मित है। अतः एक परीक्षा को इस उद्देश्य की पूर्ति करनी चाहिए जो उपयोग करने वाले के मस्तिष्क मे है।

किसी परीक्षा की वैधता को निकालने का कोई सरल सूत्र नही है। एक परीक्षा एक उद्देश्य को प्राप्त करने मे वैधता को पूरा कर सकती है, परन्तु वह परीक्षा दूसरे उद्देश्यो के लिए वैधता रहित भी हो सकती है। वैधता एक विशिष्ट रूप मे ही कही जा सकती है।

(२) विश्वसनीयता—एक विश्वसनीय परीक्षा वह है, जिसमे सत्य ।ा से मूल्याङ्कन हो जाता है। बालक की इस परीक्षा द्वारा मापी हुई योग्यता के मूल्याङ्कन मे जब स्थायित्व होता है, तब हम उस परीक्षा को विश्वसनीय कहते हैं। विश्वसनीयता उच्च होती है—यदि विभिन्न समय मे वही परीक्षा एक योग्यता की माप उसी सत्यता से करती है।

(३) वस्तुनिष्ठता—हम वस्तुनिष्ठ परीक्षाओ के गुणो पर पीछे प्रकाश डाल चुके हैं। वस्तुनिष्टता एक परीक्षा के दो रूप मे देखी जा सकती है। एक तो परीक्षा मे अङ्क प्रदान करने मे, दूसरे, विभिन्न परीक्षा के प्रश्नों का अर्थ उस व्यक्ति द्वारा प्रदान करने मे जो परीक्षा दे रहा है। प्रथम से तात्पर्य यह है कि परीक्षक के व्यक्तिगत निर्णय का परीक्षा के प्राप्ताङ्को पर प्रभाव नही पड़ना चाहिए। कई परीक्षक परीक्षा लें और उसी निर्णय पर आएँ तब परीक्षा वस्तुनिष्ठ कहलायेगी। इसका अभाव निबन्धात्मक परीक्षाओं मे होता है।

दूसरे रूप से तात्पर्य यह है कि प्रश्न ऐसे उलझे हुए न हो कि हरएक व्यक्ति जो परीक्षा दे रहा है, उन प्रश्नो का अर्थ अलग-अलग समझे। एक प्रश्न के दो-तीन अर्थ वस्तुनिष्ठता कम कर देते हैं क्योकि फिर उनके स्तरों में भी विभिन्नता आ जाती है और व्यक्तिगत खण्डो का प्रभाव पड़ जाता है।

(४) विभेदकता—एक परीक्षा के वास्ते यह नितान्त आवश्यक है कि वह अच्छे और बुरे विद्यार्थियो मे विभेद कर सके। परीक्षा मे ऐसे प्रश्न न होने चाहिए जो कठिन हो और जिन्हें केवल अच्छे विद्यार्थी ही हल कर सकें। ऐसे प्रश्न भी होने

1. Discrimination. 2. Comprehensiveness. 3. Usability.

चाहिए जो सरल हों और उन्हें सभी विद्यार्थी कर सकें। वास्तव में प्रश्न सरल से लेकर क्रमशील रूप में कठिनता की ओर बढ़ने चाहिए।

(५) समग्रता—एक परीक्षा मे इतने प्रश्न होने चाहिए कि वह उस योग्यता की माप समग्र रूप से कर सके, जिसके लिए वह बनाई गई है। अनएव यथार्थता के लिए समग्रता का होना अति आवश्यक है। यह समग्रता किसी परीक्षा मे लाना सरल नही है, फिर भी यदि अध्यापक कक्षा के किसी भी विषय मे प्रश्नपत्र बना रहा है तो उसे चाहिए कि इतने प्रश्न उसमे रखे कि बालक के ज्ञानोपार्जन का उस विषय मे पूर्ण रूप से परीक्षण हो जाए।

(६) व्यावहारिकता—परीक्षा मे व्यावहारिकता का होना आवश्यक है। परीक्षा बनाने मे उन बातो पर ध्यान देना आवश्यक है जो शिक्षक की सरलता और सुगमता से बालको को परीक्षा देने मे सहायता करती हैं। इसके अतिरिक्त परीक्षा का मूल्याङ्कन भी सरलता से हो जाना आवश्यक है। परीक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि बालक शीघ्र ही प्रश्न का उत्तर दे सके, और हरएक प्रश्न पर अध्यापक शीघ्रता तथा कुशलता से अङ्क प्रदान कर सके।

मूल्यांकन की क्या उपयोगिता है ?

हमने यह पाठ 'मूल्याकन क्यो' से आरम्भ किया था और अब अन्त में हम फिर उसी प्रश्न का उत्तर और पूर्ण रूप से देने की चेष्टा करेंगे।

मूल्याकन आवश्यक है, क्योंकि इसकी विभिन्न उपयोगिताएँ हैं। इसमे मुख्य निम्न हैं :

(१) मूल्यांकन द्वारा शिक्षण मे उन्नति सम्भव है—मूल्याकन के द्वारा हमे यह पता चल जाता है कि शिक्षा के जो उद्देश्य हैं, उनमे हम कहाँ तक सफल हुए हैं। मूल्याकन द्वारा हमे अपने दिये गए शिक्षण की सफलता तथा असफलता का ज्ञान हो जाता है। जिन विधियों द्वारा हमने शिक्षण मे सफलता प्राप्त की है उन्हें हम अपनाए रहते हैं। परन्तु जब हमे शिक्षण मे असफलता दिखाई देती है तो हम उन विधियों मे उचित परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं जिनके द्वारा हमने शिक्षा दी है।

(२) मूल्यांकन उद्देश्यों को स्पष्ट करने में सहायता प्रदान करता है—मूल्याकन उद्देश्यो पर ही आधारित होता है। एक अध्यापक जब कोई विषय पढाता है तो मूल्याकन द्वारा उसे विषय के विभिन्न प्रकरणो के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। वह हर प्रकरण के उद्देश्य को समझने की इस प्रकार से चेष्टा करता है कि वह मूल्याकन मे क्या महत्त्व रखते हैं।

(३) मूल्यांकन अच्छे सीखने की प्रेरणा देता है—विद्यार्थी विभिन्न प्रकरणो के उद्देश्यों को समझ कर सीखने की चेष्टा करते हैं, क्योंकि वे यह जान लेते हैं कि उनके सीखने का माप परीक्षण द्वारा ही होगा। यह परीक्षाएँ जो नवीन प्रणाली पर आधारित होती हैं, मूल्याकन प्रकरणो के उद्देश्य के आधार पर ही करती हैं और

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। अतः विद्यार्थी विषय को अच्छी प्रकार सीखने की चेष्टा करते हैं, जिससे वे परीक्षा मे सफल हो सकें।

(४) मूल्यांकन के आधार पर निर्देशन दिया जा सकता है—मूल्याकन द्वारा व्यक्तिगत विभिन्नता स्पष्ट हो जाती है, अत. यह निर्देशन देने मे अत्यन्त उपयोगी है। योग्यता की माप के आधार पर बालक को जीविकोपार्जन या शिक्षा-निर्देशन दिया जा सकता है।

(५) मूल्यांकन के आधार पर पाठ्यक्रम में अन्तर लाया जा सकता है—संसार प्रगति की ओर बढ रहा है। शिक्षा मे अनुसंधान दिन-प्रतिदिन नए सिद्धान्त हमारे समक्ष रख रहे हैं। यह सब इस बात के द्योतक हैं कि पाठ्यक्रम स्थिर नहीं रह सकता। उसमे परिवर्तन होते रहने चाहिए। मूल्याकन की उपयोगिता इस दृष्टि से भी है।[1]

अन्त मे, हम कह सकते हैं कि हमारे देश मे मूल्याकन की नवीन प्रणाली शीघ्र अपनाने की आवश्यकता है, अन्यथा शिक्षा-प्रणाली में सुधार कभी भी सम्भव नहीं होगा।

सारांश

शिक्षा मे मूल्याकन क्यों आवश्यक है ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि इसके द्वारा यह पता चलता है कि—(१) शिक्षा के उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो गये हैं, (२) विभिन्न विषयो के प्रयोजन किस सीमा तक प्राप्त हो गये हैं, तथा (३) कक्षा-शिक्षण किस सीमा तक प्रभावशाली है।

मूल्याकन द्वारा हम किसी भी योग्यता की माप कर सकते हैं परन्तु उसे माप करने के लिए विश्वासी मापन-यन्त्रों की आवश्यकता है। हम इन मापन-यन्त्रों द्वारा उपलब्धि, बुद्धि, अभिक्षमता, रुचि तथा चरित्र की माप कर सकते हैं। उपलब्धि-परीक्षा मे अर्जित ज्ञान की माप की जाती है। यह परीक्षण दो प्रकार के होते हैं—(१) सामान्य ज्ञानोपार्जन परीक्षण, तथा (२) सैद्धान्तिक परीक्षण। ज्ञानोपार्जन परीक्षण चार प्रकार से दिये जा सकते हैं—(अ) मौखिक परीक्षा, (ब) निबन्धात्मक परीक्षा, (स) वस्तुनिष्ठ परीक्षा, तथा (द) निष्पादन परीक्षा के रूप मे।

निबन्धात्मक परीक्षा मे अध्यापक गिने-चुने प्रश्नों को विद्यार्थी को विवेचना या वर्णन के रूप मे हल करने को देता है। यह प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मे से जो उसे परीक्षा होने तक पढ़ाया गया है, प्रतिनिध्यात्मक रूप मे होते हैं। इन परीक्षाओं मे अनेक दोष हैं। परन्तु कुछ अच्छाइयाँ भी इनमें दिखाई पड़ती हैं। यदि निबंधात्मक

1. *The Concept of Evaluation in Education*, Directortate of Extension Programmes for Secondary Education, Ministry of Education, Govt. of India.

प्रश्न-पत्रों की रचना उचित प्रकार से की जाये और मूल्याङ्कन में सुधार हो तो यह उपयोगी हो सकते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो मानकीकृत वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ, तथा दूसरी अध्यापक-निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षा। वस्तुनिष्ठ परीक्षा में वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता, समग्रता आदि गुण होते हैं। इनमें चार प्रकार के प्रश्नों की शैलियाँ सम्मिलित होती हैं—(१) रिक्त स्थान-पूर्ति प्रश्न, (२) सत्या-सत्य विवेचन प्रश्न, (३) बहुसंख्य विवेचनात्मक प्रश्न, तथा (४) समन्वयात्मक प्रश्न।

एक अच्छी परीक्षा में यह विशेषताएँ होना आवश्यक है—(१) विश्वसनीयता, (२) वैधता, (३) वस्तुनिष्ठता, (४) विभेदकता, (५) समग्रता, तथा (६) व्याव-हारिकता।

मूल्यांकन की उपयोगिताएँ यह हैं—(१) मूल्यांकन द्वारा शिक्षा में उन्नति सम्भव है, (२) मूल्यांकन उद्देश्यों को स्पष्ट करने में सहायता प्रदान करता है, (३) मूल्यांकन अच्छे सीखने की प्रेरणा देता है, (४) मूल्यांकन के आधार पर निर्देशन किया जा सकता है, तथा (५) मूल्यांकन द्वारा पाठ्यक्रम में अन्तर लाया जा सकता है।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१ मूल्याङ्कन से आप क्या समझते हैं ? इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

२ अध्यापक-निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षा से आप क्या समझते हैं ? किसी विषय में ९वीं कक्षा के लिए ऐसी एक परीक्षा का निर्माण कीजिए।

३. ज्ञानोपार्जन-परीक्षा की प्रश्न-शैलियों का वर्णन कीजिए। प्रत्येक शैली पर पाँच प्रश्न बनाकर उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत कीजिए।

४. एक परीक्षा के—(१) मानकीकरण, (२) वैधता, (३) विश्वसनीयता, (४) वस्तुनिष्ठता से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

५. क्या आप अपने वर्तमान राज्य की हाई स्कूल परीक्षा-प्रणाली से सन्तुष्ट हैं ? यदि नहीं, तो उसके सुधार के लिए सुझाव दीजिए।

६. "निबन्धात्मक परीक्षाओं में दोष भी हैं, गुण भी।" इस कथन के सम्बन्ध के अपने विचार प्रकट कीजिए।

७. किसी भी प्रमापीकृत ज्ञानोपार्जन-परीक्षा का उदाहरण लेकर उसका मूल्याङ्कन कीजिए कि उसमें एक अच्छी परीक्षा की क्या विशेषताएँ हैं ?

८. निम्नलिखित प्रश्नों में तीन विकल्पों में एक ही सत्य है, उस पर निशान लगा दीजिए—

(i) परीक्षणो द्वारा हम—
  (अ) बुद्धि माप सकते हैं।
  (ब) क्या चिन्तन करना है, यह जान सकते हैं।
  (स) कल्पना की माप कर सकते हैं।

(ii) उपलब्धि-परीक्षण एवं बुद्धि-परीक्षणों मे—
  (अ) कोई सम्बन्ध नही है।
  (ब) बहुत ऊँचा सहसम्बन्ध है।
  (स) साधारण सहसम्बन्ध है।

(iii) निबन्धात्मक परीक्षण—
  (अ) विश्वासी तथा सरल होता है।
  (ब) अविश्वासी तथा वैधता-रहित होता है।
  (स) व्यावहारिक एवं वस्तुनिष्ठ होता है।

३०

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषताएँ एवं अध्यापक-निर्मित परीक्षण-रचना

CHARACTERISTICS OF PSYCHOLOGICAL TESTS & CONSTRUCTION OF THE TEACHER-MADE TESTS

हमने पिछले अध्याय मे इस बात पर प्रकाश डाला है कि मूल्यांकन क्यों आवश्यक है, मूल्याङ्कन से हमारा तात्पर्य क्या है, हम क्या माप सकते हैं और कैसे माप सकते हैं ? 'कैसे' माप सकने के सम्बन्ध मे ही हमने विभिन्न मापन परीक्षाओ का वर्णन किया है जो कुछ विशिष्ट योग्यताओ की माप करती हैं। हमने एक अच्छी परीक्षा की विशेषताओ एवं मूल्यांकन की उपयोगिता का भी वर्णन किया है। इस बात को हमने स्पष्ट करने की पूरी चेष्टा की है कि वर्तमान समय मे मूल्याङ्कन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। अब मूल्याङ्कन से तात्पर्य केवल रटे हुए ज्ञान की माप करना नहीं है, वरन् इसके द्वारा व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओ का मापन किया जाता है जो व्यक्ति को समझने के लिए, उसकी कुशलताओं को जानने के लिए, तथा उसकी रुचियो, क्षमताओ एवं उपलब्धि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

यह मूल्यांकन अब मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा किया जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का जो व्यक्ति की विभिन्न प्रकार की योग्यताओ, क्षमताओं, रुचियो इत्यादि के मापने के सम्बन्ध मे उपयोग किये जाते हैं वर्णन हम इस पुस्तक मे यथास्थान कर चुके हैं; जैसे—अध्याय ८ मे हमने बुद्धि-परीक्षण[1] का वर्णन किया है और अध्याय २१ में व्यक्तित्व की परीक्षाओ का वर्णन। किन्तु अब तक हमने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का सामान्य रूप से वर्णन नहीं किया है। यह ध्यान देने का विषय है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण चाहे जिस योग्यता की माप करें, कुछ सामान्य सिद्धान्तो पर आधारित होते हैं। उनके निर्माण मे कुछ विशिष्ट परिस्थितियो तथा विशेषताओ पर सदैव ध्यान देना पड़ता है। हमारा ध्येय इस

1. *Intelligence Testing.*

ध्याय में उनके सामान्य सिद्धान्तों और निर्माण-सम्बन्धी परिस्थितियों पर प्रकाश ालना है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण क्या है ?[1]

एनास्तासी के अनुसार, "एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक रूप से एक स्तुनिष्ठ एवं मानकीकृत माप, एक प्रतिदर्श के व्यवहार का होता है।"[2] इस रिभाषा के अनुसार मनोवैज्ञानिक परीक्षण दूसरे वैज्ञानिक परीक्षण की भाँति भी ोते हैं—उस सीमा तक जिस तक कि व्यक्तिगत व्यवहार के निरीक्षण सावधानीपूर्वक ुने हुए प्रतिदर्श पर किये जाते हैं। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक परीक्षण बहुत कुछ ैज्ञानिक परीक्षणों की भाँति ही किये जाते हैं। यदि किसी मनोवैज्ञानिक को एक ालक के शब्द-ज्ञान या गतिशीलता की माप करनी है तो वह बालक को कुछ चुने ए शब्दों इत्यादि पर कार्य करने को कहेगा या कोई ऐसे कार्य देगा जिसके द्वारा उसको गतिगामी क्रियाएँ करनी पड़ेंगी। इन क्रियाओं इत्यादि में बालक की कुशलता ी माप करके ही वह शब्द-ज्ञान या गतिशीलता की माप करेगा। परन्तु यहाँ यह याद रखना चाहिए कि सही माप के लिए चुने हुए कार्य समुचित होने चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि केवल कुछ शब्दों के जो हॉकी के खेल से सम्बन्धित हैं, आधार पर ही उसका परीक्षण किया जाता है तो यह परीक्षण अपर्याप्त होगा, और वैज्ञानिक ढङ्ग से बालक के शब्द-ज्ञान का परीक्षण नहीं हो पायेगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण का निर्माण सावधानीपूर्वक कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर और कुछ विशिष्ट प्रकार की विधियों का प्रयोग करके किया जाना चाहिए।

विधियों का वर्णन करने से पहले हम कुछ उन शब्दों की व्याख्या करेंगे, जिनका प्रयोग ऊपर दी हुई परिभाषा में किया गया है। इसके अतिरिक्त परीक्षण बनाने में जिन बातों पर ध्यान रखना चाहिए, उनका भी वर्णन करेंगे।

(अ) मानकीकरण[3]

उपर्युक्त परिभाषा में मानकीकरण शब्द का प्रयोग किया गया है। मानकीकरण से तात्पर्य है "परीक्षा देने तथा उसका मूल्यांकन करने में एक सामान्य विधि।"[4] यदि विभिन्न व्यक्तियों द्वारा जो प्राप्तांक एक परीक्षण में प्राप्त किए जाते हैं, उनका तुलनात्मक मान निकालना है तो इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए परीक्षण की दशाएँ समान हों।

---

1. What is a Psychological Test ?
2. "A psychological test is essentially an objective and standardized measure of sample behaviour." —Anastasi Anne : *Psychological Testing*, N. Y., MacMillan, 1959,
3. Standardization.
4. 'Standardization ... in administering and scor

परीक्षण की दशाएँ समान हो जायें, इसके लिए परीक्षण का निर्माणकर्त्ता[1] प्रत्येक नये निर्माण किए हुए परीक्षण के प्रयोग के सम्बन्ध में विस्तृत निर्देश देता है। इन निर्देशों का निर्माण नये परीक्षण के मानकीकरण का एक महत्त्वपूर्ण पद है। अतएव प्रमापीकरण करने में इन बातों की ओर ध्यान देना पड़ता है—क्या वस्तु प्रयोग की जाय, कितना समय परीक्षण को दिया जाये, विषयी को क्या मौखिक निर्देश दिए जायें, प्रारम्भ में कैसे उदाहरण दिये जायें, किस प्रकार से विषयी की शङ्काओं का समाधान किया जाये एवं अन्य परीक्षण की दशाओं के सब विवरण का नियोजन कैसे समान ढङ्ग से किया जाये ? इसके अतिरिक्त कुछ अन्य खण्डों पर भी ध्यान देना आवश्यक है जो विषयी की योग्यता पर कुछ विशेष प्रकार के परीक्षणों में प्रभाव डालते हैं; जैसे, यदि मौखिक रूप से निर्देश दिए जाएँ तो निर्देशकर्त्ता को अपने बोलने की गति, भाषा के उतार-चढाव तथा मुखाकृति पर नियन्त्रण इस प्रकार से रखना आवश्यक है कि विषयी कोई गलत धारणा न बना ले जो परीक्षण में उसके प्राप्तांकों पर प्रभाव डालने वाली हो।

वातावरणीय दशाओं का मानकीकरण भी एक परीक्षण के प्रमापीकरण में आवश्यक है। परीक्षण की सब दशाओं में पर्याप्त प्रकाश, वायु-संचार, आराम से बैठकर कार्य करने की सुविधाएँ, इत्यादि होनी चाहिए। प्रत्येक परीक्षार्थी के लिए ये सुविधाएँ समान रूप से होनी चाहिए।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मानकीकृत परीक्षण का इस प्रकार से निर्माण होना चाहिए कि वही परीक्षण विभिन्न समय तथा विभिन्न स्थानों में दिया जा सके और व्यक्तियों के प्राप्तांकों का तुलनात्मक अध्ययन उसी कुशलता से कर सकें। हम इस सम्बन्ध में क्रोनबैक की परिभाषा का वर्णन कर सकते हैं। वह कहते हैं कि **"एक मानकीकृत किया हुआ परीक्षण वह है जिसमें कार्य-प्रणाली, परीक्षण यन्त्र एवं फलांकन इस प्रकार से निश्चित किए गए हों कि वही परीक्षण विभिन्न समय या विभिन्न स्थानों में दिया जा सके।"**[2]

मानकीकृत परीक्षणों की विशेषताएँ[3]

एक मानकीकृत परीक्षण की चार विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है। वह हैं : (१) मानकीकृत परीक्षा में विभिन्न प्रश्न बहुत ध्यानपूर्वक चुने जाते हैं। इस परीक्षा की विश्वसनीयता, वैधता तथा व्यावहारिकता निश्चित विधियों द्वारा पता लगा ली जाती है।

---

1. Test Constructor.

2. "A standardized test is one in which the procedure, apparatus, and scoring have been fixed so that precisely the same test can be given at different times and places."—Cronbach, L. J.: *Essentials of Psychological Testing*, N. Y., Harper p. 22.

3. Characteristics of Standardized Tests.

(२) परीक्षा को प्रमापित करने की विधि भी मानकीकृत की हुई होती है। परीक्षा पर स्पष्ट निर्देश होते हैं, समय निर्धारित होता है तथा यह भी संकेत किया होता है कि परीक्षार्थी को कितनी सहायता एवं प्रोत्साहन देना है।

(३) मानकीकृत परीक्षा में फलाङ्कन भी मानकीकृत किया होता है। एक फलाङ्कन तालिका[1] बनाई होती है। उसी के अनुसार अङ्क प्रदान किये जाते हैं।

(४) चौथी विशेषता मानक के निर्धारण की होती है। ऐसे मानक बना लिये जाते हैं जो परीक्षण के प्राप्तांकों को ग्रेड, शतांशीयमान[2] अथवा अन्य प्रकार के अङ्कों में बदल देते हैं।

मानक[3]

परीक्षाओं के मानकीकरण में मानक का निर्धारण करना भी एक महत्वपूर्ण पद है। मानक से तात्पर्य है 'सामान्य या औसत निष्पादन'। कोई भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण पूर्व-निर्धारित पास या फेल का स्तर प्रस्तुत नहीं करता है। किसी भी व्यक्ति के प्राप्ताङ्कों या मूल्याङ्कन दूसरे व्यक्तियों के प्राप्तांकों से तुलना करके किया जाता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण को उस समय तक कोई अर्थ प्रदान नहीं किया जा सकता जब तक कि इसके सम्बन्ध में मानक न निर्धारित कर लिये जायें। उदाहरण के लिए, गणित परीक्षण में एक १० वर्ष का औसत बालक ५० में से १४ समस्याओं को हल कर लेता है। अब हम कह सकते हैं कि १४ प्राप्तांक १० वर्ष के बालकों का मानक उस परीक्षण पर है। १४ को हम उस बालक का वास्तविक फलांक कहेंगे। यह फलाङ्क जितने पद हल कर लिये जाते हैं, उन पर तथा कार्य करने के समय पर त्रुटियों की संख्या इत्यादि पर निर्भर होते हैं। किन्तु किसी भी बालक का वास्तविक फलाङ्क किसी भी परीक्षण पर हो, वह कोई भी अर्थ हमें प्रदान नहीं करेगा, जब तक कि उसका मूल्याङ्कन मानक के सम्बन्ध में न किया जाये। यदि एक बालक ५० में से १६ समस्या हल कर लेता है, और उसकी आयु १० वर्ष है तो हम कह सकते हैं कि गणित में यह बालक औसत से अच्छा है। हमारा मानक १४ था जब इससे अच्छा या कम उसी आयु पर जिस पर कि मानक निर्धारित किया गया है, कोई बालक अंक प्राप्त करता है तो इसी मानक के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है।

प्रमापीकरण करने के लिए वही परीक्षण एक बहुत बड़े प्रतिदर्श पर जो उन व्यक्तियों में से चुना होता है जिनके लिए परीक्षण का निर्माण होता है, प्रयोग किया जाता है। इस प्रतिदर्श के निष्पादन के आधार पर मानक स्थापित कर लिये जाते हैं।

वस्तुनिष्ठता[4]

जैसा कि हमने पिछले अध्याय में कहा है, प्रत्येक परीक्षण में वस्तुनिष्ठता

1. Scoring key. 2. Percentile. 3. Norms. 4. Objectivity.

का गुण होना चाहिए। एक पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह है, जिसमे प्रत्येक निरीक्षणकर्त्ता व्यक्ति के मूल्याङ्कन के सम्बन्ध में एकसे ही निष्कर्ष पर पहुँचे। एनास्तासी की मनोवैज्ञानिक परीक्षण की परिभाषा मे 'वस्तुनिष्ठ' शब्द का भी प्रयोग किया गया है। इस परिभाषा मे वस्तुनिष्ठता से यही तात्पर्य है कि यह परीक्षण किसी भी परीक्षणकर्त्ता के व्यक्तिगत निर्णय से स्वतन्त्र है। यह परीक्षण उस सीमा तक वस्तुनिष्ठ समझे जायेंगे जिस तक कि वह अपने प्रयोग मे, परीक्षार्थी के परीक्षण मे फलाक प्राप्त करने मे एवं उनको अर्थ प्रदान करने मे व्यक्तिगत निर्णय से स्वतन्त्र हैं। तात्पर्य यह है कि वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे कोई भी परीक्षणकर्त्ता हो, व्यक्ति को एकसे फलाक मिलेंगे। हालाकि व्यावहारिक रूप मे यह अत्यन्त कठिन है क्योकि अब तक प्रमापीकरण और वस्तुनिष्ठता के ऐसे साधन जो पूर्णरूप से किसी भी परीक्षण में यह गुण उत्पन्न कर दें, नही बन पाये हैं।

विश्वसनीयता[1]

इस सम्बन्ध मे हम 'व्यक्तित्व की माप' वाले अध्याय मे और पिछले अध्याय मे प्रकाश डाल चुके है। हम इस बात पर बल दे चुके हैं कि एक परीक्षण तब विश्वसनीय कहलाता है जबकि "उस परीक्षण मे उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न अवसरों पर या एक ही प्रकार के विभिन्न परीक्षण पदों के साथ जो फलांक प्राप्त किए जाते हैं, उनमें संगति होती है।"[2] यदि एक परीक्षण बार-बार दिया जाये और प्राप्त फलाङ्को या परिणामो मे संगति[3] हो तो उसे विश्वसनीय परीक्षण कहा जा सकता है। हम रॉस महोदय के अनुसार संक्षेप मे कह सकते हैं कि विश्वसनीयता से तात्पर्य संगति होना है।"[4]

विश्वसनीयता और वैधता मे अन्तर है। वैधता से तात्पर्य सत्यता से मूल्यांकन है। इसमे कोई सन्देह नही कि यदि सत्यता मे मूल्याकन किया जायेगा तो उसमे संगति का गुण आवश्यक होता है। किन्तु यदि एक परीक्षक मे संगति का गुण है तो वह सत्यता से मूल्याङ्कन अवश्य करेगा ही, ऐसा नही कहा जा सकता। जैसे, एक व्यक्ति अपनी प्रेमिका का वर्णन अद्वितीय सुन्दरी के रूप मे अपने प्रत्येक मित्र जिससे मिलता है, देता है। इस प्रकार से उसके वर्णन मे संगति का गुण तो अवश्य उपस्थित है परन्तु यह कोई आवश्यक नही है कि उसकी प्रेमिका अद्वितीय सुन्दरी हो ही। वह अपने संवेगो के कारण उसे ऐसा वर्णन देता हो, वास्तव मे वह सुन्दरी हो ही नहीं। अतएव संगति का गुण होने पर भी उसके वर्णन मे यथार्थता का गुण नही होगा।

---

1 Reliability.

2. "The reliability of a test refers to the consistency of score obtained by the same individuals on different occasions or with different sets of equivalent items."—Anastasi, A. : *Psychological* ., N. Y., MacMillan, 1959.

3 Consistency. 4. Reliability means consistency.

विश्वसनीयता-सहसम्बन्ध[1]

विश्वसनीयता की माप विश्वसनीयता-सहसम्बन्ध के द्वारा की जाती है। विश्वसनीयता-सहसम्बन्ध निकालने के लिए एक ही परीक्षण के दो समान रूपों[2] को किसी विधि का प्रयोग करके, उन्हीं विद्यार्थियों को दो समय पर दिया जाता है। जो दोनों परीक्षणों में फलाङ्क प्राप्त होते हैं, उनका सहसम्बन्ध निकाल लिया जाता है।[3] यह सहसम्बन्ध ही विश्वसनीयता-सहसम्बन्ध कहलाता है।

हम विश्वसनीयता की माप निम्न चार प्रविधियों द्वारा कर सकते हैं :

१. परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि।[4]
२. विकल्प या समानान्तर प्रतिरूप विधि।[5]
३. अर्द्ध-विच्छेद विधि।[6]
४. युक्ति-युक्त पद-साम्य विधि।[7]

(१) परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि—इसमें एक परीक्षण विद्यार्थियों को देकर उनके फलाङ्क लिख लिये जाते हैं, फिर कुछ समय पश्चात् पुनः वह परीक्षण दिया जाता है और अब जो फलाङ्क आते हैं, उनमें और पहले वाले फलाङ्कों में सहसम्बन्ध निकाल लिया जाता है।

(२) विकल्प या समानान्तर प्रतिरूप विधि—इसमें परीक्षण के दो समान प्रतिरूपों की संरचना की जाती है। संरचना करने में यह ध्यान रखा जाता है कि दोनों परीक्षणों की विषय-वस्तु समान हो, प्रश्न समान कठिनाई के हों और उनका रूप एक हो। अब इन दोनों प्रतिरूपों को क्रमशः प्रशासित करते हैं और प्राप्त फलाङ्कों में सहसम्बन्ध ज्ञात करते हैं।

(३) अर्द्ध-विच्छेद विधि—इसमें एक ही परीक्षण को दो समानान्तर भागों में बाँट लेते हैं। यह ध्यान रखा जाता है कि दोनों भाग कठिनाई, प्रश्नों की संरचना इत्यादि में पूर्ण रूप से एक-दूसरे के समान हों। इन दोनों भागों को परीक्षार्थियों के एक ही समूह पर प्रशासित करते हैं और दोनों भागों के जो फलाङ्क आते हैं, उनका सहसम्बन्ध निकाल लेते हैं।

(४) युक्ति-युक्त पद-साम्य विधि—इसमें प्रश्न-पदों के आपसी सहसम्बन्ध को ज्ञात किया जाता है। इसके लिए कूडर तथा रिचार्डसन ने एक सूत्र दिया है, जिसका उपयोग किया जाता है।

जिन विधियों का हमने ऊपर उल्लेख किया है उन सब में सांख्यिकी का प्रयोग

---

1. Reliability Coefficient. 2. Two equivalent forms of the same Test.

3. सहसम्बन्ध निकालने की सांख्यिकी विधि अध्याय ३२ में दी गई है।

4. Test-Retest Method. 5. Alternate or Parallel form Method. 6. Split-half Method. 7. Method of Rational Equivalence.

होता है। यहाँ पर हमने केवल सैद्धान्तिक रूप में इसका वर्णन किया है। हमारा ध्येय प्रस्तुत पुस्तक में सांख्यिकी का विस्तृत विवेचन करना नहीं है। अतएव जो विद्यार्थी इस दिशा में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना चाहें उन्हें सांख्यिकी तथा मापन पर सहायक पुस्तकों की सूची में दी गई पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए।

वैधता[1]

वैधता के सम्बन्ध में भी हम पहले वर्णन कर चुके हैं। कोई भी परीक्षण बिना वैधता के उपयोगी नहीं हो सकता। ग्रीन, जोरगेन्सन इत्यादि के अनुसार—"एक परीक्षण की वैधता उस कार्य-कुशलता पर निर्भर रहती है, जिससे यह परीक्षण उस तथ्य का मापन करता है जिसके लिए वह बनाया गया है।"[2] अतएव *एक परीक्षण उस उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होना चाहिए जो परीक्षणकर्त्ता* के मस्तिष्क में है।

एक परीक्षण तब ही यथार्थ समझा जायेगा, जबकि उसका प्रयोग उन विद्यार्थियों के साथ किया जाये जो उसके अनुरूप बौद्धिक योग्यता एवं अनुभवों की पृष्ठभूमि रखते हैं। तात्पर्य यह है कि एक परीक्षण यदि नवीं, दसवीं कक्षा के लिए बनाया गया है तो वह छठी, सातवीं कक्षा के लिए अनुपयुक्त होगा। इस प्रकार वैधता एक परीक्षण का विशिष्ट गुण है, न कि एक सामान्य कसौटी। एक परीक्षण एक दशा में पूर्ण रूप से वैध हो सकता है जबकि दूसरी दशा में वैधता रहित हो सकता है। हम एक परीक्षण को सामान्य रूप से वैध नहीं कहेंगे वरन् यह कहेंगे कि किन दशाओं में यह परीक्षण वैधता से पूर्ण है।

वैधता को ज्ञात करने के लिए एक स्वतन्त्र बाह्य कसौटी का निर्माण करना पड़ता है, जिसकी माप करने के लिए परीक्षण बनाया गया है। उदाहरण के लिए, एनास्तासी[3] का विचार है कि यदि चिकित्सा-शास्त्र में अभिरुचि[4] जाँचने के लिए एक परीक्षण बनाया गया है जो मेडिकल कॉलेज में प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थियों का चुनाव करने के लिए है, तो जो कसौटी इस परीक्षण के लिए बनाई जायेगी, वह मेडिकल कॉलेज में अन्तिम सफलता के दृष्टिकोण से होगी। वैधता की कसौटी बनाने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी की सफलता का लेखा मेडिकल कॉलेज में पढ़ने के समय प्राप्त कर लिया जायेगा और परीक्षण पर प्राप्त किये हुए प्राप्तांकों में उसकी तुलना की जायेगी। परीक्षण पर प्राप्त प्राप्तांकों एवं कॉलेज में प्रशिक्षण समाप्त करने तक प्राप्त हुए प्राप्तांकों इत्यादि में सहसम्बन्ध निकाला जायेगा। यदि सह-

---

1. Validity.
2. The validity of an examination depends on the efficiency with which it measures what it attempts to measure."—Green Jor- [illegible] *Evaluation in the Secondary* [illegible] 66.

सम्बन्ध उच्च होगा तो हम कहेंगे कि 'वैधता'-सहसम्बन्ध[1] उच्च है और परीक्षण यथार्थ है।

वैधता-सहसम्बन्ध के आधार पर गिलकिसन[2] ने वैधता की परिभाषा इस प्रकार दी है—**"वैधता किसी कसौटी के साथ परीक्षण का सहसम्बन्ध[3] है।"**

यहाँ एक बात और याद रखनी चाहिए कि कोई परीक्षण उसी समय वैध होगा जबकि वह विश्वसनीय है। यदि किसी परीक्षण की विश्वसनीयता शून्य है तो वह किसी भी परीक्षण के साथ सहसम्बन्धित नहीं होगा।

अनेक प्रकार की वैधता का वर्णन किया जाता है। वैधता की माप भी दो विधियों से हो सकती है—(i) तार्किक विधि, या (ii) सांख्यिकीय विधि से।

जिन प्रकारों का वैधता के सम्बन्ध मे वर्णन किया जाता है वह विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न रूप मे वर्णित की है। क्रॉनबैक महोदय ने चार प्रकार की वैधता का वर्णन किया है—(i) पूर्वकथनात्मक[4], (ii) समवर्ती[5], (iii) अन्तर्वस्तुगत[6] तथा (iv) अन्वय[7]। ग्रीन, जोरगेनसन तथा जैरवेरिच ने तीन प्रकार की वैधता का वर्णन किया है—(i) पाठ्य-विषयात्मक[8], (ii) सांख्यिकीय[9], (iii) तर्कसंगत[10]। एनास्तासी तथा रॉस ने चार प्रकार की वैधता का वर्णन किया है। एनास्तासी के अनुसार यह हैं—(i) अनीक[11], (ii) विषय-वस्तुगत[12], (iii) अवयवात्मक[13], तथा (iv) अनुभवजन्य[14]। रॉस के अनुसार वैधता के चार प्रकार हैं—(i) पूर्वकथनात्मक[15], (ii) समवर्ती[16], (iii) विषय-वस्तुगत[17], तथा (iv) अन्वय[18]।

व्यावहारिकता[19]

जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे वर्णन किया है, एक अच्छी परीक्षा में व्यावहारिकता का भी गुण होना चाहिए। व्यावहारिकता के सम्बन्ध मे रॉस महोदय कहते हैं कि **"इससे यह तात्पर्य है कि किन अंशों तक एक परीक्षण या अन्य यन्त्र सफलतापूर्वक कक्षा-अध्यापकों तथा विद्यालय-प्रशासकों द्वारा बिना अधिक शक्ति या समय को नष्ट किये हुए प्रयोग किया जा सकता है।"**[20]

---

1. Validity Coefficient 2 Gulliksen 3 The Correlation of the test with some criterion 4 Predictive 5 Concurrent 6. Content. 7. Construct 8. Curricular. 9 Statistical. 10. Logical. 11. Face. 12. Content 13. Factorial 14 Empirical. 15. Predictive 16. *Concurrent or Status.* 17. *Content.* 18. *Congurent or Construct.* 19. Usuabilty.

20. "By this is meant the degree to which the test of other instrument can be successfully employed by class-room teachers and school administrators without an undue expenditure of time and energy."—Ross, C. C. . *Measurement in Today's Schools*, N. Y, Prentice Hall, 1953.

व्यावहारिकता निम्नलिखित मुख्य बातों पर निर्धारित रहती है :
१. प्रशासन में सुविधा।[1]
२. फलांकन में सुविधा।[2]
३. निर्वचन एवं प्रयोग में सुविधा।[3]
४. मितव्ययता।[4]
५. उचित यांत्रिक बनावट।[5]
६. तुलना करने में सुविधा।[6]
७. उपयोगिता।[7]
अब हम यहाँ संक्षेप में प्रत्येक पर प्रकाश डालेंगे।

१. प्रशासन में सुविधा

प्रशासन में सुविधा का होना प्रत्येक परीक्षण के लिए आवश्यक है। यह सुविधा दो रूपों में होनी चाहिए. (१) प्रशासकों को परीक्षण देने में, तथा (२) विद्यार्थियों को परीक्षण लेने में। इसके लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण देने से पहले इसके प्रशासन के लिए पूर्ण तैयारी होनी चाहिए और परीक्षण देते समय भी इस ओर ध्यान रखा जाना चाहिए कि विद्यार्थियों को उचित मौखिक या लिखित निर्देश मिलें, परीक्षण पदार्थों का ठीक से वितरण हो तथा परीक्षण के बाद उनको इकट्ठा कर लिया जाये, विद्यार्थियों को परीक्षण के लिए नियत समय दिया जाये।

२. फलांकन में सुविधा

अंक प्रदान करने का कार्य भी सरलता, शीघ्रता तथा वांछित ढङ्ग से किया जाना चाहिए। फलांकन में सुविधा—जैसा कि रॉस[8] महोदय कहते हैं, तीन बातों पर निर्भर होती है—(i) वस्तुनिष्ठता[9], (ii) पर्याप्त कुंजी[10] एवं (iii) पूर्ण फलांकन निर्देश[11]।

अनेक विधियों द्वारा फलांकन में सुविधा प्राप्त की जा सकती है। पर्याप्त कुंजी, विभिन्न उत्तर-पुस्तिकाओं का प्रयोग—जबकि हाथ से फलांकन करना तथा जबकि मशीनों से फलांकन करना है—इत्यादि के द्वारा फलांकन सुविधापूर्वक हो सकता है।

३. निर्वचन एवं प्रयोग में सुविधा

यह सुविधा उसी समय प्राप्त हो सकती है जबकि परीक्षण के साथ जो संलग्न विवरण-पुस्तिका होती है, वह पूर्ण है। इस पुस्तक में यह आवश्यक है कि विवरण में परिणाम सारणियाँ, आवश्यक गणन-विधियों एवं मानकों के सम्बन्ध में .

1. Ease of Administration. 2. Ease of Scoring. 3. Ease of Interpretation and Application. 4. Economy. 5. Proper Mechanical Make-up. 6 Comparability. 7. Utility. 8. Ross. 9. Objectibility. 10. Adequate Key. 11. Full Scoring Directions.

पूर्ण विवरण होना चाहिए। आयु तथा कक्षा, दोनों के अनुसार मानक दिए जाने आवश्यक हैं।

४. मितव्ययता

इसमे कोई सन्देह नही है कि मितव्ययता एक अच्छे परीक्षण का मुख्य गुण नही होना चाहिए। किन्तु यथासम्भव अपव्यय को रोकना चाहिए। यह कोई आवश्यक नही है कि यदि अधिक व्यय किया जायेगा तो अच्छा परीक्षण-निर्माण होगा। अन्तिम रूप से एक परीक्षण पर व्यय या अपव्यय उसकी यथार्थता का व्यय की इकाई से सम्बन्ध निकाल कर पता लगाना चाहिए।"[1]

५. उचित यान्त्रिक बनावट

परीक्षण की छपाई इत्यादि स्पष्ट तथा उचित ढङ्ग से होनी चाहिए। उचित ढङ्ग से तात्पर्य यह है कि यदि परीक्षण मे बड़े शब्दो[2] मे कोई बात छापी जानी है तो उसकी छपाई इस प्रकार से हो कि बालक बड़े शब्दो तथा छोटे शब्दो में अन्तर ज्ञात कर सके। इसके अतिरिक्त छोटे बालको के लिए चित्रो इत्यादि की छपाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

६. तुलना में सुविधा

एक परीक्षण मे तुलना मे सुविधा का गुण उस समय होता है, जबकि जो फलाक उस पर प्राप्त किये जाते हैं, उनको एक-समान आधार पर जो एक प्राकृतिक अथवा मान्य अर्थ के लिए होता है, मान्यता प्रदान की जा सकती है। यह प्रमापीकरण किये हुए परीक्षणो मे दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है : (१) परीक्षण के दोहरे फार्म के आधार पर, तथा (२) पर्याप्त मानको के आधार पर।

७. उपयोगिता

एक परीक्षण मे उपयोगिता का गुण होना भी आवश्यक है। उपयोगिता से तात्पर्य यह है कि एक परीक्षण आवश्यकताओ को सन्तोषजनक ढंग से पूर्ण करता है, जो उन परिस्थितियो मे जिनमे उसका प्रयोग किया गया है, वांछित है। उपयोगिता के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षण का निर्माण अच्छे प्रकार से सोचे-विचारे उद्देश्यो के लिए हो और उनके निष्कर्षो का उपयोग वांछित फलो को प्राप्त करने की ओर हो।

(ब) अध्यापक-निर्मित परीक्षणों की रचना[3]

हमने पिछले अध्याय मे मानकीकृत किये हुए परीक्षण एवं अध्यापक-निर्मित परीक्षणो के सम्बन्ध मे संकेत किया है। हमने इस अध्याय मे मानकीकरण के

1. "In the last analysis the economy of a testing programme should be compared in terms of the validity of the test per unit of cost."—Green, Jorgensen, Gerberich : *Measurement & Evaluation in the Scondary Schools*, p. 81.

2. Bold Letters. 3. The Construction of Teacher-made Tests.

के अर्थ का वर्णन करने की चेष्टा की है। यहाँ पर अब हम अध्यापक-निर्मित परीक्षणों की रचना के सम्बन्ध में प्रकाश डालेंगे। हम परीक्षण-रचना के सामान्य सिद्धान्त का वर्णन करेंगे तथा देखेंगे कि इसके द्वारा फलांक गणना मे किन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

अध्यापक-निर्मित परीक्षणों की रचना की जानकारी क्यों आवश्यक है?[1] अध्यापक-निर्मित परीक्षणों की रचना की जानकारी की आवश्यकता निम्न कारणों से है

(१) कक्षा-अध्यापक अधिकतर अपने विद्यार्थियों के ज्ञान का मूल्यांकन करने के लिए ऐसे ही परीक्षणों का प्रयोग करते हैं।

(२) प्रशिक्षित अध्यापक जो निबन्धात्मक प्रश्न-पत्र बनाते हैं और उसके आधार पर मूल्याङ्कन करते हैं, वह बहुत त्रुटिपूर्ण होता है। इस सम्बन्ध मे हम पिछले अध्याय मे प्रकाश डाल चुके है। इसके अतिरिक्त अध्यापक वस्तुनिष्ठ परीक्षण प्रयोग करते हैं, वह ऐसी परीक्षाओं का निर्माण उचित ढङ्ग से उस समय तक नहीं कर सकते, जब तक कि उन्हें परीक्षण की रचना के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक रूप से जानकारी न हो।

(३) यदि अध्यापकों द्वारा अनौपचारिक परीक्षणों का निर्माण कुशलतापूर्वक किया जाता है तो वह उतने ही विश्वासी एवं यथार्थपूर्ण होते हैं जितने कि कुछ प्रमापीकरण किये हुए परीक्षण।

(४) अनेक समय प्रमापीकरण किये हुए परीक्षण उतने यथार्थपूर्ण नहीं होते, जितने कि अध्यापक-निर्मित, विशेष रूप से उन दशाओं मे, जहाँ परिस्थितियाँ असामान्य हो जाती है। पाठ्य-विषय ऐसा होता है जो बदलता रहता है।

(५) औपचारिक वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे तथा मानकीकृत किये हुए परीक्षण मे परीक्षण-पदों का जिस रूप मे वर्णन किया जाता है, वह समान होता है। वास्तव मे दोनों प्रकार की परीक्षाओं मे एकसे सिद्धान्तों के आधार पर परीक्षण-वस्तु का चुनाव होता है।

मानकीकृत किये हुए तथा अनौपचारिक या अध्यापक निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षण[2]

मानकीकृत की हुई परीक्षाएँ बनावट को ध्यान में रखते हुए अपने तत्वों मे अनौपचारिक वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं से विभिन्न नहीं हैं। अन्तर केवल यह है कि मानकीकृत किये हुए परीक्षण कुछ अधिक शुद्ध होते हैं। अतएव इन दोनों की रचना में थोड़ा ही अन्तर होता है।

किन्तु मानकीकृत परीक्षण और अध्यापक-निर्मित परीक्षण जिस उद्देश्य को

1. Why the Knowledge of the Construction of Teacher-made Tests Essential? 2. Standardized Vs. Non-standardized or Teacher-made Objective Tests.

सामने रखकर बनाए जाते है, उनमे अन्तर होता है। मानकीकृत परीक्षण सामान्य रूप मे उपयोग करने के लिए बनाये जाते हैं। यह किसी शिक्षक द्वारा जो उसने पाठ्य-वस्तु बालको को पढाई है, उसकी माप करने के हेतु नही बनाये जाते। इनका प्रयोग तो सामान्य रूप मे एक विद्यालय तथा दूसरे विद्यालय, एक कक्षा तथा दूसरी कक्षा के बीच तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए होता है।

मानकीकृत परीक्षण का प्रयोग किसी भी विषय मे पाठ्यक्रम जो किसी कक्षा मे पढाया गया है उसके सम्बन्ध मे विद्यार्थियो के फलांक प्राप्त करने के लिए नहीं होना चाहिए। किसी भी विषय मे जो पाठ्य-वस्तु किसी शिक्षक द्वारा बालक को पढाई गई है, उसमे प्राप्त ज्ञान की जाँच करने के लिए अच्छे सिद्धान्तो पर बनाई औपचारिक परीक्षाओं का प्रयोग अधिक अच्छा होता है।

परीक्षणों की रचना[1]

परीक्षण-रचना मे निम्न मुख्य चार चरण हैं

१. परीक्षण की योजना।[2]

२. परीक्षण की रचना।[3]

३. परीक्षण का प्रथम प्रयोग।[4]

४. परीक्षण का मूल्यांकन।[5]

१. परीक्षण की योजना

परीक्षण की योजना बनाने मे निम्न चार सिद्धान्तों पर ध्यान देना चाहिए

(अ) मापन का ध्येय निर्धारण[6]—परीक्षण का निर्माण करने से पहले उसके ध्येय का निर्धारण करना आवश्यक है। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि शिक्षण द्वारा जो मुख्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं, उनका मूल्यांकन परीक्षण द्वारा हो जाये। शिक्षण के उद्देश्यो का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। जो कुछ भी वर्गीकरण हो, इन उद्देश्यो का स्पष्टीकरण किसी भी पाठ्यक्रम के सम्बन्ध मे उन परिवर्तनो के रूप में किया जाना चाहिए जो अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों में लाने की चेष्टा की जाती है। परीक्षण की रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि इस ओर संकेत कर सके कि अध्यापक ने जो पाठ्यक्रम द्वारा विद्यार्थियो के व्यवहार में परिवर्तन लाने के उद्देश्य निश्चित किये हैं, वह किस सीमा तक प्राप्त हो गये हैं।

(ब) प्रयोजन जिनकी पूर्ति परीक्षण द्वारा होगी[7]—परीक्षण की योजना बनाने मे इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि यह किस प्रयोजन की पूर्ति के लिए बनाया गया है। यदि यह परीक्षण विद्यार्थियों के वर्गीकरण के लिए निर्मित करना है तो

---

1. Construction of Tests 2. Planning the Test. 3. Preparation of the Test. 4. Trying out the Test. 5. Evaluating the Test. 6. Formulation of the Objectives for Measurement, 7. The purposes which the test is to serve.

इसके निर्माण में इस बात पर ध्यान रखा जायेगा कि यह वर्गीकरण के आधार को प्रदान कर सके। परन्तु यदि इसका प्रयोजन निदानात्मक[1] होगा तो इसके निर्माण में इस बात पर ध्यान दिया जायेगा कि यह ज्ञानोपार्जन में व्यक्तिगत विद्यार्थियों को जो कठिनाइयाँ हैं, उन पर प्रकाश डाल सके।

(ख) दशाएँ जिनमें इसका प्रशासन करना है[2]—परीक्षण की योजना बनाने में इस प्रकार की दशाओं पर ध्यान देना चाहिए—परीक्षा के लिए कितना समय प्राप्त है, इस परीक्षण को दोहराने की क्या सुविधाएँ हैं, विद्यार्थियों की आयु तथा अनुभव क्या है? इत्यादि।

(ग) यदि परीक्षण ज्ञानोपार्जन सम्बन्धी है तो पाठ्यक्रम पर लगभग तुलनात्मक रूप से बल डालने वाला होना चाहिए[3]—इसका तात्पर्य यह है कि परीक्षण उप-युक्त रूप से उन पाठ्य-वस्तुओं पर बल देने वाला होना चाहिए जिन पर कि शिक्षण देते समय बल दिया गया है। जैसे, यदि एक अध्यापक ने पढ़ाते समय केवल कुछ अलग-अलग तथ्यों के रटने पर बल दिया है, जबकि दूसरे ने उसी विषय की पाठ्य-वस्तु को एक समग्र रूप में समझने पर बल दिया है, तो दोनों दशाओं में एक ऐसा परीक्षण यथार्थ नहीं होगा।

२. परीक्षण की रचना[4]

एक परीक्षण की वास्तविक रचना इसके बाद की जाती है। इस सम्बन्ध में निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए

(i) कोई भी परीक्षण हो, वह सब शिक्षण-ध्येय का मापन नहीं कर सकेगा। अतएव परीक्षण-रचना में तथा उसके परिणामों का विवेचन करते समय इन परिसीमा को ध्यान में रखना चाहिए।

(ii) परीक्षण का प्रथम लेखा[5] जितना शीघ्र हो सके, बना लेना चाहिए। इसमें वह सब पद सम्मिलित होने चाहिए, जिनको परीक्षण में सम्मिलित करना है।

(iii) परीक्षण में एक प्रकार के अधिक पद सम्मिलित करने चाहिए। यथा-सम्भव ऐसी स्थितियों का चुनाव करना चाहिए जो कि जिस पदार्थ को सम्मिलित करना है, उसके अनुकूल हों।

(iv) बहुधा यह वांछित होता है कि अन्तिम रूप में परीक्षण में जितने पदों की आवश्यकता होगी, उनसे अधिक पद सम्मिलित किये जायें। प्रथम मसविदे में पदों की संख्या दुगुनी हो तो अधिक अच्छा है।

(v) यह ठीक है कि परीक्षण को यथासम्भव व्यापक बनाया जाय, किन्तु व्यर्थ के पद भी इसमें सम्मिलित नहीं होने चाहिए।

1. Diagnostic. 2. Conditions which it has to serve. 3. The test should reflect the approximate proportion of emphasis on the course if the test is one of an achievement 4. Preparation of the test. 5. Preliminary Draft.

(vi) पदों को सरलतम से कठिनतम की श्रेणी में रखना चाहिए। पहले सरल पद आने चाहिए और फिर कठिन।

(vii) पदों की रचना इस प्रकार से होनी चाहिए कि एक सम्पूर्ण पद उत्तर का निर्धारण करे, न कि इसका कोई एक भाग।

(viii) पदों की रचना में केवल स्मरण या पहिचान पर बल नहीं दिया जाना चाहिए। पद इस प्रकार बनने चाहिए कि विद्यार्थी में अपने ज्ञान को वास्तविक जीवन में प्रयुक्त करने की आदत पड जाये।

(ix) पदों की भाषा इस प्रकार से बनाइए कि कथन की वस्तु, न कि रूप[1] उत्तर का निर्धारण करे।

(x) गुप्त पद या संकेत वाले पद नहीं बनाने चाहिए।

(xi) पुस्तकों से इधर-उधर के वाक्य उठाकर उन्हें पदों के रूप में नहीं रखना चाहिए।

(xii) पदों की व्यवस्था इस प्रकार न कीजिए कि एक क्रमशील प्रत्युत्तरों का नमूना बन जाए। प्रत्युत्तरों का क्रम अवसर पर होना चाहिए, न कि एक व्यवस्थित नमूने पर।

(xiii) इस प्रकार के पद नहीं बनाने चाहिए जिनका प्रत्युत्तर अन्य पदों को देखकर ही दिया जा सके।

(xiv) कोई भी इस प्रकार का पद नहीं बनाना चाहिए जिसका उत्तर विषय की जानकारी न रखने वाला व्यक्ति भी पद-रचना को देखकर दे सके।

(xv) पदों के सम्बन्ध में जो निर्देश दिए जायें वह स्पष्ट, पूर्ण एवं संक्षिप्त होने चाहिए। एक कमजोर से कमजोर परीक्षार्थी को उन्हें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

(xvi) जब परीक्षण उपर्युक्त सिद्धान्तों पर बन जाये तो कुछ समय पश्चात् आलोचनात्मक दृष्टिकोण से उसका सुधार करना चाहिए।

(xvii) परीक्षण के बन जाने के बाद और उसके प्रथम प्रयोग से पहले ही एक फलाकन कुञ्जी[2] तैयार कर लेनी चाहिए।

(xviii) प्रथम प्रयोग से पहले ही निर्देशों का एक लेखा बना लेना चाहिए, जिसका प्रयोग परीक्षण के प्रशासन में किया जाना है।

३ परीक्षण का प्रथम प्रयोग[3]

परीक्षण के प्रथम मसविदा के तैयार होने के पश्चात् उसका प्रथम प्रयोग होना चाहिए। प्रथम प्रयोग विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है जिसमें सब स्तर के विद्यार्थी होते हैं—उच्च, सामान्य तथा निम्न।

---

1. Content and not the Form. 2. Scoring Key. 3. Trying out the Test

परीक्षण के प्रथम प्रयोग में निम्नांकित बातों पर ध्यान देना चाहिए :

(i) परीक्षण का प्रथम प्रयोग एक प्रतिदर्श[1] पर होना चाहिए। इस प्रतिदर्श का चुनाव इस प्रकार होना चाहिए कि यह समस्त जनसंख्या—जिसे परीक्षण देना है, उसका प्रतिनिधित्व करे।

(ii) परीक्षण के प्रशासन के लिए समय का चुनाव ठीक ढंग से किया जाए। यदि एक परीक्षण के दो रूपों का प्रशासन करना है तो दोनों के बीच में थोड़ा अवकाश देना आवश्यक है।

(iii) प्रशासन के दौरान यह आवश्यक है कि सब विद्यार्थियों के लिए समान परीक्षण परिस्थितियाँ रखी जायें।

(iv) बैठने की व्यवस्था ठीक हो। नकल न होने पाये।

(v) परीक्षण के लिए उपयुक्त ही समय दिया जाए।

(vi) निर्देश संक्षिप्त, सरल एवं स्पष्ट होने चाहिए।

(vii) अंक प्रदान करने में सरलतम विधि का प्रयोग करना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को कुंजी के अनुसार अलग-अलग अङ्क दिये जाते हैं, फिर सभी उत्तर-पुस्तिकाओं के अङ्कों का 'औसत मान और विचलन'[2] निकाल लिया जाता है। यदि आधे या एक-तिहाई उत्तर ऐसे हो सकते हैं जिनमें ठीक प्रत्युत्तर तीर-तुक्का लगाकर ही दिये जा सकते हैं तो एक सूत्र द्वारा उत्तरों का समाधान सुधारा जाता है। यह सूत्र है :

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

यहाँ, S= वह समाधान जो सही कर लिया गया है

R = सही प्रत्युत्तरों की संख्या

W = गलत प्रत्युत्तरों की संख्या

N = प्रत्येक समय जो प्रत्युत्तरों की संख्या प्रस्तुत की गई।

४. परीक्षण का मूल्यांकन[3]

(i) पद-विश्लेषण[4]—परीक्षण के प्रथम प्रयोग के पश्चात् का पद, उसका मूल्यांकन करना है। इसमें निम्न पदों का प्रयोग किया जाता है। इससे तात्पर्य यह है कि प्रत्येक पद का सम्पूर्ण विद्यार्थियों के कितने प्रतिशत ने सही उत्तर दिया है, इसकी जाँच करके यह निर्धारित करना कि यह पद परीक्षण में रखने योग्य है या नहीं। पद-विश्लेषण में 'विभेदकारी मान'[5] का पता लगाया जाता है। इसके लिए कुछ वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

यहाँ हम एक सरल विधि का जिसका उपयोग पद-विश्लेषण में किया जाता है, वर्णन कर रहे हैं :

(अ) सभी उत्तर-पुस्तिकाओं पर अङ्क प्रदान करके उन्हें ऐसे क्रम में रख

1. Sample. 2. Standard Deviation. 3. Evaluating the Test. 4. Item Analysis. 5. Discriminating Value

दिया जाता है कि सबसे अधिक अङ्क वाली उत्तर-पुस्तिका सबसे ऊपर होती है और सबसे कम अङ्क वाली सबसे नीचे।

(ब) अब समस्त उत्तर-पुस्तिकाओं को ६ यथासम्भव बराबर के समूहों[1] मे बाँट दिया जाता है। इनको S_1, S_2 S_3, S_4, S_5, S_6 कहा जाता है। यह समूह ५ या ३ भी बनाये जा सकते हैं। समूहो मे यदि बराबर उत्तर-पुस्तिकाएँ न बँट सकें तो S_3 या $_4$ मे कम या अधिक उत्तर-पुस्तिकाएँ कर देनी चाहिए किन्तु किसी और समूह की सख्या मे परिवर्तन नही लाना चाहिए।

(स) अब प्रत्येक समूह पर अलग से कार्य किया जाता है। इसके लिए एक चार्ट बना लिया जाता है, जिसमे प्रश्नो का नम्बर समानान्तर रूप मे लिखा जाता है और परीक्षार्थियो का नम्बर लम्बवत् रूप मे। प्रत्येक उत्तर-पुस्तिका को लेकर उसमे जिस प्रश्न का सही उत्तर दिया गया है, उसका 'टेली चिन्ह'[2] लगा लिया जाता है। इस प्रकार एक ढेर मे जितने भी किसी प्रश्न के सही उत्तर आते हैं, उनकी संख्या ज्ञात कर ली जाती है। इसी प्रकार सब ढेरो मे समस्त प्रश्नो की अलग-अलग सही उत्तर पाने की संख्या ज्ञात कर ली जाती है। अब एक प्रश्न के सम्बन्ध मे जो ६ सही उत्तरो का योग प्राप्त होता है, उसे जोडकर उन परीक्षार्थियो की संख्या का पता लगा लिया जाता है, जिन्होने सही उत्तर उस प्रश्न का दिया है।

प्रश्न-संख्या

	परीक्षार्थी संख्या	१	२	३	४	५	५०	६०	६१	६२	६३
	१	१	१	१	१			१			
	२	१	१	१	×			१			
समूह S_1	३	१	१	१	१			१			
	४	१	१	१	×			×			
	५	१	१	१	१			×			
	६	१	१	१	×			×			
	योग	६	६	६	३			३			
समूह S_2	७										
	८										
	९										
	१०										
	११										
	१२										
	इत्यादि										

समूह S_3, S_4, S_5, S_6

[प्रश्न-संख्या और परीक्षार्थी-संख्या लिखने की विधि]

1. Piles 2. Tally Mark

(द) इसके पश्चात् एक दूसरी तालिका बनाई जाती है और प्रत्येक प्रश्न का 'कठिनता मान'[1] निकाल लिया जाता है। दूसरी तालिका मे प्रत्येक प्रश्न के सही उत्तरो की पूर्ण संख्या लिख दी जाती है। तालिका इस प्रकार बनायी जाती है—

पद	S_1	S_2	S_3	S_4	S_5	S_6	योग	I.D. %	E_{13}	Remarks
१										
२										
३										
४										
५										
६										

कठिनता का मान ज्ञात करने का सूत्र है—

$$I.D = \frac{Ni}{Nt} \times 100$$

जिसमे, I D.=कठिनता मान[2]

Ni=परीक्षार्थियो द्वारा सही उत्तरो की संख्या[3]

Nt=परीक्षार्थियो की पूर्ण संख्या[4]

(ii) आन्तरिक वैधता[5]—कठिनता मान ज्ञात करने के पश्चात् एक पद की 'आन्तरिक वैधता' का पता लगाया जाता है। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग होता है :

$$r_{13} = \frac{(S_1+S_2)-(S_3+S_4)}{N/3}$$

S_1, S_2, S_3, S_4 वह समूह हैं जिनमें उत्तर-पुस्तिकाएँ बाँटी गई हैं,

N=परीक्षार्थियो की संख्या[6], और

r_{13}=आन्तरिक वैधता[7]

आन्तरिक वैधता के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि पद या प्रश्न को अन्तिम परीक्षण के मसविदे में रखा जाये या नहीं। आन्तरिक वैधता का प्रयोग

1. Difficulty Value. 2. Item Difficulty. 3. Item done correctly by the number of Testees. 4. Total number of Testees. 5. Internal Validity. 6. Number of Testees. 7. Internal Validity.

इस प्रयोजन से किया जाता है कि यह पता लग जाये कि जो पद परीक्षण में लिये गये हैं—वह विभिन्न परीक्षार्थियों में उस तत्व के सम्बन्ध से जो मापा जाना है, विभिन्नता ज्ञात कर सकते हैं अथवा नहीं।

आन्तरिक वैधता के साथ 'बाह्य वैधता'[1] का भी पता लगाया जा सकता है। यह निर्माण किये हुए परीक्षण की तुलना किसी मानकीकृत परीक्षण से या किसी अन्य बाह्य मान से करके ज्ञात की जा सकती है।

(iii) अन्तिम चुनाव[2]—अब हम पदों का अन्तिम चुनाव कर सकते हैं। इसके लिए निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिए

(अ) यथासम्भव उन पदों को रखें, जिनका कठिनाई मान ४०% से ६०% के बीच है और E_{13}='५। इसके अतिरिक्त हम अन्य पदों को भी रख सकते हैं जो कठिनाई मान तथा E_{13} को देखकर निश्चित किए जा सकते हैं।

(ब) एक पद के चुनाव में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यदि 'कठिनाई-वक्र'[3] खींचा जाये तो वह 'सामान्य वक्र'[4] का रूप ले ले।

इस प्रकार से अब हम एक परीक्षण-रचना कर लेते हैं, जिसका प्रयोग हम विद्यालय में सरलता से कर सकते हैं।

यदि अध्यापक को वस्तुनिष्ठ परीक्षा बनानी है तो वह वस्तुनिष्ठ परीक्षा में जो प्रश्नों की शैली होती है (जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है), उसका उपयोग करेगा।

निबन्धात्मक परीक्षण बनाने में एक अध्यापक को जिस बात का ध्यान रखना चाहिए, उसका वर्णन भी हम पीछे कर चुके हैं।

सारांश

एनास्तासी के अनुसार, "एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक रूप से एक वस्तुनिष्ठ एवं प्रमापीकरण माप, एक प्रत्यादर्श के व्यवहार का होता है।"

(अ) प्रमापीकरण

प्रमापीकरण से तात्पर्य है—"परीक्षा देने में और उसका मूल्यांकन करने में एक सामान्य विधि।"

मानक से तात्पर्य है सामान्य या औसत निष्पादन।

वस्तुनिष्ठता—एक पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह है, जिसमें प्रत्येक निरीक्षणकर्त्ता व्यक्ति के मूल्यांकन के सम्बन्धों में एक ही से निष्कर्ष पर पहुँचे।

विश्वसनीयता—एक परीक्षण तब विश्वसनीय कहलाता है, जब उस परीक्षण में उन्हीं व्यक्तियों द्वारा विभिन्न अवसरों पर एक ही प्रकार के विभिन्न परीक्षण-पदों के साथ जो फलांक प्राप्त किये जाते है, उनमें संगति होती है।

---

1. External Validity. 2. Final Selection. 3. Difficulty Curve. 4. Normal Curve.

विश्वसनीयता की माप विश्वसनीयता-सहसम्बन्ध के द्वारा की जाती है। विश्वसनीयता की माप निम्न चार प्रविधियो द्वारा की जा सकती है :

१. परीक्षण-पुनर्परीक्षण विधि।
२. विकल्प या समानान्तर प्रतिरूप विधि।
३. अर्द्ध-विच्छेद विधि।
४. युक्ति-युक्त पद-साम्य विधि।

यथार्थता—एक परीक्षण की यथार्थता उस कार्य-कुशलता पर निर्भर रहती है जिससे वह परीक्षण उस तथ्य का मापन करता है, जिसके लिए वह बनाया गया है।

गिल्किसन के अनुसार, "यथार्थता किसी कसौटी के साथ परीक्षण का सह-सम्बन्ध है।"

व्यावहारिकता—इससे यह तात्पर्य है कि किन अंशो तक एक परीक्षण या अन्य यन्त्र सफलतापूर्वक कक्षा-अध्यापको तथा विद्यालय-प्रशासको द्वारा बिना अधिक शक्ति या समय को नष्ट किये हुए प्रयोग किया जा सकता है।

व्यावहारिकता निम्नलिखित मुख्य बातो पर निर्धारित रहती है :

१. प्रशासन मे सुविधा।
२. फलाकन मे सुविधा।
३. निर्वचन एवं प्रयोग मे सुविधा।
४ मितव्ययता।
५. उचित यान्त्रिक बनावट।
६. तुलना करने मे सुविधा।
७. उपयोगिता।

(ब) अध्यापक-निर्मित परीक्षणों की रचना

मानकीकृत परीक्षण तथा अनौपचारिक वस्तुनिष्ठ परीक्षणो मे केवल यह अन्तर होता है कि मानकीकृत परीक्षण कुछ अधिक शुद्ध होते हैं।

परीक्षणो की रचना मे निम्न मुख्य चार चरण हैं

(१) परीक्षण की योजना—इसमें निम्न चार सिद्धान्तो पर ध्यान देना चाहिए :

(अ) मापन का ध्येय—निर्धारण।
(ब) प्रयोजन—जिनकी पूर्ति परीक्षण द्वारा होती है।
(स) दशाएँ—जिनमे इसका प्रशासन करना है।
(द) यदि परीक्षण ज्ञानोपार्जन सम्बन्धी है तो पाठ्यक्रम पर लगभग तुलनात्मक रूप से बल डालने वाला हो।

(२) **परीक्षण की रचना**—इस सम्बन्ध मे कुछ मुख्य सिद्धान्तो को ध्यान मे रखना चाहिए।

(३) **परीक्षण का प्रथम प्रयोग**– परीक्षण का प्रथम प्रयोग विद्यार्थियो के एक समूह पर किया जाता है जिसमे सब स्तर के विद्यार्थी होते हैं—उच्च, सामान्य तथा निम्न। इस प्रयोग के सम्बन्ध में अनेक बातो पर ध्यान देना आवश्यक है।

(४) **परीक्षण का मूल्यांकन**—इसमे निम्न पद सम्मिलित होते हैं

(i) पद-विश्लेषण।

(ii) आन्तरिक वैधता।

(iii) अन्तिम चुनाव।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१. मनोवैज्ञानिक परीक्षण से आप क्या समझते हैं ? इसमे क्या गुण होने आवश्यक हैं ?

२ वर्तमान समय मे मनोवैज्ञानिक माप की प्रकृति तथा विस्तार का वर्णन संक्षेप मे कीजिए।

३. अनौपचारिक वस्तुनिष्ठ परीक्षण तथा मानकीकृत परीक्षण मे क्या अन्तर है ? दोनो प्रकार के परीक्षण जिन-जिन स्थितियो में अधिक उपयोगी हैं, उनका वर्णन कीजिए।

४. अध्यापक-निर्मित परीक्षण का निर्माण किस प्रकार से किया जा सकता है ? उन सिद्धान्तो पर प्रकाश डालिए, जिन पर ऐसे परीक्षण के निर्माण में ध्यान देना आवश्यक है।

५. पद-विश्लेषण से आप क्या समझते हैं ? परीक्षण-निर्माण मे इसका प्रयोग कैसे होता है ?

भाग ७

सांख्यिकीय एवं अनुसन्धान पद्धतियाँ

३१ शिक्षा में सांख्यिकीय गणना
STATISTICS IN EDUCATION

सांख्यिकी का अर्थ

'सांख्यिकी' वैज्ञानिक विधि की वह शाखा है जो प्रदत्त[1] का विवेचन करती है। ये प्रदत्त गणना तथा मापन से प्राप्त किये जाते हैं। सांख्यिकी की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं—'वह विज्ञान जो प्रदत्तों के सकलन[2], विश्लेषण[3] तथा निर्वचन से सम्बन्धित नियमों का अध्ययन करता है, सांख्यिकी[4] कहलाता है।" सांख्यिकी का तात्पर्य केवल प्राप्तांकों और परीक्षाफलों अथवा मनोवैज्ञानिक निरीक्षणों की प्राप्त राशि आदि प्रदत्तों का संग्रह करना और उनको भली प्रकार समझने के हेतु सुसंगठित व सुव्यस्थित करना है।

सांख्यिकी की सीमाएँ

सांख्यिकी की सीमाएँ देखने में हमको उसके क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। सांख्यिकी का उपयोग हम विभिन्न विषयों के लिए कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—अर्थशास्त्र, राजनीति-शास्त्र, नियोजन, वाणिज्य तथा व्यापार, औषधि-विज्ञान, और शिक्षा आदि में। इसकी सीमाएँ निम्नांकित हैं :

(१) सांख्यिकी केवल इयत्तात्मक[5] प्रदत्तों का ही अध्ययन करती है। बुद्धिमानी, सचाई, गरीबी, कमजोरी इत्यादि गुणों का विश्लेषण सांख्यिकीय रीति द्वारा नहीं हो सकता है।

(२) इसके द्वारा वैयक्तिकता का अध्ययन नहीं किया जाता, बल्कि वर्गों तथा समुदायों का अध्ययन होता है।

(३) सांख्यिकी के नियम औसत से ही लागू होते हैं। गणित तथा भौतिक-विज्ञान के नियमों की भाँति पूर्णतया शुद्ध[6] नहीं, जो कि प्रत्येक स्थान तथा काल में सही होंगे।

---

1. Data, 2. Collection, 3. Interpretation, 4 Statistics, 5. Quantitative, 6. Exact.

संतत तथा खंडित राशि[1]

व्यक्तिगत विभेदों के कारण जिन मनोवैज्ञानिक गुणों को हम मापते हैं, उनमें बहुत विविधता[2] होती है। इसलिए जो परिणाम हमें निरीक्षण व परीक्षण द्वारा प्राप्त होते हैं, उन्हें हम चल-राशि[3] कहते हैं। इस कारण सांख्यिकी को चल-राशियों का विज्ञान भी कहा जाता है। इनमें से कुछ चल-राशियों का मान खण्डित[4] होता है; जैसे—नगर की जनसंख्या, बालकों की संख्या आदि, यह सदैव पूर्ण राशि होती है। अन्य चल-राशियाँ सन्तत[5] होती हैं; जैसे—आयु, मनुष्य का भार, ऊँचाई आदि। खण्डित राशि में केवल एक पूर्णांक का अन्तर होता है और सन्तत राशि में यह अन्तर न्यून से न्यून भिन्न[6] में भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, मनुष्य की ऊँचाई ६·२ इंच हो सकती है लेकिन कक्षा की संख्या पूर्णांक में ही होगी, वह ४०·१ नहीं होगी। शिक्षा में सन्तत राशियों का ही प्रयोग किया जाता है।

आवृत्ति-वितरण[7]

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, सांख्यिकी इयत्तात्मक प्रदत्तों का ही अध्ययन करती है। यदि प्रदत्तों की संख्या छोटी है तो हम उसको सरलता से देखकर ग्रहण कर सकते हैं। जब प्रदत्तों की संख्या अधिक हो तो उस समय उनको ग्रहण करना सम्भव नहीं होता है। इस असुविधा का समाधान करने के लिए प्रदत्तों का सुसंगठित होना आवश्यक हो जाता है। हम प्रदत्तों को साधारण, द्विगुणीय तथा त्रिगुणीय सारणी[8] के द्वारा सुसंगठित कर सकते हैं। आवृत्ति[9] वह मान है जो जितनी बार आता है।

इस आवृत्ति के अनुसार हम प्रदत्तों का सुसंगठन कर सकते हैं। इस प्रकार किया हुआ संगठन 'आवृत्ति-वितरण' कहलाता है। आवृत्ति-वितरण करने में हमें निम्नलिखित पदों का ध्यान रखना चाहिए :

(१) वास्तविक प्राप्तांकों[10] का प्रसार-क्षेत्र[11] ज्ञात करना चाहिए। प्रसार-क्षेत्र वह अन्तर है जो अधिकतम प्राप्तांक तथा न्यूनतम प्राप्तांक में होता है।

(२) इसके पश्चात् हम वर्गान्तर[12] की संख्या तथा वर्ग की लम्बाई या विस्तार का निर्णय करते हैं। वर्गान्तर की संख्या का निर्णय प्रसार-क्षेत्र पर निर्भर होता है। जितना हमारा प्रसार-क्षेत्र होगा, उसी के अनुसार हम वर्ग-विस्तार का चयन कर लेंगे। वर्ग-विस्तार के चयन के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। हम उसका विस्तार 1, 2, 3, 4, 5, 8, 10, 20 आदि मान सकते हैं। यह भी प्रसार-क्षेत्र के अनुसार चुना जाना चाहिए।

---

1. Continuous and Discrete Series. 2. Variability. 3. Variable. 4. Discrete. 5. Continuous. 6. Fraction. 7. Frequency Distribution. 8. Tabulation. 9. Frequency. 10. Raw Scores. 11. Range, 12. Class Interval.

(३) इसके पश्चात् वास्तविक प्राप्तांकों को समुचित वर्ग में सारणीबद्ध किया जाता है। यह सुसंगठन निम्नलिखित उदाहरण में स्पष्ट हो जायगा।

सारणी 1[1]—निम्नलिखित प्राप्तांकों का आवृत्ति-वितरण करो :

72	75	77	67	72
81	78	65	86	73
67	82	76	76	70
83	71	63	72	72
61	67	84	69	64

प्रसार-क्षेत्र $=86-61=25$

वर्ग-विस्तार हमने यहाँ 5 चुना है

$$\text{वर्गान्तर की संख्या} = \frac{\text{प्रसार-क्षेत्र}}{\text{वर्ग-विस्तार}} + 1$$

$$\left(\frac{\text{Range}}{\text{Length of Class Interval}} + 1 \right) = \frac{25}{5} + 1 = 6$$

वर्गान्तर	आवृत्ति खड़ी रेखा के रूप में (Tally Mark)	आवृत्ति संख्या (Number of Frequencies)
85—89	I	1
80—84	IIII	4
75—79	𝍸	5
70—74	𝍸II	7
65—69	𝍸	5
60—64	III	3
		आवृत्ति की कुल संख्या (N)=25

वर्गान्तर नीचे से शुरू करके ऊपर को चलना चाहिए। वर्गान्तर रखने के पश्चात् हम वास्तविक प्राप्तांकों को वर्गबद्ध करते चले जाते हैं जिनके लिए हम खड़ी रेखा का चिह्न प्रयोग में ला सकते हैं, जो 'टैली मार्क'[2] कहलाता है। वर्गान्तर के अन्तर्गत आने वाली आवृतियों को जोड़कर उनके समक्ष रखते हैं। इन आवृत्तियों की संख्या वही होगी जो वास्तविक प्राप्तांकों की संख्या है। आवृत्ति की कुल संख्या को हम N से सम्बोधित करते हैं।

1. Table No 1. 2. Tally Mark.

सारणी 2—आवृत्ति-वितरण में अङ्कों या प्रदत्तों को वर्गीकृत करने की विधियाँ—

(अ)			(ब)			(स)		
वर्गान्तर	मध्य-बिन्दु	आवृत्ति	वर्गान्तर	मध्य-बिन्दु	आवृत्ति	वर्गान्तर	मध्य-बिन्दु	आवृत्ति
	×	×		×	×			
40—45	42	3	39·5—44·5	42	3	40—44	42	3
35—40	37	4	34·5—39 5	37	4	35—39	37	4
30—35	32	5	29·5—34·5	32	5	30—34	32	5
25—30	27	6	24·5—29·5	27	6	25—29	27	6
20—25	22	8	19·5—24 5	22	8	20—24	22	8
15—20	17	3	14·5—19 5	17	3	15—19	17	3
10—15	12	4	9·5—14·5	12	4	10—14	12	4
5—10	7	7	4 5— 9 5	7	7	5— 9	7	7
	N=40			N=40			N=40	

40 लडको के अंग्रेजी के प्राप्तांको को आवृत्ति-वितरण में वर्गीकृत करना है। उनको हम उपर्युक्त तीन विधियों से कर सकते हैं। 'अ' नामक विधि में वर्गान्तर 5—10 में 5 से जिसमें 10 शामिल नहीं है, अङ्क आते हैं। इस प्रकार से वर्गीकृत अङ्कों से आई हुई शृङ्खला[1] को 'निषेधक शृङ्खला'[2] कहते हैं। इस प्रकार के वर्गीकरण में अशुद्धि होने के अवसर अधिक रहते हैं। उदाहरणार्थ, 25 अङ्कों को 20—25 नामक वर्गान्तर में रखा जा सकता है, क्योंकि छात्र जब इस वर्गान्तर की उच्च सीमा को देखेगा तो भूल से 25 को इसमें रख सकता है। परन्तु 25 इस वर्गान्तर में शामिल नहीं है। वह 25—30 नामक वर्गान्तर में रखा जायगा। 'ब' नामक विधि सबसे शुद्ध है। इसमें उनकी सीमाओं को प्रदर्शित किया गया है। परन्तु व्यवहार में इस विधि से समय अधिक लगता है। इस विधि को 'शुद्ध वर्गीकृत' विधि कहते हैं। 'स' नामक विधि 'अ' से अधिक शुद्ध है। इसको 'सामासिक शृङ्खला'[3] के नाम से पुकारते हैं। शीघ्रतापूर्वक वर्गीकरण के लिए यह विधि बहुत उत्तम एवं सरल है। इस अध्याय में इस विधि को ही अपनाया गया है। हमारे विचार में नवसिखुओं के लिए यही विधि सबसे उत्तम है।

आवृत्ति-वितरण के रेखाचित्र[4]

आधुनिक काल में आंकिक प्रदत्तों[5] का रेखा चित्रण एक विस्तृत कला हो गई है। आवृत्ति-वितरण के रेखाचित्र[6] बनाने से आंकिक प्रदत्तों के विश्लेषण में

1. Series. 2. Exclusive Series. 3 Inclusive Series. 4. Graphic Representation of Frequency Distribution. 5. Numerical Data. 6. Graph.

बड़ी सहायता मिलती है। इसके द्वारा हम सक्षेप मे समस्त आंकिक प्रदत्तों को प्रस्तुत कर देते हैं और अपने आशय को पूर्ण कर लेते हैं। आवृत्ति-वितरण को चित्र द्वारा प्रस्तुत करने की मुख्यत चार विधियाँ हैं। ये इस प्रकार हैं.

१. आवृत्ति-वितरण बहुभुज।[1]
२. स्तम्भाकृति।[2]
३. समूहज आवृत्ति-वितरण वक्र।[3]
४. समूहज प्रतिशत वक्र।[4]

(१) **आवृत्ति-वितरण बहुभुज चित्रण**—जैसा कि पाठकों को ज्ञात है, रेखाचित्र-कागज[5] पर गणित के चित्र दो भुजाओं के आधार पर खीचे जाते हैं। ये दोनों भुजाएँ अक्ष और कोटि[6] परस्पर समकोण बनाती हुई एक मूल बिन्दु[7] पर काटती हैं। बहुभुज चित्र बनाने में भी हम इन दोनों भुजाओं का उपयोग करते हैं। इसके बनाने मे हम निम्नलिखित पदों को ध्यान मे रखते हैं :

(i) दो सरल रेखाएँ खीचो जो एक-दूसरे को समकोण बनाती हुई काटें। लम्बीय[8] रेखा (y—axis) का oy से तथा समतलीय रेखा[9] (x—axis) का ox से प्रतिनिधित्व करो। मूल बिन्दु का नामकरण O से करो।

(ii) x—axis पर आवृत्ति-वितरण वर्गान्तरों की बराबर-बराबर दूरी पर स्थापना करो। छोटे वर्गान्तर की छोटी सीमा[10] से आरम्भ करके सबसे बड़े वर्गान्तर की सबसे बड़ी सीमा[11] तक इन वर्गान्तरों की स्थापना करो।

(iii) y—axis पर जो वर्ग आवृत्तियाँ हैं, उनको चिह्नित करो।

(iv) x—axis पर के वर्गान्तरों के मध्य-बिन्दुओं से y—axis की ओर चलकर उनकी आवृत्ति के अनुसार बिन्दु स्थापित करो। उदाहरणार्थ, 10—14 वर्गान्तर मे यदि 4 आवृत्ति हैं तो हम वर्गान्तर के मध्य-बिन्दु से प्रारम्भ कर देंगे। 4 निशान तक y—axis की ओर चलेंगे। इस मध्य-बिन्दु के ऊपर 4 निशान पर चिह्न लगायेंगे। इस प्रकार सभी वर्गान्तरों से बनी आवृत्तियों को चिह्नित करेंगे।

(v) अन्त मे, चौथे पद के अनुसार जो बिन्दु चिह्नित करके आये, उनको सरल रेखा से मिला दो। इस प्रकार चिह्नित बिन्दुओं को सरल रेखा के द्वारा मिलाने से बहुभुज चित्र प्राप्त होगा।

इन पदों के स्पष्टीकरण के लिए हम एक उदाहरण आगे प्रस्तुत करते हैं :

---

1. Frequency Polygon. 2 Histogram 3. Cumulative Frequency Distribution Curve. 4. Cumulative Percentage Curve or Ogive. 5. Graph paper. 6. Abscissca and Ordinate 7. Orgin. 8. Vertical. 9. Horizontal. 10. Lowest Limit. 11. Highest Limit.

सारणी 3—निम्नलिखित आवृत्ति-वितरण का बहुभुज चित्र बनाओ :

वर्गान्तर	आवृत्ति	समूहित आवृत्ति
120—139	50	900
100—119	150	850
80— 99	500	700
60— 79	150	200
40— 59	50	50
N=1000		

सर्वप्रथम हम इस आवृत्ति-वितरण का बहुभुज चित्र बनाने के लिए छोटे वर्गान्तर से नीचे का वर्गान्तर तथा ऊँचे वर्गान्तर से ऊँचा वर्गान्तर मालूम करेंगे।
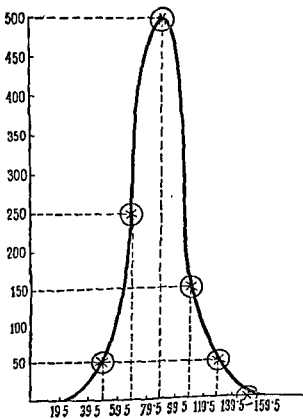
[रेखाकृति १]

नीचा वर्गान्तर 20—39 होगा और सबसे ऊँचे वर्गान्तर से अगला वर्गान्तर 140-159 होगा। इनकी आवृत्ति शून्य होगी। इसके पश्चात् हम वर्गान्तरों को x—axis पर रखेंगे। 20—39 वर्गान्तर की सबसे छोटी सीमा को लेकर उनका स्थानीकरण करना प्रारम्भ करेंगे। इनको रखने के पश्चात् y—axis पर जैसा रेखाकृति १ में रखा गया है, हम वर्गान्तरों की वर्ग आवृत्तियों को चिह्नित करेंगे। 20—29 नामक वर्गान्तर में आवृत्ति शून्य है, हम इसके मध्य-बिन्दु से प्रारम्भ करेंगे। दूसरे वर्गान्तर में आवृत्ति 50 है, इस वर्गान्तर के मध्य-बिन्दु के ऊपर 50 आवृत्ति की ऊँचाई पर बिन्दु चिह्नित करेंगे। इस प्रकार चिह्नित करके जो बिन्दु आयें, उनको सरल रेखा से मिलायेंगे और मिलाकर हमको बहुभुज चित्र प्राप्त होगा।

(२) स्तम्भाकृति—स्तम्भाकृति बनाने में, सर्वप्रथम, हम कागज पर x—axis और y—axis बनाते हैं। जैसा कि हमने बहुभुज चित्र बनाने में x—axis पर वर्गान्तरों
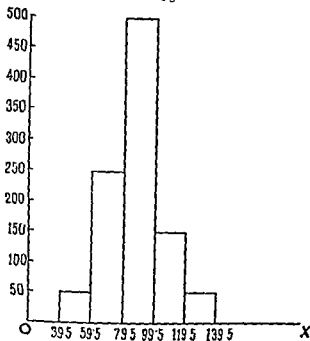
[रेखाकृति २]

को फैलाया तथा y—axis पर आवृत्ति को फैलाया था, उसी प्रकार इसमें करते हैं। रेखाकृति २ में इसको दिखाया गया है। परन्तु इसके बनाने में अन्तर यह रहता है

कि बहुभुज में सबसे छोटे तथा बड़े वर्गान्तर के अगले छोटे तथा बड़े वर्गान्तर मालूम किये थे, इसमें ऐसा नहीं करते, बल्कि उसी वर्गान्तर से प्रारम्भ करते हैं जो दिये हुए हैं। सारणी ३ के आवृत्ति-वितरण की स्तम्भाकृति रेखाकृति २ में बनाई गई है।

दोनों अक्षों पर वर्गान्तरों तथा आवृत्तियों को रखने के पश्चात् हम आवृत्तियों को चिह्नित[1] करेंगे, जैसा कि हमने बहुभुज चित्र में मध्य-बिन्दु से प्रारम्भ किया था। इसमें मध्य-बिन्दु से प्रारम्भ न करके सबसे छोटे वर्गान्तर को सबसे छोटी सीमा से प्रारम्भ करेंगे। सबसे छोटी सीमा से प्रारम्भ करके हम कोटि कक्ष की आवृत्ति की ऊँचाई पर बिन्दु रखकर, जो उस वर्गान्तर में है, बिन्दु से सीमा के बिन्दु मिला देंगे और आयताकार आवृत्ति बनाते चले जायेंगे।

(३) समूहज वितरण वक्र—समूहज वितरण वक्र के बनाने में सर्वप्रथम हम कागज पर x—axis तथा y—axis बनायेंगे। इसके पश्चात् हम x—axis पर वर्गान्तरों तथा y—axis पर समूहज आवृत्तियों को फैलायेंगे। बहुभुज के निर्माण में हमने आवृत्ति वर्गान्तरों के मध्य-बिन्दुओं पर चिह्नित की थी। परन्तु इसके निर्माण में हम समूहज आवृत्तियों को वर्गान्तर की उच्च सीमा पर चिह्नित करेंगे। निम्न उदाहरण से
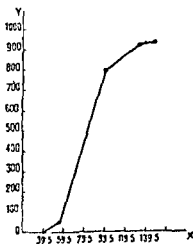
[रेखाकृति ३]

यह बात स्पष्ट हो जायगा। यह समूहज वितरण वक्र सारणी ३ के आवृत्ति-वितरण से खींचा गया है। इसमें हमने वर्गान्तर की उच्च सीमाएँ फैलायी, परन्तु हम सबसे छोटे वर्गान्तर को सबसे छोटी सीमा से प्रारम्भ करते हैं। इन वर्गान्तरों की उच्च सीमाओं के बीच की दूरी बराबर होगी।

1 Plot.

y—axis पर समूहज आवृत्तियाँ फैलाई जायेंगी। यह सारणी 3 में तीसरे खाने में दी गई हैं। इन्हें नीचे से चलकर नीचे वाली आवृत्ति को ऊपर वाली के साथ जोड़कर निकालते हैं। 50 में 150 जोड़कर 200 आये, इसी प्रकार इस खाने की अन्य सख्याएँ आई। छोटी सीमा से प्रारम्भ करेंगे लेकिन आवृत्ति का बिन्दु उस वर्गान्तर की उच्च सीमा पर चिह्नित किया जायगा। इस प्रकार सब आवृत्तियों को चिह्नित करके उन बिन्दुओं को सरल रेखा द्वारा मिलायेंगे और इस प्रकार बिन्दुओं को मिलाने से अभीष्ट वक्र प्राप्त होगा।

(४) समूहज प्रतिशत वक्र—इस वक्र तथा समूहज वितरण वक्र के बनाने में कोई मुख्य अन्तर नहीं है। इसमें भी वही विधि अपनायी जाती है जो समूहज वितरण-वक्र के बनाने में अपनायी गई थी। केवल अन्तर यह है कि समूहज आवृत्तियों के स्थान पर उन आवृत्तियों का प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है, और ये प्रतिशत y—axis पर समूहज आवृत्तियों के स्थान पर रख दिये जाते हैं। इसमें भी वर्गान्तर की उच्च सीमा पर प्रतिशत को चिह्नित करते हैं।

सामान्य सम्भावित वक्र[1]—पाठक यह जानते हैं कि एक मुद्रा के दो पहलू—हैड और टेल[2] होते हैं। यदि हम मुद्रा को कितनी ही बार उछालें तो हैड और टेल के ऊपर आने की सम्भावना[3] बराबर रहेगी। हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि हैड और टेल प्रत्येक के ऊपर आने की सम्भावना 50% होगी। यदि दो मुद्राएँ 'अ' और 'ब' एक साथ उछाली जाती हैं तो उनके हैड (H) तथा टेल (T) पहले ऊपर की ओर चार प्रकार से आ सकते हैं, यथा—

मुद्रा	अ ब	अ ब	अ ब	अ ब
पहलू	H H	H T	T H	T T

इसी प्रकार यदि 10 मुद्राओं को एक साथ उछाला जाय तो उनके गिरने के फल 11 हो सकते हैं। इनके योगों की सख्या द्विपद सिद्धान्त के विस्तार[4] से ज्ञात की जा सकती है.

$$(H+T)^{10} = H^{10} + 10H^9T + 45\,H^8T^2 + 120H^7T^3 + 210\,H^6T^4 + 252\,H^5T^5 + 210\,H^4T^6 + 120H^3T^7 + 45\,H^2T^8 + 10\,HT^9 + T^{10}$$

H^{10}, 1024 में से समस्त मुद्राओं के हैड आने के अवसर हैं·

$$= \frac{1}{1024}$$

$10\,H^9T^1$, 1024 में से 9 मुद्राओं के हैड तथा एक मुद्रा की टेल के

अवसर $= \frac{10}{1024}$

---

1. Normal Probability Curve. 2. Head & Tail 3. Combination. 4. Coefficient of Binomial Expansion.

इसी प्रकार दूसरे योगों के अनुपात को भिन्न राशि में लिख सकते हैं :

$$\frac{45}{1024}, \frac{120}{1024}, \frac{210}{1024}, \frac{252}{1024}, \frac{210}{1024}, \frac{120}{1024}, \frac{45}{1024},$$

$$\frac{10}{1024}, \frac{1}{1024}.$$

यदि इन सम्भावनाओं को रेखाचित्र कागज पर चिह्नित करें तो हमें इससे सामान्य सम्भाविता वक्र की प्राप्ति होगी। इसके लिए इन पदों को x—axis पर रखेंगे तथा y—axis पर इनकी आवृत्तियों, अर्थात् 1, 10, 45 120 210, 252 आदि को रखेंगे। इन आवृत्तियों को इन पदों के ऊपर चिह्नित करेंगे, आवृत्तियों को इन पदों को मिलाने से सामान्य सम्भाविता वक्र की प्राप्ति होगी।

सामान्य सम्भाविता वक्र के गुण[1] — इस वक्र के मुख्य गुण नीचे दिये जा रहे हैं

(१) सामान्य सम्भाविता वक्र घण्टाकार[2] होता है अर्थात् [illegible] वक्र का शिखर[3] मध्य में होता है और दोनों सिरों पर पुच्छाकृति होती है।
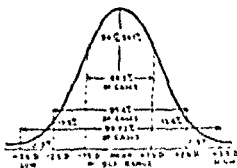
[चित्र न० [illegible]]

[illegible]

[illegible]

(३) इस वक्र में मध्यमान[1], माध्यमिका मान[2] तथा बहुलाक मान[3] एक बिन्दु पर होते हैं; अर्थात् तीनों एक-समान होते है।

(४) इस वक्र में एक ही बहुलाक मान होता है।

(५) इस वक्र में केन्द्र के चारों ओर अधिक प्राप्तांक होते हैं और थोड़े प्राप्तांक निम्न तथा उच्च सिरे पर होते हैं।

(६) यह एक आदर्श वक्र होता है, जो ठोस स्थितियो में प्राप्त नहीं होता। इसके समान वक्र हम ठोस स्थितियों में प्राप्त कर सकते है परन्तु ठीक ऐसा वक्र प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसके कई कारण हैं—प्रथमत हमारे प्रदत्तों के संग्रह में गलती रह सकती है; दूसरे, उस समूह में जिससे प्रदत्त लिये गये हैं, दोष[4] हो सकता है।

इस वक्र के क्षेत्र को हम प्रामाणिक निसर्जन मूल्य के प्रमाप[5] द्वारा नापते हैं। इसका समस्त क्षेत्रफल $\pm 3\sigma$ मे बँटा होता है। शिखर के बायी ओर के भाग का क्षेत्र ऋणात्मक राशियो मे होता है, और शिखर के दायी ओर के भाग का क्षेत्र धनात्मक राशियों मे होता है।

$+1\sigma$ के अन्तर्गत 34 1% प्राप्तांक आते हैं और इतने ही प्राप्तांक -1σ के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार $\pm 1\sigma$ के अन्तर्गत कुल 68 2% प्राप्तांक आते हैं। $+2\sigma$ के अन्तर्गत 13·6% प्राप्तांक होते हैं, इतने ही प्राप्तांक -2σ के अन्तर्गत होते हैं। $+3\sigma$ के अन्तर्गत 2 3% प्राप्तांक होते हैं और इतने ही -3σ के अन्तर्गत आते हैं। इनको संक्षेप मे इस प्रकार रख सकते हैं (रेखाकृति ४ मे इनका वितरण दिखाया गया है)[6]

$\pm 1\sigma = 68{\cdot}2\%$
$\pm 2\sigma = 27{\cdot}2\%$
$\pm 3\sigma = 4\ 6\%$

केन्द्रीवर्ती मान के प्रमाप[7]

केन्द्रवर्ती मान वह बिन्दु है, जो पूर्ण वितरण का प्रतिनिधित्व करता है। केन्द्रवर्ती मान के तीन प्रमाप होते हैं जिनका प्रयोग शैक्षिक सांख्यिकी मे किया जाता है। ये इस प्रकार हैं .

(अ) मध्यमान, (ब) माध्यमिका मान, (स) बहुलाक मान।

---

1. Mean 2. Median 3 Mode 4. Biased Sample. 5. Standard Score.

6 इस भाग को विद्यार्थी पूर्ण पाठ को पढ़ने के पश्चात् अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं।

7. Measures of Central Tendency.

(अ) मध्यमान

मध्यमान समस्त प्राप्तांकों का वह प्रतिनिधि प्राप्तांक है जो पृथक प्राप्तांकों के योग को उन प्राप्तांकों की संख्या द्वारा भाग देने से प्राप्त होता है। इस परिभाषा के अनुसार मध्यमान निकालने की विधि निम्नलिखित है :

$$\text{मध्यमान} = \frac{\Sigma X}{N}$$

यहाँ, Σ योग का चिह्न है।
X पृथक प्राप्तांकों को व्यक्त करता है।
N प्राप्तांकों की संख्या को व्यक्त करता है।

उदाहरण 1—अंग्रेजी भाषा की परीक्षा में दस बालकों ने निम्नलिखित अंक प्राप्त किये हैं इनका मध्यमान ज्ञात करो

18, 20, 30, 35, 40, 15 7, 8, 12 45.

$$\text{मध्यमान} = \frac{\Sigma X}{N}$$

$$\frac{18+20+30+35+40+15+7+8+12+45}{10}$$

$$\frac{230}{10} = \frac{33}{1} = 23 \text{ अभीष्ट उत्तर}$$

यह विधि अवर्गीकृत प्रदत्तों[1] के मध्यमान निकालने के लिए प्रयोग में लायी जाती है। वर्गीकृत प्रदत्तों का मध्यमान हम निम्नलिखित विधि से निकाल सकते हैं :

$$\text{मध्यमान} = \frac{\Sigma fX}{N}$$

यहाँ, Σ योग का चिह्न है।
f वर्ग-आवृत्तियों को व्यक्त करता है।
X वर्गान्तरों के मध्य-बिन्दुओं को व्यक्त करता है।
N वर्ग-आवृत्तियों के योग या प्राप्तांकों के योग को व्यक्त करता है।

उदाहरण 2—अग्रलिखित वर्गबद्ध प्राप्तांकों का मध्यमान निकालिए जो आवृत्ति-वितरण के रूप में दिये गये हैं :

1. Ungrouped Data.

वर्गान्तर	आवृत्ति संख्या f	वर्गों के मध्य-बिन्दु X	आवृत्ति-गतिमान fX
90—94	2	92	184
85—89	2	87	174
80—84	4	82	328
75—79	8	77	616
70—74	8	72	756
65—69	12	67	804
60—64	9	62	558
55—59	7	57	399
50—54	5	52	260
45—49	1	47	47
40—44	2	42	84
	N=60		$\Sigma fX=4030$

इस प्रश्न में हम सर्वप्रथम वर्गान्तरों के मध्य-बिन्दु ज्ञात करेंगे। मध्य-बिन्दु ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित विधि को अपनायेंगे.

वर्गान्तर का मध्य-बिन्दु=

$$\text{वर्गान्तर की निम्न सीमा}^{1}+\frac{\text{वर्ग की उच्च सीमा}-\text{वर्ग की निम्न सीमा}}{2}$$

इसको हम इस प्रकार लिख सकते हैं.

$$=L+\frac{uL-IL}{2}$$

$$40\text{—}44 \text{ वर्गान्तर का मध्य-बिन्दु}=39{\cdot}5+\frac{44{\cdot}5-39\ 2}{2}$$

$$=39{\cdot}5+\tfrac{5}{2}=39{\cdot}5+2\ 5=42$$

इस विधि से हम दूसरे वर्गान्तरों का मध्य-बिन्दु निकालेंगे। इनके मध्य-बिन्दु X नामक खाने में रखे गये हैं। मध्य-बिन्दु मालूम करने के पश्चात् f तथा X अर्थात् आवृत्ति तथा मध्य-बिन्दुओं का गुणनफल मालूम करेंगे। इनका गुणनफल मालूम करके हमने fX नामक खाने के अन्तर्गत रखा है। इन सब को ज्ञात करने के पश्चात्—

इस इन गुणनफलों का योग लेते हैं जो ΣfX के द्वारा व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार, मध्यमान $= \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{4030}{60} = 67.16$

अभीष्ट मध्यमान $= 67.16$ उत्तर

मध्यमान निकालने की इस विधि को लम्बी विधि[1] कहा जाता है।

वर्गीकृत सामग्री का मध्यमान ज्ञात करने के लिए, छोटी एवं संक्षिप्त विधि[2] भी अपनायी जा सकती है। इस विधि के अनुसार हम मध्यमान निम्नलिखित प्रकार से निकालते हैं

मध्यमान $= AM + Ci$

जहाँ, AM कल्पित मध्यमान[3] को व्यक्त करता है।

C वर्गान्तरों की त्रुटि को व्यक्त करता है। (Correction in terms of Class-Interval)

i वर्ग के अन्तर को व्यक्त करता है।

Ci प्राप्तांकों की त्रुटि को व्यक्त करता है। (Correction in terms of Scores)

इस सिद्धान्त को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है

मध्यमान $= AM + \frac{\Sigma fd}{N} \times i$

उदाहरण 2 के आवृत्ति वितरण का मध्यमान हम इस विधि से निकाल कर संक्षिप्त विधि को स्पष्ट करेंगे—

	f	d	fd
90—94	2	5	10
85—89	2	4	8
80—84	4	3	12
75—79	8	2	16
70—74	8	1	8
65—69	12	0	0+54
60—64	9	—1	—9
55—59	7	—2	—14
50—54	5	—3	—15
45—49	1	—4	—4
40—44	2	—5	—10
			—52
			Σfd = 2

मध्यमान $= AM + Ci$

$= 67 + \frac{2}{60} \times 5$

$= 67 + .16$

$= 67.16$

अभीष्ट मध्यमान $= 67.16$ उत्तर

1. Long Method 2. Short Method. 3. Assumed Mean.

इस विधि से मध्यमान निकालने मे निम्नलिखित पदो को अपनाना चाहिए :

(१) पहले खाने मे वितरण को सर्वोच्च से न्यूनतम वर्ग तक क्रमबद्ध कर लो। दूसरे मे आवृत्ति-सख्या लिख लो।

(२) इनको लिखने के पश्चात् किसी भी वर्गान्तर के मध्य-बिन्दु को मध्यमान कल्पित कर लो। गैरट[1] के अनुसार उसी वर्गान्तर के मध्यबिन्दु को मध्यमान कल्पित करो, जिसमे अधिक आवृत्ति है। परन्तु इसके लिए कोई मुख्य नियम नही है। हम मध्यमान को किसी भी वर्गान्तर मे कल्पित कर सकते हैं।

(३) मध्यमान कल्पित करने के पश्चात् व्यत्यय[2] वर्गान्तर के शब्दो[3] मे मालूम करो। व्यत्यय (X—M) के द्वारा मालूम करते हैं। यहाँ X मध्य-बिन्दु होता है और M कल्पित मध्यमान होता है। d नामक खाने में कल्पित मध्यमान के सम्मुख शून्य लिख लो। क्रमश ऊपर व नीचे की ओर धनात्मक और ऋणात्मक व्यत्यय को क्रम से लगा लो।

(४) fd नामक खाने मे आवृत्ति और व्यत्यय क्रम के गुणनफल लिखो।

(५) चौथे खाने के गुणनफलो का योग बीजगणित की रीति[4] से मालूम कर लो, अर्थात् धनात्मक राशियो को एक स्थान पर जोड लो और ऋणात्मक राशियों का अलग जोड ज्ञात करो, उन दोनो को घटाकर गुणनफल का योग ज्ञात कर लो।

(६) गुणनफलो के योग को N से भाग दो तथा उसको वर्ग के अन्तर से गुणा करके कल्पित मान मे जोड दो। यही वास्तविक मध्यमान निकलता है।

(ब) माध्यमिका मान

माध्यमिका मान वितरण मे वह बिन्दु (मध्य-बिन्दु) है जिसके ऊपर व नीचे पृथक रूप से 50% प्राप्तांक रहते हैं। यदि वास्तविक प्राप्तांक[5] अवर्गीकृत प्रदत्त मे दिये हो तो मध्यमान का मान निकालने के लिए इन्हें न्यूनाधिकता के क्रम मे लगा लेते हैं और माध्यमिका मान क्रमावली के बीच वाला मान होगा।

उदाहरण 3—यदि बालकों के प्राप्तांक 18, 20, 12, 8, 9, 22, 24, 28, 30, 34, 40 हैं, तो माध्यमिका मान ज्ञात करो।

पहले हम इन प्राप्तांकों को न्यूनाधिकता के क्रम मे इस प्रकार रखेंगे :

8, 9, 12, 18, 20, 22, 24, 28, 30, 34, 40.

---

1. Garrett. 2. Deviation. 3. Terms. 4. Algebraic, 5. Raw Scores.

इस क्रमावली मे माध्यमिका मान 22 हुआ, क्योंकि इसके ऊपर की ओर 5 मान हैं तथा नीचे की ओर भी 5 मान हैं। इस प्रकार हम विषम सख्या मे माध्यमिका मान सरलता से ज्ञात कर लेते हैं। यदि सख्या सम है तो हम निम्नलिखित विधि को अपनायेंगे :

$$\text{माध्यमिका मान} = \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{Measure in order of size.}$$

दूसरे शब्दों मे हम कह सकते हैं कि सम सख्या मे माध्यमिका मान आकार के अनुसार क्रमबद्ध $\left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ मान होता है।

यहाँ N मानो की सख्या को व्यक्त करता है।

उदाहरण 4—बालको के प्राप्तांक 16, 18, 12, 9, 30, 20, 25, 6, 10, 40 हैं, तो माध्यमिका मान ज्ञात करो।

पहले हमने इन प्राप्तांको को आकार के क्रम मे इस प्रकार रखा :

6, 9, 10, 12, 16, 18, 20, 25, 30, 40.

इन प्राप्तांको की कुल सख्या 10 है।

$$\text{माध्यमिका मान} = \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{मान}$$

$$= \left(\frac{10+1}{2}\right)^{th} = 5{\cdot}5\text{th मान}$$

क्रमावली मे 5·5th मान 17 हुआ। यही अभीष्ट माध्यमिका मान है।

वर्गीकृत प्रदत्तो से माध्यमिका मान निम्नलिखित विधि से निकालते हैं :

$$\text{माध्यमिका मान} = L + \frac{N/2 - F}{f} \times i$$

यहाँ, L उस वर्ग की न्यूनतम सीमा है जिसमें माध्यमिका मान रहता है।

N/2 समस्त प्राप्तांको की सख्या का आधा है।

F न्यूनतम सीमा के नीचे के वर्गों की आवृत्तियों के योग को व्यक्त करता है।

f उस वर्ग की आवृत्ति को व्यक्त करता है, जिसमें माध्यमिका मान रहता है।

i वर्गों के अन्तर को व्यक्त करता है।

उदाहरण 5—निम्नलिखित आवृत्ति वितरण से माध्यमिका मान ज्ञात करो :

वर्गान्तर	आवृत्ति	समूहज आवृत्ति
70—71	2	40
68—69	2	38
66—67	3	36
64—65	4	33
62—63	6	29
60—61	7	23
58—59	5	16
56—57	4	11
54—55	2	7
52—53	3	5
50—51	2	2
N=40		

सर्वप्रथम इनमे N/2 ज्ञात किया जायगा, जो $\frac{40}{2}=20$ है।

अब हम यह मालूम करेंगे कि N/2 या 20 किस वर्ग मे जाकर पडता है। इसके लिए नीचे की आवृत्ति से गिनना प्रारम्भ करके ऊपर की ओर चलेंगे। N/2 जिस वर्ग मे आयेगा, उस वर्ग की न्यूनतम सीमा ले लेंगे। फिर f या समूहज आवृत्ति मालूम करेंगे। इस प्रकार मालूम करके सूत्र में इन सब के मान रखकर अभीष्ट माध्यमिका मान ज्ञात कर लेंगे। इस उदाहरण मे—

$$\text{माध्यमिका मान} = 59\ 5 + \frac{20-16}{7} \times 2$$

$$= 59\ 5 + \frac{4}{7} \times 2$$

$$= 59\ 5 + 1\ 14$$

$$= 60{\cdot}64 \text{ अभीष्ट उत्तर}$$

N/2 या 20, 60—61 नामक वर्ग मे आता है। इसकी न्यूनतम सीमा 59·5 है। इस न्यूनतम सीमा से नीचे की समूहज आवृत्ति 13 है और वर्गों का अन्तर 2 है। 60—61 नामक वर्ग की आवृत्ति 7 है। इन सब को माध्यमिका मान के सूत्र मे भरकर माध्यमिका मान 60 64 आया है।

(स) बहुलांक मान

बहुलांक मान वह अंकमान है, जिसकी वितरण में पुनरावृत्ति सबसे अधिक होती है।

सर्वप्रथम हम इस आवृत्ति-वितरण का मध्यमान तथा फिर माध्यमिका मान ज्ञात करेंगे। इस उदाहरण में हमने मध्यमान संक्षिप्त विधि से निकाला है :

$$\text{मध्यमान} = AM + Ci$$
$$= 10 + \left(\frac{-107}{110}\right)$$
$$= 10 + (-97)$$
$$= 9\ 03 \text{ या लगभग } 9$$

$$\text{माध्यमिका मान} = L + \frac{N/2 - F}{f} \times i$$
$$= 8{\cdot}5 + \frac{55-51}{20} \times 1$$
$$8{\cdot}5 + \frac{4}{20} \times 1$$
$$= 8\ 5 + \tfrac{1}{5}$$
$$= 8\ 5 + 2 = 8\ 7$$

$$\text{बहुलाक मान} = 3\ (\text{माध्यमिका मान}) - 2\ (\text{मध्यमान})$$
$$= 3 \times 8\ 7 - 2 \times 9$$
$$= 26{\cdot}1 - 18$$
$$= 8{\cdot}1 \text{ अभीष्ट उत्तर}$$

शतांशीय मान[1]

शतांशीय मान मापन के पैमाने पर वह बिन्दु है जिसके नीचे दिये हुए प्राप्तांकों के प्रतिशत रहते हैं। इसे हम निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं :

$$P_p = L + \left(\frac{P_n - F}{f_p}\right) \times i$$

यहाँ, P_q वितरण के उस प्रतिशत को व्यक्त करता है जिसको ज्ञात किया जाता है।

L उस वर्ग की न्यूनतम सीमा को व्यक्त करता है समें P_p रहता है।

$P_n = N$ के उस भाग को व्यक्त करता है जिसके द्वारा P_p तक पहुँचा जाता है।

F उस समूह-आवृत्ति को व्यक्त करता है जो P_p के नीचे तक होती है।

f_p उस वर्ग की आवृत्ति को व्यक्त करता है जिसमे P_p रहता है।

i वर्गों के अन्तर को व्यक्त करता है।

---

1. Percentile.

उदाहरण 8—सारणी 2 के आवृत्ति-वितरण में 80, 95 प्राप्तांकों की शतांशीय अनुस्थिति ज्ञात करो :

वर्ग	आवृत्ति	समूहज आवृत्तियाँ
120—139	50	1000
100—119	150	950
80— 99	500	800
60— 79	250	300
40— 59	50	50
	N=1000	

$$80 \text{ का PR} = \frac{100}{1000} \left\{ 300 + \left(\frac{80 - 79.5}{20} \right) \times 500 \right\}$$

$$= \frac{100}{1000} \left\{ 300 + .5 \times 25 \right\}$$

$$= \frac{100}{1000} \times 312.5 = 31.25$$

अभीष्ट अनुस्थिति = 31

$$95 \text{ का PR} = \frac{100}{1000} \left\{ 300 + \left(\frac{95 - 79.5}{20} \right) \times 500 \right\}$$

$$= \frac{100}{1000} \{ 300 + 387.5 \}$$

$$= \frac{100}{1000} \times 687.5 = 68.75$$

अभीष्ट अनुस्थिति = 69

विचलन[1]

समुदाय के गुणों में जो प्रसार या फैलाव होता है वह 'विचलन' कहलाता है। सम-राशियों के विचलन के माप चार प्रकार के होते हैं

(१) प्रसार-क्षेत्र[2], (२) चतुर्थांश विचलन[3], (३) मध्यमान विचलन[4], (४) प्रामाणिक विचलन[5]।

(१) प्रसार-क्षेत्र—यह उच्चतम प्राप्तांक तथा न्यूनतम प्राप्तांक के बीच का अन्तर होता है। हम इसका वैज्ञानिक आधार पर किस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं। विचलन के मापों में यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि यदि प्रसार-क्षेत्र होता है तो वह सब विचलन नहीं होता।

1. Variability, 2. Range 3. Quartile Deviation, 4. Mean Deviation, 5. Standard Deviation

(२) चतुर्थांश व्यत्यय—चतुर्थांश व्यत्यय को साधारण रूप से अर्द्ध-अन्तर चतुर्थ-विस्तार[1] कहा जाता है। चतुर्थांश व्यत्यय 75वें शतांशीय मान तथा 25वें शतांशीय मान के बीच के अन्तर की अर्द्ध दूरी होती है। हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि चतुर्थांश व्यत्यय मध्य के 50% प्राप्तांकों की दूरी का आधा होता है।

चतुर्थांश व्यत्यय या विचलन को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्रों को प्रयोग में लाते हैं :

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

$$Q_3 = L + \frac{\frac{3}{4}N - F}{f} \times i$$

$$Q_1 = L + \frac{N/4 - F}{f} \times i$$

उदाहरण 9—सारणी 2 के आवृत्ति-वितरण का चतुर्थांश विचलन ज्ञात करो।

वर्ग	आवृत्तियाँ	संकलित आवृत्तियाँ
120—139	50	1000
100—119	150	950
80— 99	500	800
60— 79	250	300
40— 59	50	50
	N=1000	

$$Q_3 = L + \frac{\frac{3}{4}N - F}{f} \times i$$

$$= 79.5 + \frac{750 - 300}{500} \times 20$$

$$= 79.5 + \frac{450 \times 20}{500} = 79.5 + 18 = 97.5$$

$$Q_1 = 59.5 + \frac{250 - 50}{150} \times 20$$

$$=59\ 5+\frac{200}{150}\times 20=59{\cdot}5+16=75\ 5$$

$$Q=\frac{Q_3-Q_1}{2}=\frac{97{\cdot}5-75\ 5}{2}=\frac{2\ 2}{2}$$

$=1\ 1$ **अभीष्ट उत्तर**

(३) मध्यमान व्यत्यय—मध्यमान व्यत्यय समस्त व्यत्ययो का मध्यमान है जिसमे धनात्मक तथा ऋणात्मक चिन्हो की ओर ध्यान नही दिया जाता है, उन सबको धनात्मक चिन्ह माना जाता है। यह व्यत्यय केन्द्रवर्ती मानो से प्राप्त किये जाते हैं। बहुधा मध्यमान के द्वारा ही व्यत्यय या विचलन[1] ज्ञात किये जाते हैं। अवर्गीकृत या वास्तविक प्राप्तांकों का मध्यमान विचलन निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जाता है :

$$M.\ D=\frac{\Sigma\,|\,d\,|}{N}$$

यहाँ, d व्यत्यय को व्यक्त करता है जो वास्तविक प्राप्तांक में से उनके मध्यमान को घटाकर मालूम किया जाता है।

|| ये रेखाएँ (+), (—) चिन्हो को ध्यान मे न रखने को व्यक्त करती हैं।

N वास्तविक प्राप्तांकों की संख्या व्यक्त करता है।

उदाहरण 10—निम्नलिखित वास्तविक प्राप्तांकों का मध्यमान विचलन ज्ञात करो :

16, 18, 20, 22, 24

$$\text{मध्यमान}=\frac{16+18+20+22+24}{5}$$

$$=\frac{100}{5}=20$$

$$d=x-M$$
$$=16-20,\ 18-20,\ 20-20,\ 22-20,\ 24-20$$
$$=-4,\ -2,\ 0,\ 2 \text{ तथा } 4$$

$$M\ D.=\frac{\Sigma|\,d\,|}{N}=\frac{12}{5}$$

$=2\ 4$ **अभीष्ट माध्यमिक विचलन**

---

1. Deviation.

वर्गीकृत प्राप्तांकों से मध्यमान व्यत्यय निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है :

$$M.\ D. = \frac{\Sigma|fd|}{N}$$

यहाँ f वर्गों की आवृत्तियों को व्यक्त करता है।

उदाहरण 11—निम्नलिखित आवृत्ति-वितरण का मध्यमान विचलन ज्ञात करो :

वर्ग	मध्य-बिन्दु X	आवृत्ति f	व्यत्यय X–AM =d′	व्यत्यय तथा आवृत्ति का गुणनफल (fd′)	विचलन X–M =d	विचलन तथा आवृत्ति का गुणनफल (fd)
50—54	52	3	4	12	21·1	36 3
45—49	47	4	3	12	16·1	64·4
40—44	42	5	2	10	11·1	55·5
35—39	37	8	1	8	6·1	48·8
30—34	32	10	0	0+42	1·1	—11·0
25—29	27	6	— 1	— 6	— 3·9	—23·4
20—24	22	4	—2	— 8	— 8·9	—35·6
15—19	17	4	—3	—12	—12·9	—55 6
10 – 14	12	3	—4	—12	—18·9	—56·7
5— 9	7	3	—5	—15	—23·9	—71·7
		N=50		—53 Σfd′=—11		Σ|fd|= 486·00

X—AM (d′) मध्यमान से व्यत्यय बताता है। यहाँ मध्यमान माना हुआ होता है। इस उदाहरण में यह 32 है। इस कारण व्यत्यय *30—34* वर्ग में *0* हुआ और अन्य में जैसा ऊपर तालिका में दिया हुआ है।

$$\text{मध्यमान} = AM + Ci$$

$$= 32 + \frac{-11}{50} \times 5$$

$$= 32 + (-1\ 1)$$

$$= 30\ 9$$

मध्यमान विचलन ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम हम मध्यमान ज्ञात करते हैं। इस आवृत्ति-वितरण का मध्यमान 30·9 आता है। इसके पश्चात् हम स्तम्भ d को ज्ञात करते हैं, d को हम X—AM के द्वारा ज्ञात करते हैं।, यहाँ X वर्ग का मध्य-बिन्दु होता है। इसके पश्चात् वर्गों की आवृत्तियों से d का पृथक्-पृथक् गुणनफल करते हैं। इनका योग (+), (—) चिन्हों को बिना ध्यान दिये लेते हैं। इनका योग 486 00 आया।

$$MD = \frac{\Sigma|fd|}{N}$$

$$= \frac{486}{50} = 9\ 72$$ अभीष्ट मध्यमान विचलन

(4) प्रामाणिक व्यत्यय—प्रामाणिक व्यत्यय σ (स्यून सिगमा) से व्यक्त किया जाता है। प्रामाणिक व्यत्यय मध्यमान से लिये हुए व्यत्ययों या विचलनों के वर्गों का वर्गमूल है। मध्यमान विचलन मे हम (+), (—) चिन्हो को ध्यान मे नहीं लेते हैं परन्तु यहाँ (+), (—) चिन्हों को धनात्मक बनाने के लिए विचलनों का वर्ग लेते हैं। वास्तविक प्राप्तांकों का प्रामाणिक व्यत्यय या σ को निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात करते हैं :

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$$

यहाँ σ मध्यमान से प्राप्त किया व्यत्यय है।

उदाहरण 12—निम्नलिखित प्राप्तांको का σ ज्ञात करो :

16, 18, 20, 22, 24

$$\frac{16+18+20+22+24}{5} = \frac{100}{5} = 20$$

व्यत्यय $= X - M$

$d = 16-20,\ 18-20,\ 20-20,\ 21-20,\ 24-20$

$= -4,\ -2,\ 0,\ 2,\ 4$

$d^2 = 16,\ 4,\ 0,\ 4,\ 16$

$\Sigma d^2 = 16+4+0+4+16 = 40$

$$\sigma = \sqrt{\Sigma\frac{d^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{40}{5}} = \sqrt{8} = 2\sqrt{2}$$

$= 2 \times 1{\cdot}414$

$= 2{\cdot}828 = 2{\cdot}83$ अभीष्ट उत्तर

वर्गीकृत प्राप्तांको का σ ज्ञात करने के लिए हम निम्नलिखित सूत्र प्रयोग में लाते हैं :

$$S.\ D.\ \text{or}\ \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$$

उदाहरण 13—उदाहरण 11 के आवृत्ति वितरण का σ ज्ञात करो।

सर्वप्रथम हम वर्गों के मध्य बिन्दु ज्ञात करेंगे जो X नामक स्तम्भ में रखे गये हैं। इसके पश्चात् वितरण का मध्यमान ज्ञात करके मध्य-बिन्दु में से मध्यमान घटाकर विचलनों को ज्ञात करेंगे जो d नामक स्तम्भ में रखेंगे। फिर आवृत्तियों तथा विचलनों का पृथक पृथक गुणा करके fd नामक स्तम्भ में रखेंगे। fd में d का गुणा करके fd² नामक स्तम्भ को पूरा करेंगे। इस विधि को प्रामाणिक व्यत्यय निकालने की लम्बी विधि कहा जाता है।

वर्गान्तर	आवृत्ति	मध्य-बिन्दु	आवृत्ति तथा मध्य बिन्दु का गुणनफल (fx)	विचलन X—M (d)	विचलन तथा आवृत्ति का गुणनफल (fd)	fd²
50—54	3	52	156	21·1	63·2	1333 63
45—49	4	47	188	16·1	64·4	1036 84
40—44	5	42	210	11 1	55 5	616 05
35—39	8	37	296	6·1	48 8	297·68
30—34	10	32	320	1 1	11·0	12·10
25—29	6	27	162	— 3 9	—23 4	91·26
20—24	4	22	88	— 8 9	—35 6	316·84
15—19	4	17	68	—13 9	—55 6	772 84
10—14	3	12	36	—18 9	—56 7	1071·63
5— 9	3	7	21	—22 9	—71 7	1713 63
	N=50		Σfx=1545			Σfd²=7262 39

$$\text{मध्यमान (Mean)} = \frac{fx}{N} = \frac{1545}{50} = 30\ 9$$

$$\text{प्रामाणिक व्यत्यय या विचलन S.D.}(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}} = \sqrt{\frac{7262 \cdot 39}{50}}$$

$$= \sqrt{145\ 26}$$

$$= 12\ 05 \text{ अभीष्ट उत्तर}$$

उदाहरण 14—उदाहरण 11 के आवृत्ति वितरण का σ संक्षिप्त विधि से ज्ञात करो।

वर्ग	आवृत्ति	मध्य-बिन्दु X	व्यवसाय X—AM =d	व्यत्यय तथा आवृत्ति का गुणनफल (fd)	fd²
50—54	3	52	4	12	48
45—49	4	47	3	12	36
40—44	5	42	2	10	20
35—39	8	37	1	8	8
30—34	10	32	0	0+42	0
25—29	6	27	—1	— 6	6
20—24	4	22	—2	— 8	16
15—19	4	17	—3	—12	36
10—14	3	12	—4	—12	48
5—9	3	7	—5	—15	74
	N=50			—53 Σfd=—11	Σfd²=293

$$\text{S. D.}=i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}-C^2}\ \text{or}\ i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}\left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$$

$$=i\sqrt{\frac{N\Sigma fd^2-(\Sigma fd)^2}{N^2}}\ \text{or}\ i\frac{\sqrt{N\Sigma fd^2-(\Sigma fd)^2}}{N}$$

$$=5\ \frac{\sqrt{50\times 293-(-11)^2}}{50}=\frac{\sqrt{14650-121}}{10}$$

$$=\frac{\sqrt{14529}}{10}=\frac{120.5}{10}\qquad =12.05\ \text{अभीष्ट उत्तर}$$

इस विधि में हम उन्हीं स्तरों का प्रयोग करते हैं जिनका संक्षिप्त विधि में किया जाता है। प्रामाणिक व्यत्यय में एक स्तम्भ बढ़ जाता है जो fd को d से गुणा करके निकाला जाता है। fd² प्राप्त करने के पश्चात् सूत्र में उसका मान रखकर वही उत्तर प्राप्त हो जाता है जो लम्बी विधि में होता है। यह विधि लम्बी विधि से सरल है। इसमें गुणा कम करना पड़ता है।

सहसम्बन्ध[1]

प्रायः मनुष्यों को कहते सुना जाता है कि प्रदाय[2] बढ़ जाने से मूल्य घट जायेंगे, वर्षा ठीक हो जाने से उत्पादन ठीक होगा। ये कथन किसी

1. Correlation. 2. Supply.

प्रकार का सम्बन्ध, प्रदाय तथा मूल्य मे और वर्षा तथा उत्पादन में स्थापित करते हैं। ऐसे ही ज्यों-ज्यो बालको की ऊँचाई बढ़ती है त्यो-त्यों उनका भार भी बढ़ता है। इसी प्रकार मनुष्यों के अनेक गुणों व योग्यताओ मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, ऐसे सम्बन्धों को जानने की आवश्यकता है। जब यह सम्बन्ध इयत्तात्मक[1] होता है तब सांख्यिकीय यंत्र सहसम्बन्ध माप[2] द्वारा इसका पता लगाते हैं और इसकी प्रकृति तथा मात्रा को निर्धारित कर एक सूत्र के रूप मे रख देते हैं। इसलिए हम देखते हैं कि दो या दो से अधिक चलो[3] के अध्ययन मे उनके सम्बन्ध की माप करने के लिए हम सांख्यिकीय सहसम्बन्ध की सहायता लेते हैं।

सहसम्बन्ध दो प्रकार का होता है—(१) अनुलोम सहसम्बन्ध[4], तथा (२) विलोम सहसम्बन्ध[5]।

यह वर्गीकरण सहसम्बन्ध-चलो की दिशा के आधार पर किया गया है। यदि एक चल बढता है या घटता है, तो दूसरा भी बढता या घटता है। ऐसे सम्बन्ध को 'अनुलोम सहसम्बन्ध' कहते हैं। 'विलोम सहसम्बन्ध' उस स्थिति मे होता है, जब एक चल बढता है या घटता है तो दूसरा भी घटता या बढता है।

सहसम्बन्ध का परिणाम[6]—परिणाम के अनुसार सहसम्बन्ध को दो भागो मे बाँट सकते हैं—(१) परिपूर्ण अनुलोम सहसम्बन्ध[7], तथा (२) परिपूर्ण विलोम सहसम्बन्ध[8]।

(१) परिपूर्ण अनुलोम सहसम्बन्ध—जब एक ही दिशा मे दोनो चलो का उच्चावचन समान अनुपात मे होता है, उस समय दोनो चलो मे *परिपूर्ण अनुलोम* सहसम्बन्ध होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक बालक हिन्दी मे प्रथम पद प्राप्त करता है और अंग्रेजी मे भी प्रथम पद प्राप्त करता है तो यह सम्बन्ध परिपूर्ण अनुलोम प्रकार का होगा।

(२) परिपूर्ण विलोम सहसम्बन्ध—जब भिन्न दिशाओं में दोनों चलो का विचरण समान अनुपात मे हो तब परिपूर्ण विलोम सहसम्बन्ध होता है। उदाहरणार्थ, राम गणित मे प्रथम तथा इतिहास में निम्न पद प्राप्त करता है तो इन दोनो विषयो मे प्राप्तांको मे सम्बन्ध परिपूर्ण विलोम प्रकार का होगा।

शिक्षा में सर्वप्रथम सहसम्बन्ध युक्ति का प्रयोग स्पीयरमैन[9] महोदय ने भिन्न-भिन्न प्रचलित मानसिक परीक्षाओ मे साहचर्य या विरोध-भाव को जानने के लिए किया। इस साहचर्य को मापने के लिए उन्होंने 'अनुस्थिति-अन्तर सहसम्बन्ध' विधि को अपनाया जिसका प्रयोग शिक्षा मे अब भी किया जाता है।

---

1. Quantitative. 2. Measures of Correlation. 3. Variable. 4. Positive Correlation 5. Negative Correlation. 6. Degree of Correlation. 7. Perfect Positive Correlation. 8. Perefect Negative Correlation. 9. Spearman.

अनुस्थिति-अन्तर विधि[1]

इस विधि के द्वारा सहसम्बन्ध निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जाता है :

$$\rho \text{ (roh)} = 1 - \frac{6\ \Sigma D^2}{N(N^2-1)}$$

यहाँ, D दोनों चलों के अनुस्थिति-अन्तर को व्यक्त करता है।

N चलों की संख्या को व्यक्त करता है।

उदाहरण 15—गणित तथा हिन्दी में 10 बालकों को निम्नलिखित प्रतिशत अंक प्राप्त हुए हैं। यह तालिका के प्रथम तथा द्वितीय खानों में दिये गये हैं। इनके सहसम्बन्ध को अनुस्थिति विधि से ज्ञात करिए :

Students	Marks in Maths	Marks in Hindi	R_1	R_2	D_1	D_2
A	78	84	3	2	1	1
B	36	54	7 5	6·5	1	1
C	98	36	1	9	—8	64·00
D	25	60	9·5	5	4 5	20 25
E	75	36	4	9	—5	25 00
F	80	54	2	6·5	—4 5	20 25
G	25	92	9·5	1	8 5	75·25
H	62	36	5	9	—4	16 00
I	36	62	7 5	4	3 5	12 25
J	40	68	6	3	3	9·00
						$\Sigma D^2 = 241\ 00$

सर्वप्रथम हम अपनी अनुस्थितियाँ लगाते हैं। गणित के अकों की अनुस्थितियों को हमने R_1 नामक स्तम्भ में रखा है। अनुस्थितियाँ लगाते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाले बालक को प्रथम अनुस्थिति दें। यदि दो या तीन या अधिक बालक एकसे अङ्क प्राप्त करें तब हमें उनकी अनुस्थितियाँ मध्यमान निकाल कर देनी चाहिए, जैसा कि गणित के अङ्कों में दो बालकों ने 36-36 अङ्क प्राप्त किये हैं। अब तक हम 6 अनुस्थिति प्रदान कर चुके हैं। अब हमें 7वीं अनुस्थिति देनी है, लेकिन इसको दो बालक प्राप्त करते हैं। यदि

1. Rank Difference Correlation Method

हम एक को 7वाँ पद तथा दूसरे को 8वाँ पद दें तो इससे बालकों के साथ न्याय नहीं हो पायेगा। इसलिए हमे 7वें तथा 8वें पद का मध्यमान निकाल कर दोनो को उस मध्यमान को पद के रूप मे प्रदान करना चाहिए; जैसे $\frac{7+8}{2}=7\cdot5$ वाँ पद हमें दोनो को प्रदान करना चाहिए। इसी रीति से 25—25 अंक प्राप्त करने वाले बालकों को प्रद प्रदान किए गए है। हिन्दी के अंकों मे तीन बालको ने बराबर-बराबर अंक प्राप्त किये हैं। अब तक हम 7 पद प्रदान कर चुके हैं तो अगले पद 8वाँ, 9वाँ तथा 10वाँ हैं। इन तीनों का मध्यमान मालूम करके उनको पद प्रदान किये जायें; जैसे $\frac{8+9+10}{3}=9$वाँ स्थान तीनों को प्रदान कर दिया गया है। अनुस्थितियाँ प्रदान करने के पश्चात् अनुस्थितियो का अन्तर मालूम करते हैं। अन्तर हमने R_1-R_2 के सूत्र से ज्ञात किये हैं, जो D नामक स्तम्भ मे रखे गये हैं। अन्तरो का वर्ग करके उनका योग लिया गया है।

$$\rho = 1-\frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)}$$

$$= 1-\frac{6\times 241}{10(100-1)}$$

$$= 1-\frac{6\times 241}{10\times 99}$$

$$= \frac{165-241}{165} = -\cdot4 \text{ अभीष्ट उत्तर}$$

सहसम्बन्ध का अर्थ[1]

हमने अभी कहा है कि सहसम्बन्ध परिपूर्ण अनुलोम हो सकता है अथवा परिपूर्ण विलोम। परिपूर्ण अनुलोम सहसम्बन्ध उस समय होता है जब +1·00 सहसम्बन्ध आता है, परिपूर्ण विलोम उस समय होता है जब —1·00 सहसम्बन्ध आता है, अवसरवादी सह-सम्बन्ध 0 होता है। रग[2] महोदय के सामान्य नियम के अनुसार जब सहसम्बन्ध ·15 से ·20 तक होता है तो यह न के बराबर है, सहसम्बन्ध उपस्थित किन्तु निम्न[3] उस समय होता है जब यह ·20 से ·35 तक होता है। सुस्पष्ट[4] उस समय होता है जब यह ·35 से ·60 होता है और उच्च[5] उस समय जब

1. The meaning of the coefficient. 2. Rugg. 3. Present but
4. Marked 5 High

यह 60 से 70 तक होता है। अतएव ऊपर के उदाहरण मे यह सुस्पष्ट विलोम सहसम्बन्ध है।

सहसम्बन्ध के उपयोग

सहसम्बन्ध का उपयोग बहुत अधिक है। लगभग सब सामाजिक विज्ञानों मे यह अब अधिक से अधिक प्रयोग होता है। यह उस समय उपयोगी होता है जब एक समूह का प्रत्येक सदस्य दो अथवा अधिक गुणो मे मापा जाता है। यह एक अक मे औसत दर्जे की समानता दो अथवा अधिक गुणो मे प्रदर्शित करता है। इसके विशिष्ट उपयोग निम्न हैं :

१ **पूर्वानुमान**[1]—सहसम्बन्ध का प्रयोग पूर्वानुमान मे किया जाता है। अनेक अध्ययनो मे इसका प्रयोग इस बात के लिए किया जाता है कि इस बात की भविष्यवाणी कर दी जाए कि विद्यार्थी आगे की शिक्षा मे सफलता प्राप्त करेगा या नही।

२. **विश्वसनीयता**[2]—सहसम्बन्ध का प्रयोग परीक्षणों की विश्वसनीयता का पता लगाने के लिए भी बहुधा किया जाता है। इस सांख्यिकी का प्रयोग करके यह पता लगाया जाता है कि यह परीक्षण दो विभिन्न समय पर उसी वस्तु का परीक्षण करता है या नही।

३ **वैधता**[3]—एक परीक्षण का मूल्य सहसम्बन्ध द्वारा निकाला जाता है। जब कभी भी कोई परीक्षण बनाया जाता है तो पहला प्रश्न यह किया जाता है कि यह उसको माप करता भी है या नही जिसकी इसे माप करनी है। इस प्रश्न का उत्तर सहसम्बन्ध के द्वारा ही दिया जा सकता है।

४ **परीक्षण-रचना**[4]—सहसम्बन्ध का प्रयोग परीक्षण-रचना में भी किया जाता है, जब कभी भी नया परीक्षण बनाया जाता है। सदैव यह प्रश्न उठता है कि परीक्षण का प्रत्येक एकाश दूसरे से सम्बन्धित है या नही अथवा पूरे परीक्षण से सम्बन्धित है या नहीं एव प्रत्येक एकाश जो कसौटी चुनी गई है, उससे सम्बन्धित है या नही। इन सब सम्बन्धो का निर्धारण सहसम्बन्ध प्रविधि से ही किया जाता है।

अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न

१. निम्नलिखित बुद्धि-लब्धि (I Q) तथा लेखन-कला (Hand-writing) परीक्षा मे 25 विद्यार्थियो के प्राप्ताङ्क हैं। इनके प्राप्तांको का सहसम्बन्ध अनुस्थिति-क्रमान्तर विधि (Rank Difference Method) के द्वारा निकालिए :

लेखन-कला मे . 75, 58, 55, 50, 40, 62 57, 53, 49, 38, 61, 57, 53, 38, 36, 59, 56, 51, 47, 35, 59, 56, 50, 46 और 24.

---

1. Prognosis. 2. Reliability. 3. Validity. 4. Test Construction.

बुद्धि-लब्धि मे : *118, 108, 107, 102, 100, 122, 115, 115,* 100, 97, 119, 112, 112, 103, 93, 110, 109, 109, 95, 89, 110, 108, 98 और 90.

२. समुचित वर्ग-विस्तार (Class-interval) का प्रयोग करके निम्नलिखित प्राप्तांको की आवृत्ति से प्राप्तांको का मध्यमान व्यत्यय (Mean Deviation) तथा प्रामाणिक व्यत्यय (Standard Deviation) निकालिए :
12, 17, 39, 52, 18, 28, 49, 61 22, 32, 41, 26, 38, 44, 23, 21, 58, 25, 34, 47, 36, 43, 33, 72, 35, 30, 31, 46, 37, 48, 40, 37, 54, 51, 56, 27, 62, 24, 29, 57.

३. केन्द्रवर्ती मान के क्या प्रमापी होते हैं ? प्रत्येक के उदाहरण देकर समझाइए।

४ किसी भी परीक्षण के प्राप्तांको का आवृत्ति-वितरण बहुभुज (Frequency Polygon) बनाइए।

५. 50 छात्रो की एक जांच ली गई, जिसमे उन्होने निम्नलिखित बुद्धि लब्धियाँ प्राप्त की :
118, 116, 110, 100, 120, 97, 93, 96, 100, 110, 124, 130, 160, 144, 145, 140, 132, 138, 136, 90, 95, 96, 68, 99, 100, 105, 150, 152, 156, 154, 148, 142, 146, 155, 157, 128, 116, 116, 114, 110, 100, 106, 107, 108, 109, 97, 96, 99, 100, 114. इनको आवृत्ति-वितरण मे रखो। इसके लिए वर्गान्तर 10 को चुना जाय और उस आवृत्ति-वितरण से मध्यमान, माध्यमिका मान, प्रामाणिक मध्यमान व्यत्यय मालूम करो।

६. निम्नलिखित दो विषयों के अङ्को मे अनुस्थिति-क्रमान्तर विधि से सह-व्यत्यय सम्बन्ध ज्ञात करो तथा उस फल की व्याख्या करो :

छात्र	हिन्दी के अङ्क	इतिहास के अङ्क
अ	40	25
ब	36	40
स	55	62
द	62	80
य	60	55
र	72	81
क	65	82
ख	25	55
ग	16	45
घ	35	54

३१ ऐक्शन रिसर्च
ACTION RESEARCH

वर्तमान समय मे 'ऐक्शन रिसर्च' शिक्षा के व्यावहारिक रूप मे परिवर्तन लाने मे बहुत महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। शिक्षक तथा अन्य व्यक्तियो के लिए जो शिक्षा के व्यावहारिक रूप से अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यक्रम मे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहते हैं, 'ऐक्शन रिसर्च' विशिष्ट स्थिति मे वांछित परिवर्तन लाने मे बहुत सहयोगी सिद्ध होती है। ऐक्शन रिसर्च द्वारा वह उन विधियो का मूल्याकन कर लेते हैं जो उनके विचार के अनुसार वांछित परिवर्तन ला सकती हैं। इसके साथ ही साथ उचित विधियो का पता लगाकर वह उनको प्रयोग मे ले आते हैं। इस प्रकार ऐक्शन रिसर्च एक ऐसी क्रिया है जो कार्य-क्षेत्र मे रत रहने वाले व्यक्तियो को स्वयं अपनी समस्याओ का समाधान करने का रास्ता दिखाती है।

ऐक्शन रिसर्च का प्रारम्भ[1]

शिक्षा मे अनुसन्धान का महत्त्व बहुत कुछ पिछले वर्षों मे बढ गया है। यह विचार किया जाता है कि अनेक शैक्षिक समस्याओ के समाधान अनुसन्धान द्वारा खोजे जा सकते हैं। इसके लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र मे आवश्यक समझा जाता है। इस पद्धति का प्रयोग उस दशा मे जबकि किसी तत्कालीन, महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक समस्या के सुलझाने मे लगा दिया जाता है, तब वह एक ऐसे अनुसन्धान का संकेत करता है जो सामयिक कहा जा सकता है और जिसका वर्णन 'ऐक्शन रिसर्च' नामक शब्दों से किया जा सकता है।

वास्तव मे 'ऐक्शन रिसर्च' का प्रारम्भ शिक्षाशास्त्रियो के इस विचार के फलस्वरूप हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में अनेक ऐसी समस्याएँ होती हैं, जिनके हल को खोजने में वह व्यक्ति जिनके सम्मुख वह समस्या है, सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते

1. Origin of Action Research.

हैं। यह विचार किया गया कि यदि शिक्षकों तथा शिक्षा के क्षेत्र मे अन्य कार्य करने वालों को उचित प्रशिक्षण अनुसन्धान की विधियों में दे दिया जाये तथा उन्हें अपनी समस्याएँ वैज्ञानिक विधि द्वारा स्वयं हल करने को प्रोत्साहित किया जाय तो उन्हें तत्कालीन समस्याओ के लिए उस लम्बी अवधि तक के लिए नही रुकना पड़ेगा जिसमे परम्परागत अनुसधानकर्त्ता परिशुद्ध वैज्ञानिक रूप से उनका हल खोज निकालें। वह स्वयं हल खोजेंगे, स्वय उनका प्रयोग करेंगे और उन हलों का मूल्यांकन करेंगे।

शिक्षा के शुद्ध वैज्ञानिक अनुसधान तात्कालिक एव व्यावहारिक समस्याओं के हल की ओर आवश्यक रूप से केन्द्रित नही होते हैं। इन अनुसंधानो के पूर्ण करने के लिए बहुत अधिक मात्रा मे प्रदत्त सामग्री इकट्ठी करनी होती है जिससे समय, धन इत्यादि की पर्याप्त आवश्यकता होती है। शिक्षक इत्यादि इतने समय तक रुकना ठीक नही समझते। वह तो तुरन्त अपनी समस्याओं का हल चाहते हैं। दूसरे विश्व-युद्ध के समय तात्कालिक समस्याओ के तुरन्त हल निकालने की समस्या गम्भीर रूप से खड़ी हो गई। मित्र-राष्ट्रो ने वैज्ञानिको से कहा कि वह ऐसी विधि निकालें जिनसे विश्वासी एवं परिशुद्ध हल बिना सम्पूर्ण अनुसंधान के सब पदो का प्रयोग किये प्राप्त हो जायें। वैज्ञानिको से कहा गया कि जो उत्तम से उत्तम ज्ञान उपलब्ध है, उस पर आधारित योजना बनाएँ और जब योजनाएँ क्रियान्वित हो जायें तो उनके मूल्यांकन के लिए प्रयास किया जाये। इस प्रकार परिवर्तन एवं विकास शीघ्रता से लाने मे वैज्ञानिको का सहयोग प्राप्त किया गया। जिस कार्य-पद्धति का विकास हुआ, उसने उस प्रकार की अनुसंधान प्रणाली को जन्म दिया जिसे अब 'ऑपरेशनल रिसर्च'[1] कहते हैं और जो शिक्षा मे 'ऐक्शन रिसर्च' के रूप मे दृष्टिगोचर हुई।

ऐक्शन रिसर्च की परिभाषा[1]

कोरे महोदय[2] ने ऐक्शन रिसर्च की परिभाषा इस प्रकार दी है कि "यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा चिकित्सक अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करते हैं ताकि अपने निर्णय और कार्यों का पथ-प्रदर्शन कर सकें, उनकी त्रुटियां दूर कर सकें एवं मूल्यांकन कर सकें।" मुकर्जी[3] ऐक्शन रिसर्च की परिभाषा एक परस्पर प्रभावशील प्रक्रिया जो भाग लेने वाले व्यक्तियों की अवचलन क्रिया से सम्बन्धित है, के रूप में देते हैं। फौशे एव गुडसन[4] ने यह विचार किया कि ऐक्शन रिसर्च उस प्रक्रिया का नाम है जो ऐक्शन में यथाक्रम ढङ्ग से सुधार लाये।

कनिंघम एवं मील[5] महोदय ऐक्शन रिसर्च को ऐसा अनुसंधान कहते हैं जिसमें प्राक्कल्पना जिनका परीक्षण होना है, का कथन समस्यात्मक स्थितियों के सुधार के कार्यक्रम के रूप में दिया जाता है। फौशे एवं गौडसन ने कहा है कि ऐक्शन रिसर्च

1. Definition of Action Research. 2 Corey. 3. Mukerji 4. Foshay and Goodson. 5. Cunningham and Miel.

मूल्यों का वास्तविकता मे प्रयोग करने का एक प्रयास है। यह इस प्रकार का प्रयास है जो क्या हम करते हैं, उसकी संगति क्या हम विश्वास करते हैं उसके साथ कर देता है।

ऐक्शन रिसर्च के दो महत्त्वपूर्ण संघटक[1]

जिन कार्य-पद्धतियों[2] का प्रयोग ऐक्शन रिसर्च मे होता है, वह वही होती हैं जिनका प्रयोग मूल तथा व्यावहारिक अनुसंधान[3] में होता है। किन्तु ऐक्शन रिसर्च के दो महत्त्वपूर्ण संघटक हैं। वह हैं

(१) अनुसंधानकर्त्ता ही अनुसंधान के उपभोक्ता होते हैं।[4] जैसा कि हमने ऊपर कहा है, ऐक्शन रिसर्च का ध्येय यही है कि उसके द्वारा व्यक्ति स्वयं अपनी समस्या-समाधान के मार्ग खोजें और उनका प्रयोग करें, एव

(२) अनुसंधान उस स्थिति में होता है जिसमे समस्या-हल खोज निकालने की आवश्यकता प्रतीत होती है, और जहाँ अनुसंधान के निष्कर्षों का प्रयोग किया जा सकता है।

यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि ऐक्शन रिसर्च केवल किसी समस्या पर एक व्यक्ति या एक समूह द्वारा कार्य करने से ही सम्बन्धित नही है वरन् वह व्यक्तियों के समझने की शक्ति एवं उनकी कार्यक्षमता मे वृद्धि करने की भी कार्य-पद्धति है तथा इस बात पर विशेष रूप से आधारित है कि अधिक समझ एवं उत्तम कला की प्राप्ति व्यावहारिक रूप मे उपयोग की जा सकती है।

ऐक्शन रिसर्च एवं अन्य रिसर्च मे अन्तर

उपर्युक्त दोनों संघटक ऐक्शन रिसर्च तथा अन्य प्रकार की रिसर्च के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त ऐक्शन रिसर्च एवं अन्य प्रकार के अनुसंधान मे यह भी अन्तर है कि इसे अनुसंधान यन्त्र एवं प्रविधियों के मूल्याकन एवं लेखन-क्रिया मे प्रयोग के द्वारा औपचारिकता प्रदान कर दी जाती है।[5]

ऐक्शन रिसर्च को एक ऐसी विधि भी समझा जाता है जो चेतन रूप से इस बात का पता लगाने की चेष्टा करती है कि कुछ क्रियाएँ वास्तव मे उन निष्कर्षों को प्राप्त करने मे सफल होती हैं या नहीं जिनकी प्रत्याशा की गई है।[6]

---

1. Two Important Components of Action Research. 2. Procedures 3 Basic and applied research 4. The researchers are the consumers of the research.

5. It is formalized through the use of research tools and techniques in evaluating and recording the process.

6. Action research is one method of trying consciously to find out whether or not certain activities actually do lead to the results that were anticipated.

ऐक्शन रिसर्च में प्रमाण[1] को नियमित ढङ्ग से खोजा जाता है, लिपिबद्ध किया जाता है एवं उसकी व्याख्या की जाती है।

ऐक्शन रिसर्च का महत्त्व एवं मूल्य[2]

ऐक्शन रिसर्च का महत्त्व एवं मूल्य मुख्यतः परिवर्तन को सुव्यवस्थित एवं अनुशासित आधार प्रदान करने के कारण है।[3] वर्तमान समय में परिवर्तन की वास्तविकता से कोई इन्कार नहीं कर सकता। प्रत्येक समाज में समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। वर्तमान काल में अनेक कारणों के फलस्वरूप परिवर्तन अति शीघ्रता से सामाजिक जीवन में प्रवेश पा रहे हैं। यदि शिक्षा का ढाँचा प्रगतिशील रखना है, तो यह आवश्यक है कि सामयिक परिवर्तनों के आधार पर इसमें भी ऐसे परिवर्तन लाये जायें जो व्यक्ति तथा समाज, दोनों के उत्थान के लिए हों। कैसे यह परिवर्तन लाये जायें, और क्या परिवर्तन वांछित होंगे और क्या अवांछित, इसका निर्णय शीघ्रता से अधिक से अधिक ज्ञान जो उपलब्ध है उसके आधार पर लेना आवश्यक है, तथा निर्णय लेने के बाद व्यावहारिक रूप में उसकी रचना एवं मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। क्योंकि ऐक्शन रिसर्च एक ऐसी विधि है जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और परिवर्तन के सम्बन्ध में उचित दृष्टिकोण रखती है, इस कारण यह बहुत महत्त्व की है। इस प्रकार हम ऐक्शन रिसर्च के महत्त्व एवं मूल्य का वर्णन निम्न प्रकार से कर सकते हैं :

१. ऐक्शन रिसर्च सुव्यवस्थित आधार पर परिवर्तन को केन्द्रित करती है।
२. *इस रिसर्च में अनुसंधानकर्ता ही उपभोक्ता है।*
३. इसमें समस्याओं का हल शीघ्र खोजा जाता है।
४. समस्याएँ वह होती हैं जिनसे स्वयं अनुसंधानकर्ता घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं।
५. समस्या-हल व्यावहारिक रूप में प्रयोग किये जाते हैं और उनका मूल्यांकन किया जाता है।
६. समस्या-हल विवेचन, वाद-विवाद इत्यादि के आधार पर न खोजा जाकर, वैज्ञानिक प्रविधियों एवं यन्त्रों द्वारा ढूँढ़ा जाता है।
७. परिवर्तन का विरोध कम कर दिया जाता है।
८. क्योंकि ऐक्शन रिसर्च द्वारा प्राप्त समस्या-हल में मूल्यांकन निहित रहता है, इसलिए इसके निष्कर्षों की आलोचना का उत्तर दिया जा सकता है।

---

1. Evidence 2. The importance and value of action research. The value of action research is dependent on the fact that it provides an orderly, disciplined base for change.

ऐक्शन रिसर्च के उद्देश्य[1]

ऐक्शन रिसर्च का उद्देश्य, व्यवहार में परिवर्तन लाना है। ऐक्शन रिसर्च द्वारा चाहे एक नवीन विद्यालय-संगठन का परीक्षण किया जा रहा हो, चाहे शिक्षण की एक विशिष्ट विधि की उपयोगिता का मूल्याङ्कन किया जा रहा हो, अन्तिम उद्देश्य जिस पर ऐक्शन रिसर्च केन्द्रित होती है, वह व्यक्तियों के व्यवहार में परिवर्तन ही है।

ऐक्शन रिसर्च में वे व्यक्ति ही मुख्य रूप से भाग लेने वाले होते हैं जो शैक्षिक परिवर्तन की क्रिया में भी सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार यह विचार किया जाता है कि *शिक्षक अपनी शैक्षिक समस्याओं को हल करने के लिए ऐक्शन रिसर्च* प्रोग्राम को अपनायेंगे। ऐक्शन रिसर्च द्वारा वे यह जान जायेंगे कि शैक्षिक समस्या को हल करने के लिए क्या परिवर्तन आवश्यक हैं, और क्योंकि इन परिवर्तनों पर वह स्वयं अपने अनुसन्धान द्वारा पहुँचे हैं, इस कारण उन्हें बिना झिझक के अपना लेंगे। अतएव ऐक्शन रिसर्च का उद्देश्य यह भी है कि वह परिवर्तनों के विरोध को शक्ति-हीन कर दे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, ऐक्शन रिसर्च का सामान्य उद्देश्य व्यवहार में परिवर्तन लाना है किन्तु जो सामान्यीकरण इसके द्वारा प्राप्त होते हैं, वह ऐसे ज्ञान-भण्डार में वृद्धि करते हैं जिनका पुन: परीक्षण आवश्यक है। इससे तात्पर्य यह है कि यह ज्ञान सामान्य रूप से सन्तोषजनक नहीं होता। यह तो विशिष्ट स्थिति में ही प्रयोग में किया जाने वाला होता है। सामान्य रूप से इसकी उपयोगिता अत्यन्त कम है।

ऐक्शन रिसर्च का प्रयोग एक साथ ही अनेक प्रयोजनों की प्राप्ति के लिए हो सकता है किन्तु एक समय में जो भी ऐक्शन रिसर्च प्रोजेक्ट किया जाता है, वह एक विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही होता है। उदाहरण के लिए, एक प्रधान अध्यापक ऐक्शन रिसर्च प्रोजेक्ट में इस उद्देश्य से भाग ले सकता है कि वह अपने सहयोगियों के साथ किस प्रकार अच्छा से अच्छा कार्य कर सकता है। वह रिसर्च द्वारा इस बात के जानने की चेष्टा करता है कि वह किस प्रकार से अपने व्यवहार में परिवर्तन ले आये ताकि अध्यापकों और विद्यार्थियों का इस ढंग से नेतृत्व कर सके कि उसके विद्यालय में शिक्षण की व्यवस्था उत्तम स्तर की हो जाये। अतएव यहाँ प्रधान अध्यापक अपने व्यवहार में सुधार इसलिए लाना चाहता है, ताकि वह दूसरों को सुधार कर शिक्षा की व्यवस्था को उत्तम बनाये। इस प्रकार से सुधारने की क्रिया में विद्यालय-संगठन एवं शासन में भी परिवर्तन लाना अनिवार्य हो जाता है। अतएव एक प्राथमिक बिन्दु पर ऐक्शन रिसर्च केन्द्रित होने हुए भी अनेक प्रयोजनों से युक्त हो जाती है—जो इस प्राथमिक बिन्दु के साथ घनिष्ठ रूप से गुथे-बँधे रहते हैं।

---

1. Purpose of Action Research.

ऐक्शन रिसर्च का प्रयोग ऐसे बिन्दु की ओर भी केन्द्रित हो सकता है जो प्राथमिक रूप से किसी संस्था अथवा व्यवस्था में परिवर्तन लाने की ओर हो ताकि यह परिवर्तन दूसरों को अधिक कुशलता एवं सरलता से संस्था में कार्य करने के योग्य बनाये। उदाहरण के लिए, एक विद्यालय में खेलों की व्यवस्था के सम्बन्ध में ऐक्शन-प्रोजेक्ट लिया जा सकता है। इस प्रोजेक्ट का उद्देश्य खेल-व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन लाना हो सकता है कि विद्यार्थियों को अधिक खेल के अवसर मिलें और खेल द्वारा वह अपने व्यवहार में ऐसे परिवर्तन ले आयें जो उनके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक हों।

निष्कर्ष

उपर्युक्त दो उदाहरण एवं अन्य वर्णन से हम ऐक्शन रिसर्च के उद्देश्यों के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पर आते हैं :

१. अनुसंधानकर्त्ता के व्यवहार में परिवर्तन लाना हो सकता है।
२. दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना हो सकता है।
३. व्यवस्था या संस्था के संगठन में परिवर्तन लाना हो सकता है, जो परिवर्तन अनुसंधानकर्त्ता एवं दूसरों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के हेतु हो।

१. रिसर्च द्वारा अनुसंधानकर्त्ता के व्यवहार में परिवर्तन लाना—ऐक्शन रिसर्च के अनुसंधानकर्त्ता स्वयं ही विषयी होते हैं। वह अनुसंधान करने में बाहरी विषयी की खोज नहीं करते, वरन् स्वयं अपने ऊपर ही परीक्षण करते हैं। शिक्षक, निरीक्षक, शासक, अन्वेषणकर्त्ता, अभिभावक, समाज-सदस्य सब अनुसंधानकर्त्ता हो सकते हैं और विषयी भी हो सकते हैं। इसको स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देंगे। एक विद्यालय में शिक्षक यह अनुभव करते हैं कि उनमें आपसी तनाव बढ़ रहे हैं और शैक्षिक वातावरण दूषित हो रहा है। वह यह भी जानते हैं कि उस विद्यालय में आपस में अध्यापकों के मिलने-जुलने के अवसर बहुत कम हैं। वहाँ न तो शिक्षक-क्लब ही हैं, न शिक्षकों की मीटिंग इत्यादि ही होती है। अतएव वह यह प्राक्कल्पना[1] बनाते हैं कि "शिक्षकों का सामाजिक रूप से इकट्ठा न होना उनमें तनाव पैदा कर रहा है और विद्यालय के वातावरण को दूषित बना रहा है।" वह अब अधिक मिलने-जुलने के अवसर निकालते हैं, और एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की चेष्टा करते हैं। वह उन विधियों का पता लगाते हैं, जिनसे उनके आपसी तनाव कम हो और उनको अपनाकर वे अपने व्यवहार में परिवर्तन ले आते हैं।

२. दूसरों के व्यवहार में परिवर्तन लाने वाले अनुसंधान—ऐक्शन प्रोजेक्ट का उद्देश्य दूसरों के व्यवहार में भी परिवर्तन लाना है। अनुसन्धानकर्त्ता विशिष्ट स्थितियों में विषयी के एक समूह[2] पर अनुसंधान करते हैं। विषयी को यह पता नहीं

1. Hypothesis. 2. A group of subject.

होता कि वह अनुसंधान मे भाग ले रहे हैं। किन्तु जिन परिस्थितियों मे उनके व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए अन्वेषण किया जाता है, वह वास्तविक होती हैं और विषयी उनके मध्य मे होते हैं। अन्वेषणकर्त्ता उन चीजों मे परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं, जिन पर उनका थोड़ा नियन्त्रण होता है।

३. ढाँचा, व्यवस्था, संगठन आदि मे परिवर्तन लाना—अनुसंधानकर्त्ता कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन इत्यादि मे परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं। इसका एक उदाहरण हम पढ़ने दे चुके है।

ऐक्शन रिसर्च के पद[1]

ऐक्शन रिसर्च के पदों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है .

(१) समस्या से अभिज्ञ होना[2]—प्रत्येक प्रकार के अनुसन्धान का प्रथम पद समस्या से पूर्णत. अभिज्ञ होना है। एक ऐक्शन रिसर्च प्रोजेक्ट में भी चाहे वह साधारण या जटिल प्रकार का हो, समस्या से अभिज्ञ होना आवश्यक है। यदि ऐक्शन प्रोजेक्ट एक समूह द्वारा लिया गया है तो यह हो सकता है कि प्रारम्भ मे समस्या का रूप स्पष्ट न हो और विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार से समस्या का वर्णन करें। ऐसी दशा मे यह आवश्यक है कि तब तक दूसरे पद की ओर न बढ़ा जाए जब तक सब व्यक्तियों के समस्या के कथन पर सामूहिक रूप से विचार न कर लिया जाये और समस्या को यथासम्भव समझने की चेष्टा न कर ली जाए। समूह के विभिन्न व्यक्ति समस्या का वर्णन विभिन्न प्रकार से कर सकते हैं। ऐसी दशा मे वाद-विवाद के द्वारा समस्या की विभिन्न व्याख्या पर विचार किया जाये और समस्या के सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय किया जाये।

(२) ऐक्शन परिकल्पना[3]—ऐक्शन परिकल्पना ऐसे कार्य का निर्देशन देती है जो समस्या का हल निकालने मे सफलीभूत हो। समस्या को हल करने के लिए विचारों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। यह देखा जाता है कि यदि हम ऐसा करेंगे तो क्या समस्या सुलझ जायेगी। जो ऐक्शन सबसे अधिक संभावित रूप से समस्या के हल के लिए उपयुक्त होता है, उसे ऐक्शन परिकल्पना के रूप मे वर्णन कर दिया जाता है।

ऐक्शन परिकल्पना इस प्रकार की हो सकती है

"शिक्षक-मण्डल अधिक उत्साह से कार्य उस समय करेगा, जबकि शिक्षा-सम्बन्धी सुधार लाने वाली शिक्षक-मण्डल की बैठकें विद्यालय के समय में ही की जाएँ।"

ऐक्शन परिकल्पना की प्रकृति मे दो बातें स्पष्ट होती हैं :

(१) एक वांछित उद्देश्य—ऊपर वर्णन की हुई परिकल्पना मे वांछित उद्देश्य अधिक उत्साहपूर्वक कार्य है।

1. Steps in action research. 2. Identifying the problem. 3. Action Hypothesis.

(२) एक ऐक्शन या कार्य करने की विधि, जिसके द्वारा उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है—विद्यालय के समय में ही शिक्षक-मण्डल की बैठकें बुलाना, कार्य करने की विधि है।

परिकल्पना का उचित निर्धारण उस समय होता है, जबकि अनुसंधान कुछ समय चल चुका है। एक अन्य उदाहरण द्वारा हम परिकल्पना के निर्माण पर प्रकाश डालेंगे। यथा—

"जब शिक्षकों की स्वयं चुनी हुई कमेटी पाठ्य-पुस्तकों का चुनाव करती है तो उत्पादन उसके तुलनात्मक अधिक होता है—जबकि प्रधानाध्यापक द्वारा मनोनीत की हुई कमेटी द्वारा पाठ्य-पुस्तकों का चुनाव होता है।"

इस परिकल्पना में उद्देश्य 'उत्पादन' है, कार्य या ऐक्शन 'शिक्षकों की स्वयं चुनी हुई कमेटी' है और विकल्प ऐक्शन[1] 'प्रधान अध्यापक द्वारा मनोनीत कमेटी' है।

यह परिकल्पना इस बात को स्पष्ट कर देती है कि दो प्रकार के ऐक्शन का तुलनात्मक अध्ययन ही वांछित उद्देश्य की प्राप्ति का मार्ग दिखायेगा।

(३) **रिसर्च की रूपरेखा निर्धारित करना**[2]—परिकल्पना बनाने के पश्चात् यह आवश्यक है कि ऐसी योजना बनाई जाये जो इसका परीक्षण करे, और परिणामों का मूल्यांकन करे। रिसर्च की ऐसी रूपरेखा बनाई जाये जिससे समस्या का हल परिकल्पना का परीक्षण करके निकाल लिया जाय।

रूपरेखा निर्धारित करने में निम्न बातों का ध्यान देना आवश्यक है :

(i) परिकल्पना में जो ऐक्शन सम्बन्धी कथन है, उसकी व्याख्या कैसे की जाती है। उपर्युक्त उदाहरण में दी गई परिकल्पना के सम्बन्ध में यह व्याख्या करना आवश्यक है कि शिक्षकों की चुनी हुई कमेटी एवं मनोनीत कमेटी से क्या तात्पर्य है।

(ii) उद्देश्य के सम्बन्ध में यह स्पष्ट करना कि उसकी माप किस आधार पर निर्भर है। इससे तात्पर्य यह है कि उद्देश्य का वर्णन स्पष्ट रूप से इस प्रकार कर दिया जाये कि उसकी माप अनुसंधान करने वाले कर सकें। उपर्युक्त उदाहरण में उद्देश्य 'उत्पादन' कहा गया है। उत्पादन की माप किस प्रकार होती है, इसका वर्णन करना आवश्यक है।

(iii) जिन अनित्य[3] वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है, उनका चयन इस प्रकार और ऐसी दशाओं में हो कि तुलना सम्भव हो सके। जैसे, मनोनीत कमेटी और चुनी हुई कमेटी का चयन ऐसे ढङ्ग से और ऐसी दशाओं में होना चाहिए कि चुनाव का ढंग ही सबसे महत्त्वपूर्ण चल-राशि हो ताकि उत्पादक के सम्बन्ध में चुनाव के ढङ्ग का तुलनात्मक अध्ययन हो सके। एक विश्वविद्यालय की मनोनीत कमेटी का

---

1. Alternative Action. 2. Making the Research Design. 3. Variables.

तुलनात्मक अध्ययन एक प्राथमिक विद्यालय की चुनी हुई कमेटी से नहीं किया जा सकता।

(iv) प्रदत्त सामग्री[1] इकट्ठी की जाये जो परिकल्पना के परीक्षण करने मे आवश्यक है। दोनो प्रकार की कमेटी का चयन करके वह प्रदत्त सामग्री इकट्ठी की जाये जो उत्पादन के सम्बन्ध मे हो।

(v) प्रदत्त सामग्री का विश्लेषण किया जाय तथा उसकी व्याख्या करके यह देखा जाय कि वह किस सीमा तक परिकल्पना को सिद्ध करता है।

(vi) प्रदत्त सामग्री से ऐसे सामान्यीकरण प्राप्त किये जाएँ जो भविष्य मे कार्य करने के लिए पथ-प्रदर्शन प्रदान करें।

(vii) इन सामान्यीकरणो का प्रयोग किया जाय और लगातार उनका परीक्षण किया जाये।

(viii) यदि रिसर्च एक समूह द्वारा की जा रही है तो समूह के प्रत्येक सदस्य द्वारा जो कार्य करना है, उसका निर्माण कर दिया जाये।

(ix) जिन विधियो द्वारा प्रदत्त सामग्री को इकट्ठा करना है, उनके सम्बन्ध मे निर्णय लिया जाये। समस्या के प्रत्येक रूप पर विचार किया जाये तथा प्रत्येक रूप के सम्बन्ध मे विधि का निर्धारण किया जाये।

(x) यदि ऐसे यन्त्र उपलब्ध हैं जो मानकीकृत[2] किये हुए हैं तो प्रदत्त-सामग्री उन्हीं के द्वारा इकट्ठी की जानी चाहिए अथवा यन्त्रो का निर्माण किया जाना चाहिए। ऐसी दशा मे यन्त्रो की विश्वसनीयता का पता पहले ही लगा लेना चाहिए। यह देख लेना चाहिए कि यह यन्त्र उसी का मापन करते हैं, जिसके लिए वह बनाये गये हैं।

(४) परिकल्पना का परीक्षण[3]—परिकल्पना का परीक्षण उस रूपरेखा को क्रियान्वित करके किया जाना चाहिए, जिसका निर्धारण तीसरे पद पर हो चुका है। प्रदत्त सामग्री ऐक्शन परिस्थितियो मे उन्हीं व्यक्तियो द्वारा इकट्ठी की जाती है जो परिवर्तन लाने मे रुचि रखते हैं। यही व्यक्ति प्रदत्त सामग्री का विश्लेषण करके व्याख्या करते हैं और परिकल्पना का परीक्षण करते हैं।

(५) निष्कर्ष निकालना[4]—परिकल्पना का परीक्षण करके निष्कर्ष निकाला जाता है। सामान्यीकरण प्राप्त किये जाते हैं, और उनका पुन: परीक्षण किया जाता है। यदि परिकल्पना समस्या सुलझाने मे सफल नहीं होती तो नई परिकल्पना बनाई जाती है और फिर उसका परीक्षण किया जाता है। यदि कोई नई समस्या का संकेत मिल जाता है तो समूह फिर उसको ले करके परिकल्पना बनाता है, और ऐक्शन रिसर्च मे लग जाता है।

---

1. Data. 2. Standardized 3. Testing the action hypothesis. 4. Deriving conclusions.

ऐक्शन रिसर्च के महत्त्वपूर्ण तत्त्व[1]

अन्त मे, अब हम ऐक्शन रिसर्च के मुख्य तत्त्वो का वर्णन करेंगे। इसके मुख्य तत्त्व निम्न हैं :

१. ऐसे समस्या-क्षेत्र से अभिज्ञत होना जो एक व्यक्ति या समूह को इतना महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो कि वह कुछ ऐक्शन लेने को तत्पर हो।

२. एक विशिष्ट समस्या का चयन किया जाये, और उसके सम्बन्ध में परिकल्पना बनाई जाये। एक उद्देश्य निर्धारित हो, और उस तक पहुँचने की विधि का चयन किया जाये।

३. प्रदत्त सामग्री इकट्ठी की जाये। उसका विश्लेषण किया जाये, और यह देखा जाये कि किस सीमा तक उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है।

४. सामान्यीकरण प्राप्त किए जाएँ तथा देखा जाय कि ऐक्शन और वाञ्छित उद्देश्य मे क्या सम्बन्ध है।

५ इन सामान्यीकरणों का बराबर परीक्षण ऐक्शन परिस्थितियों मे किया जाये।

ऐक्शन रिसर्च की अनुकूल दशाएँ[2]

ऐक्शन रिसर्च की अनुकूल छः दशाएँ हैं :

१. सीमाओ के बंधन को मानने की स्वतन्त्रता होना।

२. अन्वेषण करने के अवसर प्राप्त होना।

३. विभिन्न हलो का परीक्षण करने को प्रोत्साहन मिलना।

४. समूह कार्य की विधियो मे सुधार लाने हेतु तैयार रहना।

५. विश्वासी प्रदत्त सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा करना।

यदि उपर्युक्त छः दशाएँ हैं और ऐक्शन रिसर्च के पदो से शिक्षक, व्यवस्थापक एवं शासक अवगत हैं तो वह इस प्रकार की रिसर्च का उपयोग करके अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझा सकते हैं।

सारांश

'ऐक्शन रिसर्च' एक ऐसी क्रिया है जो कार्य-क्षेत्र मे रत रहने वाले व्यक्तियो को स्वय अपनी समस्याओं का समाधान करने का रास्ता दिखाती है।

ऐक्शन रिसर्च के दो महत्त्वपूर्ण संघटक हैं —(१) अनुसंधानकर्त्ता ही अनुसंधान के उपभोक्ता होते हैं।

(२) अनुसंधान उस स्थिति मे होता है, जिसमे समस्या-हल खोज निकालने की आवश्यकता प्रतीत होती है, और जहाँ अनुसंधान के निष्कर्षों का प्रयोग किया जा सकता है।

1. Significant elements of action research. 2. Conditions favourable to action research.

ऐक्शन रिसर्च मे प्रमाण को नियमित ढङ्ग से खोजा जाता है, लिपिबद्ध किया जाता है एवं उसकी व्याख्या की जाती है ।

ऐक्शन रिसर्च का महत्त्व एवं मूल्य—ऐक्शन रिसर्च का मूल्य इस कारण बहुत है कि इसमे समस्याओ का हल शीघ्रता से खोजा जाता है तथा समस्याऍ अनुसंधानकर्त्ता द्वारा स्वय अनुभव की जाती हैं और उनके खोजे हुए हलो का उपयोग किया जाता है ।

ऐक्शन रिसर्च के उद्देश्य—(१) अनुसधानकर्त्ता, (२) दूसरे व्यक्तियो, तथा (३) व्यवस्था या संस्था में परिवर्तन लाना होता है ।

ऐक्शन रिसर्च के पद—(१) समस्या से अभिज्ञत होना, (२) ऐक्शन परिकल्पना बनाना, (३) रिसर्च की रूपरेखा निर्धारित करना, (४) परिकल्पना का परीक्षण करना, तथा (५) निष्कर्ष निकालना ।

ऐक्शन रिसर्च की अनुकूल दशाएँ—उपरिवर्णित छ दशाएँ हैं ।

अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न

१ ऐक्शन रिसर्च से आप क्या समझते हैं ? शिक्षक वर्ग इस रिसर्च का प्रयोग किस प्रकार कर सकते हैं ?

२ दो उदाहरण देकर समझाइए कि ऐक्शन रिसर्च की परिकल्पना किस प्रकार निर्धारित की जाती है ?

३. ऐक्शन रिसर्च के मुख्य पद क्या हैं ? किसी एक उदाहरण को लेकर स्पष्ट कीजिए कि विभिन्न पद एक ऐक्शन प्रोजेक्ट मे कैसे निधारित होते हैं ?

४. ऐक्शन रिसर्च के उद्देश्य क्या हैं ? इसके लिए क्या दशाएँ अनुकूल हैं ?

५ एक ऐक्शन रिसर्च की योजना बनाइए और यह स्पष्ट कीजिए कि आप इसे ऐक्शन रिसर्च क्यो कहते हैं ?

पारिभाषिक शब्दों एवं सहायक पुस्तकों की सूची

पारिभाषिक शब्दों की सूची

(Technical Terms in Hindi)

A

Ability —योग्यता

,, Special —विशिष्ट योग्यता

Abnormal —असामान्य

Accidental — अवियोज्य

Achievement Age —उपलब्धि-आयु

Achievement Quotient —उपलब्धि-लब्धि

Achievement Test —उपलब्धि-परीक्षा

Acquisitive Instinct —संग्रह-प्रवृत्ति, संचय या संग्रह-मूल-प्रवृत्ति

Active —सक्रिय

Activity —प्रत्ययमूलक क्रिया

Activity Construction —प्रत्ययमूलक निर्मिति

Activity Destructive —प्रत्ययमूलक उन्मथनधारा

Adjustment —व्यवस्थापन, अनुकूलन, समंजन, समायोजन

Adolescence —कैशोर्य, किशोरावस्था

Aesthetic —संवेदनात्मक

Aesthetics —सौंदर्यमीमांसा

Affective —भाव-साहचर्य

Amusement —आमोद, विनोद

Analytic —विश्लेषणात्मक

Anlytico-synthetic —विश्लेष-संश्लेष-मूलक

Anecdotes —किस्से

Anger —क्रोध

Animal Psychology —पशु-मनोविज्ञान

Anticipatory —पूर्वाभिनय

Anxiety —दुश्चिन्ता

Appeal —शरणागति

Appearance —दर्शन, आभास

Apperception —प्रत्यक्ष ज्ञान, पूर्वानुवर्ती

Appetite —भूख, क्षुधा

Appetitive —इच्छात्मक

Appreciation —रसानुभव, आशसन

Appreciation Lesson —रसानुभूति पाठ, आशमन पाठ

Apprenticeship —अभ्यास-काल
Aptitude —रुझान, झुकाव, अभिरुचि
Aspect —पक्ष
,, Affective —पक्ष-भावसाहचर्य
,, Cognitive —ज्ञानमूलक पक्ष
,, Conative —चेष्टात्मक पक्ष
Association of Ideas —विचारों अथवा प्रत्ययों का परस्पर सम्बन्ध
Association Reflex —सम्बन्ध-सहज क्रिया
Astronomy —खगोल
Atonement —प्रायश्चित
Attachment —आसक्ति
Attention —अवधान
,, Intensive —प्रगाढ़ अवधान, प्रगाढ़ ध्यान
,, Visual —दृष्टि ध्यान
Auditory —श्रवण सम्बन्धी, श्रवण-तीक्ष्णता
Audile —श्रवणापेक्षी
Autocratic —एकतन्त्रीय
Auto-suggestion —आत्म-निर्देश
Average —साधारण, मध्यमान, माध्य

B

Backward —पिछड़ा हुआ
Backward Child —पिछड़ा बालक
Behaviour —व्यवहार
,, Negativistic —नकारात्मक व्यवहार
Behaviour Pluralistic —वर्गमूलक व्यवहार
,, Purposive —प्रयोजनमूलक व्यवहार
Behaviourism —व्यवहारवाद
Biology —प्राणि-विज्ञान, जीवविद्या
Blind spot —अन्ध-बिन्दु, अन्ध स्थल
Boredom —ऊब, विरसता
Breakdown-Nervous —तान्त्रिका-भंग
Brain —मस्तिष्क या भेजा

C

Capacity —क्षमता
Capability —सामर्थ्य
Carriers of Heredity —वंशानुक्रमता के वाहक
Cathartic-Theory —रेचक सिद्धान्त
Cell —कोष
Censor —अवष्टंभक, अवरोधक
Change —परिवर्तन
Character —चरित्र
Characteristics —विशेषताएँ, विलक्षणताएँ
Childhood —बाल्यकाल
Child truant —पलायनशील बालक
Chromosome —वंश-सूत्र, गुण-सूत्र
Circumstantial —परिस्थित्यात्मक
Classification —वर्गीकरण

Club —गोष्ठी
Co-education —सहशिक्षा
Cognitive —ज्ञानात्मक, सज्ञात्मक
Collection —सग्रह
Combat —युयुत्सा
Combination of Responses—प्रतिक्रियाओ का मिश्रण
Complex —मनो-ग्रन्थि
Complex, Repressed—अवदमित ग्रन्थि
Comlex Reflex Action —विषमता - जन्य क्रिया
Conation —चेष्टा, क्रियावृत्ति
Conceit —अहमन्यता, दभ
Concentration —एकाग्रता
Concept —सकल्पना, सप्रत्यय
Conception —सप्रत्ययन
Concerete —मूर्त्त
Conditioned Reflexes —आबद्ध सहज-क्रिया सम्बद्ध-क्रिया
Conduct —आचरण, आचार
Conflict —द्वन्द्व, सघर्ष
Conscious mind —चेतन मन
Conscious —चेतन या चेतनता
Consistency —सगति
Consolidation —एकीकरण
Constructive —रचनात्मक
Continuity of germ-plasm—बीजकोष की सनातनता
Contrast —वैपरीत्य, वैषम्य
Contra-suggestion —विरुद्ध निर्देश, विपरीत ससूचन
Cooperation —सहयोग
Coordination —समन्वय, एकरूपता
Creative —सृजनात्मक
Crossness —नाराजगी
Crowd —भीड़, समर्द
Culture-Epoch-Theory —सस्कृति-युग-सिद्धान्त
Curiosity —जिज्ञासा, कुतूहल
Curve —वक्र

D

Data —सामग्री, प्रदत्त
Day-Dreaming —दिवा-स्वप्न
Decision —निश्चय
Deduction —निगमन
Defects —दोष
Deformity —विकृति, विरूपता
Degree —मात्रा
Delinquency —अपचार
Delusion —मोह, भ्रांति
Destruction —ध्वसात्मक
Deviation —विचलन, विसामान्यता
Diagnostic Test —निदानात्मक परीक्षा
Didactic Apparatus—उपदेश सामग्री, प्रबोध-उपकरण
Discipline —अनुशासन
Discussion —बहस, परिचर्चा
Disgust —घृणा, विरुचि

Feeling —भाव, अनुभूति, भावना
Forgetting —विस्मृति, भूलना

G

General Ability—सामान्य योग्यता
Genes —जीन्स, पित्रैक
Genius —प्रतिभाशाली
Genetic Psychology—जननिक मनोविज्ञान
Gifted Child —प्रतिभाशाली बालक
Germ Cell —बीज-कोष, जनन-कोशिका
Gestalt Psychology—समग्राकृति मनोविज्ञान
Gland —ग्रन्थियाँ
Gregariousness —सामूहिकता
Group —समूह, टोली
Group-mind —समूह-मन
Group Psychology—समूह मनोविज्ञान
Group Test —समूह परीक्षा
Guardian —अभिभावक

H

Habit —आदत, अभ्यस्तता
Habit-memory —आदतजन्य स्मृति
Habit Nervous—घबराने की आदत
Hallucination —भ्रान्ति, विभ्रम
Happiness —प्रसन्नता, आनंद
Hatred —घृणा
Hazard-Occupational—व्यावसायिक खतरा
Health Chart —स्वास्थ्य-विवरण-पत्र
Herd Instinct —सामूहिक जीवन की प्रवृत्ति, यूथ प्रवृत्ति
Heredity —वंशानुक्रम, आनुवंशिकता
Hereditarian —वंशानुक्रमवादी
Hetro-sexuality—विषम-लिङ्गी प्रेम
Heuristic Method —अन्वेषण-प्रणाली
History-Personal —व्यक्ति-वृत्त, व्यक्ति-इतिहास
Horme —मन ऊर्जा, सप्रयोजनता
Homo-sexuality—स्वलिंगी प्रेम
Humour —परिहास, स्वभाव, कायरस
Human Being —मानव
Hydrophobia —जलभीति
Hypnosis —सम्मोहन, समोह, मोहनिद्रा
Hypnotism —सम्मोहन क्रिया
Hypochondria —रोग-भ्रम, रोग का वहम, स्वकाय-दुश्चितता

I

Idealism —आदर्शवाद, अध्यात्मवाद, प्रत्ययवाद
Ideo-motor Type —विचारजन्य गति प्रकार, प्रत्यय-चालित

Identification —तादात्म्य, तादात्मीकरण
Idiot —जड़-बुद्धि
Image —प्रतिमा, बिम्ब
Image Memory—प्रतिमा-स्मृति या वास्तविक स्मृति
Imagination-Reproduction —पुनराभिव्यक्ति-कल्पना
Imbecile —मूढ़, हीनबुद्धि
Imitation —अनुकरण
Impulse —आवेग
Incentive —प्रेरक, प्रोत्साहन
Individual Difference —वैयक्तिक भिन्नता, व्यष्टिगत भेद
Individuality —व्यक्तित्व, व्यष्टित्व
Inductive —परिणामात्मक, आगमनात्मक
Industrial Psychology—औद्योगिक मनोविज्ञान
Infancy —शैशव
Inferiority —आत्महीनता, दैन्य
Inhibition —विमयन, अवरोध
Innate —जन्मजात, अतर्जात
Insight —सूझ
Instinct —मूल-प्रवृत्ति, सहज प्रवृत्ति
Instinctive —मूलप्रवृत्त्यात्मक सहजप्रवृत्तिक
Integrative —सकलनात्मक
Intelligence Quotient —बुद्धि-लब्धि
Insane —विक्षिप्त
Intensity —तीव्रता, गहनता
Interest —अभिरुचि
Interview —साक्षात्कार, प्रत्यक्षालाप
Introspection —अन्तःप्रेक्षण, अन्तर्निरीक्षण
Introvert —अन्तर्मुखी
Invention —आविष्कार

J

Jealous —ईर्ष्यालु
Judgment —निर्णय

K

Knowledge —ज्ञान

L

Language —भाषा
Law of Effect —परिणाम-नियम
Law of Exercise—अभ्यास-नियम
Law of Readiness —तत्परता-नियम
Law of Variation —भिन्नता-नियम
Leader —नेता
Learning —सीखना, अधिगम
Lesbianism —स्त्री-सजातीय कामुकता
Level —स्तर
Libido —काम-प्रवृत्ति
Living Cell —जीव-कोष
Locality Survey—स्थान सर्वेक्षण
Longeity —दीर्घायु
Love —प्रेम
Lust —कामुकता

M

Magic —जादू

Major —वयस्क, मुख्य
Majority —बहुमत
Mass-Suggestion —समूह निर्देश, सामूहिक ससूचन
Master-Sentiment —स्थायीभाव
Maturation —विवृद्धि, प्रौढता, परिपक्वन
Maturity —प्रौढावस्था, परिपक्वता
Measurement —माप, मापन, नाप
Mechanical —यान्त्रिक
Memory —स्मृति
Mental Testing —मानसिक परीक्षण
Mental Measurement—मानसिक माप
Method —विधि
Mind —मस्तिष्क, मन
Minor —अल्पवयस्क
Misconception —मिथ्या धारणा
Mood —मनोदशा, उमग
Moron —मूर्ख, मूढ़ बुद्धि
Motivation —प्रेरणा, उत्साह
Motive —अभिप्रेरण
Motor —गामक, गतिवाही, गति-पेशीय, प्रेरक
Motor-Nerve —गति-तात्रिका
Motor Reflexes —पेशीय सहज-क्रियाएँ
Motor Test —गामक या गति-परीक्षा
Myth —प्रतीक कथा, दन्त कथा
Mythology —देव कथाएँ, धार्मिक कथाएँ, पुराण विद्या
Muscle —मांसपेशी

N

Narcolepsy —निद्रा-रोग कु भ-कर्णता, अति-निद्रालुता
Naturalism —प्रकृतिवाद
Natural Selection —प्राकृतिक चुनाव, प्राकृतिक वरण
Native —सहज, नैसर्गिक, जन्मजात
Native Intelligence—सहज बुद्धि या सहज प्रज्ञा
Negative —निषेधक, अभावा-त्मक, निषेधात्मक
Nervous-System—नाडी-मडल, तत्रिकातत्र
Neurosity —स्नायु-रोग
Night Blindness —रतौंधी, निशाधता
Non-Voluntary —अनैच्छिक, निरि-च्छिक, अनायास
Normal —प्रसामान्य, प्रकृत, सामान्य
Nursery —शिशु-पाठशाला

O

Object —वस्तु, पदार्थ, विषय, उद्देश्य
Observation —निरीक्षण, प्रेक्षण
Organic —जैविक, आंगिक, ऐंद्रिय
Organism —जीव, अवयव सस्थान

Organic
Structure—आंगिक संरचना
Originality —मौलिकता
Ownership
Feeling—अधिकार-भावना

P

Paper Test —कागज परीक्षा
Parental
Instinct—पुत्र-कामना की मूल-प्रवृत्ति, पितृ प्रवृत्ति
Parallel
Movement—समान्तर गति
Part Mehod —खण्डशः विधि
Passive —निष्क्रिय
Perception —प्रत्यक्ष, प्रत्यक्षण
Performance
Test—क्रिया प्रश्न, क्रियात्मक परीक्षा, निष्पादन परीक्षण
Personality —व्यक्तित्व
Philosophy —दर्शन
Phobia —भीति, डर, दुर्भीति
Physical —शारीरिक, भौतिक
Physically
Handicapped—शारीरिक दोषयुक्त
Physiology —शरीर-क्रिया विज्ञान
Plateau of
Learning—सीखने का पठार
Play —खेल, क्रीडा
Pragmatic —कार्य-साधक
Theory—अभ्यास सिद्धान्त

Preconception —पूर्व-धारणा
Preconscious —पूर्व-चेतना, अग्र-चेतन
Precocious Child—अकाल प्रौढ़ बालक
Presentative —उपास्थक
Prestige-
Suggestion—आप्त निर्देश, प्रतिष्ठा ससूचन
Profile Test —पार्श्व दृश्य-परीक्षा, परिच्छेदिका परीक्षण
Progressive
School—प्रगतिशील विद्यालय
Process —प्रक्रम
Procreation —प्रजनन
Proficiency —प्रवीणता
Prompting Method —उकसाने की रीति, अनुबोधन-प्रणाली
Psycho-Analytic
School—मनोविश्लेषण-वाद
Psychic-
Element—मनस्तत्त्व
Psycho-Analytic
Method—मनोविश्लेषण विधि
Psychology —मनोविज्ञान
,, Abnormal—असामान्य मनोविज्ञान
,, Animal —पशु-मनोविज्ञान
,, Child —बाल-मनोविज्ञान
,, Clinical —नैदानिक मनोविज्ञान

Psychology Educationl —शिक्षा-मनोविज्ञान
" Genetic—जननिक मनोविज्ञान, विकास मनोविज्ञान
" Group—समूह मनोविज्ञान
" Industrial —औद्योगिक मनोविज्ञान
" Objective —वस्तुनिष्ठ मनोविज्ञान
" Social—समाज-मनोविज्ञान
Punishment —दण्ड
Purposeful —साभिप्राय
Purposive —प्रयोजनात्मक, सप्रयोजन

R

Race —जाति-प्रजाति
Race-preservation—प्रजाति-रक्षा
Random Response—अनायास प्रतिक्रिया
Rational —तर्कबुद्धिपरक, युक्त विवेकशील
Reactive —प्रतिक्रियात्मक
Realist —यथार्थवादी
Reasoning —तर्क, तर्कना
Recall —पुनःस्मरण
Recapitulation —सारकथन, पुनरावर्तन
Receptive —आदानात्मक, ग्राही
Recessive —सुप्त
Recognition —मान्यता, प्रत्यभिज्ञान
Recreative Theory—पुनर्प्राप्ति का सिद्धान्त
Redirection —मार्गान्तीकरण
Reflex —सहज-क्रिया, प्रतिवर्त
Regression —प्रतिगमन
Regrouping —पुनर्वर्गीकरण
Relational —सम्बन्ध-पक्ष
Representative —प्रतिनिध्यात्मक, प्रतिरूप
Repression —दमन
Reproductive Organ —जननेन्द्रिय
Repulsion —निवृत्ति, प्रतिकर्षण
Response —प्रतिक्रिया, अनुक्रिया
Retention —धारण, ग्रहण
Retrospection —सिंहावलोकन, पश्चावलोकन
Reverence —श्रद्धा
Revenge —प्रतिशोध, बदला
Reward —इनाम, पुरस्कार
Routine Tendency —आवर्तन प्रवृत्ति

S

Sadism —परपीडन रति
Salpix —डिम्बवाही नली
Sample —प्रतिदर्श, नमूना
Sarcasm —व्यंग्य, ताना
Saving Method—बचाने की रीति, बचत प्रणाली
Scale —माप, मापनी
Scatter —विक्षेप, फैलाव, प्रकीर्णन
Scope —क्षेत्र, विस्तार

Stammerer —हकलाने वाला
Statistics —सख्याशास्त्र, साख्यिकी
Stimulus —उद्दीपन, उत्तेजक
Stimulus Response Theory—उद्दीपन-अनुक्रियावाद, उत्तेजना-अनुक्रियावाद
Structural Psychology—सरचनात्मक मनोविज्ञान
Stuttering —तुतलाना, वाग्वैकल्य
Sublimation —शोधन, परिमार्जन, उदात्तीकरण
Submissiveness—दैन्य, दीनता, दब्बूपन
Suggestion —निर्देश, सुझाव, समूचन
Sucking —चूषण, स्तन्यपान
Super Ego —परम अहम्, अत्यहम्
Superior Child—श्रेष्ठ बालक
Superiority Complex—आत्माभिमान-ग्रन्थि
Surplus Energy Theory—प्रवृद्ध शक्ति का सिद्धान्त, अधिशेष ऊर्जा सिद्धान्त
Substitute Response—स्थानापन्न प्रतिक्रिया
Substitute Stimulus —स्थानापन्न उद्दीपक
Superstition —अन्धविश्वास
Survey —सर्वेक्षण, पर्यवेक्षण
Survival of the Fittest—बलिष्ठ अतिजीविता, योग्यतमावशेष
Symbol —प्रतीक, प्रतिरूप
Sympathy —सहानुभूति
Symptom —लक्षण, चिन्ह
Synthesis —सश्लेषण
Synthetic —सश्लेषणात्मक

T

Tact —चातुर्य
Talent —बुद्धिविभव, मति अभियोग्यता
Teacher-Centered —अध्यापक-केन्द्रित
Technique - प्रविधि, तकनीक
Teasing —चिढाना
Temporal —कालिक, कपालास्थि, कुम्भ
Temperament —स्वभाव, चित्रप्रवृति
Temperature-Spot —तापबिन्दु, तापस्थल
Temperament-Test —स्वभाव-परीक्षा
Tender Emotion —वात्सल्य रस, स्नेह
Tendency —प्रवृत्ति
Tension —तनाव
Terminal Sensivity —चरम सवेदना
Test —परीक्षा, परीक्षण
Testimony —साक्ष्य, शब्द-प्रमाण
Theory —सिद्धान्त, वाद
Thinking —चिन्तन, विचारण
Thinking Type—स्वर सम्बन्धी

tic	—विषैला
dition	—परम्परा
it	—गुण, विशेषक
ining	—प्रशिक्षण, शिक्षा
ining- Aesthetic	—सौंदर्य-बोध प्रशिक्षण
ansfer of Training	—शिक्षा का स्थानान्तरण
ansformation	—रूपान्तरण
ansmission	—सक्रमण, सचारण
end	—झुकाव, प्रवृत्ति, उपनति
Scale	—परीक्षण मापनी
ansitoriness of Instincts	—मूल-प्रवृत्ति का अस्थायीपन
ial and Error	—प्रयास एव त्रुटि
win	—जुडवाँ बालक, यमज
wo-Aspect Theory	—द्विपक्ष सिद्धान्त

U

Ultimate Value	—अन्तिम मूल्य
Unconscious-Self	—अज्ञात चेतना
Unilateral	—एक-पक्षीय
Urge	—अन्त.प्रेरण
Utility	—उपयोगिता

V

Validity	—वैधता, प्रामाण्य
Value	—मूल्य
„ Educational	—शैक्षिक मूल्य
Value Vocational	—व्यावसायिक मूल्य
Varied Response	—विविध अनुक्रिया
Verbal Ability	—शाब्दिक योग्यता
Verbiage	—शब्दाडम्बर
Visual	—दृष्टि-सम्बन्धी
Visual Span	—दृष्टि-विस्तृति
Vividness	—प्रबलता, स्पष्टता
Vocational Guidance	—व्यावसायिक निर्देशन
Vocational Selection	—व्यावसायिक वरण
Volition	—सकल्प
Voluntary	—ऐच्छिक

W

Weariness	—क्लान्ति
Weight	—भार, बल
Will	—इच्छा-शक्ति, सकल्प शक्ति
Whirl Sensation	—घूर्णन सवेदन
White Matter	—श्वेत द्रव्य
Whole Method	—समग्र विधि
Witch Craft	—अभिचार
Withdrawal	—प्रत्याहरण
Work Curve	—कार्य-वक्र
Worry	— चिन्ता, आकुलता

Y

Yellow Spot	—पीत स्थल

Z

Zygotes	—भ्रूणकोष, युग्मनज
Zone	—कटिबन्ध, प्रदेश, क्षेत्र
Zenith	—शिरोबिन्दु

सहायक पुस्तकों की सूची

अग्रवाल, ए० : फाउन्डेशन्स फॉर साइन्स ऑफ पर्सनेलिटी, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १९३८।

अग्रवाल, आर० एन० मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर, १९६३।

अनास्तासी, ए० : साइकोलॉजिकल टेस्टिंग, एन० वाई०, मैकमिलन १९५२।

अब्राहम, डब्ल्यू० : ए गाइड फॉर द स्टडी ऑफ एक्सेप्शनल चिल्ड्रन, पार्टर सार्जेन्ट, बोस्टन, १९५६।

आर्यानायकम, ई० डब्ल्यू० दि स्टोरी ऑफ ट्वेल्व ईयर्स सेवाग्राम, इण्डिया, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, १९४९।

आरसेनियन, एस० . बाइलिंग्वलिज्म एण्ड मेण्टल डेवलपमेण्ट टीचर्स कॉलिज. ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन्स, नं० २९, १९३७।

आलपोर्ट, जी० डब्ल्यू : एटीट्यूड्स—ए हैण्डबुक ऑफ सोशल साइकोलॉजी, वोर-सेसटर मास, क्लेक यूनीवर्सिटी प्रेस, १९३५।

आलपोर्ट, जी० डब्ल्यू० : ए साइकोलॉजिकल इन्टरप्रिटेशन हेनरी हॉल्ट, न्यूयार्क।

एडमेन्सटन, आर० डब्ल्यू० एण्ड ब्रेडूक, आर० डब्ल्यू ए स्टडी ऑफ दि इफेक्ट ऑफ वेरियस टीचिंग प्रोसीजर्स अपोन आब्जर्व्ड ग्रुप अटेन्शन इन द सेकेण्डरी स्कूल, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, ३२ : ६६५-६७२, १९४१।

एडम्स जारजिया, एस० एण्ड टोरगरसन, टी० एल० मेजरमेन्ट एण्ड इवैलुएशन्स फार द सेकेण्ड्री स्कूल, ड्रायडन, न्यूयार्क, १९५६।

एण्डर्सन, आई० ई० : दि साइकोलॉजी ऑफ डेवलेपमेन्ट एण्ड पर्सनल एडजस्टमेन्ट, हेनरी हॉल्ट एण्ड क०, न्यूयार्क, १९४७।

ए मैनुअल ऑफ एजूकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस—मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, १९५७।

एलपोर्ट, एफ० एच० : सोशल साइकोलॉजी, वोस्टन, हॉफटन मिफलिन, १९२४।

एस्क, एस० ई० : सोशल साइकोलॉजी, एन० वाई, प्रेन्टिस हॉल, १९५२।

ऐरिक्सन, सी० ई० . ए प्रेक्टीकल हैण्डबुक फॉर स्कूल कॉउन्सलर्स, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क, १९४९।

ऐगन, एम० ई० : साइकोलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ एजूकेशन, हार्स्ट, १९५४।
ओर्टा, पी० टी० : दि थ्यौरी ऑफ आइडेन्टिकल एलीमेन्ट्स, कोलम्बस ओहियो स्टेट, यूनीवर्सिटी प्रेस, १९२८।
ओसबोर्न, ई० जी० के० : पेरेण्ट एण्ड चाइल्ड्स एन० वाई०, एसोसियेशन प्रेस।
ओडेल, सी० डब्ल्यू० : हाऊ टु इम्प्रूव क्लास-रूम टेस्टिंग, विलियम सी० ब्राउन।
औलसन, डब्ल्यू० सी० : चाइल्ड डेवलपमेंट, डी० सी० हीथ एण्ड क०, बोस्टन।
क्रोनबेक, टी० जे० : एसेन्शियल्स ऑफ साइकोलॉजिकल टेस्टिंग, हार्पर, न्यूयार्क, १९६०।
क्रोनबेक, एल० जे० : एजूकेशनल साइकोलॉजी, हारकोर्ट ब्रेस, न्यूयार्क, १९५४।
कॉट्ज डी० : गेस्टाल्ट साइकोलॉजी—इट्स नेचर एण्ड सिग्नीफिकेन्स, एन० वाई०, दि रोनाल्ड प्रेस, १९५०।
काट्ज, डी० एण्ड आलपोर्ट, एफ० एच० : स्टूडेन्ट्स एटीट्यूड्स, क्रॉफ्ट्स मेन, प्रेस सीरीज, एन० वाई०, १९३१।
कॉफका, के० : प्रिंसिपिल्स ऑफ गेस्टाल्ट साइकोलॉजी, एन० वाई०, हारब्रेस, १९३५।
कॉमन्स, डब्ल्यू : प्रिंसिपिल्स ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, दि रोनाल्ड प्रेस क०, न्यूयार्क, १९४२।
किंगस्ले, एच० एल० : दि नेचर एण्ड कण्डीशन्स ऑफ लर्निङ्ग, प्रेन्टिस हाल, एन० वाई०, १९४६।
किलपेट्रिक, डब्ल्यू० एच० : फाउण्डेशन्स ऑफ मेथड, दि मैकमिलन क०, १९२५।
केथल, आर० बी० : गाइड टु मेन्टल टेस्टिंग, लॉर्ड, यूनी० ऑव लॉर्ड प्रेस, १९४८।
केनन, डब्ल्यू० बी० : बोडीली चेन्ज इन पेन, हङ्गर, फियर एण्ड रेंग, (द्वितीय संस्करण), डी० एपलेटन एण्ड क०, १९२९।
केली, टी० एल० : इण्टरप्रिटेशन ऑफ एजूकेशनल मेजरमेंट, वर्ल्ड बुक कं०, १९३९।
कैटेल, आर० बी० : पर्सनेलिटी—ए सिस्टेमेटिक, थ्योरेटिकल एण्ड फेक्चुअल स्टडी, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १९५०।
कैनेडी फ्रेजर, ए० एण्ड फ्रेजर, डी० : एजूकेशन ऑफ दि बेकवर्ड चाइल्ड, एपलेटन, न्यूयार्क, १९३२।
कैरेटश्नर, ई० : फिजीक एण्ड कैरेक्टर, हारकोर्ट ब्रेस, न्यूयार्क, १९२५।
कैरोल, एच० ए० : मेन्टल हाइजीन, प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क, १९२७।
कोरे, स्टीफेन एम० : ऐक्शन रिसर्च टु इम्प्रूव स्कूल प्रेक्टिसेज, एन० वाई०, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन, टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १९५३।
. एण्ड ब्रूस : एजूकेशनल साइकोलॉजी, वर्ल्ड बुक कम्पनी, न्यूयार्क, १९५०।
[illegible], डब्ल्यू : गेस्टाल्ट साइकोलॉजी, एन० वाई०, लेवरिस्ट पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, १९२९।
क्रानबेक, एल० जे० : एसेन्शियल्स ऑफ साइकोलॉजिकल टेस्टिंग, हॉर्पर, १९४९।

फ्रज, डब्ल्यू० डब्ल्यू० : एजूकेशनल साइकोलॉजी, दि रोनाल्ड प्रेस क०, न्यूयार्क ।
फ्रेंच, डी० एण्ड क्रचफील्ड, आर० एस० थ्योरी एण्ड प्रोबलम्स ऑफ सोशल साइकोलॉजी, एन० वाई०, मैक-ग्रो हिल, १९४८ ।
क्रो, एल० डी० एण्ड एलिस क्रो : मेण्टल हाईजीन, मैक-ग्रो, न्यूयार्क १९५५ ।
क्रो० एल० डी० एण्ड एलिस क्रो एजूकेशनल साइकोलॉजी, अमेरिकन बुक क०, न्यूयार्क ।
क्रो, एल० डी० एण्ड क्रो०, ए० आवर टीन-एज बॉयज एण्ड गर्ल्स, मैक-ग्रो हिल, न्यूयार्क, १९४५ ।
क्रो०, एल० डी० एण्ड एलिस क्रो एन इन्ट्रोडक्शन टू गाइडेंस, अमेरिकन बुक क०, न्यूयार्क, १९५१ ।
क्रो और क्रो : एजूकेशनल साइकोलॉजी अमेरिकन बुक क०, न्यूयार्क, १९५६ ।
खजेनगॅर, जी० सी० हेरिडिटी एण्ड एनवाइरनमेन्ट, मैकमिलन एण्ड क०, न्यूयार्क ।
गॉल्टन, फ्रान्सिस : हेरिडिटो जर्म्स, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, १८६६ ।
ग्रिफिथ, कोलमैन आर० इन्ट्रोडक्शन टू एजूकेशनल साइकोलॉजी, दि रोनाल्ड प्रेस क०, न्यूयार्क, १९५० ।
गिलफोर्ड, जे० पी० . फण्डामेण्टल स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन, मैक-ग्रो हिल, १९५० ।
गिलीलैंड, ए० आर० और क्लार्क ई० एम० साइकोलॉजी ऑफ इण्डिवीजुअल डिफरेन्स, प्रेन्टिस हाल न्यूयार्क, १९३९ ।
ग्रीन, ई० बी मेजरमेन्ट ऑफ ह्यूमन बिहेवियर, ओडेसी प्रेस, न्यूयार्क, १९५२ ।
ग्रीन, एच० ए०, ए० एन० जोगरसन एण्ड जरवेरिच जे० आर० मेजरमेन्ट एण्ड इवेलुएशन इन दि ऐलीमेन्ट्री स्कूल, लागमैन्म, न्यूयार्क, १९५३ ।
ग्रीन, एच० ए० इत्यादि मेजरमेन्ट एण्ड इवेलुएशन इन द सेकेण्ड्री स्कूल, लांगमैन्स, न्यूयार्क, १९५४ ।
गुडएनफ, एफ० एल० एण्ड ब्राउन, सी० आर० सर्टेन फैक्टर्स अण्डरलाइंग दि एम्युजिशन ऑफ मोटर स्कूल बाई प्री-स्कूल चिल्ड्रन, जरनल ऑफ एक्सपेरिमेण्टल साइकोलॉजी ।
गुडनबॅग, एफ० एल : एड्जर इन यङ्ग चिल्ड्रन, यूनीवर्सिटी ऑव मिनीपोलिस प्रेस, इन्स्टीट्यूट ऑफ चाइल्ड वेल्फेयर, मोनोग्राफ सीरीज, न० ९ ।
गुड्मेन, डी० जे० : कम्परेटिव इफेक्टिवनेस ऑफ पिक्टोरियल टीचिंग एड्स, जरनल ऑफ एक्सपेरिमेन्टल एजूकेशन, १२ : २०-२९, १९४३ ।
गुड्मेन, डी० जे० : एक्सपेरिमेण्टल रिसर्च इन ऑडो विजुअल एजूकेशन, एजूकेशनल स्क्रीन, २३ : २६२-२६३, १९४४-४५ ।
गुडनबॅग, एफ० एल० : मेन्टल टेस्टिग, रैनहार्ट एण्ड क०, न्यूयार्क, १९४९ ।
गुथरी, ई० आर० एण्ड हॉर्टन, जी० पी० : कैट्स इन ए पजिल बॉक्स, रैनहार्ट ।
गुथरी, ई० आर० : दि साइकोलॉजी ऑफ लर्निङ्ग, एन० वाई०, हार्पर, १९३५ ।

परी, ई० आर० एण्ड फ्रांसिस पावर्स एजूकेशनल साइकोलॉजी, एन
रोनाल्ड, १६५० ।
लिकसेन, एच० : थ्योरी ऑफ मेण्टल टेस्ट्स, एन० वाई०, जॉन विली, १६
रेट, एच० ई० : साइकोलॉजी, एन० वाई०, अमेरिकन बुक क०, १६४६
सेल, ए० एल० : जीनियस, गिफ्टेडनेस एण्ड ग्रोथ : एन स्टडी इन
डेवलपमेण्ट, हार्पर, न्यूयार्क, १६४८ ।
रिमन, के० सी० · दि साइकोलॉजी ऑफ एक्सेप्शनल चिल्ड्रन, रोन
न्यूयार्क, १६५० ।
ट्स, ए० आई० (एड०) एजूकेशनल साइकोलॉजी, दि मैकमिलन, १६५५
ट्स, जी० एम० : एन आब्जरवेशनल स्टडी ऑफ एड्गर, जरनल ऑफ एक्स
साइकोलॉजी, १६ (१६२६), ३२५-३३६ ।
गिल, ए० : मेच्यूरेशन एण्ड दि पैटर्निंग ऑफ बिहेवियर—ए हैण्डबुक ऑफ
साइकोलॉजी, वोरवेस्टर, मास क्लार्क यूनीवर्सिटी प्रेस, १
सैल, ए० एल० एण्ड एलग एफ० एच० . दि चाइल्ड फ्रॉम फाइव टू
एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, १६४६ ।
सैल, ए० एल० एण्ड थॉमसन, एच० : दि साइकोलॉजी ऑफ अर्ली
मैकमिलन क० न्यूयार्क, १६३८ ।
गोडार्ड, एच० एच० दि कालीकाक फेमिली, मैकमिलन कं०, न्यूयार्क, १६१
चैम्बरलैन, एच० ई० एण्ड ग्रोवनेज, ई० डी० नाइन प्रोग्राम्स फॉर द प्रमो
मेण्टल हेल्थ इन कम्युनिटी प्रोग्राम्स फॉर मेण्टल हेल्थ,
मास, हार्वर्ड १६५५, ४६–१५७ ।
चौबे, एस० पी० : मनोविज्ञान और शिक्षा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
जैड, सी० एच० . एजूकेशनल साइकोलॉजी, बोस्टन, मिफलिन, १६३६ ।
जैड, सी० एच० : एजूकेशन एज द कल्टीवेशन ऑफ द हायर मेण्टल
एन० वाई०, मैकमिलन, १६३६ ।
जैड, सी० एच० साइकोलॉजी ऑफ सोशल इन्स्टीट्यूशन्स, मैकमिलन, १६२
जस्तु, एफ० ए० : जैनेटिक स्टडी ऑफ लाफ्टर प्रवोकिंग स्टिमुलाइ, चाइल्ड
मेण्ट, ३ (१६३२) ११४-१३६ ।
जर्सील्ड, ए० टी : चाइल्ड साइकोलॉजी, प्रेन्टिस हॉल, न्यूयार्क, १६५४ ।
. ए० टी० एण्ड होम्स, एफ० बी० : चिल्ड्रन्स फियर, ब्यूरो ऑफ प
टीचर्स कॉलिज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी

जर्सील्ड, ए० टी० एण्ड रॉस, आर० जे० : चिल्ड्रन इन्टेरेस्ट्स एण्ड ह्वाट दे सजेस्ट फॉर एजूकेशन, न्यूयार्क, हार्समन लिंकन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्कूल एक्सपेरिमेन्टेशन, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १९४४।

जाकरी, सी० : इमोशन एण्ड कण्डक्ट इन एडोलेसेन्स, एपलेटन सेन्चुरी क्राफ्ट्स, न्यूयार्क, १९४०।

जार्डन, ए० एम० : मेजरमेंट इन एजूकेशन, मैक-ग्रो न्यूयार्क।

जार्डन, ए० एम० . एजूकेशनल साइकोलॉजी, हेनरी हाल्ट, न्यूयार्क, १९५६।

जॉन्स, एच० ई० रिलेशनशिप इन फिजिकल एण्ड मेण्टल डेवलपमेण्ट, रिव्यू ऑफ एजूकेशनल रिसर्च—९ ९१–१०२, १९३९।

जॉन्स, एच० ई० एण्ड सीशोर, आर० एच० दि डेवलपमेण्ट ऑफ फाइन मोटर एण्ड टेक्निकल एबिलिटीज, ईयर बुक ऑफ द नेशनल सोसाइटी फॉर एजूकेशन—४३ : १२३–१४५, १९४४।

जॉन्स, वी० . कैरेक्टर एजूकेशन—एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, न्यूयार्क, मैकमिलन, १९६०।

जेक्स, डब्ल्यू० ए० एफ० . मेण्टल एण्ड स्पेशल एजूकेशन, वाशिंगटन, डी० सी०, कैथोलिक यूनीवर्सिटी प्रेस, १९५७।

जेंकिन्स, डेविड एच० एण्ड लिप्पी, एम० रोनाल्ड इण्टरपर्सनल परसेप्शन्स ऑफ टीचर्स, स्टूडेन्ट्स एण्ड पेरेन्ट्स वाशिंगटन, डी० सी०, डिवीजन ऑफ एडल्ट एजूकेशन सर्विस, नेशनल एजूकेशन एसोसियेशन, १९५१।

जेनिंग्स, एच० एस० : जेनेटिक्स डब्ल्यू० डब्ल्यू० नॉर्टन एण्ड क०, न्यूयार्क, १९३५।

जेनिंग्स, एच० एस० बायोलॉजीकल बेसिक ऑफ ह्यूमन नेचर, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नॉर्टन एण्ड क०, १९३०।

जोन्स, ए० जे० . प्रिंसिपिल्स ऑफ गाइडेन्स, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १९५१।

टवा, हिल्दा दि पर्सपेक्टिव ऑन ह्यूमन रिलेशन्स वाशिंगटन, डी० सी०, अमेरिकन कौंसिल ऑफ एजूकेशन, १९५५।

टवा, हिल्दा एण्ड होइल, एलिजाबेथ ऐक्शन रिसर्च : ए केस स्टडी, वाशिंगटन, डी० सी०, एसोसियेशन फॉर सुपरवीजन एण्ड करीकुलम डेवलपमेंट, ए डिपार्टमेंट ऑफ द नेशनल एजूकेशन एसोसियेशन, १९५७।

टरमैन . इन्टेलिजेन्स—इट्स मेजरमेन्ट ए सिम्पोजियम, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, १९२१—१२७, १२, ३३।

टरमैन, एल० एम० एण्ड मेरिल एम० ए० मेजरिंग इन्टेलिजेन्स, हॉफ्टन मिफलिन, बोस्टन, १९३७।

टरमैन, एल० एम० एण्ड ओडन एन० एच० दि गिफ्टेड चाइल्ड ग्रोज अप, स्टैनफोर्ड, स्टेनफोर्ड प्रेस, १९४७।

ट्रॉ, डब्ल्यू० सी० : एजूकेशनल साइकोलॉजी, (रिवाइज्ड एडीशन), हॉग्टन मिफलिन कम्पनी, बोस्टन, १९६० ।

ट्रेवर्स, आर० एम० डब्ल्यू० : एजूकेशनल मेजरमेंट, एन० वाई०, मैकमिलन, १९५५ ।

डन्केल, एच० बी० : एन इनवेन्टरी ऑफ स्टूडेन्ट्स जनरल गोल्स इन लाइफ, एजूकेशनल साइकोलॉजिकल मेजरमेन्टस, ४ : ८७-९५, १९४४ ।

डन्फी, मेक्साइन एण्ड प्रीनली, जुनीयन . ऐलीमेन्टरी स्कूल साइन्स : रिसर्च थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, वाशिंगटन, डी० सी०, एसोसियेशन फॉर सुपरवीजन एण्ड करीकुलम डेवलपमेन्ट, ए डिपार्टमेंट ऑफ द नेशनल एजूकेशन एसोसियशन, १९५७ ।

डम्बिल : दि फण्डामेन्टल्स ऑफ द साइकोलॉजी अध्याय ४, ५ ।

डेवी, जॉन : इन्टेरेस्ट एण्ड एफर्ट इन एजूकेशन, एजूकेशनल मोनोग्राफ्स, बोस्टन, हाफटन मिफलिन, १९१३ ।

डिजनर्स, सी० एन० एण्ड जे० वाण्ड : एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी ऑफ मोटीवेशन, साइकोलॉजिकल बुलेटिन, २८ : १, (१९३१) १५-६६ ।

डियरबोर्न, डब्ल्यू० एफ० एण्ड रोदनी, जे० डब्ल्यू० एच० प्रीडक्टिंग द चाइल्ड डेवलपमेन्ट, केम्ब्रिज, मास, साइन्स-आर्टस पब्लिशर्स, १९४१ ।

डीट्ज, ए० जी० एण्ड जोन्स, जी० ई० ' फैक्चुअल मेमोरी ऑफ सेकेण्डरी स्कूल . पीपुल्स फॉर ए शार्ट आर्टीकल विच दे रीड ए सिंगल टाइम, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, २२ ' ५८६-५९८, ६६६-६७६, १९३१ ।

डेवी, जे० : हाऊ टू थिंक, डी० सी० हीथ, बोस्टन, १९३३ ।

डेट्सके, जे० एच० : दि डेवलपमेण्ट ऑफ चिल्ड्रन कॉन्सेप्ट्स ऑफ कंजुअल रिलेशन्स, यूनीवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा प्रेस, १९३७ ।

डेलेन्थवेन्सी एण्ड द स्कूल्स . फोर्टी सेविन्थ ईयर बुक (भाग १), यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, १९४८ ।

ड्रेवर : एन इन्ट्रोडक्शन टु द साइकोलॉजी ऑफ एजूकेशन ।

डेविड केनेडी फ्रेगर : दि साइकोलॉजी ऑफ एजूकेशन, सैक्शन १, अध्याय १, ३ ।

डेविस, आर० ए० : साइकोलॉजी ऑफ लर्निङ्ग, मैकग्रो हिल, एन० वाई०, १९३५ ।

डेशील, जे० एफ० : फण्डामेण्टल्स फ्रॉम आब्जेक्टिव साइकोलॉजी, बोस्टन, १९२८ ।

ड्रेसल पाल, एल० : इवेलुएशन इन जनरल एजूकेशन, डूटवूग, आइव, ब्राउन, १९५४ ।

डैरियल, जे० एफ० ' फण्डामेन्टल्स ऑफ जनरल साइकोलॉजी, बोस्टन, १९३७ ।

डोज, आर० : कण्डीशन्स ऑफ ह्यू मन वेरियेबिलिटी, न्यूहेवन, भाले यूनी० प्रेस ।

थॉर्नडाइक, आर० एल० : कॉन्स्टेन्सी ऑफ आई० क्यू०, साइकोलॉजिकल बुलेटिन, XXXVII (१६७, १६८), मार्च १९४८ ।

[illegible]नंडाइक, आर० एल० एण्ड हजेन, ई० : मेजरमेंट एण्ड एवेलुएशन इन साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन, एन० वाई०, जान विली, १९५५ ।

थॉर्नडाइक, ई० एल० एजूकेशनल साइकोलॉजी : द ऑरिजिनल नेचर ऑफ मैन, टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १९१३ ।

थॉर्नडाइक, ई० एल० एजूकेशनल साइकोलॉजी ब्रीफर कोर्स, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन्स, टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १९१६ ।

थॉर्नडाइक, ई० एल० एडल्ट इन्टेरेस्ट्स, मैकमिलन क०, एन० वाई०, १९३५ ।

थॉर्नडाइक, ई० एल० (ईटम) दि मेज़रमेंट ऑफ इन्टेलिजेन्स, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन्स, टीचर्स कॉलिज, कोलम्बिया यूनी०, १९२७ ।

थॉर्नडाइक, ई० एल फण्डामेन्टल्स ऑफ लर्निङ्ग, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन्स, टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १९३२ ।

थॉर्नडाइक, ई० एल० सिलेक्टेड राइटिंग्स फ्रॉम ए कनेकनिस्ट्स साइकोलॉजी, एपलेटन-सेन्चुरी क्राफ्ट, १९४९ ।

थॉर्नडाइक, एल० एल० प्राइमरी मेन्टल एबिलिटीज, यूनी० ऑफ शिकागो, शिकागो प्रेस, १९३८ ।

थोर्पे, एल० पी० चाइल्ड साइकोलॉजी एण्ड डेवलपमेन्ट, दि रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क ।

न्यूकाम्ब, टी० एम० सोशल साइकोलॉजी, एन० वाई०, दि ड्राइडेन प्रेस, १९५० ।

न्यूमर, ई० वी० : फॉरगेटिंग ऑफ मीनिंगफुल मेटेरियल ड्यूरिंग स्लीप एण्ड वेकिंग, अमेरिकन जरनल ऑफ साइकोलॉजी, ५२ : ६५-७१, १९३९ ।

न्यूमॉन्ट, एच० एण्ड एफ० जी० मैकआइवर . साइकोलॉजिकल फैक्टर्स इन एजूकेशन, मैकग्रो-हिल, न्यूयार्क, १९४९ ।

न्यूमैन, ई० दि साइकोलॉजी ऑफ लर्निङ्ग, एपलेटन सेन्चुरी, १९१३ ।

न्यूमैन, एच० एच०, फ्रैंक, एन० एफ० एण्ड अदर्स : ट्विन्स—ए स्टडी ऑफ हेरेडिटी एण्ड एनवाइरनमेंट, यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, १९३७ ।

नॅन, टी० पी० : एजूकेशन . इट्स डेटा एण्ड फर्स्ट प्रिंसिपिल्स ।

नॅन, बोरमैन एल० साइकोलॉजी, बोस्टन, हाफटन मिफलिन कम्पनी, १९५१ ।

नेशनल सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ एजूकेशन, जुवेनाइल ।

पावर्स, फ्रांसिस एफ० : कैरेक्टर ट्रेनिंग, ए० एस० बीन्स, १९५२ ।

पीगेट, जीन : दि साइकोलॉजी ऑफ इन्टेलिजेन्स हर्कोर्ट ब्रेस, न्यूयार्क, १९५० ।

पेस्ट्सन, एच० ए० : रिटेन्शन एण्ड रिकॉल ऐज ए फैक्टर इन द लर्निङ्ग ऑफ प्रोज सलेक्शन्स, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, ५५ : २२०-२९८, १९४४ ।

प्रेसे, एस० एल० एण्ड रोवर्सन, एफ० पी० : साइकोलॉजी एण्ड द न्यू एजूकेशन, हॉर्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, १९४४ ।

फ्लॉइड, एच० एल० : साइकोलॉजी एण्ड लाइफ (तृतीय संस्करण), स्कॉट फारेजमैन एण्ड कम्पनी, शिकागो, १९४८ ।

फर्फे, बी० एच० : दि ग्रोइङ्ग बॉय, मैकमिलन क०, १९३० ।

फर्स्ट, ई० डब्ल्यू : कान्स्ट्रक्शन ऑफ इवेलुएशन इंस्ट्रूमेन्ट्स, लागमैन्स, न्यूयार्क ।

फ्रायड, एस० : प्रोब्लम ऑफ एंजाइटी, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नॉर्टन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, १६३६।

फुलगर, एच० जो० इत्यादि : रीडिंग्स फॉर एजूकेशनल साइकोलॉजी, एन० वाई०, थॉमस वाई० क्रावेल क०, १६५६।

फेलिक्स, आर० एस० : ए० बुकशेल्फ ऑन मेण्टल हेल्थ, अमेरिकन जरनल ऑफ पब्लिक हेल्थ, ४३ (अप्रैल १६५६), ३६७-४०७।

फैकल्टी ऑफ दि यूनीवर्सिटी स्कूल : हाउ चिल्ड्रन डेवलप, कोलम्बिया सीरीज नं० ३, ओहियो स्टेट यूनीवर्सिटी, १६४६।

फोर्थ मेण्टल हेल्थ काग्रेस ऑन मेण्टल हेल्थ, प्रोसीडिंग्स, कोलम्बिया, न्यूयार्क, १६५२।

फोशे, आर्थर डब्ल्यू०, वान, कैनेथ, डी० एण्ड एसोसिएट्स : चिल्ड्रन्स सोशल वेल्यूज : एन ऐक्शन रिसर्च स्टडी, एन० वाई०, ब्यूरो ऑफ पब्लिकेशन्स, टीचर्स कालेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १६५४।

फ्रीमैन, एफ० एन० : मेन्टल टैस्ट्स, हाफटन मिफलिन, बोस्टन, १६३६।

फ्रीमैन, एफ० एन० : इन्फ्लुएन्स ऑफ एनवायरनमेन्ट ऑन दि इन्टैलिजेन्स स्कूल अचीवमेण्ट एण्ड कन्डक्ट ऑफ फोस्टर चिल्ड्रन, ट्वेन्टी-सेविन्थ ईयर बुक, नेशनल सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ एजूकेशन, ब्लेमिंग्टन, III, पब्लिक स्कूल पब्लिशिंग क०, १६२८।

फ्रीमैन, एफ० एस० : मेन्टल टैस्ट्स—देअर हिस्ट्री, प्रिन्सिपिल्स एण्ड एप्लीकेशन्स, बोस्टन, मिफलिन, १६३६।

फ्रीमैन, एफ० एस० : थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ साइकोलॉजी टैस्टिंग, होल्ट, १६५३।

फ्रीमैन, एफ० एस० : इण्डिवीजुअल डिफरेंस : दि नेचर एण्ड कॉजेज ऑफ वेरियेशन इन इन्टेलिजेन्स एण्ड स्पेशल एबिलिटीज, हेनरी हॉल्ट, न्यूयार्क, १६३४।

फ्रेजर, जी० एम० एण्ड ई० आर० हेनरी : हेण्डबुक ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी, रिनीबर्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, १६५०।

फ्रेजर : मेजरमेन्ट्स ऑफ इन्टेरेस्ट्स, एन० वाई०, हेनरी हाल्ट, १६३१।

फ्रेसर, डैविड कैनेडी : दि साइकोलॉजी ऑफ एजूकेशन, लार्ड मैथ्यू एण्ड कम्पनी।

फ्रोले, जी० एच० सी० : एक्सेपेरिमेन्ट्स दि इफैक्ट ऑफ रिपीटिड प्रेज एण्ड ब्लेम ऑन द परफोरमेन्स ऑफ इन्ट्रोवर्ट्स एण्ड एक्सट्रोवर्ट्स, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, २८ (१६३७), ६२-१००।

ब्लैयर, जोन्स, सिम्पसन : एजूकेशनल साइकोलॉजी, मैकमिलन, १६६२।

बर्ट सी० : दि डेवलपमेन्ट ऑव रीजनिंग इन चिल्ड्रन, जरनल ऑव एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी, ५, ६८, ७७, १२१-१२७, १।

[illegible] : दि यंग डेलिन्क्वेन्ट, लन्दन यूनी०, लन्दन, १६३७।

[illegible] : दि सबनार्मल माइण्ड, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १६३७।

बर्ट, सी० एल० : मेण्टल एण्ड स्कूलास्टिक टैस्ट्स, स्टैविल्स प्रेस, न्यूयार्क, १६४७।
वर्टोन, डब्ल्यू० एच० : गाइडेन्स ऑफ लर्निङ्ग एक्टिविटीज, एपलेटन सेन्चुरी।
बर्नहर्डट, के० एस० : प्रेक्टीकल साइकोलॉजी, मैकग्रो हिल, १६५३।
ार्डि, एच० डब्ल्यू० : मेन्टल हाइजीन फॉर क्लास-टीचर्स, मैक-ग्रो, न्यूयार्क।
ाकओवर, डब्ल्यू० बी० एण्ड सोशलॉजी ऑफ एजूकेशन, अमेरिकन बुक क०, न्यूयार्क, १६५५।
ाुम, एम० एल० एव बैकिन्सकी, बी० काउन्सिलिंग एण्ड साइकोलॉजी, प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क, १६५१।
ाूलर, सी० : दि फर्स्ट ईयर ऑफ लाइफ, जॉन डे कम्पनी, न्यूयार्क, १६३०।
ायन्टन, पी० एल० साइकोलॉजी ऑफ चाइल्ड डेवलपमेण्ट इन चिल्ड्रन, यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, १६३०।
ायन्टन, पी० एल० एण्ड मैक-ग्रो बी० एच करैक्टेरिस्टिक्स ऑफ प्रोब्लम-चिल्ड्रन, जरनल ऑफ जुवेनाइल रिसर्च, XVIII 4 (१६३४)।
ायन्टन, पी० एल० : साइकोलॉजी ऑफ चाइल्ड डेवलपमेन्ट, अध्याय ५ और १४, एजूकेशनल पब्लिशर्स, मीनेपोलिस, १६३८।
ानडूरा, वाल्टरस : सोशल लर्निङ्ग एण्ड पर्सनैलिटी डेवलपमेन्ट, हाल्ट, १६६३।
ाउन, एफ० जी० : एजूकेशनल साइकोलॉजी, एन० वाई०, प्रेन्टिस हाल, १६४७।
ाउन, एफ० जे० . दि सोशियोलॉजी ऑफ चाइल्डहुड, प्रेन्टिस हाल, एन० वाई०।
ाउन, एफ० जे० : नॉलेज ऑफ रिज़ल्ट्स ऐज़ एन इनसेन्टिव इन स्कूल-रूम प्रेक्टिस, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, २३ (१६३२), ५३२, ५५२।
ा, हृन्ट साइकोलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ एजूकेशन, हार्पर, १६६२।
ाजज, के० एच० बी० इमोशनल डेवलपमेन्ट इन अर्ली इनफंसी, चाइल्ड डेवलपमेन्ट, (३२४-३३४), १६३२।
ाच, एफ० . दि इण्डिवीज्युल फ्रॉम कन्सेप्शन टू कन्सेप्च्युलाइजेशन, विल्सन, जे० टी० (एडीटर) . करैन्ट ट्रेन्ड्स इन साइकोलॉजी एण्ड बिहेवियरल साइन्सेज़, यूनीवर्सिटी ऑफ पिट्सवर्ग प्रेस, १६५४।
ावर्स, सी० डब्ल्यू० : ए माइण्ड दैट फाउण्ड इटसैल्फ, डबल-डे, न्यूयार्क, १६४८।
डवर्थ, आर० एस० और डी० जी० मार्क्विस : साइकोलॉजी (पाँचवाँ संस्करण), एन० वाई, हेनरी हॉल्ट एण्ड कम्पनी, १६४७।
वर मेयर, एल० एल० : एन इन्ट्रोडक्शन टू रिफलेक्टिव थिंकिंग, मिफलिन, १६२३।
ाम बाड, एफ० एन० : स्टिमुलाइ हैविङ्ग बॉज़ लोप्टर इन चिल्ड्रन, पी० एच-डी० डिसरटेशन, एन० वाई०, न्यूयार्क यूनीवर्सिटी, १६३६।
ाुस, आर० डब्ल्यू : कन्डीशन्स ऑफ ट्रान्सफर ऑफ ट्रेनिंग, जरनल ऑफ एक्सपैरिमेन्टल साइकोलॉजी, १६ (१६३३), ३४२-६३।

ब्रूम, डब्ल्यू० एम० एण्ड फ्रीमैन, एफ० एम० : डेवलपमेन्ट एण्ड लर्निङ्ग, हेनरी हॉल्ट, न्यूयार्क, १६४२ ।

ब्रेकेनरिज, एम० ई० एण्ड विनसेन्ट, ई० एम० : चाइल्ड डेवलपमेन्ट, अध्याय १-२, डब्ल्यू० बी०, साउण्डर कं०, फिलाडेल्फिया, १६४३ ।

ब्रेनर, बी० : इफेक्ट ऑफ इमीजिएट एण्ड डीलेड प्रेस एण्ड ब्लेम अपोन लर्निंग एण्ड रिकाल, एन० वाई०, टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, १६३४ ।

ब्रेसी० डब्ल्यू . ट्रान्सफर ऑफ लर्निंग, जरनल ऑफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी (१६२८), ४४३-४६७ ।

बेकर, एच० जे० : इन्ट्रोडक्शन टु एक्सेप्शनल चिल्ड्रन, मैकमिलन, न्यूयार्क, १६४४ ।

बेनेडिक्ट, रुथ · पैटर्न्स ऑफ कल्चर, बोस्टन, हापटन मिफलिन, १६३४ ।

बैलार्ड, पी० बी० · मेन्टल टैस्ट्स, लन्दन, यूनी० ऑफ लन्दन प्रेस ।

बैले, एन० · मेन्टल ग्रोथ इन यंग चिल्ड्रन, थर्टी-नाइन ईयर बुक नेशनल सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ एजूकेशन, पार्ट II, पृ० १८, १० ।

बोडे, बी० एच० : हाऊ वी लर्न, हीथ, १६४० ।

बोरिंग, ई० जी० ए हिस्ट्री ऑफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी, एन०, वाई०, एपलेटन सेन्चुरी-क्राफ्ट्स, १६५० ।

बोरिंग लैंग्फील्ड एण्ड वेल्ड : साइकोलॉजी—ए फंक्चुअल टेक्स्ट बुक, जैविली ।

मर्फी, गार्डनर एण्ड लुइस, बी० मर्फी एक्सपेरिमेन्टल सोशल साइकोलॉजी, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, १६३१ ।

मर्फी, जी० ए० : ए हिस्टोरीकल इन्ट्रोडक्शन टु मॉडर्न सॉइकोलॉजी, हरकोर्ट, ब्रेस ।

मरसेल, जेम्स एल० · साइकोलॉजिकल टैस्टिंग, लागमैन्स ग्रीन, न्यूयार्क, १६४६ ।

माइकील्स, डब्ल्यू० एण्ड कार्नस भा० रे० . मेजरिंग एजूकेशनल एचीवमेन्ट, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १६५० ।

माउरर, ओ० डब्ल्यू · लर्निंग थ्योरी एण्ड पर्सनेलिटी डेवलपमेन्ट, रोनाल्ड प्रेस ।

माउरर, ओ० एच० · लर्निंग थ्योरी एण्ड पर्सनेलिटी डाइनामिक्स, रोनाल्ड, १६५७ ।

मार्गन एण्ड गिलीलैंड . एन इन्ट्रोडक्शन टु साइकोलॉजी, अध्याय ७, ८ ।

मॉर्गन, सी० टी० एण्ड स्टेलर, ई० : फिजियोलॉजीकल साइकोलॉजी (द्वि० सं०), मैक-ग्रो हिल बुक क०, न्यूयार्क, १६५० ।

माथुर, एम० एम० · एडिमिनिस्ट्रेटिव पोलिसीज गवर्निंग सब्स्टीट्यूट टीचर्स सर्विस इन हायर सेकेण्डरी स्कूल्स इन मेजर सिटीज ऑफ उत्तर प्रदेश (अनपब्लिश्ड), पी-एच० डी० डिसरटेशन, आगरा यूनीवर्सिटी, आगरा ।

माथुर, एस० एस० : समाज मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर, १६६४ ।

माथुर, एस० एस० तथा श्रीवास्तव, आर० सी० : ए स्टडी ऑफ रिलेशन बिटवीन सिनेमा हाउस एण्ड ट्रूएन्सी, (अनपब्लिश्ड), वीमेन्स ट्रेनिंग कॉलेज, आगरा ।

मॉन्टेसरी : दि एडवान्स मॉन्टेसरी मेथड ।

मॉन्डेवॉम, डी० जी० . वुल्फ-चाइल्ड हिस्ट्रीज फ्रॉम इण्डिया, जरनल ऑफ सोशल साइकोलॉजी, १७—२५—४४, १६४३ ।
मॉनरो, वाल्टरस (सम्पादक) · एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, सशोधित सस्करण, मैकमिलन, न्यूयार्क, १६५० ।
मावर्स, ओ० एच० एण्ड पीवॅल : एक्सपेरिमेन्टल एनॉलॉजी ऑफ फियर फ्रॉम ए सेन्स ऑफ हेल्पलैसनॅस, जरनल ऑफ एब्नार्मल साइकोलॉजी, ४३ (१६४८), १६३-२०० ।
मुरसेल, जे० एल० . साइकोलॉजी फॉर मॉडर्न एजूकेशन, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन।
मे, आर० : दि मीनिंग ऑफ ए ग्जाइटी, दि रोनाल्ड प्रेस क०, न्यूयार्क, १६५० ।
मेक्किनी, एफ० : साइकोलॉजी ऑफ ह्यूमन एडजस्टमेन्ट, जॉन, एन० वाई० ।
मेकगॉक, जे० ए० : दि साइकोलॉजी ऑफ ह्यूमन लर्निङ्ग, लागमैन्स एन० वाई० ।
मेकानो, जी० पी० ए स्टडी ऑफ इमोशनल स्टेबिलिटी ऑफ टीचर्स एण्ड देयर प्यूपिल्स, पी० वोडी कन्ट्रीब्यूशन टु एजूकेशन, १६४० ।
मेण्टल हाईजीन इन नरसरी स्कूल : पेरिस, यूनेस्को, १६५३ ।
मेयरस, जी० सी० डेवलपिंग पर्सनेलिटी इन द चाइल्ड एट स्कूल, कॉमनवेल्थ फड, न्यूयार्क, १६३७ ।
मेरी, एफ० के० एण्ड मेरी, आर० वी० फ्रॉम इन्फेन्सी टु एडोलेसेन्स, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, १६४० ।
मेरी कॉलिन्स एण्ड जेम्स ड्रेवर . एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी, लार्ड मैथ्यू एण्ड कम्पनी, १६४८ ।
मैक्डूगल : एन आउटलाइन ऑफ साइकॉलॉजी ।
मैक्डूगल, डब्ल्यू० . एन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल साइकोलॉजी, जॉन डब्ल्यू० ल्यूस क० ।
मैक्डोनाल्ड, एफ० जे० . एजूकेशनल साइकोलॉजी, कैलीफोर्निया, वाड्सवर्थ प० क० ।
मैक-किनॅर, के० कन्सिस्टेन्सी एण्ड चेन्ज इन पर्सनेलिटी एण्ड बिहेवियर मेनीफेस्टेशन्स ऐज आब्जर्व्ड इन ए ग्रुप ऑफ सिक्सटीन चिल्ड्रन ड्यूरिंग ए फाइव ईयर पीरियड, चाइल्ड डेवलपमेन्ट मोनोग्राफ्स, टीचर्स कॉलेज, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी, न० ३०, १६४२ ।
मैकॉले, सी० एच० . टैस्ट्स एण्ड मेज़रमेन्ट्स इन हैल्थ एण्ड फिजिकल एजूकेशन, (द्वि० स०), एफ० एस० क्राफ्ट्स एण्ड क०, न्यूयार्क, १६४२ ।
मैडम मॉन्टेसरी : मॉन्टेसरी मेथड, अध्याय १२, १४ ।
मोरुए, जे० ई० : दि इफेक्ट ऑफ आर्ट ट्रेनिंग ऑन मिरर ड्राइङ्ग, जरनल ऑफ एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी, २१ : ५७०-७८, १६३७ ।
यग, एफ० ए० : कॉजेज फॉर लॉस ऑफ इन्टेरेस्ट इन हाई स्कूल सब्जेक्ट्स ऐज रिपोटिंग बाई सिक्स हण्ड्रेड फिफ्टी वन कॉलेज स्टूडेन्ट्स, जरनल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, २५ : १००-१५, १६३२ ।
यग, पी० एस० : मोटीवेशन ऑफ बिहेवियर, एन० वाई०, जॉन विले एण्ड सन्स ।

यग, बी० बी० : सोशल ट्रीटमेन्ट इन प्रोवेशनल डेलिन्क्वेन्सी, मैकग्रो-हिल, न्यूयार्क ।
रॉस : दि ग्राउण्ड-वर्क ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी ।
रॉस, सी० सी० एवं स्टेनली ज्यूलियस, सी० : मेजरमेंट इन टुडेज स्कूल्स, प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क, १९५४ ।
रीड्स, एच० बी० : मीनिंग ऐज़ ए फैक्टर इन लर्निङ्ग, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, २९ : ४१९-४३०, १९३८ ।
रीड्स, एच० बी० एन एक्सपेरिमेंट ऑन द लॉ ऑफ इफेक्ट इन लर्निङ्ग दि वेज बाई ह्यूमन्स, जरनल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, २६ ६९५-७००, १९३५
रुक, एफ० एल० साइकोलॉजी एण्ड लाइफ, स्टॉक फारसमान एण्ड कम्पनी, शिकागो
रेक्स एण्ड मार्गट नाइट . ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु साइकोलॉजी यूनीवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस, लन्दन, १९५४ ।
रेदीमेअर, एन० · प्रोडक्टिव थिंकिंग, हार्पर, १९४५ ।
रेमरस, एच० एच० एव क्रेज एम० एल० . एजूकेशनल मेजरमेंट एण्ड इवेल्यूशन हार्पर, न्यूयार्क, १९५५ ।
रोड वारेन, ए० सी० एलीमेंट्स ऑफ साइकोलॉजी, बोस्टन, हॉफ्टन, १९२२ ।
रोथनी, टी० डब्ल्यू० एच० रीसेन्ट फाइन्डिंग्स इन द स्टडी ऑफ फिजिकल ग्रोथ ऑफ चिल्ड्रन, जरनल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, ३५ : १६१-१८२, १९४१ ।
लॉन्डिस, पी० एच० : एडोलेसेन्स एण्ड यूथ, मैक-ग्रो हिल, न्यूयार्क, १९५२ ।
लिण्डक्वेस्ट, ई० एफ० एजूकेशनल मेजरमेंट, अमेरिकन कॉउन्सिल ऑफ एजूकेशन, वाशिंगटन, १९५१ ।
लिण्डग्रेन एच० सी० : मेन्टल हेल्थ इन एजूकेशन, हेनरी हाल्ट, न्यूयार्क, १९५४ ।
लिण्डबर्ग, एच० पी० : एजूकेशनल साइकोलॉजी, जॉन विली, लन्दन, १९५६ ।
लिण्डबर्ग हेनरी क्ले : एजूकेशनल साइकोलॉजी, जॉन विली, न्यूयार्क, १९५३ ।
लेविन, के० : ए डाइनामिक थ्योरी ऑफ पर्सनेलिटी, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १९३५ ।
लेहमन, एच० सी० एण्ड विधी, पी० ए० दि साइकोलॉजी ऑफ प्ले-एक्टिविटीज, एन० बाई०, बारनेस, १९२७ ।
ह्यूजेस, ए० जी० एण्ड ह्यूजेस, ई० एच० : लर्निङ्ग एण्ड टीचिंग, लागमेंस, लन्दन ।
ब्लूम्प, बी० एस० टैक्सोनॉमी ऑफ एजूकेशनल आब्जेक्टिव्स, लागमेंस, न्यूयार्क ।
ह्वाइट हाउस कान्फ्रेन्स ऑन चाइल्ड हैल्थ एण्ड प्रोटेक्शन ग्रोथ एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ दि चाइल्ड (भाग २), एपलेटन-सेन्चुरी क्राफ्ट्स, १९३३ ।
ह्विपिल, जी० एम० दि ट्रान्सफर ऑफ लर्निङ्ग, ट्वेन्टी-सेविन्थ ईयर बुक, नेशनल सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ एजूकेशन, १९२८, पार्ट II, १०९-२०९
वर्नन, पी० ई० . दी मेज़रमेंट ऑफ एबिलीटीज़, यूनी० ऑफ लन्दन प्रेस, १९५६ ।
वर्मा, आर० एम० : निदर्शन—शिक्षा एवं जीविका और उसकी विधियाँ, छपरा ।
‍, के० एस० : एन इन्ट्रोडक्शन टु साइकोलॉजी, बनवारीलाल जैन आगरा ।

वॉल्टर, एच० ई० : जेनेटिक्स, दि मैकमिलन एण्ड क०, न्यूयार्क, १६३८।
वारनर डब्ल्यू : दि पर्सनेलिटी ऑफ द स्कूल चाइल्ड, एन० वाई०, ग्रुउन, १६४६।
वारलेट, एस० एच० एण्ड हूटेय, ई० : फटींग एण्ड इम्पेअरमेंट इन मेन, एन० वाई०, मैक-ग्रो हिल, १६४७।
वॉरिंग एडविन जी० · फाउण्डेशन्स ऑफ साइकोलॉजी, एन० वाई०, जॉन विले।
वाशिंगटन, डी० सी० : हेल्पिङ्ग टीचर्स अण्डरस्टेण्ड चिल्ड्रन, अमेरिकन कौंउन्सिल ऑन एजूकेशन, १६४५।
विकर्मेन, ई० के० . चिल्ड्रन, बिहेवियर एण्ड एटीट्यूड, दि कॉमनवेल्थ फड, न्यूयार्क।
विर्दरिंगटन, एच० सी० : एजूकेशनल साइकोलॉजी, जिन एण्ड क०, बोस्टन, १६५२।
विनशिप, ए० ई०, ज्यूक्स-एडवर्ड : ए स्टडी इन एजूकेशन एण्ड हेरिडिटी, मैयर्स हेरिसवर्ग, १६००।
विर्यरिंगल, एच० सी० · एजूकेशनल साइकोलॉजी, बोस्टन, गनन एण्ड क०, १६२०।
वीन, के० एल० · कन्सट्रक्शन ऑफ एजूकेशन एण्ड पर्सनल टैस्ट्स, मैक-ग्रो, न्यूयार्क।
वुडवर्थ, आर० एस० कन्टेम्पोरेरी स्कूल्स ऑफ साइकोलॉजी एन० वाई०, दि रोनाल्ड प्रेस, १६४८।
वुडवर्थ, आर० एम० एक्स्पेरिमेन्टल साइकोलॉजी, हेनरी हाल्ट, १६३८।
वुडरफ, ए० डी० दि सांइकोलॉजी ऑफ टीचिंग, लागमैन्स, न्यूयार्क, १६५१।
वुडवर्थ एण्ड मारक्युस, एम० साइकोलॉजी, मेथ्युन, लन्दन।
वेलेन्टाइन, सी० डब्ल्यू एजूकेशनल साइकोलॉजी।
वेलेन्टाइन, सी० डब्ल्यू एन इन्ट्रोडक्शन टु एक्सपेरिमेंटल साइकोलॉजी, लार्ट यनिव, ट्यूटोरियल प्रेस, १६४२।
वेलेन्टाइन, सी० डब्ल्यू : दि साइकोलॉजी ऑफ अर्ली चाइल्डहुड, मेथ्युन, लन्दन।
वेलेन्टाइन, सी डब्ल्यू साइकोलॉजी एण्ड इट्स बियरिंग ऑन एजूकेशन, लन्दन।
शरमैन, एम० : इन्टेलिजेन्स एण्ड इट्स डेविएशन, दि रोनाल्ड प्रेस क०, न्यूयार्क।
शिडमन, जेरोम एम० · रीडिंग्स इन एजूकेशनल साइकोलॉजी, बोस्टन, हाफटन क०।
श्विजदङ्कर, जी० सी० हेरिडिटी एण्ड एनवायरनमेंट, न्यूयार्क, १६६३।
शूतल वर्थ, एफ० के० . दि फिजीकल एण्ड मेण्टल ग्रोथ ऑफ गर्ल्स एण्ड बॉयज एज सिक्स टु नाइन्टीन इन रिलेशन टु एड एट मैक्जिमम ग्रोथ, नेशनल रिसर्च कौंउन्सिल, वाशिंगटन, १६३६।
शेन फील्ड, ए० · दि न्यू यू एण्ड हेरिडिटी, जे० बी० लिप्पन कोल्ट क०, फिलाडेलफिया १६५०।
शेव, ई० जे० पर्सनेलिटी डेवलपमेंट इन चिल्ड्रन, यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, १६३७।
शैण्ड, ए० एफ० : फाउण्डेशन्स ऑफ करैक्टर, लॉर्ड मैकमिलन क०, १६२०।

स्किनर, सी० ई० (एडीटर) : एसेन्शियल्स ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९६० ।

स्किनर, सी० ई० (एडीटर) : एजूकेशनल साइकोलॉजी, स्टेपिल्स, लन्दन. १९५९ ।

स्किनर, सी० ई० (एडीटर) : एलीमेन्ट्री एजूकेशनल साइकोलॉजी, (द्वितीय संस्करण) अध्याय ४, प्रेन्टिस हॉल, न्यूयार्क, १९५०

स्किनर, सी० ई० (एडीटर) : एजूकेशनल साइकोलॉजी, एन० वाई०, प्रेन्टिस हाल ।

स्किनिडिट्ट, एच० ओ० : दि इफेक्ट्स ऑफ प्रैज एण्ड ब्लेम ऐज इन्सेन्टिव्स टु लर्निङ्ग साइकोलॉजिकल मोनोग्राफ्स, ५३ (१९११) ३ ।

स्कोडक, मैरे एण्ड हॉलैण्ड, एम० एस० . ए फौलो-अप स्टडी ऑफ चिल्ड्रन इन एडोप्टिव होम्ज, जरनल ऑफ जैनेटिक साइकोलाजी, ६६; २१; ५८, १९४५ ।

स्कोडक, मैरे . चिल्ड्रन इन फॉस्टर होम्ज ए स्टडी ऑफ मेण्टल डेवलपमेण्ट, यूनीवर्सिटी ऑफ आयोवा स्टडीज़, स्टडीज इन चाइल्ड वैलफेयर (न० १), १९३९ ।

स्ट्राग, आर० एम० एजूकेशनल गाइडेन्स—इट्स प्रिन्सिपिल्स एण्ड प्रेक्टिस, मैकमिलन, न्यूयार्क, १९४८ ।

स्ट्राइड, जे० बी० एक्सपेरिमेन्ट्स ऑन लर्निङ्ग इन स्कूल सिचुएशन्स, साइकोलॉजिकल बुलेटिन, ३७ (१९४०), ७७७-८०७ ।

स्टाउट, जी० एफ० : मैन्युअल ऑफ साइकोलॉजी, यूनीवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस, लन्दन ।

स्ट्राउड, जेम्स बी० साइकोलॉजी इन एजूकेशन, लागमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी ।

स्टीफेन्स, जे० एम० एजूकेशनल साइकोलॉजी (रिवाइज्ड), हेनरी हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, १९५६ ।

स्टीफेन्स, जे० एम० : दि साइकोलॉजी आफ क्लास-रूम लर्निङ्ग, होल्ट, १९६५ ।

स्टुअर्ट एण्ड ओकडेन : मॉडर्न साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन, केगेन पाल, १९६४ ।

स्टोडार्ड, जी० डी० : दि मीनिंग ऑफ इन्टेलिजेन्स, मैकमिलन, न्यूयार्क, १९४३ ।

स्टोन्स ई० एन इन्ट्रोडक्शन टु एजूकेशनल साइकोलॉजी, लन्दन, मेथ्युन, १९६६ ।

स्टोर, एल० एम० : दि रिलेशन ऑफ सर्टेन फैक्टर्स इन फार्म फेमिली लाइफ टु पर्सनेलिटी डेवलपमेंट इन एडोलेसेन्स. नेब्रास्का एग्रीकल्चरल एक्सपेरिमेन्टेशन स्टेशन, रिसर्च बुलेटिन—१०६, ४०, ४१. १९३८ ।

स्पीयरमैन, सी० दि नेचर ऑफ इन्टेलिजेन्स एण्ड दि प्रिंसिपिल्स ऑफ कॉग्नीशन, मैकमिलन, न्यूयार्क, १९२३ ।

सायमण्ड्स, पी० एम० एजूकेशन एण्ड द साइकोलॉजी ऑफ थिंकिंग, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १९३६ ।

पी० एम० डाइनामिक्स ऑफ ह्यूमन एडजस्टमेंट, एप्लेटन सैन्चुरी क्राफ्ट्स, न्यूयार्क, १९४६ ।

एम० : दि वेवर्ड चाइल्ड, लन्दन यूनी०, लन्दन, १९३७ ।

० एम० · मेन्टल हाइजीन ऑफ द स्कूल चाइल्ड, मैकमिलन, लन्दन ।

माउण्डर, एन० टी : प्रिन्सिपिल्स ऑफ हेरिडिटी, (चतुर्थ संस्करण), डी० सी० हीथ एण्ड क०, बोस्टन, १६५१ ।

मिह, जे० टी० एल० एण्ड आर० एच० जिङ्ग वुल्फ चिल्ड्रन एण्ड फेरलमैन, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, १६४७ ।

सी-अर्म, आर० आर० . सक्सेस एण्ड फेलियोर्स स्टडीज इन पर्सनेलिटी, एन० वाई०, मैक-ग्रो हिल, १६४२ ।

सीको : ह्यूमन लर्निङ्ग इन द स्कूल, होल्ट, १६६३ ।

सेन्ट डीवोई, पी० : ट्रान्सफर ऑफ लर्निङ्ग, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, एन० वाई, मैकमिलन, १, ४१, १३०६-१३ ।

सोडी, के० : मेण्टल हैल्थ एण्ड डेवलपमेण्ट, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, १६५५ ।

सोरेन्सन एजूकेशनल साइकोलॉजी, मैक-ग्रो हिल, न्यूयार्क ।

सोरेन्सन : साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन, मैक-ग्रो हिल ।

हचिन्सन, ई० डी० हाउ टु थिंक क्रियेटिवली डेन्यसी एबिन्डन कोकेसबरी प्रेस ।

हरलॉक ई० बी० चाइल्ड डेवलपमेंट, मैक-ग्रो हिल बुक क०, न्यूयार्क, १६४७ ।

हार्विङ्घ हर्स्ट, आर० जे० : डेवलपमेन्टल टास्क्स एण्ड एजूकेशन, शिकागो, शिकागो यूनीवर्सिटी प्रेस, १६४८ ।

हार्टमैनन, जी० डब्ल्यू एजूकेशनल साइकोलॉजी, एन० वाई० अमेरिकन बुक क० ।

हार्ट मैनन, जी० डब्ल्यू गेस्टाल्ट साइकोलॉजी, एन० वाई०, दि रोनाल्ड प्रेस ।

हार्टशान, एच० कैरेक्टर इन ह्यूमन रिलेशन, चार्ल्स स्क्रीवनं, न्यूयार्क, १६३२ ।

हॉर्न, के० . न्यूरोसिस एण्ड ह्यूमन ग्रोथ, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नॉटन एण्ड क०, न्यूयार्क ।

हॉलिंगवर्थ : एच० एल : एजूकेशनल साइकोलॉजी एप्लेटन, न्यूयार्क, १६३३ ।

हार्म, चार्ल्स एम० एण्ड ग्रीवेले, एच० जी० पर्सनेलिटी, रोनाल्ड, न्यूयार्क, १६५० ।

हिलगार्ड, ई० आर० . थ्योरीज ऑफ लर्निङ्ग, एन० वाई०, एप्लेटन सेन्चुरी ।

हिलगार्ड, ई० आर० थ्योरीज ऑफ लर्निङ्ग, एप्लेटन, सेन्चुरी क्राफ्ट, १६४८ ।

हीयटन, के० एन० दि कैरेक्टर एम्फेसिस इन एजूकेशन, यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, १६३३ ।

हीले डब्ल्यू० पर्सनेलिटी इन फार्मेशन एण्ड एक्शन, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन, न्यूयार्क ।

हैक, ए० ओ० एजूकेशन ऑफ एक्सेप्शनल चिल्ड्रन, मैक-ग्रो, न्यूयार्क, १६४० ।

हैडफील्ड, जे० ए० . मेण्टल हैल्थ एण्ड सायकोन्यूरोसिस, जार्ज ऐलेन, लन्दन, १६५२ ।

होवरस, एच० ई०, लिण्डक्वेस्ट, ई० एफ० एण्ड भान, सी० आर० कंस्ट्रक्शन एण्ड यूज ऑफ एचीवमेण्ट टेस्ट, बोस्टन,